कांग्रेस का इतिहास

१८८५—१९३५

२८ दिसम्बर १९३५ को मनाई गई कांग्रेस-स्वर्ण-जयन्ती पर कांग्रेस द्वारा प्रकाशित तथा डॉ० बी० पट्टाभि सीतारामैया लिखित *History of the Congress* का अनुवाद

भूतपूर्व राष्ट्रपति बाबू राजेन्द्रप्रसाद की प्रस्तावना सहित

हिन्दी-सम्पादक
श्री हरिभाऊ उपाध्याय

सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली
शाखा : लखनऊ

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री,
सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली

— संस्करण :—
दिसम्बर १९३५ : २५००
अप्रैल १९३६ : २०००
नवम्बर १९३८ : ३०००

मूल्य
ढाई रुपये

मुद्रक
इलाहाबाद ला जर्नल प्रेस,
इलाहाबाद

समर्पण

सत्य और अहिंसा के चरणों में

जिनकी भावना ने कांग्रेस का भाग्य-सञ्चालन
किया है और जिनके लिए हिन्दुस्तान के
असंख्य पुत्र-पुत्रियों ने खुशी-खुशी
अपनी मातृभूमि की मुक्ति के
लिए महान् त्याग और
बलिदान किये हैं।

लेखक की ओर से

कोई उद्देश निश्चित करके इस पुस्तक की तैयारी का भार मैंने नही उठाया था। इस वर्ष ग्रीष्म-ऋतु में बेकारी की घडियो में कलम-घिसाई करते-करते यह ग्रन्थ अपने-आप तैयार हो गया। बात यह हुई कि महासमिति के मन्त्रीजी ने किसी दूसरे मामले में मुझसे योही एक बात पूछी थी, उसी सिलसिले में मन्त्रीजी के द्वारा राष्ट्रपति को इस छोटी-सी कृति की सूचना मिल गई। राष्ट्रपति ने यह मामला कार्य-समिति में पेश कर दिया, और कार्य-समिति ने कृपा-पूर्वक काग्रेस की स्वर्ण-जयन्ती के अवसर पर इस पुस्तक के प्रकाशन का भार उठा लिया। इसके लिए मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ।

प्रत्येक भाग के पहले जो सार-निदर्शक वाक्य दिये हुए है उनपर विहगम-दृष्टि डालने से ही पुस्तक की योजना स्पष्ट हो जायगी। प्रथम तीस वर्षो के इतिहास में कोई खास कथानक वर्णन करने जैसा नही था। इसीलिए इस काल की घटनाओ का वर्णन विषय-वार और व्यक्ति-वार किया गया है। हा, पिछले बीस वर्षो का विवरण साल-ब-साल दिया गया है।

भिन्न-भिन्न अधिवेशनो के निश्चय क्रमश उद्धृत नही किये गये है। क्योकि ऐसा करते तो पुस्तक का आधा आकार तो योही पूरा हो जाता। लेकिन इसके बिना भी पुस्तक आशातीत रूप मे बडी हो गई है। पुस्तक में दोष भी बहुत रह गये है। मै उनसे अनभिज्ञ नही हूँ। योजना और लेखन की ये त्रुटिया ऐसी है कि अधिक अवकाश मिलता और ज्यादा ध्यान दिया जा सकता तो इनमें कुछ कमी तो जरूर की जा सकती थी। परन्तु काम बहुत ही थोडे समय में करना पडा, और जल्दी में कोई काम अच्छा भी नही होता। फिर भी बहुत थोडे समय में ही राष्ट्रपति इस पुस्तक को दो बार पढ गये है। इस प्रकार उन्हे पुनरावृत्ति और सशोधन के कार्य में जो परिश्रम करना पडा उसके लिए मेरे साथ ही जनता को भी उनका कृतज्ञ होना चाहिए। काग्रेस के प्रधान-मन्त्री आचार्य कृपलानी को भी इसपर कम परिश्रम नही करना पडा और मन्त्री श्री कृष्णदास को छापने के लिए सारी सामग्री तैयार करने का कठिन कार्य करना पडा है। अत वे भी देश के धन्यवाद के पात्र है।

मछलीपट्टम,
१२ दिसम्बर, १९३५

पट्टाभि सीतारामैया

सम्पादक की ओर से

हमारे माननीय राष्ट्रपति श्री राजेन्द्रबाबू ने मुझे पत्र-द्वारा सूचित किया था कि डॉ० पट्टाभि सीतारामैया-लिखित कांग्रेस के इतिहास (History of the Congress) का हिन्दी-सस्करण सस्ता-साहित्य-मण्डल-द्वारा प्रकाशित किया जाय; इधर भाई श्री देवदासजी गाधी ने प्रेम-पूर्वक आग्रह किया कि हिन्दी-सस्करण तैयार करने की जिम्मेवारी मैं खुद लू। मेरा कांग्रेस-भक्त हृदय इस आग्रह को भला कैसे टाल सकता था ? जिम्मेवारी ले तो ली, किन्तु जैसे-जैसे काम में प्रवेश करता गया तैसे-तैसे बाह्य और आन्तरिक दोनो प्रकार की कठिनाइयो से घिरता गया और यदि वे मित्र, जिनका नाम-निर्देश आगे किया जायगा, मेरी सहायता के लिए न दौड पडते, तो दो महीनें के अन्दर इतनी बडी पुस्तक का अनुवाद और प्रकाशन असम्भव होता। ईश्वर को धन्यवाद है कि अनुवाद समय पर तैयार हो गया है।

अनुवाद को सरल, सुबोध और प्रामाणिक बनाने की भरसक चेष्टा की गई है। फिर भी मूल मूल और अनुवाद अनुवाद ही होता है। मै नही समझता क यह अनुवाद इसमें अपवाद हो सकता है।

मूल अंग्रेजी प्रति थोडी-थोडी करके मिलती रही है—इसलिए सारी पुस्तक को अच्छी तरह पढ जाने पर अनुवाद करने में जो सुविधा मिल सकती थी वह नही मिली। यहा तक कि अनुवाद का कितना ही अश छप चुकने पर महासमिति के दफ्तर से कुछ सशोधन मिले और अभीतक मिलते चले गये, जिनमें से कुछ को तो चिप्पिया लगा-लगाकर भी जोडना पडा है। समय कम मिलने के कारण मूल की यत्र-तत्र पुनरुक्ति से भी अनुवाद को न बचाया जा सका। मैं मानता हूँ कि यदि समय अधिक मिला होता तो मूल पुस्तक और अच्छी बन सकती थी और यह अनुवाद भी इससे बढकर हो सकता था। इन तमाम कठिनाइयो और असुविधाओ के रहते हुए भी, पुस्तक का अन्तरग और बहिरग सुन्दर बनाने का यत्न किया गया है।

पुस्तक के गुण-दोषो के सम्बन्ध में कुछ कहने का मुझे अधिकार नही। यह मेरा काम है भी नही। मेरे जिम्मे हिन्दी-सस्करण तैयार करने का काम था—वह यदि पाठको के लिए सन्तोष-जनक निकला तो मैं अपनी जिम्मेवारी से

वरी हुआ। जल्दी के कारण इस सस्करण में जो त्रुटिया रह गई है उन्हें दूसरे सस्करण में दूर करने का यत्न किया जायगा।

मै अपने सहायक मित्रो को धन्यवाद दिये बिना इस वक्तव्य को समाप्त नही कर सकता। सबसे पहले मुझे भाई मुकुटविहारी वर्मा और प्रोफेसर गोकुल-लालजी असावा का नामोल्लेख करना चाहिए, जिनकी बहुमूल्य सहायता और जी-तोड परिश्रम के बिना यह सस्करण किसी प्रकार तैयार नही हो सकता था। इसी तरह भाई रामनारायणजी चौधरी (अध्यक्ष, राजस्थान-हरिजन-सेवक-सघ), श्री रुद्रनारायणजी अग्रवाल, भाई कृष्णचन्द्रजी विद्यालकार (सम्पादक साप्ताहिक 'अर्जुन') श्री हरिश्चन्द्रजी गोयल और भाई शिवचरणलालजी शर्मा से भी समय-समय पर बडी सहायता मिली, जिनका कृतज्ञता-पूर्वक उल्लेख करना मेरा कर्तव्य है।

'हिन्दुस्तान टाइम्स' प्रेस के कर्मचारियो को भी प्रकाशक की ओर से धन्यवाद मिलना चाहिए, जिन्होने दिन-रात परिश्रम करके इस पुस्तक को सुन्दरता के साथ थोडे समय में छापने की सुविधा मण्डल को कर दी। वे सब सज्जन भी धन्यवाद के पात्र है, जिन्होने अन्य प्रकार से हिन्दी-सस्करण को तैयार करने में सहायता पहुँचाई।

मुझे विश्वास है कि यह इतिहास, काग्रेस का यह पुण्य-स्मरण, काग्रेस-माता का यह दूध पाठको के जीवन को पवित्र, तेजस्वी तथा बलिष्ठ बनायेगा और उन्हें स्वाधीनता की बलिवेदी पर अपने आपको चढाने की स्फूर्ति देगा।

वन्दे-मातरम् !

गांधी-आश्रम
हण्डुडी (अजमेर),
१५ दिसम्बर १६३५

हरिभाऊ उपाध्याय

दूसरे संस्करण का वक्तव्य

काग्रेस के इतिहास का पहला सस्करण किस जल्दी और परिस्थिति में निकाला गया था, यह उसमें बताया जा चुका है। मित्रो की सहायता और ईश्वर की कृपा से हम उसे समय पर सर्व-साधारण के सामने रख सके, यह हमारे लिए बहुत बडी बात थी। लेकिन काग्रेस तो इतनी बडी सस्था है कि हमने उसकी

जो ढाई हजार प्रतिया छपवाई थी वे बहुत कम साबित हुई, और छपते के साथ ही न केवल वे सबही समाप्त हो गईं बल्कि बहुत-सी माग बनी ही रही। उत्सुक पाठको के तकाजे और उलहने आते रहे, पर हम मजबूर थे। इधर जिन-जिनने पुस्तक देखी, छोटे से लेकर बडे-बडो तक ने, उसको सब तरह सराहा और हमें जल्दी दूसरा संस्करण प्रकाशित करने के लिए प्रेरित किया। फलत, लखनऊ-कांग्रेस के इस शुभावसर पर, हम उसका दूसरा सस्करण उत्सुक पाठको के सामने पेश करते हैं।

हमारी इच्छा थी कि दूसरे सस्करण के समय इसको बहुत बारीकी से सशोधित किया जाय, लेकिन काम इतना बडा था और समय इतना कम कि वह सम्भव नही हुआ। फिर भी श्री हरिभाऊजी ने एक बार सारी किताब को दोहरा लिया है और यथावसर कुछ सशोधन भी किये है। प्रूफ में तो पहले भी सावधानी रक्खी गई थी, इस बार और भी ज्यादा ध्यान दिया गया है। इस प्रकार पाठक इसे पहले सस्करण से कुछ अच्छा ही पायेंगे। हमें आशा है कि जैसे पहला सस्करण हाथो-हाथ बिका था वैसे ही यह भी जल्दी समाप्त होगा, और तब हम शीघ्र नये संस्करण को लेकर उपस्थित होगें।

प्रकाशक

प्रस्तावना

हमारी राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) पचास वर्ष पूर्व, पहले-पहल, कुछ थोड़े-से प्रतिनिधियो की उपस्थिति में, बम्बई में हुई थी। जो लोग वहा उपस्थित थे वे निर्वाचित प्रतिनिधि तो शायद ही कहे जा सकें, परन्तु थे सच्चे जन-सेवक। बस, तभी से यह भारतीय जनता के लिए स्वराज्य-प्राप्ति का प्रयत्न कर रही है। यह ठीक है कि प्रारम्भ में इसका लक्ष्य अनिश्चित था, लेकिन हमेशा इसने शासन के ऐसे प्रजातत्री रूप पर जोर दिया है जो भारतीय जनता के प्रति जिम्मेवार हो और जिसमें इस विशाल देश में रहनेवाली सब जातियो एव श्रेणियो का प्रतिनिधित्व हो। इसका आरम्भ इस आशा और विश्वास को लेकर हुआ था कि ब्रिटिश-राजनीतिज्ञता और ब्रिटिश-सरकार समयानुसार ऊँचे उठेंगे और ऐसी सस्थाओ की अस्थापना करेंगे जो सचमुच प्रातिनिधिक हो और जिनसे भारतीय जनता को भारत के हित की दृष्टि से भारत का शासन करने का अधिकार मिले। काग्रेस का प्रारम्भिक इतिहास इस श्रद्धा-युक्त विश्वास के निदर्शक प्रस्तावो और भाषणो से ही भरा हुआ है। काग्रेस की जो मांगें है वे भी ऐसे प्रस्तावो के ही रूप में है, जिनमें यह सुझाया गया है कि क्या तो सुधार होने चाहिएँ और कौनसी आपत्तिजनक कार्रवाइया रद्द होनी चाहिएँ, और उन सब का आधार यह आशा ही रही है, कि यदि ब्रिटिश-पार्लमेण्ट को भारत की इस स्थिति का तथा भारतीयो की इच्छा का भलीभांति पता लग जाय तो वे गलतियो को दुरुस्त करके अन्त में हिन्दुस्तान को स्वशासन की बेशकीमत बख्शीश दे देंगे। लेकिन हिन्दुस्तान और इग्लैण्ड में ब्रिटिश-सरकार ने जो कार्रवाइया की उनसे यह आशा और विश्वास धीरे-धीरे पर सम्पूर्ण रूप में नष्ट हो चुके हैं। ज्यो-ज्यो हमारी राष्ट्रीय जागृति बढती गई त्यो-त्यो ब्रिटिश-सरकार का रुख भी कठोर-से-कठोर होता गया। ब्रिटिश-शासन की सदिच्छाओ पर प्रारम्भ में हमारा जो विश्वास था उसमें लॉर्ड कर्जन के, जिन्होंने बगला को विभक्त कर दिया था, शासनकाल में धक्का लगा। इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति के विरुद्ध जो महान् आन्दोलन हुआ वह सर्व-साधारण में उठती हुई राष्ट्रीय-जागृति की लहर का ही द्योतक था, जोकि बीसवी सदी के आरम्भ में रूस पर जापान की विजय जैसी विश्वव्यापी घटनाओ से कुछ कम

प्रभावित नही थी। फिर भी अग्रेजो पर से हमारा विश्वास बिलकुल उठ नही चुका था, इसलिए महायुद्ध के समय कुछ तो इस विश्वास के ही कारण, जो कि वग-भग रद हो जाने से फिर सजीव हो गया था, और कुछ सारी परिस्थिति को अच्छी तरह न समझ सकने की वजह से, ब्रिटिश-साम्राज्य के सकट के समय उसे सहायता देने की ब्रिटिश-सरकार की पुकार पर देश ने उसका साथ दिया। भारत ने इस सकट-काल में जो बहुमूल्य सहायता की उसकी सब ब्रिटिश-राजनीतिज्ञो ने सराहना की, और भारतीयो के मन में यह आशा पैदा कर दी गई कि जो युद्ध प्रत्यक्षत राष्ट्रो के स्वभाग्य-निर्णय के सिद्धान्त तथा प्रजातत्री-शासन को सुरक्षित करने के उद्देश से लडा जा रहा है उसके फलस्वरूप भारत में भी उत्तरदायी-शासन की स्थापना हो जायगी। १९१७ में ब्रिटिश-सरकार की ओर से भारत-मन्त्री ने जो घोषणा की, जिसमें थोडा-थोडा करके स्वशासन देने का आश्वासन दिया गया था, उसपर हिन्दुस्तानियो में मतभेद उत्पन्न हुआ, और जैसे-जैसे भारत-मत्री व वाइसराय-द्वारा की गई इस सम्बन्धी जाचो का परिणाम और उस बिल का स्वरूप, जोकि आखिर १९२० में भारतीय-शासन-विधान (गवर्नमेण्ट ऑफ इडिया एक्ट) बन गया, प्रकट होते गये वैसे-वैसे वह मतभेद भी उत्तरोत्तर तीव्र होता चला गया। बिल अभी बन ही रहा था कि महायुद्ध समाप्त हो गया, और उसमें ब्रिटिश-सरकार की जीत रही। तब हिन्दुस्तान को यह महसूस होने लगा कि युद्ध के कारण यूरोप में ब्रिटिश-सरकार को जो कठिनाई उत्पन्न हो गई थी, युद्ध में उसके जीत जाने से, चूकि अब वह दूर हो गई है, हिन्दुस्तान के प्रति उसका रुख बदल गया है और पहले से कही खराब हो गया है। खिलाफत के मामले मे जो कुछ हुआ, जिसे कि मुसलमानो के प्रति विश्वास-घात कहा गया, और (देशव्यापी सर्व-सम्मत विरोध के होते हुए भी) उन बिलो के स्वीकृत कर लिये जाने से, जोकि रौलट-बिलो के नाम से मशहूर है और जिनके द्वारा जन-साधारण को स्वतत्र नागरिकता के मौलिक अधिकारो से वचित करनेवाली भारत-रक्षा-विधान की उन कठोर धाराओ को फिर से अमल में लाने की व्यवस्था की गई थी जिन्हे कि महायुद्ध के समय ढीला छोड दिया गया था, इस भावना को और भी पुष्टि और दृढता मिली। इन बातो से स्वभावत देशभर में जोरदार हलचल मच गई और दक्षिण-अफ्रीका में तथा छोटे पैमाने पर भारत के खेडा व चम्पारन जिलो में जिस सत्याग्रह का प्रयोग किया जा चुका था, उसे पहली बार महात्मा गाधी ने इन तथा अन्य शिकायतो से देश के मुक्ति पाने के उपाय के तौर पर प्रस्तुत किया। दुर्भाग्य-

वश इस सिलसिले में पजाब और अहमदाबाद में जनता की ओर से कुछ उत्पात हो गये, जिनसे लोगो के जान-माल का नुकसान हुआ और जालियावाला-बाग-हत्याकाण्ड व पजाब मे फौजी शासन के भीषण दृश्य सामने आये। स्वभावत देशभर में इससे हलचल मच गई और रोष छा गया। इन दुर्घटनाओ की जाच के लिए हण्टर-कमिटी नियुक्त हुई, लेकिन उसकी रिपोर्ट भी उस हलचल और रोष को शान्त न कर सकी, उलटे पार्लमेण्ट में उस रिपोर्ट पर जो बहस हुई उससे वह और भी प्रबल हो गया। तब असहयोग-आन्दोलन शुरू हुआ। इसमें एक ओर तो सरकारी उपाधियो के त्याग और सरकारी कौंसिलो, सरकार-द्वारा स्वीकृत शिक्षणालयो, अदालतो तथा विदेशी कपड़े के बहिष्कार का कार्यक्रम रक्खा गया, और दूसरी ओर जगह-जगह काग्रेस-कमिटियो की स्थापना, काग्रेस-सदस्यो की भर्ती, तिलक-स्वराज्य-कोष के लिए रुपया इकट्ठा करना, राष्ट्रीय शिक्षणालयो की स्थापना, ग्रामवासियो के झगडे निपटाने के लिए पचायतो की स्थापना तथा हाथ की कताई-बुनाई को पुनर्जीवित करते हुए क्रमश सविनय-अवज्ञा और लगान-बन्दी तक पहुँच जाने का कार्यक्रम रक्खा गया। काग्रेस-विधान में परिवर्त्तन करके काग्रेस का लक्ष्य 'शान्तिपूर्ण और उचित उपायों से स्वराज्य-प्राप्ति' रक्खा गया। इससे देशभर में जागृति की लहर छा गई और सरकार ने भी अपना दमन-चक्र जारी कर दिया। देखते-देखते १९२१ के अन्त तक हजारो स्त्री-पुरुष, जिनमें देश के कुछ अत्यन्त प्रतिष्ठित नेता भी थे, जेलखानो में जा पहुँचे। सरकार के साथ समझौते की बातचीत भी चली, पर वह सफल न हुई। मगर इसी दर्मियान युक्त-प्रान्त के चौरीचौरा स्थान में भयकर उत्पात हो जाने के कारण, बारडोली मे करबन्दी के आन्दोलन का जो कार्यक्रम तय हुआ था, उसे स्थगित कर देना पड़ा। इसके बाद एक-एक करके असहयोग-कार्यक्रम की दूसरी बातें भी स्थगित कर दी गईं और काग्रेसवादी कौंसिलो में प्रविष्ट हुए।

१९२० के शासन-विधान के अमल की जाच के लिए ब्रिटिश-पार्लमेण्ट ने जो कमीशन नियुक्त किया, जोकि साइमन-कमीशन के नाम से मशहूर है, उसमें हिन्दुस्तानियो के न रक्खे जाने से देश में फिर हलचल मची। तब, अन्य सार्वजनिक सस्थाओ के साथ मिलकर, काग्रेस ने सरकार की स्वीकृति के लिए, भारत के लिए ऐसा शासन-विधान बनाया, जिसमें भारत का लक्ष्य ब्रिटिश-साम्राज्य के अन्य उपनिवेशो के समान स्थिति (डोमिनियन स्टेटस) की प्राप्ति रक्खा गया। लेकिन सरकार ने इसका कोई पर्याप्त जवाब नहीं दिया। तब दिसम्बर १९२९ में, लाहौर के

अपने अधिवेशन में, काग्रेस ने अपना लक्ष्य वदलकर शान्तिपूर्ण और उचित उपायो से पूर्ण स्वराज (पूर्ण स्वाधीनता) की प्राप्ति कर दिया और १९३० के आरम्भ में अनैतिक कानूनो की सविनय-अवज्ञा तथा कर-बन्दी का आन्दोलन सगठित किया। इग्लैण्ड की सरकार ने एक ओर तो लन्दन में एक परिषद् का आयोजन किया, जिसमें भारत के लिए शासन-विधान बनाने के सम्बन्ध में परामर्श देने के लिए कुछ हिन्दुस्तानियो को नामजद किया गया, और दूसरी ओर भारत में सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन को कुचलने के लिए अनेक अत्यन्त भीषण आर्डिनेन्सो-सहित दमनकारी उपाय अख्तियार किये गये। मार्च १९३१ में सरकार की ओर से वाइसराय लॉर्ड अर्विन और काग्रेस की ओर से महात्मा गाधी के बीच एक समझौता हुआ, जिसके फल-स्वरूप सविनय-अवज्ञा स्थगित कर दी गई और १९३१ के आखिरी दिनो में महात्मा गाधी लन्दन में होनेवाली गोलमेज-परिषद् में शामिल हुए। लेकिन, जैसा कि खयाल था, इस परिषद् से कोई नतीजा हासिल न हुआ और १९३२ की शुरुआत में ही काग्रेस को फिर से आन्दोलन शुरू कर देना पडा, जो १९३४ तक चलता रहा। १९३४ में वह फिर स्थगित कर दिया गया। १९३० और १९३२ इन दोनो बार के आन्दोलनो में हजारो स्त्री-पुरुष और बच्चे तक जेलो में गये, लाठी-प्रहार तथा अन्य प्रकार के कष्टो को उन्होंने सहा, और अपनी सम्पत्ति का नुकसान भी बर्दाश्त किया। बहुत-से, सरकारी सेना-द्वारा भीड पर चलाई गई गोलियो के कारण, मारे भी गये। सत्याग्रहियो ने इस अवसर पर अपने सगठन और कष्ट-सहन की अद्भुत शक्ति का परिचय दिया और भारी-से-भारी उत्तेजनाओ के बीच भी, कुल मिलाकर, पूरी तरह अहिंसक ही रहे। काग्रेस-सगठन ने सरकार के भारी आक्रमण के बावजूद कायम रहकर सिद्ध कर दिया कि वह निर्जीव नही है और अपने को समयानुकूल बनाने की उसमें पर्याप्त क्षमता है। यह ठीक है कि देश का जो लक्ष्य है वह पूर्ण स्वराज अभी हमें प्राप्त नही हुआ, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि देश इस अग्नि-परीक्षा में प्रशसनीय रूप से पार उतरा है।

कराची के अधिवेशन में काग्रेस ने एक प्रस्ताव-द्वारा सब भारतवासियो को उनके कुछ मौलिक अधिकारो का आश्वासन दिया है और देश के सामने एक आर्थिक एव सामाजिक कार्यक्रम प्रस्तुत किया है। उसमें यह स्पष्ट कर दिया गया है कि जन-साधारण के शोषण का अन्त करने के लिए यह आवश्यक है कि राजनैतिक स्वतत्रता में भूखो मरनेवाले करोडो लोगो की वास्तविक आर्थिक स्वतंत्रता का भी समावेश हो, और भाषण, सम्मिलन, जान-माल, धर्म तथा

अन्तरात्मा के आदेश आदि सम्बन्धी स्वतन्त्रता के मौलिक अधिकारो की घोषणा कर दी गई है। यह भी निर्दिष्ट कर दिया गया है कि कल-कारखानो में काम करनेवालो के लिए काम की स्वास्थ्यप्रद परिस्थिति, काम के मर्यादित घण्टे, आपसी झगडो के फैसले के लिए उपयुक्त सगठन और बुढापे, बीमारी व बेकारी के आर्थिक सकटो से सरक्षण तथा मजदूर-सघ बनाने के उनके अधिकार को कायम रखने के रूप में उनके हितो का खयाल रक्खा जायगा। किसानो को इसने आश्वासन दिया है कि यह लगान-मालगुजारी में उपयुक्त कमी कराकर और अनुत्पादक जमीनो की लगान-मालगुजारी माफ कराकर तथा छोटी-छोटी जमीनो के मालिको को उस कमी के कारण जो नुकसान होगा उसके हिसाब से उचित और न्याय्य छूट की सहायता देकर यह उनके खेती-सम्बन्धी भार को हलका करेगी। खेती-बाडी से होनेवाली आमदनी पर, उसके एक उचित न्यूनतम परिमाण से ऊपर, इसने क्रमागत कर लगाने की भी व्यवस्था की है। साथ ही एक निश्चित रकम से अधिक आमदनी-वाली सम्पत्ति पर उत्तरोत्तर बढता जानेवाला विरासत का कर लगाने, फौजी व मुल्की शासन के खर्चे में भारी कमी करने और सरकारी कर्मचारियो की तनख्वाह ५००) महीने से ज्यादा न रखने के लिए कहा है। इसके अलावा एक आर्थिक और सामाजिक कार्यक्रम भी प्रस्तुत किया गया है जिसमें विदेशी कपडे का बहिष्कार, देशी उद्योग-धन्धो का सरक्षण, शराब तथा अन्य नशीली चीजो का निषेध, बडे-बडे उद्योगो पर सरकारी नियत्रण, काश्तकारो का कर्जदारी से उद्धार, मुद्रा और विनिमय की नीति का देश के हित की दृष्टि से संचालन और राष्ट्र-रक्षा के लिए नागरिको को सैनिक शिक्षण देने का निर्देश है।

काग्रेस के अन्तिम अधिवेशन में, जोकि अक्तूबर १९३४ में बम्बई में हुआ था, कौंसिल-प्रवेश की नीति को स्वीकार कर लिया गया है और देश के सामने रचनात्मक कार्यक्रम रक्खा गया है जिसमें हाथ की कताई-बुनाई को प्रोत्साहन एव पुनर्जीवन देने, उपयोगी ग्रामीण तथा अन्य छोटी दस्तकारियो (गृह-उद्योगो) की उन्नति करने, आर्थिक, शिक्षणात्मक, सामाजिक एव स्वास्थ्य-विज्ञान की दृष्टि से ग्रामीण-जीवन का पुनर्निर्माण करने, अस्पृश्यता का नाश करने, अन्तर्जातीय एकता की वृद्धि करने, सम्पूर्ण मद्य-निषेध, राष्ट्रीय-शिक्षा, वयस्क स्त्री-पुरुषो में उपयोगी ज्ञान का प्रसार करने, कल-कारखानो में काम करनेवाले मजदूरो व खेती करनेवाले किसानो का सगठन करने और काग्रेस-सगठन को मजबूत बनाने की बातें भी हैं। काग्रेस-विधान का सशोधन करके, नये विधान में, प्रतिनिधियो की सख्या घटाकर

काग्रेस-रजिस्टर में दर्ज जितने सदस्य हो उनके अनुपातानुसार कर दी गई है; साथ ही इस बात पर भी जोर दिया गया है कि काग्रेस-कमिटियो के सब निर्वाचित-सदस्य शारीरिक श्रम करने और आदतन खादी पहननेवाले हो।

इस प्रकार काग्रेस कदम-ब-कदम आगे बढती गई है और राष्ट्रीय हलचल के हरेक क्षेत्र में उसने अपना प्रवेश कर लिया है। इस समय वह रचनात्मक कार्य में लगी हुई है जिससे न केवल जन-साधारण की माली हालत ही ठीक होगी, बल्कि उसको पूरा करने से उनमें वह आत्म-विश्वास भी जागृत होगा जिससे वे पूर्ण-स्वराज्य प्राप्त कर सकेंगे। एक छोटी सस्था के रूप में आरम्भ होकर अब यह इतनी प्रशस्त हो गई है कि सारे देश में इसकी शाखायें है और देश के सर्व-साधारण का विश्वास इसको प्राप्त है। इसके आदेश पर देश के सब श्रेणियो के लोगो ने स्वराज्य-प्राप्ति के लिए बहुत बडे पैमाने पर बलिदान किया है; और इसके कार्यो व इसकी सफलताओ का राष्ट्र के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह ऐसा सगठन है जो हमारे राष्ट्र की एक महान थाती है, जिसकी रक्षा और वृद्धि करना हरेक हिन्दुस्तानी का कर्तव्य होना चाहिए। स्वतत्रता की उस लडाई में, जो अभी भी हमें लडना बाकी है, निश्चय ही यह अधिक-से-अधिक भाग लेती रहेगी। यह समय सुस्ताने या विश्राम करने का नही है। अभी तो बहुत-सा काम करने को बाकी पडा है, जिसके लिए बहुत सब्र के साथ तैयारी करने, लगातार बलिदान करने और अटूट दृढ-निश्चय की आवश्यकता है। पूर्ण-स्वराज्य से कुछ कम पर हम हर्गिज सन्तोष न करेंगे। आइए, उन सब जाने-बेजाने स्त्री-पुरुष और बच्चो के आगे हम अपना सिर झुकायें, जिन्होंने इसके लिए अपनी जान तक कुरबान कर दी है, तरह-तरह के सकट और अत्याचार सहे है, और जो अपनी मातृभूमि से प्रेम करने के कारण अब भी कष्ट पा रहे है।

साथ ही, कृतज्ञता और सन्मान के साथ, हमें उन लोगो की सेवाओ का भी स्मरण करना चाहिए, जिन्होंने कि इस शक्तिशाली सस्था का बीजारोपण किया और अपने निस्स्वार्थ परिश्रम एव अपनी कुरबानियो से इसका पोषण किया। पचास साल पहले जो छोटा-सा बीज बोया गया था वह अब बढकर एक मजबूत वटवृक्ष बन गया है, जिसकी शाखा-प्रशाखायें इस विशाल देश-भर में फैल गई है और अब अगणित नर-नारियो की कुरबानियो के रूप में उसमें कलिया फूटी है। अब जो लोग बाकी बचे है उनका फर्ज है कि वे अपनी सेवा और कुरबानियो से इसका पोषण करें, ताकि प्रकृति ने जिस उद्देश से इसको बनाया है वह पूर्ण हो, इसमें फल लगें और उनसे भारतवर्ष स्वतत्र एव समृद्ध देश बन जाय।

आगे के पृष्ठो मे काग्रेस की प्रगति का वर्णन मिलेगा। काग्रेसी मामलो और व्यक्तियो के बारे में लेखक का ज्ञान और अनुभव बहुत विस्तृत है। स्वयं उन्होंने भी, उसकी प्रगति के पिछले हिस्से में, कुछ कम भाग नही लिया है। लेकिन वह एक दूर बैठे हुए इतिहासकार नही है, जो खाली घटनाओ का ज्यो-का-त्यो उल्लेख करके निर्जीव तथ्यो के आधार पर निष्कर्ष निकालते। उन्होने तो यह अपनी आखो देखा है और इसके लिए खुद काम भी किया है। खाली जानकारी से ही उन्होंने काम नही किया बल्कि अपनी श्रद्धा का भी उपयोग किया है। अतएव उन्होंने जो निष्कर्ष निकाले है और जो मत व्यक्त किये है, वे इनके अपने है, उन्हें हर बात में काग्रेस की कार्य-समिति के, जो कि इस पुस्तक को प्रकाशित करके दुनिया के सामने पेश कर रही है, निष्कर्ष और मत न समझ लेना चाहिए। फिर भी, आशा है, इसमें घटनाओ और तथ्यो का विश्वसनीय उल्लेख है और वर्तमानकालीन इतिहास के विद्यार्थियो के लिए यह बहुत उपयोगी होगी।

—राजेन्द्र प्रसाद

१२ दिसम्बर, १९३५]

विषय-सूची

भाग १

सुधारों का युग—१८८५ से १९०५
स्वशासन का युग—१९०६ से १९१६

भाग २

होमरूल का युग—१९१७ से १९२०

भाग ३

स्वराज्य का युग—१९२१ से १९२८

भाग ४

पूर्ण स्वाधीनता का युग—१९१९ से १९३५

भाग ५

युद्ध-काल

भाग ६

पुनस्संगठन-काल

परिशिष्ट

[पहला भाग : १८८५–१९१५]

: १ :

कांग्रेस का जन्म

कांग्रेस का इतिहास सच पूछो तो उस लडाई का इतिहास है जो हिन्दुस्तान ने अपनी आजादी के लिए लडी है। कई सदियो से भारतीय राष्ट्र विदेशियो का गुलाम बना हुआ है। इस समय वह जिस गुलामी में फँसा हुआ है उसका आरम्भ भारतवर्ष में एक व्यापारी-कम्पनी के पदार्पण करने के साथ हुआ है, और उस गुलामी से देश को मुक्त करने के लिए पिछले ५० सालो से कांग्रेस प्रयत्न करती चली आ रही है।

पूर्व परिस्थिति

ईस्ट इण्डिया कम्पनी का व्यापारिक और राजनैतिक दौर-दौरा भारत मे कोई सौ वर्षों तक रहा। इसी बीच उसने भारत में बडे-बडे हिस्सो पर अपना कब्जा कर लिया और व्यापारी की जगह अब एक राजशक्ति बन गई। १७७२ के बाद ब्रिटिश-पार्लमेण्ट समय-समय पर उसके कामो की जाच-पडताल करने लगी और जब-जब उसको नया चार्टर (सनद) दिया जाता तब-तब पहले ब्रिटिश-सरकार की तरफ से उसके कामो की जाच कर ली जाती थी। चूकि उसका व्यापारिक कार्य पीछे पडता जा रहा था, यह जाच-पडताल और भी बारीकी के साथ होने लगी। परन्तु इससे यह खयाल करना तो ठीक न होगा कि उसके काम पर कोई गहरी देख-रेख की जाती रही हो। हा, ऐसे ब्रिटिश लोग जरूर थे जो भारतीय प्रश्नो का गहराई के साथ अध्ययन करते थे। वे कम्पनी के कार्य और कार्यक्रम को गौर से और आखें खोलकर देखा करते थे और उसे पार्लमेण्ट की निगाह से गुजारने में किसी तरह शिथिल नही रहते थे। १८ वी सदी के चौथे चरण में एडमण्ड बर्क, शेरिडन और फॉक्स नामक सज्जनो ने इस विषय में बडी दिलचस्पी ली। उससे कम्पनी के एजेण्टो के कारनामो की ओर लोगो का ध्यान खिच गया। हाला कि वारन् हेस्टिंग्स पर चलाये गये मुकदमे का

उद्देश पूरा न हुआ, फिर भी उसने कम्पनी के अन्याय-अत्याचार को लोगो की निगाह में ला दिया। नया चार्टर देने के पहले जब-जब जाच-पडताल की गई तब-तब उसके फल-स्वरूप दूरगामी परिणाम लानेवाले कुछ-न-कुछ सिद्धान्तो का निरूपण तो जरूर किया गया, परन्तु वे सिर्फ कागज में ही लिखे रह जाते थे। कई बार यह नीति निश्चित की गई कि कम्पनी के एजेण्ट अपने-अपने इलाको की सीमा बढाने की कोशिश न करें, परन्तु हरबार कोई-न-कोई ऐसा मौका आ जाता था या पैदा कर लिया जाता था कि जिससे इस आदेश का पालन न होता था और उनके इलाके की सीमा बढती ही चली गई। यहा उस इतिहास में प्रवेश करने की जरूरत नहीं है, जो ईस्ट इण्डिया कम्पनी की तरफ से भारत को हथियाते समय की गई दगाबाजियो और काली करतूतो से भरा हुआ है, जिसमें क्षुद्र और लोभी मानव प्रकृति ने अपना रग खूब दिखाया है और जिसमें सन्धिया और शर्तनामे कदम-कदम पर तोडे गये है, और न यहा इसी बात की जरूरत है कि हिन्दुस्तानियो ने जो आपस में दगाबाजिया और नमकहरामिया की है उनका वर्णन किया जाय, न कम्पनी के एजेण्टो के द्वारा काम में लायें गये उन साधनो और तदबीरो पर विचार करने की जरूरत है, जिनके बल पर उन्होने न सिर्फ कम्पनी और उसके डाइरेक्टरो को मालामाल कर दिया बल्कि खुद अपनी जेबें भी भर लीं। सिर्फ इतना ही कह देना काफी होगा कि उन्होने अटूट धन-सम्पत्ति प्राप्त कर ली, जिसने आगे चलकर उनके लिए एक बडी पूजी का काम दिया और जिसके बल पर इग्लैंड, स्टीम एजिन चलाने में तथा १९ वी सदी में दुनिया में अपने औद्योगिक प्रभुत्व को स्थापित करने में सफल हो सका।

१७७४ में रेग्युलेटिंग एक्ट पास हुआ और कम्पनी के कोर्ट ऑफ् डाइरेक्टर्स (सचालक-सभा) के ऊपर बोर्ड ऑफ कण्ट्रोल (नियामक मण्डल) और कौन्सिल-सहित एक गवर्नर-जनरल की नियुक्ति हुई। तब गोया ब्रिटिश-पार्लमेण्ट ने पहले-पहल हिन्दुस्तानी इलाको के शासन की कुछ जिम्मेवारी अपने ऊपर ली। धीरे-धीरे यह नियंत्रण बढता गया और १७८५ में एक दूसरा कानून पास हुआ। १७९३, १८१३, १८३३ और १८५३ में तहकीकात करने के बाद नये चार्टर दिये गये। १८३३ में एक कानून बनाया गया कि "पूर्वोक्त प्रदेशो के कोई भी निवासी या बादशाह के कोई प्रजाजन, जो वहा रहते हो, महज अपने धर्म, जन्मस्थान, वंश या वर्ण के कारण कम्पनी में किसी स्थान, पद या नौकरी से वचित न रक्खे जायेंगे" और कोर्ट ऑफ् डाइरेक्टर्स ने इसके महत्त्व को इस प्रकार समझाया :—

"इस धारा का आशय कोर्ट यह मानती है कि ब्रिटिश भारत में कोई शासन

करनेवाली जाति न रहेगी। उनकी योग्यता की दूसरी कुछ भी कसौटिया रक्खी जायँ, जाति या धर्म का कोई भेद-भाव नही रक्खा जायगा। बादशाह के प्रजाजन में से किसी को, फिर वे चाहे भारतीय, ब्रिटिश या मिश्र जाति के हो, बेसनदी नौकरियो से वचित नही रक्खा जायगा और न वे सनदी नौकरियो से ही वचित रक्खे जायँगे, यदि दूसरी बातो में वे उनके योग्य हो।"

उसी कानून के द्वारा कम्पनी का भारत में व्यापार करने का अधिकार उठा दिया गया और इसके बाद से वह एक पूरी शासक-सत्ता के रूप में सामने आ गई।

इसी समय भारत में अग्रेजी शिक्षा का प्रवेश करने या न करने के विषय में एक चर्चा उठ खडी हुई। हिन्दुस्तानियो में राजा राममोहन राय और अग्रेजो में मेकाले अंग्रेजी शिक्षा देने के जबरदस्त समर्थक थे। अन्त में भारतीय भाषाओ और साहित्य के स्थान पर अग्रेजी भाषा के पक्ष में निर्णय हुआ और उस शिक्षा-पद्धति की नीव पडी जो कि भारत में आजतक प्रचलित है।

उन दिनो अग्रेजो के द्वारा चलाये अखबारो के सिवा कोई देशी अखबार न थे। इनमें भी बाज-बाज अखबारवालो को देश निकाला तक भुगतना पडा था। गवर्नर-जनरल लॉर्ड विलियम बेन्टिक का शासन-काल पूर्वोक्त सुधारो के कारण ही प्रसिद्ध हुआ था। उनकी नीति अखबारो के लिए भी नरम थी। उनके उत्तराधिकारी सर चार्ल्स मेट्कॉफ ने अखबारो पर से पाबन्दिया उठा ली। फिर, लॉर्ड लिटन के वाइसराय होने तक अखबार इसी आजादी में रहे—सिर्फ १८५७ के गदर के जमाने को छोडकर।

लॉर्ड डलहौजी की नीति व गदर

१८३३ और ५३ के दर्म्यान पजाब और सिंध जीत लिये गये और लॉर्ड डल-हौजी की नीति ने कम्पनी का इलाका बहुत बढा दिया, जो कि ब्रिटिश सरकार के कब्जे में आजतक चला आ रहा है। लॉर्ड डलहौजी ने कई लावारिस राजाओ की रियासतें जब्त कर ली तथा अवध की रियासत भी शासन ठीक न होने का सबब बताकर ब्रिटिश भारत में मिला ली। इसके सिवा आर्थिक शोषण भी जारी था, जिससे लोग दिन-दिन कगाल होते गये। इधर रियासतें छिन गई और उनकी जगह विदेशी हुकूमत कायम हो गई। यह बात लोगो को चुभ रही थी और वे मन-ही-मन कुढ रहे थे। नतीजा यह हुआ कि १८५७ में उन्होने विदेशी हुकूमत के जुए को फेंक देने का आखिरी सशस्त्र प्रयत्न किया। हा, इस बगावत में कुछ धार्मिक भाव भी जरूर था। परन्तु चूकि एक ओर

दिल्ली के नामधारी सम्राट्, जो कि अकबर और औरंगजेब के वंशज थे, और दूसरी ओर पूना के पेशवाओ के वंशज, इन दोनो के झण्डे के नीचे जमा होकर लोग भारतीय राज्य स्थापित करना चाहते थे, इससे यह प्रतीत होता है कि यह गदर १७५७ के पलासी-युद्ध के बाद सौ वर्षों तक भारत में जो कुछ घटनाएँ घटती रही, उनके परिणाम का द्योतक था। यही नही बल्कि वह प्रत्येक देश और जाति के मानव-हृदय की इस प्राकृतिक अभिलापा को भी सूचित करता था कि हम अपने ही लोगो के द्वारा शासित हो, दूसरो के द्वारा हर्गिज नही। हालाकि गदर बेकार गया, परन्तु उसके साथ ही ईस्ट इंडिया कम्पनी भी तिरोहित हो गई और भारत-सरकार का शासन-सूत्र सीधा ब्रिटिश ताज अर्थात् ब्रिटिश-पार्लमेण्ट के हाथो में आ गया। इस अवसर पर महारानी विक्टोरिया ने एक घोषणा प्रकाशित की, जिससे शान्ति और विश्वास का वातावरण पैदा हुआ। जो कुछ अशान्ति बच रही, अब उसका कोई सहारा बाकी नही रह गया था। राजा और खास करके नवाब बिलकुल तहस-नहस हो चुके थे। कोई नामधारी व्यक्ति भी ऐसा नही रह गया था कि जिसके आसपास लोग जमा हो जाते और आगे १८५७ की तरह कोई उत्पात खडा कर देते। अब लोग यह समझने लग गये कि भारत में अंग्रेजी राज्य ईश्वर की एक देन है और लोग उसी उदासीन और अलिप्त भाव से अपने काम-काज में लग गये, जो कि हमारे राष्ट्रीय जीवन की एक खासियत है।

ब्रिटिश-पार्लमेण्ट के हाथ में शासन-सूत्र चले जाने के बाद भी भारत-सरकार की गति-विधि पहले की ही तरह जारी रही, हा, एक बात जरूर हुई कि उसका शासन २० साल तक बिला खरखशा जारी रहा। इस बीच कोई युद्ध वगैरा नही हुआ।

परन्तु इसके यह मानी नही कि कोई रगडा-झगडा और कोई अशान्ति थी ही नहीं। ब्रिटिश-शासन में बडी बडी खराबिया थी जिन्हे कि मि० ह्यूम जैसे हमदर्द अंग्रेज अफसर दिखाया भी करते थे और कोशिश भी किया करते थे कि वे दूर हो।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, १८३३ के कानून के अनुसार, भारतवासी उन तमाम जगहो पर लेने के काबिल करार दिये गये, जिनके लिए वे मुस्तहक समझे जाते थे। १८५३ में, जबकि चार्टर विचाराधीन था, पार्लमेण्ट में यह बात खुले आम कही जाती थी कि १८३३ के कानून ने हालाकि भारतवासियो को नौकरिया देने का रास्ता खुला कर दिया है, फिर भी उनको अभी तक वे कोई जगह नही दी गई है जो कि इस कानून के पहले उन्हें नही दी जा सकती थी। जबकि १८५३ में सिविल सर्विस के लिए प्रतिस्पर्द्धी परीक्षायें जारी की गई तब इस बात की ओर ध्यान दिलाया गया था कि उनसे हिन्दुस्तानियों के रास्ते में बडी रुकावटें पेश आयेंगी, क्योकि उनके लिये इंग्लैंड में

आकर अंग्रेज लड़कों के साथ अंग्रेजी भाषा और साहित्य की परीक्षाओं में बाजी मार ले जाना असम्भव होगा। और यह भी उन नौकरियों के लिए जो आमतौर पर बहुत दुर्लभ थीं। परन्तु इस बाधा के रहते हुए भी आखिर कुछ हिन्दुस्तानी समुद्र-पार गये ही और उन्होंने सफलता भी प्राप्त की। इतने में ही तकदीर से लॉर्ड सेल्सबरी ने परीक्षा में बैठने की उम्र कम कर दी। इससे हिन्दुस्तानियों को लेने के देने पड़ गये। क्योंकि उधर वे अंग्रेजों की सहायता से हिन्दुस्तान और इंग्लैंड में साथ-साथ परीक्षा ली जाने की पुकार मचा रहे थे, इधर लॉर्ड लिटन ने देशी-भाषा के अखबारों का मुंह बन्द कर दिया, जो कि मेटकॉफ के समय से लेकर अबतक अंग्रेजी अखबारों के साथ-साथ आजादी का सुख अनुभव कर रहे थे। उन्होंने एक शस्त्र-कानून भी पास किया, जिसके अनुसार न केवल भारतवासियों के हथियार रखने के अधिकार को छीन लिया बल्कि हिन्दुस्तानियों और अंग्रेजों के बीच एक और जहरीला भेद-भाव पैदा कर दिया।

फिर अकालों का भी दौर-दौरा होता रहा। अनाज की कमी उतनी नहीं थी जितनी कि उसे खरीदने के साधन कम थे। इन अकालों से देश में हजारों-लाखों आदमी काल के गाल हो गये। इसके अलावा अफगान-युद्ध हुआ, जिसमें बड़ा खर्च उठाना पड़ा। इधर तो एक ओर अकाल और मौत का दौर-दौरा हो रहा था, उधर दिल्ली में एक-दरबार करने की तजबीज मुनासिब समझी गई, जिसमें महारानी विक्टोरिया ने भारत-सम्राज्ञी की उपाधि धारण की।

ह्यूम साहब की दूर दृष्टि

किसान भी पीड़ित थे। उनके कुछ कष्टों का वर्णन मि० ह्यूम ने सर ऑकलैंड कोलविन को लिखे अपने प्रसिद्ध पत्र में किया है। उनकी गहरी शिकायतें ये थी—(अ) दीवानी अदालतें असुविधाजनक और खर्चीली हैं। (आ) पुलिस घूसखोर है और बड़ी ज्यादतियां करती है। (इ) तरीका लगान सख्त है। (ई) शस्त्र और जंगल कानून का अमल चुभनेवाला है। इसलिये लोगों ने प्रार्थनायें की कि (क) न्याय सस्ता, निश्चित और जल्दी मिला करे, (ख) पुलिस ऐसी हो कि जिसे वे अपना दोस्त और रक्षक समझ सकें, (ग) तरीका लगान ज्यादा लचीला हो और किसानों के साथ सहानुभूति रखकर बनाया गया हो, (घ) शस्त्र और जंगल के कानूनों का अमल कम सख्ती से किया जाय। परन्तु ये मंजूर नहीं हुईं। सन् १८८० की शुरुआत के लगभग दरअसल ऐसी हालत थी। यहां तक कि सर विलियम वेडरबर्न कहते हैं कि नौकरशाही ने न केवल नई सुविधाओं के रोकने में ही अपनी तरफ से कोर-कसर नहीं रक्खी,

वल्कि जव-जव मौका मिला पिछले विशेषाधिकार भी छीन लिये गये, जैसे कि प्रेस की स्वाधीनता, सभायें करने का अधिकार, म्युनिसिपल-स्वराज्य और विश्व-विद्यालयो की स्वतन्त्रता। सर विलियम लिखते है—"एक तो ये अशुभ और प्रतिगामी कानून, दूसरे रूस के जैसा पुलिस का दमन। इससे लॉर्ड लिटन के समय में भारत में कोई क्रान्तिकारी विस्फोट होने ही वाला था कि मि० ह्यूम को ठीक मौके पर सूझी और उन्होंने इस काम में हाथ डाला।" इतना ही नही, वल्कि राजनैतिक अशान्ति अन्दर-ही-अन्दर वढ रही है, इसका अकाट्य प्रमाण मि० ह्यूम के पास था। उनके हाथ ऐसी रिपोर्टों की ७ जिल्दें लगीं, जिनमें भिन्न-भिन्न जिलो के अन्दर वगावत के भाव फैलने का वर्णन था। भिन्न-भिन्न गुरुओ के कुछ शिष्यो का धर्माचार्यों और महन्तो से जो पत्र-व्यवहार हुआ, उसके आधार पर वे तैयार की गई थी। यह हाल है लॉर्ड लिटन के शासन के अन्त समय का, अर्थात् पिछली सदी के ७० से लेकर ८० साल के बीच का। ये रिपोर्टें जिला, तहसील, सव-डिवीजन के अनुसार तैयार की गई थी और शहर, कस्वे और गाव भी उनमें शामिल थे। इसका यह अर्थ नही कि कोई सुसगठित विद्रोह जल्दी होनेवाला था, वल्कि यह कि लोगो में निराशा छाई हुई थी, वे कुछ-न-कुछ कर गुजरना चाहते थे, जिससे सिर्फ इतना ही अभिप्राय है कि सभव है "लोग जगह जगह हथियार लेकर टूट पडें और जिनसे वे नफरत करते थे उनकी खून-खरावी करने लगें, सेठ-साहूकारों के यहा चोरी और डाके डालने लगें और वाजारो में लूट मार करने लगें।" यो तो ये कार्य सिर्फ कानून की खिलाफवर्जी करनेवाले है। परन्तु यदि आवश्यक वल और सगठन का सहारा मिल जाय तो किसी भी दिन एक राष्ट्रीय वगावत के रूप में परिणत हो सकते है। वम्वई इलाके के दक्षिण प्रान्त में किसानो के ऐसे दगे हो भी चुके थे। यह देखकर ह्यूम साहव ने इस अशान्ति को प्रकट करने का एक सरल उपाय ढूढ निकाला, जो कि हमारी यह वर्तमान कांग्रेस है। इसी समय उनके दिमाग में यह खयाल आया कि हिन्दुस्तानियो की एक राष्ट्रीय सभा कायम की जाय और उन्होंने १ मार्च १८८३ ईस्वी को कलकत्ता-विश्व-विद्यालय के ग्रेजुएटो के नाम एक पत्र लिखा, जो कि *दिल को हिला देनेवाला था।* उसमें उन्होंने ५० ऐसे आदमियो की माग की थी जो, भले, सच्चे, नि स्वार्थ, आत्म-सयमी, नैतिक साहस रखनेवाले और दूसरो का हित करने की तीव्र भावना रखनेवाले हो। "यदि सिर्फ ५० भले और सच्चे आदमी सस्थापक के रूप में मिल जायें तो सभा स्थापित हो सकती है और आगे का काम आसान हो सकता है।" और इन लोगो के सामने आदर्श क्या पेश किया गया? यह कि—"सभा का विधान प्रजासत्तात्मक हो, सभा के लोग व्यक्तिगत महत्त्वाकाक्षा से परे हो, और उनका यह सिद्धान्त-वचन

हो, कि जो तुममें सबसे बडा है उसीको तुम्हारा सेवक होने दो।" पत्र में उन्होंने गोल-मोल बातें नही की, बल्कि साफ शब्दो में कह दिया, कि "यदि आप अपना सुख चैन नही छोड सकते तो कम से कम फिलहाल हमारी प्रगति की सारी आशा व्यर्थ है, और यह कहना होगा कि हिन्दुस्तान सचमुच मौजूदा सरकार से बेहतर शासन न तो चाहता है और न उसके योग्य ही है।"

इस स्मरणीय पत्र का अतिम भाग इस प्रकार है —

"और यदि देश के विचारशील नेता भी या तो सब-के-सब ऐसे निर्बल जीव हैं, या अपनी स्वार्थ-साधना में ही इतने निमग्न हैं कि अपने देश के लिए कोई साहस-पूर्ण कार्य नही कर सकते, तब कहना होगा कि वे सही और वाजिब तौरपर ही दबाकर रक्खे और पद-दलित किये गये हैं, क्योकि वे इससे ज्यादा अच्छे व्यवहार के योग्य ही नही थे। प्रत्येक राष्ट्र ठीक-ठीक वैसी ही सरकार प्राप्त कर लेता है जिसके कि योग्य वह होता है। यदि आप, जो देश के चुनीदा लोग है, जो बहुत ही उच्च शिक्षा-प्राप्त हैं, अपने सुख-चैन और स्वार्थ-पूर्ण उद्देशो को नही छोड सकते और अधिकाधिक स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए लडने का निश्चय नही कर सकते, जिससे कि आपके देशवासियो को अधिक निष्पक्ष शासन का लाभ हो, वे अपने घर का प्रबन्ध करने में अधिकाधिक हिस्सा लें, तब मानना होगा कि हम, जोकि आपके मित्र है, गलती पर है, और जो हमारे विरोधी है उनका कहना ही सही है, तब मानना होगा कि लॉर्ड रिपन की आपके हित के सम्बन्ध में जो उच्च आकाक्षायें है, वे निष्फल होंगी और वे हवाई ठहरेंगी, तब कहना होगा कि प्रगति की तमाम आशायें अब नष्ट समझनी चाहिए और हिन्दुस्तान सचमुच उसकी मौजूदा सरकार से बेहतर शासन प्राप्त करना न तो चाहता है और न उसके योग्य ही है। और यदि यही बात सच है तो फिर न तो आपको इस बात पर मुह ही बनाना चाहिए, न शिकायत ही करनी चाहिए, कि हम जजीरो में जकड दिए गए हैं और हमारे साथ बच्चे-कासा व्यवहार किया जाता है, और न आपको इसके विरोध में कोई दल ही खडा करना चाहिए, क्योकि आप अपनेको इसी लायक साबित करेंगे। जो मनुष्य होते है वे जानते है कि काम कैसे करना चाहिए, इसलिए अब से आप इस बात की शिकायत न कीजिएगा कि बडे-बडे ओहदो पर आपकी बनिस्बत अग्रेजो को क्यो तरजीह दी जाती है, क्योकि आपमें वह सार्वजनिक सेवा का भाव नही है, वह उच्च प्रकार की परोपकार-भावना नही है, जो सार्वजनिक हित के सामने व्यक्तिगत ऐशो-आराम को छोटा बना देती है, वह देशभक्ति का भाव नही है जिसने कि अग्रेजो को वैसा बना दिया है जैसे कि वे आज है। और मैं कहूँगा कि वे ठीक ही आपकी जगह

तरजीह पाते हैं और उनका लाजिमी तौर पर आपका शासक बन जाना भी ठीक है, बल्कि वे आगे भी आपके अफसर बने रहेंगे, और आपके कन्धो पर रक्खा यह जुआ तबतक दुखदायी न होगा जबतक कि आप इस चिर-सत्य को अनुभव नही कर लेते और इसके अनुसार चलने की तैयारी नही कर लेते कि आत्म-बलिदान और नि स्वार्थता ही सुख और स्वातंत्र्य के अचूक पथ-प्रदर्शक हैं।"

पहले के महान व्यक्ति और सस्थाएँ

काग्रेस के जन्म से सम्बन्ध रखनेवाली तफसीली बातो का बयान करने के पहले, यदि हम काग्रेस-काल के पहले के उन बडे-बूढे लोगो का नाम-स्मरण कर लें तो अनुचित नही होगा, जिनके क्रिया-कलाप ने एक तरह से इस देश में सार्वजनिक जीवन की बुनियाद डाली है।

सबसे पहले बगाल के ब्रिटिश इण्डियन एसोसिएशन का नाम आता है। १८५१ में उसकी स्थापना की गई थी और यह वह सस्था है जिसके नाम की छाया में डॉ० राजेन्द्रलाल मित्र और रामगोपाल घोप जैसे व्यक्ति बीसो साल तक काम करते रहे। यह एसोसिएशन खुद भी कोई पचास साल तक देश में एक सजीव शक्ति बना रहा। बम्बई में सार्वजनिक कार्य की सस्था थी बाम्बे एसोसियेशन। बगाल के एसोसिएशन के मुकाबले में वह थोडे समय रहा, परन्तु कार्य उसने भी उसी तरह जोर-शोर से किया। उसके नेता थे—सर मगलदास नाथूभाई और श्री नौरोजी फर्दूनजी। स्वर्गीय दादाभाई नौरोजी और जगन्नाथ शकर सेठ ने उसकी स्थापना की थी, परन्तु बाद में पिछली शताब्दी के अन्तिम चरण में ईस्ट-इण्डिया एसोसिएशन ने उसका स्थान ग्रहण कर लिया था। मदरास में सार्वजनिक सेवा की वास्तविक शुरुआत 'हिन्दू' के द्वारा हुई, जिसके कि सस्थापको में एम० वीर राघवाचार्य, माननीय रगैया नायडू, जी० सुब्रह्मण्य ऐयर और एन० सुब्बाराव पन्तुलु जैसे गण्य-मान्य पुरुष थे। महाराष्ट्र में पूना की सार्वजनिक सभा का जन्म प्राय उसी समय हुआ जब कि 'हिन्दू' का हुआ था और उसके द्वारा रावबहादुर नुल्कर और श्री चिपलूणकर जैसे प्रसिद्ध पुरुष सार्वजनिक कार्य करते रहे।

बगाल में, १८७६ में, इण्डियन एसोसिएशन की स्थापना हुई, जिसके जीवन-प्राण सुरेन्द्रनाथ बनर्जी थे और जिसके पहले मत्री थे आनन्दमोहन वसु। यह ध्यान में रखना होगा कि इस काग्रेस-पूर्व-काल में भी यद्यपि सार्वजनिक जीवन सुसगठित नही हो पाया था तथापि उसका असर अधिकारियो पर होने लगा था। हा, अखबार इस जीवन का एक जोरदार हिस्सा था। १८५७ में कोई ४७५ अखबार थे, जिनमें

से अधिकांश प्रान्तीय भाषाओं में निकलते थे। इन्ही दिनो देश के सुदैव से सुरेन्द्रनाथ बनर्जी सिविल सर्विस से मुक्त हो चुके थे। उन्होने उत्तरी भारत के पंजाब और युक्त-प्रान्त में राजनैतिक यात्रा की। वह १८७७ के प्रसिद्ध दिल्ली दरबार में भी सम्मिलित हुए थे और वहा देश के राजा-महाराजाओ और अग्रगण्य लोगो से मिले थे। यह माना जाता है कि उसी दरबार में देश के राजा-महाराजाओ और गण्य-मान्य लोगो को एक जगह एकत्र देखकर ही पहले-पहल सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के मन में यह प्रेरणा उठी कि एक देश-व्यापी राजनैतिक सगठन बनाया जाय। १८७८ में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने बम्बई और मदरास प्रान्त की यात्रा की, जिसका उद्देश यह था कि लॉर्ड सेल्सबरी ने सिविल सर्विस की परीक्षा की उम्र घटाकर जो १९ साल की कर दी थी उसके खिलाफ लोकमत जाग्रत किया जाय और इस विषय पर कामन-सभा में पेश करने के लिए सारे देश की तरफ से एक मेमोरियल तैयार किया जाय।

लॉर्ड रिपन की सहानुभूति

इसी समय लॉर्ड लिटन के प्रतिगामी शासन की शुरुआत होती है। उनके जमाने में (१८७८) वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट बना, अफगान-युद्ध हुआ, बड़ा खर्चीला दरबार किया गया और १८७७ में ही कपास-आयात-कर उठा दिया गया। लॉर्ड लिटन के बाद लॉर्ड रिपन का दौर हुआ, जिन्होने अफगानिस्तान के अमीर के साथ सुलह करके, वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट को रद करके, स्थानिक स्वराज्य का आरम्भ करके और इलबर्ट बिल को उपस्थित करके एक नये युग का श्रीगणेश किया। यह आखिरी बिल भारत-सरकार के तत्कालीन लॉ मेम्बर मि० इलबर्ट ने १८८३ में उपस्थित किया था, जिसका उद्देश यह था कि हिन्दुस्तानी मजिस्ट्रेटो पर से यह रुकावट उठा ली जाय जिसके द्वारा वे यूरोपियन और अमेरिकन अपराधियो के मुकदमे फैसल नही कर सकते थे। इस पर गोरे लोग इतने बिगड़े कि कुछ लोगो ने तो गवर्नमेन्ट-हाउस के मन्त्रियो को मिलाकर वाइसराय को जहाज पर बिठाकर इगलैंड भेजने की एक साजिश ही कर डाली। इस साजिश में कलकत्ते के कई लोगो का हाथ था, जिन्होने यह सकल्प कर लिया था कि यदि सरकार ने इस बिल को आगे बढाया तो वे इस साजिश को कामयाब बना कर छोड़ेंगे। नतीजा यह हुआ कि असली बिल उसी साल करीब-करीब हटा लिया गया और उसकी जगह यह सिद्धान्त-भर मान लिया गया कि सिर्फ जिला-मजिस्ट्रेट और दौरा-जज को ही ऐसा अधिकार रहेगा। जब लॉर्ड रिपन भारत से विदा हुए तो देश के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक के लोगो ने उन्हें हार्दिक

विदाई दी। अग्रेजो के लिए वह एक ईर्ष्या का विषय हो गई थी, किन्तु उससे बहुतेरे लोगो की आखें भी खुल गई थी।

राजनीतिक संस्थाएँ

इस बिल के सम्बन्ध में गोरे लोगो को जो सफलता मिल गई, उससे हिन्दुस्तानी जाग उठे और उन्होने बहुत जल्दी इस बिल के विरोध का आन्तरिक हेतु पहचान लिया। गोरे यह मनवाना चाहते थे कि हिन्दुस्तान पर गोरी जातियो का प्रभुत्व है और वह सदा रहेगा। इसने भारत के तत्कालीन देश-सेवको को सगठन के महत्त्व का पाठ पढाया और उन्होने तुरन्त ही १८८३ में कलकत्ता के अलवर्ट-हॉल में एक राजनैतिक परिषद् की आयोजना की, जिसमें सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और आनन्दमोहन वसु दोनों उपस्थित थे। इस सभा में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने अपने आरम्भिक भाषण में खास तौरपर इस बात का जिक्र किया कि किस तरह दिल्ली दरबार ने उनके सामने एक राजनैतिक सस्था, जो कि भारत के हित-साधन में तत्पर रहे, बनाने का नमूना पेश किया था। इस विषय में बाबू अम्बिकाचरण मुजुमदार ने अपनी 'दी इण्डियन नेशनल इवाल्युशन' नामक पुस्तक में इस तरह लिखा है—"परिषद् का दृश्य अद्वितीय था। मेरी आखो के सामने उस समय के तीनो दिन के उत्साह और लगन का हूबहू चित्र आज भी खडा है। जब परिषद् खतम होने लगी तो मानो हरेक आदमी को, जो उसमें मौजूद था, एक नई रोशनी और एक अद्भुत स्फूर्ति प्राप्त हो रही थी।" इसके दूसरे ही वर्ष कलकत्ते में अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् हुई जिससे कि, पादरी जान मुर्डॉक साहब का मत है, अखिल-भारतीय काग्रेस स्थापित करने की प्रेरणा मिली। १८८१ में मदरास-महाजन-सभा की स्थापना हुई और मदरास में प्रान्तीय परिषद् का अधिवेशन हुआ। पश्चिमी भारत में ३१ जनवरी १८८५ को महता, तैलग और तैयबजी की मशहूर मंडली ने मिलकर बाम्बे प्रेसीडेन्सी एसोसियेशन कायम किया।

पूर्वोक्त वर्णन से यह स्पष्ट मालूम होता है कि भारतवर्ष मन-ही-मन किसी अखिल-भारतीय सगठन की आवश्यकता का अनुभव करता था। यह तो अभी तक एक रहस्य ही है कि अखिल-भारतीय काग्रेस की कल्पना वास्तव में किसके मस्तिष्क से निकली। १८७७ के दरबार या कलकत्ते की अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी के अलावा थियोसोफिकल कन्वेन्शन का भी नाम इस विषय में लिया जाता है, जो कि दिसम्बर १८८४ में मदरास में हुआ था। वहा १७ आदमियो की एक खानगी सभा हुई, जिसमें यह कल्पना सोची गई। मि० एलेन ऑक्टेवियन ह्यूम ने सिविल सर्विस से अवसर प्राप्त

करन के बाद जो इण्डियन यूनियन कायम की थी वह भी काग्रेस के जन्म का एक निमित्त बतलाई जाती है। खैर, कोई भी इस कल्पना का मूल उत्पादक हो और कही से यह पैदा हुई हो, हम इन नतीजो पर जरूर पहुँचते है कि यह कल्पना वातावरण में घूम अवश्य रही थी और ऐसे सगठन की आवश्यकता महसूस की जा रही थी। मि० ए० ओ० ह्यूम ने इसमें सबसे पहले कदम बढाया और २३ मार्च १८८५ में इसके सम्बन्ध में पहला नोटिस जारी किया गया, जिसमें बताया गया था कि अगले दिसम्बर में, पूना में इण्डियन नेशनल यूनियन का पहला अधिवेशन किया जायगा। इस तरह अबतक जो एक अस्पष्ट कल्पना वातावरण में पख फटफटा रही थी और जो उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम, सभी जगह के विचारशील भारतवासियो के विचारो को गति दे रही थी उसने अब एक निश्चित स्वरूप ग्रहण कर लिया और एक व्यावहारिक कार्यक्रम के रूप में देश के सामने आ गई।

राष्ट्रीय स्वरूप

काग्रेस के जन्म का कारण केवल ये राजनैतिक शक्तिया और राजनैतिक गुलामी का भाव ही नही है। इसमें कोई शक नही कि काग्रेस का एक राजनैतिक उद्देश था, परन्तु साथ ही वह राष्ट्रीय पुनरुत्थान के आन्दोलन का प्रतिपादन करनेवाली सस्था भी थी।

राजा राममोहन राय

काग्रेस के जन्म से पहले, ५० या इससे भी ज्यादा वर्ष से, भारत में राष्ट्रीय नव-यौवन का समीर उठ रहा था। सच पूछिए तो राष्ट्रीय जीवन यो ठेठ राजा राममोहन राय के काल से लेकर विविध रूपो में परिपक्व हो रहा था। राजा राममोहन राय को हम एक तरह से भारत की राष्ट्रीयता के पैगम्बर और आधुनिक भारत के पिता कह सकते है। उनका दर्शन बडा विस्तृत और दृष्टि-बिन्दु व्यापक था। यह सच है कि उनके समय में भारत की जो सामाजिक और धार्मिक अवस्था थी, वही उनके सुधार-कार्यों का मुख्य विषय बनी हुई थी, परन्तु उनके देश-वासियो पर जो भारी राजनैतिक अन्याय हो रहे थे और जिनसे देश दु खी हो रहा था, उनका भी उन्हें पूरा भान था और उन्होने उनको शीघ्र मिटाने के लिए भगीरथ प्रयत्न भी किया था। राममोहन राय का जन्म १७७६ में हुआ और मृत्यु ब्रिस्टल में १८३३ में। भारत के दो बडे सुधारो के साथ उनका नाम जुडा हुआ है—एक तो सती या सहगमन-प्रथा का मिटाया जाना,

और दूसरा भारत में पश्चिमी शिक्षा का प्रचार। लॉर्ड विलियम बेन्टिक ने, १८३५ में, पश्चिमी शिक्षा-प्रचार के पक्ष में जो निर्णय कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स की सिफारिश के खिलाफ दिया, उसका बहुत बड़ा कारण यह था कि राजा राममोहन राय खुद पश्चिमी शिक्षा-दीक्षा के अनुरागी और पक्षपाती थे एवं तत्कालीन लोकमत पर उनका बड़ा प्रभाव था। अपने जीवन के अन्तिम समय में वह इग्लैंड गये थे। उनमें स्वाधीनता-प्रेम इतना प्रबल था कि जब वह 'केप ऑफ गुडहोप' को पहुँचे तो उन्होंने फ्रांसीसी जहाज पर जाने का आग्रह किया जिसपर कि स्वाधीनता का झण्डा फहरा रहा था। वह चाहते थे कि उस झण्डे का अभिवादन करें और ज्यो ही उन्हें उन झण्डे के दर्शन हुए उनके मुह से झण्डे की जय-ध्वनि निकल पडी। हालाकि वह इग्लैंड में मुख्यतः मुगल-सम्राट् के राज-दूत बनकर लन्दन में उनका काम करने गये थे, तो भी उन्होने कामन-सभा की कमिटी के सामने भारतवासियो के कुछ जरूरी कष्ट भी पेश किये। उन्होंने वहा तीन निबन्ध उपस्थित किये थे—पहला भारत की राजस्व-पद्धति पर, दूसरा न्याय-शासन पर, और तीसरा भारत की भौतिक अवस्था के सम्बन्ध में। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भी उनको एक सार्वजनिक भोज देकर सम्मानित किया था। १८३२ में जब कि चार्टर एक्ट पार्लमेण्ट में पेश था, उन्होने यह प्रण किया था कि यदि यह बिल पास न हुआ तो मै ब्रिटिश प्रदेश में रहना छोड दूगा और अमरीका जाकर बस जाऊँगा। अपने समय में ही उन्होंने अखबारो पर और छापेखानो पर हुआ बहुत बुरा दमन देख लिया था। "लॉर्ड हेस्टिंग्स ने भारतीय पत्र-व्यवसाय के लिए पिछले समय की कडी रुकावटो को कम करके जिन शुभ दिनो की शुरुआत की थी वे, १८२३ में सिविल सर्विस के एक सदस्य के थोडे समय के लिए गवर्नर-जनरल हो जाने से, कुहिरे और बादलो से ढकने लगे थे।" फल यह हुआ कि मि० बकिंघम नामक कलकत्ते के एक अखबार के सम्पादक दो महीने की नोटिस देकर हिन्दुस्तान से निकाल दिये गये और उनका सहायक भी गिरफ्तार करके इग्लैंड जाने वाले जहाज पर बिठा दिया गया। यह सब सिर्फ इसलिए कि उन्होंने प्रचलित शासन की कुछ आलोचना कर दी थी। १४ मार्च १८२३ को एक प्रेस आर्डिनेंन्स पास किया गया, जिसके अनुसार हिन्दुस्तानी और गोरे दोनो अखबारो पर जबरदस्त सेंसर बिठा दिया गया और पत्र के प्रकाशको और मालिको के लिए गवर्नर-जनरल से लाइसेन्स लेना लाजिमी कर दिया गया। आर्डिनेन्स, तत्कालीन कानून के अनुसार, बिल के प्रकाशित होने के २० दिन बाद सुप्रीम कोर्ट में पास करा लिया गया था।

राजा राममोहन राय ने सुप्रीम कोर्ट में इसका घोर विरोध किया। उन्होने

दो वकील अपनी तरफ से उसमें खड़े किये थे और जब वहाँ कामयाबी न हुई तो इंग्लैंड के बादशाह के नाम एक सार्वजनिक दरख्वास्त भेजी। परन्तु उससे भी कुछ मतलब न निकला। लेकिन इस समय जो बीज वह बो चुके थे उनका फल १८३५ में निकला, जब कि सर चार्ल्स मेटकॉफ ने फिर से हिन्दुस्तानी पत्रो को आजाद करा दिया। जिन दिनो वह इंग्लैंड थे उन्ही दिनो सती-प्रथा के उठाये जाने के खिलाफ की गई अपील को और चार्टर एक्ट को पास होते हुए देखने का अवसर उन्हे मिल गया था।

अब गदर को लीजिए। यह लॉर्ड डलहौजी की नीति का परिणाम था। उन्हो-ने किसी राजा की विधवाओ को गोद लेने से मना कर दिया था और उनकी रियासत जब्त कर ली गई थी। यह तो सबको पता ही है कि गदर दबा दिया गया। उसके बाद १८५८ में, विश्व-विद्यालय कायम हुए और १८६१ से १८६३ तक हाईकोर्ट और कौंसिलें भारत में बनाई गई। गदर के कुछ पहले ही विधवा-विवाह-कानून बना था, जो कि समाज-सुधार की दिशा में एक कदम था। उसके बाद १८६० से १८७० तक पश्चिमी शिक्षा और साहित्य का सम्पर्क बढता गया। पश्चिमी कानून-संस्थायें और पार्लमेण्टरी तरीके दाखिल हुए, जिससे कानून और कौन्सिलो के क्षेत्र में एक नये युग का जन्म हुआ। इधर पश्चिमी सभ्यता का संसर्ग भारत के लोगो के विश्वासो और भावनाओं पर गहरा असर डाले बिना नही रह सकता था। राममोहन राय के जमाने में धार्मिक सुधार के जो बीज बोये गये थे वे थोडे ही समय मे अपनी शाखा-प्रशाखायें फैलाने लगे। राममोहन राय के बाद केशवचन्द्र सेन पर उनके काम की जिम्मेवारी आ पडी। उन्होने दूर-दूर तक ब्रह्म-समाज के सिद्धान्तो का प्रचार किया और उसके मतो पर नवीन प्रकाश डाला। उन्होने मद्यपान-निषेध के आन्दोलन को हाथ में लिया और इंग्लैंड के मद्यपान-निषेधको के साथ मिलकर काम करने लगे। १८७२ के 'ब्रह्म मेरेज एक्ट—३' को पास कराने में उनका बहुत हाथ था, जिसके अनुसार उन लोगो को जो ईसाई नही थे अन्तर्जातीय विवाह करने की सुविधा हो जाती थी।

आर्य समाज व प्रार्थना समाज

बंगाल के ब्रह्मसमाज का प्रतिघात सारे भारत मे हुआ। पूना में प्रार्थना-समाज के नाम से महादेव गोविन्द रानडे के नेतृत्व में यह आन्दोलन शुरू हुआ। यही रानडे समाज-सुधार आन्दोलन के जनक थे, जो वर्षो तक कांग्रेस का एक आनुषंगिक अंग बनकर चलता रहा। इस सुधार-आन्दोलन में भूतकाल के प्रति एक प्रकार की श्रद्धा और प्राचीन परम्पराओ और विषयो के प्रति बगावत के भाव भरे हुए थे और इसका

कारण था पश्चिमी सस्थाओ का जादू एव उनके साथ चिपकी हुई राजनैतिक प्रतिष्ठा। अब इसकी यह स्वाभाविक प्रतिक्रिया होनी थी—सुधार कार्य होना था, क्योकि इन सुधार-आन्दोलनो के कारण देश में राष्ट्रीयता-विघातक भावनायें फैलने लगी थी। उत्तर-पश्चिम में आर्यसमाज और मदरास में थियोसोफिकल आन्दोलनो ने इस आवश्यक सुधार का कार्य किया तथा अपने धर्म, आदर्श और सस्कृति से दूर ले जाने वाली स्पिरिट को, जो कि पश्चिमी शिक्षा के कारण पैदा हुई थी, दवा दिया। यो तो ये दोनो आन्दोलन उत्कट-रूप मे राष्ट्रीय थे, फिर भी आर्यसमाज में देशभक्ति के भाव बहुत प्रवल थे। आर्यसमाज वेदो की अपौरुषेयता और वैदिक सस्कृति की श्रेष्ठता का जबरदस्त हामी होते हुए भी उदार सामाजिक सुधार का विरोधी न था। इस प्रकार राष्ट्र में एक तेजस्वी मनुष्यत्व का विकास हुआ, जो कि हमारी पूर्व-परम्परा और आधुनिक वातावरण दोनो के श्रेष्ठत्व का सामजस्य था। जिस तरह कि ब्रह्म-समाज ने बहुदेव-वाद, मूर्ति-पूजा और बहुविवाह के विरुद्ध लडाई लडी, उसी तरह आर्यसमाज ने भी हिन्दू-समाज की कुछ प्रचलित बुराइयो और हिन्दुओ के धार्मिक अन्ध-विश्वासो से लडाई ठानी। यहा भी, जैसा कि भय था, आर्यसमाज में दो दल खडे हुए—एक गुरुकुल-पन्थी और दूसरा कालेज-पन्थी। गुरुकुल-पन्थी ब्रह्मचर्य और धार्मिक सेवा के वैदिक आदर्शों को मानते थे, और वे जो आधुनिक ढग की शिक्षा-सस्थाओ के द्वारा एक हद तक आधुनिक पश्चिमी सभ्यता का सचार करके समाज में नवजीवन डालना चाहते थे, कालेज-पन्थी कहलाये। एक के प्रवर्तक थे अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्दजी, और दूसरे के थे देश-वीर लाला लाजपतराय। थियोसोफिकल आन्दोलन में यद्यपि विश्वव्यापी सहानुभूति और अध्ययन की विशेषता थी, तो भी पूर्वीय सस्कृति में जो कुछ महान् और गौरव-मय है उसके आविष्करण और पुनरुज्जीवन पर उसमें खास जोर दिया जाता था। इसी प्रबल भावना को लेकर श्रीमती बेसेण्ट ने भारत के पुण्य-धाम काशी में एक कालेज शुरू किया। इस तरह थियोसोफिकल प्रवृत्तियो के द्वारा एक ओर जहा विश्व-बन्धुत्व की भावना बढने लगी तहा दूसरी ओर पश्चिम के बुद्धिवाद की श्रेष्ठता का दौरदौरा कम हुआ और उसकी जगह सस्कृति का एक नया केंद्र स्थापित हुआ, जहा कि फिर से इस प्राचीन भूमि में पश्चिमी देशो के विद्वज्जन खिच-खिच कर आने लगे।

राष्ट्रीय पुनरुत्थान का अन्तिम स्वरूप जो कि काग्रेस की स्थापना के पहले भारतवर्ष में दिखाई दिया, वह है बगाल के श्री रामकृष्ण परमहस का युग। स्वामी विवेकानन्द इनके पट्ट-शिष्य थे, जिन्होने इनके उपदेशो का प्रचार पूर्व और पश्चिम

दोनो जगह किया। रामकृष्ण-मिशन न तो कोरे योगसाधको की और न केवल भौतिक-वादियो की सस्था है, वल्कि एक ऐसा आध्यात्मिक आदर्श रखनेवाली सस्था है जो कि लोकसग्रह या समाज-सेवा के महान् कर्तव्य की उपेक्षा नही करती। उसने ससार के विभिन्न राष्ट्रो के सामने उपस्थित सामाजिक और राजनैतिक प्रश्नो को सुलझाने के लिए कुजी का भी काम दिया है। ये तमाम हलचलें, सच पूछिए तो, भारत की राष्ट्री-यता के इस धागे में लगे भिन्न-भिन्न सूतो के समान है, और भारत का यह कर्तव्य था कि इनमें से एकसा सामजस्य पैदा करे जिससे कि पूर्व-दूषित विचार और अन्ध-विश्वास दूर होकर प्राचीन वेदान्त-मत की सशुद्धि हो, वह नवीन तेज से लहलहा उठे और नवीन युग के राष्ट्रधर्म से उसका मेल बैठ सके। काग्रेस का जन्म इसी महान् कार्य की पूर्ति के लिए हुआ था। अपने ५० वर्ष के पिछले जीवन मे वह इसमें कहा तक सफल हुई है, इसका विचार हम आगे करेंगे।

पहला अधिवेशन

जिन स्थितियो में काग्रेस की स्थापना हुई उनका वर्णन ऊपर हो चुका है। मि० ह्यूम का खयाल शुरू-शुरू में यह था कि कलकत्ते के इण्डियन एसोसिएशन, बम्बई के प्रेसिडेन्सी एसोसियेशन और मदरास के महाजन-सभा जैसी प्रान्तीय सस्थायें राजनैतिक प्रश्नो को हाथ में लें और आल इण्डिया नेशनल यूनियन बहुत-कुछ सामा-जिक प्रश्नो में ही हाथ डालें। उन्होने लॉर्ड डफरिन से इस विषय में सलाह ली, जो कि हाल ही में वाइसराय बन कर आये थे। उन्होने जो सलाह दी वह उमेशचन्द्र बनर्जी के शब्दो में इस प्रकार है,—

"बहुतो को यह एक नई बात मालूम होगी कि काग्रेस का जन्म जिस तरह हुआ और जिस तरह वह तब से अबतक चलाई जा रही है, वह वास्तव में लॉर्ड डफ-रिन का काम था, जब कि वह भारतवर्ष के वाइसराय होकर यहा आये थे। १८८४ में मि० ह्यूम के दिमाग में यह खयाल आया कि यदि भारत के प्रधान-प्रधान राज-नीतिज्ञ पुरुष साल में एक बार एकत्र होकर सामाजिक विषयो पर चर्चा कर लिया करें और एक-दूसरे से मित्रता का सम्बन्ध स्थापित कर लें तो इससे बडा लाभ होगा। वह यह नही चाहते थे कि उनकी चर्चा का विषय राजनीति रहे, क्योकि बम्बई, मदरास, कलकत्ता और अन्य भागो में राजनैतिक मण्डल थे ही, और उन्होने यह सोचा कि यदि देश के भिन्न-भिन्न भागो के राजनीतिज्ञ जमा होकर राजनैतिक विषयो पर चर्चा करने लगेंगे तो इससे उन प्रान्तीय सस्थाओ का महत्त्व कम हो जायगा।

वह यह भी चाहते थे कि जिस प्रान्त में यह सभा हो वहा का गवर्नर उसका सभापति हो, जिससे कि सरकारी और गैरसरकारी राजनीतिज्ञो में अच्छे सम्बन्ध स्थापित हो। इन खयालो को लेकर वह १८८५ में लॉर्ड डफरिन से शिमला में मिले। लॉर्ड डफरिन ने उनकी वातो को ध्यान से और दिलचस्पी से सुना और कुछ समय के बाद मि० ह्यूम से कहा कि मेरी समझ मे यह तजवीज, कि गवर्नर सभापति बने, उपयोगी न होगी क्योकि इस देश में ऐसा कोई सार्वजनिक मण्डल नही है जो इंग्लैण्ड की तरह यहा सरकार के विरोध का काम करे—हालाकि यहा अखवार है और वे लोकमत को प्रदर्शित भी करते है, फिर भी उनपर आधार नही रक्खा जा सकता, और अंग्रेज जो है, वे जानते ही नही कि लोग उनके और उनकी नीति के बारे में क्या खयाल करते है। इसलिए ऐसी दशा मे यह अच्छा होगा और इसमें शासक और शासित दोनो का हित है, कि यहा के राजनीतिज्ञ प्रति वर्ष अपना सम्मेलन किया करें और सरकार को बताया करें कि शासन में क्या-क्या त्रुटिया है और उसमें क्या-क्या सुधार किये जायें। उन्होने यह भी कहा कि ऐसे सम्मेलन का सभापति स्थानीय गवर्नर न होना चाहिए, क्योकि उसके सामने सम्भव है, लोग अपने सही खयालात जाहिर न करें। मि० ह्यूम को लॉर्ड डफरिन की यह दलील जँची और जब उन्होने कलकत्ता, बम्बई, मदरास और दूसरी जगहो के राजनीतिज्ञो के सामने उसे रक्खा तो उन्होंने भी लॉर्ड डफरिन की सलाह को एक स्वर से पसन्द कर लिया तथा उसके मुताविक कार्रवाई भी शुरु कर दी। लॉर्ड डफरिन ने मि० ह्यूम से यह शर्त करा ली थी कि जबतक मैं इस देश में हूँ तबतक इस सलाह के बारे में मेरा नाम कही न लिया जाय। मि० ह्यूम ने इसका पूरी तरह पालन भी किया।"

मार्च १८८५ में यह तय हुआ कि बडे दिनो की छुट्टियो में देश के सब भागो के प्रतिनिधियो की एक सभा की जाय। पूना इसके लिए सबसे उपयुक्त जगह समझी गई। इस बैठक के लिए एक गश्ती पत्र जारी किया गया, जिसका मुख्य अंश नीचे दिया जाता है —

"२५ से ३१ दिसम्बर १८८५ तक पूना में इण्डियन नेशनल यूनियन की एक परिषद् की जायगी। इसमें बगाल, बम्बई और मदरास प्रदेशो के अगरेजीदाँ प्रतिनिधि, अर्थात् राजनीतिज्ञ, सम्मिलित होगे।

"इस परिषद् के प्रत्यक्ष उद्देश्य यह होगे—(१) राष्ट्र की प्रगति के कार्य में जी-जान से लगे हुए लोगो का एक-दूसरे से परिचय हो जाना और (२) इस वर्ष में कौन-कौन से राजनैतिक कार्य अंगीकार किये जायँ इसकी चर्चा करके निर्णय करना।

“[illegible] पार्लमेंट का [illegible] बीजरूप बनेगी और यदि [illegible] में इस आक्षेप का [illegible] शासन-व्यवस्था के बिलकुल [illegible]। [illegible] इसकी बैठक पूना में की जाय या [illegible] भाषा में की जाय। [illegible], मदरास और बंगाल से कोई बीस-[illegible] और पंजाब से।”

इस [illegible] सुविधा [illegible] साहब [illegible], जॉन ब्राइट, मि० [illegible], मि० [illegible] और दूसरे [illegible] लिया। उनकी सलाह से उन्होंने [illegible]। [illegible] इंग्लैंड में इण्डियन पार्लमेंटरी कमिटी के [illegible] हो गया [illegible] इंग्लैंड की पार्लमेंट के उम्मीदवारों ने यह [illegible] कि [illegible] हिन्दुस्तान के मामलों में दिलचस्पी लेंगे। उन्होंने वहां एक इण्डियन टेलीग्राफ एजेन्सी बनाई, जिसका उद्देश्य था इंग्लैंड के प्रधान-प्रधान प्रान्तीय पत्रों को [illegible] करना।

इस [illegible] अधिवेशन का [illegible] वर्णन अपनी 'हाउ इण्डिया रॉट फॉर फ्रीडम' नामक पुस्तक में श्रीमती बेसेन्ट ने किया है, जिसमें नीचे लिखा अंश यहां उद्धृत किया जाता है :—

“लेकिन पहला अधिवेशन पूना में नहीं हुआ, क्योंकि बड़े दिन के पहले ही वहां हैजा शुरू हो गया और यह ठीक समझा गया कि परिषद्, जिसे अब कांग्रेस कहते हैं, बम्बई में की जाय। गोकुलदास तेजपाल संस्कृत कालेज और छात्रालय के व्यवस्थापकों ने अपने विशाल भवन कांग्रेस के हवाले कर दिये और २७ दिसम्बर की सुबह तक भारतीय राष्ट्र के प्रतिनिधियों के स्वागत करने की पूरी तैयारी हो गई। जो व्यक्ति उस समय वहां उपस्थित थे उनकी नामावली पर एक निगाह डालते हैं तो उनमें से कितने ही आगे चल कर भारत की स्वाधीनता का प्रयत्न करते हुए बहुत प्रसिद्ध हो गए थे। जो सज्जन प्रतिनिधि नहीं बन सकते थे उनमें थे सुधारक दीवान-बहादुर आर० रघुनाथराव, डिप्टी कलेक्टर, मदरास; माननीय महादेव गोविन्द रानडे, कौंसिल के सदस्य और जज स्माल कॉज कोर्ट पूना, जो आगे चल कर बम्बई-हाईकोर्ट के जज हो गये और जो एक माननीय और विश्वसनीय नेता थे; लाला बैज-नाथ, आगरा, जो बाद को एक प्रख्यात विद्वान् और लेखक प्रसिद्ध हुए; और

अध्यापक के० सुन्दर रमण और रामकृष्ण गोपाल भाडारकर। प्रतिनिधियो में नामी-नामी पत्रो के सम्पादक थे, जैसे—'ज्ञान-प्रकाश' जो कि पूना सार्वजनिक-सभा का त्रैमासिक पत्र था, 'मराठा-केसरी'; 'नव-विभाकर', 'इण्डियन-मिरर', 'नसीम', 'हिन्दुस्तानी', 'ट्रिब्यून', 'इण्डियन-यूनियन', 'स्पेक्टेटर', 'इन्दु-प्रकाश', 'हिन्दू', 'क्रेसेंट'। इनके अलावा नीचे लिखे माननीय और परिचित सज्जनो के नाम भी चमक रहे थे—ह्यूम साहब, शिमला, उमेशचन्द्र बनर्जी और नरेन्द्रनाथ सेन, कलकत्ता, वामन सदाशिव आपटे और गोपाल गणेश आगरकर, पूना; गगाप्रसाद वर्मा, लखनऊ, दादाभाई नौरोजी, काशीनाथ त्र्यम्बक तैलग, फिरोजशाह मेहता, बम्बई कारपोरेशन के नेता, दीनशा एदलजी वाचा, बहराम जी मलाबारी, नारायण गणेश चन्दावरकर, बम्बई, पी० रगैया नायडू, प्रेसिडेण्ट महाजन-सभा, एस० सुब्रह्मण्य ऐयर, पी० आनन्दा चार्लू, जी० सुब्रह्मण्य ऐयर, एम० वीर राघवाचार्य, मदरास, पी० केशव पिल्ले, अनन्तपुर। इनमें वे लोग भी थे जो भारत की आजादी के लिए खप चुके, और वे भी थे जो अब भी कायम है और उसके लिए यत्नशील है।

"२८ दिसम्बर १८८५ को दिन के १२ बजे गोकुलदास तेजपाल सस्कृत कालेज के भवन में काग्रेस का पहला अधिवेशन हुआ। पहली आवाज सुनाई पडी ह्यूम साहब की, माननीय एस० सुब्रह्मण्य ऐयर की और माननीय काशीनाथ त्र्यबक तैलग की। ह्यूम साहब ने श्री उमेश बनर्जी के सभापतित्व का प्रस्ताव उपस्थित किया था और शेष दोनो सज्जनो ने उनका समर्थन और अनुमोदन। वह एक बडा गम्भीर और ऐतिहासिक क्षण था, जिसमें मातृभूमि के द्वारा सम्मानित अनेको व्यक्तियो में प्रथम पुरुष ने प्रथम राष्ट्रीय महासभा के अध्यक्ष का स्थान ग्रहण किया।

"काग्रेस की गुरुता की ओर प्रतिनिधियो का ध्यान दिलाते हुए अध्यक्ष महोदय ने काग्रेस का उद्देश इस तरह बतलाया —

(क) साम्राज्य के भिन्न-भिन्न भागो में देश-हित के लिए लगन से काम करने वालो की आपस में घनिष्ठता और मित्रता बढाना।

(ख) समस्त देश-प्रेमियो के अन्दर प्रत्यक्ष मैत्री-व्यवहार के द्वारा वश, धर्म और प्रान्त सम्बन्धी तमाम पूर्वदूषित सस्कारो को मिटाना और राष्ट्रीय ऐक्य की उन तमाम भावनाओ का, जो लॉर्ड रिपन के चिर-स्मरणीय शासन-काल में उद्भूत हुई, पोषण और परिवर्तन करना।

(ग) महत्त्वपूर्ण और आवश्यक सामाजिक प्रश्नो पर भारत के शिक्षित

लोगो में अच्छी तरह चर्चा होने के बाद जो परिपक्व सम्मतियाँ प्राप्त हो उनका प्रामाणिक सग्रह करना।

(घ) उन तरीको और दिशाओ का निर्णय करना जिनके द्वारा भारत के राजनीतिज्ञ देश-हित के कार्य करें।"

इस प्रथम अधिवेशन में नौ प्रस्ताव पास हुए, जिनके द्वारा भारत की मागो के बनने की शुरुआत होती है। पहले प्रस्ताव के द्वारा भारत के शासन-कार्य की जाच के लिए एक रॉयल कमीशन बैठाने की माग की गई। दूसरे के द्वारा इण्डिया कौंसिल को तोड देने की राय दी गई। तीसरे प्रस्ताव के द्वारा धारा-सभा की त्रुटिया दिखाई गईं, जिनमें अबतक नामजद सदस्य थे और उनके बजाय चुने हुए रखने की, प्रश्न पूछने का अधिकार देने की, युक्तप्रान्त और पजाब में कौंसिल कायम की जाने की और कामन-सभा में स्थायी समिति कायम करने की माग की गई—इस आशय से कि कौंसिलो में बहुमत से जो विरोध हो उनपर उसमें विचार किया जाय। चौथे के द्वारा यह प्रार्थना की गई कि आई० सी० एस० की परीक्षा इग्लैण्ड और भारत में एक साथ हो और परीक्षार्थियो की उम्र बढा दी जाय। पाचवा और छठा फौजी खर्च से सम्बन्ध रखता था और सातवें में अपर बर्मा को मिला लेने तथा भारत में उसे सम्मिलित कर लने की तजवीज का विरोध किया गया था। आठवें के द्वारा यह आदेश किया गया कि ये प्रस्ताव राजनैतिक सभाओ को भेज दिये जायें। तदनुसार सारे देश में तमाम राजनैतिक मण्डलो और सार्वजनिक सभाओ द्वारा उनपर चर्चा की गई और कुछ मामूली सशोधनो के बाद वे बडे उत्साह से पास किये गये। अन्तिम प्रस्ताव में अगले अधिवेशन का स्थान कलकत्ता और ता० २८ दिसम्बर नियत हुई।

कांग्रेस का दावा

जिस प्रकार एक बडी नदी का मूल एक छोटे-से सोते में होता है उसी प्रकार महान् सस्थाओ का आरम्भ भी बहुत मामूली होता है। जीवन की शुरुआत में वे बडी तेजी के साथ दौडती है, परन्तु ज्यो ज्यो वे व्यापक होती जाती हैं त्यो-त्यो उनकी गति मन्द किन्तु स्थिर होती जाती है। ज्यो-ज्यो वे आगे बढती हैं त्यो-त्यो उनमें सहायक नदिया मिलती जाती हैं और वे उसको अधिकाधिक सम्पन्न बनाती जाती है। यही उदाहरण हमारी काग्रेस के विकास पर भी लागू होता है। उसे अपना रास्ता बडी-बडी बाधाओ में से तय करना था, इसलिए आरम्भ में उसने अपने सामने छोटे-छोटे आदर्श रक्खे, परन्तु ज्योही उसे समस्त भारतवासियो के हार्दिक प्रेम का महारा मिला, उसने

अपना मार्ग विस्तृत कर दिया और अपने उदर में देश की अनेक सामाजिक-नैतिक हल-चलों का भी समावेश कर लिया। आरम्भिक अवस्थाओं में उसके कार्यों में एक किस्म की हिचकिचाहट और शका-कुशकायें दिखाई देती थी, परन्तु जैसे-जैसे वह बालिग होती गई तैसे-तैसे उसे अपने बल और क्षमता का ज्ञान होता गया और उसकी दृष्टि व्यापक बनती गई। अनुनय-विनय की नीति को छोडकर उसने आत्मतेज और आत्मा-वलम्बन की नीति ग्रहण की। इधर लोक-मत को शिक्षित करने के लिए जोर-शोर से प्रचार-कार्य होने लगे, जिससे देशव्यापी सगठन बन गया—यहा तक कि सीधे हमले तक का कार्य-क्रम बनाना पडा। शिकायतों और अपने दुख-दर्दों को दूर कराने के उद्देश से शुरुआत करके कांग्रेस देश की एक ऐसी मान्य सस्था के रूप में परिणत हो गई जो बडे स्वाभिमान के साथ अपनी मागें भी पेश करने लगी। हालांकि शुरुआत के दस-पाच वर्षों में शासन-सम्बन्धी मामलो में उसकी दृष्टि की एक सीमा बनी हुई थी, फिर भी शीघ्र ही वह भारतवासियो की तमाम राजनैतिक महत्त्वाकाक्षाओ की एक जबर-दस्त और सत्तापूर्ण प्रतिपादक बन गई। उसका दरवाजा सब वर्जे और सब जातियो के लोगो के लिए खोल दिया गया। यद्यपि शुरुआत में वह उन प्रश्नो को हाथ में लेती हुई सकोच करती थी जो सामाजिक कहे जाते थे, परन्तु उचित समय आते ही उसने इस बात को मानने से इन्कार कर दिया कि जीवन अलग-अलग टुकडो में बटा हुआ है। और इस प्राचीन परम्परागत विचार के आगे जाकर, जो जीवन के प्रश्नो को सामाजिक और राजनैतिक सीमाओ में बाध देता है, उसने एक ऐसा सर्वव्यापी आदर्श अपने सामने प्रस्तुत किया, जिसमें कि सारा जीवन, यहा से वहा तक, एक और अविभाज्य है। इस तरह कांग्रेस एक ऐसा राजनैतिक संगठन है, जहा न ब्रिटिश-भारत और देशी-राज्यो का भेद है, न एक प्रान्त और दूसरे प्रान्त का। उसमें न उच्च वर्ग या जनता का भेद है, न शहर और गाव का, और न गरीब-अमीर का भेद है, न किसान-मजदूर का; जात-पात और मजहबो का भेद-भाव भी उसमें नहीं है। गाधी जी ने दूसरी गोलमेज-परि-षद् के समय फेडरल स्ट्रक्चर कमिटी के सामने जो जबरदस्त वक्तृता दी थी और जिसमें उन्होंने कांग्रेस के बारे में ऐसा ही दावा किया था, उसके आवश्यक अश नीचे दे देना उचित होगा —

यदि मैं गलती नहीं करता हूँ, तो कांग्रेस भारतवर्ष की सबसे बडी सस्था है। इसकी अवस्था लगभग ५० वर्ष की है, और इस अर्से में वह बिना किसी रुकावट के बराबर अपने वार्षिक अधिवेशन करती रही है। सच्चे अर्थों में वह राष्ट्रीय है। वह किसी खास जाति, वर्ग या किसी विशेष हित की प्रतिनिधि नहीं है। वह सर्व-भारतीय

हितो और सब वर्गों की प्रतिनिधि होने का दावा करती है। मेरे लिए यह बताना सबसे बड़ी खुशी की बात है कि उसकी उपज आरम्भ में एक अंग्रेज मस्तिष्क मे हुई। एलेन ऑक्टेवियन ह्यूम को कांग्रेस के पिता के रूप में हम जानते हैं। दो महान् पारसियो ने —फिरोजशाह मेहता और दादाभाई नौरोजी ने—जिन्हें सारा भारत 'वृद्ध पितामह' कहने में प्रसन्नता अनुभव करता है, इसका पोषण किया। आरम्भ से ही कांग्रेस में मुसलमान, ईसाई, गोरे आदि शामिल थे, बल्कि मुझे यो कहना चाहिए कि इसमें सब धर्म, सम्प्रदाय और हितो का थोडी-बहुत पूर्णता के साथ प्रतिनिधित्व होता था। स्वर्गीय बदरुद्दीन तैयबजी ने अपने आपको कांग्रेस के साथ मिला दिया था। मुसलमान और पारसी भी कांग्रेस के सभापति रहे हैं। मैं इस समय कम-से-कम एक भारतीय ईसाई श्री उमेशचन्द्र बनर्जी का नाम भी ले सकता हूँ। विशुद्ध भारतीय श्री कालीचरण बनर्जी ने, जिनके परिचय का मुझे सौभाग्य प्राप्त नही हुआ, अपने को कांग्रेस के साथ एक कर दिया था। मैं, और निस्सन्देह आप भी, अपने बीच श्री के॰ टी॰ पाल का अभाव अनुभव कर रहे होंगे। यद्यपि मैं ठीक नही जानता, लेकिन जहा तक मुझे मालूम है, वह अधिकारी-रूप से कभी कांग्रेस में शामिल नही हुए, फिर भी वह पूरे राष्ट्र-वादी थे।

"जैसा कि आप जानते हैं, स्वर्गीय मौ॰ मुहम्मदअली, जिनकी उपस्थिति का भी आज यहा अभाव है, कांग्रेस के सभापति थे, और इस समय कांग्रेस की कार्य-समिति के १५ सदस्यो में ४ सदस्य मुसलमान हैं। स्त्रिया भी हमारी कांग्रेस की अध्यक्ष रह चुकी है—पहली श्रीमती एनी बेसेण्ट थी और दूसरी श्रीमती सरोजिनी नायडू, जो कार्य-समिति की सदस्य भी है, और इस प्रकार जहा हमारे यहा जाति और मजहब का भेद-भाव नही है, वहा किसी प्रकार का लिंग-भेद भी नही है।

"कांग्रेस ने अपने आरम्भ से ही अछूत कहलानेवालो के काम को अपने हाथ में ले रक्खा है। एक समय था जब कि कांग्रेस अपने प्रत्येक वार्षिक अधिवेशन के समय अपनी सहयोगी सस्था की तरह सामाजिक परिषद् का भी अधिवेशन किया करती थी, जिसे स्वर्गीय रानडे ने अपने अनेक कामो में एक काम बना लिया था और जिसे उन्होने अपनी शक्तिया समर्पित की थी। आप देखेंगे कि उनके नेतृत्व में सामाजिक परिषद् के कार्य-क्रम में अछूतो के सुधार के कार्य को एक खास स्थान दिया गया था। किन्तु सन् १९२० में कांग्रेस ने एक बडा कदम आगे उठाया और अस्पृश्यता निवारण के प्रश्न को राजनैतिक मच का एक आधार-स्तम्भ बनाकर राजनैतिक कार्य-क्रम का एक महत्त्वपूर्ण अग बना दिया। जिस प्रकार कांग्रेस हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य, और इस प्रकार सब जातियो के परस्पर ऐक्य, को स्वराज्य-प्राप्ति के लिए अनिवार्य समझती थी उसी तरह

स्वराज-प्राप्ति के लिए छुआछूत के पाप को दूर करना भी अनिवार्य समझने लगी। सन् १९२० में काग्रेस ने जो स्थिति ग्रहण की थी, वह आज भी बनी हुई है, और इस प्रकार काग्रेस ने अपने आरम्भ से ही अपने को सच्चे अर्थो में राष्ट्रीय सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। यदि महाराजागण मुझे आज्ञा देंगे तो मै यह बतलाना चाहता हूँ कि आरम्भ में ही काग्रेस ने उनकी भी सेवा की है। मै इस समिति को याद दिलाना चाहता हूँ कि वह व्यक्ति 'भारत का वृद्ध पितामह' ही था, जिसने काश्मीर और मैसूर के प्रश्न को हाथ में लेकर सफलता को पहुँचाया था और मै अत्यन्त नम्रता-पूर्वक कहना चाहता हूँ कि ये दोनो बडे घराने श्री दादाभाई नौरोजी के प्रयत्नो के लिए कम ऋणी नही हैं। अब-तक भी उनके घरेलू और आन्तरिक मामलो में हस्तक्षेप न करके काग्रेस उनकी सेवा का प्रयत्न करती रही है। मै आशा करता हूँ कि इस सक्षिप्त परिचय से, जिसका दिया जाना मैंने आवश्यक समझा, समिति और जो काग्रेस के दावे में दिलचस्पी रखते है, वे यह जान सकेंगे कि उसने जो दावा किया है, वह उसके उपयुक्त है। मैं जानता हूँ कि कभी-कभी वह अपने इस दावे को कायम रखने में असफल भी हुई है; किन्तु मैं यह कहने का साहस करता हूँ कि यदि आप काग्रेस का इतिहास देखेंगे तो आपको मालूम होगा कि असफल होने की अपेक्षा वह सफल ही अधिक हुई है और प्रगति के साथ सफल हुई है। सबसे अधिक काग्रेस मूलरूप में, अपने देश के एक कोने से दूसरे कोने तक, ७,००,००० गावो में बिखरे हुए करोडो मूक, अर्ध-नग्न और भूखे प्राणियो की प्रतिनिधि है, यह बात गौण है कि ये लोग ब्रिटिश भारत के नाम से पुकारे जानेवाले प्रदेश के हैं अथवा भारतीय भारत अर्थात् देशी-राज्यो के। इसलिए काग्रेस के मत से प्रत्येक हित, जो रक्षा के योग्य है, इन लाखो मूक प्राणियो के हित का साधन होना चाहिए। हा, आप समय-समय पर इन विभिन्न हितो में प्रत्यक्ष विरोध देखते है। परन्तु यदि वस्तुत कोई वास्तविक विरोध हो तो मै काग्रेस की ओर से बिना किसी सकोच के यह बता देना चाहता हूँ कि इन लाखो मूक प्राणियो के हित के लिए काग्रेस प्रत्येक हित का बलिदान कर देगी। इसलिए यह आवश्यकरूप से किसानों की सस्था है और वह अधिकाधिक उनकी बनती जा रही है। आपको, और कदाचित् इस समिति के भारतीय सदस्यो को भी, यह जानकर आश्चर्य होगा कि काग्रेस ने आज 'अखिल भारतीय चर्खा सघ' नामक अपनी सस्था द्वारा करीब दो हजार गावो की लगभग ५० हजार स्त्रियो को (अब यह सख्या १,८०,००० है) रोजगार में लगा रक्खा है, और इनमे सम्भवत ५० प्रतिशत मुसलमान स्त्रिया है। उसमें हजारो अछूत कहानेवाली जातियो की भी है। इस तरह हम इस रचनात्मक कार्य के रूप में इन गावो में प्रवेश कर चुके है और ७,००,०००

गावो मे, प्रत्येक गाव में, प्रवेश करने का यत्न किया जा रहा है। यह काम यद्यपि मनुष्य की शक्ति के बाहर का है, फिर भी यदि मनुष्य के प्रयत्न से हो सकता है, तो आप कांग्रेस को इन सब गावो में फैली हुई और उन्हे चर्खे का सन्देश सुनाती हुई देखेंगे।"

कांग्रेस कैसी महान् राष्ट्रीय सस्था है, इसका बहुत अच्छा वर्णन सक्षेप में गाधी जी ने किया है। यदि कांग्रेस ने और कुछ नही किया तो कम-से-कम इतना जरूर किया है कि उसने अपना गन्तव्य स्थान खोज लिया है और राष्ट्र के विचारो और प्रवृत्तियो को एक ही बिन्दु पर लाकर ठहरा दिया है। उसने भारत के करोडो निरीह और बेकस लोगो के दिलो में एक जागृति पैदा कर दी है; उनके अन्दर एकता, आशा और आत्म-विश्वास की सजीवनी डाल दी है। कांग्रेस ने भारतवासियो के विचारो और आकाक्षाओ को एक स्पष्ट राष्ट्रीय रूप दे दिया है, जिसके द्वारा उन्होने अपनी राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय साहित्य को, अपने सर्व-सामान्य धन्धो, कारीगरियो और कलाओ को, यहा तक कि अपनी सर्व-सामान्य आकाक्षाओ और आदर्शो तक को खोज निकाला है। परन्तु यहा कहना होगा कि उसके जीवन के ये पिछले ५० वर्ष अबाध और आसानी से नही बीते है। उसमें कई उतार-चढाव आये है। उसमें लोगो की आशा-निराशायें, उनके आन्दोलनो और प्रयासो में मिली सफलता-असफलता, सब का इतिहास छिपा हुआ है। इन पन्नो में हम इस तेजस्विनी, बलवती और पुरुषार्थिनी सस्था के जीवन की अर्द्धशताब्दी की घटनाओ का इतिहास लिखेंगे, जिसमें उसके उद्गम की कथा सुनावेंगे; उसके जन्म-दाताओ और आरम्भ-काल के सरपरस्तों और पालको की सेवाओ का स्मरण करेंगे, उसका जीवन-पिण्ड बनते समय जिन-जिन देश-भक्तो ने उसका लालन-पालन किया उनके कार्यों का दिग्दर्शन करावेंगे, अपनी किशोरावस्था में यह जिन उतार-चढावो में से गुजरी है उनका चित्र खीचेंगे, जैसे-जैसे वह जवानी की ओर कदम बढाती गई तैसे-तैसे उसे मिले यश की महत्ता और गौरव का एव उसे जिन सन्ताप-परितापों और शर्मिन्दगियो का भी सामना करना पडा उसका परिचय करावेंगे, और उन सब अवस्थाओ का सिंहावलोकन करेंगे जिनमें से उसके सिद्धान्त और आदर्श, विश्वास एव मान्यतायें गुजर चुकी है और अन्त में जाकर उसने (कांग्रेस ने) तमाम शान्तिमय और उचित उपायो से स्वराज्य प्राप्त कर लेने का भी प्रण कर लिया है।

: २ :

कांग्रेस के प्रस्ताव—एक सरसरी निगाह

[१८८५—१९१५]

हरेक साल के कांग्रेस-अधिवेशन पर अलग-अलग विचार करने का हमारा इरादा नही है। एक-के-बाद-एक होनेवाले अधिवेशनो में जिन महत्त्वपूर्ण विषयो पर विचार होकर प्रस्ताव पास हुए उन्हें लेकर एक नजर यह देखना ही काफी होगा कि लगभग १९१५ तक कांग्रेस की नीति और कार्यक्रम का रुख क्या रहा। क्योंकि इसके बाद तो एकदम नई नीति और थोड़े-बहुत भिन्न उपाय काम में लाये जाने लगे है। इसके लिए प्रस्ताव और विचार के महत्त्वपूर्ण विषयो को भिन्न-भिन्न हिस्सो में बाटकर हमें क्रमशः विचार करना होगा।

इण्डिया कौंसिल

कांग्रेस ने अपने सबसे पहले अधिवेशन में ही इस बात पर जोर दिया था कि भारत-मंत्री की कौंसिल (इण्डिया कौंसिल), जैसी कि वह उस समय थी, तोड दी जाय। बाद के दो अधिवेशनो में भी उस प्रस्ताव को दोहराया गया। दसवें अधिवेशन में उसकी जगह भारत-मंत्री को परामर्श देने के लिए कामन-सभा की स्थायी समिति बनाने का प्रस्ताव पास किया गया। और १९१३ में कराची-कांग्रेस ने जो प्रस्ताव पास किया उसमें तो उसने उन संशोधनो का भी उल्लेख कर दिया है जिन्हें वह चाहती थी। वह प्रस्ताव यह है —

"इस कांग्रेस की राय है कि भारत-मंत्री की कौंसिल, इस समय जिस तरह संगठित है, तोड दी जाय, और निम्न प्रकार उसका पुनस्संगठन किया जाय—

(क) भारत-मंत्री का वेतन ब्रिटिश कोष से दिया जाय।

(ख) कौंसिल की कार्यक्षमता और स्वतंत्रता पर ध्यान रखते हुए यह अच्छा हो कि उसके कुछ सदस्य नामजद हो और कुछ चुने हुए।

(ग) कौंसिल के सदस्यो की कुल संख्या ९ से कम न हो।

(घ) कौंसिल के निर्वाचित सदस्य कुल सख्या के कम-से-कम ½ हो, जो गैर-सरकारी भारतीय हो और वडी (इम्पीरियल) तथा प्रान्तीय कौंसिल के निर्वाचित सदस्यो द्वारा चुने गये हो।

(ङ) कौंसिल के नामजद सदस्यो में कम-से-कम आधे ऐसे योग्य सार्वजनिक कार्यकर्त्ता हो जिनका भारतीय शासन से कोई सम्वन्ध न हो, और शेष नामजद-सदस्य वे अफसर हो जिन्होने कम-से-कम दस वर्ष तक भारतवर्ष में काम किया हो और जिन्हें भारतवर्ष छोडे दो वर्ष से अधिक न हुए हो।

(च) कौंसिल सलाहकार हो, शासक नही।

(छ) प्रत्येक सदस्य का कार्य-काल पाच वर्ष का हो।"

इसके वाद के कुछ अधिवेशनो में जो सशोधित प्रस्ताव पेश हुए उसका कारण यह नहीं है कि अव कौंसिल को तोडने की इच्छा उतनी प्रवल नही रही, वल्कि यह भावना है कि जव कि इसके जल्दी तोटे जाने की कोई सभावना नही है तव इसका कुछ सशोधन ही भले हो जाय। यह कौंसिल निरुपयोगी है, यह विश्वास तो अव भी कायम था, जिसका स्पष्ट प्रमाण यह है कि १९१७ में शासन-सुधारो की जो योजना वनाई गई उसमें इसे तोडने के लिए कहा गया है।

वैधानिक परिवर्त्तन

शुरू से लेकर वहुत समय तक काग्रेस का रवैया ऐसा रहा है, कि उस पर शायद ही कोई 'गरम' या 'अविनयी' होने का आरोप लगा सके। काग्रेस के पहले अधिवेशन में जो कुछ मागा गया वह यही कि "वडी और मौजूदा प्रान्तीय कौंसिलो का सुधार और उनके आकार में वृद्धि होनी चाहिए। इसके लिए यह जरूरी है कि उनमें निर्वाचित सदस्यो की सख्या का अनुपात वढा दिया जाय और सयुक्त प्रान्त तथा पजाव के लिये भी ऐसी कौंसिलो की स्थापना हो। वजट इन कौंसिलो में विचारार्थ पेश किये जाने चाहिएँ और इनके सदस्यो को सरकार से शासन के प्रत्येक विभाग के सम्वन्ध में प्रश्न पूछने का अधिकार होना चाहिए। सरकार को इन कौंसिलो के वहुमत को रद करके अपने इच्छानुसार कार्य करने का जो अधिकार रहेगा उसके अनुसार, यदि सरकार कभी इन कौंसिलो के वहुमत को रद करे तो, उनके (कौंसिलो के) द्वारा सरकार के इन कार्यों के वाजाव्ता विरोधो को सुनने और उनपर विचार करने के लिए कामन-सभा की एक स्थायी समिति नियत की जानी चाहिए।" इसका मतलव यह है कि—वाद में जैसे असेम्वली में वहुतायत से देखा गया है—सरकार वहुमत से स्वीकार की गई

गैरसरकारी मागो को अपने 'विशेषाधिकारो' से अस्वीकृत और बहुमत से अस्वीकार की कई गई सरकारी मागो को 'सर्टिफिकेट' द्वारा स्वीकृत करने लगती है। नौकर-शाही के ऐसे कृत्यो के खिलाफ १८८५ में कांग्रेस ने पार्लमेण्टरी सरक्षण चाहा था। दूसरे अधिवेशन में कांग्रेस ने कौंसिलो के सुधार की एक व्यापक योजना पेश की। इसमें कौंसिलो के आधे सदस्य निर्वाचित रखने के लिए कहा गया, पर अप्रत्यक्ष चुनाव का सिद्धान्त मान लिया गया था। कहा गया कि प्रान्तीय कौंसिलो के सदस्यो का चुनाव तो म्युनिसिपल और लोकल बोर्डो, व्यापार सघो तथा विश्व-विद्यालयो के द्वारा हो और बडी कौंसिल का चुनाव प्रान्तीय कौंसिलो के द्वारा हो। यही नही, बल्कि सरकार को कौंसिलो के निर्णय अस्वीकृत करने का अधिकार देने की बात भी इसमें मान ली गई, बशर्ते कि प्रान्तीय कौंसिलो की अपील भारत-सरकार से और बडी कौंसिल की अपील कामन-सभा की स्थायी समिति से करने का अधिकार रहे। अस्वीकृत करने के १ मास के अन्दर ही कार्य-कारिणी समितियो को अपनी कारंवाई का जवाब अपील-सस्था को भेज देना चाहिए। १८८७, १८८८ और १८८९ में भी यही प्रस्ताव दोहराया गया। १८९० में कांग्रेस ने 'इण्डिया कौंसिल्स एक्ट' में सशोधन करने के श्री चार्ल्स ब्रैडला के उस बिल का सम-र्थन किया जो उन्होने पार्लमेण्ट में पेश किया था और कांग्रेस की राय में जिससे काफी मात्रा में भारत के चाहे हुए सुधार मिलते थे। लेकिन यह बिल बाद में छोड दिया गया। १८९१ में कांग्रेस ने अपने इस निश्चय की फिर से ताईद की, कि "जबतक हमारे देश की कौंसिलो में हमारी जोरदार आवाज नही होगी और हमारे प्रतिनिधि भी निर्वा-चित न होगे तबतक भारत का शासन सुचारु रूप से और न्यायपूर्वक कदापि नही चल सकता।" १८९२ में कौंसिलो के सुधार-सम्बन्धी लॉर्ड क्रॉस का 'इण्डियन कौंसिल्स एक्ट' पास हो गया। तब और बातो को छोड कर भारत-सरकार के नियमो और प्रान्तीय सरकारो द्वारा अपनाई हुई, प्रथाओ पर, जिनमें बहुत सुधार की जरूरत थी, कांग्रेस ने अपना हमला शुरू किया।

यहा इस बात का उल्लेख आवश्यक है कि १८९२ के सुधारो में कौंसिलो के लिए प्रतिनिधि चुनने का कोई विधान नही था। म्युनिसिपल और लोकल बोर्ड आदि स्थानीय सस्थाओ और अन्य निर्वाचन-मण्डलो को कौंसिलो के लिए चुनाव का जो कहने भर को अधिकार प्राप्त था वह सिर्फ नामजद करने के ही रूप में था। यही नही, बल्कि ऐसे नामजद व्यक्तियो को भी स्वीकार करना न करना सरकार पर ही निर्भर था। परन्तु अमली तौर पर सरकार सदा उन्हें स्वीकार कर ही लिया करती थी।

वस्तुत बात यह थी कि लॉर्ड लैंसडौन की सरकार ने अप्रत्यक्ष चुनाव का सिद्धान्त भी लागू न होने देने की कोशिश की। इस बड़ी कौंसिल के प्रतिनिधित्व की व्यवस्था भी इसीके अनुसार की गई थी। उसमें सिर्फ चार जगह, उस समय की प्रान्तीय कौंसिलो (मदरास, बम्बई, कलकत्ता और युक्तप्रान्त) की सिफारिश से नामजद किये गये गैर-सरकारी सदस्यो के लिए रक्खी गई थी।

१८९२ में कांग्रेस ने 'इण्डियन कौंसिल्स एक्ट' को राजभक्ति के भाव से तो स्वीकार किया, परन्तु साथ ही इस बात पर खेद भी प्रकट किया कि "स्वत उस एक्ट के द्वारा लोगों को कौंसिलो के लिए अपने प्रतिनिधि चुनने का अधिकार नही दिया गया है।" १८९३ में एक्ट को कार्य-रूप में परिणत करने की उदार भावना के लिए सरकार को धन्यवाद दिया गया, परन्तु साथ ही यह भी बतलाया गया कि यदि वास्तविक रूप में उस पर अमल करना हो तो उसमें क्या-क्या परिवर्त्तन करने आवश्यक है। साथ ही पजाब में कौंसिल स्थापित करने की माग की भी ताईद की गई। १८९४ और १८९७ में भी इन प्रार्थनाओ को दोहराया गया। परन्तु १८९२ के सशोधन से १८९३ में कौंसिलो के गैर-सरकारी सदस्यो को प्रश्न पूछने का अधिकार मिल गया था, इसलिए १८९५ में कांग्रेस ने प्रश्न-कर्त्ताओ को प्रश्नो के आरम्भ में प्रश्न पूछने का कारण बताने का अधिकार भी देने के लिए कहा, लेकिन आजतक भी उन्हें वह प्राप्त नही हुआ है।

इसके बाद १९०४ तक कांग्रेस ने इस विषय में कुछ नही किया। १९०४ में प्रत्येक प्रान्त से दो सदस्य प्रत्यक्ष चुनाव द्वारा कामन-सभा में भेजने और भारत-वर्ष मे कौंसिलो का और विस्तार करने एव आर्थिक मामलो में उन्हें भिन्न मत देने का अधिकार देने की भी माग की गई, हालाकि कौंसिल का निर्णय रद करने का अधिकार शासन के मुख्याधिकारी पर ही छोडा गया। साथ ही भारत-मत्री की कौंसिल में और भारत के प्रान्तो की कार्यकारिणी सभा में भारतीयो की नियुक्ति पर भी जोर दिया गया। १९०५ में कांग्रेस ने शासन-सुधारो पर पुन जोर दिया और १९०६ में राय जाहिर की कि "ब्रिटिश उपनिवेशो में जो शासन-प्रणाली है वही भारतवर्ष में भी जारी की जाय और इसके लिए (क) जो परीक्षाएँ केवल इग्लैंड में होती है वे भारतवर्ष में और इग्लैंड में साथ-साथ हो, (ख) भारत-मत्री की कौंसिल में तथा वाइसराय और मदरास तथा बम्बई के गवर्नरो की कार्यकारिणी सभाओ में भारतीयो का काफी प्रति-निधित्व हो, (ग) बडी और प्रान्तीय कौंसिलें इस प्रकार बढाई जायें कि उनमें जनता के अधिक और वास्तविक प्रतिनिधि रहें और देश के आर्थिक तथा शासन-सम्बन्धी कार्यों में उनका आर्थिक नियत्रण रहे, और (घ) स्थानीय तथा म्युनिसिपल बोर्डों

के अधिकार बढ़ाये जायें।" १९०८ में समय से पहले ही कांग्रेस ने भविष्य में होने-वाले शासन-सुधारो पर प्रसन्न होना शुरू कर दिया। उसने प्रस्तावित सुधारो का हार्दिक और सम्पूर्ण स्वागत किया तथा आशा प्रदर्शित की कि उसकी तफसीली बातें तय करने में भी उसी उदार भाव से काम लिया जायगा जिसके साथ कि यह योजना बनी है। लेकिन देश के भाग्य में तो निराशा ही बदी थी। प्रतिनिधित्व की बात तो एक ओर, वस्तुस्थिति यह हुई कि १९०९ के शासन-कानून के अन्तर्गत जो नियम स्वीकृत हुए उनमें तो उतनी भी उदारता नही थी जितनी कि जॉन मार्ले ने इससे पहले अपने खरीते में प्रदर्शित की थी। इसपर से हमें इसके बाद की उन घटनाओ का स्मरण होता है जो अभी हाल में ही हुई हैं। १९३०–१९३३ की गोलमेज-परिषदो ने किस प्रकार लॉर्ड अर्विन की घोषणाओ का रूप बदल दिया, बाद में गोलमेज-परिषद् की योजना किस प्रकार श्वेत पत्र (व्हाइट पेपर) के रूप में कमजोर बना दी गई, जिसे ज्वाइन्ट पार्लमेण्टरी कमिटी की रिपोर्ट ने कुछ और नरम कर दिया, फिर शासन-सुधारो का बिल तो उससे भी कम कर दिया गया, और अन्त में जिस रूप में कानून बना वह तो उस बिल से भी बिलकुल गया-गुजरा निकला, यह हम सब जानते ही हैं।

यहा यह भी जान लेना आवश्यक है कि मार्ले-मिण्टो के नाम पर दस साल तक जिन शासन-सुधारो का दौर-दौरा रहा वे थे क्या? इन सुधारो के अनुसार बनने-वाली बडी (सुप्रीम) कौंसिल में ६० अतिरिक्त सदस्य थे, जिनमें से केवल २७ निर्वाचित प्रतिनिधि थे। शेष ३३ सदस्यो में से ज्यादा से ज्यादा २८ सरकारी अफसर थे, और बाकी ५ में से ३ गैर-सरकारी सदस्य विभिन्न उल्लिखित जातियो की ओर से गवर्नर-जनरल नामजद करता था और २ अन्य सदस्य भी उसीके द्वारा नामजद होते थे जो प्रदेश-विशेष के बजाय स्वार्थ-विशेष के ही प्रतिनिधि होते थे। निर्वाचित सदस्यो में भी बहुत कुछ विशेष निर्वाचन-क्षेत्रो से चुने जाते थे—जैसे सात प्रान्तो में जमीदार-पाच प्रान्तो में मुसलमान, एक प्रान्त में (पर सिर्फ बारी-बारी से) मुसलमान जमींदार और दो व्यापार-संघ के प्रतिनिधि, इनके बाद जो स्थान बचते उनका चुनाव नौ प्रान्तीय कौंसिलो के गैर-सरकारी सदस्यो द्वारा होता था। और लॉर्ड मार्ले ने इस बात को बिलकुल छिपाया भी नही कि "गवर्नर जनरल की कौंसिल की रचना इसी तरह की रहनी चाहिए कि कानून बनाने और शासन-व्यवस्था में वह सदा और निर्बाध रूप से अपने उस कर्तव्य का पालन करने में समर्थ रहे, जो कि वैधानिक रूप में सम्राट् की सरकार एव पार्लमेण्ट के प्रति उसका है तथा सदा बना रहना चाहिए।" स्वय शासन-सुधारो के बारे में लॉर्ड मार्ले का कहना था—"यदि यह कहा जा सकता हो कि ये शासन-

सुधार प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में हिन्दुस्तान को पार्लमेण्टरी (प्रातिनिधिक) शासन-व्यवस्था की ओर ले जाते हैं, तो कम-से-कम मैं तो इनसे कोई वास्ता नही रक्खूगा।" लेकिन लॉर्ड चेम्सफोर्ड और मि० माण्टेगु का निर्णय तो, जो उनकी (माण्टफोर्ड) रिपोर्ट में दर्ज है, इससे भी अधिक असन्दिग्ध और अधिक अधिकारपूर्ण हैं—"इनसे (मार्ले-मिण्टो-सुधार से) भारतीय जनता का सन्तोष नही हो रहा है। इनको और जारी रक्खा गया तो सरकार और भारतीयो (कौंसिल के सदस्यो) के बीच खाई और बढेगी और गैर-जिम्मेवाराना टीका-टिप्पणी मे वृद्धि होगी।"

इसके पहले कि हम इस विषय के कांग्रेस-प्रस्तावो पर विचार करें, हमें इस समय की घटनाओ को पहले से अपनी निगाह् में ले आना उचित होगा, जिससे कि चित्र अधूरा न रह जाय।

मॉर्ले-मिण्टो शासन-सुधारो से इस विषय का दूसरा दरवाजा खुल गया था। इसके अनुसार दो भारतवासी (अब बढाकर तीन कर दिये गये हैं) १९०७ में इण्डिया-कौंसिल के सदस्य नियुक्त किये गये, एक को १९०९ में गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी सभा में स्थान मिला, और एक-एक भारतवासी १९१० में मदरास व बम्बई के गवर्नरो की कार्यकारिणियो में नियुक्त किया गया। इसी साल बगाल में भी कार्यकारिणी बनाई गई और एक हिन्दुस्तानी सदस्य उसमें भी रक्खा गया। बाद को जाकर वह प्रान्त प्रेसीडेन्सी (अहाते) के दर्जे पर चढा दिया गया और स-कौंसिल गवर्नर के मातहत हो गया। बिहार-उडीसा को मिलाकर, १९१२ में स-कौंसिल लेफ्टिनेन्ट-गवर्नर के मातहत एक पृथक् प्रान्त बना दिया गया और एक भारतवासी वहा की कार्यकारिणी का सदस्य बनाया गया।

१९०९ में कांग्रेस ने शासन-सुधारो के सम्बन्ध में चार प्रस्ताव पास किये। पहले प्रस्ताव में मजहब के आधार पर अलग-अलग निर्वाचन रखने पर नापसन्दगी जाहिर की गई और (क) एक विशेष मजहब के अनुयायियो को अनुचित रूप से बहुत अधिक प्रतिनिधित्व देने, (ख) निर्वाचको और उम्मीदवारो की योग्यता के सम्बन्ध में मुसलमानो और गैर मुसलमानो के बीच अन्यायपूर्ण, ईर्ष्याप्रद और अपमान-प्रद भेद-भाव रखने, (ग) कौंसिलो के लिए खड़े होनेवाले उम्मीदवारो के लिए विस्तृत, मनमानी और अनुचित अयोग्यतायें रखने, (घ) नियम-पत्रों (रेगुलेशन्स) के आम तौर पर शिक्षितो के प्रति अविश्वास के भावो से भरे होने, तथा (ङ) प्रान्तीय कौंसिलो में गैर-सरकारी सदस्यो की संख्या इस प्रकार असन्तोषजनक रखने पर, कि जिनमें उनके बहुमत का कोई असर ही न हो और वे कोरी कागजी रह जायें, असन्तोष प्रकट

किया गया। दूसरे प्रस्ताव द्वारा सयुक्तप्रान्त, पजाव, पूर्वी वगाल, आसाम और ब्रह्मदेश में लेफ्टिनेन्ट-गवर्नरो के सहायतार्थ कार्यकारिणिया वनाने की प्रार्थना की गई। तीसरे प्रस्ताव मे पजाव पर लागू किये जानेवाले शासन-सुधारो को असन्तोष-प्रद बताते हुए कहा गया कि (क) कौंसिल के सदस्यो की जो सख्या रक्खी गई है वह काफी नही है, (ख) निर्वाचित सदस्यो की सख्या बहुत कम और बिलकुल नाकाफी है, (ग) अन्य प्रान्तो में मुसलमानो के लिए अल्पसख्यको की रक्षा का जो सिद्धान्त रक्खा गया है वह पजाव के गैर-मुसलमान अल्पसख्यको के लिए लागू नही किया गया है, और (घ) नियम-मत्र जिस तरह बनाये गये हैं उनकी प्रवृत्ति यही है कि अमली तौर पर पजाव के गैर-मुसलमान बडी कौंसिल में न पहुँच सकें, और चौथे प्रस्ताव में मध्यप्रान्त और वरार में कौंसिल स्थापित न करने तथा मध्यप्रान्त के जमीदारो और जिला व म्युनिसिपल बोर्डों की ओर से बडी कौंसिल के लिए चुने जानेवाले दो सदस्यो के निर्वाचन से वरार को महरूम रखने पर असन्तोप प्रकट किया गया।

१९१० और १९११ में अमली तौर पर काग्रेस ने शासन-सुधारो-सम्बन्धी अपनी १९०९ की आपत्तियो एव सूचनाओ की ही ताईद की और पृथक् निर्वाचन के सिद्धान्त को म्युनिसिपल व जिला-बोर्डों पर भी लागू कर देने का विरोध किया।

१९१२ में काग्रेस ने अपने पिछले प्रस्तावो में उल्लिखित कमिया दूर न की जाने पर निराशा प्रकट की और अन्य सुधारो के साथ यह भी प्रार्थना की कि बडी तथा समस्त प्रान्तीय कौंसिलो में निर्वाचित सदस्यो का बहुमत रहे, प्रतिनिधियो द्वारा मत लेने की प्रथा उठा दी जाय, उन अपराधो (राजनैतिक) के लिए सजा पानेवालो को जिनमें नैतिक दोप न हो, चुने जाने के अयोग्य ठहराने की बाधा हटा दी जाय, और अतिरिक्त प्रश्न पूछने का अधिकार कौंसिलो के सभी सदस्यो को दे दिया जाय। पजाव में कार्यकारिणी की स्थापना और स्थानीय सस्थाओ के लिए भी पृथक् निर्वाचन लागू कर देने के प्रस्तावो की ताईद की गई। आश्चर्य की बात है कि काग्रेस के शासन-सुधार-सम्बन्धी प्रस्ताव में एक टुकडा यह भी है कि "जो व्यक्ति अग्रेजी न जानता हो उसे सदस्यता के अयोग्य समझा जाय।"

सरकारी नौकरियां

सरकारी नौकरियो में, खासकर उन उच्च पदो पर, जो सनदी के नाम से मशहूर हैं, भारतीयों की नियुक्ति के प्रश्न को काग्रेस ने हमेशा बहुत महत्व दिया है।

भारतवासियों ने हमेशा यह मतालबा किया है कि ये परीक्षाएं इग्लैंड और

भारतवर्ष दोनो जगह साथ-साथ होनी चाहिएँ, जिससे भारतीयो की कुछ तो कठिनाई दूर हो जाय। अपने पहले ही अधिवेशन में कांग्रेस ने दोनो देशो में साथ-साथ परीक्षा होने की आवाज उठाई थी।

अब जरा विस्तार से हम इस विषय पर विचार करें। यहा यह बता देना ठीक होगा कि पहले-पहल १८८५ में जब कांग्रेस का अधिवेशन हुआ तभी से उसने प्रतिस्पर्द्धी परीक्षायें दोनो देशो में साथ-साथ होने की माग रक्खी है, हालांकि यो यह आवाज तो अठारह वर्ष पहले से उठती रही है। यही नही, बल्कि १८६१ में इण्डिया-कौंसिल की एक कमिटी ने भी यही सिफारिश की थी कि यदि भारत के साथ न्याय करना हो और पार्लमेण्ट द्वारा किये गये वादो को पूरा करना हो तो ऐसा करना आवश्यक है।

दूसरे अधिवेशन में कांग्रेस की ओर से इस काम के लिए नियुक्त उप-समिति ने इस सम्बन्धी विस्तृत ब्यौरा तैयार किया और मतालबा किया कि प्रतिस्पर्द्धी परीक्षायें भारतवर्ष और इंगलैंड में साथ-साथ हो और सम्राट् के सब प्रजाजन बिना किसी भेद-भाव के उसमें भाग ले सकें, योग्यता के अनुसार नियुक्तियो की क्रमागत सूची तैयार की जाय, प्रथम नियुक्तियो के लिए 'स्टेच्युटरी सिविल सर्विस' बन्द कर दी जाय, परन्तु बे-सनदी नौकरियो तथा उपयुक्त पात्रो के लिए वह खुली रहे, और इसके अतिरिक्त जितनी नियुक्तिया हो वे सब प्रान्तो में प्रतिस्पर्द्धी परीक्षायें लेकर की जायें। उस समय प्रचलित प्रथा यह थी, कि कुछ नवयुवको को चुन कर बस सीधा डिप्टी-कलक्टर बना दिया जाता था। चौथे अधिवेशन तक जाकर कही इस सम्बन्धी आन्दोलन में थोडी सफलता मिली। सरकारी नौकरियो (पबलिक सर्विसेज) के कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में इस सम्बन्धी जिन सुविधाओ की सिफारिश की उनकी कांग्रेस ने तारीफ की, परन्तु उन्हें अपर्याप्त बताया। इसमें सन्देह नही कि कांग्रेस के इच्छानुसार इण्डियन-सिविल-सर्विस की परीक्षा के लिए वय-मर्यादा १९ से २३ कर दी गई, लेकिन दूसरी तरह से कमीशन की सिफारिशो पर जारी की गई सरकारी आज्ञा से स्थिति और भी खराब हो गई। क्योंकि उससे भारतीय उच्चाधिकारियों के लिए दो ही उपाय रह गये—या तो जिस स्थिति में स्टेच्युटरी सर्विस के मातहत वे उस समय थे उसी में बने रहें, या प्रान्तीय सर्विस में सम्मिलित हो जायें जिनके सदस्यों के लिए [illegible] सब उच्च पदो पर ताला डाल दिया गया था। इस सम्बन्ध में श्री गोखले ने, कांग्रेस के पांचवें अधिवेशन में, बहुत विशद [illegible] एक भाषण दिया था। उन्होंने कहा—"१८३३ के कानून की भाषा और १८५८ की घोषणा इतनी स्पष्ट है कि [illegible]

दिये गये आश्वासनो के अनुसार सुविधायें नही देना चाहते उन्हें दो में से एक बात, और वह भी बड़े दुःख के साथ स्वीकार करनी पड़ेगी, कि या तो वे मक्कार हैं या दगाबाज, उन्हें यह मानने के लिए तैयार होना ही पड़ेगा कि इंग्लैण्ड ने जब वे आश्वासन दिये थे तब उसने ईमानदारी से काम नहीं लिया था, या यह कि अब वह हमारे साथ वचन-भंग करने पर आमादा हो गया है।" स्थिति उस समय यह थी कि प्रथम तो सर्व-भारतीय नौकरियो के लिए प्रतिस्पर्द्धी परीक्षाये होती थी, दूसरे स्टेच्युटरी सनदी सर्विस भी जिनकी ⅙ नौकरिया १८६१ के कानून के अनुसार भारतीयो के लिए रक्षित थी, तीसरे सनदी नौकरिया थीं जिनमें भारतीय ही भारतीय थे। १८९२ में कांग्रेस ने पवलिक सर्विस कमीशन की रिपोर्ट पर किये गये भारत-सरकार के प्रस्ताव पर असन्तोष प्रकट किया और उसके बारे में कामन-सभा को एक प्रार्थनापत्र भेजा। बात यह थी कि दूसरी श्रेणी की ९४१ नौकरियो में ⅙ पद १५८ भारतीयो के लिए रक्खे गये थे, परन्तु पवलिक-सर्विस-कमीशन ने कहा कि इनमें से १०८ पद उन्हें देने चाहिएँ और भारत-मंत्री ने उस 'चाहिएँ' शब्द को भी बदलकर 'दिये जा सकते है' कर दिया। और असलियत तो यह है कि १५८ में से, जो कि भारतीयो का पूर्णत उचित दावा था, जो १०८ पद सरकार के हाथ में रहे उनमें से भी सिर्फ ९३ ही १८९२ में भारतीयो को दिये गये।

इसके बाद तो स्थिति और भी खराब हो गई। भारत-सरकार के इस सम्बन्धी प्रस्ताव की भारत-मंत्री ने अपने खरीते द्वारा पुष्टि कर दी। फलत· १८९४ में जाति-भेद के आधार पर भारतीयो के खिलाफ अयोग्यता की निश्चित मुहर लग गई, क्यो कि उस खरीते में यह स्पष्ट कर दिया गया कि सनदी नौकरियो (द्वितीय श्रेणी के उच्च पदो) में कम-से-कम इतने अंग्रेज अफसर तो रहने ही चाहिएँ। २ जून १८९३ को कामन-सभा ने जो प्रस्ताव पास किया था, कि भारतीय जनता के साथ न्याय करने के लिए दोनो देशो में साथ-साथ परीक्षायें होने का क्रम शीघ्र अमल में ले आना चाहिए, उसका इससे खात्मा हो गया। शिक्षा-विभाग की नौकरियो के लिये, जिसमें कि किसी भी ओहदे पर भारतवासी बिलकुल अंग्रेजो के समान वेतन के साथ काम कर सकते थे, सरकार ने यह प्रस्ताव प्रकाशित किया कि "भविष्य में वे सब भारतवासी, जो कि शिक्षा-विभाग में प्रवेश करना चाहेंगे, आमतौर पर भारतवर्ष में ही और प्रान्तीय सर्विस में नौकर रक्खे जायेंगे।" इस प्रकार शिक्षा-विभाग के पुनस्संगठन की योजना में, शिक्षा-विभाग की नौकरियो के सिलसिले में, भारतवासियो के साथ एक और अन्याय किया गया। भारतवासियों को इस विभाग की ऊँची नौकरियो से महरूम कर दिया

गया। शिक्षा-विभाग की ऊँची नौकरियो को दो भागो में बाट दिया गया—बडी अर्थात् आई० ई० एस्० (सर्वभारतीय) और छोटी अर्थात् पी० ई० एस्० (प्रान्तीय)। बडी नौकरियो की नियुक्ति इग्लैण्ड में और छोटी नौकरियो की नियुक्ति भारतवर्ष में होने का नियम रक्खा गया। १८८० से पहले ऐसा नही था। उस समय बगाल में उच्चपदस्थ भारतीयो और अग्रेजो को एक-समान वेतन मिलता था। दोनो का प्रारम्भिक वेतन ५००) रुपये होता था। पर १८८० में भारतवासियो का वेतन घटा कर ३३३) कर दिया गया और १८८९ में २५०) ही रह गया हालाकि भारतवासी थे इग्लैण्ड के विश्वविद्यालयो के ही ग्रेजुएट। भारतवासियो के लिए अधिक-से-अधिक वेतन १८९६ में ७००) था, चाहे कितने ही समय की उनकी नौकरी क्यो न हो जाय, परन्तु अग्रेजो को अपनी नौकरी के दस वर्ष पूरे होते ही १,०००) मिलने लगते थे। नयी योजना ने भारतवासियो को ऐसे कुछ कॉलेजो के प्रिन्सिपल होने से भी महरूम कर दिया जो अग्रेजो की पढाई के लिए रक्षित थे। इस प्रकार जैसे-जैसे काग्रेस का आन्दोलन अधिक ठोस और वास्तविक होता गया, उसी हिसाब से नौकरशाही का विरोध भी अधिकाधिक निर्लज्ज और नग्न होता गया है।

१८९६ और १८९७ में काग्रेस ने बम्बई और मदरास की कार्यकारिणियो में भारतवासियो को भी स्थान देने की माग की। सिविल मेडिकल सर्विस (डाक्टरी नौकरियो) पर भी इन तथा इनके बाद के वर्षो में ही कुछ ध्यान दिया जाने लगा। १९०० में काग्रेस ने पी० डब्लू० डी०, रेलवे, अफयून, चुगी (कस्टम) और तार-विभाग की ऊँची नौकरियो पर भारतवासियो के न रक्खे जाने तथा कूपर के इजीनियरिंग (हिल) कॉलेज से पास-शुदा सिर्फ दो ही भारतवासियो को नौकरी के योग्य शुमार करने के प्रतिबन्ध की निन्दा की।

सैनिक समस्या

इस समय तक, इन तीस वर्षो में, काग्रेस ने कोई दो सौ विषयो पर विचार किया। इन विषयो में एक ऐसा है जिसके प्रति लगातार इतनी दिलचस्पी ली जाती रही कि वर्षो तक वह सालाना विषय बना रहा, लेकिन काग्रेस की ओर से लगातार विरोध और प्रार्थनायें होती रहने पर भी न तो तत्सम्बन्धी शिकायतें दूर हुई और न उसमें कोई कमी ही हुई। अपने पहले अधिवेशन में ही काग्रेस ने सैनिक-खर्च की प्रस्तावित वृद्धि का विरोध किया और कहा, "यदि यह रहे ही तो इसकी पूर्ति पहले तो फिर से तट-कर लगाकर की जाय, दूसरे उन सरकारी और गैर-सरकारी लोगो पर

लाइसेन्स-टैक्स लगाया जाय जो इस समय इससे वरी है, किन्तु इस बात का ध्यान रक्खा जाय कि कर निर्धारित करने की निम्नतम सीमा काफी ऊँची हो।" अगले वर्ष इस विना पर भारतीयो को सैनिक-स्वयसेवक बनाने की प्रथा जारी करने पर जोर दिया गया, कि यूरोप की इस समय जो अस्त-व्यस्त हालत है उसमें यदि कोई खतरनाक वक्त आ जाय तो वे (ब्रिटेन की) सरकार के लिए बडे सहायक सिद्ध होगे। तीसरे साल भारत की राजभक्ति और १८५८ की घोषणा में महाराणी विक्टोरिया द्वारा दिये गये वचन के आधार पर, सेना-विभाग की ऊँची नौकरियो का दरवाजा भारतीयो के लिए भी खोलने का मतालवा किया गया। इसके लिए काग्रेस ने देश में सैनिक-कॉलेज की स्थापना करने के लिए कहा। चौथे और पाचवें अधिवेशनो मे पहले के प्रस्तावो की पुष्टि की गई। छठे में कोई विचार नही हुआ, पर सातवें मे इस पर चर्चा हुई और सरकार से यह आग्रह करते हुए कि वह 'भारतीय लोकमत का सम्मान करके भारत-वासियो को प्रोत्साहन देकर इस योग्य वनावे कि वे अपने देश और सरकार की रक्षा कर सकें' मतालवा किया गया कि वह शस्त्र-विधान के नियमो में ऐसा सशोधन करे कि वे धर्म, जाति या वर्ण के भेद-भाव बगैर सब पर एक-समान लागू हो, साम्राज्य के जिस-जिस भाग में अधिक सैनिक-प्रवृत्ति के लोग हो वहा-वहा अनिवार्य सैनिक-सेवा की पद्धति प्रचलित करके उनका सगठन किया जाय और भारत में सैनिक-विद्यालयो (कॉलेज) की स्थापना एव सैनिक-स्वयसेवको की भर्ती की प्रथा प्रारम्भ की जाय। इन प्रार्थनाओ और विरोधो के होते हुए भी सैनिक-व्यय मे उलटे असाधारण वृद्धि हुई, तब आठवें अधिवेशन में काग्रेस को यह माग पेश करनी पडी कि इस व्यय का एक हिस्सा इंग्लैण्ड को भी बरदाश्त करना चाहिए। नवें अधिवेशन ने इस विषय के सामाजिक पहलू अर्थात् भारत की फौजी छावनियो में होनेवाली वेश्यावृत्ति एव छूत की बीमारियो पर विचार किया, और दसवें अधिवेशन ने उसी प्रस्ताव की फिर पुष्टि की। १८९४ में वेल्बीकमीशन नियुक्त हुआ, जो कि सैनिक-व्यय को इग्लैण्ड और भारतवर्ष के वीच विभक्त करनेवाला था। ग्यारहवें और बारहवे अधिवेशनो में इस सम्बन्धी कोई विचार नही हुआ, परन्तु सीमाप्रान्त में सरकार ने जो नीति ग्रहण की उसके फलस्वरूप तेरहवें अधिवेशन में इसपर फिर विचार हुआ और सरकार से कहा गया कि इस व्यय में इग्लैण्ड को भी हिस्सा बटाना चाहिए। चौदहवें अधिवेशन ने भी ऐसा ही निश्चय किया। परन्तु पन्द्रहवे अधिवेशन ने इसके एक नये पहलू को स्पर्श किया और कहा, "चूकि सैनिको की एक बडी सख्या भारतवर्ष के बाहर भेजी जाना उचित समझा जाता है, इसलिए इस काम के लिए रक्खे जानेवाले २०,००० ब्रिटिश-सैनिको का

खर्च ब्रिटिश-सरकार को बर्दाश्त करना चाहिए।" सीमाप्रान्त की लड़ाई खतम हो जाने पर, सोलहवें अधिवेशन में, कांग्रेस फिर सैनिक-विद्यालय के प्रश्न पर ही आ पहुँची। १९०२ के सत्रहवें अधिवेशन में कांग्रेस ने, अपने पन्द्रहवें अधिवेशन के ही आधार पर, सैनिक-व्यय को भारत और इंग्लैंड के बीच विभक्त करने की माग रक्खी। आखिर १८९४ के वेल्वीकमीशन की रिपोर्ट के फलस्वरूप भारत को थोड़ी-बहुत छूट मिली। परन्तु ब्रिटिश-सैनिको की तनख्वाहो में ७,८६,००० पौण्ड सालाना की बढ़ती करके उससे भी ज्यादा भारी नया बोझ भारत के सिर लाद दिया गया। अठारहवें अधिवेशन में इसका विरोध किया गया।

उन्नीसवें अधिवेशन में इस प्रश्न पर व्यापक दृष्टि से विचार किया गया और बताया गया कि १८५९ में सेना को मिला देने की योजना से भारत को कितनी कठिनाई का सामना करना पड़ा है। भारतीय सैनिक नीति की आलोचना करते हुए कहा गया कि "देशी दुश्मनो से रक्षा करने या सीमा पर के लड़ाकू लोगो के आक्रमण से रक्षा करने के लिए नही बल्कि पूर्व में ब्रिटिश-सत्ता को बनाये रखने के लिए वह बरती जा रही है और भारत की सेना में ⅓ सख्या ब्रिटिश सैनिको की है, इसलिए इंग्लैण्ड को उसके खर्च में अवश्य हिस्सा बटाना चाहिए।" लॉर्ड कर्जन की तिब्बत पर चढाई करने की उग्र नीति इस समय अमल में आ रही थी। हालाकि १८५८ के कानून में भारतवर्ष का रुपया भारतवर्ष की कानूनी सीमा के बाहर विदेशी आक्रमण से रक्षा करने के सिवा दूसरे किसी काम में पार्लमेण्ट की स्वीकृति बगैर खर्च न करने' का नियम था, परन्तु लॉर्ड कर्जन ने तिब्बत की चढाई को 'राजनैतिक कार्य' बताकर उसकी भी उपेक्षा कर दी। और अब, १९३५ में, हम देखते है कि भारतीय शासन-सुधारो के कानून ने बहुत साल से प्रचलित नियम के इस भग को जायज करार दे दिया है। बीसवें अधिवेशन में कांग्रेस ने लॉर्ड कर्जन की इस करतूत का विरोध किया और बताया कि सेना का पुनस्सगठन करने की लॉर्ड किचनर की योजना के फलस्वरूप, जिसके लिए एक करोड़ पौण्ड का अतिरिक्त व्यय हो रहा है, भारत का सैनिक-व्यय बढते-बढते असहनीय होता जा रहा है। लॉर्ड कर्जन के कार्य-काल के बढाये हुए समय के आखिरी दिनो में (१९०५) लॉर्ड किचनर और उनके बीच इस बात पर तीव्र मतभेद हो गया कि सेना पर गैर-फौजी अधिकारियो का नियत्रण रहे या नही। लॉर्ड कर्जन चाहते थे कि नियत्रण रहे और लॉर्ड किचनर इसके सख्त खिलाफ थे।

बनारस के अपने इक्कीसवें अधिवेशन में (१९०५) कांग्रेस ने इस बात का विरोध किया कि प्रचलित नीति में, जिसके कि द्वारा फौजी अधिकारियो पर गैर-फौजी

अर्थात् मुल्की अधिकारियो का नियत्रण होता था, किसी प्रकार परिवर्त्तन किया जाय और एक वार फिर इस वात की ओर ध्यान आकर्षित किया कि यहा का सैनिक-व्यय पूर्व में ब्रिटिश-साम्राज्य की सत्ता वनाये रखने की ब्रिटिश-नीति को ध्यान में रखते हुए निश्चित किया जाता है। साथ ही इस वात पर भी जोर दिया गया कि सेना पर मुल्की अधिकारियो का नियत्रण तभी पूरी तरह हो सकता है जब कि कर-दाताओ को उस नियत्रण पर असर डालने की स्थिति में रक्खा जाय। १९०६ के राष्ट्रीय नव-चैतन्य के समय भी साल-दर-साल सामने आनेवाले इस दुस्साध्य विषय को भुलाया नही गया। उसमे इस वात की ओर ध्यान आकर्षित किया गया कि पिछले बीस वर्षो में भारत का सैनिक-व्यय १७ करोड से वढकर ३२ करोड सालाना, अर्थात् करीव-करीव दुगुना हो गया है—और यह वह समय है कि जिसके अन्दर भारत में ऐसे सत्या-नाशी दुर्भिक्ष पडे कि जैसे पहले शायद ही कभी हुए हो और कम-से-कम २ करोड २२ लाख व्यक्ति भोजन के अभाव में काल के ग्रास हुए।

१९०८ में काग्रेस ने जोरो के साथ ३,००,००० पौण्ड के उस नये भार का विरोध किया जो रोमर-कमिटी की सिफारिश पर ब्रिटिश युद्ध-विभाग ने भारतीय कोष पर लाद दिया था, और ब्रिटिश-सरकार से प्रार्थना की कि "इतने दिनो के अनुभव की सहायता से १८५९ की सेना को मिलाने की नीति में परिवर्त्तन करने की आवश्यकता है और इस बात की आवश्यकता है कि इस सम्बन्ध मे एक उचित और न्यायपूर्ण सिद्धान्त निर्धारित किया जाय, जिससे भारतीय कोष पर से इस तरह का अनुचित भार उठ जाय।" १९०९ और १९१० में साल-दर-साल वढते जानेवाले सैनिक-व्यय की आलोचना की गई। १९१२ और १९१३ के अधिवेशनो में सेना-विभाग के उच्च पद भारतीयो को न देने के अन्याय की ओर पूर्ण ध्यान आकर्षित किया गया।

१९१४ में काग्रेस ने अपनी इस माग को फिर से दोहराया कि सेना-विभाग *की ऊँची नौकरिया भारतवासियो को भी मिलनी चाहिएँ, सैनिक स्कूल-कॉलेज खोले* जायँ और भारतीयो को सैनिक-स्वयसेवक बनाया जाय। ड्यूक ऑफ कनाट ने इनमें पहली दो वातो का समर्थन किया। लॉर्ड किचनर कहते है, भारतीयो को मेजर तक के पद देने को तैयार थे, और यह भी व्यर्थ ही आशा की गई कि १९११ में सम्राट् इसकी घोषणा कर देंगे। वैसे सैनिक-स्वयसेवक वनने की उन दिनो भारतवासियो के लिए कोई मुमानियत नही थी। काग्रेस के प्रारम्भिक वर्षो में जब पहले-पहल यह प्रश्न उठा तो श्री एस० वी० शकरम् ने वताया था कि वह सैनिक स्वयसेवक है। स्वय श्री वी०

एन० शर्मा भी, जो १९२० में वाइसराय की कार्य-कारिणी के सदस्य बनाये गये, सैनिक-स्वयंसेवक थे। परन्तु १८९८ में भारतीय स्वयंसेवकों के नाम खारिज कर दिये गये और १९१४ में केवल ईसाइयों को ही स्वयंसेवक बनाने का नियम रह गया। इस तरह भारतवासियों के साथ बड़ा भारी अन्याय किया गया। लेकिन १९१७ में भारतवासियों पर से सेना की 'कमीशन्ट' जगहें मिलने की बाधा हटा ली गई और नौ भारतवासियों को ऐसी जगहें दी भी गईं, जिससे उस अन्याय की आंशिक पूर्ति हुई।

कानून और न्याय

कांग्रेस में शुरुआत से ही ऊँचे दर्जे के कानूनदाओं का प्राधान्य रहा है। इसलिए सर्व-साधारण के कानूनी अधिकारों की ओर स्वभावतः उसका विशेष ध्यान रहा है। लेकिन न तो सार्वजनिक अनुभव और न नौकरशाही दमन, किसी ने भी हमें इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँचाया है कि हमारे देश में जो कानून और अदालतें हैं, वे ऐसे हैं कि जैसे किसी देश की साधारण दशा में हुआ करते हैं और जिनका आदर स्वेच्छापूर्वक किया जा सकता हो। जब लोगों में जागृति होकर उन्हें इनसे प्राप्त होनेवाले अधिकारों का भान होता है, अर्थात् जब देश या जाति की निद्रा समाप्त होकर उसमें राष्ट्रीय चैतन्य का प्रारम्भ होता है, तब उनके बाहरी रूपों और कार्य-विधियों का खोखलापन तुरन्त प्रत्यक्ष हो जाता है। यही बात उस समय हुई, जब कि मुकदमे में जूरी-द्वारा विचार होने की प्रथा सम्पूर्ण रूप से प्रचलित करने के बाद १८७२ में सरकार ने उसमें यह बन्दिश लगा दी कि जूरी का मत अन्तिम निर्णय न समझा जायगा और दौरा जज तथा हाईकोर्ट उनके बरी करने के फैसलों को रद कर सकेंगे। दूसरी ही कांग्रेस में (कलकत्ता, १८८६) इस बन्दिश को हानिकारक बताकर तुरन्त उठा देने के लिए कहा गया। साथ ही न्याय-प्रथा में प्रस्तावित अन्य उन्नति-विरोधी फेरफारों का भी विरोध किया गया। इसके बाद समय-समय पर कांग्रेस अपनी इस प्रार्थना को दोहराती रही, लेकिन नतीजा आजतक भी कुछ नहीं निकला।

जूरी के अधिकारों का प्रश्न तो आवश्यक था ही, परन्तु इससे भी अधिक आवश्यकता शासन और न्याय-कार्यों के पृथक्करण की थी, क्योंकि एक ही व्यक्ति के हाथ में दोनों कार्य रहने से वही तो शासक होता है और वही निर्णायक—वही मुकदमा चलाता है और वही जूरी व जज का काम करता है। इस प्रकार एक ही व्यक्ति सर्वाधिकार-सम्पन्न बन जाता है।

ब्रिटिश-भारत में इस सुधार के लिए आन्दोलन राजा राममोहन राय के समय

शुरू हुआ, जिन्होंने अन्य विषयों के साथ इस विषय में भी एक आवेदनपत्र पार्लमेण्ट में पेश किया था और एक पार्लमेण्टरी कमिटी में गवाही देने के बाद अस्सी वर्ष पूर्व इंग्लैण्ड में ही जिनकी मृत्यु हुई। इस सम्बन्धी इतिहास से यह साफ़ जाहिर होता है कि मौजूदा परिस्थिति इतनी प्रतिकूल है कि ऐसे आवश्यक सुधार भी हम नहीं करा सकते। और तो और पर गवर्नर-जनरल लॉर्ड डफ़रिन, भारत-मन्त्री, लॉर्ड क्रॉस तथा लॉर्ड किम्बरली, और भारत-सरकार के होम मेम्बर सर हार्वे एडम्सन ने भी मुख्तलिफ समयों में कांग्रेस के इस प्रस्ताव (अर्थात् न्याय और शासन-कार्यों को एक दूसरे से पृथक् करने) का औचित्य स्वीकार किया है; और सर हार्वे एडम्सन ने तो सरकार की ओर से १९०८ में यह वादा भी किया था कि परीक्षा के तौर पर यह आजमाया जायगा। लेकिन अबतक भी न्याय और शासन-कार्य सम्मिलित रूप से एक ही अफसर के सुपुर्द हैं। राजा राममोहन राय के बाद उत्साही कार्यकर्त्ताओं के एक दल ने, जिसमें श्री दादाभाई नौरोजी सबसे प्रमुख थे, इस प्रश्न को हाथ में लिया; और इसके लिए बंगाल, बम्बई व मदरास में संघ बनाये गये, जिनमें बंगीय राष्ट्र-संघ खास तौर पर उल्लेखनीय है। शिक्षा-प्रचार के साथ-साथ इस आन्दोलन का प्रसार और जोर-शोर बढ़ा, और १८८५ में कांग्रेस ने इस प्रश्न को अपने हाथ में ले लिया।

दूसरे अधिवेशन में कांग्रेस ने अपनी यह राय जाहिर की, कि शासन और न्याय-कार्यों का शीघ्र एक-दूसरे से पृथक् होना आवश्यक है। तीसरे अधिवेशन में इसका प्रतिपादन करते हुए कहा कि ऐसा करने में खर्च बढ़ाना पड़ता हो तो भी इसमें देरी न की जाय। अगले साल यह विषय और जूरी-प्रथा का प्रश्न, दोनों एक-साथ कर दिये गये और प्रतीत होने लगा कि एक सर्वाशयी प्रस्ताव में ही अब उनका भी प्रवेश हो जायगा। लेकिन ऐसा हुआ नहीं। साल-दर-साल कांग्रेस इस प्रस्ताव को दोहराती रही और १८९३ में तो यहां तक कह दिया कि न्याय और शासन-कार्यों का सम्मिश्रण "भारतवर्ष के ब्रिटिश-शासन के लिए एक बड़ा कलंक है, जिससे देश-भर के समस्त जाति और समाजवाले लोगों को बेहद तकलीफ उठानी पड़ती है।" यही नहीं, "किसी दूसरे जरिये की आशा न देखकर, नम्रतापूर्वक भारत-मन्त्री से प्रार्थना की गई कि इस सम्बन्धी उपयुक्त योजना बनाने के लिए वह हरेक प्रान्त में एक-एक कमिटी नियुक्त करने का हुक्म निकाल दें।" भला कांग्रेस कितनी भोली-भाली थी, अथवा कहना चाहिए कि आपे से बाहर हो गई थी, कि जो सरकार सुधार करने को ही तैयार नहीं थी, उससे भी यह आशा की कि वह उस सुधार-सम्बन्धी विस्तृत योजना को तैयार करने के लिये कमिटी बनायेगी! इससे इस बात का पता लगता है कि कांग्रेसवाले कितनी

शून्यता अनुभव करने लग गये थे और उनकी आखो के सामने कैसा अँधेरा छा गया था। १९०८ तक कोई अमली तरक्की नही दिखाई दी, क्योकि उसी साल काग्रेस ने इस बात पर सन्तोष प्रकट किया कि बगाल प्रान्त के लिए सरकार ने कुछ निश्चित रूप में इस बात को स्वीकार कर लिया है—लेकिन, बारह महीने पूरे भी नही हो पाये थे कि काग्रेस को अपनी निराशा का पता लग गया, 'क्योकि अमली कारंवाई इस दिशा में कुछ भी नही की गई।' इसके बाद लगातार दो अधिवेशनो में इसी निराशा का राग अलापा गया।

जरी के अधिकार कम करने और न्याय व शासन-कार्य सम्मिलित रखने के पुराने घाव अभी हरे ही थे और उनमें सुधार होने के कोई आसार नजर नही आ रहे थे, कि १८९७ मे एक नया घाव और कर दिया गया। १८१८ का तीसरा रेग्युलेशन (बगाल), १८१९ का दूसरा रेग्युलेशन (मदरास) और १८२७ का पच्चीसवाँ रेग्युलेशन (बम्बई) ये तीन पुराने कानून प्रकाश में आये, जिनके मातहत हर किसी को मुकदमा चलाये बगैर ही जलावतन किया जा सकता था। सरदार नातू-बन्धुओ पर इस शस्त्र का प्रयोग किया गया, जो १८९७ के काग्रेस-अधिवेशन होने के वक्त ५ महीने से अधिक समय से जेल में थे। काग्रेस यह देखकर दग रह गई, क्योकि गिरफ्तारी से पहले उनको वैसा नोटिस भी नही दिया गया था जो कि इन रेग्युलेशनो के मातहत भी देना जरूरी था।

१८९७ का साल हर तरह प्रतिक्रिया का साल था। लोकमान्य तिलक को राजद्रोह के अपराध में ऐसे लेख प्रकाशित करने पर सजा दी गई जो खुद उनके लिखे हुए नही थे। पूना में ताजीरी पुलिस तैनात की गई और कानून की राजद्रोह (दफा १२४ ए) तथा खतरे की झूठी अफवाहें फैलाने-सम्बन्धी (दफा ५०५) धाराओ में ऐसा सशोधन किया गया जिससे वे और भी कठोर हो गईं। काग्रेस ने सर्वसाधारण के अधिकारो पर किये जानेवाले इस आक्रमण का विधिवत् विरोध किया। श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने अपनी विशेष शैली से इसका जोरदार विरोध करते हुए कहा था —

"अग्रेजो ने अपने लिए मैग्नाचार्टा और हैबियस कार्पस प्राप्त किये हैं। इनके द्वारा उन्हें जो सुविधायें प्राप्त हैं वे सिद्धान्त-रूप से उनके गौरवपूर्ण विधान में सम्मिलित है। पर मुझे यह कहने में कोई हिचकिचाहट नही होती कि, वह शासन-विधान हमारा भी पैदायशी हक है। हम, ब्रिटिश-प्रजा हैं, इसलिए ब्रिटिश-प्रजाजनो को जो विशेषाधिकार मिले है उनके हम भी हकदार है। इन अधिकारो को हमसे कौन छीन सकता है? हमने निश्चय कर लिया है और काग्रेस इस बात का प्रण करेगी, आप और हम सब मिलकर इसके लिए एक गम्भीर निश्चय करेंगे। इस सभा-भवन से निकल

कर उसकी ध्वनि भारत-भर की जनता में फैलेगी कि हम इस बात के लिए तुल गये है, इस बात पर जोर देने में हम किसी भी वैध उपाय को बाकी नही छोडेंगे, कि ईश्वर की छत्र-छाया में ब्रिटिश-प्रजाजन की हैसियत से हमारे भी वही अधिकार है जो अन्य ब्रिटिश प्रजाजनो के है और उनमें भी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का अधिकार किसी तरह कम महत्त्वपूर्ण नही है।"

दायमी बन्दोबस्त, आबियाना, गरीबी और अकाल

भारतवर्ष कृषिप्रधान देश है, इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि काग्रेस ने सबसे पहले नही तो भी अपनी शुरुआत में ही थोडे-थोडे समय के लिए होनेवाले जमीन के बन्दोबस्त पर ध्यान दिया, जिसमें सदा लगान-वृद्धि होती रहने से रैयत को बडी कठिनाई होती है। इलाहाबाद में (१८८८) होनेवाले काग्रेस के चौथे अधिवेशन ने अपनी स्थायी (स्टैण्डिग) समिति को यह काम सौंपा कि वह इस सम्बन्ध में विचार करके १८८९ के अधिवेशन में अपनी रिपोर्ट पेश करे। १८८९ में बाबू बैकुण्ठनाथ सेन ने इसका उल्लेख करते हुए बताया कि १८६० में दुर्भिक्ष के कारणो की जाच के लिए जो कमीशन नियुक्त हुआ था, उसने दायमी बन्दोबस्त की सिफारिश की थी, जिसे भारत-मत्री ने भी १८६२ के अपने खरीते में मजूर कर लिया था। साथ ही उन्होने यह भी बताया कि कभी-कभी तो लगान में बढाई हुई रकम गाव में पैदा होनेवाली फसल से भी बढ जाती है जैसा कि मि० (बाद में सर) ऑकलैण्ड कॉल्विन के सामने आये एक मामले से मालूम पडता है। डॉ० बेसेण्ट ने अपनी पुस्तक में इस सम्बन्धी यह मनो-रजक उदाहरण दिया है :—

"बर्तन में पानी तो उतना ही है जितना पहले था, परन्तु अब उसमें पानी निकलने के एक की जगह छ छेद हो गये है।

"हमारे पास पशुओ की कमी नही है, चरागाहो की और उनकी तन्दुरुस्ती के लिए आवश्यक नमक की भी बहुतायत है, परन्तु अब जंगलात के महकमे ने सारी जमीन पर कब्जा कर लिया है, जिससे हमारे पास चरागाह नही रहे और यदि भूखो मरते पशु चारे की जगह अनाज के खेत में भटक कर चले जाते है तो उन्हें काजीहाउस में बन्द करके हम पर जुर्माना किया जाता है।"

"अपने मकानो, हलो तथा हर तरह के खेती के सभी कामो के लिए हमारे पास लकडी की बहुतायत है, लेकिन अब उस सब पर जगल-विभाग का ताला पडा हुआ है। जहा हमने उसे बिला इजाजत छुआ नही कि हम सरकारी शिकंजे में आये

नहीं। अब तो हमें एक भी लकड़ी चाहिए तो उसके लिए हफ्ते-भर तक एक से दूसरे अफसर के पास भागना पड़ेगा और हर जगह खर्च-ही-खर्च करना होगा, तब कहीं जाकर वह मिलेगी।

"पहले हमारे पास हथियार थे, जिनसे खेती को नुकसान पहुँचानेवाले जगली जानवरो को हम मार या भगा सकते थे, पर अब हमारे सामने ऐसा शस्त्र-विधान है, जो विदेशों से यहा आनेवाले एक हब्शी को तो हर तरह के हथियार रखने की इजाजत देता है, पर जिन गरीब किसानो को अपने गुजारे के एकमात्र सहारे खेती की जगली जानवरों से रक्षा करने के लिए उनकी जरूरत है उन्हे कसम खाने को भी एक हथियार नहीं मिलता।"

१८९२ में कांग्रेस ने लगान को निश्चित और स्थायी करने के लिए कहा, "जिससे कि देश की कृषि को उन्नत करने के लिए पूजीपति और मजदूर मिलकर काम कर सकें," और कृषि-सम्बन्धी बैंको की स्थापना के लिए प्रार्थना की। अगले साल भारत-मत्री द्वारा दिये गये उन वचनो की पूर्ति करने के लिए कहा गया, जो उन्होने अपने १८६२ और १८६५ के खरीतो में दायमी बन्दोबस्त के लिए दिये थे। १८९६ में कांग्रेस ने अपने रुख को और भी नरम किया और प्रार्थना की कि एक के बाद दूसरा बन्दोबस्त करने में कम-से-कम ६० साल का फासला तो रखा ही जाय—अर्थात्, मियादी बन्दोबस्त ही हो तो वह भी कम-से-कम ६० साल के लिए तो हुआ ही करे। २२ दिसम्बर १९०० को भारत-सरकार ने, अपने रेवेन्यू और कृषि-विभाग के द्वारा, इस सम्बन्ध में अपना प्रस्ताव प्रकाशित किया, जिसके चौथे पैरेग्राफ पर प्रकट किये गये प्रान्तीय सरकारो के विचार प्रकाशित करने के लिए कांग्रेस ने कहा।१९०३ में कांग्रेस इससे भी आगे बढी और लगान अधिक न लगाया जाय, इसके लिए कानूनी व अदालती रुकावटें लगाने के लिए कहा। १९०६ में कांग्रेस ने लॉर्ड कैनिंग और लॉर्ड रिपन की नीति से, जो उन्होने क्रमश १८६२ और १८८२ में लगान पर नियन्त्रण रखने के सम्बन्ध में प्रतिपादित की थी, १९०२ में एक प्रस्ताव-द्वारा घोषित लॉर्ड कर्जन की नीति की तुलना करके दोनो को परस्पर-विरोधी बताया और इस विचार का विरोध किया कि भारतवर्ष में जमीन का लगान 'कर' नही बल्कि 'किराया' है। १९०८ में भी इसी तरह का एक प्रस्ताव पास हुआ। इसके बाद निराश होकर अपने आप कांग्रेस ने इस विषय को छोड दिया।

१८९६ के दुर्भिक्ष की परिस्थिति के कारण कांग्रेस को सरकार की आर्थिक नीति का सिंहावलोकन करना पडा। उसने सरकार पर अन्धाधुन्ध सैनिक-व्यय करने

का दोष लगाया और दुर्भिक्षो को, उस खर्च की पूर्ति के लिए, लोगो पर लगाये जाने-वाले अत्यधिक कर और भारी लगान का बाइस बतलाया। दूसरा कारण सरकार की उपेक्षा से देशी और स्थानीय कला-कौशल एव उद्योग-धधो का प्राय नष्ट हो जाना बतलाया गया। सरकार से कहा गया कि वह अकालरक्षक कोप बनाकर अपनी की हुई प्रतिज्ञा पूर्ण करे। दायमी बन्दोबस्त और कृषि सम्बन्धी बैको तथा कला-कौशल-सम्बन्धी स्कूलो की स्थापना को गरीबी दूर करने का असली उपाय बतलाया गया। इसके बाद ही एक अकाल-कमीशन बैठाया गया। इसी बीच अकाल-पीडितो की सहायता के लिए ब्रिटेन और अमरीका से आई हुई उदारतापूर्ण रकमो के लिए धन्यवाद प्रकट करते हुए काग्रेस ने १,००० पौण्ड की रकम लन्दन के लॉर्ड मेयर के पास भेजने का निश्चय किया, ताकि लन्दन के किसी प्रमुख स्थान में वह प्राप्त-सहायता के लिए भारतीयो की कृतज्ञता का सूचक एक स्मारक बना दें। यह १८९८ की बात है। लेकिन ऐसा करते हुए, काग्रेस ने उन असली उपायो की उपेक्षा नही की जिनका वह प्रतिपादन करती आ रही थी, और १८९९ में एक बार फिर उसने सरकार पर जोर डाला कि सरकारी खर्च में कमी की जाय, स्थानीय और देशी उद्योग-धन्धो की उन्नति की जाय, और जमीन का लगान तथा दूसरे करो में कमी की जाय। अगले साल सारे प्रश्न पर और भी व्यापक रूप से विचार किया गया और इस बात की माँग पेश की गई कि भारत-वासियो की आर्थिक अवस्था की जाच कराई जाय। इसके बाद के अधिवेशनो में हम इस विषय पर और कुछ नही पाते हैं, जिसका कारण शायद यह है कि बाद के वर्षो में काग्रेस का दृष्टिकोण पहले से काफी बदल गया था।

कानून जंगलात

जगलात के कानूनो से हुए नुकसान को अभी हमने अच्छी तरह नही समझा है। उनका मुकाबला तो लगान और नमक के कर से ही हो सकता है, जिन्होने लोगो पर असह्य बोझ डाल दिया। जैसा कि १८९१ के नागपुर-अधिवेशन में मि० पाल पीटर पिल्ले ने बताया था, कलम की एक ही रगड में सरकार ने रैयत के स्थायी अधिकारो को नष्ट करके ग्रामीण समाज-व्यवस्था में उलट-पलट कर दी। जैसा कि डॉ० बेसेण्ट ने कहा, इस बात में सन्देह की बहुत कम गुजाइश है कि देहातियो को ब्रिटिश-शासन के बरखिलाफ जितना इन कानूनो ने किया उतना और किसी चीज ने नहीं। एक उत्तरी आर्काट के ही जिले में, १८९१ में, नौ महीने के अन्दर ३,००,००० पशु मर गये। रैयत को प्रकृति के द्वारा मिलनेवाली सर्वोत्तम सौगातें इनके द्वारा

उनसे छिन गईं। "आपकी जमीन है तो पहाडी पर, पर आप वहा के झाड-झडूको-जैसी जगली चीजो का उपयोग नही कर सकते—यहा तक कि अपने पैदा किये हुए पेडो की पत्तिया तक आप की नही है।"

१८९२—९३ में वडी नम्रता के साथ भारत-सरकार से प्रार्थना की गई कि जगलात के कानूनो से जो कठिनाइया उत्पन्न हुई है—खासकर दक्षिण-भारत और पजाव के पहाडी इलाको में 'उनकी जाच कराई जाय। पजाव सरकार ने इस सम्वन्धी जो नियम वनाये वे इतने कठोर और अन्यायपूर्ण थे कि नवें अधिवेशन में प० मेघनराम ने उन्हें 'अत्यन्त स्वेच्छाचारी और किसी भी सभ्य सरकार के लिए कलक-रूप' वतलाया। इनके अनुसार अगर कही आग लग जाती, फिर वह चाहे आकस्मिक हो या किसी दूसरे ने लगाई हो, तो उसके लिए वही व्यक्ति जिम्मेवार माना जाता जो उस जमीन का मालिक होता या उस समय उसपर काविज होता, और उसके साथ उसी तरह का व्यवहार होता, मानो उसने जान-बूझकर कानून की परवाह न की हो'। जिन पहाडी लोगो के लिए पहाडो पर पैदा होनेवाली घास और लकडी ही सव-कुछ थी, उसीपर उनकी और उनके पशुओ की जिन्दगी का दारोमदार था, उनके लिए उसे लेने की मनाही कर दी गई। यहा तक कि जगल में तापने के लिए वे आग भी नही जला सकते थे। इसके विरुद्ध हुए आन्दोलन के फलस्वरूप २० अक्तूवर १८९४ को भारत-सरकार ने न० २२ एफ का एक गश्ती प्रस्ताव प्रकाशित किया, जिसमे जगलो के प्रवध में रैयतो की कृषि-सम्वन्धी आवश्यकता के सामने आर्थिक प्रश्नो को कम महत्त्व देने का सिद्धान्त स्वीकार किया था।

इसपर काग्रेस ने, अपने दसवें अधिवेशन मे, आग्रह किया कि "तीसरे और चौथे वर्ग के जगलो में जलाने की लकडी, पशु चराने के अधिकार, पशुओ के खाने की चीजें, मकान और खेती के औजार वनाने के लिए सागौन और खाने की जगली चीजें आदि—उचित प्रतिवन्धो के साथ—हर हालत में मुफ्त दी जायें, और जगलो की सीमायें इस तरह निश्चित की जायें कि जिसमे किसानो को इस महकमे के कर्मचारियो से तग हुए विना अपने जातीय (सामूहिक) अधिकारो के उपभोग करने की छूट रहे।" ग्यारहवें और चौदहवें अधिवेशनो में इस वात पर जोर दिया गया कि जगलात के कानूनो का उद्देश जगलो की आमदनी का जरिया वनाना नही वल्कि किसानो और उनके पशुओ के लिए उन्हें रक्षित रखना है। लेकिन १८९९ के वाद के अधिवेशनो मे, जगल-सम्वन्धी कोई प्रस्ताव पास नही हुआ। सिर्फ एक वडा प्रस्ताव वनाया जाता था जिसके एक अश के रूप में इसका उल्लेख रहता था।

बात असल में यह हुई कि पुरानी शिकायतो के तो लोग आदी ही हो चके थे, उनके अलावा जो नई शिकायत उनके सामने आई उसने उनका ध्यान अपनी ओर खीच लिया, फिर बीसवी सदी की शुरुआत के साथ जो समस्या सामने आई वह पहले से बिलकुल भिन्न प्रकार की थी। अलावा इसके, बोअर-युद्ध और रूस-जापान की लडाई ने भी अवश्य ही काग्रेसवालो के दृष्टिकोण को बदला और जगलात व आबियाने, नमक व आबकारी के छोटे प्रश्नो से हटाकर उनका ध्यान राष्ट्रीयता एव स्व-शासन के बडे प्रश्नो की ओर आर्कापित कर दिया।

व्यापार और उद्योग

ब्रिटिश-शासन में भारतवासियो की जो-जो समस्यायें है, उनके खास-खास मुद्दो को काग्रेस के प्रारम्भिक राजनीतिज्ञो ने भली-भाति समझ तो लिया था, परन्तु वे समस्यायें ऐसी थी कि उनको हल करने का रास्ता उन्हें हमेशा दिखाई न पडता था। यह बात वे जान गये थे कि लकाशायर के मुकाबले मे भारतीय हित छोटे और गौण समझे जाते थे ; साथ ही यह बात भी उन्होंने बखूबी जान ली थी कि ग्रामीण दस्तकारियो और कला-कौशल को चाहे निश्चित रूप से नष्ट न किया जाता हो मगर उनके प्रति लापरवाही जरूर की जाती है। श्री करन्दीकर ने, जो कि श्री केलकर और खापर्डे के साथ लोकमान्य तिलक के एक पक्के अनुयायी थे, बम्बई में हुए काग्रेस के बीसवें अधिवेशन (१९०४) में इस विषय पर मि० आर्थर बालफोर के आयर्लैंड पर दिये एक भाषण का नीचे लिखा अश उद्धृत किया था —

"एक-के-बाद-एक उसके हरेक उद्योग का या तो शुरुआत में ही गला घोट दिया गया, या उसे दूसरो (विदेशियो) के हाथ में सौंप दिया गया, अथवा इग्लैण्डवालो के हित में उसे नियन्त्रित कर दिया गया, और जबतक कि सम्पत्ति के तमाम स्रोतो को सीमेण्ट लगाकर बन्द नही कर दिया गया और सारा राष्ट्र खेती के काम करने के लिए मजबूर न हो गया, तबतक यही क्रम जारी रहा।"

इससे अधिक दिलचस्प और विचारपूर्ण वह जवाब है जो मुसलमानी-राज से ब्रिटिश-राज की तुलना करते हुए एक राजनीतिज्ञ ने दिया था—"रक्षा, शिक्षा और रेलो के लिहाज से तो अग्रेज़ी राज्य अच्छा है, मगर हिन्दुस्तान की समृद्धि के लिहाज से मुसलमानी-राज्य उससे अच्छा था, क्योंकि मुसलमान हिन्दुस्तान में आकर हिन्दुस्तानी बन गये थे जिससे हिन्दुस्तान की दौलत हिन्दुस्तान में ही रही, लेकिन अग्रेज लोग यहाँ का धन देश से बाहर ले जाते है।" यही बात काग्रेस के नवें अधिवेशन में, राजा

रामपालसिंह ने अपने मजाकिया ढग पर, इस प्रकार कही थी, कि "अंग्रेज सिविलियनो ने तो हिन्दुस्तान को मौज-मजा करने का अपना शिकारगाह बना रक्खा है।"

१८९४ में कांग्रेस ने ब्रिटिश-भारत में तैयार होनेवाले सूती माल पर कर लगाये जाने का विरोध किया और अपना यह निश्चित विश्वास प्रकट किया कि "इस कर का निश्चय करते वक्त लकाशायर के हितो के सामने भारतीय हितो का बलिदान किया गया है।" इसमें सन्देह नही कि अन्यायी कानून के आगे सिर झुकाकर उसकी सख्तियो को कम करने का प्रयत्न करने की मनोवृत्ति देश में सदा रही है। अत इस विषय में भी कांग्रेस ने कहा —

"यदि इस तरह कर लगाने की व्यवस्था करनेवाला बिल कानून बन जाय तो, उस हालत में, कांग्रेस यह प्रार्थना करती है कि भारत-सरकार बिना विलम्ब के बिल के अनुसार मिले हुए अपने उन अधिकारो से काम लेने की भारत-मन्त्री से अनुमति ले जिसके द्वारा २० से २४ नं० तक का सूती माल इस कानून के क्षेत्र से बाहर हो जाता है।"

ग्यारहवें अधिवेशन में घोषणा की गई कि २० न० से नीचे के भारतीय सूती माल को कर से मुक्त रखने पर लकाशायरवालो ने जो आपत्ति की है वह बे-बुनियाद है। १९०६ में, दादाभाई नौरोजी के सभापतित्व में, कलकत्ता में कांग्रेस का जो प्रसिद्ध अधिवेशन हुआ उसमें प० मदन मोहन मालवीय ने कहा, कि "हमारे देश का कच्चा माल देश से बाहर चला जाता है और विदेशो से तैयार होकर उसका माल हमारे पास आता है। अगर हम स्वतन्त्र होते तो ऐसा न होने देते। उस हालत में हम भी उसी प्रकार अपने उद्योगो का सरक्षण करते, जिस प्रकार कि सब देश अपने उद्योगो की शैशवावस्था में करते हैं।"

लो० तिलक ने इस बात पर अफसोस जाहिर किया कि विदेशी माल की सबसे ज्यादा खपत मध्य-श्रेणीवालो में ही है। उन्होने कहा, "हमारे अन्दर स्वावलम्बन, दृढ-निश्चय और त्याग की भावना होनी चाहिए।" स्वदेशी की भावना उत्पन्न होने पर, और १९०६ तथा उसके बाद के वर्षों में बहिष्कार-आन्दोलन से उसको प्रोत्साहन मिलने के फलस्वरूप, भारतवर्ष का ध्यान भारतीय उद्योग-धन्धो के पुनर्जीवन की ओर खिचा। १९१० में श्री सी० वाई० चिन्तामणि ने स्वदेशी का प्रस्ताव पेश करते हुए श्री रानडे का नीचे लिखा उद्धरण दिया —

"भारतवर्ष इगलैण्ड का ऐसा बगीचा समझा जाने लगा है, जो कच्चा माल पैदा करके ब्रिटिश एजेण्टो की मार्फत ब्रिटिश जहाजो में इसलिए बाहर भेज दे कि ब्रिटिश मजदूरो और ब्रिटिश पूजी से उसका पक्का माल तैयार हो और ब्रिटिश एजेण्टो द्वारा

भारत के ब्रिटिश-व्यापारियो के पास उसे भेज दिया जाय।"

गाव और उनके उद्योग-धधो एव खेती की बरबादी की ओर भी भारतीय राजनीतिज्ञो का ध्यान गया। १८९८ में ही प० मदनमोहन मालवीय ने यह प्रस्ताव रक्खा था, कि "सरकार को देशी उद्योग-धधो एव कला-कौशल की उन्नति करनी चाहिए।" और यह बात तो इससे भी पहले (१८९१ में ही) स्वीकार कर ली गई थी कि जगलात के कानूनो ने गाववालो को बडी कठिनाइयो में डाल दिया है। सारे ग्रामीण-समाज में उथल-पुथल होगई है, गाव की कारीगरी नष्ट हो गई है और पशु मर रहे हैं —३ लाख तो सितम्बर १८९१ में ही मर चुके थे। १८९१ की नागपुर-काग्रेस में, उर्दू में भाषण करते हुए, ला० मुरलीधर ने इस सम्बन्ध में श्रोताओ से बडी जोरदार अपील की थी।

काग्रेस के नवें अधिवेशन में (१८९३) प० मदनमोहन मालवीय ने अपनी स्वाभाविक शैली में कहा था —

"आपके जुलाहे कहा हैं ? वे लोग कहा है जिनका निर्वाह भिन्न-भिन्न उद्योग-धधो एव कारीगरियो से होता था ? और जो कारीगर साल-दर-साल बडी-बडी तादाद में इग्लैण्ड तथा दूसरे यूरोपीय देशो को भेजे जाते थे, वे कहा चले गये ? ये सब भूत-काल की बातें हो गई। आज तो यहा बैठा हुआ लगभग प्रत्येक व्यक्ति ब्रिटेन के बने कपडो से ढका हुआ है और जहा कही भी आप जायें, सब जगह विलायती-ही-विलायती माल आपको दिखाई देगा। लोगो के पास सिवा इसके कोई चारा नही रहा है कि खेती-बाडी के द्वारा बरायनाम अपना गुजारा करें, या जो नाम-मात्र का व्यापार बाकी रहा है उससे टका-धेला पैदा कर लें। सरकारी नौकरियो और व्यापार में पचास साल पहले हमें जो कुछ मिलता था अब उसका सौवा हिस्सा भी हमारे देशवासियो को नसीब नही होता। ऐसी हालत में भला देश कैसे सुखी हो सकता है ?"

यह विषय कितना महत्त्वपूर्ण रहा है, यह इस बात से स्पष्ट है कि सर एस० सुब्रह्मण्य ऐयर ने हाईकोर्ट की जजी से अवकाश ग्रहण करने के बाद १९१४ में 'गावो के पुनर्जीवन और कर्जा-सस्थाओ की आवश्यकता' पर बहुत जोर दिया था। १८९९ में ला० लाजपतराय की प्रेरणा पर काग्रेस ने आधा दिन शिक्षा एव उद्योग-धधो के विचार में लगाया और इसके लिए एक उप-समिति कायम की। इस सब कार्रवाई के फलस्वरूप औद्योगिक प्रदर्शनी की शुरूआत हुई, जो सबसे पहले कलकत्ता-काग्रेस के साथ १९०१ में हुई। इसके बाद क्रमश इसमें उन्नति होती गई और अब खद्दर एव स्वदेशी-प्रदर्शनी के रूप में यह तब्दील हो गई है। इसमें सन्देह नही कि उद्योग-धधो की ओर

काग्रेस का ध्यान १८९४ में भारतीय सूती माल पर कर लगाये जाने के कारण ही आकर्षित हुआ, जिसका उसी समय उसने विरोध किया, लेकिन हम देखते है कि स्वय-गवर्नर-जनरल-द्वारा उसका विरोध किये जाने पर भी वह उठाया नही गया। उसे उठाना तो दूर, उलटे लॉर्ड सेल्सवरी ने यह निर्देश किया बताते हैं कि "भारतीय माल की प्रतिस्पर्द्धा से ब्रिटिश माल को बचाने के लिए उपाय किये जायें।" गावो की गरीबी का जिक्र करते हुए बार-बार जो यह कहा जाता रहा है कि ४ करोड व्यक्तियो को रोज एक वक्त खाना नसीब होता है, यह सिर्फ खयाली बात नही है। श्री वाचा और मुधोलकर ने बडी चिन्ता के साथ गोरे शासको के उद्धरणो से इस बात को सिद्ध कर दिया है। सर चार्ल्स ईलियट के कथनानुसार, "आधे किसानो को साल की शुरुआत से अन्त तक यह भी पता नही होता कि पेट भर कर खाना किसे कहते है।" लगान का यह हाल था कि एक छोटे-से जिले में १८९१ मे ६६ फी सदी बढा, दूसरे में ९९ फी सदी, और तीसरे मे ११६ फी सदी हो गया, और कुछ गावो में तो ३०० से १५०० फी सदी तक बढा, जब कि इसके साथ-साथ फौजी खर्च भी बेशुमार बढता रहा है।

जर्मनी मे फी सैनिक १४५) सालाना खर्च पडता है, फ्रास में १८५) और इग्लैण्ड में २८५), परन्तु हिन्दुस्तान मे प्रत्येक अग्रेज सैनिक पर ७७५) सालाना खर्च किया जाता है, और यह उस हालत में जब कि फी आदमी की औसत-आमदनी इग्लैण्ड में ४२ पौण्ड, फ्रास में २३ पौण्ड और जर्मनी में १८ पौण्ड है और हिन्दुस्तान में सिर्फ १ ही पौण्ड है। ये अक १८९१ के है।

अकालो के बारे में बार-बार प्रस्ताव पास हुए हैं और मजदूरी के सिलसिले में सजा देने के कानून को उठा देने के लिए १८८७ में ही प्रस्ताव किया जा चुका है।

. स्वदेशी, बहिष्कार और स्वराज्य

१९०६ के बाद जो नवीन जागृति और नया तेज देश में इस छोर से उस छोर तक फैल गया था उसका मूल कारण बग-भग था, हालाकि लॉर्ड कर्जन के प्रतिगामी शासन के कारण वह जागृति इस बंग-भग की घटना के पहले से भी भीतर ही भीतर गर्भ में बढ रही थी। पुण्य-नगरी काशी में जब काग्रेस का २१ वा अधिवेशन १९०५ ईसवी में हुआ तब उसमें बग-भग पर विधिवत् विरोध प्रदर्शित किया गया और कहा गया कि वह रद्द कर दिया जाय। कम-से-कम उसमे ऐसा सशोधन जरूर कर दिया जाय जिससे सारा बगाली-समाज एक शासन में रह सके। परन्तु बग-भग आन्दोलन

को दवाने के लिए जो दमनकारी उपाय काम में लाये गये उनके विषय में इस कांग्रेस में जो प्रस्ताव पास किया गया वह कुछ गोल-मोल था, क्योंकि एक ओर जहा, उसके द्वारा बगाल में जारी किये गये दमनकारी उपायो का जोरदार और तत्परता-पूर्वक विरोध किया गया, तहा साथ ही उसमें एक टुकडा यह भी जोड दिया गया कि "जब बगाल के लोगो को मजबूर होकर विदेशी वस्तुओ का वहिष्कार करना पडा और बगाल के लोगो की प्रार्थना और विरोध का खयाल न करके भारत-सरकार बगाल का विच्छेद करने पर जिस तरह तुली थी, उसे, ब्रिटिश-लोगो के ध्यान में लाने का, जब एकमात्र यही वैध उपाय रह गया था ।" इससे यह साफ नही मालूम होता, और शायद यह साफ करने का इरादा भी न हो कि कांग्रेस विदेशी माल के वहिष्कार को पसन्द करती थी या नही। एक किस्म की राय भर दे दी गई, जिससे यह मानी निकलते थे कि लोगो के पास शायद दूसरा उचित उपाय वाकी नही रह गया था। यह तो जाहिर था कि राष्ट्रीय दल के लोगो को वडी आपत्ति होती, अगर कोई ऐसा प्रस्ताव पास किया जाता जो इससे भी कम स्पष्ट होता। परन्तु जैसा-कुछ प्रस्ताव हुआ, उसका समर्थन करते हुए लाला लाजपतराय ने एक बुलन्द आवाज उठाई, "हमने अब गिडगिडाने की नीति छोड दी है। हम उस साम्राज्य की प्रजा हैं जहा लोग उस पद को प्राप्त करने के लिए, जो उनका हक है, लड-झगड रहे है।" १९०५ में जिस साहस का अभाव था वह १९०६ में आ गया। वग-भग पर एक प्रस्ताव करने के बाद कांग्रेस ने वहिष्कार-आन्दोलन का भी समर्थन किया। "यह देखते हुए, कि देश के शासन में यहा के लोगो का कुछ भी हाथ नही है और वे सरकार से जो प्रार्थनाएँ करते हैं उनपर उचित रूप से ध्यान नही दिया जाता है, इस कांग्रेस की राय है कि वग-विच्छेद के विरोध में उस प्रान्त में जो वहिष्कार का आन्दोलन चलाया गया वह न्याय-सगत था और है।" इसके वाद कांग्रेस ने कुछ नुकसान सहकर भी देशी उद्योग-धंधो को प्रोत्साहन देने का प्रस्ताव पास किया। वस, गाडी यही रुक गई। स्व-शासन की कल्पना कुछ शासन-सुधार-विषयक सूचनाओ से आगे नही वढी, जैसे—परीक्षाओ का भारत और इंग्लैण्ड में साथ-साथ होना, कौंसिलो का विस्तार करना और उनमें लोक-प्रतिनिधियों की सख्या का बढाया जाना, भारतमंत्री की तथा भारत की कार्यकारिणी कौंसिलो में हिन्दुस्तानियों की नियुक्ति की जाना। वस, १९०६ में भारत की राष्ट्रीय आकाक्षाओं का खात्मा इसी में हो जाता था। दूसरे साल सूरत में कांग्रेस के दो टुकडे हो गये और नरम-दल-वाली कांग्रेस ने तो आगे के सालो में वहिष्कार को कतई छोड दिया, सिर्फ स्वदेशी को कायम रक्खा, और स्व-शासन सम्बन्धी प्रस्ताव उतरते-उतरते सिर्फ मिन्टो-मॉर्ले सुधार-

योजना के परीक्षण तक मर्यादित रह गया। १९१० में नये वाइसराय लॉर्ड हार्डिंग आये। उसी वर्ष काग्रेस ने राजनैतिक कैदियो को छोडने की अपील उनसे की। दूसरे साल फिर ऐसी अपील की गई। परन्तु १९१४ में जब मदरास में काग्रेस का अधिवेशन हुआ तो उसने साहस करके सरकार से यह मतालवा किया, कि "तारीख २५ अगस्त सन् १९११ के खरीते में प्रान्तीय पूर्णाधिकार के सम्बन्ध में जो वचन दिया गया है उसे पूरा करे, और भारतवर्ष को सघ-साम्राज्य का एक अग वनाने और उस हैसियत के सम्पूर्ण अधिकार देने के लिए जो कार्य आवश्यक हो वे सब किये जायें।"

साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व

कोई यह खयाल करेंगे कि यह साम्प्रदायिक या जातिगत प्रतिनिधित्व का प्रश्न आजकल ही खडा हो गया है। नही, सर ऑकलैण्ड कॉल्विन (१८८८) जब सयुक्तप्रात के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर थे तबसे इसकी बुनियाद पड चुकी है। उस समय यह दिखाने की कोशिश की गई थी कि मुसलमान काग्रेस के विरोधी है। यहा तक कि ह्यूम साहब ने भी इसे महत्त्वपूर्ण समझा और इसके विषय में एक लम्बा जवाब उन्होने सर ऑकलैण्ड को भेजा। इसमें कोई शक नही कि काग्रेस के पहले दो-तीन अधिवेशनो की सफलता ने नौकरशाही के मन में हलचल मचा दी थी, जिसके कि मुख का काम लेफ्टिनेन्ट गवर्नर महोदय ने कर दिया। मुसलमानो पर भी इस विचार का असर तुरन्त ही हुए विना न रहा। उन्हें सरकारी अधिकारियो का बुजुर्गाना रवैया जरूर अखरा होगा, जैसा कि एक घटना से जाहिर होता है। काग्रेस का चौथा अधिवेशन इलाहाबाद में यूरोपियन लोगो का विरोध होते हुए भी हुआ। उनमें शेख रजाहुसेन खा ने मि० यूल के सभापतित्व के प्रस्ताव का समर्थन करते हुए काग्रेस के हक में एक फतवा पेश किया, जो कि लखनऊ के सुन्नियो के शम्सुल्उल्मा से प्राप्त किया गया था। उन्होने बडल्ले के साथ कहा, कि "मुसलमान नही बल्कि उनके मालिक—सरकारी हुक्काम—है जो काग्रेस के मुखालिफ हैं।"

फिर भी वास्तव में लॉर्ड मिण्टो के जमाने में साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के खयाल ने मूर्त-रूप धारण किया। हा, इससे पहले लॉर्ड कर्जन ने जरूर जान-बूझकर वग-भग के द्वारा और पूर्वी वगाल और आसाम को अलग प्रान्त बनाकर, जिसमें कि मुसलमानो का बहुमत हो, यह कलुषित जाति-गत भावना जाग्रत की। यद्यपि लॉर्ड मिण्टो उस घोडे को आराम पहुँचाने के लिए भेजे गये थे जिसपर लॉर्ड कर्जन ७ साल तक सवारी कसकर उसका दम करीब-करीब निकाल चुके थे, फिर भी जाति-गत भेद

और अलगाव की वह काठी, जिसपर कर्जन सवार रहते थे, घोडे की पीठ पर ज्यो-की-त्यो कायम रही। मिण्टो की शासन-सुधार-योजना में मुसलमानो के लिए अलग निर्वाचन-सघ की तजवीज की गई थी, परन्तु साथ ही सयुक्त-निर्वाचन में भी राय देने का उनका हक ज्यो-का-त्यो कायम रक्खा गया था। सकीर्ण बुद्धि के राजनीतिज्ञो ने उस समय यह बताया कि बगाल, आसाम और पजाब की छोटी हिन्दू जातियो को ऐसा विशेषाधिकार नही दिया गया। परन्तु यह तो असल में सही रास्ता छोडकर भटक जाना था। जो बडी अजीब बात थी वह तो यह कि भिन्न-भिन्न जातियो के लिए भिन्न-भिन्न मताधिकार रक्खा गया था। एक मुसलमान तीन हजार रुपये साल की आमदनी वाला जहा मतदाता हो सकता था वहा एक गैर-मुस्लिम तीन लाख सालाना आमदनी वाला हो सकता था। मुसलमान ग्रेजुएट को मतदाता बनने के लिए यह काफी था कि उसे ग्रेजुएट हुए तीन साल हो जायँ, परन्तु गैर-मुस्लिम के लिए तीस साल हो जाना जरूरी था। जरा गौर तो कीजिए, एक तरफ तीन हजार रुपये और दूसरी तरफ तीन लाख रुपये! एक तरफ तीन साल और दूसरी तरफ तीस साल। जबतक कोई सार्वजनिक बालिग मताधिकार नही मिल जाता है तबतक हम अक्सर ऐसे मतावलम्बो की प्रतिध्वनि सुना करते है। मुसलमान दोनो जातियो के लिए मताधिकार के भिन्न-भिन्न स्टैण्डर्ड चाहते है जिससे कि मतदाताओ मे ठीक-ठीक अनुपात कायम रहे।

१९१० में हालत बहुत नाजुक हो गई। सर डबल्यू० एम० वेडरबर्न कांग्रेस के सभापति हुए थे। आपने यह चाहा था कि हिन्दू और मुसलमानो की एक परिषद् की जाय, जिससे इस जातिगत प्रश्न पर मेल हो जाय। उस समय म्युनिसिपैलिटियो और लोकल-बोर्डो में पृथक् निर्वाचन का तरीका जारी होने की बात चल रही थी। युक्तप्रात में, जहा कि पृथक् निर्वाचन नही था, यह पाया गया कि सयुक्त निर्वाचन में मुसलमानो की सख्या कुल आबादी की $\frac{1}{7}$ होते हुए भी जिला-बोर्डो में मुसलमान १८९ और हिन्दू ४४५ चुने गये और म्युनिसिपैलिटियो में मुसलमान ३१० और हिन्दू ५६२। यहा तक कि सर जॉन ह्यूवेट जैसा प्रतिगामी सयुक्तप्रात का लेफ्टिनेण्ट गवर्नर भी उस प्रात में दोनो जातियो के मेल-मिलाप में खलल डालने के हक में नही था। हा श्रीयुत जिन्ना ने जरूर स्थानिक सस्थाओ में पृथक् निर्वाचन प्रचलित करने की निन्दा की थी। एक 'बर्न' सरक्यूलर निकला था, जो कि स्थानिक सस्थाओ में जातिगत प्रतिनिधित्व के पक्ष में था। उसमें यह प्रतिपादन किया गया था कि मुसलमानो को पृथक् निर्वाचन के अलावा सयुक्त निर्वाचन में भी राय देने की सुविधा होनी चाहिए, क्योकि इससे दोनो जातियो में अच्छे ताल्लुकात कायम रखने में मदद

मिलेगी। इसपर प० विशननारायण दर ने, जो कि १९११ में कलकत्ता-काग्रेस के सभापति थे, कहा था कि "मैं इतना ही कहूँगा कि हमारी एकता बढाने की यह उत्कण्ठा, हमारे भोलेपन से, बहुत भारी हुण्डी लिखवा लेना है।" उन्होने यह भी बताया, कि "जब सर डब्ल्यू० एम० वेडरबर्न और सर आगाखा की सलाह के मुताबिक दोनो जातियो के प्रतिनिधि एक साल पहले इलाहाबाद मे मिलनेवाले थे, इस उद्देश से कि आपस के मतभेद मिटा दिये जायें, तब एक गोरे अखबार ने जो कि सिविल सर्विसवालो का पत्र समझा जाता है, लिखा था कि 'ये लोग क्यो इन दोनो जातियो को मिलाना चाहते हैं, सिवा इसके कि दोनो जातियो को मिलाकर सरकार की मुखालिफत की जाय?' उसका यह वाक्य भारत की राजनैतिक स्थिति पर एक भयानक प्रकाश डालता है।"

१९१३ मे नवाब सय्यद मुहम्मदबहादुर ने, जो कराची काग्रेस (१९१३) के सभापति थे, "यूरोप में तुर्क-साम्राज्य की नीव उखाडने और ईरान के दम घोटने के प्रयत्नो" की ओर ध्यान दिलाया था। तुर्की साम्राज्य को लगे उस धक्के को जिस दु ख के साथ मुसलमानो ने महसूस किया उसीको उन्होने वहा प्रदर्शित किया। अन्त मे उन्होने हिन्दुओ और मुसलमानो को अपनी मातृभूमि के लिए कन्धे-से-कन्धा लडाकर काम करने पर बहुत जोर दिया। यह हमें १९२१ के खिलाफत-आन्दोलन और हिन्दू-मुसलमान-सम्बन्धो पर हुए उसके असर की याद दिलाता है। यूरोप के रोगी (१९वी सदी तक के तुर्किस्तान को यही कहा जाता था) ने अबतक हिन्दुस्तान की राजनीति की गति-विधि को बनाने में बडा भाग लिया है। ये स्थितिया थी जिन में १९१३ की कराची-काग्रेस में हिन्दू और मुसलमानो ने अपने भेदभाव मिटा दिये और मुस्लिम-लीग के इस विचार को, कि ब्रिटिश-साम्राज्य के अन्तर्गत भारतवासियो को स्व-शासन दिया जाय, पसन्द किया और हिन्दू-मुसलमानो के बीच मेल एव सह-योग का भाव बढाने के मुस्लिम-लीग के कथन को पसन्द किया। काग्रेस ने मुस्लिम-लीग द्वारा प्रदर्शित इस आशा का भी स्वागत किया कि भिन्न-भिन्न जातियो के नेता राष्ट्रीय हित के तमाम मसलो पर मिलकर एक साथ काम करने का रास्ता निकालने की हर तरह कोशिश करें और सच्चे दिल से हर जाति व तबके के लोगो से प्रार्थना की कि वे इस उद्देश की पूर्ति में हर तरह से सहायता करे।

उस समय काग्रेसवालो के मनोभाव कैसे ऊँचे उठ रहे थे, इसका पता उन वक्ताओ के भाषणो की बढी-चढी भाषा से लगता है जो कराची में (१९१३) इस विषय के प्रस्ताव पर बोले थे। स्वर्गीय भूपेन्द्रनाथ वसु के भाषण के कुछ अश हम

यहां उद्धृत करते हैं—"हम हिन्दू-मुसलमान सबको अपना ध्यान एक ही ओर—संयुक्त आदर्श की ओर—लगाना चाहिए, क्योंकि आज का हिन्दुस्तान न तो हिन्दुओं का है, न मुसलमानों का, और न अधगोरों का। तब यूरोपियनों का तो और भी दूर। बल्कि यह वह हिन्दुस्तान है, जिसमें हम सब हिस्सा रखते हैं। अगर पिछले दिनों कोई गलतफहमियां हुई हों, तो हमें अब उन्हें भूल जाना चाहिए। भविष्य-काल का भारत अबसे ज्यादा बलवान्, ज्यादा शरीफ, ज्यादा महान्, ज्यादा ऊँचा, होगा, नहीं-नहीं, वह तो उस भारतवर्ष से भी कहीं उज्ज्वल होगा जिसे अशोक ने अपने राज्य के सम्पूर्ण गौरव में अनुभव किया था और अकबर ने अपने मनोराज्य में जैसा कुछ चित्र भारत का खींच रखा था उससे भी कहीं बेहतर वह भारत होगा।"

एक बार जहां घाव हुआ कि फिर उसमें से मवाद बहता ही रहा। अगर हिन्दुओं ने चुपचाप और राजी-रजामंदी से मुसलमानों को जो-कुछ चाहते थे वह दे दिया होता तो यह प्रश्न कभी का हल हो गया होता। हां, यह सच है कि जैसे-जैसे खाना खाते जायेंगे वैसे-वैसे भूख बढ़ती जायगी, परन्तु उसके साथ यह भी सत्य है कि ज्यों-ज्यों ज्यादा खायेंगे त्यों-त्यों भूख मरती जाती है। जातिगत प्रतिनिधित्व-सबन्धी मिण्टो-मॉर्ले-योजना हिन्दुस्तान के मत्थे जबरदस्ती मढ दी गई थी। लोगों से इसके बारे में कोई सलाह-मशविरा नहीं लिया गया। इसलिए १९१६ में, जब सुधारों के नये टुकड़े देने की तजवीज चल रही थी, देश ने सोचा कि हिन्दू-मुसलमानों का हृदय परस्पर मिल जाना चाहिए और इसके लिए कांग्रेस और मुस्लिम-लीग दोनों के प्रतिनिधि (नवम्बर १९१६) कलकत्ते में इंडियन एसोसियेशन के स्थान पर मिले—इस उद्देश से कि १९१५ में कांग्रेस ने जो आदेश दिया था उसके अनुसार आपसी समझौते और रजामन्दी से प्रतिनिधित्व की योजना बनाई जाय। इसी समय मुस्लिम-लीग ने स्व-शासन को अपना उद्देश बना लिया था। आत्म-निर्णय के सिद्धान्त की भावनायें जगह-जगह फैल रही थीं। यूरोपीय युद्ध भी सब छोटे और पिछड़े हुए राष्ट्रों पर इस सिद्धान्त को लागू करने के लिए ही लड़ा जा रहा था। ऐसी दशा में समझौते में जो बात हो रही थी उसके लिए वातावरण अनुकूल था। परन्तु कांग्रेस के हलके में जो बड़े-बूढ़े लोग थे वे अपनी तरफ से कुछ करने में आनाकानी करते थे। इसका सब भार युवकों पर आ पड़ा। आखिर उम्र में सबसे छोटे लोगों ने, जो उस समय मौजूद थे, आगे कदम बढ़ाया। सर सैयद अहमद ने कहा था—"हिन्दू और मुसलमान हिन्दुस्तान की दो आंखें हैं। अगर दो में से एक भी नष्ट हो जाय तो सारा चेहरा बदसूरत हो जायगा।" [illegible] की [illegible] भी भावना भी [illegible]। फिर

प्रान्तो की सख्या १५ फी सदी से कम हो उनमें कम-से-कम १५ फी सदी प्रतिनिधि कौंसिल में रखना तय हुआ। अब रह गये पजाब और बगाल। हमेशा की तरह इनका मामला है तो पेचीदा, परन्तु १९१६ में लखनऊ में सुलझाया गया।

प्रवासी भारतवासी

जहा भारत में भारतीयो की स्थिति काफी खराब थी, तहा दक्षिण-अफ्रीका-स्थित भारतीयो की हालत बद से बदतर हो रही थी। १८९६ ई० में यह कानून बना कि नेटाल, दक्षिण-अफ्रीका, के शर्तबन्द प्रवासी अपने इकरारनामे की अवधि के समाप्त होने पर या तो अपनी गुलामी को फिर नये सिरे से शुरू करावें—कुली बनने का इकरारनामा फिर से भरें, या अपनी वार्षिक आय के आधे भाग के बराबर मनुष्य-कर (पॉल टैक्स) दें। इस प्रसग पर डॉ० मुजे के शब्द दोहराना असगत न होगा, जो उन्होने लगभग १९०३ में बोअर-युद्ध के सिलसिले में एम्बुलेंस-कोर के साथ की गई अफ्रीका-यात्रा के बाद वहा से आकर कहे थे—"हमारे शासक हमें मनुष्य नही समझते।" इसी प्रसग में श्री वी० एन० शर्मा ने इग्लैण्ड को यह चेतावनी दी थी कि साम्राज्य मे एक जाति की उन्नति या प्रभुता स्थायी नही रह सकती। उन्होने काशी की २१ वी काग्रेस (१९०५) में कहा था—"यदि हम अपने प्रति सच्चे रहें तो बडे बडे दार्शनिको, महान् राजनीतिज्ञो और वीरवर योद्धाओ को उत्पन्न करनेवाली जाति छोटी-छोटी बातो के लिए दूसरी जाति के पाव नही पड सकती।"

अखिल भारतीय काग्रेस के सामने सबसे पहले श्री मदनजीत ने दक्षिण अफ्रीका का प्रश्न उपस्थित किया था। इसमें सन्देह नही कि और भी अनेक ऐसे भारतीय मित्र थे, जो समय-समय पर अफ्रीका जाते थे और वहा के पूरे समाचार यहा की जनता तक पहुँचाते थे, लेकिन श्री मदनजीत प्रतिवर्ष इसी उद्देश से आते थे। अपने नारगी कपडो, ठिगने कद तथा लम्बी लाठी के कारण वह काग्रेस में कभी छिपे न रह सकते थे। हाल ही में बुढापे में हुई उनकी मृत्यु ने राष्ट्रीय सभा से एक परिचित व्यक्ति को उठा दिया है। दक्षिण-अफ्रीका-सम्बन्धी अयोग्यताओ का वस्तुत पहला विरोध १८९४ मे हुआ, जब कि अध्यक्ष ने इस आशय का प्रस्ताव पेश किया कि औपनिवेशिक-सरकार का वह बिल रद कर दिया जाय, जिसमें भारतीयो को मताधिकार नही दिया गया था। इसके बाद हर काग्रेस में दक्षिण अफ्रीका का प्रश्न अधिकाधिक महत्त्व ग्रहण करता गया और हर साल ही यह आवाज उठाई जाती कि "हमें किस तरह बिना पास के यात्रा करने की और ९ बजे रात के बाद घूमने तक की आजादी

नही है, किस तरह हमें ट्रासवाल में उन बस्तियो में भेजा जाता है जहा कूडा-करकट जलाया जाता है, किस तरह हमें रेलो के पहले और दूसरे दर्जे के डिब्बो में बैठने की इजाजत नहीं है, ट्रामकारो से बाहर निकाल दिया जाता है, फुटपाथ से धक्के दे दिये जाते है, होटलो से बाहर रक्खा जाता है, सार्वजनिक बाग-बगीचो का लाभ हमें नहीं उठाने दिया जाता, और किस तरह हमपर थूका जाता है, हमें धिक्कारा जाता है, गालिया दी जाती है और उन अमानुष तरीको से अपमानित किया जाता है जिन्हें कोई मनुष्य धीरता-पूर्वक सहन नही कर सकता।"

१८९८ में भारतीयो के अयोग्यता-सम्बन्धी तीन और कानून पास किये जा चुके थे और उसी समय गाधीजी ने अपना प्रसिद्ध आन्दोलन शुरू किया। इसमें भी सबसे अधिक अफसोस की बात यह थी कि तत्कालीन वाइसराय लॉर्ड एल्गिन ने इन कानून के पास होने पर सहमति दी थी और उस समय के भारत-मत्री लॉर्ड जॉर्ज हैमिल्टन हमें 'जगलियो की जाति' कहकर सतुष्ट हुए थे। १९०० में भूतपूर्व बोअर जनतत्र ब्रिटिश-उपनिवेश में मिला लिये गये थे। १६ वें अधिवेशन (१९००) में इसका निर्देश करते हुए कहा गया था कि स्वतत्र बोअरो पर नियत्रण करने में सरकार को जो कठिनाई होती थी वह दूर हो गई है और इसलिए अब नेटाल में प्रवेश-सम्बन्धी पाबन्दिया और डीलर्स लाइसैन्स-कानून उठा देने चाहिएँ। १९०१ की १७ वी काग्रेस (कलकत्ता) में गाधी जी ने दक्षिण अफ्रीका-प्रवासी लाखो भारतीयो की ओर से प्रार्थी के रूप मे दक्षिण अफ्रीका के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव पेश किया था १९०२ में भारत-मत्री से इस प्रश्न पर एक शिष्ट-मडल भी मिला, लेकिन कोई नतीजा न निकला। काग्रस ने १९०३ और १९०४ में अपने प्रस्तावो को दोहराया। ब्रिटिश-सरकार के जिम्मेवार हलको में बोअर-युद्ध के जितने कारण घोषित किये गये थे, उनमें से एक यह भी था कि "ब्रिटिश सम्राट् की भारतीय प्रजा के साथ जनतत्र में दुर्व्यवहार किया जाता है" और यह माग की गई थी कि "भारतीय प्रवासियो के साथ भी न्याय और समान व्यवहार किया जाय।" काग्रेस ने इस वक्तव्य की ओर भी सबका ध्यान खीचा। लेकिन १९०५ में हालत और भी खराब हो गई। बोअर-शासन में जिन कानूनो का सख्ती से पालन नही होता था, उनका पालन ब्रिटिश-शासन में और भी सख्ती से होने लगा। काग्रेस ने इसका भी तीव्र विरोध किया और शर्तबन्दी कुली-प्रथा तथा अन्य प्रतिबधक कानूनो को हटाने की माग की। सरकार ने ट्रान्सवाल में इस आर्डिनेंस को 'फिल्हाल' चालू करने की आज्ञा नहीं दी। इससे भारतीयो को सतोष हुआ। लेकिन १९०६ में दक्षिण अफ्रीका के लिए जो शासन-

विधान स्वीकृत किया गया, उसमें एक प्रस्ताव के अनुसार इसके पुनर्जीवन की स्पष्ट सभावना थी। १६०८ में भी भारतीयो के कष्ट दूर नही हुए। इन दिनो दक्षिण-अफीका के नये शासन-विधान की पूर्ति हो रही थी। कांग्रेस ने सरकार से अनुरोध किया कि इसको बनाते हुए भारतीय हितो की भी पूरी रक्षा की जाय। १६०८ की २३वी कांग्रेस (मदरास) में श्री मुशीरहुसेन किदवई ने एक प्रस्ताव पेश किया, जिसमें उपनिवेशो में उच्चकुलीन और प्रतिष्ठित भारतीयो तक के साथ होनेवाले कठोर, अपमानजनक और क्रूर व्यवहार पर रोष प्रकट किया गया था और यह चेतावनी भी दी गई थी कि इसके फल-स्वरूप ब्रिटिश-साम्राज्य के हितो को भारी हानि पहुँचेगी।

१६०६ में कांग्रेस ने यह अनुभव किया कि उसके सारे अनुरोध, विनय आदि का कोई परिणाम नही निकला। इस वर्ष की कांग्रेस में श्री गोखले ने प्रस्ताव पेश करते हुए "अधिकारियो के विश्वास-घात और गाधीजी के नेतृत्व में भारतीयो के लम्बे और शान्त-सग्राम" का वर्णन किया। अब प्रभावकारी आन्दोलन का समय आ चुका था और निष्क्रिय प्रतिरोध (सत्याग्रह) का महान् सग्राम शुरू हुआ। उसी स्थान पर १८,०००) का चन्दा भी इकट्ठा हो गया। इसके आलावा सर जमशेदजी ताता के दूसरे पुत्र श्री रतन ताता ने प्रवासी भारतीयो के कष्ट-निवारण के लिए २५,०००) दिये। कांग्रेस ने २४ वें अधिवेशन (लाहौर १६०६) में इस उदारता के लिए श्री रतन जे० ताता को धन्यवाद दिया। कांग्रेस के आगामी अधिवेशन (इलाहाबाद १६१०) तक निष्क्रिय प्रतिरोध का सग्राम अपनी चरम-सीमा पर पहुँच चुका था। कांग्रेस ने ट्रान्सवाल के उन सब भारतीयो के उत्कट देश-प्रेम, साहस और त्याग की प्रशसा की, जो अपने देश के लिए वीरतापूर्वक कैद भोगते हुए, अनेक कठिनाइयो के रहते हुए भी, अपने प्रारभिक नागरिक अधिकारो के लिए शान्तिपूर्ण और स्वार्थहीन लडाई लड रहे थे।

कांग्रेस का २७ वा अधिवेशन (१६११) अधिक आशामय वातावरण में सम्पन्न हुआ, क्योकि इसमें रजिस्ट्रेशन और गिरमिट-सम्बन्धी एशिया-विरोधी कानूनो को रद कराने पर ट्रासवाल के भारतीय समाज और गाधीजी को हार्दिक धन्यवाद दिया जा सका था। लेकिन कांग्रेस ने "हाल ही में हुए प्रान्तीय बस्तियो सम्बन्धी भावी कानून की सभावना में" यह प्रस्ताव पास किया था। अगले साल (१६१२) में भी गिरमिट-कानून की अनेक धाराओ का विरोध करने की आवश्यकता प्रतीत हुई, क्योकि दक्षिण अफीका की यूनियन ने अपने वचनो को तोड दिया था। ब्रिटिश सम्राट् से कांग्रेस ने इस कानून को रद कर देने का अनुरोध भी किया। उन दिनो लॉर्ड हार्डिंग

वाइसराय थे। उन्होंने इस मामले में कड़ाई का रुख लिया और उन्हे और अधिक बलशाली बनाने के लिए कराची कांग्रेस ने १९१३ में शर्तबंदी कुली-प्रथा को नष्ट करने का अपना प्रस्ताव दोहराया। इसके बाद शीघ्र ही यह प्रथा तोड़ दी गई और कांग्रेस ने दक्षिण अफ्रीका के आशिक समझौते के लिए लॉर्ड हार्डिंग के प्रति कृतज्ञता प्रकट की, यद्यपि १९१६ और १९१७ में इस प्रश्न पर फिर से विचार करना पड़ा। कराची-अधिवेशन में गांधीजी तथा उनके अनुयायियो के वीरतापूर्ण प्रयत्नो और भारत के आत्मसम्मान की रक्षा और भारतीयो के कष्ट-निवारण की लडाई में किये गये अपूर्व आत्मत्याग की प्रशसा मे एक प्रस्ताव पास किया गया।

कनाडा की प्रिवी कौंसिल ने 'लगातार यात्रा-धारा' के नाम से प्रसिद्ध आज्ञा देकर भी भारत के लिए एक मनोरजक समस्या उत्पन्न कर दी थी। कराची-कांग्रेस ने १९१३ के २८ वें अधिवेशन में इस आधार पर इसका विरोध किया।

"कनाडा की प्रिवी कौंसिल के हुक्म (न० ९२०) के अनुसार जो आमतौर पर 'लगातार यात्रा-धारा' कहलाता है, वहा जाने की जो मनाही है उसका यह कांग्रेस विरोध करती है, क्योकि उससे प्रत्येक ऐसे भारतीय के कनाडा जाने की मनाही हो जाती है जो वहा रहने न लग गया हो। क्योकि दोनो महाद्वीपो के बीच कोई सीधा जहाज नही आता-जाता और जहाजवाले सीधा टिकट देने से इनकार करते हैं, जिससे वहा रहनेवाले भारतीय अपने बाल-बच्चो को नही ला पाते हैं, इसलिए यह कांग्रेस साम्राज्य-सरकार से प्रार्थना करती है कि उपर्युक्त 'लगातार यात्रा-धारा' रद कर दी जाय।"

गत महासमर छिडने के बाद जल्दी ही भारत के इतिहास में एक मजेदार, नवीन और अद्भुत घटना हुई। आनेवाली सतति को इस कथा से अनजान न रहना चाहिए। कनाडा की इस धारा को तोडने के लिए बाबा गुरुदत्तसिंह नामक एक सिक्ख सज्जन ने 'कोमागाटामारू' जहाज किराये पर लिया और हागकाग या टोकियो बिना ठहराये ही उस जहाज पर ६०० सिक्खो को कनाडा ले गये।

कोमागाटामारू जहाज के यात्रियो को कनाडा में उतरने नही दिया गया और जहाज को भारत में लौटना पडा। वापसी पर यात्रियो को बजबज से, जहा वे उतरे थे सीधा पजाब जाने की आज्ञा दी गई और दूसरी किसी जगह जाने की मनाही कर दी गई। यात्रियो ने सीधे पजाब जाना पसन्द नही किया। उन्होंने कहा, पहले सरकार हमारी बात तो सुन ले, हमारे साथ इस हुक्म से अन्याय होता है और इसमें हमें आर्थिक हानि भी बहुत होगी। सीधे पजाब जाने के बजाय उन्होंने गिरफ्तार हो

जाना अधिक अच्छा समझा। कोमागाटामारू के आदमियो की, जिनमें सिन्ध के प्रो० मनसुखानी (अब स्वामी गोविन्दानन्द) भी थे, शेष कहानी—दगा कैसे हुआ, कितने आदमी मारे गये या गिरफ्तार हुए, बाबा गुरुदत्तसिंह ७-८ साल तक कैसे गुम रहे और उडीसा, दक्षिण भारत, ग्वालियर, राजपूताना, काठियावाड और सिन्ध मे किस तरह १९१८ तक घूमते रहे, उसके बाद कैसे बम्बई जाकर महाल बन्दर में वल्दराज के नाम से एक जहाजी-कम्पनी के मैनेजर हो गये, कैसे वह अपने निर्वासन-काल (नवम्बर १९२१) में गाधीजी से मिले जिन्होने उन्हे गिरफ्तार हो जाने की सलाह दी, कैसे उन्होने इस परामर्श को कार्यान्वित किया, २८ फरवरी १९२२ को वह लाहौर-जेल से उस आर्डिनेन्स की अवधि समाप्त होने पर छोडे गये जिसके अनुसार वह गिरफ्तार किये गये थे, आदि—इस पुस्तक के क्षेत्र के बाहर की चीज है।

नमक

१९३० के नमक-सत्याग्रह के कारण, नमक-कर का प्रश्न भारतीय राजनीति में खास तौर पर महत्त्वपूर्ण हो गया है। जो लोग नमक-कर की उत्पत्ति और १८३६ के नमक-कमीशन की सिफारिशें जानते है, उन्हें यह जान कर बहुत आश्चर्य होगा कि १८८८ में कांग्रेस ने इस कर का विरोध इस आधार पर नही किया कि यह कर अन्यायपूर्ण था और इसका उद्देश ब्रिटेन के जहाजी व्यवसाय और निर्यात-व्यापार को बढाना था, बल्कि इस आधार पर किया, कि "नमक-कर में हाल ही में की गई वृद्धि से गरीब लोगो पर भार और भी बढ गया है, और इसके द्वारा सरकार ने शान्ति और सुख के समय में ही ऐसे कोष में से खर्च करना शुरू कर दिया है, जो खास मौको के लिए साम्राज्य की एकमात्र निधि है।" १८९० में कांग्रेस ने नमक-कर में की गई वृद्धि को वापस लेने की—न कि नमक-कर को हटाने की—माग की। आठ दूसरे मौको पर कांग्रेस ने केवल इसी प्रार्थना को दोहराया और एक समय १८६८ के दर को और एक दफा १८८८ के दर को कायम रखने की माग की। १९०२ में इस प्रश्न पर अन्तिम बार विचार करते हुए कांग्रेस ने यह भी कहा, कि "इस समय जो बहुत-सी बीमारिया फैल रही है उनका एक खास कारण (नमक-कर के कारण) नमक का कम इस्तेमाल किया जाना भी है।" इसके बाद 'नमक' कांग्रेस मे उठकर कौंसिलो में पहुँच गया और वहा श्री गोखले खास तौर पर इसमें दिलचस्पी लेते रहे।

शराब और वेश्यावृत्ति

नैतिक पवित्रता इतनी आवश्यक वस्तु है कि कांग्रेस उसपर ध्यान दिये बिना न रह सकी। शराब की बढती हुई खपत को देखकर सयम और मद्य-निवारण की माग की गई। मि० केन और स्मिथ ने कामन-सभा में इस प्रश्न को उपस्थित किया और १८८६ में इस सम्बन्ध में एक प्रस्ताव भी पास हुआ। कांग्रेस ने भी कामन-सभावाले प्रस्ताव को 'कार्य-रूप में परिणत करने' का अनुरोध किया। १८६० में कांग्रेस ने शराब पर आयात-कर की वृद्धि, हिन्दुस्तानी शराब पर कर लगाने, बगाल-सरकार के ठेके पर शराब बनाने की पद्धति को दूर करने के निश्चय तथा मदरास-सरकार के (१८८६-६०) ७,००० शराब की दूकानें बन्द करने पर हर्ष प्रकट किया, लेकिन इस बात पर खेद भी प्रकट किया, कि सब प्रान्तो ने भारत-सरकार के खरीते की इन हिदायतो पर अमल नही किया कि "स्थानीय जनता के भाव को जानने का प्रयत्न किया जाय और मालूम होने पर उचित रूप से उसका सम्मान किया जाय।" इसके बाद दस साल तक कांग्रेस ने इस प्रश्न पर कोई विचार नही किया। १६०० में जाकर कांग्रेस ने सस्ती बिकने के परिणाम-स्वरूप शराब की बढती हुई खपत को देखकर सरकार से प्रार्थना की, कि "वह अमरीका के 'मेन लिकर-लॉ' के समान कोई कानून बनावे और सर विलफीड लॉसन के 'परमिसिव बिल' या 'लोकल आप्शन एक्ट' के समान कोई बिल पेश करे और दवा के सिवा दूसरे कामो के लिए आनेवाली नशीली वस्तुओ पर अधिक कर लगावे।" इस प्रसग में यह याद करना रुचिकर होगा कि कुमार एन० एम० चौधरी ने कांग्रेस में श्री केशवचन्द्र सेन की इस शिकायत को भी उद्धृत किया था, कि ब्रिटिश-सरकार जहा हमारे लिए शैक्सपीयर और मिल्टन लाई है वहा शराब की बोतलें भी लाई है।

राज्य-नियन्त्रित वेश्या-वृत्ति का लोप समाज-सुधार से सम्बद्ध एक विषय था। यह सब जानते है कि सरकार अपने सैनिको के लिए छावनियो में या युद्ध-यात्राओ में स्त्रियो को एकत्र करती थी। जब ये चीजें पहले-पहल अमल में लाई गई तो बहुत भीषण मालूम हुई, लेकिन ज्यो-ज्यो उनका सहवास बढने लगा त्यो-त्यो क्षोभ कम होता गया। कांग्रेस के चौथे अधिवेशन (१८८८) ने मि० यूल की अध्यक्षता में उन भारत-हितैषियो के साथ सहयोग की इच्छा प्रकट की, जो भारत में राज्य की ओर से बननेवाले कानूनो और नियमो को पूर्णतया रद कराने के लिए इग्लैण्ड में कोशिश कर रहे थे। कैप्टन वैनन ने अपने एक ओजस्वी भाषण में कहा था कि २,००० से अधिक भारतीय स्त्रियो को सरकार ने वेश्यावृत्ति के कुत्सित उद्देश से

इकट्ठा किया था। इससे युवक सिपाही असयत जीवन बिताने को प्रोत्साहित हुए। इलाहाबाद में हुए आठवें अधिवेशन (१८९२) मे कामन-सभा को "भारत—सरकार द्वारा बनाये गये पवित्रता-सम्बन्धी कानून के विषय में उसकी जागरूकता के लिए" धन्यवाद दिया गया और एक बार फिर भारत में सरकार द्वारा नियमित अनैतिक कार्यों का विरोध किया गया।

इससे अगले साल इण्डिया-आफिस-कमिटी के पार्लमेण्ट के सदस्यो ने छावनियो की वेश्यावृत्ति तथा छूत रोगो-सम्बन्धी नियमो, आज्ञाओ और प्रथाओ के विषय में एक रिपोर्ट तैयार की। कांग्रेस ने घोषणा की कि रिपोर्ट में वर्णित कारनामे और आज्ञायें कामन-सभा के ५ जून १८८८ के प्रस्ताव के अर्थ और उद्देश के विरुद्ध थी और इन तरीको और बुरी प्रथाओ को बन्द करने के एकमात्र उपाय, स्पष्ट कानून, बनाने की माग की।

स्त्रियाँ और दलित जातियाँ

मि० माण्टेगु की भारत-यात्रा के साथ ही नागरिक-अधिकारो के सम्बन्ध में स्त्रियो का दावा भी देश के सामने पेश हुआ—और, वस्तुत यह बहुत आश्चर्यजनक है कि भारत में कितनी जल्दी पुरुषो के समान स्त्रियो के अधिकार मान लिये गये। कलकत्ता-कांग्रेस ने १९१७ में यह सम्मति प्रकट की थी, कि "शिक्षा तथा स्थानीय सरकार से सम्बन्ध रखनेवाली निर्वाचित-सस्थाओ में मत देने तथा उम्मीदवार खडे होने की, स्त्रियो के लिए भी, वही शर्तें रक्खी जायें जो पुरुषो के लिए है।" इसीसे मिलते-जुलते दलित-जातियो के प्रश्न पर भी, इसी कांग्रेस ने एक उदार प्रस्ताव स्वीकार किया —

"यह कांग्रेस भारतवासियो से आग्रह-पूर्वक कहती है कि परम्परा से दलित जातियो पर जो रुकावटें चली आ रही है वे बहुत दु ख देनेवाली और क्षोभकारक हैं, जिससे दलित जातियो को बहुत कठिनाइयो, सख्तियो और असुविधाओ का सामना करना पडता है, इसलिए न्याय और भलमसी का यह तकाजा है कि ये तमाम बन्दिशें उठा दी जायें।"

विविध

इस अवधि में कांग्रेस ने समय-समय पर और भी अनेक विषयो की ओर ध्यान दिया। शिक्षा के विविध पहलुओ—प्राथमिक, विद्यापीठी, पुरातत्व और कला-कौशल-

सबधी शिक्षा में कांग्रेस ने बहुत दिलचस्पी ली। प्रान्तीय और केन्द्रीय राजस्व, चादी-कर, आयकर और विनिमयदर के मुआवजे आदि आर्थिक विषयो पर भी कांग्रेस प्राय ध्यान देती रही। स्थानिक स्वराज्य-सस्थाओ और विशेषत मदरास और कलकत्ता के कारपोरेशनो के सबध में प्रतिगामी कानूनो से कांग्रेसी बहुत रुष्ट हुए। स्वास्थ्य और विशेषत प्लेग और क्वारण्टीन-सबधी, बेगार वगैरा पर भी कभी-कभी विचार हो जाता था। राजभक्ति की शपथ भी कई बार ली गई। १९०१ में महारानी विक्टोरिया की मृत्यु और १९१० में सम्राट् एडवर्ड की मृत्यु पर कांग्रेस को अपनी राजभक्ति फिर प्रकट करने का अवसर मिला। एडवर्ड और जार्ज पचम के (१९०५ में युवराज और १९१० में सम्राट् की हैसियत से) स्वागत-सबधी प्रस्ताव भी पास किये गये।

ब्रह्मदेश

आज हम देखते हैं कि बर्मा के पृथक्करण को लेकर एक बडा सघर्ष-सा चल पडा है। एक क्षण के लिए हम फिर उस वर्ष में चले जब कि कांग्रेस का जन्म हुआ था। पहली कांग्रेस (१८८५) ने बर्मा के मिलाये जाने पर यह प्रस्ताव पेश किया था—"यह कांग्रेस उत्तरी बर्मा के ब्रिटिशराज्य में मिलाये जाने का विरोध करती है और उसकी राय में —यदि सरकार दुर्भाग्यवश उसे मिलाने का ही निश्चय कर ले तो— पूरा ब्रह्मदेश हिन्दुस्तानी वाइसराय के कार्य-क्षेत्र से अलग रक्खा जाय और एक शाही उपनिवेश बना दिया जाय तथा प्रत्येक कार्य में सीलोन के अनुसार वह इस देश के शासन से अलग रक्खा जाय।"

कांग्रेस का विधान

कांग्रेस के इन ५० सालो के जीवन में विधान-सबधी इतने क्रान्तिकारी परिवर्त्तन हुए हैं कि विधान का इतिहास भी बहुत रोचक हो गया है। यह सब जानते हैं कि कांग्रेस की स्थापना किसी ज्वाइण्ट स्टॉक कम्पनी की तरह 'आर्टिकल्स' या 'मेमो-रेण्डम आफ एसोसियेशन' बनाकर या १८६० के २१ वें कानून के अनुसार 'रजिस्टर्ड सोसाइटी' की तरह पहले से ही नियमादि बनाकर नही हुई है। इसकी शुरुआत तो कुछ प्रसिद्ध पुरुषो के सम्मेलनो से हुई। यह अपने ऊँचे उद्देश की प्राप्ति नैतिक बल से ही कर सकती थी। इसने धीरे-धीरे अपने नैतिक बल से अपने आकार-प्रकार और शक्ति में वृद्धि प्राप्त की है। और इसी नैतिक बल पर इसने अपने महान् उद्देश की पूर्ति का

दारोमदार रखता है। शुरू में १८८६ में कांग्रेस के संचालन के लिए एक विधान तथा नियम बनाने पर गंभीरता से विचार हुआ। एक प्रस्ताव-द्वारा नियम बनाने के लिए कमिटी तो बना दी गई, लेकिन विधान बनाने का काम पीछे के लिए छोड़ दिया, जब तक कांग्रेस को कुछ अधिक अनुभव हो जाय तथा वह अन्य प्रान्तों में भी घूम आवे। १८८९ में कांग्रेस के प्रतिनिधि इतनी भारी संख्या में आये कि कांग्रेस को प्रति दस लाख जन-संख्या के पीछे पांच प्रतिनिधियों की संख्या सीमित कर देनी पड़ी। भारत में कांग्रेस का एक सहायक-मंत्री नियुक्त हुआ और इंग्लैण्ड की कमिटी को भी एक वैतनिक मंत्री दिया गया। इस पद पर पहले-पहल सुप्रसिद्ध मि० डब्ल्यू० डिग्बी, सी० आई० ई० नियुक्त हुए।

वह कांग्रेस का चौथा अधिवेशन (१८८८) था, जब यह निश्चित किया गया कि "जिस प्रस्ताव के उपस्थित किये जाने में हिन्दू या मुसलमान अपने सम्प्रदाय के नाम पर सर्वसम्मति से या लगभग सर्वसम्मति से आपत्ति करेंगे, वह विषय-समिति में विचार के लिए पेश नहीं किया जा सकेगा।" यह याद रखना चाहिए कि यही नियम उस विधान में भी स्वीकृत हुआ, जो सूरत के झगड़े के बाद १९०८ में बनाया गया था; फर्क सिर्फ अनुपात का रहा, जो अब सर्व सम्मति के बजाय ¾ कर दिया गया। प्रतिनिधियों की संख्या घटाकर १००० कर देने का प्रस्ताव १८८९ में पास हुआ, लेकिन अमल में वह दूसरे वर्ष (१८९० में) ही लाया गया।

इंग्लैण्ड में किये जानेवाले काम को कितना महत्त्वपूर्ण समझा जाता था, यह इसीसे मालूम होता है कि १८९२ में ६०,०००) की भारी रकम ब्रिटिश-कमिटी और कांग्रेस के पत्र 'इण्डिया' के खर्च के लिए पास की गई। १२ वें अधिवेशन (१८९६) में भी इतनी ही रकम पास की गई थी। १८९८ में कांग्रेस के विधान को बनाने का नया प्रयत्न किया गया। वस्तुतः मदरास-कांग्रेस ने विधान का एक मसविदा जगह-जगह भेजा और उसपर विचार करने तथा अगले अधिवेशन तक उसकी एक निश्चित योजना बनाने के लिए एक कमिटी भी नियत की। दूसरे साल (१८९९) लखनऊ में एक संपूर्ण विधान स्वीकृत हुआ। उस समय तथा १९०८, १९२० और १९२९ के वर्षों में कांग्रेस ने अपने जो-जो ध्येय निश्चित किये, उनकी तुलना बड़ी मनोरंजक होगी। लखनऊ में कांग्रेस का ध्येय इस प्रकार निश्चित हुआ था —

"वैध उपायों से भारतीय साम्राज्य के निवासियों के स्वार्थों और हित को बढ़ाना अखिल-भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का ध्येय होगा।"

सारी वस्तुस्थिति का ठीक-ठीक अनुमान लगा सकने के लिए पाठकों को १९०८

में स्वीकृत सस्थाओ जैसे स्व-शासन, १९२० मे समर्थित शान्तिपूर्ण और उचित उपाय तथा लाहौर (१९२९) में स्वीकृत पूर्ण स्वराज्य के ध्येय की ओर ध्यान देना चाहिए। लखनऊ-विधान के अनुसार कार्य-सचालन के लिए कांग्रेस-द्वारा निश्चित ४५ सदस्यो की एक कमिटी बनाई गई। साल के खर्च के लिए ५०००) स्वीकृत किये गये। स्थायी कांग्रेस कमिटियो की स्थापना तथा प्रान्तीय सम्मेलनो के आयोजन द्वारा कांग्रेस का काम सारे साल-भर चालू रखने की व्यवस्था की गई। अध्यक्ष का चुनाव तथा प्रस्तावो के मसविदे बनाने का काम इडियन कांग्रेस कमिटी करती थी। सात ट्रस्टियो के नाम पर कांग्रेस के लिए एक स्थायी कोष भी स्थापित किया गया। प्रत्येक प्रान्त मे एक-एक ट्रस्टी कांग्रेस नियुक्त करती थी। १९०० में ४५ सदस्यो वाली इडियन कांग्रेस कमिटी और बडी कर दी गई। पद की हैसियत से इतने व्यक्ति और सदस्य मान लिये गये—सभापति, मनोनीत सभापति, जिस दिन से नामजद किया जाय, पिछली कांग्रेसो के सभापति, कांग्रेस के मत्री और सहायक मत्री तथा स्वागत-समिति द्वारा मनोनीत उसके अध्यक्ष और मत्री।

लन्दन में कार्य का सगठन १९०१ में शुरू किया गया। 'इडिया' पत्र को और सुचारु रूप से चलाने के लिए उसकी ४००० कापिया बिकने का इस तरह प्रबन्ध किया कि प्रत्येक प्रान्त एक नियत सख्या में 'इडिया' खरीदे। 'इडिया' और ब्रिटिश-कमिटी का खर्च पूरा करने के लिए १९०२ से प्रत्येक प्रतिनिधि से फीस के अलावा १०) और लेने का भी निश्चय किया गया। यह स्पष्ट है कि उन दिनो कांग्रेस भारत और इग्लैण्ड में अपने कार्य के लिए खर्च करने में कोताही न करती थी। बम्बई के २० वें अधिवेशन (१९०४) में यह निश्चय किया गया कि पार्लमेण्ट के चुनाव से पहले इग्लैण्ड में एक शिष्ट-मण्डल भेजा जाय और इस कार्य के लिए ३०,०००) इकट्ठे किये जायें। काशी में (१९०५) कांग्रेस के उद्देशो को पूरा करने और उसके प्रस्तावो के अनुसार कार्य करने के लिए १५ सदस्यो की एक स्थायी कमिटी बनाई गई। १९०६ में दादाभाई नौरोजी ने कांग्रेस का उद्देश एक शब्द में रख दिया—"हमारा सारा आशय केवल एक शब्द स्व-शासन या स्वराज्य (जैसा इग्लैण्ड या उपनिवेशो में है) में आ जाता है।" तथापि जब इसे प्रस्ताव के रूप में रखने का प्रश्न उठा, तो इसे नरम कर दिया गया। कांग्रेस का प्रस्ताव यह था—"स्वराज्य प्राप्त ब्रिटिश उपनिवेशो में जो शासन-प्रणाली है, वही भारत में भी जारी की जाय" और इसके लिए अनेक सुधारो की भी माग की गई।

कलकत्ता-कांग्रेस का वातावरण राष्ट्रीयता की भावना से लबालब था, इसमें

सन्देह नही, इसलिए राष्ट्र को सगठित करने की दिशा में एक और कदम बढाया गया और निश्चय किया गया कि —"प्रत्येक प्रान्त अपनी राजधानी में उस तरह से प्रान्तीय काग्रेस कमिटी का सगठन करे, जिस तरह कि प्रान्तीय सम्मेलन मे निश्चय किया जाय। काग्रेस के तमाम विषयो में प्रान्तीय काग्रेस कमिटी प्रान्त की ओर से कार्य करेगी और उसे प्रान्त में काग्रेस का काम बराबर चलाते रहने के लिए जिला-सस्थाएँ सगठित करने का विशेष प्रयत्न करना चाहिए।" काग्रेस के सभापति की निर्वाचन-प्रणाली भी बदल दी गई। प्रान्तीय काग्रेस कमिटी द्वारा मनोनीत व्यक्तियो में से स्वागत-समिति अपनी तीन-चौथाई राय से किसीको सभापति चुना करे, किन्तु यदि किसी व्यक्ति के लिए इतना बहुमत न मिले तो केन्द्रीय स्थायी समिति (४६ सदस्यो की बनाई गई नई समिति) इस प्रश्न का अन्तिम निर्णय करे।

विषय-निर्वाचिन-समिति के निर्णय का भी नया तरीका जारी किया गया। कमिटी के ८५ सदस्य तो प्रतिनिधि ही रहेंगे और उस प्रान्त के १० और प्रतिनिधि लिये जायँगे जिसमें काग्रेस हो। उस वर्ष के सभापति, स्वागत-समिति के अध्यक्ष, पिछले अधिवेशनो के सभापति और स्वागत-समिति के अध्यक्ष, कांग्रेस के प्रधान मन्त्रीगण और काग्रेस के उस वर्ष के स्थानीय मत्री भी अपने पद के अधिकार से विषय-निर्वाचिनी समिति के सदस्य माने गये।

काग्रेस-विधान में जो नया परिवर्तन हुआ वह वस्तुत युग-प्रवर्त्तक था। सूरत के झगडे के कारण जिन नेताओ ने इलाहाबाद मे 'कन्वेन्शन' खडा किया उन्होने बहुत ही सख्त विधान बनाया। सबसे पहले यह घोषणा की गई कि बाकायदा निर्वाचित सभापति बदला नही जा सकेगा, क्योकि सूरत में डॉ० रासबिहारी घोष के चुनाव पर ही बडा झगडा हुआ था। इसके बाद लोगो के विचार का वास्तविक विषय था—काग्रेस का क्रीड यानी ध्येय। सूरत-काग्रेस के भग के एक दिन बाद २८ दिसम्बर (१६०७) को वैसे ही विचार रखनेवाले लोगो ने मिलकर यह प्रस्ताव पास किया—"काग्रेस का उद्देश है ब्रिटिश-साम्राज्य के अन्य स्वशासित राष्ट्रो में प्रचलित शासन-प्रणाली भारत के लोगो के लिए भी प्राप्त करना और उन राष्ट्रो के साथ बराबरी के नाते साम्राज्य के अधिकारो और जिम्मेवारियो में सम्मिलित होना।"

१६०८ के विधान के अनसार विभिन्न प्रान्तो से महासमिति (आल इडिया काग्रेस कमिटी) के सदस्य इस तरह चुने जाते थे —

(१) मदरास १५, (२) बम्बई १५, (३) सयुक्त बगाल २०, (४) सयुक्त प्रान्त १५, (५) पजाब या सीमाप्रान्त १३, (६) मध्यप्रान्त ७, (७) बिहार

उडीसा* १५, (८) बरार ५, (९)बर्मा २,

यह भी तय हुआ कि यथासभव कुल सख्या का ५ वा हिस्सा मुसलमान सदस्य चुने जायें।

इसके अलावा भारत में उपस्थित या भारत मे रहनेवाले कांग्रेस के सभापति और प्रधान-मत्री भी महा-समिति के सदस्य माने जायें। कांग्रेस का प्रधान मत्री इसका भी प्रधान मत्री समझा जाय।

इसी तरह विषय-निर्वाचिनी समिति भी बहुत बढ गई। महा-समिति के सभी सदस्य और कुछ निर्वाचित व्यक्ति उसके सदस्य माने गये। प्रत्येक प्रान्त से आये हुए प्रतिनिधि ही इनका चुनाव करते थे।†

इन उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए ये उपाय सोचे गये—(१) वैध उपाय का अवलम्बन, (२) वर्तमान-शासन प्रवन्ध में क्रमश स्थायी सुधार करना, (३) राष्ट्रीय एकता को बढाना, (४) सार्वजनिक सेवा की भावना को उत्तेजना देना, और (५) राष्ट्र के बौद्धिक, नैतिक, आर्थिक तथा व्यावसायिक साधनो का सगठन व विकास। १९०८ के विधान में पहली वार यह धारा भी रक्खी गई कि ऐसे किसी प्रस्ताव पर विचार न हो, जिनके विरुद्ध तीन-चौथाई हिन्दू या मुसलमान प्रतिनिधि हो। पुराने कागजात देखने से हमें मालूम होता है कि किस विचित्र तरीके से इस धारा का पालन होता था। कांग्रेस के १५ वें अधिवेशन (लखनऊ १८९९) में 'पजाव लैण्ड एलीनेशन विल' की निन्दा का प्रस्ताव पास हुआ था। यह विल उन दिनो बडी कौंसिल के सामने पेश था और इसका आशय यह था कि किसानो के हाथ से जमीन न खरीदी जा सके, न बन्धक रक्खी जा सके। लेकिन आगामी १६वें अधिवेशन (लाहौर, १९००) में हिन्दू-मुसलमान प्रतिनिधियो के पारस्परिक मत-भेद के कारण विषय-समिति ने इस कानून

---

* इस विधान में विहार, जो अबतक पश्चिमी बगाल का भाग माना जाता था, पहली बार एक पृथक् प्रान्त के रूप में माना गया। १९०८ में ही बिहार की पहली प्रान्तीय परिषद् श्री० (पीछे सर) सैयद अलीइमाम की अध्यक्षता में हुई।

† महा-समिति की सख्या पीछे और भी बढा दी गई। १९१७ तक इसके सदस्यों का चुनाव इस तरह होता था—१४ मदरास, ११ आंध्र, २० बम्बई, ५ सिंध, २५ बंगाल, २५ युक्तप्रांत, ५ दिल्ली, ३ अजमेर-मेरवाड़ा, २० पंजाब, १२ मध्य-प्रान्त, २० बिहार व उडीसा, ७ बरार व ५ बर्मा। विषय-समिति में प्रत्येक प्रान्त की ओर से इतने ही सदस्य और प्रतिनिधियों द्वारा चुने जाते थे।

(बिल अब कानून बन चुका था) पर विचार करना स्थगति कर दिया, ताकि एक साल तक इस कानून का प्रयोग भी देख लिया जाय।

संयुक्त-बंगाल-प्रान्तीय कांग्रेस कमिटी ने कांग्रेस के विधान में कुछ परिवर्तन सुझाये, जो इलाहाबाद (१९१०) में एक उप-समिति को सौंपे गये। १९११ में कलकत्ता के अधिवेशन में इस समिति की सिफारिशें स्वीकार कर ली गईं और आगे संशोधनों के लिए वह महासमिति के सुपुर्द किया गया। इसके बाद ५ सालों तक कोई परिवर्तन नहीं हुआ। १९१४ में जब यूरोप का महासमर छिड़ गया, तब श्रीमती एनी बेसेण्ट ने अपना महान् राजनैतिक आन्दोलन अ० भा० होमरूल-लीग की छत्रच्छाया में आरम्भ किया।

१९१८ तक सरकार द्वारा अस्वीकृत मांगें

भारत की राष्ट्रीय मांग केवल भावनात्मक नहीं है, उसके पक्ष में प्रबल और व्यावहारिक युक्तियां हैं, और वर्तमान अवस्थाओं में सुधारों की अधिक सम्भावना नहीं है, यह सिद्ध करने के लिए यहां उन प्रस्तावों और विरोधों का उल्लेखमात्र कर देना काफी होगा, जो कांग्रेस ने बार-बार पेश किये मगर जिनपर ३२ साल से भारत-सरकार ने व प्रान्तीय सरकारों ने कोई ध्यान नहीं दिया और १९१८ तक भी वे हमारी मांगें बनी रहीं —

(१) इण्डिया कौंसिल तोड़ दी जाय (१८८५)

(२) सरकारी नौकरियों के लिए इंग्लैण्ड और भारत दोनों जगह परीक्षायें ली जायें (१८८५)

(३) भारत और इंग्लैण्ड में सेना-व्यय का अनुपात न्यायपूर्ण हो (१८८५)

(४) जूरी-द्वारा मुकदमों का सुनाई अधिकाधिक हो (१८८६)

(५) जूरी के फैसले अन्तिम समझे जायें (१८८६)

(६) वारण्टवाले मामलों में अभियुक्तों को यह अधिकार देना कि उनका मुकदमा मजिस्ट्रेट के सामने पेश न होकर दौरा-जज की अदालत में पेश हो (१८८६)

(७) न्याय और शासन-विभाग अलहदा किये जायें (१८८६)

(८) भारतीय सैनिक-स्वयंसेवकों में भर्ती किये जायें (१८८७)

(९) सैनिक-अफसरी-शिक्षा देने के लिए भारत में सैनिक कालेजों की स्थापना की जाय (१८८७)

(१०) शस्त्र-कानून व नियमों में संशोधन किया जाय (१८८७)

(११) औद्योगिक उन्नति और कला-कौशल की शिक्षा के सम्बन्ध में अमली नीति काम में लाई जाय (१८८८)

(१२) लगान-नीति में सुधार किया जाय (१८८९)

(१३) मुद्रा-नीति के सम्बन्ध में (१८९२)

(१४) स्वतन्त्र सिविल-मेडिकल-सर्विस का निर्माण (१८९३)

(१५) विनिमय-दर मुआवजे का बन्द करना (१८९३)

(१६) वेगार और जवर्दस्ती रसद की प्रथा बन्द करना (१८९३)

(१७) 'होम-चार्जेज' में कमी करना।

(१८) सूती कपडे पर से उत्पत्ति-कर हटा लिया जाय (१८९३)

(१९) वकीलो में से ऊँचे न्याय-विभाग के अफसर नियुक्त किये जावें (१८९४)

(२०) उपनिवेशो में भारतीयो की स्थिति (१८९४)

(२१) देशी-राज्य-स्थित प्रेसो के सम्बन्ध में भारतीय सरकार द्वारा प्रकाशित नोटिफिकेशन (१८९१) वापिस लिया जाय (१८९४)

(२२) किसानो की कर्जदारी दूर करने के उपाय किये जायें (१८९५)

(२३) तीसरे दर्जे की रेल-यात्रा की स्थिति में सुधार किया जाय (१८९५)

(२४) प्रान्तो को आर्थिक स्वतन्त्रता दी जाय (१८९६)

(२५) शिक्षा-विभाग की नौकरियो का इस तरह पुन सगठन हो जिससे भारतीयो के साथ न्याय हो सके (१८९६)

(२६) १८१८, १८१९ और १८२७ के क्रमश. बंगाल, मदरास और वम्बई के रेग्युलेशन वापस लिये जायें (१८९७)

(२७) १८९८ के राजद्रोह-सम्बन्धी कानून के विषय में (१८९७)

(२८) १८९८ के ताजिरात हिन्द व जाब्ता फौजदारी के विषय में (१८९७)

(२९) १८९९ के कलकत्ता म्यूनिसिपल एक्ट के विषय में (१८९८)

(३०) १९०० के 'पजाव लैण्ड एलीनेशन एक्ट' को रद करना (१८९८)

(३१) भारतीय जनता की आर्थिक स्थिति की जाच की जाय (१९००)

(३२) छोटी सरकारी नौकरियो में भारतीयो की अधिक भरती की जाय (१९००)

(३३) 'पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेण्ट' में ऊँचे पदो पर भारतीयो की नियुक्ति सम्बन्धी पाबन्दिया उठा दी जायें (१९००)

(३४) इग्लैण्ड में होनेवाली पुलिस-प्रतिस्पर्द्धा-परीक्षाओ में भारतीयो को भी लिया जाय व पुलिस के ऊँचे ओहदो पर उनकी नियुक्ति की जाय (१९०१)

(३५) भारत-स्थित ब्रिटिश-सेना के कारण भारत पर, ७,८६,००० पौण्ड प्रतिवर्ष का जो खर्च लादा गया, उसके विषय में (१९०२)

(३६) इण्डियन यूनिवर्सिटी कमीशन की सिफारिशो के सम्बन्ध में (१९०२)

(३७) इण्डियन यूनिवर्सिटी एक्ट १९०४ के विषय में (१९०३)

(३८) आफीशियल सीक्रेट्स एक्ट १९०४ के बारे में (१९०३)

(३९) इण्डिया आफिस के खर्च तथा भारत-मत्री के वेतन के विषय में (१९०४)

(४०) भारत के राजकाज की पार्लमेण्ट-द्वारा समय-समय पर जाच की जाय (१९०५)

(४१) स्थानीय स्वराज्य की प्रगति के सम्बन्ध में (१९०५)

(४२) १९०८ के क्रिमिनल लॉ अमेडमेण्ट एक्ट के बारे में (१९०८)

(४३) १९०८ के अखबार-कानून के विषय में (१९०८)

(४४) मुफ्त और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा दी जाय (१९०८)

(४५) लेजिस्लेटिव कौंसिल रेग्युलेशन में सुधार किया जाय (१९०९)

(४६) युक्त-प्रान्त के शासन-प्रवन्ध की जाच की जाय (१९०९)

(४७) लॉ-मेम्बर का पद एडवोकेटो, वकीलो और एटर्नियो के लिए खोल दिया जाय (१९१०)

(४८) राजद्रोही सभावन्दी कानून के विषय मे (१९१०)

(४९) इडियन प्रेस-एक्ट के बारे में (१९१०)

(५०) बढते हुए सार्वजनिक व्यय की जाच की जाय (१९१०)

(५१) राजनैतिक कैदियो की आम रिहाई की जाय (१९१०)

(५२) श्री गोखले के प्रारभिक शिक्षा-बिल के विषय में (१९१०)

(५३) सयुक्त-प्रान्त के लिए सपरिषद् गवर्नर मिलने के विषय में (१९११)

(५४) पजाब में कार्यकारिणी कौसिल रखने के सबध में (१९११)

(५५) इण्डिया कौंसिल मे सुधार किया जाय (१९१३)

(५६) इग्लैण्ड मे रहनेवाले भारतीय विद्यार्थियो के विषय मे (१९१५)

: ३ :

कांग्रेस के विकास की प्रारम्भिक भूमिका

पुराने कांग्रेसियों का दृष्टिकोण व नीति

काग्रेस को स्थापित हुए अबतक ५० वर्ष हो गये। इस लम्बे अरसे में भारत के राष्ट्रीय विकास की कई भूमिकाओ से वह गुजर चुकी है। हा, आगे जाकर उसके अन्दर कुछ मतभेद जरूर पैदा हो गये थे। परन्तु पिछला जमाना तो १८८५ से १९१५ बल्कि १९२१ तक ऐसा रहा, जिसमें भिन्न-भिन्न रायो और विचारो के लोगो ने मिलकर अपने लिए प्राय एक ही कार्यक्रम तजवीज किया था। इसका यह अर्थ नही कि उन दिनो भारतीय राजनीति में मत-भेद और विचार-भेद पैदा ही नही हुए थे, बल्कि यह कि वे गिनती में आने लायक न थे।

युद्ध का निर्णय करने में या लडाई की रचना में सबसे बडी कठिनाई है युद्ध-क्षेत्र का चुनाव और व्यूह-रचना। दोनो तरफ के लोग हमला करें या बचाव, प्रार्थना करें या विरोध, युद्ध रोककर शत्रु को सन्धि-चर्चा के लिए निमन्त्रण दें या एकदम छापा मारकर उसे घेर लें, इन्हीकी उधेड-बुन में लगे रहते हैं। युद्ध-क्षेत्र में इन्ही प्रश्नो पर सेनापतियो के दिमाग परेशान रहते है। इसी तरह राजनैतिक क्षेत्र में भी ऐसे प्रश्न आते है, जहा नेताओ को यह तय करना पडता है कि आन्दोलन महज लफ्जी और कागजी हो या कुछ करके बताया जाय। यदि कुछ कर दिखाना हो तब उन्हें यह निश्चय करना पडता है कि लडाई प्रत्यक्ष हो या अप्रत्यक्ष। यो तो ये प्रश्न बडी तेजी से हमारी आखो के सामने दौड जाते है और उससे भी ज्यादा तेजी के साथ हमारे दिमाग में चक्कर काटते है, परन्तु राजनैतिक लडाइयो में बीसो वर्षों में जाकर कही एक के बाद दूसरी स्थिति का विकास होता है और जो काम पचास वर्षों की जबर्दस्त लडाई के बाद आज बडा आसान और मामूली दिखाई देता है वह हमारे पूर्वजो को, जिन्होने कि काग्रेस की शुरुआत की, अपनी कल्पना के बाहर मालूम हुआ होता। जरा खयाल कीजिए कि विदेशी माल के या कौंसिलो के, अदालतो या कालेजो के बहिष्कार या कुछ कानूनो के सविनय भग का कोई प्रस्ताव उमेशचन्द्र बनर्जी या सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, सर फीरोज-

शाह मेहता या प० अयोध्यानाथ, लालमोहन घोष या मनमोहन घोष, सुब्रह्मण्य ऐयर या आनन्दा चार्लू, ह्यूम साहब और वेडरबर्न साहब के सामने रक्खा गया है। अब यह सोचने में जरा भी देर नही लग सकती कि इन विचारो के कारण वे कितने भडक उठे होते और न ऐसे उग्र कार्यक्रम, बग-भग के, कर्जन और मिण्टो की प्रतिगामी नीतियों के, या गाधीजी के दक्षिण अफ्रीका सम्बन्धी अनुभवो के या जालियावाला बाग के हत्या-काण्ड के पहले बन ही सकते थे। बात यह कि पिछली सदी के अन्त के प्रारम्भिक पन्द्रह सालो के लडाई-झगडो में जो काग्रेस-नेता रहे वे ज्यादातर वकील-बैरिस्टर और कुछ व्यापारी एव डॉक्टर थे, जिनका सच्चे दिल से यह विश्वास था कि हिन्दुस्तान सिर्फ इतना ही चाहता है कि अग्रेजो और पार्लमेण्ट के सामने उसका पक्ष बहुत सुन्दर और नपी-तुली भाषा में रख दिया जाय। इस प्रयोजन के लिए उन्हें एक राजनैतिक सगठन की जरूरत थी और इसके लिए उन्होने राष्ट्रीय काग्रेस की स्थापना की। उसके द्वारा वे राष्ट्र के दु खो और उच्च आकाक्षाओ को प्रदर्शित करते रहे। जब इस बात की याद करते हैं कि किन-किन व्यक्तियो ने भारत की राजनीति को बनाया और उसे प्रभा-वित किया, इनके विश्वास क्या थे, तब वे सब भिन्न-भिन्न युग हमारे सामने आ जाते है जिनमें कि भारतीय राजनैतिक आन्दोलन इन पचास वर्षो में बँट गया है। वह जमाना और हालतें ही ऐसी थी कि अपने दु ख-दर्द दूर करने के लिए हाकिमो के सामने सिवा दलील और प्रार्थना करने के और नई रिआयतो और विशेषाधिकारो के लिए मामूली माग करने के और कुछ नही हो सकता था। फिर यह मनोदशा आगे जाकर शीघ्र ही एक कला के रूप में परिणत हो गई। एक ओर कानून-प्रवीण बुद्धि और दूसरी ओर खूब कल्पनाशील और भावना-प्रधान वक्तृत्व-कला, दोनो ने उस काम को अपने ऊपर ले लिया जो भारतीय राजनीतिज्ञो के सामने था। काग्रेस के प्रस्तावो के समर्थन में जो व्याख्यान होते थे और काग्रेस के अध्यक्ष जो भाषण दिया करते थे उनमें दो बातें हुआ करती थी—एक तो प्रभावकारी तथ्य और आकडे, दूसरे अकाट्य दलीलें। उनके उद्गारो में जिन बातो पर अक्सर जोर दिया जाता था वे ये है—अग्रेज लोग बडे न्यायी है और अगर उन्हें ठीक तौर पर वाकिफ रक्खा जाय तो वे सत्य और हक के पथ से जुदा न होंगे, हमारे सामने असली मसला अग्रेजो का नही बल्कि अधगोरो का है; बुराई पद्धति में है, न कि व्यक्ति में, काग्रेस बडी राजभक्त है, ब्रिटिश-ताज से नही बल्कि हिन्दुस्तानी नौकरशाही से उसका झगडा है, ब्रिटिश-विधान ऐसा है जो लोगो की स्वाधीनता का सब जगह रक्षण करता है और ब्रिटिश-पार्लमेण्ट प्रजातन्त्र-पद्धति की माता है; ब्रिटिश-विधान ससार के सब विधानो से अच्छा है, काग्रेस राजद्रोह करनेवाली

संस्था नही है, भारतीय राजनीतिज्ञ सरकार का भाव लोगो तक और लोगो का सरकार तक पहुँचाने के स्वाभाविक साधन है, हिन्दुस्तानियो को सरकारी नौकरिया अधिकाधिक दी जानी चाहिएँ, ऊँचे पदो के योग्य बनाने के लिए उन्हें शिक्षा दी जानी चाहिए, विश्व-विद्यालय, स्थानिक सस्थायें और सरकारी नौकरिया ये हिन्दुस्तान के लिए तालीम-गाह होनी चाहिएँ, धारा-सभाओ में चुने हुए प्रतिनिधि होने चाहिएँ और उन्हें प्रश्न पूछने तथा बजट पर चर्चा करने का अधिकार भी देना चाहिए, प्रेस और जगल-कानून की कड़ाई कम होनी चाहिए, पुलिस लोगो की मित्र बनके रहे, कर कम होने चाहिएँ, फौजी खर्च घटाया जाय, कम-से-कम इग्लैण्ड उसमें कुछ हिस्सा ले, न्याय और शासन-विभाग अलहदा-अलहदा हो, प्रान्त और केन्द्र की कार्य-कारिणियो और भारत-मत्री की कौंसिल में हिन्दुस्तानियो को जगह दी जाय, भारतवर्ष को ब्रिटिश-पार्लमेण्ट में प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व मिले और प्रत्येक प्रान्त से दो प्रतिनिधि लिये जायें, नॉन-रेग्यु-लेटेड प्रान्त रेग्युलेटेड प्रान्तो की पक्ति में लाये जायें, सिविल सर्विसवालो के बजाय इग्लैण्ड के सार्वजनिक जीवन के नामी-नामी अग्रेज गवर्नर बनाकर भेजे जायें, नौक-रियो के लिए भारत और इग्लैण्ड में एक-साथ परीक्षायें ली जायें, इग्लैण्ड को प्रति वर्ष जो रुपया भारत से जाता है वह रोका जाय और देशी उद्योग-धधो को तरक्की दी जाय, लगान कम किया जाय और बन्दोबस्त दायमी कर दिया जाय। कांग्रेस यहा तक आगे बढी कि उसने नमक-कर को अन्याय-पूर्ण बतलाया, सूती माल पर लगे उत्पत्ति-कर को अनुचित बतलाया और सिविलियन लोगो को दिये जानेवाले विनिमय-दर-मुआवजे को गैर-कानूनी बतलाया तथा ठेठ १८९३ में मालवीयजी महाराज की दृष्टि यहा तक पहुँच गई थी कि उन्होने ग्राम-उद्योगो के पुनरुद्धार के लिए भी एक प्रस्ताव उपस्थित किया था।

भारतीय राजनीतिज्ञो का ध्यान जिन-जिन विषयो की ओर गया था उनका एक-निगाह में सिंहावलोकन करने से यह आसानी से मालूम हो जाता है कि उनकी मनोरचना किस प्रकार हुई थी। उस समय जब कि भारतीय राजनैतिक क्षेत्र में कोई पथ-दर्शक नहीं था, उन लोगो ने जो रुख अख्त्यार किया था उसके लिए हम उन्हें बुरा नही कह सकते। किसी भी आधुनिक इमारत की नींव में छ फीट नीचे जो ईंट, चना और पत्थर गड़े हुए हैं क्या उनपर कोई दोष लगाया जा सकता है? क्योंकि वही तो हैं जिनके ऊपर सारी इमारत खडी हो सकी है। पहले उपनिवेशो के ढग का स्व-शासन, फिर साम्राज्य के अन्तर्गत होमरूल, उसके बाद स्वराज्य और सबके ऊपर जाकर पूर्ण स्वाधीनता की मजिले एक-के-बाद-एक बन सकी हैं। उन्हें अपनी स्पष्ट बात के

भी समर्थन में अग्रेजो के प्रमाण देने पडते थे। अपनी समझ और अपनी क्षमता के अनुसार, उन्होने बहुत परिश्रम और भारी कुर्बानिया की थी। आज अगर हमारा रास्ता साफ है और हमारा लक्ष्य स्पष्ट है, तो यह सब हमारे उन्ही पुरखाओ की बदौलत है कि जिन्होने जगल-झाडियो को साफ करने का कठिन काम किया है। अतएव इस अवसर पर हम उन तमाम महापुरुषो के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रदर्शित करें जिन्होने कि हमारे सार्वजनिक जीवन की आरम्भिक मजिलो में प्रगति की गाडी को आगे बढाया था।

ब्रिटिश राज्य में युद्ध

काग्रेसियो के दिलो में कभी-कभी कुछ उत्तेजना और रोष के भाव आ गये हो, पर इसमें कोई शक नही कि ठेठ १८८५ से १९०५ तक काग्रेस की जो प्रगति हुई उसकी बुनियाद थी वैध-आन्दोलन के प्रति उनका दृढ और अग्रेजो की न्याय-प्रियता पर अटल विश्वास ही। इसी भाव को लेकर १८९३ में स्वागताध्यक्ष सरदार दयालसिंह मजीठिया ने काग्रेस के विषय में कहा था कि "भारत में ब्रिटिश-शासन की कीर्ति का यह कलश है।" आगे चलकर उन्होने यह भी कहा कि "हम उस विधान के मातहत सुख से रह रहे हैं जिसका विरुद है आजादी, और जिसका दावा है सहिष्णुता।" काग्रेस के चौथे अधिवेशन (इलाहाबाद, १८८८) के प्रतिनिधि ने लॉर्ड रिपन का यह विचार उद्धृत किया था—"महारानी का घोषणा-पत्र कोई सुलह-नामा नही है, न वह कोई राजनैतिक लेख ही है, बल्कि वह तो सरकार के सिद्धान्तो का घोषणा-पत्र है।" लॉर्ड सेल्सबरी के इस वचन पर कि "प्रतिनिधियो के द्वारा शासन की प्रथा पूर्वी लोगो की परम्परा के मुआफिक नही है", जोर के साथ नाराजगी प्रकट की गई थी और १८९० में सर फिरोजशाह मेहता ने तो यहा तक कह दिया था कि "मुझे इस बात का कोई अन्देशा नही है कि ब्रिटिश-राजनीतिज्ञ अत में जाकर हमारी पुकार पर अवश्य ध्यान देंगे।" बारहवें अधिवेशन (१८९६) के अध्यक्ष पद से मुहम्मद रहीमतुल्ला सयानी ने तो और भी असदिग्धरूप में कहा कि "अग्रेजो से बढकर ज्यादा ईमानदार और मजबूत कौम इस सूरज के तले कही नही है।" और जब कि उस कौम ने हिन्दुस्तानियो के अनुनय-विनय और विरोध का जवाब उलटा दमन से दिया, तब भी मदरास-काग्रेस (१८९८) के अध्यक्ष आनदमोहन बसु ने जोर देकर कहा था, कि "शिक्षित-वर्ग इग्लैण्ड के दोस्त हैं, दुश्मन नही। इग्लैण्ड के सामने जो महान् कार्य है उसमें वे उसके स्वाभाविक तथा आवश्यक मित्र और सहायक हैं।" हमारे इन पूर्व-पुरुषो ने अग्रेजो और

इंग्लैण्ड के प्रति जो विश्वास रक्खा वह कभी-कभी दयाजनक और हेय मालूम होता है, परन्तु हमारा कर्तव्य तो यही है कि हम उनकी मर्यादाओ को समझें। डॉ० सर रास-बिहारी घोष के शब्दो में (२३ वी कांग्रेस, मदरास, १९०८) "अपने कोमल विचार उन तक भेजें जिन्होने अपने समय में अपने कर्तव्य का भरसक पालन किया है, फिर चाहे वह कितना ही अपूर्ण और त्रुटि-युक्त क्यो न हो, उनके बारे में अच्छी-बुरी रायें भी क्यो न हो। हो सकता है कि उनका उत्साह कुछ दबा हुआ हो, परन्तु मै बिना शेखी के कहूगा कि वह उत्साह सच्चा और शुद्ध भाव से परिपूर्ण था। वह वैसा ही था जिसे देखकर नौजवानो के दिल हिल उठते है और अनुप्राणित होते रहते है।" कांग्रेस के इतिहास में जो पहला जबरदस्त आन्दोलन हुआ वह पाच वर्षो (१९०६ से १९११) तक रहा। उसे उस समय ऐसे दमनकारी उपायो का सामना करना पडा जो उस समय जगली समझे गये। हालाकि उसमें इधर-उधर मार-काट भी हो गई, मगर अत में उसमें पूरी सफलता मिली। आखिर १९११ में शाही घोषणा कर दी गई कि बगभग रद कर दिया गया। किन्तु यह ब्रिटिश-सरकार की भारी प्रशसा का विषय बन गया। इससे ब्रिटिश-न्याय के प्रति लोगों के मन में नया विश्वास पैदा हो गया और धुआधार वक्तृताओ द्वारा कृतज्ञता-प्रकाश होने लगा। श्री अम्बिकाचरण मुजुमदार ने कहा —"ब्रिटिश ताज के प्रति श्रद्धा-भक्ति के भावो से भरा प्रत्येक हृदय आज एक तान से धडक रहा है, वह ब्रिटिश-राजनीतिज्ञता के प्रति कृतज्ञता और नवीन विश्वास से परिपूर्ण हो रहा है। हममें से कुछ लोगो ने तो कभी—अपनी मुसीबतो के अन्धकार-मय दिनो में भी—ब्रिटिश न्याय के अन्तिम विजय की आशा नहीं छोडी थी, उसपर से अपना विश्वास नही उठने दिया था।"* परन्तु इसी के साथ कांग्रेसियो ने उन दु खदायी

---

*पुराने जमाने में कांग्रेसी लोगों को अपनी राजभक्ति की परेड दिखाने का शौक था। १९१४ में जब लॉर्ड पेण्टलैंड (गवर्नर) मदरास में कांग्रेस के पण्डाल में आये तो सब लोग उठ खडे हुए और तालियो-द्वारा उनका स्वागत किया। यहा तक कि श्री० ए० पी० पेट्रो, जो कि उस समय पर एक प्रस्ताव पर बोल रहे थे, एकाएक रोक दिये गये और उनकी जगह सुरेन्द्रनाथ बनर्जी को राजभक्ति का प्रस्ताव उपस्थित करने के लिये कहा गया जिसे कि उन्होने अपनी समृद्ध भाषा में पेश किया।

ऐसी ही घटना लखनऊ-कांग्रेस (१९१६) के समय भी हुई थी, जब कि सर जैम्स मेस्टन कांग्रेस में आये थे और उपस्थित लोगों ने खडे होकर उनका स्वागत किया था।

कानूनो की तरफ से भी अपना ध्यान नही हटाया था, जो कि १९११ और उससे भी आगे तक जारी ही थे। कांग्रेस के बडे-बूढो ने, इसमें कोई सन्देह नही कि, अपनी सारी शक्ति शासन-विषयक सुधारो में और दमनकारी कानूनो को हटवाने में लगाई थी; परन्तु इससे यह अन्दाज करना गलत होगा कि वे सिर्फ भारतीय प्रश्न के अशो का ही खयाल करते थे, पूरे प्रश्न का नही। १८८६ के कलकत्ता अधिवेशन में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने कहा था—"स्व-शासन प्रकृति की व्यवस्था है, विधि का विधान है, प्रकृति ने अपनी पुस्तक में स्वय अपने हाथो से यह सर्वोपरि व्यवस्था लिख रक्खी है—प्रत्येक राष्ट्र अपने भाग्य का आप ही निर्माता होना चाहिए।" २० वें अधिवेशन के सभापति-पद से सर हेनरी कॉटन ने 'भारत के सयुक्त-राज्य' अथवा 'भारत के स्वतत्र और पृथक् राज्यो के सघ' की कल्पना की थी। दादाभाई ने यूनाइटेड किंगडम या उपनिवेशो के जैसे स्व-शासन या स्वराज्य का जिक्र किया था।

सरकार द्वारा कांग्रेसियों का सम्मान

कांग्रेस के पहले पच्चीस सालो में जिनके ऊपर कांग्रेस की राजनीति का दारो-मदार रहा, वे सरकार के दुश्मन नही थे। यह बात न केवल उन घोषणाओ से ही सिद्ध होती है जो कि समय-समय पर उनके द्वारा की जाती रही है, बल्कि स्वय सरकार भी उनके साथ रिआयतें करके और जब-जब हिन्दुस्तानियों को ऊँचे पद व स्थान देने का मौका आया तब-तब उन्हीको उसके लिए चुनकर यही सिद्ध करती रही है। ऐसे उच्च पदो के लिए न्याय-विभाग का क्षेत्र ही स्वभावत सबसे उपयुक्त था। मदरास के सर एस० सुब्रह्मण्य ऐयर तो कांग्रेस के पहले ही अधिवेशन में सामने आये और श्री वी० कृष्णस्वामी ऐयर १९०८ में हुई मदरास की पहली कन्वेन्शन-कांग्रेस के एकमात्र कर्त्ता-धर्त्ता थे, जो बहुत कडे विधान के मातहत हुई थी और जिसके लिए तत्कालीन मदरास गवर्नर ने अपना तम्बू देने की कृपा की थी। राष्ट्रवादियो और कांग्रेस का उल्लेख करते हुए यह कहनेवाले श्री कृष्णस्वामी ऐयर ही थे कि जो अग सड-गल कर बेकाम हो गये है उन्हें काट डालना चाहिए। सर शकरन् नायर अमरा-वती में हुए अधिवेशन (१८९७) के सभापति हुए थे। और तो और पर श्री रमेशन् (सर वेपा सिनो) १८९८ से कांग्रेसवादी ही थे, जिस साल कि उन्होने दक्षिण अफ्रीका-प्रवासी भारतीयो की कठिनाइयो के सम्बन्ध में पेश किये गये प्रस्ताव का अनुमोदन किया था। इसके बाद जिनका नम्बर आता है वे है (१) श्री टी० वी० शेषगिरि ऐयर, जो १९१० की कांग्रेस मे सामने आये, और (२) श्री पी० आर० सुन्दरम् ऐयर, जो १९०८

में श्री कृष्णस्वामी ऐयर के एक उत्साही सहकारी थे। ये छहो मदरास-हाईकोर्ट के जज बनाये गये और इनमें से दो कार्य-कारिणी कौंसिल के सदस्य भी हो गये—एक मदरास में और दूसरा दिल्ली में। इनमें से पहले (सर सुब्रह्मण्य) १८९९ मे कांग्रेस के सभापति होनेवाले थे परन्तु हाईकोर्ट के जज बना दिये जाने के कारण रह गये थे। श्रीमती बेसेण्ट द्वारा चलाये गये होमरूल-आन्दोलन के समय, १९१४ में, यह फिर कांग्रेस के क्षेत्र मे आ गये। यही नही, बल्कि अपनी नाइटहुड (सर की उपाधि) का भी परित्याग कर दिया, जिससे मि० माण्टेगु और लॉर्ड चेम्सफोर्ड दोनो ही इनपर नाराज हो गये। कहते है कि भूतपूर्व जज की हैसियत से जो पेन्शन इन्हें मिलती थी उसे बन्द कर देने की भी बात उस समय उठी थी, परन्तु बाद में कुछ सोचकर फिर ऐसा किया नही गया। और आगे चलें तो, सर पी० एस० शिवस्वामी ऐयर और सर सी० पी० रामस्वामी ऐयर भी कांग्रेसी थे। इनमें से पहले तो १८९५ की कांग्रेस में सामने आये थे और दूसरे थे तो बाद के नये रंगरूट लेकिन रहे सदा पहलो से भी ज्यादा उत्साही, क्योंकि डा० बेसेण्ट और उनके साथियो की नजरबन्दी के समय उन्होने तो सत्याग्रह (निष्क्रिय प्रतिरोध) के प्रतिज्ञापत्र पर भी हस्ताक्षर कर दिये थे। सच तो यह है कि १९१७ और १९१९ के बीच कांग्रेसी क्षेत्र में सर सी० पी० रामस्वामी एक ऐसे चमकते हुए सितारे थे जिन्होने अपने प्रकाश से भारत के राजनैतिक क्षितिज में चका-चौंध कर रक्खी थी। ये दोनो ही बाद में कार्य-कारिणी के सदस्य बना दिये गये। यही हाल सर मुहम्मद हबीबुल्ला का हुआ, जिन्होने पहले-पहल १८९८ में कांग्रेस के मच पर प्रकट होकर अपने बुद्धि-कौशल एव वक्तृत्व-शक्ति का परिचय दिया था। यह पहले मदरास और फिर भारत-सरकार की कार्यकारिणी के सदस्य बनाये गये। मदरास-सरकार के लॉ-मेम्बर होनेवाले सर एन० कृष्ण नैयर १९०४ की कांग्रेस में बोले थे, और उनके उत्तराधिकारी सर के० वी० रेड्डी तो १९१७ में जस्टिस-पार्टी का जन्म होने तक भी एक उत्साही एव सुप्रसिद्ध कांग्रेसी थे। सर एम० रामचन्द्रराव बहुत समय तक कांग्रेस में रह चुके है। और असलियत यह है कि १९२१ में मदरास की कार्य-कारिणी में उनकी नियुक्ति भी हो चुकी थी, परन्तु फिर ऐन वक्त पर विचार बदल दिया गया। इस प्रकार ६ हाईकोर्ट के जज और ६ कार्यकारिणी के सदस्य तो अकेले मदरास के कांग्रेसमैन ही हो चुके थे। और हाल में टैरिफ-बोर्ड में श्री नटेसन की जो नियुक्ति हुई है उससे तो गैरमामूली क्षेत्रों में भी कांग्रेसियो के पसन्द किये जाने के उदाहरणों में वृद्धि हुई है, यही नहीं बल्कि सर षण्मुखम् चेट्टी को भी न्याय या शासन के विभागो में ही कोई पद देने के बजाय कोचीन का दीवान बनाना भी इसी बात का

पोषक है। जो कांग्रेसमैन इस तरह पुरस्कृत हुए उनमें सबसे पहले सम्भवत श्री सी० जम्बुलिगम् मुदालियर थे जो मदरास-कौंसिल के एक चुने हुए सदस्य थे और १८९३ मे वहा के सिटी सिविल कोर्ट के जज बनाये गये थे। बम्बई में श्री बदरुद्दीन तैयबजी और नारायण चन्द्रावरकर दोनो, जो क्रमशः १८८७ की मदरास-कांग्रेस और १९०० की लाहौर-कांग्रेस के सभापति हुए थे, तथा श्री काशीनाथ त्र्यम्बक तैलग बम्बई-हाईकोर्ट के जज बनाये गये। श्री समर्थ और भूपेन्द्रनाथ बसु भारत-मन्त्री की (इण्डिया) कौंसिल के सदस्य बनाये गये और सर चिमनलाल शीतलवाड को बाद में बम्बई की कार्यकारिणी कौंसिल का एक सदस्य बना दिया गया।

कलकत्ता में श्री ए० चौधरी, जिन्होने बग-भग के विरुद्ध होनेवाले आन्दोलन में प्रमुख भाग लिया था, लगभग उसी समय वहा की हाईकोर्ट के जज बना दिये गये। १९०८ में जब लॉर्ड मिण्टो ने भारत-सरकार की लॉ-मेम्बरी के लिए व्यक्तियो का चुनाव किया तो, लेडी मिण्टो ने अपने पति लॉर्ड मिण्टो का जो जीवन-चरित्र लिखा है उससे मालूम पडता है कि, दो नाम उनके सामने थे—एक तो श्री आशुतोष मुकर्जी का, "जो भारत के एक प्रमुख कानूनदा थे, पर थे सच्चे दिल से पुराणपन्थी, और सावधानी के साथ उनका पक्ष उपस्थित किया गया था," और दूसरा श्री सत्येन्द्रप्रसन्न सिंह का, जिनके बारे में लॉर्ड मिण्टो ने कहा बताते है कि "उनके विचार तो सौम्य है परन्तु है वह कांग्रेसी।" सत्येन्द्रप्रसन्न सिंह १८९६ की कलकत्ता-कांग्रेस में, देशी नरेश को बिना मुकदमा चलाये निर्वासित कर देने के प्रश्न पर बोले थे। और, यह हम सब जानते है कि, अन्त में (लॉ-मेम्बरी के लिए) तरजीह कांग्रसमैन को ही दी गई। इसी प्रकार १९२० में गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी में जब जगह हुई तब भी लॉर्ड चेम्सफोर्ड (१९२०) ने तो महाराजा बर्दवान को रखना चाहा पर मि० माण्टेगु ने बडी कौंसिल के किसी चुने हुए सदस्य को ही रखना ज्यादा पसन्द किया। मि० माण्टेगु ने श्री श्री-निवास शास्त्री का नाम इसके लिए सुझाया, लेकिन चूकि ऐन मौके पर उन्होंने साथ नही दिया था इसलिए चेम्सफोर्ड ने उन्हें रखना पसन्द नही किया और श्री बी० एन० शर्मा को रक्खा—जो कि, जैसा हम आगे देखेंगे, अमृतसर-काण्ड के वक्त भी सरकार के पृष्ठ-पोषक बने रहे।

बगाल में कांग्रस से सम्बन्ध रखनेवाले अन्य जिन व्यक्तियो को ऊँचे सरकारी ओहदे मिले उनमे श्री एस० के० दास और सर प्रभासचन्द्र मित्र मुख्य है। इनमें श्री दास, जो १९०५ की कांग्रेस में, कार्यकारिणी में हिन्दुस्तानियो की नियुक्ति के प्रश्न पर

बोले थे, बाद में भारत-सरकार के लॉ-मेम्बर हुए और मित्र महोदय बंगाल की कार्यकारिणी के सदस्य।

युक्तप्रान्त में सर तेजबहादुर सप्रू जैसे जबरदस्त व्यक्ति को भारत-सरकार का लॉ-मेम्बर बनाया गया। बिहार के सय्यद हसनइमाम १६१२ की कांग्रेस को पटना में आमंत्रित करने के बाद हाईकोर्ट के जज बन गये और श्री सच्चिदानन्द सिंह को बिहार की कार्यकारिणी का सदस्य बना दिया गया। यहा यह भी बतला देना चाहिए कि सरकारी पुरस्कार का रूप सदा बडे सरकारी ओहदो का देना ही नही रहा है। फिरोजशाह मेहता को १६०५ में 'सर' की उपाधि दी गई—और वह भी लॉर्ड कर्जन के द्वारा, जो बडे प्रतिगामी वाइसराय थे। गोपालकृष्ण गोखले ने तो 'सर' की उपाधि मजूर नही की और न ही वह भारत-सरकार की कार्यकारिणी के सदस्य बनते—यदि उनसे इसके लिए कहा भी जाता। उन्होंने तो खाली, सीधे-सादे, भारत-सेवक ही रहना पसन्द किया, जैसे कि सचमुच वह थे, और अगर सी० आई० ई० की उपाधि भी न दी गई होती तो वह ज्यादा खुश होते।

श्री वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री को, यूरोपीय महायुद्ध के समय, लॉर्ड पेण्टलैण्ड ने मदरास-कौंसिल का सदस्य नामजद किया था। माण्ट-फोर्ड शासन-सुधारो का अमल शुरू होने पर उन्हें असेम्बली में नामजद किया गया, १६२१ में महाराजा कच्छ के साथ उन्हें साम्राज्य-परिषद् के लिए 'भारत का प्रतिनिधि' नियुक्त किया गया और उनके बाद ही वह प्रिवी-कौंसिलर बना दिये गये। इसके बाद वह अमरीका में भारत और साम्राज्य के सम्बन्ध में व्याख्यान देने गये। साम्राज्यान्तर्गत सभी उपनिवेशो ने उन्हें व्याख्यानो के लिए आमन्त्रित किया, लेकिन दक्षिण अफ्रीका ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया। इस यात्रा के लिए सरकार ने, ६०,०००) रु० का खर्च मंजूर किया था। १६२७ में शास्त्रीजी को ही दक्षिण अफ्रीका का सर्वप्रथम एजेण्ट-जनरल बनाकर सरकार ने मानो उस कमी की पूर्ति की, जो दक्षिण अफ्रीका में व्याख्यान के लिए न बुलाने से हुई थी। इस प्रकार जिस पत्थर को नापसन्द किया गया था वही आगे चलकर साम्राज्य का आधार-स्तम्भ बन गया।

यहा हमने कुछ ऐसे प्रमुख कांग्रेसियो का उल्लेख किया है जो सरकार-द्वारा पुरस्कृत हुए हैं। लेकिन इसपर से किसी को यह खयाल नहीं बना लेना चाहिए कि जो उच्चपद उन्हें दिये गये उनके लायक शिक्षा, सस्कृति और उच्च चारित्र्य का किसी भी प्रकार उनमें अभाव था। ये उदाहरण तो सिर्फ यह बतलाने की ही गरज से दिये

गये है कि सरकार को भी अगर योग्य हिन्दुस्तानियो की जरूरत हुई तो इसके लिए उसे भी काग्रेसियो पर ही निगाह डालनी पडी है, और उनके राजनैतिक विचारो को उसने ऐसा नही समझा है जो वह उन्हे सरकारी विश्वास एव बडी-से-बडी जिम्मेवारी के ओहदो के लिए नाकाबिल मान लेती।

: ४ :

ब्रिटेन की दमननीति और देश में नई जागृति

भारत में ब्रिटिश-शासन का इतिहास दमन और सुधार की एक लम्बी कहानी है। जब-जब कुछ सुधार हुआ, उससे पहले दमन भी जरूर हुआ। जब-जब जनता में कोई आन्दोलन शुरू हुआ है, तब-तब जोरो का दमन किया गया और उसमें यह नीति रक्खी गई कि जबतक लोग आन्दोलन करते-करते बिलकुल थक न जायें तबतक उनकी मागो पर कोई ध्यान न दिया जाय। लॉर्ड लिटन का १८७० का प्रेस-एक्ट जो जल्दी ही वापस ले लिया गया, सरकार की इस नीति की पूर्व-सूचना थी। राष्ट्र के बढते हुए आत्मचैतन्य का दूसरा जवाब शस्त्र-विधान के रूप में मिला, जिसने राष्ट्र के दु ख-रूपी फोडे को और भी पका दिया। १८८६ में इन्कमटैक्स एक्ट बना। उसका भी तीव्र विरोध उसी समय किया गया। जैसे-जैसे काग्रेस हर साल बढती गई, सरकारी अधिकारी भी उसे सन्देह की दृष्टि से देखने लगे। जिन लॉर्ड डफरिन ने ह्यूम साहब को यह सलाह दी थी कि वह काग्रेस का क्षेत्र केवल सामाजिक न रखकर राजनैतिक भी बनावें, किन्तु वही लॉर्ड डफरिन फिर काग्रेस के खुले दुश्मन हो गये और उसे राजद्रोही कहने लगे। युक्तप्रान्त के तत्कालीन लेफ्टिनेन्ट गवर्नर सर ऑकलैण्ड कॉल्विन के साथ इस विषय पर ह्यूम साहब की जो खतोकितावत हुई थी, वह ध्यान देने लायक है।

यद्यपि ह्यूम साहब के लिए यह आनन्द की बात है कि १८८६ में वाइसराय लॉर्ड डफरिन ने कलकत्ता में और १८८७ में मदरास के गवर्नर ने काग्रेस का स्वागत किया लेकिन बाद के सालो में युक्त-प्रान्त के सर ऑकलैण्ड जैसे प्रान्तीय शासक इसे शत्रु-भाव से देखने लग गये। इन महाशय ने काग्रेस को समाज-सुधार तक ही मर्यादित रहने की सलाह दी। सर ऑकलैण्ड की सम्मति में यह आन्दोलन समय से पूर्व, और मदरास के अधिवेशन से उग्र-रूप धारण करने के कारण खतरनाक भी था। उन्होने कहा कि काग्रेस का सरकार की निन्दा करने का रवैया सर्व-साधारण में सरकार के प्रति घृणा पैदा करेगा और देश में राजभक्त और देशभक्त ऐसे दो भेद खड़े हो जायँगे। साथ ही उन्होने यह भी कहा कि काग्रेस भारतीय जनता की प्रतिनिधि बनने का जो

दावा करती है वह ठीक नही है। ह्यूम साहब ने इसका मुहतोड़ जवाब दिया।

इलाहाबाद के चौथे अधिवेशन में काग्रेस को अकथनीय कठिनाइया हुईं। उसे पण्डाल तक के लिए जमीन नही मिली। श्रीमती एनी बेसेण्ट ने अपनी काग्रेस-सम्बन्धी पुस्तक मे एक ऐसे सज्जन का उदाहरण दिया है, जो अपने जिला-अफसर की इच्छा के खिलाफ मदरास (१८८७) के अधिवेशन में शामिल हुआ था और उससे शान्ति-रक्षा के नाम पर २०,०००) की जमानत मागी गई थी। हालत तेजी से खराब होती गई और १८९० में सरकार का विरोध बहुत बढ गया। बगाल-सरकार ने सब मंत्रियो और सब विभागो के प्रमुख अफसरो के पास एक गश्ती-पत्र भेजा, जिसमें उन्हें यह हिदायत दी गई थी कि "भारत-सरकार की आज्ञा के अनुसार ऐसी सभाओ में दर्शक-रूप में भी सरकारी अफसरो का जाना ठीक नही है और ऐसी सभाओ की कार्रवाई में भाग लेने की भी मनाही की जाती है।" काग्रेस ने गवर्नर के प्राइवेट-सेक्रेटरी के पास सात 'पास' भेजे थे, वे भी लौटा दिये गये। २५ जून १८९१ को भारत-सरकार ने देशी रियासतो के प्रेसो पर अनेक पाबन्दिया लगाने के लिए एक गश्ती-पत्र जारी किया। काग्रेस ने १८९१ में इसका विरोध किया था।

दमन नीति का प्रारम्भ

१८९३ में कौंसिलें और बडी कर दी गईं और जनता के थोडे से प्रतिनिधि—७ मदरास में, ६ बम्बई में (सरदारो के दो प्रतिनिधि मिलाकर) और ७ बगाल में—उनमें ले लिये गये। इस तरह लोक-प्रतिनिधियो की सख्या बढ जाने पर सरकार ने यह जरूरी समझा कि भारतवासियो को सरकारी नौकरियो में जो-कुछ विशेषाधिकार मिले हैं वे कम कर दिये जायें। (विस्तार के लिए दूसरे अध्याय का सरकारी नौकरियो सम्बन्धी प्रस्तावो के साराशवाला प्रकरण देखें।) होम-चार्जेज का प्रवाह भी ३० सालो में ७० लाख पौण्ड से बढकर १३० लाख पौण्ड हो गया। १८९७ में १२४ए और १५३ए धारायें बनाई गईं। इनसे सरकार के प्रति सचमुच असतोष पैदा हो गया। यह एक ध्यान देने योग्य बात है कि १०८ और १४४ धाराओ का प्रयोग पहले-पहल राजनैतिक कार्यकर्त्ताओ पर ही किया गया। १८९७ में पूना के प्लेग-सम्बन्धी दगो के प्रसग में नातू-बन्धु बिना मुकदमे के गिरफ्तार कर लिये गये थे, वे १८९९ में रिहा हो गये। फिर इसका आक्रमण बगाल पर हुआ और उसके पर काट दिये गये। २० वी सदी के पहले पाच साल लॉर्ड कर्जन के दमनपूर्ण शासन के थे। कलकत्ता-कारपोरेशन के अधिकारो में कमी, सरकारी गुप्त समितियो का कानून, विश्व-विद्यालयो को सरकारी

नियन्त्रण में लाना जिससे शिक्षा महगी हो गई, भारतीयों के चरित्र को 'असत्यमय' बताना, बारह सुधारो का बजट, तिब्बत आक्रमण (जिसे पीछे से तिब्बत-मिशन का नाम दिया गया) और अन्त में बग-विच्छेद ये सब लॉर्ड कर्जन के ऐसे कार्य थे, जिनसे राजभक्त भारत की कमर टूट गई और सारे देश मे एक नई स्पिरिट पैदा हो गई।

वंगभंग

बग-भग ने बगाली भाषाभाषी जनता को उनकी इच्छाओ के विरुद्ध दो प्रान्तो में बाट दिया था। इसके परिणामस्वरूप जहा जनता में एक व्यापक और जबर्दस्त आन्दोलन उत्पन्न हुआ, वहा सरकार ने भी उग्रता से दमन शुरू कर दिया। जुलूस, सभा तथा अन्य प्रदर्शन किये जाते थे—और उधर सरकार उन्हें रोक देती थी। हड़-तालें होती थी और विद्यार्थी तथा नागरिक एक-सी सजा पाते थे। शिक्षणालयो के नियम और भी सख्त कर दिये गये तथा विद्यार्थियो को राजनीति में भाग लेने से रोक दिया गया। पूर्वी बगाल के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर सर बैमृफील्ड फुलर ने बडे-बडे प्रतिष्ठित नागरिको को बुला कर धमकी दी कि "सम्भव है खून-खराबी करनी पडे।" इसके साथ ही पूर्वी बगाल में गुरखा पलटन के आने की घोषणा भी की गई। यह सब तब हुआ, जब पण्डित मालवीयजी के कथनानुसार 'जनता में हिंसा की भावना का चिह्न तक नही पाया जाता था।' लेकिन जैसे गेंद को जितने जोर से जमीन पर फेंको वह उतनी ही जोर से ऊँची उठती है और ढोल को जितना ही पीटो उतना ही अधिक आवाज करता है, ठीक उसी तरह सरकार की उत्तरोत्तर उग्र और नग्न रूप धारण करनेवाली दमन-नीति के कारण नवजाग्रत चेतना भी सचमुच व्यापक, विस्तृत और गहरी होती गई। देश के एक कोने में जो घटना होती थी वह सारे देश में फैल जाती थी। सरकार का प्रत्येक दमन-कार्य देश में उलटा असर करता था। सम्पूर्ण भारत ने बगाल के सवाल को अपना सवाल बना लिया। प्रत्येक प्रान्त ने बगाल के प्रश्न के साथ अपनी समस्याओ को और जोडकर आन्दोलन को ज्यादा गहरा रग दे दिया। 'कैनल कालोनाइजेशन बिल' ने पजाब के सैनिक प्रदेश में जनता के अन्दर एक नया तूफान खडा कर दिया, जिसके सिलसिले में लाला लाजपतराय और सरदार अजितसिंह को देश-निकाले की सजा मिली। ऐसे समय कलकत्ता-काग्रेस ने ठीक ही भारत के पितामह दादाभाई नौरोजी को अपना सभापति चुना। दादाभाई के 'स्वराज्य' शब्द के प्रयोग ने अधगोरो की रोष-ज्वाला को और भी प्रचण्ड कर दिया।

राष्ट्रीय शिक्षा

राजनैतिक सभाओ व प्रदर्शनो में विद्यार्थियो को सम्मिलित होने से रोकने के फल-स्वरूप स्कूलो और कालेजो का बहिष्कार तथा राष्ट्रीय शिक्षा का आन्दोलन शुरु हुआ। केवल पूर्वी-बगाल में २४ राष्ट्रीय हाई-स्कूल खुल गये और भूतपूर्व जस्टिस सर गुरुदास बनर्जी के नेतृत्व मे राष्ट्रीय शिक्षा के प्रसार के लिए 'बग-जातीय विद्या-परिषद्' की स्थापना की गई। बाबू विपिनचन्द्र पाल सम्पूर्ण देश में घूम-घूमकर राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय-शिक्षा और नव-चैतन्य का जोर शोर से प्रचार करने लगे। १९०७ में आन्ध्र देश में उनका दौरा बहुत ही शानदार और सफल रहा। राजमहेन्द्री के निवासियो ने उनके आने पर एक राष्ट्रीय हाईस्कूल खोलने का निश्चय किया। ट्रेनिंग कालेज के विद्यार्थियो ने उन्हें मान-पत्र दिया था, इस कारण कुछ विद्यार्थियो को सरकारी अधिकारियो ने कालेज से निकाल दिया था। वे विद्यार्थी राष्ट्रीय सग्राम के सिपाही हो गये। इस तरह सरकार की बेरोक दमन-नीति ने देशभक्तो और वीर सिपाहियो को पैदा किया।

स्वदेशी और बहिष्कार

१९०७ मे राष्ट्र ने केवल प्रस्ताव पास करना छोडकर स्वदेशी, बहिष्कार और राष्ट्रीय-शिक्षा के ठोस क्रियात्मक प्रस्तावो पर जोरो से अमल भी किया। जहा कि बगाल, महाराष्ट्र, मध्यप्रान्त, पजाब व आन्ध्र में राष्ट्रीय स्कूलो और विश्वविद्यालयो का जन्म बडे वेग से हो रहा था, तहा स्वदेशी का आन्दोलन सम्पूर्ण देश में व्याप्त हो गया। हाथ के कपडे का उद्योग एक बार फिर पुनर्जीवित हो गया। इस बार करघे मे 'फटका शाल' भी इस्तेमाल किया गया। इस उद्योग को उत्तेजना देने के लिए विदेशी वस्तुओ के बहिष्कार का आन्दोलन भी किया गया था। सम्पूर्ण वातावरण में ही एक नवीन जीवन का सचार हो गया था। राष्ट्रीय जागृति के साथ-साथ सरकार का दमन भी बढता गया। दमन-नीति से पोषण पाकर राष्ट्रीय अभ्युत्थान उलटा बढने लगा।

बंगाल के नेता

इस समय बगाल से दो व्यक्तियो ने भारतीय इतिहास के रगमच पर आकर बहुत महत्त्वपूर्ण भाग लिया। उनमे से एक विपिन बाबू के सम्बन्ध में हम कुछ ऊपर लिख चुके है। दूसरे अरविन्द बाबू भारत के राजनैतिक आकाश में बरसो तक उज्ज्वल

सितारे की तरह चमकते रहे। राष्ट्रीय-शिक्षा-आन्दोलन उनका शुरू में ही सहयोग मिल जाने के कारण बहुत चमक गया। वह इग्लैण्ड में उत्पन्न हुए थे, अग्रेजी वातावरण में ही पले और अग्रेजी स्कूलो और विश्वविद्यालयो में ही उन्होंने तालीम पाई। घुड-सवारी की परीक्षा में असफल होने के कारण इण्डियन सिविल सर्विस में वह कोई जगह न पा सके थे। वह बडौदा के शिक्षा-विभाग में काम करने के लिए भारत में वैसे ही आये, जैसे यहा प्राय युरोपियन आते है। उनकी प्रतिभा टूटते हुए तारे के समान चमक उठी और उनके प्रकाश की प्रभा एक बाढ की तरह हिमालय से कन्या कुमारी तक फैल गई।

बगाल से नौ नेता निर्वासित किये गये—कृष्णकुमार मित्र, पुलिनबिहारी दास, श्यामसुन्दर चक्रवर्ती, अश्विनीकुमार दत्त, मनोरजन गुह, सुबोधचन्द्र मल्लिक, शचीन्द्रप्रसाद वसु, सतीशचन्द्र चटर्जी और भूपेशचन्द्र नाग। ये नेता बगाल को और विशेषकर युवक बगाल को सगठित कर रहे थे। पराक्रम और शौर्य उस समय के आदर्श थे। दूसरी तरफ सर बैमफील्ड फुलर का आदर्श 'गुरखा सेना' व 'यदि आवश्यक हो तो खून-खराबी' थे। १९०८ में स्थिति चरम सीमा को पहुँच गई थी। अखबारो पर मुकदमे चलाना एक आम बात हो गई। 'युगान्तर', 'सध्या' 'वन्देमातरम्' नई जागृति के प्रचारक पत्र थे, वे सब बन्द कर दिये गये। 'सध्या' के सम्पादक देशभक्त ब्रह्मबाधव उपाध्याय अस्पताल में मर गये। अनेक कठिनाइयो और तीन मुकदमो से गुजरने के बाद श्री अरविन्द ब्रिटिश-भारत ही छोडकर पाडिचरी चले गये और वहा आश्रम स्थापित करके रहने लगे।

पहला बम

३० अप्रैल १९०८ को मुजफ्फरपुर में दो स्त्रियो—श्रीमती और कुमारी कैनेडी—पर दो बम गिरे। ये बम स्थानीय जिला जज किंग्सफोर्ड को मारने के लिये बनाये गये थे। इस अपराध के लिए १८ वर्षीय युवक श्री खुदीराम बसु को फासी की सजा मिली। उसकी तसवीरें सारे देश में घर-घर फैल गईं। स्वामी विवेकानन्द के भाई युवक भूपेन्द्रनाथ दत्त के सम्पादकत्व में निकलनेवाले 'युगातर' के कालमो में हिंसावाद का खुल्लम-खुल्ला प्रचार किया जाने लगा। जब उस युवक को लम्बी सजा मिली, तो उसकी बूढी माता ने अपने पुत्र की इस देश-सेवा पर हर्ष प्रकट किया और 'बगाल' की ५०० स्त्रियाँ उसे बधाई देने उसके घर पर गई। उस युवक ने भी अदालत में यह घोषणा की कि मेरे पीछे अखबार का काम सम्हालने के लिए ३० करोड आदमी मौजूद है। इसी विश्वास के कारण यह आन्दोलन इतना फूला-फला। राज-द्रोह

या दण्ड का भय जनता के दिल से उठ गया। लोग राजद्रोह का यथाशक्ति प्रचार करते और मुकदमा चलने पर तमाम कानूनी साधन अपनी बरीयत या छुटकारे के लिए इस्तेमाल में लाते। 'वन्देमातरम्' में राजविद्रोहात्मक लेखो के लिए श्री अरविन्द पर जो मुकदमा चलाया गया, वह भी इस सग्राम मे अपवाद न था। महाराष्ट्र में १३ जुलाई १९०८ को लोकमान्य तिलक गिरफ्तार किये गये और उसी दिन आन्ध्र में भी हरि सर्वोत्तमराव तथा दो अन्य सज्जन पकडे गये। पाच दिनो की सुनवाई के बाद लोकमान्य तिलक को छ साल देश-निकाले की सजा मिली। १८९७ में छूटी हुई छ मास की कैद भी इसके साथ जोड दी गई। आन्ध्र के श्री हरि सर्वोत्तमराव को नौ महीने की सजा मिली थी। सरकार ने इतनी थोडी सजा के खिलाफ अपील की और हाईकोर्ट ने उनकी सजा बढाकर तीन साल कर दी। राजद्रोह के लिए पाच साल सजा देना तो उन दिनो मामूली बात थी। इसके बाद जल्दी ही राजद्रोह देश से गायब हो गया। वास्तव में यह अन्दर-ही-अन्दर अपना काम करने लगा और उसकी जगह बम व पिस्तौल ने ले ली। १९०८ में राजद्रोही सभाबन्दी-कानून व 'प्रेस-एक्ट' नाम के दो कानून जनता के पूर्ण विरोध करने पर भी सरकार ने पास कर दिये और दो साल बाद क्रिमिनल लॉ एमेण्डमेण्ट एक्ट भी बन गया। सभाबन्दी बिल पर बहस करते हुए श्री गोखले ने सरकार को चेतावनी दी कि "युवक हाथ से निकले जा रहे हैं और यदि हम उन्हें वश में न रख सके, तो हमें दोष मत देना।"

कभी-कभी इक्के-दुक्के राजनैतिक खून भी होने लगे जिनमें सबसे साहसपूर्ण खून १९०७ में लन्दन की एक सभा में सर कर्जन वाइली का हुआ था। यह खून मदनलाल धिंगडा ने किया था, जिसे बाद में फासी दी गई। अभियुक्त को बचाने की कोशिश करनेवाले डॉ० लालकाका नामक एक पारसी सज्जन को भी फासी की सजा दी गई। लाहौर (१९०९) में होनेवाले काग्रेस के २४ वें अधिवेशन के सभापति प० मदनमोहन मालवीय ने इन घटनाओ तथा नासिक के कलक्टर मि० जक्सन की हत्या पर दु ख प्रकट किया। लन्दन में रहनेवाले कुछ विद्यार्थी भी इसके समर्थक थे। मिण्टो-मॉर्ले सुधारो, या भारत-सरकार और मदरास व बम्बई की सरकारो की कौसिलो में भारतीयो के लेने से भी यह बढा-चढा वैमनस्य शान्त न हुआ।

बंगभंग रद

जबतक बग-विच्छेद उठा न लिया जाय, तबतक शान्ति की कोई सम्भावना न थी। लेकिन ऐसा करने से नौकरशाही का रौब जाता था। यदि वह आन्दोलन के

आगे एकवार भी झुक जाय, तो उसकी शान किरकिरी होती थी। उसे डर था कि यदि एकवार हमारी शान गई, तो फिर हम हकूमत भी न कर सकेंगे। तब वग-भग के कारण जो साप-छछूदर की सी हालत होगई थी उसमें से छूटने के लिए एक रास्ता ढूढा गया। जब लॉर्ड मिण्टो ने अपनी जगह लॉर्ड हार्डिग को दी और लॉर्ड मिडलटन की जगह लॉर्ड क्रू भारत-मत्री बने, भारत में ब्रिटिश-नरेश जार्ज पचम के राज्याभिषेक-महोत्सव का लाभ उठाकर वग-भग रद्द कर दिया गया और भारत की राजधानी कलकत्ते से उठाकर दिल्ली ले आये।

जब यह कहा जाता है कि वग-भग रद्द कर दिया गया, तो यह नही समझना चाहिए कि स्थिति यथापूर्व कर दी गई। पहले पश्चिमी वगाल और आसाम-सहित पूर्वी वगाल के रूप में वग-भग किया गया था। अब उसका रूप बदल दिया गया। पहले विहार को पश्चिमी वगाल मे मिला लिया था, लेकिन अब उसे छोटा नागपुर और उडीसा के साथ मिलाकर एक प्रान्त वना दिया, अर्थात् आसाम के साथ पूर्वी और पश्चिमी वगाल के दो प्रान्तो के बजाय अब तीन प्रान्त हो गये—वगाल एक प्रान्त, विहार छोटा नागपुर और उडीसा, दूसरा प्रान्त और आसाम तीसरा प्रान्त। राज्याभिषेक के उत्सव में जिस एक अन्याय को दूर नही किया गया था, वह अब उडीसा को पृथक् प्रान्त स्वीकार करके दूर किया गया है। कहते हैं कि लॉर्ड हार्डिग ने दक्षिण अफ्रीका में शर्तबन्दी कुली-प्रथा को नष्ट कर तथा वग-भग को रद करके अपना शासन-काल स्मरणीय बना दिया, लेकिन वस्तुत जिस घटना ने उनका शासन चिरस्मरणीय बनाया वह २५ अगस्त १९११ का खरीता था। यह खरीता ही भावी सुधारों का आधार रहा है। इसमें उन्होने राष्ट्रीय पुर्निर्माण की योजना में प्रान्तीय स्वतन्त्रता के सिद्धान्त को विना किसी ननुनच के स्वीकार कर लिया था।

इन सब सफलताओ के बाद, जिनका श्रेय काग्रेस को था, यह स्वाभाविक था कि काग्रेस का वार्षिक अधिवेशन (कलकत्ता, १९११) बहुत खुशी के साथ मनाया जाता। श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने, बगाल को जो सारे हिन्दुस्तान ने मदद दी थी उसके प्रति कृतज्ञता प्रकाश करते हुए, यह उच्च आशा प्रकट की थी कि "भारत भी स्वशासन-प्राप्त राष्ट्रों के स्वतत्र सघ-साम्राज्य का एक अभिन्न अग बनेगा।" लेकिन इन सब आशाओ और खुशियो में भी लोग राजद्रोही सभावदी कानून १९०८, प्रेस-एक्ट १९०८ और क्रिमिनल ला एमेण्डमेण्ट एक्ट (१९१०) को भूले नहीं थे। इन्हींके द्वारा तो जनता की आजादी की जड पर कुल्हाडा चल गया था। इन सबसे बढकर १८१८ का रेग्युलेशन ३ तथा अन्य प्रान्तों के रेग्यूलेशन अवतक मौजूद थे, जिनकी रू से १९०६–८

के देश-निकाले जगह-जगह दिये गये थे। भारत में बननेवाले कपड़े पर 'उत्पत्तिकर' भी अबतक मौजूद था। इनकी दलीलें जान-माल की स्वतन्त्रता तथा राष्ट्रीय उद्योग-धंधों के लिए खतरे में थे। इन सबसे भी बढ़कर अबतक राजनैतिक कैदी जेलों में बन्द थे। लोकमान्य तिलक मधुमेह रोग से ग्रस्त होकर अकेले और बिना किसी मित्र के [illegible] दृढ़ता और धैर्य के साथ मंडाले के किले में कैद थे। उस समय श्री गोखले के प्राथमिक शिक्षा-बिल की बहुत चर्चा थी, जिसके पास होने की उम्मीद बहुत कम थी। दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों की बुरी हालत थी जिसके लिए देशव्यापी आन्दोलन की जरूरत थी।

१९११ में यह हालत थी। १९१२ में राजनैतिक खिंचाव कुछ-कुछ कम हो गया था। लेकिन इसी वर्ष में एक भारी दुर्घटना हो गई। लॉर्ड हार्डिंग जब जुलूस के साथ हाथी पर नई राजधानी दिल्ली में प्रवेश कर रहे थे, किसीने उनपर बम फेंका, और वह मरते मरते बचे। इसपर बांकीपुर में कांग्रेस ने, सभापति के भाषण के बाद, बरखास्त होने के रिवाज को तोड़कर, इस घटना पर दुःख तथा आक्रमण पर रोष-प्रदर्शन का तार लॉर्ड हार्डिंग के पास भेजने का प्रस्ताव पास किया। इस घटना के बाद प्रेस पर और कठोरता से नियन्त्रण होने लगा, जिससे प्रेस-एक्ट को रद करने की लगातार आवाज ने भी १९१३ से जोर पकड़ लिया। कांग्रेस कई सालों तक इसका विरोध करती रही। १९०८ का प्रेस-एक्ट सबसे अधिक खराब था, जिसे १९१० में स्थायी कानून बना दिया गया। उस समय श्री सत्येन्द्रप्रसन्न सिंह भारत-सरकार के लॉ-मेम्बर थे।

माण्टफोर्ड-सुधारों के बाद क्रिमिनल लॉ एमेण्डमेण्ट एक्ट को छोड़कर बाकी सब दमनकारी कानून रद कर दिये गये। बंग-भंग के रद किये जाने और हिंसावाद के शान्त हो जाने के बाद भी प्रेस-एक्ट से लोगों को सख्त तकलीफें झेलनी पड़ती थीं। इधर राजनैतिक वातावरण में जो एक स्तब्धता और शान्ति आ गई थी, उसकी जगह १९१४–१८ के महासमर की हलचल ने ले ली और इस भीषण विश्व-क्रान्ति के प्रारम्भ में ही एक सन्तोषजनक घटना हो गई। बंग-भंग के दिनों से ही मुसलमान राष्ट्रीय आदर्शों से अलग रहे थे और नौकरशाही पर अपना विश्वास जमा रक्खा था। १९१३ में उन्होंने भी ब्रिटिश-साम्राज्य के अन्तर्गत स्वशासन के ध्येय को स्वीकार कर लिया। मुस्लिम लीग ने अपने गत अधिवेशन में बड़े जोर के साथ यह विश्वास भी प्रकट कर दिया कि "देश का राजनैतिक भविष्य दो महान् जातियों (हिन्दू और मुसलमानों) के मेल, सहयोग और सहकार्य पर निर्भर है।" कांग्रेस ने १९१३ में मुस्लिम-लीग के इस प्रस्ताव की बहुत तारीफ की।

यूरोप में महासमर प्रारम्भ

जुलाई १९१४ में महासमर छिड गया और नवम्बर में जब जर्मनी फ्रास का दरवाजा खटखटा रहा था, लॉर्ड हार्डिंग ने बडे साहस का काम किया कि भारतवर्ष से फौज बाहर भेज दी। इग्लैण्ड बडी आफत में था। हिन्दुस्तान में फौज इसलिए रक्खी गई थी कि वह इग्लैण्ड के लिए हिन्दुस्तान की हिफाजत कर सके, लेकिन यदि इग्लैण्ड खुद खतरे में हो, तब भारत में ठहरी हुई सेना से लाभ ही क्या? लॉर्ड हार्डिंग ने भारतीय सेना को यूरोप भेज दिया। मार्सेल्स में एक दिन भी आराम किये बगैर हिन्दुस्तानी फौज फ्लाडर्स-रणक्षेत्र में, जहा अग्नि-वर्षा हो रही थी, भेज दी गई। उस फौज ने मित्र-राष्ट्रो को उस भारी विपत्ति से बचा दिया, जो उसके न पहुँचने पर १९१५ के फरवरी-मार्च में उनपर आ जाती। १९१४ की काग्रेस में स्व-शासन की माग फिर की गई। काग्रेस ने यह प्रस्ताव पास किया—"वर्तमान आपत्ति के वक्त हिन्दुस्तान के लोगो ने जिस उत्कृष्ट राजभक्ति का परिचय दिया है उसे देखते हुए यह काग्रेस सरकार से प्रार्थना करती है कि वह इस राजभक्ति को और भी गहरी व स्थिर बनावे और उसे साम्राज्य की एक कीमती सम्पत्ति बना ले। ऐसा करने के लिए यहा और बाहर सम्राट् की भारतीय और अन्य प्रजा के बीच जो द्वेषजनक भेदभाव है उसे दूर करदे, २५ अगस्त १९११ के खरीते में प्रान्तीय स्वतत्रता के बारे में जो वादे किये है उन्हें पूरा करे, और भारत को सघ-साम्राज्य का एक अश बनाने और उस हैसियत के पूरे अधिकार देने के लिए जो काम जरूरी हो वह सब करे।" हमने यह लम्बा प्रस्ताव इसलिए उद्धृत किया है कि जिससे यह मालूम हो सके कि उस समय हमारी राजनैतिक आकाक्षाओ की कक्षा कितनी ऊँची थी।

: ५ :

हमारे अंग्रेज हितैषी

भारत के राजनैतिक विकास में ब्रिटिश-पार्लमेण्ट के कुछ सदस्यो और वडे-वडे अग्रेजो ने भी अच्छा भाग लिया है। ह्यूम साहब ने कांग्रेस का संगठन तो बहुत बाद मे किया था। इससे पहले ही पार्लमेण्ट के कई सदस्य भारतीय प्रश्नो में दिलचस्पी लेने लग गये थे। भारत के विषय में पार्लमेण्ट में जो चर्चा होती थी उसमें इन लोगो की भावना नि स्वार्थ भी रहती थी। पिछली शताब्दी के पचास से सत्तर वर्ष के बीच जॉन ब्राइट साहब ने भारत का खूब पक्ष-समर्थन किया। उन्होने १८४७ में पार्लमेण्ट में प्रवेश किया। उस समय से १८८० तक इस देश के भाग में बहुत उतार-चढाव आये, पर ब्राइट साहब का भारत-प्रेम बरावर बना रहा। इनके बाद फॉसिट साहब की बारी आई। यह १८६५ में पार्लमेण्ट के सदस्य हुए और १८६८ में ही इन्होने प्रस्ताव किया कि भारत की वडी-वडी नौकरियो की परीक्षायें केवल विलायत में न होकर भारत और इग्लैण्ड दोनो में साथ-साथ हो। १८७५ में इग्लैण्ड में भारतवर्ष के खर्च से तुर्की के सुलतान के लिए लॉर्ड सेल्सवरी ने जो नाच करवाया था इसकी फॉसिट साहब ने निन्दा की। उस समय से अपने सारे कार्य-काल में यह हृदय से भारत के हितैषी बने रहे। इन्हींके विरोध से अबीसीनिया की लडाई का सारा खर्च भारत के मत्थे न मढा जाकर आधा इग्लैण्ड पर पडा। ड्यूक ऑफ एडिनवर्ग ने भारतीय नरेशो को जो उपहार दिये उनका मूल्य भारतीय कोष से दिये जाने का भी इन्होने विरोध किया था। इसी प्रकार ब्रिटिश युवराज की भारत-यात्रा के खर्च के ४,५०,०००) के भार से भी इन्होने हमारे देश को बचाया। लॉर्ड लिटन ने कपडे का आयात-कर बन्द कर दिया, दिल्ली में दरबार किया और अफगान-युद्ध मोल ले लिया था। इन करतूतो का फॉसिट साहब ने विरोध किया। कृतज्ञ भारत ने भी इन उपकारो का बदला तुरन्त दिया। १८७२ में कलकत्ते की जनता ने इन्हे मान-पत्र दिया और जब १८७४ में फॉसिट साहब पार्लमेण्ट के चुनाव में हार गये तो आगामी चुनाव के लिए सहायतार्थ उन्हें १०,००० रु० से अधिक की थैली भेंट की गई।

ए० ओ० ह्यूम

ह्यूम साहब ने पार्लमेण्ट की भारत-समिति और कांग्रेस के सगठन में जो भाग लिया उसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। परन्तु इस स्कॉचमैन ने साठ वर्ष से भी अधिक सरकारी और गैरसरकारी हैसियत से भारत की भलाई के लिए जो परिश्रम किया उसका हाल जरा विस्तार से जानना हमारा कर्तव्य है। वह भारत की सिविल सर्विस में अनेक पदो पर रहे। जब वह जिला-मजिस्ट्रेट रहे, इन्होने साधारण जनता मे शिक्षा-प्रसार, पुलिस-सुधार, मदिरा-निषेध, देशी-भाषाओ के समाचार-पत्रो की उन्नति, बाल-अपराधियो के सुधार एव अन्य घरेलू आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए परिश्रम किया। इन्हें किसी बात में रस था तो गाव और खेती में। इन्हें किसी बात की चिन्ता थी तो जनता की। इन्होने घोषित किया था कि "सरकार तलवार के जोर से अपनी सत्ता भले ही कायम कर ले, किन्तु स्वतत्र और सभ्य सरकार की पायदारी और स्थायित्व तो इसीमें है कि प्रजा के ज्ञान की वृद्धि की जाय और उसमें सरकार की अच्छाइयो की कदर करने की नैतिक और बौद्धिक योग्यता पैदा की जाय।" ह्यूम साहब के इस रुख का उत्तर सरकार ने २८ जनवरी सन् १८५९ के अपने एक गश्ती-पत्र में दिया। इस पत्र मे कहा गया था कि शिक्षा-प्रचार के लिए भारतीयो से काम न लिया जाय और कलक्टर साहब लोगो को पाठशालाओ में अपने बालकों को भेजने की या पाठशालाओ की सहायतया करने की प्रेरणा न करें। ह्यूम साहब ने इसका जिस प्रकार विरोध किया वह भी मार्के की चीज है। ह्यूम साहब का दूसरा प्रिय विषय था पुलिस का सुधार। उनकी योजना यह थी कि पुलिस और न्याय-विभाग को बिलकुल अलग-अलग कर दिया जाय। आबकारी के बारे में वह लिखते है — "जहा एक ओर हम अपनी प्रजा का आचरण भ्रष्ट करते है, तहा दूसरी ओर हमें उसकी बरबादी से कोई आर्थिक लाभ भी नही होता। यह सारी आय पाप की कमाई है और इस पुरानी कहावत को सिद्ध करती है कि पाप की कमाई यो ही जाती है। आबकारी से हमें एक रुपया मिलता है तो उसके बदले में एक रुपया प्रजा का अपराधो के रूप में खर्च हो जाता है और एक सरकार को इन अपराधो के दमन में लगा देना पडता है। अभी तो मुझे इस दिशा में सुधार की कोई आशा नही दीखती, किन्तु मुझे जरा भी सन्देह नही है कि यदि मैं कुछ वर्ष और जीता रहा तो इन आखो से हमारे भारतीय शासन के इस बडे भारी कलक को सच्चे ईसाई तरीके पर धुला हुआ देख सकूगा।"

१८५९ के अन्त में ह्यूम साहब की सहायता से 'पीपुल्स-फ्रेण्ड' (लोक-मित्र)

नामक हिन्दुस्तानी पत्र निकाला गया। इसकी छ सौ प्रतिया सयुक्त प्रान्त की सरकार खरीदती थी। वाइसराय ने भी इस पत्र को पसन्द किया और इसका अनुवाद होकर भारतमत्री के मार्फत महारानी विक्टोरिया के पास भेजा जाता था। १८६३ मे ही ह्यूम साहब ने जोर दिया कि बाल-अपराधियो के सुधार-गृह बनाये जायें। चुगी की अफसरी में उन्होंने मुख्य कार्य यह किया कि चुगी की लम्बी-चौडी रुकावटो को धीरे-धीरे दूर करवा दिया।

१८७६ ई० में ह्यूम साहब ने कृषि-सुधार की एक योजना तैयार की। लॉर्ड मेयो की उसके साथ सहानुभूति भी थी। परन्तु वह योजना यो ही गई। मुकदमेबाजी के बारे में उनकी राय यह थी कि देहाती इलाको मे किसानो को महाजनो की गुलामी मे जकडने की सीधी जिम्मेवारी दीवानी अदालतो पर है। उन्होने सिफारिश की कि ग्रामवासियो के कर्ज के मुकदमे जल्दी-से-जल्दी और जहा-के-तहा निपटाने चाहिएँ, उनका अन्तिम निर्णय चुने हुए ईमानदार और समझदार भारतीयो द्वारा होना चाहिए, उन्हे न्यायाधीश बनाकर गाव-गाव भेजना चाहिए और वे लोग सब प्रकार के लेनदेन के मुकदमे गाव के बडे-बूढो की सहायता से तय कर दिया करे। इन न्यायाधीशो पर कोई जाब्ते या कानून-कायदे की पाबन्दी नही होनी चाहिए।

१८७० ई० से १८७६ तक ह्यूम साहब भारत-सरकार के मन्त्री रहे, परन्तु उन्हे वहा से इसी अपराध पर निकाल दिया गया कि वह बहुत ज्यादा ईमानदार और स्वतन्त्र प्रकृति के थे। इसकी भारतीय समाचार-पत्रो ने एक-स्वर से निन्दा की, परन्तु कुछ सुनाई नही हुई। लॉर्ड लिटन ने ह्यूम साहब को लेफ्टिनेण्ट गवर्नर बनाने का प्रस्ताव किया। ह्यूम साहब को यह स्वीकार न हुआ। वह यह समझते थे कि इसमें खान-पान और राग-रग की जितनी झझट है वह उनके बूते का काम नही था। दूसरा प्रस्ताव यह था कि उन्हें होम-मेम्बर (गृह-सचिव) बना दिया जाय। यह बात इगलैण्ड के प्रधान-मन्त्री लॉर्ड सेल्सबरी को पसन्द नही आई, क्योकि ह्यूम साहब वाइसराय नॉर्थब्रुक को इस बात के लिए पक्का कर रहे थे कि कपडे पर से आयात-कर न उठाया जाय। ह्यूम साहब ने १८८२ ई० मे नौकरी से अवसर प्राप्त किया। उन्होने लग-भग तीन लाख रुपया पक्षियो के अजायबघर पर और लगभग साठ हजार रुपया 'भारत के शिकारी पक्षी' नामक ग्रथ की तैयारी में खर्च किया था।

सर विलियम वेडरबर्न

सर विलियम वेडरबर्न की सेवायें तो इतनी प्रख्यात है कि उनका वर्णन करने

की भी जरूरत नही है। ब्रिटिश काग्रेस कमिटी को चलाने में वर्षों तक उन्हीं का मुख्य हाथ रहा। काग्रेस इसके लिए दस हजार से पचास हजार तक वार्षिक खर्च करती थी। वेटरबर्न साहब बम्बई में १८७९ ई० में, और इलाहाबाद में १९१० ई० में, इस प्रकार राष्ट्रीय महासभा के दो अधिवेशनो के सभापति हुए। जार्ज यूल साहब इलाहाबाद के १८८८ वाले काग्रेस के चौथे अधिवेशन के सभापति हुए। इसके बाद तो हर साल पार्लमेण्ट के सदस्य भारत-यात्रा करने और काग्रेस के अधिवेशनो पर उपस्थित रहने लगे। इन प्रसिद्ध लोगो में से नशा-निषेध के महान् प्रचारक, डब्ल्यू० एस० केइन साहब, जिसका कोई हिमायती न हो उसके हिमायती चार्ल्स ब्रैडला साहब, सेम्युअल स्मिथ साहब और डाक्टर रुदरफोर्ड और क्लार्क साहब के नाम उल्लेखनीय है।

रैमजे मैक्डॉनल्ड साहब तो १९११ में काग्रेस-अधिवेशन का सभापति-पद भी सुशोभित करते, परन्तु उनकी पत्नी का देहान्त हो जाने से उन्हें वापस लौट जाना पडा। केअरहार्डी, होलफोर्ज, नाइट, मैक्स्टन, कर्नल वैजवुड, वेनस्पूर, चार्ल्स रॉबर्टसन और पैथिक लॉरेन्स आदि कामन-सभा के कुछ अन्य सदस्य भी भारतवर्ष में आकर और काग्रेस-अधिवेशनो में उपस्थित रहकर भारत की समस्याओ का अध्ययन कर गये। परन्तु १८८९ ई० में चार्ल्स ब्रैडला साहब का जो स्वागत किया गया वह शान-शौकत में तो राजाओ से कम नही था। उत्तर में उन्होंने ने राजभक्ति की जो व्याख्या की वह बडी मार्के की थी। उन्होने कहा, "जहा आख मूदकर आज्ञा-पालन करने की वृत्ति होती है वहा सच्ची राजभक्ति का अर्थ तो यह है कि शासित शासको की इतनी सहायता करें कि सरकार के लिए कुछ करने को बाकी न रहे।" परन्तु नौकरशाही की व्याख्या राजभक्ति की दूसरी ही है। उसके ख्याल से प्रजा को खुद कुछ न करना चाहिए, जो कुछ हो सरकार को ही करने देना चाहिए।

ब्रैडला साहब ने १८८९ में कौंसिलो के सुधार के लिए एक कानून का मसविदा (बिल) बनाया और उसे लोक-मत-सग्रह के लिए प्रचारित किया। इस मसविदे में काग्रेस के तत्कालीन विचारो का समावेश था और काग्रेस ने भी ब्रैडला साहब के इच्छानुसार कुछ सूचनाये पेश की जिनमें भारतीय जनता का गम्भीर मत प्रदर्शित होता था। आगे चल कर यह मसविदा वापस ले लिया गया। परन्तु पार्लमेण्ट में ब्रैडला साहब की स्थिति इतनी मजबूत थी कि लॉर्ड क्रॉस का पहला मसविदा भी ब्रैडला साहब के विरोध के कारण वापस लेना पडा। उनका दूसरा मसविदा भी तब मजूर हुआ जब उसमें प्रस्तावित सुधारो की पहली किस्त के साथ में, अप्रत्यक्ष ही सही, कौंसिलो में निर्वाचन का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया गया।

विलियम राबर्ट ग्लैडस्टन

विलियम राबर्ट ग्लैडस्टन का नाम भी कम प्रेम के साथ नही लिया जा सकता। भारत में ग्लैडस्टन साहब बड़े लोकप्रिय हो गये थे। इसका असली कारण था उनकी कांग्रेस आन्दोलन के साथ प्रत्यक्ष सहमति। उन्होने १८८८ में कहा था, "इस महान् राष्ट्र की उठती हुई आकाक्षाओ के प्रति तिरस्कार या उपेक्षा का भी व्यवहार करने से हमारा काम नही चलेगा।" लगातार कई वर्ष तक ग्लैडस्टन साहब की वर्षगाठ पर कांग्रेस की ओर से बधाई के प्रस्ताव होते रहे। उनकी ८२ वी जयती २९-१२-१८९१ के दिन थी और कांग्रेस ने उसे विधिपूर्वक मनाया। इतने दूर देश के राजनीतिज्ञ के प्रति इतनी असाधारण श्रद्धा का कारण यही था कि उन्होने आयर्लैंड की भाति भारत के अधिकारो का भी पक्ष-समर्थन किया था। ग्लैडस्टन साहब भारत के एक हितैषी समझे जाते थे और अर्डले नॉर्टन साहब ने १८९४ की दसवी कांग्रेस के अवसर पर उनके इस मन्तव्य को दोहराया भी था—"मेरा विश्वास है कि पार्लमेण्ट की अनजान में, देश को बताये बिना ही कौंसिल के एकान्त कमरो में, अकस्मात् एक ऐसा कानून पास कर दिया गया है जिसके कारण देशी समाचारपत्रो की स्वतत्रता सर्वथा नष्ट हो गई है। मै समझता हूँ कि ऐसा कानून ब्रिटिश-साम्राज्य के लिए कलक है।" जब १८९८ में ग्लैडस्टन साहब का देहान्त हुआ तो कांग्रेस ने सच्चे दिल से शोक मनाया।

लॉर्ड नॉर्थब्रुक के प्रति भी कांग्रेस ने १८९३ के अपने नवें अधिवेशन में कृतज्ञता प्रकट की। इन्होने पार्लमेण्ट में इस बात पर जोर दिया था कि भारत के खजानें से 'होम-चार्जेज' के नाम पर जो विशाल धन-राशि खिंची जाती है उसकी मात्रा कम की जाय। यह धन्यवाद का प्रस्ताव पेश करते समय स्वर्गीय गोखले ने कांग्रेस के सम्मुख ड्यूक ऑफ आर्जाइल के ये वाक्य उद्धृत किये थे कि "भारत में आम लोगो को यह मालूम होने से कि उन्हें कोई कष्ट है, पहले ही वह कष्ट दूर कर दिया जाना चाहिए।" सार्वजनिक प्रश्न पर ड्यूक साहब बड़े प्रमाण-स्वरूप समझे जाते थे। वाचा महोदय ने कांग्रेस के १७ वें अधिवेशन में उनके इस कथन को दोहराया था कि "ग्रामीण भारत की विशाल जन-सख्या में जितना चिर-दारिद्र्य फैला हुआ है और उनके जीवन-साधनो का माप जितना नीचा और स्थायी रूप से गिर गया है उसका उदाहरण पाश्चात्य जगत् में कही नही मिलता।" इन्ही ड्यूक महोदय ने १८८८ में कहा था कि "अग्रेजो ने अपने दिये हुए वचनो और किये हुए करारनामो का पालन नही किया।"

इन हितैषियो में एक थे एल्डले के लॉर्ड स्टैनले। उन्होने अपने जीवन का उत्तम

भाग भारत में ही व्यतीत किया और भारत के अभ्युत्थान के लिए परिश्रम किया। १८९४ में उन्होंने भारत-मंत्री की कौंसिल के उठा दिये जाने का प्रस्ताव पेश करते हुए कहा, "यदि भारत-मंत्री पर कौंसिल का नियन्त्रण रहे तो भारत-मंत्री का पद उठा दो। यदि कौंसिल पर भारत-मंत्री का नियन्त्रण रहे तो कौंसिल को मिटा दो। यह द्विविध-शासन व्यर्थ है, भयावह है, अपव्यय है और बाधक है।" उन्होंने भारत-मंत्री और उसकी कौंसिल की व्यापारिक अयोग्यता के प्रमाण भी दिये।

सर हेनरी काटन

इस संक्षिप्त विवरण में सर हेनरी कॉटन और उनकी अमर सेवाओं का उल्लेख किये बिना भी नहीं रहा जा सकता। कॉटन-परिवार का भारतवर्ष से पुराना सम्बन्ध रहा था। ज्योंही आसाम के इन चीफ कमिश्नर साहब ने पेंशन ली त्योंही कांग्रेस ने अपने १९०४ वाले बम्बई के अधिवेशन का सभापति-पद ग्रहण करने को इन्हें आमंत्रित किया। इन्होंने पहले-पहल भारत के संयुक्त राज्य की कल्पना की थी।

: ६ :

हमारे हिन्दुस्तानी बुजुर्ग

कांग्रेस की नीति और उसके कार्य-क्रम की आगे की प्रगति पर विचार करने से पहले हमें उन महानुभावो के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलिया अर्पित करनी चाहिएँ, जिन्होने राष्ट्रोद्धार के इस आन्दोलन की शुरुआत की और कांग्रेस के प्रारम्भिक दिनों में उसके लिए जमीन को जोत-बोकर तैयार किया। आज हमें कांग्रेस का जैसा विस्तृत सगठन और महान् राष्ट्रीय कार्यक्रम दिखलाई पडता है, हम शायद यह समझे कि यह सब हमारे ही वक्त में और हमारे ही प्रयत्नो के फलस्वरूप हुआ है। कांग्रेस के पूर्ववर्ती नेताओ का जो कार्यक्रम और दृष्टिकोण था वह आज के कांग्रेसियो को शायद पसन्द भी न हो, इसी तरह यह भी सम्भव है कि पुराने नेताओ को शायद आज का कार्यक्रम और दृष्टिकोण पसन्द न हुआ होता। लेकिन हमें यह हर्गिज न भूलना चाहिए कि आज हम जो कुछ भी कर सके हैं और करने की आकाक्षा रखते हैं, वह सब प्रारम्भ में उनके द्वारा किये गये प्रयत्नो और महान् बलिदानो के फलस्वरूप ही। इसलिए उन बुजुर्गों में से जो लोग स्वर्गवासी हो गये हैं और जो ईश्वर-कृपा से आज भी हमारे बीच मौजूद है उनकी महान् सेवाओ और कुरबानियो का यहा उल्लख किये बिना हम आगे नही चल सकते।

दादाभाई नौरोजी

कांग्रेस के बडे-बूढो की सूची में सबसे पहला नाम दादाभाई नौरोजी का आता है, जो कांग्रेस की शुरुआत से लेकर अपने जीवन-पर्यन्त कांग्रेस की सेवा करते रहे और कांग्रस को सर्वसाधारण की शासन-सम्बन्धी शिकायतें दूर कराने का प्रयत्न करनेवाली जन-सभा से बढाते-बढाते स्वराज्य-प्राप्ति (कलकत्ता १९०६) के निश्चित उद्देश से काम करनेवाली राष्ट्र-परिषद् पर पहुँचा दिया। १८८६, १८९३ और १९०६ में—तीन बार वह कांग्रेस के सभापति हुए, और बराबर कांग्रेस के साथ रहते हुए इग्लैण्ड और हिन्दुस्तान दोनो जगह उन्होंने कांग्रेस के झण्डे को ऊँचा रक्खा। दूसरी बार उन्हें जो कांग्रेस का सभापति चुना गया, वह सेण्ट्रल फिन्सबरी से उनके

कामन-सभा का सदस्य चुने जाने की खुशी में था, क्योंकि उस समय इस बात पर गम्भीरता के साथ विचार हो रहा था, कि भारत के दु ख दर्द दूर कराने के लिए लन्दन में आन्दोलन जारी किया जाय। १८९१ में तो यह प्रस्ताव भी जोर के साथ पेश हुआ, कि जबतक लन्दन में अधिवेशन न हो ले तबतक काग्रेस को स्थगित रक्खा जाय, लेकिन वह अस्वीकृत होगया। ठीक इसी समय ह्यूम साहब इग्लैण्ड जानेवाले थे, और इसी समय के लगभग कामन-सभा में भारत से चुनकर प्रतिनिधि भेजेजाने की माग भी की गई थी। ऐसी परिस्थितियो में दादाभाई नौरोजी दूसरी बार काग्रेस के सभापति चुने गये, जिन्होनें इस अवसर से लाभ उठाकर ब्रिटेनवालो को इस बात की प्रेरणा की, कि वे "इस शक्ति (शिक्षित भारतीयो) को अपनी ओर खींचने के बजाय अपने से दूर न फेंकें—अपना विरोधी न बनावें।" ब्रिटिश-राज्य की न्यायपरायणता में दादाभाई का बहुत विश्वास था और वह अन्त तक कायम रहा। १९०६ में दादाभाई कलकत्ते के अधिवेशन के सभापति हुए। उस समय हिन्दुस्तान मानो एक खौलते हुए कढाव में था, १६ अक्तूबर १९०५ को जो बग-भग किया गया था, उससे देश-भर में एक नई लहर पैदा हो गई थी। पूर्वी बगाल असन्तोष से उबल रहा था। हिन्दू-मुसलमानो को एक-दूसरे के खिलाफ उभाडा जा रहा था। विशेष कानूनो (आर्डिनेन्सो) का शासन जारी किया गया। कानून और व्यवस्था के लिए फौज और ताजीरी पुलिस की तैनाती का नया क्रम चला। दादाभाई ने बताया कि १८९३-९४ के बाद जन-सख्या तो १४ प्रतिशत ही बढी है पर सरकार का शासन-सम्बन्धी खर्च १६ प्रतिशत बढ गया है, और १८८४-८५ से लें तब तो जहा जन-सख्या १६ प्रतिशत बढी है वहा यह खर्च ७० प्रतिशत बढा है। १७ से बढकर ३२ करोड तो अकेला सैनिक व्यय ही बढ गया, जिसमें का ७ करोड खर्च इग्लैण्ड में किया जाता था। इस अस्सी बरस के बूढे ने ६,००० मील दूर (इग्लैण्ड) से यहा आकर स्वदेशी, बहिष्कार और राष्ट्रीय-शिक्षा के साथ स्वराज्य की एक नई पुकार और पैदा कर दी, यह देखकर 'इंग्लिशमैन' इनपर उबल पडा था। लेकिन भारतीय मागो के लिए रास्ता इस तरह अपने-आप साफ हो रहा था। १९०५ में गोखले ने स्व-शासन की ओर प्रगति करने के लिए चार उपाय बताये थे, जो १९०६ के मुख्य प्रस्ताव में शामिल कर लिये गये।

जिस व्यक्ति ने भारत की सेवामें अपनी सारी जिन्दगी लगा दी, भारत की मुक्ति के लिए अविश्रान्त परिश्रम किया, अपनी कलम को कभी छुट्टी नहीं दी, और जिसे विधाता ने ८५ वर्ष से अधिक समय तक हमारे बीच बनाये रक्खा, उसकी सेवाओ का उल्लेख कुछ पृष्ठो के थोडे-से स्थान में नही किया जा सकता। दादाभाई तो

हमारे ऐसे बुजुर्ग हैं जिन्होंने अपनी जिन्दगी में तो काम किया ही, पर अपने पीछे भी न केवल अपने आत्मबलिदान-पूर्ण जीवन का श्रेष्ठ उदाहरण, बल्कि अपनी पोतियो के रूप में उसका सजीव रूप वह हमारे सामने छोड़ गये हैं—क्योंकि, उनकी पोतिया उनके द्वारा चलाई गई श्रेष्ठ परम्परा को आज भी भलीभाति कायम रक्खे हुए है।

आनन्द चार्लू

काग्रेस के पहले अधिवेशन में, जो १८८५ में बम्बई मे हुआ था, सम्पादक जी० सुब्रह्मण्य ऐयर और श्री आनन्द चार्लू, काशीनाथ तैलग और दादाभाई नौरोजी नरेन्द्रनाथ सेन और उमेशचन्द्र बनर्जी, एस० सुब्रह्मण्य ऐयर और रगैया नायडू, फिरोजशाह मेहता और डी० एस० व्हाइट—इन सब प्रमुख व्यक्तियो ने, जोकि काग्रेस के जनक और बडे-बूढे थे, अपने भाषणो में उन शक्तियो का परिचय दे दिया जो कि भारतीय राजनीति में जोर पकड रही थी। कालान्तर में, इन्हीसे भारत का नरम-दल बना। आनन्द चार्लू ने जो बाद में १८९१ की नागपुर-काग्रेस के सभापति हुए थे, अपनी विशेष वक्तृत्व-शक्ति के साथ काग्रेस में प्रवेश किया। नागपुर में हुए ७ वें अधिवेशन (१८९१) का इन्होंने सभापतित्व किया, जिसमें सभापति-पद से बडा जोरदार भाषण किया।

दक्षिण भारत के राजनैतिक गगन में लगभग बीस वर्ष तक यह एक चमकती हुई ज्योति रहे। हालाकि न तो इनके अनुयायियो का कोई दल था और न यह किसी राजनैतिक मत के प्रवर्त्तक थे, फिर भी अपनी विशिष्ट तीखी वक्तृत्वशक्ति के साथ इनका एक विशेष व्यक्तित्व रहा है।

दीनशा एदलजी वाचा

हमारे इन आदरणीय बुजुर्ग का खास विषय कौनसा था, जिसपर इन्हें विशेष प्रेम और अधिकार था, यह कहना कठिन है, क्योंकि प्राय सभी विषयो में इनका एक समान अबाध प्रवेश था। इनके उज्ज्वल गुण तो पहले ही अधिवेशन में झलकने लगे थे, जबकि इन्होंने अपने महान् भाषणो में का पहला भाषण करते हुए सैनिक परिस्थिति का योग्यतापूर्ण विस्तृत सिंहावलोकन किया। दूसरे अधिवेशन में इन्होने भारतवासियो की गरीबी को लिया, और हिन्दुस्तान से हर साल ब्रिटेन को जानेवाले उस खराज की ओर सर्वसाधारण का ध्यान खीचा जिससे ब्रिटेन तो समृद्ध हो रहा था पर हिन्दुस्तान कगाल बनता चला जा रहा था।

"भारत की विशाल जन-सख्या में लगातार बढती जानेवाली गरीबी" का उल्लेख करके, इन्होने बताया कि "१८४८ से बराबर इसी प्रकार रैयत की हालत बिगडती गई है—यहा तक कि ४ करोड लोगो को दिन में सिर्फ एक ही बार भोजन नसीब होता है, और वह भी हमेशा नही।" इसका मुख्य कारण, इन्होने बताया था देश की सम्पत्ति का अनेक मार्गों से विदेशो में चला जाना।

वाचा इतने चतुर थे कि अबसे बहुत पहले १८८५ में ही, इन्होने लकाशायर का प्रश्न उठा लिया था। इन्होने कहा था कि "अगर सैनिक-व्यय कम न किया जाय तो इसके लिए बाहर से आनेवाले माल पर फिर से तट-कर लगा देना चाहिए, जिसको उठाकर मानो दरिद्रता-ग्रस्त भारत लूटा जा रहा है। और वह भी इसलिए कि माल-दार लकाशायर और समृद्ध बनाया जाय।"

१८९४ में फिर वाचा ने "लकाशायर के लिए भारतीय हितो का बलिदान करने के अभिप्राय से, भारत के शुरू होते हुए मिल-उद्योग को कुचलने के लिए भारतीय मिलो के (सूती) माल पर उत्पत्ति-कर लगाने के अन्याय" पर नजर डाली। उत्पत्ति-कर के (एक्साइज) बिल का विरोध करने के लिए इन्होने भारत-सरकार की प्रशसा की और भारत-मत्री को इस अन्याय-पूर्ण कार्य के लिए दोषी ठहराया। सैनिक-व्यय की जाच के लिए नियुक्त शाही कमीशन के सामने, जो कि आमतौर पर वेल्बी-कमीशन के नाम से मशहूर है, दी गई अपनी योग्यता-पूर्ण गवाही से इनकी प्रसिद्धि बढी जिसके लिए काग्रेस और गोखले जैसे विद्वानो ने भी इनकी तारीफ की। १८९७ में वाचा ने, उसी वर्ष अमरावती में होनेवाले अधिवेशन में सरकार की सरहदी नीति का विरोध किया। काग्रेस के १५ वें अधिवेशन (लखनऊ १८९९) में भी इन्होने मुद्रा-नीति पर अपना हमला जारी रक्खा और भारत में सुवर्ण-मान जारी करने की निन्दा की। "हिन्दुस्तान की गरीबी का मूल-कारण तो," इन्होने कहा, "यहा के धन का हर साल यहा से बाहर चला जाना है। फायदेमन्द तो सिर्फ यहा की देसी दौलत ही है। रुपये में चादी का अनुपात तो कम कर दिया गया है, लेकिन उसका मूल्य वही रहने दिया गया है। जहा पहले १) तोला चादी बिकती थी वहा अब सिर्फ ॥~) या ॥≈) तोला बिकने लगी है।" १९०१ में हुए अधिवेशन (कलकत्ता) में राष्ट्र ने वाचा को काग्रेस का सभापति बनने के लिए आमंत्रित किया।

१८९६ से लेकर १९१३ तक वाचा काग्रेस के सयुक्त प्रधान-मत्री रहे है। इसके बाद उसके काम-काज में गौणरूप से योग देते रहे। १९१५ की बम्बई काग्रेस के बाद तो, जिसके कि यह स्वागताध्यक्ष थे, वस्तुत यह फिर उसमें दिखाई भी न दिये

मगर चौथाई सदी से ज्यादा समय तक यह कांग्रेस के एक प्रमुख नेता रहे हैं। सर्वतोमुखी प्रतिभा, घटनाओ का जबरदस्त ज्ञान, और सैनिक समस्या जैसे दुरूह विषयो एव सर्व-साधारण की गरीबी जैसी अस्पष्ट और विस्तृत समस्याओ की भली-भाति जानकारी में इनसे बढकर तो कोई था ही नही, इनके जोड के भी थोडे ही आदमी थे।

गोपाल कृष्ण गोखले

गोखले पहले-पहल १८८९ में कांग्रेस में तिलक के साथ आये। नमक-कर पर हमला करते हुए उन्होंने बहुतेरे तथ्य और आकडे पेश किये थे। उन्होंने बताया कि कैसे एक पैसे की नमक की टोकरी की कीमत पाच आने हो जाती है। फिर भी उनमें कटी-से-कडी बात को बहुत ही मधुर भाषा में कहने का बडा गुण था। अपनी आलोचना में गोखले यद्यपि मधुर और मजुल होते थे तथापि वह कहते थे बात खरी, गोलमोल बातें करना उन्हें पसन्द न था। "नगे, भूखे, झुर्रियो पडे हुए, ठिठुरते और सिकुडते हुए, सुबह से शाम तक दो रोटियो के लिए खेत मे कडी मेहनत करनेवाले, चुपचाप धीरज के साथ न जाने कितना सहनेवाले, अपने शासको के पास जिनकी आवाज जरा भी नही पहुँचती और ईश्वर तथा मनुष्य के द्वारा जो-कुछ भी बोझ उनकी पीठ पर लाद दिया जाता है उसे बिना ची-चपड किये सहने के लिए सदा तैयार किसानो के लिए" गोखले के हृदय में प्रेम का स्थान था और इन्ही के हित में वह हमेशा कर और खर्च के सवालो को उठाया करते थे। लेकिन ऐसे भी मौके आ जाते थे जब गोखले की सयत और लोक-प्रचलित विनम्रता भी उनका साथ छोड देती थी और लॉर्ड कर्जन की प्रतिगामी नीति के कारण जो जोर पडा था वह दरअसल बहुत भारी था। बग-भग, कलकत्ता-कारपोरेशन के अधिकारो में कमी करना, विश्वविद्यालय-सुधार जिसके द्वारा कार्य की सुचारुता के नाम पर सरकारी अफसरो का नियत्रण कर देना और शिक्षा को खर्चीली और महँगी बना देना, आफिशियल सिक्रेट्स एक्ट —इन सब ने मिल कर लॉर्ड कर्जन के सत्कार्यों को भी, जैसे उनकी अकाल-सम्बन्धी नीति, शिकार के लिए सिपाहियो को पास देने-सम्बन्धी नियम, प्राचीन स्मृति-रक्षा कानून, रगून और ओगारा प्रकरण में सजायें देना, धर दबाया। गोखले को बहुत बिगडकर कहना पडा था, "तो अब मैं इतना ही कह सकता हूँ कि लोक-हित के लिए नौकरशाही से किसी तरह के सहयोग की तमाम आशाओ को नमस्कार!" १९०५ में बनारस-कांग्रेस के सभापति की हैसियत से गोखले ने राजनैतिक शस्त्र के रूप

में बहिष्कार का समर्थन किया था और कहा था कि इसका इस्तेमाल तभी करना चाहिए जब कोई चारा न रह गया हो और जबकि प्रबल लोक-भावनायें इसके अनुकूल हो। गोखले सामनेवाले के साथ बडी शिष्टता दिखाया करते थे, परन्तु इससे उनकी भाषा की स्पष्टता और उनके आक्रमण का जोर कम नही हो जाता था।

१६०५ और १६०६ दो साल तक गोखले भारत के प्रतिनिधि बनाकर इग्लैण्ड भेजे गये थे। हा, १८६७ में भी वह इग्लैण्ड जा चुके थे। जनता और सरकार दोनो के बीच गोखले की स्थिति विषम रहती थी। इधर लोग उनकी नरमी की निन्दा करते थे, उधर सरकार उनकी उग्रता को बुरा बताती थी। इसका मुख्य कारण यह था कि वह दोनो में मध्यस्थ बन कर रहते थे। गोखले जनता की आकाक्षायें वाइसराय तक पहुँचाते थे और सरकार की कठिनाइया काग्रेस तक।

पर यह भी मानना पडेगा कि ज्यो-ज्यो गोखले की उम्र बढती गई त्यो-त्यो वह शिकायत करने लगे कि 'नौकरशाही स्पष्टत स्वार्थसाधु और खुल्लमखुल्ला राष्ट्रीय आकाक्षाओ के विरुद्ध होती जा रही है। पहले उसका रवैया ऐसा नही था।' उन्हे पश्चिम का पूजीवाद उतना नहीं अखरता था जितना जातिगत प्रभुत्व, चरित्रनाश, द्रव्य-शोषण और भारत की बढती हुई मृत्यु-सख्या।

गोखले का बहुत बडा रचनात्मक काम है भारत-सेवक-समिति। यह ऐसे राजनैतिक कार्य-कर्त्ताओ की एक सस्था है, जिन्होने कि नाममात्र के वेतन पर मातृ-भूमि की सेवा करने का प्रण लिया है।

सूरत के झगडे के बाद गोखले ने काग्रेस के कार्य में प्रमुख भाग लिया। वह दक्षिण अफ्रीका भी गये और वहा गाधीजी के सत्याग्रह-सग्राम में अपूर्व सहायता की। १६०६ की काग्रेस में तो उन्होने सत्याग्रह-धर्म की बडी प्रशसा की थी और उसके तत्व को बडी खूबी के साथ समझाया था। उसके बाद उनकी प्रवृत्तिया मुख्यत बडी कौंसिलो के अखाडे में ही होती रही हैं। १६१४ में जब काग्रेस के दोनो दलो को मिलाने की कोशिश की गई तब पहले तो उन्होने उसे पसद किया था, परन्तु बाद को अपना विचार बदल दिया था। इस तरह उत्कट देशभक्ति, देश के लिए कठोर परिश्रम, महान् स्वार्थत्याग और देश-सेवामय जीवन को व्यतीत करते हुए गोखले ने १६ फरवरी १६१५ को इस लोक से प्रयाण कर दिया।

जी० सुब्रह्मण्य ऐयर

काग्रेस के सर्वप्रथम अधिवेशन में सबसे पहला प्रस्ताव जिसने पेश किया, वह

जिज्ञासा किसी को भी हो सकती है। 'हिन्दू' के सम्पादक मदरास के श्री जी० सुब्रह्मण्य ऐयर, जो सर्वसाधारण मे सम्पादक सुब्रह्मण्य ऐयर के नाम से मशहूर थे, वह व्यक्ति थे जिन्होने पहला प्रस्ताव पेश किया, और प्रस्ताव यह था, कि भारतीय शासन की प्रस्तावित जाच एक ऐसे शाही-कमीशन द्वारा होनी चाहिए जिसमें हिन्दुस्तानियो का भी काफी प्रतिनिधित्व रहे। पश्चात् मदरास में होनेवाली १० वी काग्रेस (१८९४) तक हम सुब्रह्मण्य ऐयर के बारे मे कुछ नही सुनते। पर मदरास-काग्रेस मे भारतीय राजस्व के प्रश्न पर यह बोले और इस सम्बन्धी जाच करने की आवश्यकता बतलाई। इस अधिवेशन मे दिलचस्पी का दूसरा विषय था देशी-राज्यो मे अखबारो की स्वतत्रता का अपहरण, जिसका श्री सुब्रह्मण्य ने कसकर विरोध किया। १२ वें अधिवेशन (कलकत्ता, १८९६) मे इन्होंने प्रतिस्पर्द्धी-परीक्षायें इग्लैण्ड व हिन्दुस्तान मे एक-साथ ली जाने की आवाज उठाई, और साथ ही लगान के मियादी बन्दोबस्त का प्रश्न भी हाथ मे लिया। अगले साल, अमरावती-काग्रेस मे, सरकार की सरहदी-नीति का विरोध किया। १८९८ मे जब तीसरी बार मदरास मे काग्रेस का अधिवेशन हुआ तो श्री सुब्रह्मण्य ऐयर ने सरहदी-नीति का प्रश्न फिर से उठाया और उसकी निन्दा की और युद्ध-नीति का भी घोर विरोध किया था। परन्तु श्री सुब्रह्मण्य का प्रिय विषय तो था भारत की आर्थिक स्थिति। लाहौर में होनेवाले १६ वें अधिवेशन (१९००) में इन्होने बार-बार पडनेवाले अकालो को रोकने के उपाय मालूम करके उनपर अमल करने के अभिप्राय से भारतीयो की आर्थिक अवस्था की पूरी और स्वतन्त्र जाच कराने के लिए कहा। साथ ही सरकारी नौकरियो के प्रश्न पर भी विचार किया, जिसमें हिन्दुस्तानियो को उनसे महरूम रखने की शिकायत की। १७ वें अधिवेशन में (कलकत्ता, १९०१) रैयत की दुर्दशा और गरीबी पर ध्यान दिया। इन्होने कहा—"क्या हिन्दुस्तानी रैयत की जिन्दगी जानवरो की तरह जिन्दा रहने और मर जाने के लिए है? और मनुष्यो की तरह क्या उनमें बुद्धि, भावना और छिपी हुई शक्तिया नही है? लगभग २० करोड व्यक्ति आज लगातार भुखमरी और घोर अज्ञान का दुःखी जीवन व्यतीत कर रहे हैं। न तो वे कुछ बोल सकते है न उनकी जिन्दगी में कोई उत्साह है, न उन्हें किसी तरह की सुविधा है न मनोरजन, न उनकी कोई आशा है न महत्त्वाकाक्षा, वे तो दुनिया में पैदा हो गये इसीलिए किसी तरह जी रहे है, और जब मरते है तो इसलिए कि उनका शरीर और अधिक देर तक उनके प्राणो को धारण नही कर सकता।" अकालो के प्रश्न पर भी इस काग्रेस में इन्होने ध्यान दिया और औद्योगिक स्वावलम्बन पर जोर दिया। इसके लिए कला-कौशल की सस्थायें कायम करने, छात्र-वृत्तिया देकर भारतीयो को

इस सम्बन्धी शिक्षा प्राप्त करने के लिए विदेशों में भेजने और देशी उद्योग-धंधों की भली-भांति जांच करने के व्यावहारिक उपाय इन्होंने सुझाये।

सुब्रह्मण्य ऐयर का ज्ञान जितना गम्भीर था उतना ही विशाल उनका दृष्टिकोण था। अपने लेखों की बदौलत इन्हें जेलखाने की हवा खानी पड़ी थी, जहां से बीमार हो जाने पर ही इन्हें रिहाई मिली। इसमें सन्देह नहीं कि अपने समय के राजनीतिज्ञों में यह अत्यन्त निर्भीक और दूरन्देश थे, जिसके लिए भावी सन्तति सदा इनकी कृतज्ञ रहेगी।

बदरुद्दीन तैयबजी

बदरुद्दीन तैयबजी एक पक्के कांग्रेसी थे, जो बढ़ते-बढ़ते कांग्रेस के तीसरे अधिवेशन (मदरास, १८८७) के सभापति हुए थे। सभापति-पद से दिये हुए अपने भाषण में इन्होंने कांग्रेस के प्रातिनिधिक रूप पर जोर दिया। इन्हींके कहने पर इस काम के लिए एक समिति बनाई गई थी कि वह कांग्रेस में वाद-विवाद के लिए जो बहुत से प्रस्ताव आवें उनपर विचार करके कांग्रेस का कार्यक्रम निश्चित करे। इस समिति को वस्तुत. बाद को बननेवाली विषय-समिति का पूर्व-रूप कहना चाहिए। बाद में यह बम्बई-हाईकोर्ट के जज हो गये थे। १९०४ में सरकारी नौकरियों में हिन्दुस्तानियों की नियुक्ति सम्बन्धी प्रस्ताव की बहस में इन्होंने भाग लिया। १९०६ के प्रारम्भ में इनका स्वर्गवास हो गया। कांग्रेस के पहले अधिवेशन का सभापतित्व एक हिन्दू (उमेशचन्द्र बनर्जी) ने किया था, दूसरे के सभापति पारसी दादाभाई नौरोजी हुए थे। इसके बाद तीसरे अधिवेशन के सभापति तैयब जी को बनाना खास तौर पर उचित था, क्योंकि यह मुसलमान थे।

काशीनाथ त्र्यम्बक तैलङ्ग

जस्टिस काशीनाथ त्र्यम्बक तैलंग कांग्रेस के अत्यन्त कर्त्तव्यशील संस्थापकों में से थे और उसके "बम्बई में, सबसे पहले डटकर काम करनेवाले मंत्री" रहे हैं। कांग्रेस के पहले ही अधिवेशन में इन्होंने बड़ी (सुप्रीम) और प्रान्तीय कौंसिलों-सम्बन्धी प्रस्ताव पेश किया और सदस्यों के लिए निर्वाचक-मण्डलों की एक योजना पेश की। चौथे अधिवेशन में इन्होंने कहा था कि सरकार को अपने विभिन्न कामों के लिए तो हमेशा रुपया मिल जाता है, लेकिन शिक्षा पर वह अपनी आमदनी का सिर्फ १ प्रतिशत ही खर्च करती है। १८९३ में असमय ही इनकी मृत्यु हो गई।

उमेशचन्द्र बनर्जी

यदि प्रामाणिक रूप से यह जानना हो कि कांग्रेस का आरंभिक उद्देश क्या था, तो उसके प्रथम अधिवेशन के सभापति उमेशचन्द्र बनर्जी के भाषण की ही ओर निगाह दौडानी पड़ेगी। उसमें उन्होने स्पष्ट रूप मे उसका वर्णन किया है। इलाहाबाद (१८९२) के आठवें अधिवेशन में वह दुबारा कांग्रेस के सभापति हुए थे। यह याद रहे कि १८९१ में सहवास-बिल के सम्बन्ध मे बहुत आन्दोलन उठ खडा हुआ था और लोकमान्य तिलक ने उसका विरोध किया था। उमेशचन्द्र बनर्जी ने इलाहाबाद में अपने भाषण में वे कारण बताये थे जिनसे कांग्रेस ने अपने को सामाजिक प्रश्नो से अलहदा रक्खा था।

अपने देश की बहुत प्रशसनीय सेवा करने के बाद १९०६ में इनका स्वर्गवास हुआ।

लोकमान्य तिलक

लोकमान्य तिलक महाराष्ट्र के बिना ताज के बादशाह थे और बाद में, होम-रूल के दिनो मे, भारत के भी हो गये थे। अपनी सेवाओ और तपश्चर्या के द्वारा ही वह इस दर्जे को पहुँचे थे।

शिवाजी महाराज की स्मृति को फिर से ताजा करने का श्रेय लोकमान्य तिलक को ही है। सारे महाराष्ट्र मे शिवा-जयन्तिया मनाई जाने लगी, जिनमे उत्सव के साथ सभायें भी होती थी। पहली ही सभा मे दक्षिण के बडे-बडे मराठा राजा और मुख्य-मुख्य जागीरदार और इनामदार आये थे। इस सिलसिले में १४ सितम्बर १८९७ को कुछ पद्य तथा अपना भाषण छापने के अपराध में उन्हे १८ महीनो की कड़ी कैद की सजा दी गई थी। पर वह ६ सितम्बर १८९८ को छोड दिये गये। अध्यापक मैक्स-मूलर, सर विलियम हण्टर, सर रिचार्ड गार्थ, मि० विलियम केन और दादाभाई नौरोजी ने एक दरख्वास्त दी थी, जिसके फल-स्वरूप उनकी रिहाई हुई थी। उनके जेल में रहते हुए ताजिरात हिन्द मे १२४ ए और १५३ ए दफायें नई जोडी गई, जिससे कि वह कानून के शिकजे मे फँसाये जा सकें।

अमरावती-कांग्रेस (१८९७) मे तिलक की रिहाई के बारे में एक विशेष प्रस्ताव पास करने की कोशिश की गई थी, किन्तु वह सफल न हुई। परन्तु कांग्रेस में प्रस्ताव-द्वारा जो बात न हो सकी वह सभापति सर शकरन् नायर और सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के भाषणो से पूरी हो गई। दोनो ने उस महान् और विद्वान् पुरुष की बहुत

प्रशसा की, जो कि उस समय जेल में सड रहा था। इससे तिलक की कीर्ति शिखर पर पहुँच गई थी।

१८९६ से ही तिलक काग्रेस को प्रेरित कर रहे थे कि वह कुछ ज्यादा मजबूती दिखलाये। १८९९ में जब वह लॉर्ड सेण्डर्स्ट की निन्दा का प्रस्ताव पेश करना चाहते थे तो एक विरोध का तूफान खडा हो गया था। उन्होने दर्शको को यह साबित करने के लिए चुनौती दी कि लॉर्ड सेण्डर्स्ट का शासन प्रजा के लिए सत्यानाशी नही था। उन्होने नौकरशाही की करतूतें साफ-साफ सामने रक्खीं और पूछा कि बताओ, इनमें कहा अत्युक्ति है? परन्तु रमेशचन्द्र दत्त जो कि सभापति थे और कई दूसरे प्रतिनिधि भी, कहते हैं, तिलक के इस प्रस्ताव के घोर विरोधी थे और जब तिलक ने कहा कि वह इस बिना पर नही रोके जा सकते कि काग्रेस में प्रान्तिक प्रश्न नही लिये जा सकते, और वह अपने पक्ष में अन्याय और धाराओ के उदाहरण देने लगे, तो सभापति ने यहा तक कह दिया कि यदि तिलक इसपर अडे ही रहेंगे तो मुझे इस्तीफा दे देना होगा।

सूरत (१९०७) में काग्रेस के दो टुकडो का हो जाना उस समय बडी चर्चा का विषय हो गया था। लोकमान्य तिलक उसमें सबसे बडे अपराधी गिने जाते थे और कहा जाता था कि इन्होने २५ वर्ष की जमी-जमाई काग्रेस को मिट्टी में मिला दिया। दोनो तरफ के लोग अपने-अपने पक्ष की बातें कहते थे। इसमें तो कोई शक नहीं कि खुद कलकत्ते में ही नरम और गरम दल के नेताओ का मतभेद प्रकट होने लगा था, लेकिन दादाभाई नौरोजी के प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण किसी तरह वह हट-सा गया था। वही १९०७ में जाकर प्रबल हो गया। काग्रेस को नागपुर से सूरत ले जाने का कारण यही मतभेद था और राष्ट्रीय तथा गरम दल के लोग खुल्लमखुल्ला कहते थे कि नरम दलवालो ने जान-बूझकर सूरत को पसंद किया है, ताकि वे स्थानिक लोगो की सहायता से अपना चाहा कर सकें। गरम दल के लोग चाहते थे कि लोकमान्य तिलक सभापति हो, परन्तु नरम दल के लोग इसके विरोधी थे और उन्होने अपने विधान के अनुसार डॉ० रासबिहारी घोष को चुन लिया। इसपर गरम दलवालो ने लाला लाजपतराय का नाम पेश किया। उन्होने सोचा था कि लालाजी हाल ही देश-निकाले से लौटकर आये हैं, जिससे उनका नाम और भी बढ गया है और वह बिना विरोध के चुन लिये जायँगे, परन्तु लाला लाजपतराय ने उस समय बडे आत्म-त्याग का परिचय देते हुए उस सम्मान से इन्कार कर दिया। जब प्रतिनिधि सूरत पहुँच गये तब लोकमान्य ने अपने विचार के प्रतिनिधियो को अलहदा कैम्प में जमा किया। मतभेदो को दूर करने की कोशिश की जा रही थी, मगर गलतफहमिया बढती ही चली गईं। गरम-

गुजर चुका है कि दोनो दलो की बातो पर कोई राय बनाई जा सकती है। यह तो मानना ही पडेगा कि दोनो का दृष्टि-बिन्दु जुदा-जुदा था और हर दल उत्सुक था कि कांग्रेस उसके दृष्टि-बिन्दु को मान ले। परन्तु जिस बात पर लोकमान्य तिलक मच पर खडे हुए वह मामूली थी। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि कलकत्ते में स्वीकृत विधान के अनुसार स्वागत-समिति सभापति को सिर्फ नामजद करती है और अन्त में उसे चुनते तो है कांग्रेस में जमा हुए प्रतिनिधि, इसलिए मुझे अधिकार है कि मै उस अवस्था में कोई सशोधन या सभा को स्थगित करने का प्रस्ताव पेश करूँ। परन्तु उन्हें ऐसा नही करने दिया गया। तब उन्होने इस अन्याय पर बोलने के अपने अधिकार का उपयोग करना चाहा। हम यह नही कह सकते कि विधान के अनुसार उनका कहना गलत था। साथ ही यह कहना पडेगा कि महज गलतफहमी के कारण लोगो के मनोभाव बहुत बिगड चुके थे, क्योंकि यह सदेह पैदा हो गया था कि कलकत्तेवाले प्रस्ताव मसविदे में शामिल नही किये गये थे। पर अगर वे नही भी थे तो विषय-समिति में वे शामिल किये जा सकते थे, या यदि वे उस रूप में नही थे जिससे गरम दलवालो को सतोष होता तो विषय-समिति में, यदि उनका बहुमत होता, उनमें फेर-फार कराया जा सकता था। महज उनका रह जाना कोई इतनी बड़ी बात नही थी कि जिससे इतना भारी काण्ड होने दिया जाय। यदि दोनो दल के नेता आपस मे खुलकर बातचीत कर लेते तो वह दोनो की स्थिति साफ करने के लिए काफी हो जाता और तब उचित फैसला कर लिया जाता, परन्तु कुछ नरम नेताओ की तगदिली ने शायद ऐसा नही करने दिया। हा, घटनायें घटजाने पर तो अकल आसानी से आ जाती है, किन्तु जब मनोभावो पर चोट पहुँची हुई होती है तब बडे-बडे लोग भी अपनी समता खो देते है। अब यदि हम लोकमान्य तिलक और गोखले जैसो के बारे में यह कहें कि इसमें किसका कितना दोष था तो हमारे हक में वह विवेक-हीनता ही होगी। और इसलिए, हम अब इस 'अव्यापारेषु व्यापार' में न पडकर, दोनो नेताओ के प्रति अपने आदर को किसी प्रकार कम न होने देते हुए, उस दुर्घटना को छोडकर आगे चलते है।

लोकमान्य तिलक जबरदस्त राष्ट्र-धर्म के उपासक थे। परन्तु अपने समय की मर्यादाओ को वह जानते थे। १९१८ में सर वेलेण्टाइन शिरोल पर मुकदमा चलाने के लिए वह इग्लैण्ड गये। सर वेलेण्टाइन ने उन्हें राजद्रोही बताया था और लोकमान्य ने उनपर मानहानि का दावा किया था। इग्लैण्ड में उन्होने मजदूर-दल पर इतना भरोसा रक्खा कि उन्होने ३ हजार पौण्ड भेंट किया। उन्होने मान लिया था कि मजदूर-दल का इतना बल है कि उसके द्वारा भारत का उद्धार हो जायगा। इससे पहले के

राजनीतिज्ञ अनुदारदलवालो की बनिस्वत उदारदलवालो पर बहुत भरोसा रखते थे, परन्तु उसके बाद के राष्ट्रीय दल के लोग उदार और अनुदार दोनो को एक-सा समझकर मजदूर-दल को मानते थे। उस पुराने युग में एक लोकमान्य तिलक ही थे जिन्हे लगातार जेलो में तथा अन्यत्र कष्ट-ही-कष्ट भोगना पडा। यहा तक कि जब १९०८ मे जज ने उनको सजा दी और उनके बारे में खरी-खोटी बाते कह कर पूछा कि आपको कुछ कहना है, तब उन्होंने उसका जो उत्तर दिया वह सदा याद रखने और प्रत्येक घर में स्वर्णाक्षरो में लिखकर रखने योग्य है —"जूरी के इस फैसले के बावजूद मैं कहता हूँ कि मैं निरपराध हूँ। ससार मे ऐसी बडी शक्तिया भी है जो सारे जगत् का व्यवहार चलाती है और सभव है ईश्वरीय इच्छा यही हो कि जो कार्य मुझे प्रिय है वह मेरे आजाद रहने की अपेक्षा मेरे कष्ट-सहन से अधिक फूले-फले।"* ऐसी ही तेजस्विता उन्होने १८९७ मे दिखलाई थी जब कि उनपर राजद्रोह का मुकदमा चल रहा था और उनसे सिर्फ यह कहा गया कि वह अदालत मे यह सच बात कह दे कि ये लेख मेरे लिखे नही है। (१९०८ में जिन लेखो के विषय मे लोकमान्य पर मुकदमा चलाया गया था वे भी उनके लिखे नही थे।) उन्होने कतई इनकार कर दिया और कहा—"हमारे जीवन में ऐसी भी एक अवस्था आती है जबकि हम अकेले अपने मालिक नही हुआ करते, बल्कि हमें अपने साथियो के प्रतिनिधि के रूप मे काम करना पडता है।" "उन्होने बडी शान्ति और अनासक्ति के साथ इन सजाओ को भुगता और जेल में बैठे-बैठे बडे भव्य ग्रथो की रचना की। यदि उन्हे जेल न मिली होती तो 'आरक्टिक होम ऑफ दी वेदाज' और 'गीता रहस्य' वह सभवत राष्ट्र के लिए अपनी परम्परा नही छोड जाते। लोकमान्य जुलाई १९१८ मे बम्बई की युद्ध-सभा में बुलाये गये थे और वह वहा गये भी थे। वह कोई दो ही मिनट बोलने पाये थे कि रोक दिये गये। बात यह थी कि वह लॉर्ड विलिंगडन की उन बातो का जवाब देने लगे थे जो कि उन्होने होमरूलवालो के खिलाफ कही थी।

जब १८९६ में गाधीजी पूना गये और दक्षिण-अफीका-वासी भारतीयो के

---

* उन्हीं दिनो किसीने इस भाव को इन कडियो में व्यक्त किया था:—

"इस जूरी ने यद्यपि मुझको अपराधी ठहराया है,
तो भी मेरे मन ने मुझको निर्दोषी बतलाया है।
ईश्वर का सकेत मनोगत दिखलाई यह मुझे पडे,
मेरे संकट सहने से ही इस हलचल का तेज बढे।"

सम्बन्ध मे एक सभा करना चाहते थे, वह लोकमान्य से मिले और उनकी सलाह के मुताबिक गोखले से भी। गाधीजी पर दोनो की जैसी छाप पडी वह याद रखने लायक है। तिलक उन्हें हिमालय की तरह महान्, उच्च, परन्तु अगम्य दिखाई पडे, लेकिन गगा की पवित्र धारा की तरह, जिसमे वह आसानी से गोता लगा सकते थे। तिलक और गोखले दोनो महाराष्ट्रीय थे, दोनो ब्राह्मण थे, दोनो चितपावन थे, दोनो प्रथम श्रेणी के देश-भक्त थे, दोनो ने अपने जीवन में भारी त्याग किया था, परन्तु दोनो की प्रकृति एक-दूसरे से जुदा थी। यदि हम स्थूल भाषा का प्रयोग करें तो कह सकते हैं कि गोखले 'नरम' थे और तिलक 'गरम'। गोखले चाहते थे कि मौजूदा विधान में सुधार कर दिया जाय, परन्तु तिलक उसे फिर से बनाना चाहते थे। गोखले को नौकरशाही के साथ काम करना पडता था, तो तिलक की नौकरशाही से भिडन्त रहती थी। गोखले कहते थे—जहा सभव हो सहयोग करो, जहा आवश्यक हो विरोध करो। तिलक का झुकाव अडगा-नीति की तरफ था। गोखले शासन और उसके सुधार की ओर मुख्य ध्यान देते थे, तहा तिलक राष्ट्र और उसके निर्णय को सबसे मुख्य समझते थे। गोखले का आदर्श था प्रेम और सेवा, तहा तिलक का आदर्श था सेवा और कष्ट सहना। गोखले विदेशियो को जीतने का उपाय करते थे, तिलक उनको हटाना चाहते थे। गोखले दूसरे की सहायता पर आधार रखते थे, तिलक स्वावलम्बन पर। गोखले उच्चवर्ग और बुद्धि-वादियो की तरफ देखते थे, और तिलक सर्वसाधारण और करोडो की ओर। गोखले का अखाडा था कौंसिलभवन, तो तिलक की अदालत थी गाव की चौपाल। गोखले अग्रेजी में लिखते थे, परन्तु तिलक मराठी में। गोखले का उद्देश्य था स्व-शासन, जिसके योग्य लोग अपने को अग्रेजो की कसौटियो पर कसकर बनावें, किन्तु तिलक का उद्देश्य था 'स्वराज्य', जो कि प्रत्येक भारतवासी का जन्म-सिद्ध अधिकार है और जिसे वह विदेशियो की सहायता या बाधा की परवाह न करते हुए प्राप्त करना चाहते थे।

पं० अयोध्या नाथ

शुरूआत के काग्रेस-नेताओ में प० अयोध्यानाथ का स्थान बहुत ऊँचा था। १८८८ में हुई इलाहाबाद-काग्रेस के, जो मि० जार्ज यूल के सभापतित्व में हुई थी, वह स्वागताध्यक्ष थे, तभी से काग्रेस के साथ उनका सम्बन्ध शुरू होता है। लेकिन इसी शहर में जब फिर से, काग्रेस का अधिवेशन हुआ (१८९२) तो काग्रेस को बड़े दुःख के साथ इन दोनो की ही मृत्यु पर शोक मनाना पड़ा। प० अयोध्यानाथ का

स्मारक उनके पुत्र प० हृदयनाथ कुंजरू है, जिन्हें बतौर विरासत वह राष्ट्र की भेंट कर गये हैं।

सुरेन्द्रनाथ बनर्जी

भारत के स्वर्गीय राजनीतिज्ञो के दरबार मे सुरेन्द्रनाथ बनर्जी की आत्मा का एक प्रमुख स्थान है। ४० साल से ज्यादा सुरेन्द्रनाथ बनर्जी का सम्बन्ध काग्रेस से रहा। भारत में काग्रेस के मच से उठी उनकी बुलन्द आवाज सभ्य ससार के दूर-दूर के कोने तक पहुँचती थी। भाषा-प्रभुत्व, रचना-नैपुण्य, कल्पना-प्रवणता, उच्च भावुकता, वीरोचित हुकार, इन गुणो में उनकी वक्तृत्व-कला को पराजित करना कठिन है—आज भी कोई उनकी समता तो अलग, उनके निकट भी नही पहुँच सकता। उनके भाषणो का मसाला होता था अपनी राजभक्ति की दुहाई। उन्होने इसे एक कला की हद तक पहुँचा दिया था। उन्होने दो बार काग्रेस के सभापति-पद को सुशोभित किया था—पहली बार १८९५ में पूना में और दूसरी बार १९०२ मे अहमदाबाद मे। काग्रेस में प्रतिवर्ष जो भिन्न-भिन्न विषयो पर विविध प्रस्ताव लाये जाते थे उनमें शायद ही कोई उनकी पहुँच के बाहर रहता हो। फौजी विषयो में रूस १९ वी सदी के अन्त में बरसो तक हौवा बना रहा है। परन्तु सुरेन्द्रनाथ ने इसका जो जवाब दिया वह याद रखने योग्य है—"रूस की चढाई का सच्चा और वैज्ञानिक उपाय तो कोई लम्बा-चौडा और अगम्य पर्वत नही, जो बीच में बनाकर खडा कर देना है, बल्कि वह तो सब तरह सन्तुष्ट और राज-भक्त लोगो का दिल है।" सुरेन्द्रनाथ ने तो यहा तक सुझाया था कि हिन्दुस्तान के राजनैतिक प्रश्नो को ब्रिटिश पार्लमेण्ट के किसी दल को अपना विषय बना लेना चाहिए। यह एक ऐसी तजवीज थी कि जो आज भी व्यावहारिक क्षेत्र की सीमा के बाहर समझी जाती है। उन्होने कहा—"राजनैतिक कर्तव्यो के उच्च क्षेत्र में इग्लैण्ड हमारा राजनैतिक पथ-दर्शक और नैतिक गुरु है।" उनका आदर्श था ब्रिटिश सम्बन्ध के प्रति अटल श्रद्धा रखकर काम करना। उनके इन तमाम विश्वासो, मान्यताओ के रहते हुए भी लॉर्ड मिण्टो के वाइसराय-काल में बरीसाल में उनपर लाठी चलाई गई थी, किन्तु उन्हें आगे चलकर बगाल का मत्री बनना था, इसलिए बच गए।

पण्डित मदनमोहन मालवीय

प० मदनमोहन मालवीय का काग्रेस-मच पर सबसे पहली बार सन् १८८६ में, काग्रेस के कलकत्ता-अधिवेशन में, व्याख्यान हुआ था, तभी से लेकर आप बराबर

आजतक अथक उत्साह और लगन के साथ इस राष्ट्रीय सस्था की सेवा करते चले आ रहे है। कभी तो एक विनम्र सेवक के रूप मे पीछे रहकर और कभी नेता के रूप में आगे आकर, कभी पूरे कर्त्ता-धर्त्ता बनकर और कभी कुछ थोडा-सा विरोध प्रदर्शित करनेवाले के रूप में प्रकट होकर, कभी असहयोग और सत्याग्रह-आन्दोलन के विरोधी होकर और कभी सत्याग्रही बनने के कारण सरकारी जेलो में जाकर, आपने कांग्रेस की विविध रूप में सेवा की है।

सन् १९१८ के अप्रैल मास मे २७, २८ और २९ तारीख को वाइसराय ने गत महायुद्ध के लिए जन, धन तथा अन्य सामग्री एकत्र करने के लिए भारतीय नेताओ की एक सभा बुलाई थी। उसमें गवर्नर, लेफ्टिनेण्ट-गवर्नर, चीफ-कमिश्नर, कार्यकारिणी के सदस्य, बडी कौंसिल के भारतीय तथा यूरोपियन सदस्य, विभिन्न प्रान्तीय कौन्सिलो के सदस्य, देशी-नरेश तथा अनेक सरकारी एव गैरसरकारी प्रतिष्ठित यूरोपियन और हिन्दुस्तानी नागरिक सम्मिलित हुए थे। इस सभा में शास्त्रीजी, राजा महमूदाबाद, सैयद हसनइमाम, सरदारबहादुर सरदार सुन्दरसिंह मजीठिया और गाधीजी के भाषण 'सम्राट् के प्रति भारत की राजभक्ति' वाले प्रस्ताव के समर्थन में हुए थे, जिसे महाराजा गायकवाड ने पेश किया था।

इसके बाद प० मदनमोहन मालवीय ने वाइसराय को सम्बोधन करके कहा, कि "भारत के आधुनिक इतिहास से एक शिक्षा लीजिए। औरगजेब के जमाने में सिक्ख गुरुओ ने उसकी सत्ता और प्रभुत्व का मुकाबला किया था। गुरु गोविन्दसिंह ने छोटे-से-छोटे लोगो को, जो आगे बढे, अपनाया और गुरु और शिष्य के बीच में जो अन्तर है उसे एकदम मिटाकर उन्हें दीक्षित किया। इस तरह गुरु गोविन्दसिंह ने उन लोगो के हृदय पर अधिकार जमा लिया था। अब भी मैं यही चाहता हूँ कि आप अपनी शक्ति-भर प्रयत्न करके भारतीय सिपाहियो के लिए ऐसी व्यवस्था कर दीजिए कि जिससे युद्ध-स्थल में अन्य देशो के जो सैनिक उनके कधे-से-कधा भिडाकर युद्ध करते हैं उनके बराबर वे अपने को समझ सकें। मै चाहता हूँ कि इस अवसर पर गुरु गोविन्दसिंह के उत्साह एव साहस से काम लिया जाय।"

देश में जब असहयोग-आन्दोलन चला तब मालवीयजी उससे तो दूर रहे, परन्तु काग्रेस से नही। नरम दलवालो ने अपने जमाने में काग्रेस को हर प्रकार चलाया, लेकिन जब उनका प्रभाव कम हुआ तो वे उससे अलग हो गये। श्रीमती बेसेण्ट ने काग्रेस पर एकबार अधिकार प्राप्त कर लिया था। पर बाद में उन्होंने भी, अपने से प्रबल दलवालो के हाथो में उसे सौंप दिया। लेकिन मालवीयजी तमाम उतार-

चढ़ावों में, प्रशंसा और बदनामी, किसी की भी परवा न करते हुए, सदैव कांग्रेस का पल्ला पकड़े रहे हैं। मालवीय जी ही अकेले एक ऐसे व्यक्ति हैं, जिनमें इतना साहस है कि जिस बात को वह ठीक समझते हैं उसमें चाहे कोई भी उनका साथ न दे पर वह अकेले ही मैदान में खम ठोंककर डटे रहते हैं। एक बार वह अपनी लोक प्रियता की चरम-सीमा पर थे। दूसरी बार अवस्था यह हुई कि कांग्रेस-मंच पर उनके भाषण को लोग उतने ध्यान से नहीं सुनते थे। १९३० में जब सारे कांग्रेसी सदस्यों ने असेम्बली की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया था उस समय मालवीयजी वहीं डटे रहे। उन्हें ऐसा करने का अधिकार भी था। क्योंकि वह कांग्रेस के टिकट पर असेम्बली में नहीं गये थे। लेकिन इसके चार मास बाद ही दूसरा समय आया। मालवीयजी ने उस समय की आवश्यकता को देखकर असेम्बली की मेम्बरी से इस्तीफा दे दिया। सन् १९२१ में उन्होंने असहयोग-आन्दोलन का विरोध किया था। लेकिन १९३० में हमें वह पूरे सत्याग्रही मिलते हैं। सब मिलाकर उनका स्थान अनुपम और अद्वितीय है। हिन्दू की हैसियत से वह उन्नत विचारवाले हैं और गाड़ी को आगे खींचते हैं। कांग्रेसी की हैसियत से वह स्थिति-पालक हैं, इसीलिए प्रायः वह पिछड़े हुए विचारवालों का नेतृत्व किया करते हैं। फिर भी कांग्रेस इस बात में अपना गौरव समझती है कि वह सरकारी कौंसिल और देश की कौंसिल दोनों में उन्हें निर्विरोध जाने दे। किसी समय में जो बात गांधीजी के लिए कही जा सकती थी, वही इनके लिए भी कही जा सकती है, कि एक समय था जब वह ब्रिटिश-साम्राज्य के मित्र थे। लेकिन अपने सार्वजनिक जीवन के पिछले दिनों में उन्होंने अपने को, सरकारी निरंकुशता का अपने सारे उत्साह और सारी शक्ति के साथ विरोध करने के लिए विवश पाया। बनारस हिन्दू-विश्वविद्यालय उनकी विशेष कृति है। लेकिन वह स्वयं भी एक संस्था हैं। पहले-पहल सन् १९०९ में वह लाहौर-कांग्रेस के सभापति हुए थे। कांग्रेस के इस २४ वें अधिवेशन के सभापति चुने तो सर फिरोजशाह मेहता गये थे, परन्तु किन्हीं अज्ञात कारणों से उन्होंने अधिवेशन से केवल ६ दिन पूर्व इस मान को स्वीकार करने से इनकार कर दिया था। अतः उनके स्थान की पूर्ति मालवीयजी ने ही की थी। १० वर्ष बाद सन् १९१८ में कांग्रेस के दिल्लीवाले ३३ वें अधिवेशन के सभापतित्व के लिए राष्ट्र ने आपको फिर मनोनीत किया था।

लाला लाजपतराय

कांग्रेस के पुराने पूज्य-पुरुषों में लाला लाजपतराय का सार्वजनिक व्यक्तित्व

भी महान् था। वह जितने बड़े कांग्रेस-भक्त थे उतने ही बड़े परोपकारी और समाज-सुधारक भी थे। सन् १८८८ में इलाहाबाद में कांग्रेस का चौथा अधिवेशन हुआ था। उसमें वह सबसे पहली बार सम्मिलित हुए थे। कौंसिलों के बढ़ाये जाने के प्रस्ताव का उन्होंने समर्थन किया था। राजनैतिक क्षेत्र में लालाजी की लगातार दिलचस्पी और समाज-सेवा ने पंजाब में ही नहीं, सारे देश में उनका सबसे ऊंचा स्थान बना दिया था। बनारस-कांग्रेस ने उन्हें एक प्रमुख वक्ता और राष्ट्रवादी के रूप में याद किया। सन् १९०७ में उन्हें सरदार अजीतसिंह के साथ देश-निकाला दे दिया गया था। इस साल की घटनाओं के प्रधान स्तम्भ लाला लाजपतराय ही थे, जिनके चारों ओर सारा घटना-चक्र घूमा था। सन् १९०७ की कांग्रेस के सभापति-पद के लिए राष्ट्रीय विचार के लोगों ने लालाजी का नाम पेश किया। यह कांग्रेस पहले तो नागपुर में होनेवाली थी, परन्तु बाद को स्थान बदलकर सूरत में करने का निश्चय हुआ था। गोखले इस प्रस्ताव के विरोध में थे। उन्होंने स्पष्ट कहा कि "अगर तुम सरकार की परवा न करोगे तो वह तुम्हारा गला घोंट देगी।" लालाजी ने कभी मान-प्रतिष्ठा की परवा नहीं की। यदि किसी पद के लिए उनका नाम लिया जाता तो वह उसे स्वीकार करने से उदारता-पूर्वक इनकार कर देते थे। सूरत में समझौते की बातचीत के समय, लोकमान्य तिलक चाहते थे कि कांग्रेस के सभापति-पद के लिए लालाजी का नाम पेश करते हुए उनके सम्बन्ध में आदरपूर्वक कुछ कहें, लेकिन बाद में इस दिशा में कुछ हुआ-हवाया नहीं।

सन् १९०५ में गोखले के साथ लालाजी भी शिष्ट-मण्डल में इंग्लैण्ड भेजे गये थे। बाद में खुफिया-पुलिस ने उन्हें इतना तंग किया कि उन्होंने विदेशों में ही रहना ठीक समझा। गत महायुद्ध के दिनों में तो वह अमरीका ही में रहे। लोग समझते हैं कि वह निर्वासित होकर ही वहां रहे थे। कांग्रेस के सभापति बनने का लालाजी का नम्बर जरा देर से आया। सन् १९२० के सितम्बर मास में कलकत्ते में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन हुआ था। उस समय उनकी अवस्था ऐसी थी जैसे जल से बाहर मछली की होती है। असहयोग-आन्दोलन के जन्मदाता और समर्थकों से उनके विचार कभी नहीं मिले। इतना ही नहीं, अपने अन्तिम भाषण में तो उन्होंने यह भविष्यवाणी भी कर दी थी कि यह आन्दोलन सफल नहीं होगा। वह वीर और युद्ध-प्रिय थे, मगर सत्याग्रही नहीं। उनके लिए सत्याग्रह या सविनय-भंग का अर्थ कानून-भंग के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। उनका समय [illegible] और [illegible] में बीता। उनके [illegible] में [illegible] का एक दल [illegible] था, जो उनके [illegible] था। कौंसिल के [illegible] पर उनका

जौहर फिर से खिल उठा। लेकिन अफसोस कि पुलिस-अफसर की लाठी के कायरता-पूर्ण वार ने अन्त में उनकी जीवन-यात्रा को घटा दिया और वह हमारे बीच से असमय में ही चले गये! सन् १८८८ की कांग्रेस में वह उर्दू में ही बोले थे और प्रस्ताव किया था कि आधा दिन शिक्षा तथा उद्योग-धन्धे सम्बन्धी विषयों पर विचार करने के लिए दिया जाय। यह प्रस्ताव स्वीकार हो गया था और उसी समय से जो औद्योगिक प्रदर्शनियां की जा रही हैं वह उसी कमिटी का प्रत्यक्ष फल है जिसे कि उस समय कांग्रेस ने नियुक्त किया था।

फिरोजशाह मेहता

सर फिरोजशाह मेहता उन व्यक्तियों में से हैं जिनका सम्पर्क कांग्रेस के साथ उसके प्रारम्भ से ही रहा है। कांग्रेस की नीति और कार्यक्रम के निर्माण में इनका बहुत प्रमुख भाग रहा है। कलकत्ता में हुए छठे अधिवेशन (१८९०) के यह सभापति हुए थे, जिसमें सभापति-पद से दिये गये अपने भाषण में इन्होंने लॉर्ड सेल्सबरी के इस विचार का खण्डन किया कि "प्रतिनिधि-शासन पूर्वी परम्पराओं अथवा पूरब-निवासियों की मन स्थिति के अनुकूल नहीं है" और अपनी बात की पुष्टि में मि० चिसहाम एन्स्टे का यह उद्धरण पेश किया कि "स्थानिक-स्वराज्य का जनक तो पूर्व ही है, क्योंकि स्व-शासन का अधिक-से-अधिक विस्तृत जो अर्थ हो सकता है, उस रूप में वह प्रारम्भ से ही वहां मौजूद रहा है।" फिरोजशाह ने कहा, "निस्सन्देह कांग्रेस जन-साधारण की संस्था नहीं है, लेकिन जन-साधारण के शिक्षित-वर्ग का यह फर्ज है कि वह जनसाधारण की तकलीफों को सामने लाये और उन्हें दूर कराने के उपाय सुझावे।"

"अंग्रेजों के जीवन और समाज की सारी नैतिक, सामाजिक, बौद्धिक और राजनैतिक बड़ी-बड़ी शक्तियों का प्रभाव, धीरे-धीरे किन्तु अदम्य रूप से दृढ़ता के साथ, हमारे ऊपर पड़ रहा है, जिससे आगे चलकर भारत और इंग्लैण्ड का सम्बन्ध इन दिनों के लिए ही नहीं बल्कि सारे संसार के लिए, और वह भी अगणित पीढ़ियों के लिए, एक आशीर्वाद सिद्ध होगा। मैं सारी अंग्रेजजाति से अपील करता हूँ—खरे मित्रों तथा उदार शत्रुओं, दोनों से—कि इस प्रार्थना को व्यर्थ और निष्फल न जाने दीजिए।"

कई वर्ष तक फिरोजशाह मेहता कांग्रेस के पीछे एक वास्तविक शक्ति के रूप में थे। आपने जो कुछ भी कार्य किया वह अधिकतर उन कमिटियों, शिष्ट-मण्डलों

और प्रतिनिधि-मण्डलो के द्वारा ही किया जिनके कि यह सदस्य चुने गये थे। १९०७ में आपने नरम दल की ओर से सूरत कांग्रेस के अवसर पर कांग्रेस-कार्य मे कुछ क्रियात्मक भाग लिया था। उसके बाद आप दृष्टि से बिलकुल ही ओझल हो गये। जब आप कांग्रेस के २४ वें अधिवेशन के, जो कि १९०९ में लाहौर में हुआ था, सभापति चुने गये तो यकायक आपने, कांग्रेस से सभापति का आसन ग्रहण करने से, ६ दिन पहले इस्तीफा दे दिया। आपके स्थान पर प० मदनमोहन मालवीय कांग्रेस के सभापति चुने गये थे।

आनन्दमोहन वसु

यह हम पहले देख ही चुके है कि किस प्रकार आनन्दमोहन वसु एक प्रसिद्ध सामाजिक और धार्मिक सुधारक थे, जिनका ब्रह्म-समाज की प्रगति में बहुत स्थान रहा, और किस प्रकार उन्होंने ब्रह्म-समाज के सुधारक-दल का नेतृत्व किया था। १८७६ मे स्थापित कलकत्ता के इण्डियन-एसोसियेशन के यह सर्वप्रथम मत्री हुए और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के उत्साही सहकारी रहे। कांग्रेस आन्दोलन के साथ १८९६ से पहले तक इनका कोई घनिष्ठ सम्बन्ध रहा या नही, यह तो हमें नही मालूम, पर १८९६ के १२ वें अधिवेशन मे इन्होंने शिक्षा-विभाग की नौकरियो के पुनस्संगठन की योजना से होनेवाले नये अन्याय का विरोध किया और कहा कि यह योजना तो हिन्दुस्तानियो को शिक्षा-विभाग के ऊँचे पदो से अलग रखने के लिए ही बनाई गई है। इसके बाद, शीघ्र ही, १८९८ के मदरास-अधिवेशन में, आनन्दमोहन वसु कांग्रेस के सभापति हुए। सभापति-पद से दिया हुआ इनका भाषण अकाट्य युक्तियो से, और अन्त में इन्होंने कांग्रेस को जो सन्देश दिया वह प्रेम एव राष्ट्र-सेवा के उपदेश से, परिपूर्ण है। इन्होंने पार्लमेण्ट में हिन्दुस्तान के चुने हुए प्रतिनिधि रक्खे जाने की बात सुझाई थी। यह देश का दुर्भाग्य है कि जब उसे इनकी सेवाओ की सबसे ज्यादा जरूरत थी तभी, १९०६, में ईश्वर ने इनको हमसे छीन लिया।

मनमोहन घोष

मनमोहन घोष का नाम हम सबसे पहले १८८८ में हुए चौथे अधिवेशन (इलाहाबाद) के सिलसिले में सुनते है, जब कि इन्होंने सरकारी नौकरियो-सम्बन्धी प्रस्ताव पेश किया था। पश्चात् कलकत्ता में हुए छठे अधिवेशन (१८९०) में यह स्वागताध्यक्ष हुए। कांग्रेस पर होनेवाले विभिन्न आक्षेपो का अपने जोरदार भाषण

में इन्होने जवाब दिया और कांग्रेस की वास्तविक स्थिति स्पष्ट कर दी। न्याय बनाम शासन कार्यों के विषय का इन्होने खास तौर पर अध्ययन किया था। पूना में हुए ११ वें अधिवेशन (१८६५) में इन्होने तत्सम्बन्धी प्रस्ताव पेश किया और मि० जैम्स नामक एक कमिश्नर के वक्तव्य को उद्धृत करके बताया कि, इन दोनो (न्याय व शासन-कार्य) का सम्मिश्रण ही "भारत में ब्रिटिश-सत्ता का मुख्य आधार है।" इसके बाद इनका स्वर्गवास हो गया, जिसपर १२ वी कांग्रेस (कलकत्ता, १८६६) में शोक मनाया गया।

लालमोहन घोष

लालमोहन घोष १८६० में छठे अधिवेशन में (कलकत्ता) पहले-पहल कांग्रेस मच पर आये और उन्होने ब्रैडला साहब के भारत-सरकार-सबधी बिल पर प्रस्ताव उपस्थित किया था। मदरास (१६०३) में हुए १६ वे कांग्रेस अधिवेशन के वह सभापति बनाये गये थे। कांग्रेस-मच से अबतक जितने योग्यतम भाषण हुए है उनमें उनके भाषण की गिनती होनी है। उनके भाषण से कुछ अश यहा दिये जाते है —

"हालाकि इसमें ऐसा कोई भी शख्स न होगा जो ब्रिटिश-सरकार के प्रति सच्चे दिल से वफादार न होगा, तो भी वह यह दावा जरूर करेगा कि सरकार के कामो की आलोचना करने का हक हमें है, जैसा कि प्रत्येक ब्रिटिश प्रजाजन को है। ऐसी दशा में क्या हम अदब के साथ अपने शासको से यह नही पूछें—और इस विषय में मै भिन्न-भिन्न ब्रिटिश राजनैतिक दलो में कोई भेद नही करना चाहता—कि आपकी जिस नीति ने बरसो पहले हमारे देशी उद्योग-धधे नष्ट कर दिये है, जिसने हाल ही में उस दिन उदार शासन के नाम पर बेगैरत होकर हमारे सूती कपडे पर उत्पत्ति-कर लगा दिया, जो करीब दो करोड स्टर्लिंग तक हर साल हमारी राष्ट्रीय धन-सामग्री विलायत को दृढता के साथ बहा ले जा रही है, और जो किसानो पर भारी बोझ लाद-कर बार-बार जोर के अकाल देश में लाती है—अकाल भी ऐसे कि पहले कभी देखे न सुने—क्या उस नीति पर हमें विश्वास करना होगा ? क्या हमें यह मानना होगा कि जिन विविध शासन-कार्यों की बदौलत ये सब परिणाम निकले है वे सब उस मगल-मय परमात्मा की सीधी प्रेरणा से हुए है ?

"हमारा राष्ट्र स्व-शासित नही है। हम, अंग्रेजो की तरह, अपनी रायो के बल पर अपना शासन नही बदल सकते। हमें पूर्णत ब्रिटिश पार्लमेण्ट के निर्णय पर अपना

आधार रखना पडता है। क्योकि दुर्भाग्यवश यह बिलकुल सही है कि हमारी भारतीय नौकरशाही लोगो के विचारो और भावो के अनुकूल होने की अपेक्षा दिन-दिन अधिक रूखी बनती जा रही है। क्या आप खयाल करते है कि इगलैण्ड, फ्रान्स, या सयुक्तराज्य (अमरीका) उस हालत में ऐसे खोखले तमाशे पर इतना खर्च करने का साहस करते, जबकि देश में अकाल और महामारी का साम्राज्य छाया हुआ था और इस धृष्टतापूर्ण आनन्द-मगल के दूसरी ही ओर यमराज लोगो को समेटने के लिए अपने हाथ पसारे हुए थे ?

"महानुभावो ! जनता और उसके प्रतिनिधियो का लगभग सर्व-सम्मत विरोध होते हुए भी, जिसकी आवाज अखबारो और सभाओ में—दोनो ही तरह—उठाई गई थी, दिल्ली में जो बडा भारी राजनैतिक आडम्बर (दिल्ली-दरबार) किया गया था, उसे एक साल हो गया। और उसका विरोध किया किस लिए गया था ? इसलिए नही कि विरोध करनेवाले लोग सम्राट् की, जिनकी कि तख्तनशीनी का समारोह होनेवाला था, राजभक्ति में किसीसे कम थे, बल्कि इसलिए कि उनका विश्वास था, अगर सम्राट् के मत्रीगण अपने कर्तव्य का समुचित पालन करते हुए सम्राट् के सामने उनके अकाल-पीडित भारतीय प्रजाजन की कष्ट-कथा का हूबहू वर्णन करते तो दीन-दु खी लोगो के प्रति सम्राट् की जो गहरी सहानुभूति है उसके कारण स्वय वही सबसे पहले भारत-स्थित अपने प्रतिनिधियो को भूखो-मरते लोगो के सामने ऐसा आडम्बर-पूर्ण प्रदर्शन करने की मनाही कर देते। लेकिन ऐसा नही किया गया और (शाही दरबार का) बडा भारी तमाशा कर ही डाला गया, जिसमें इतनी अन्धाधुन्धी से फजूलखर्ची की गई कि कुछ न पूछिए। इस बात से इन्कार नही किया जा सकता कि दिल्ली-दरबार के करने में जो भारी रकम लगाई गई उसकी आधी भी अगर अकाल-पीडितो की सहायता में लगाई जाती तो भूखो मरनेवाले लाखो स्त्री, पुरुष, बच्चे मौत के मुह से निकल आते।"

चक्रवर्ती विजयराघवाचार्य

सेलम के श्री चक्रवर्ती विजयराघवाचार्य सबसे पुराने काग्रेसियो में से है, यहा तक कि १८८७ के ३रे अधिवेशन (मदरास) में काग्रेस का विधान बनाने के लिए जो समिति बनाई गई थी उसमें भी इनका नाम मिलता है। इसके बाद लखनऊ में होनेवाले १५ वें अधिवेशन (१८९९) में और उससे अगले साल लाहौर में होनेवाले १६ वें अधिवेशन (१९००) में यह इण्डियन काग्रेस कमिटी के सदस्य बनाये गये।

२२ वें अधिवेशन (कलकत्ता, १९०६) में इन्होंने दायमी बन्दोबस्त का प्रस्ताव पेश किया और इस विचार को गलत बताया कि भूमि कर (लगान) बतौर किराया है। इस सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए, इन्होंने कहा कि हिन्दुस्तान में जमीन पर राजा का अधिकार कभी भी नही रहा। ऋषि-मुनियों ने कहा है कि दुनिया उन्हीकी है जो उसमें पैदा हुए है, जमीन को जो जोतता-बोता है उसीकी वह सम्पत्ति होती है—राजा, जो कि उसकी रक्षा के लिए है, अपनी सेवाओ के बदले में किसानो से पैदावार का एक हिस्सा लेता है। यह विचार कि जमीन राजा की है, भारतीय नही बल्कि पश्चिमी है।

सूरत-काण्ड के बाद से, वस्तुत यह काग्रेस से अलग ही रहने लगे। नरम दल की काग्रेस से इन्हें सन्तोष नही हुआ। लेकिन जब १९१६ में लखनऊ में किये गये सशोधन से गरम दलवालो के लिए काग्रेस का दरवाजा खुल गया, तो यह फिर उसमें आगये और १९१८ में हुए विशेषाधिवेशन (बम्बई) तथा १९१९ मे हुए अमृतसर-अधिवेशन में इन्होने क्रियात्मक-रूप से भाग लिया। अमृतसर-अधिवेशन में इन्होने जन-साधारण के मौलिक अधिकारो पर विस्तार से प्रकाश डाला। इसके बाद ही इन्हे नागपुर-अधिवेशन का सभापति चुना गया, जहा बडी योग्यता और कुशलता के साथ इन्होने कार्य सम्पादित किया।

राजा रामपालसिह

अन्य प्रमुख काग्रेसियो में राजा रामपालसिंह का नाम बहुत दिनो तक काग्रेसी क्षेत्र में बडा प्रमुख रहा है। यह जानने लायक बात है कि दूसरी काग्रेस में सैनिक-स्वय-सेवकोवाला प्रस्ताव राजा रामपालसिंह ने ही पेश किया था, जिसके साथ उन्होंने एक गम्भीर चेतावनी भी दी थी। उन्होने कहा था, कि "ब्रिटिश-शान्ति (पैक्स ब्रिटेनिका) कितनी ही मशहूर क्यो न हो, ग्रेट ब्रिटेन की आकाक्षायें कितनी ही श्रेष्ठ क्यो न हो, और उसने हमारी भलाई के लिए चाहे जो किया या करने का प्रयत्न किया हो, कुल मिलाकर तो निर्णय उसके विरुद्ध ही होगा, और बजाय प्रसन्न होने के भारत को इस बात पर दु ख ही होगा कि इग्लैण्ड के साथ उसका कुछ सम्बन्ध रहा। यह बात कहने में कठोर अवश्य है, पर सचाई यही है। क्योकि एक बार किसी राष्ट्र की राष्ट्रीय भावना को कुचलकर, और उसको आत्म-रक्षा एव अपने देश की रक्षा के अयोग्य बना-कर, फिर किसी तरह उसकी क्षति-पूर्ति नही की जा सकती। दुनिया में किसी भी ओर आप नजर डालिए, चारो ओर आपको बडी-बडी फौजें और लडाई के भयकर सामान

दृष्टि-गोचर होंगे। सारे सभ्य ससार पर कोई आफत आना निश्चितप्राय है। अभी या कुछ ठहरकर भयकर फौजी हलचल शुरू होगी, जिसमें ब्रिटेन भी निश्चित रूप से शरीक होगा। लेकिन ब्रिटेन अत्यधिक समृद्ध होते हुए भी, अपनी सारी दौलत के जोर पर भी, रण-क्षेत्र में फी हजार व्यक्तियो के पीछे अपने सौ आदमी नहीं रख सकता—जैसा कि यूरोप के अन्य कई देश कर सकते हैं। अत जब ऐसा मौका आ जायगा तब इग्लैण्ड को इस बात के लिए पछताना पडेगा कि आक्रमणकारियो से लोहा लेने के लिए लाखो भारतीयो को दक्ष बनाने के बजाय उसने उनके मुकाबले के लिए अपनी ही थोडी सेना यहा रख रक्खी है।" अपने पोते कालाकाकर के तरुण राजा के रूप में, जिनका हाल ही में असामयिक स्वर्गवास हो गया है, राजा रामपालसिंह ने मानो सच्चे देशभक्त और काग्रेस के—जिसके मन्दिर को अपने जीवन-काल में उन्होने स्वय ही आलोकित किया था—पुजारी बनकर फिर से जन्म लिया था।

कालीचरण बनर्जी

काग्रेसी हलचल के पहले पच्चीस वर्षों में आमतौर पर यह प्रथा रही है कि जो आवश्यक प्रस्ताव एक साल से पुराने हो जाते वे सब एक बडे प्रस्ताव में इकट्ठे कर दिये जाते थे। और साल दर-साल ऐसे व्यक्तियो को उसे पेश करने के लिए चुना जाता था जिनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी होती—अर्थात् जो उस सयुक्त या व्यापक प्रस्ताव के विभिन्न विषयो का भलीभाति स्पष्टीकरण कर सकते थे। १८८९ में ऐसा प्रस्ताव पेश करने के लिए कालीचरण बनर्जी चुने गये थे, जो एक भारतीय ईसाई थे। कई वर्षों तक उन्होंने काग्रेस के काम-काज में बडी दिलचस्पी ली थी और १८९० में ब्रिटिश-जनता के सामने काग्रेस के विचार रखने के लिए जो शिष्ट-मण्डल इग्लैण्ड गया उसके वह भी एक सदस्य बनाये गये थे। ९ वी काग्रेस (लाहौर, १८९३) में उन्होंने न्याय और शासन-कार्य को एक-दूसरे से पृथक् करने का प्रस्ताव पेश किया।

१९०१ में, कलकत्ता की काग्रेस में, यह प्रस्ताव रक्खा कि हिन्दुस्तानी मामलो की सुनवाई (अपील) के लिए प्रिवी कौंसिल की जो जुडीशियल कमिटी बनती है उसमें हिन्दुस्तानी वकील भी रक्खे जाने चाहिएं। बाबू कालीचरण बनर्जी यदि अधिक समय तक जिन्दा रहे होते तो जरूर काग्रेस के सभापति बनते।

नवाब सय्यद मुहम्मद बहादुर

काग्रेस के मन्त्रियो में हिन्दू के साथ एक मुसलमान को भी रखने की प्रथा

१९१४ की मदरास-काग्रेस से शुरू हुई, जिसमे नवाव सय्यद मुहम्मद बहादुर और श्री एन० सुब्बाराव मत्री चुने गये थे। लेकिन नवाव साहब तो इससे पहले, १९१३ की कराची-काग्रेस में, सभापति-पद को भी सुशोभित कर चुके थे। वह पहले काग्रेसी थे, इसके बाद मुसलमान। १९०३ में हुई मदरास-काग्रेस (१९ वा अधिवेशन) के वह स्वागताध्यक्ष थे और १९०४ की काग्रेस (२० वा अधिवेशन, बम्बई) में काग्रेस का विधान बनाने के लिए जो समिति बनी उसमें उन्हें भी रक्खा गया था। वह ऐसे देशभक्त थे जिनमें मजहबी सकीर्णता बिलकुल नही थी। कराची-काग्रेस के सभापति-पद से उन्होने राष्ट्रीयता की बुलन्द आवाज उठाई और इस बात पर जोर दिया कि भारत की भिन्न-भिन्न जातियो को अलग-अलग टुकडो में बटने के बजाय सयुक्त रूप से आगे बढना चाहिए। इस दिशा में हिन्दुओ और मुसलमानो द्वारा किये गये प्रयत्न का, जो कि मुस्लिम-लीग द्वारा प्रदर्शित की गई इस आशा से प्रकट होता था कि 'सार्वजनिक हित के प्रश्नो पर मिल-जुलकर काम करने के उपाय सोचने के लिए' दोनो जातियो के नेताओ को समय-समय पर आपस में मिलते रहना चाहिए, उन्होने स्वागत किया। यह कहें तो अत्युक्ति न होगी कि कराची में नवाब साहब ने ऊँची देशभक्ति और शुद्ध राष्ट्रीय दृष्टिकोण से जो बीज बोया था वही फलकर आगे हिन्दू-मुस्लिम-एकता और लखनऊ की काग्रेस-लीग-योजना के रूप में सामने आया।

दाजी आबाजी खरे

काग्रेस के प्रारम्भिक वर्षो में दायमी बन्दोबस्त और जमीन के पट्टे की मियाद स्थिर कर देने का विषय काग्रेस में जोरो के साथ उठता रहा है। लाहौर में हुए ९ वें अधिवेशन (१८९३) मे श्री दाजी आबाजी खरे ने इस सम्बन्धी प्रस्ताव पेश किया था। काग्रेस का जो विधान उनके प्रस्ताव पर १९०६ में स्वीकृत हुआ था और जिसका बहुत कुछ भाग १९०८ में बननेवाले विधान में भी मिला लिया गया था, उसके निर्माण में इन्होने बहुत भाग लिया था। १९०९ से १९१३ तक, श्री दीनशा वाचा के साथ, यह काग्रेस के मत्री रहे हैं और १९११ में इन्होने भारतीय सूती माल पर लगाया गया वह उत्पत्ति-कर उठा लेने का प्रस्ताव पेश किया जिससे भारत के सूती वस्त्र-व्यवसाय के प्रसार में रुकावट पडती थी। १९१३ में जब मुस्लिम लीग ने भारत के लिए स्व-शासन के आदर्श को स्वीकार कर लिया तो श्री खरे ने उसके स्वागत-सम्बन्धी प्रस्ताव का समर्थन किया और कहा, स्व-शासन हिन्दू-मुसलमानो के भाई-चारे से ही प्राप्त होगा।

मुंशी गगाप्रसाद् वर्मा

कांग्रेस के प्रथमाधिवेशन में शुरुआत के जो देशभक्त उपस्थित हुए थे उनमें लखनऊ के मुशी गगा प्रसाद वर्मा भी थे। दूसरे अधिवेशन में सरकारी नौकरियो के प्रश्न पर विचार करके काग्रेस को तत्सम्बन्धी सिफारिशें करने के लिए जो समिति वनाई गई थी उसमें यह भी चुने गये थे। बाद में यह काग्रेस-समितियो के विभिन्न पद ग्रहण करते रहे और १९०६ में जाकर काग्रेस की स्थायी-समिति के सदस्य भी बन गये थे।

रघुनाथ नृसिंह मुधोळकर

शुरुआत के कठोर परिश्रम करनेवाले काग्रेसियो में श्री रघुनाथ नृसिंह मुधोळकर का स्थान किसीसे कम नही है। वह पहली बार इलाहाबाद में होनेवाले काग्रेस के अधिवेशन (१८८८) में शामिल हुए थे। पुलिस-सम्बन्धी प्रस्ताव का अनुमोदन करते हुए उन्होने कहा था—"पुलिस के सिपाही का तो फर्ज है कि वह प्रजा का प्रेम जीते, लेकिन अब वह कैसे घृणा का पात्र बन गया है!" २४ साल बाद राष्ट्र ने उन्हें १९१२ की काग्रेस (बाकीपुर) का सभापति चुना। श्री सी० वाई० चिन्तामणि उनके सहायक के रूप में राजनीति का आवश्यक और प्राथमिक ज्ञान प्राप्त करते रहे और बाद में अपनी प्रचण्ड बुद्धि शक्ति के बल पर भारतीय राजनीति में चमकने लगे।

सी० शकरन् नायर

सर सी० शकरन् नायर अपने वक्त में एक समर्थ पुरुष थे। काग्रेस की सेवाओ के पुरस्कार-स्वरूप काग्रेस ने उन्हें बहुत जल्दी, १८९७ में, अमरावती-अधिवेशन का सभापति चुना। बम्बई के चन्दावरकर और तैयबजी की तरह शकरन् नायर को भी पीछे मदरास के हाईकोर्ट-बेंच का सदस्य बना लिया गया और वहा से १९१५ में वह भारत-सरकार की कार्यकारिणी में ले लिये गये। १९१९ में मार्शल-लॉ लागू करने के प्रश्न पर इस्तीफा देने के कारण वह बहुत लोकप्रिय हो गये। लेकिन 'गाधी एण्ड अनार्की' नामक पुस्तक में गाधीजी पर उन्होंने निराधार आक्षेप किया। इसी पुस्तक के कारण पजाब के लेफ्टिनेण्ट गवर्नर सर माइकेल ओड्वायर ने उनपर मुकदमा चलाया और सर शकरन् को मानहानि व खर्चे के लिए तीन लाख रुपये देने पडे थे।

पी० केशव पिल्ले

दीवानबहादुर पी० केशव पिल्ले काग्रेस में बहुत पहले ही से भाग लेने लगे थे। १९१७ में उन्होंने काग्रेस से इस्तीफा दे दिया। काग्रेस से अपने सम्बन्ध के आखिरी सालो में वह काग्रेस के मत्री और श्रीमती एनी बेसेण्ट के प्रमुख सहायक थे।

विपिनचन्द्र पाल

विपिन बाबू का काग्रेस से सम्बन्ध बहुत पहले शुरू हुआ। वह मशहूर वक्ता थे। बहिष्कार, स्वदेशी और राष्ट्रीय शिक्षा के नये सिद्धान्त का प्रचार करते हुए उन्होंने सारे देश में अपनी वक्तृत्व-शक्ति का सिक्का जमा दिया था। उन्होंने १९०७ में मदरास में जो भाषण दिये थे, एडवोकेट-जनरल (सर) वी० भाष्यम आयगर ने उन्हें भडकानेवाले—राजद्रोहपूर्ण नही—समझा था और वह मदरास अहाते से निकाल दिये गये। लार्ड मिण्टो के समय उन्हें एक बार देश-निकाला भी मिला था। एक दूसरे वक्त जब 'वन्देमातरम्' के सपादक की हैसियत से श्री अरविन्द घोष पर मुकदमा चल रहा था, उन्होंने यह जानकर गवाही देने से इन्कार कर दिया था कि उनकी गवाही अरविन्द बाबू के बहुत खिलाफ पडेगी। इस कारण ६ मास की सख्त कैद की सजा उन्होंने बडी खुशी से भुगत ली। उन्होंने इग्लैण्ड में 'हिन्दू रिव्यू' नामक पुस्तक प्रकाशित की थी, जिसमें बम के कारणो पर विचार किया था। भारत लौटने के बाद उनपर मुकदमा चलाया गया, लेकिन उन्होंने माफी माग ली। उनका आखिरी इतिहास राष्ट्रीय राजनीति में उनके उत्साह की निरतर घटती का इतिहास था। यह हमें स्वीकार करना होगा कि वह उन थोडे से लोगो में थे, जिन्होंने अपने भाषणो और 'न्यू इण्डिया' तथा 'वन्देमातरम्' के लेखो-द्वारा उस समय के युवको पर बहुत जादू कर दिया था।

अम्बिकाचरण मुजुमदार

बाबू अम्बिकाचरण मुजुमदार एक वकील थे और १९१६ में काग्रेस के सभापति बनने तक निरन्तर कार्य करते रहे। उनकी वक्तृता की उडान बहुत कम वक्ताओ में मिलती है। उन्होंने 'इण्डियन नेशनल इवाल्युशन' नामक एक प्रसिद्ध और सुन्दर किताब भी लिखी है।

भूपेन्द्रनाथ वसु

भूपेन्द्रनाथ वसु कलकत्ते के एक सफल सालिसिटर थे। उनकी प्रैक्टिस खूब

चलती थी। यह बडी खुशी से राजनैतिक कार्यों में समय दिया करते थे। यह एक बडे अच्छे वक्ता थे। इनकी वक्तृत्व कला बहुत ऊँची कोटि की थी। भिन्न-भिन्न भाव प्रकट करने में यह बडे कुशल थे और अपना काम बडी योग्यता से सपादन करते थे। १९१४ में मदरास-काग्रेस का सभापति-पद उन्हें दिया गया था। भारत की स्व-शासन की माग के प्रसग में उन्होने कहा था—"मौजें उडानेवालो के दिन गये। ससार समय के साथ-साथ बडे जोर से आगे बढ रहा है। यूरोप के देशो में युद्ध जोरो से चल रहा है। यह युद्ध एक के बहुतो पर, या एक जाति के दूसरी जाति पर के मध्यकालीन शासन के अतिम अवशेषो को भी ठोकर मार देगा। पश्चिम के द्वार से पूर्व के शान्त समुद्रो में विशाल जीवन की जो लहर एक बडे भारी प्रवाह की तरह बह रही है, उसे अब वापस ले जाना गैरमुमकिन है। यदि भारत में अग्रेजी शासन का अर्थ नौकरशाही का गोला-बारूद ही है, यदि इसका अर्थ पराधीनता और हमेशा का सरक्षण है, भारत की आत्मा पर बढता हुआ भारी भार ही है, तो यह सभ्यता का शाप और मनुष्यता पर कलक ही है।"

मौ० मजहरुलहक

मौ० मजहरुलहक काग्रेस के, शारीरिक और बौद्धिक दोनो दृष्टियो से, एक महारथी थे। वह पक्के राष्ट्रवादी थे और बिहार में काग्रेस के बडे भारी समर्थक थे। साम्प्रदायिकता से उन्हें चिढ थी। काग्रेस के २५ वें अधिवेशन में (१९१०) जो इलाहाबाद में हुआ था, श्री जिन्नाह ने साम्प्रदायिक-निर्वाचन के विरुद्ध प्रस्ताव पेश किया, उसका आपने समर्थन किया था। इस अवसर पर आपने एक योग्यता-पूर्ण भाषण दिया, जिसमें हिन्दुओ और मुसलमानो को आपस में मिल जाने की प्रेरणा की। यह याद रखने की बात है कि मिण्टो-मॉर्ले-शासन-सुधार उस समय अमल में आये ही थे, जिनमें पहले-पहल कौंसिलो के लिए साम्प्रदायिक-प्रतिनिधित्व की योजना का समावेश किया गया था। मुसलमानो से, जो कि अपनी कामयाबी और सफलता के लिए फूलकर कुप्पा हो रहे थे, यह कहना, जैसा कि मौ० मजहरुल हक ने कहा, बहुत ऊँचे दर्जे की ईमानदारी और साहस का ही काम था, कि उन्हें जो कामयाबी मिली दरअसल वह दोनो महान् जातियो की सम्मिलित भलाई के लिए बडी घातक है, देश को जरूरत इस बात की है कि दोनो एक-दूसरे से अलग-अलग बन्द दायरो में न रहकर एक-दूसरे के साथ मिलकर काम करें।

१९१४ में जब काग्रेस का शिष्ट-मण्डल इग्लैण्ड गया तो मौ० मजहरुलहक भी

उसके सदस्य बनाये गये। इसके बाद आपने कांग्रेसी मामलो में कोई क्रियात्मक रस नही लिया, लेकिन रहे अन्त समय तक पक्के राष्ट्रवादी। जीवन के आखिरी दिनो में आपका झुकाव आध्यात्मिकता की ओर हुआ, और शुद्ध राष्ट्रीयता में साधुता ने मिलकर सोने में सुगन्ध कर दी। वस्तुत आपका आखिरी जीवन एक फकीर का जीवन था।

महादेव गोविन्द रानडे

महादेव गोविंद रानडे, जो आमतौर पर जस्टिस रानडे के नाम से मशहूर है, कांग्रेस में एक उच्च शिखर के समान थे। बहुत बारीकी में उतरें तब तो उन्हें कांग्रेसी नही कहा जा सकता, क्योकि वह बम्बई-सरकार के न्याय-विभाग के एक उच्चाधिकारी थे, लेकिन बरसो तक वह पीछे से कांग्रेस का सूत्र-सचालन करनेवाली शक्ति बने रहे थे।

कांग्रेस-आन्दोलन को उन्होने स्फूर्ति प्रदान की। उनका ऊँचा कद, चेहरे का मूर्तिवत् बनाव और उनका अपना रग-ढग भिन्न-भिन्न अधिवेशनो में उन्हें स्पष्ट रूप से पहचानने में सहायक होते रहे हैं। अर्थशास्त्री और इतिहासज्ञ के रूप में वह स्मरणीय हो गये है और 'महाराष्ट्र सत्ता का उत्थान' एव 'भारतीय अर्थशास्त्र पर निबन्ध' के रूप में वह राष्ट्र को अपने पाण्डित्य एव विद्वत्ता की विरासत छोड गये है। समाज-सुधार में उनकी खास तौर पर गति थी और बरसो तक समाज-सुधार-सम्मेलन, जो कांग्रेस की एक सहायक-सस्था के रूप में बना था, उनके पोष्य-पुत्र के समान रहा है। १८९५ में, पूना-अधिवेशन के समय, जब इस बात पर मतभेद पैदा हुआ कि कांग्रेस समाज-सुधार के मामलो और समाज-सुधार-सम्मेलन से सम्बन्ध रख सकती है या नही, तो, जैसा कि बाबू सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने बताया है, जस्टिस रानडे ने सहिष्णुता और बुद्धिमत्तापूर्ण ढग से मामला सुलझा लिया। प्लेग की महामारी के समय जस्टिस रानडे ने राष्ट्र की जो सेवा की उसका अनुमान नही किया जा सकता, और न उस सबके वर्णन का अभी समय ही आया है। इस प्रकार पन्द्रह वर्ष तक अथक रूप से समाज-सुधार और कांग्रेस का काम करते हुए, १९०१ में, अपनी ऐसी स्मृतिया छोडकर रानडे हमसे विदा हो गये जो सदैव हमारी सहायता करती रहती है और जिनके कारण उनके प्रति सदा हमारी श्रद्धा बनी रहेगी।

प० बिशननारायण दर

प० बिशननारायण दर भी उन प्राचीन समय के राजनीतिज्ञो में से है,

जिन्होंने कांग्रेस के प्रति अपनी निष्ठा से कांग्रेस के इतिहास में एक विशेष स्थान प्राप्त कर लिया है।

१९११ में उन्हें कलकत्ता-कांग्रेस का सभापति बनाया गया। इस कांग्रेस के सभापति मि० रैम्जे मैकडानल्ड होनेवाले थे, लेकिन पत्नी के देहान्त के कारण उन्हें भारत से जाना पड गया और श्री बिशननारायण दर अकस्मात् ही सभापति बना दिये गये। वह ऐसे समय कांग्रेस के सभापति बने थे, जब बग-भग के रद कर दिये जाने से नौकरशाही को बहुत बडी चोट पहुँची थी।

बिशननारायण दर ने नौकरशाही का जो वर्णन किया है वह जहा सुन्दर चित्र है, वहा उतना ही तीक्ष्ण भी है —

"हमारे सब दु खो का मूल कारण यह है कि हमारी नई महत्त्वाकाक्षाओ और आशाओ के प्रति सरकार की सहानुभति-शून्य और अनुदार भावना बढती जा रही है। यदि इसमें सुधार न किया गया, तो भविष्य में भयकर आपत्तिया आये बिना न रहेंगी। जब नवीन भारत धीरे-धीरे उन्नति कर रहा है, तब सरकार का रुख भी मन्दा होता जा रहा है और एक नाजुक हालत पैदा हो गई है। एक तरफ पढे लिखे लोग नये राजनैतिक अधिकारो का नया ज्ञान और नई चेतना प्राप्त कर रहे है, लेकिन एक ऐसे शासन-पद्धति की बेडियो और हथकडियो से जकडे जा रहे है जो पहले के लिए कभी अच्छी होगी, अब तो वह अप्रचलित है, और दूसरी तरफ सरकार उसी रफ्तार पर जा रही है। वह न अपने स्वार्थो को छोडती है, न अपनी कठोर शासन की आदतो को, और न पुराने तथा निरकुश अधिकार की पुरानी प्रथाओ को। शिक्षा और ज्ञान को वह सदेह की दृष्टि से देखती है, और किसी भी नये परिवर्तन के वह विरुद्ध है। जातीय पृथकता के कारण रिआयत से वह दूर भागती है। वह उसी-शासन विधान से चिपटे हुए है, जिसके मातहत उसने अबतक अधिकार व धन का मजा लिया है, लेकिन जो आज के नैतिक उदार आदर्शो के कतई खिलाफ है।"

रमेशचन्द्र दत्त

गत शताब्दी के अन्त की कांग्रेस-राजनीति में श्री रमेशचन्द्र दत्त एक और महत्त्वपूर्ण व्यक्ति थे। अपने जीवन-क्रम में कमिश्नर के ऊँचे पद तक चढ चुके थे, फिर भी उन्होंने कांग्रेस का साथ दिया था। आई० सी० एस० के अफसर रहते हुए लम्बे अरसे तक उन्होंने सार्वजनिक प्रश्नो पर जो अमित अनुभव और ज्ञान प्राप्त किया था, उसका लाभ कांग्रेस को पहुँचाया। उनका कहना था कि भूमि पर भारी मालगुजारी

और ब्रिटिश कारखानो की खुली प्रतिस्पर्द्धा के कारण ग्रामीण धधो का विनाश ही दुर्भिक्ष के कारण है। उन्होने वहुत खेद प्रकट करते हुए कहा कि जिस देश ने ३,००० साल पहले ग्राम-शासन (पचायतो) का सगठन किया था आज उसीपर पुलिस, जिला, अफसरो तथा जनता के वीच की घृणित शृखला-द्वारा शासन हो रहा है। मालगुजारी, दुर्भिक्ष तथा अन्य आर्थिक प्रश्नो पर वह एक प्रमाण समझे जाते थे। १८९० में लखनऊ-काग्रेस के अधिवेशन के वह सभापति वने थे। "अखवारो और सभाओ में स्वतन्त्र विचार के दमन की अपेक्षा राजद्रोह को उत्तेजन देने का और कोई अच्छा उपाय नही है" अपने इस वक्तव्य के कारण वह स्मरणीय हो गये।

एन० सुब्बाराव पन्तुलु

श्री एन० सुव्वाराव पन्तुलु भी काग्रेस के इन पूज्य वुजुर्गों में से एक है। वह आज ८० साल की उमर में भी सार्वजनिक कार्यों में उत्साह दिखाते है। उनका काग्रेस से सम्बन्ध वहुत शुरू में, उसके जन्म के साथ ही, हो गया था। वह काग्रेस के चौथे अधिवेशन (इलाहावाद, १८८८) में सम्मिलित हुए थे और बोले भी थे। तब से वह काग्रेस-मच पर नमक-कर, न्याय और शासन-कार्य, भारतीयो का कार्य-कारिणी में लिया जाना, जूरी से मुकदमो का फसला और वकीलो की स्थिति आदि विभिन्न प्रस्तावो को पेश करते, अनुमोदन और समर्थन करते हुए मशहूर हो गये थे। जब कि उनके समकालीन काग्रेसियो को सरकारी खिताव या पद मिल रहे थे, उन्होने उसे लेने की कभी परवा नही की। दूसरी ओर उनके प्रान्त ने १८९८ में उन्हें काग्रेस का स्वागताध्यक्ष चुना और १९१४, १५, १६ व १७ में काग्रेस उन्हें प्रधानमन्त्री चुनती रही। उन्होने अपने कार्य-काल मे अपने खर्च पर हिन्दुस्तान का दौरा करने और काग्रेसी मामलो में लोगो की दिलचस्पी वढाने का एक आदर्श रक्खा।

लाला मुरलीधर

हम पजाव के लाला मुरलीधर का उल्लेख करना नही भूल सकते, जो जमानत पर रिहा होकर जेल से सीधे कलकत्ते के दूसरे अधिवेशन (१८८६) में शरीक हुए थे। उन्हें विना गवाही के सजा दे दी गई थी, क्योकि उन्हीके शब्दो मे, "मुझे राजनैतिक आन्दोलनकारी खयाल किया जाता है, क्योकि मै अपनी राय रखता हूं, और जो सोचता हूं, वेधडक कह देता हूं।" इसी अधिवेशन में डेराइस्माइलखा के लाला मलिक भगवानदास ने पहले-पहल उर्दू में भाषण दिया था।

सच्चिदानन्द सिंह

श्री सच्चिदानद सिंह को सबसे पहले १८९९ की लखनऊ-काग्रेस (१५ वें अधिवेशन) में लोगो ने देखा। उसीमें उन्होने न्याय और शासन-विभाग के पृथक्करण के प्रस्ताव पर भाषण भी दिया। लाहौर के अधिवेशन में इस प्रश्न पर बोलते हुए उन्होने कहा—"सरकार को जनता के प्रेम पर निर्भर रहना चाहिए और वह प्रेम केवल एक बात से मिल सकता है, कि न्याय का वरदान जनता को दिया जाय। हम आज का न्याय—आधा दूध और आधा पानी-अशुद्ध न्याय नही चाहते। हम तो सच्चा और ठीक ब्रिटिश-न्याय चाहते है।" १७ वें अधिवेशन में 'पुलिस-सुधार' पर वह बोले। २० वें अधिवेशन में उन्होने इस बात का समर्थन किया था कि १९०५ में आम चुनाव होने से पहले इग्लैण्ड में एक शिष्ट-मण्डल भेजा जाय। उसी अधिवेशन में उन्होने दादाभाई नौरोजी, सर हेनरी कॉटन और मि० जोन जार्डिन को पार्लमेण्ट का सदस्य चुनने के अनुरोध का प्रस्ताव पेश किया था। १९०८ की पहली 'नरम' काग्रेस में श्री सिंह क्रियाशील सदस्य के रूप में उपस्थित थे। कलकत्ता-काग्रेस में श्री सिंह ने युक्तप्रान्त के लिए एक गवर्नर और कार्यकारिणी की माग पेश की। वह फिर मदरास में १९१४ में शामिल हुए। इस काग्रेस में उन्हें लन्दन में गये हुए कमीशन के सदस्य के नाते अच्छा काम करने पर धन्यवाद दिया गया था। इस शिष्ट-मण्डल में उनके अतिरिक्त सर्वश्री भूपेन्द्रनाथ वसु, जिन्नाह, समर्थ, मजहरुल हक, माननीय शर्मा और लाला लाजपतराय थे।

काग्रेस में बोलनेवाली पहिली महिला श्रीमती कादम्बिनी गागुली थी। उन्होने १९०० के १६ वें अधिवेशन में सभापति को धन्यवाद देने का प्रस्ताव पेश किया था।

इनके अलावा और भी बीसियो अच्छे देश-सेवक है—जिनमें बहुत से स्वर्गवासी हो चुके है और कुछ हमारे बीच मौजूद है—जिन्होने अपनी तीव्र लगन, सेवा और त्याग के द्वारा राष्ट्रीयकार्य में सहायता पहुँचाई है। आगे आनेवाली पीढी उनकी सदा ऋणी रहेगी।

[दूसरा भाग : १६१५-१६१६]

: १ :

फिर मेल की ओर—१६१५

श्रीमती बेसेण्ट रंगमंच पर

भारतवर्ष के राजनैतिक इतिहास में १६१५ का वर्ष एक नये युग का श्रीगणेश करता है। यहां यह बात अवश्य ही स्मरण रखनी चाहिये कि जापान ने रूस पर जो विजय प्राप्त की थी उससे, इस शताब्दी के प्रारम्भ में, एशिया की जातियो में अपनी वीरता और क्षमता के सम्बन्ध में आत्मविश्वास की एक नवीन भावना जाग्रत हो गई थी। इसी प्रकार गत महायुद्ध के जमाने में, १६१४ की कडाके की सर्दी में, फ्लैण्डर्स और फ्रान्स के मैदानो में, जर्मन-सेनाओ के आक्रमणो का भारतीय फौजो ने जिस अद्भुत वीरता, धैर्य और सहनशीलता के साथ सफलतापूर्वक मुकावला किया उससे एशिया और यूरोपीय देशो में भारतवासियो की खासी धाक बैठ गई थी। पश्चिमी देशो की दृष्टि में तो वे इतने ऊँचे उठ गये थे जितने अभी तक कभी नही थे। भारतीय फौजो द्वारा युद्ध में की गई सेवाओ की इस सराहना का भारतवासियो के मस्तिष्क पर जो स्वाभाविक असर पडा वह यह था कि कुछ भारतवासियो के हृदय में तो पुरस्कार की और कुछ के हृदय में अपने अधिकारो की भावना जाग्रत हो गई थी। सर सुरेन्द्रनाथ वनर्जी पहले दल के लोगो में थे और श्रीमती वेसेण्ट दूसरे दल के लोगो में। क्योकि भारतीय फौजो को विदेशो के मैदान में इसी आश्वासन पर लेजाया गया था कि पार्लमेण्ट भारत के लिए उचित पुरस्कार स्वीकृत कर देगी। वैसे तो मि० ब्रैडला के समय से ही श्रीमती वेसेण्ट का सारा जीवन गरीबो और भारतवासियो की सेवा में ही व्यतीत हुआ, लेकिन काग्रेस में वह १६१४ में ही सम्मिलित हुई। उन्होने अपने साथ नये विचार, नई योग्यता, नवीन साधन, नया दृष्टिकोण और सगठन का एक बिलकुल ही नूतन ढग लेकर काग्रेस-क्षेत्र में पदार्पण किया। उनका व्यक्तित्व तो पहले से ही सारे जगत् मे महान् था। पूर्व और पश्चिम के देशो में, नये और पुराने गोलार्द्ध में, लाखो की सख्या में उनके भक्त एव अनुयायी

थे। इसलिए यह कोई विशेष आश्चर्य की बात नही है कि अपने पीछे इतने प्रवल भक्तो और अनुयायियो और अथक कार्य-शक्ति के होते हुए उन्होने भारतीय राजनीति को एक नवीन जीवन प्रदान किया।

१९१५ की स्थिति

१९१५ में देश की वास्तविक अवस्था क्या थी ? १९ फरवरी १९१५ को गोखले का स्वर्गवास हो चुका था। सर फिरोजशाह मेहता भी हमारी दृष्टि से ओझल हो चुके थे। दीनशा वाचा पर वृद्धावस्था-जन्य निर्बलतायें अपना अधिकार जमाती चली जा रही थी, जैसा कि उन्होने १९१५ की वम्बई की काग्रेस में कहा था। अलावा इसके वह एक वहुत वडे विद्वान् थे, और मत्रीपद के लिए ही वहुत उपयुक्त थे, परन्तु ऐसे सेनानायक नही थे जो अपनी फौज को एक विजय के वाद दूसरी विजय के लिए प्रोत्साहित एव सचालित करता है। सर नारायण चन्दावरकर जजी से फारिग हो चुके थे। राजनैतिक क्षेत्र में वह एक समाप्त हो चुकी हुई शक्ति के समान थे। हेरम्वचन्द्र मैत्र, मुधोलकर तथा सुव्वाराव पन्तुलु काग्रेस की सेना में एक अच्छे लेफ्टिनेण्ट, कैप्टन तथा कर्नल थे, इससे अधिक कुछ नही। सुरेन्द्र नाथ वनर्जी भी अनुकूल न थे।

इस प्रकार काग्रेस का इस समय कोई सेनापति न था। लोकमान्य तिलक जून १९१४ को मण्डाले से लगभग अपनी पूरी सजा काट लेने के वाद रिहा हुए थे। श्रीनिवास शास्त्री ने, 'भारत-सेवक-समिति' के प्रथम सदस्य होने के कारण, गोखले का स्थान तो अवश्य लिया था, लेकिन वह सदैव रहे फिसड्डी ही। क्योकि एक तो उनका अपना आन्तरिक स्वभाव, दूसरे उनकी उग्र प्रवृत्तिया और नरम विश्वास, तीसरे 'सिद्धान्त' और 'उपयोगिता', 'अन्तिम' और 'तात्कालिक' का उनके हृदय में सदैव सघर्ष होता रहता है। इसलिए, यद्यपि वह भिड वैठने की मनोवृत्ति की प्रशसा करते है फिर भी खुद सदैव पीछे रहना पसन्द करते है। पडित मदनमोहन मालवीय की एसी स्थिति नही थी कि वह नरम मार्ग पर काग्रेस का नेतृत्व करते। न उनमें वह शक्ति एव मानसिक दृढता ही थी जिसने कि वह अपने मार्ग पर अग्रसर होते। गाधीजी तो उस समय देश में आये ही थे। हम यदि ऐसा कहें तो अनुचित न होगा कि उन्होने इस समय तक देश में सार्वजनिक जीवन का निश्चित ढग पर श्रीगणेश भी नही किया था। वह अपने राजनैतिक गुरु गोखले की नसीहत के अनुसार चल रहे थे। वह इस समय चुपचाप देश की अवस्था का अध्ययन कर रहे थे। लाला

लाजपतराय इस समय की देश की और विशेषकर अपने प्रात की अवस्था से बडे खिन्न हो चुके थे और अमरीका में देश-निकाले का जीवन व्यतीत कर रहे थे। (सत्येन्द्र-प्रसन्न सिंह (बाद में लार्ड) जिन्होने १९१५ की बम्बई की काग्रेस का सभापतित्व किया था, इस समय नई धारा के साथ बिलकुल मेल नही खा रहे थे। इसीलिए बम्बई-काग्रेस के बाद उन्होने देश की राजनीति में कोई दिलचस्पी नही ली। इस प्रकार देश का नेतृत्व प्राय राष्ट्र के हाथ से निकलकर नौकरशाही के हाथो में जा रहा था। नरम दलवालो के हाथ से शक्ति निकल चुकी थी। राष्ट्रीयदल अभीतक अपनेको सम्हाल न पाया था। श्रीमती बेसेण्ट का १९१४ व १५ का दोनो दलो को एक करने का उद्योग असफल हो चुका था।

१९१५ की बम्बई कांग्रेस

१९१५ की काग्रेस केवल नरमदलवालो की ही थी। काग्रेस के ऐन मौके पर, अर्थात् नवम्बर मास में सर फिरोजशाह मेहता का स्वर्गवास हो गया। सर सत्येन्द्र-प्रसन्न सिंह, जिनकी योग्यता और रुतबे की सर्वत्र धाक थी, इस काग्रेस के सभापति चुने गये थे। वैसे काग्रेस के साथ उनका सम्पर्क तो बहुत ही थोडा रहा था, लेकिन उनके सभापतित्व से बम्बई काग्रेस को वह सारी प्रतिष्ठा अवश्य प्राप्त हुई जोकि सरकार के भूतपूर्व लॉ-मेम्बर के नाम के साथ जुडी रहती है।

लेकिन बम्बई की सन् १९१५ वाली काग्रेस के प्रति जनता के उस अनुराग के चिन्ह फिर से दिखाई पडने लगे जो सूरत-काण्ड के बाद विलीन हो गया था। लखनऊ-काग्रेस और उसके बाद तो जनता की दिलचस्पी इतनी बढ गई कि उसका प्रभाव स्पष्ट रूप से प्रतीत होने लगा। बम्बई की काग्रेस में २२५९ प्रतिनिधि आये थे, और विभिन्न विषयो पर अनेक प्रस्ताव पास हुए थे। पहले चार प्रस्ताव तो शोक-प्रकाश के थे, जिनमें तीन प्रस्ताव तो काग्रेस के तीन भूतपूर्व राष्ट्रपतियो के सम्बन्ध में थे—अर्थात् गोपालकृष्ण गोखले, फिरोजशाह मेहता और सर हेनरी कॉटन। चौथा शोक-प्रस्ताव मि० केअरहार्डी की मृत्यु के सम्बन्ध में था। यह महानुभाव भारत के बडे मित्र थे। पाचवें प्रस्ताव-द्वारा जनता की राजभक्ति प्रकट की गई थी। छठे प्रस्ताव-द्वारा काग्रेस की ओर से उस उदार हेतु में दृढ विश्वास प्रकट किया गया था जिसे ग्रेट-ब्रिटेन तथा उसके मित्र-राष्ट्र महायुद्ध करके सिद्ध करने जा रहे थे। साथ ही ब्रिटिश जल-सेना ने जो विशेष सफलता प्राप्त की थी उसपर सतोष प्रकट किया गया था। सातवें प्रस्ताव-द्वारा लॉर्ड हार्डिंग का, जो कि उस समय वाइसराय

थे, शासन-काल बढा देने के लिए प्रार्थना की गई थी। आठवें प्रस्ताव में कांग्रेस-द्वारा पहले पास किये गये तमाम प्रस्तावो की पुष्टि की गई थी, जिनमें भारतीयो को सेना मे कमीशन देने के औचित्य और न्याय का, भारतीय सैनिको को तत्कालीन सैनिक स्कूल तथा कालेजो में शिक्षा देने की व्यवस्था का तथा भारत में नये स्कूल-कालेज खोलने का जिक्र किया गया था। इस प्रस्ताव में इस बात की आवश्यकता पर भी जोर दिया गया था कि भारतीयो को सेना में, भारतीय जनता के अधिकारो के प्रति उचित सम्मान रखते हुए, जात-पात के बिना किसी भेद-भाव के, भर्त्ती किया जाय तथा स्वयसेवक बनाया जाय। नवें प्रस्ताव द्वारा १८७८ के आर्म्सएक्ट के प्रति, जिसके कारण भारतीय जनता पर अनुचित लाञ्छन लगता था, नाराजगी जाहिर की गई। दसवें में दक्षिण अफ्रीका और कनाडा में प्रचलित उन कानूनो के लिए, जो भारत-वासियो से सम्बन्ध रखते थे, दु ख प्रकट किया गया। ग्यारहवें प्रस्ताव द्वारा वाइसराय को उनकी उस दूरदर्शितायुक्त सहायता के लिए धन्यवाद दिया गया, जो कि उन्होने बडी कौंसिल के उस प्रस्ताव के समर्थन में दी थी, जिसमें कि शाही परिषद् में भारतीय प्रतिनिधियो-द्वारा भारत के प्रतिनिधित्व की माग की गई थी। इसी प्रस्ताव में सरकार से प्रार्थना भी की गई थी की बडी कौंसिल को कम-से-कम दो प्रतिनिधि चुनने का अधिकार अवश्य दिया जाय। बारहवें प्रस्ताव में युक्तप्रात में कार्यकारिणी बनाने की माग को दोहराया गया था। तेरहवें में कुली-प्रथा को नष्ट करने और चौदहवें में न्याय-विभाग और शासन-विभाग को पृथक् कर देनेवाली पुरानी माग को दोहराया गया था। १५वें में पजाब, बर्मा तथा मध्यप्रान्त में ऊँचे दर्जे की हाईकोर्टे स्थापित करने की माग की गई थी। १६ वें और १७ वें में स्वदेशी-आन्दोलन का समर्थन तथा प्रेस-एक्ट जारी रखने का विरोध किया गया था। १८ वें प्रस्ताव में इस बात पर जोर दिया गया था कि भारतीयो के हित में यह बात जरूरी है कि पूर्ण आर्थिक स्वाधीनता और विशेष कर आयात-निर्यात तथा उत्पत्ति-कर-सम्बन्धी पूर्ण अधिकार भारत-सरकार को सौप दिये जायें। १९ वा प्रस्ताव बहुत ही महत्त्वपूर्ण था। उसमें भारत को ऐसे ठोस सुधारो को देने की माग की गई थी, जिनमें जनता को शासन पर वास्तविक नियन्त्रण मिले और वह इस रूप में कि प्रान्तीय स्वाधीनता दी जाय, जिन प्रान्तो में कौंसिलें है उन्हें सुधारा और बढाया जाय, उन प्रान्तो में उनकी स्थापना की जाय जहा वे नहीं है, जिन प्रान्तो में कार्यकारिणी हो वहा उनकी पुनर्रचना की जाय, उन प्रान्तो में उनकी स्थापना की जाय जहा वे नहीं है, इण्डिया-कौंसिल या तो तोड दी जाय और या उसमें सुधार कर दिया जाय और

एक उदार ढंग का स्वायत्त-शासन दिया जाय। इसी प्रस्ताव में महासमिति को आदेश दिया गया था कि वह सुधारों की एक योजना तैयार करे और एक ऐसा आयोजन करे जिससे शिक्षा देने और प्रचार करने का कार्य लगातार होता रहे। इसी प्रस्ताव में महासमिति को यह अधिकार भी दिया गया था कि इस विषय में मुस्लिम-लीग की कमिटी से भी परामर्श करे और इस विषय में अन्य सारी आवश्यक कार्रवाई करे। तीसरे प्रस्ताव में यह कहा गया था कि राज्य को भूमिकर जितना लेना चाहिए, उसके लिए एक उचित और निश्चित सीमा नियत कर देनी चाहिए, और स्थायी बन्दोबस्त करके किसानों को भूमि पर सर्वत्र स्थायी अधिकार दे देना चाहिए, चाहे वह रैयतवारी प्रथा हो या जमींदारी। यदि स्थायी बन्दोबस्त न हो तो कम-से-कम ६० साल का बन्दोबस्त तो कर ही देना चाहिए। २१ वें प्रस्ताव में इस बात पर जोर दिया गया था कि देश के उद्योग-धन्धों की तरक्की के लिए कार्रवाई की जाय, औद्योगिक तथा दस्तकारी की शिक्षा देने की व्यवस्था हो, आयात-निर्यात-सम्बन्धी व्यवस्थाओं में भारत को आर्थिक स्वाधीनता दी जाय, उन सारी अनुचित और आवश्यक रुकावटों को दूर कर दिया जाय जो सूती माल के ऊपर उत्पत्ति-कर के रूप में यहा लगी हुई हैं, और रेल के उन भेदभावपूर्ण दरों को हटा दिया जाय जिनसे विदेशी माल को भारत भेजने में प्रोत्साहन मिलता है, जिसके फलस्वरूप देशी-व्यापार और उद्योग-धन्धों का गला घुट गया है। २२ वें प्रस्ताव में इंगलैण्ड के इण्डियन स्टूडेंट्स डिपार्टमेंट से नाराजगी जाहिर की गई और इस बात पर असन्तोष प्रकट किया गया कि ग्रेट-ब्रिटेन के संयुक्त-राज्य की शिक्षा-संस्थाओं में भारतीय विद्यार्थियों को कम संख्या में दाखिल करने की प्रवृत्ति दिन-दिन बढ़ रही है और भर्ती कर लेने के बाद उनके साथ भेद-भाव का और अन्यायपूर्ण व्यवहार किया जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि १९१५ की कांग्रेस में जो प्रस्ताव पास हुए वे उन प्रस्तावों का सार या खुलासा-मात्र है जो कांग्रेस के जन्म से ले कर समय-समय पर कांग्रेस में पास होते रहे थे।

स्वशासन के प्रश्न के सम्बन्ध में जैसा कि हम पहले बता चुके हैं, १९१५ की कांग्रेस ने अपने १९ वें प्रस्ताव-द्वारा यह आदेश दिया कि महासमिति मुस्लिम-लीग की कार्य-कारिणी से परामर्श करे और स्वशासन की एक योजना तैयार करे।

१९१५ की एक बड़ी दिलचस्प घटना यह है कि गांधीजी विषय-समिति के सदस्य नहीं चुने जा सके। इसलिए सभापति ने उनको अपने अधिकार से इस समिति में नामजद किया था।

बम्बई-कांग्रेस की एक सफलता यह भी थी कि उसने कांग्रेस के विधान में ऐसा महत्त्वपूर्ण संशोधन कर दिया था, जिसके द्वारा राष्ट्रीय दल के लोग भी कांग्रेस के प्रतिनिधि चुने जा सकते थे। क्योंकि यह तय हो गया था कि "उन संस्थाओं द्वारा बुलाई गई सार्वजनिक सभायें कांग्रेस के लिए प्रतिनिधि चुन सकेंगी जिनकी स्थापना १९१५ से दो वर्ष पूर्व हो चुकी हो और जिनका उद्देश वैध उपायों से ब्रिटिश-साम्राज्यान्तर्गत स्वराज्य प्राप्त करना हो।" लोकमान्य तिलक ने इसका हृदय से स्वागत किया। उन्होंने तुरन्त ही इस बात की सार्वजनिक रूप से घोषणा कर दी कि वह और उनका दल इस आंशिक रूप में खुले द्वार से कांग्रेस में प्रवेश करने को सहर्ष तैयार है।

: २ :

संयुक्त कांग्रेस–१९१६

लो० तिलक की होमरूल लीग

नये वर्ष का श्रीगणेश, पिछले वर्ष की अपेक्षा, कांग्रेस-कार्य के लिए और भी शुभ समय, परिस्थिति और वातावरण में हुआ। इधर देश वडे-वडे धक्को के कारण और भी असहाय हो गया था। क्योकि १९१५ में ही गोखले और मेहता जैसे महारथी स्वर्गारोहण कर चुके थे। लोकमान्य के लिए तो अभी तक कोई स्थान ही नही था। क्योकि बम्बई में जो समझौता हुआ था उसके अनुसार उन्हें पूरे साल-भर तक इन्तजार करना था। इसीके बाद वह कांग्रेस में आ सकते थे और उसे प्रभावित कर अपने ढग से चला सकते थे। अत उन्होने अपने होमरूल-लीग के विचार को कार्य-रूप देने का निश्चय किया। इस नाजुक समय में वह अपनी शिक्षा-दीक्षा, योग्यता, सेवाओ और त्याग के कारण नेतृत्व करने के लिए पूर्णत. योग्य थे। उन्होने कांग्रेस को एक शिष्टमण्डल इग्लैण्ड भेजने के लिए राजी करने की काफी कोशिश की, लेकिन ऐसा हुआ नही। तब उन्होने २३ अप्रैल १९१६ को अपनी होमरूल-लीग की स्थापना की। इसके ६ मास बाद श्रीमती बेसेण्ट ने भी अपनी होमरूल-लीग खडी की।

लेकिन नौकरशाही तो उनकी कट्टर शत्रु थी। जब लोकमान्य विद्यार्थियो को डिफेन्स फोर्स (रक्षक-सेना) में भर्त्ती होने के लिए प्रोत्साहित कर रहे थे उस समय पजाब-सरकार की ओर से उनके लिए यह हुक्म निकला कि वह देहली और पजाब के भीतर प्रवेश नही कर सकते।

उन्होने अपनी होमरूल-लीग के लिए कांग्रेस के क्रीड को स्वीकार कर लिया। जान पडता है, इससे श्री शास्त्री को बहुत प्रसन्नता हुई। १९१६ में उनकी अवस्था ६० वर्ष की हो गई थी। इस षष्ठि-पूर्त्ति के अवसर पर उन्हें एक लाख रुपये की थैली भेंट की गई। इसे लोकमान्य ने राष्ट्र-कार्य के लिए अर्पण कर दिया। सरकार ने जितना ही उन्हें दबाया उतने ही वह ऊपर उठे और अन्त में "उन्हें जेल भेजने की

अपेक्षा खामोश करना ही उचित समझ कर " उनसे नेकचलनी की २० हजार रुपये की जमानत मागी गई। लेकिन ६ नवम्बर १६१६ को हाईकोर्ट ने मजिस्ट्रेट का फैसला रद कर दिया। इससे लोकमान्य की लोक-प्रियता और भी बढी। उनका आदर हुआ, मान मिला, स्वागत हुआ और जहा कही वह गये थैलिया भेंट हुई। लेकिन उनका स्वास्थ्य अच्छा नही था। इसका फल यह हुआ कि वह भारत में विस्तृत प्रचार-कार्य नही कर सकते थे, जिसके लिए बडी भारी शक्ति की आवश्यकता थी। उन्होने लोगो की भावनाओ को जाग्रत करने और उनके अन्दर एक प्रकार की बिजली-सी भर देने के महत्त्वपूर्ण कार्य को एक दूसरे व्यक्ति के लिए छोड दिया, जो उम्र में उनसे बडी थी, जिनमें एक विद्युत-शक्ति थी और जो काम करते-करते कभी थकना नही जानती थी।

यह थी दशा १६१६ में भारतवर्ष की जिसकी पुकार पर कोई ध्यान नही देता था और जिसे अपने लिए एक नेता ढूढ निकालने की आवश्यकता थी। ठीक ऐसे ही नाजुक समय में श्रीमती बेसेण्ट ने रणागण में पदार्पण किया। धार्मिक क्षेत्र से एक दम राजनैतिक क्षेत्र में कूद पडी। थियोसोफी को छोड उन्होने होमरूल को अपनाया। "न्यू इण्डिया" नामक एक दैनिक और इसके बाद "कामन-विल" नाम का एक साप्ताहिक पत्र निकाला। होमरूल की आवाज को लोक-प्रिय बनाने में उनका नम्बर प्रथम है। इसके लिए एक छोर से दूसरे छोर तक एक तूफान मचा दिया। वैसे १६१५ में ही "होमरूल फॉर इण्डिया लीग" की स्थापना पर विचार-विनिमय हो चुका था। लेकिन उसी समय इसकी स्थापना नही की गई थी। क्योंकि सोचा यह गया था कि अगर स्वराज्य के कार्य को स्पष्ट-रूप से उस वर्ष की कांग्रेस ही अपने हाथ में ले ले तो ठीक होगा।

हिन्दू मुस्लिम एकता

बम्बई-कांग्रेस ने कांग्रेस और मुस्लिम-लीग के प्रतिनिधियो का एक सम्मेलन करने का जो आदेश दिया था वह यथा-विधि किया गया। उसका परिणाम हुआ भारतवर्ष की दो महान् जातियो में पूर्ण एकमत हो जाना। एक सम्मिलित कमिटी भी बनाई गई, जिसके सुपुर्द यह कार्य किया गया कि वह एक योजना तैयार करें और साम्राज्य के अन्तर्गत स्वराज्य पाने के उद्देश को शीघ्र ही फलीभूत करने के लिए अन्य सारे आवश्यक प्रबन्ध करे। यह तय हुआ था कि इस सम्मिलित कमिटी-द्वारा तैयार किया गया स्वराज्य का मसविदा लखनऊ में (१६१६) कांग्रेस और मुस्लिम-

लोग दोनो मिल कर पास करें। इसी सम्बन्ध मे २२,२३ और २४ अप्रैल १९१६ को इलाहाबाद में प० मोतीलाल नेहरू के निवास-स्थान पर, महा-समिति की बैठक में खूब वाद-विवाद हुआ था। महासमिति की इस बैठक में जो प्रस्ताव कच्चे तौर पर पास हुए थे उनपर मुस्लिम-लीग की कौंसिल और महासमिति की सम्मिलित बैठक में जो अक्तूबर १९१६ को कलकत्ते में हुई थी, विचार किया गया और हिन्दू-मुस्लिम-गणना-सम्बन्धी समझौता तय हो गया। केवल बगाल और पजाब के प्रतिनिधियो की सख्या की समस्या हल नही हुई थी। इसका अन्तिम-निर्णय लखनऊ अधिवेशन पर छोड दिया गया। सम्मिलित कमिटी ने कलकत्ते मे जो प्रस्ताव पास किये थे, उन्हें लखनऊ-कांग्रेस ने स्वीकार कर लिया। राजनीतिज्ञो के आन्तरिक क्षेत्र को कांग्रेस का अधिवेशन होने तक उस बात का पता चल गया था जो बाद को "नाइण्टीन मेमोरेण्डम" (१९ का आवेदनपत्र) के नाम से प्रसिद्ध हुआ (परिशिष्ट १) और जो असेम्बली के १९ सदस्यो के हस्ताक्षर से वाइसराय के पास भेजा गया था (नवम्बर १९१६)। आवेदन-पत्र में जो योजना थी उसमें भारत के लिए स्व-शासन-प्रणाली के मूल सिद्धान्त समाविष्ट थे। यह विश्वास किया जाता है कि यह आवेदन-पत्र इसलिए भेजा गया था, क्योंकि इसपर हस्ताक्षर करनेवाले सदस्यो को यह सुराग लगा था कि भारत-सरकार ने कुछ ऐसे प्रस्तावो का एक खरीता विलायत भेजा है जो वस्तुत प्रतिगामी थे।

जाहिर है कि श्रीमती बेसेण्ट, कांग्रेस का कार्य जिस मन्द गति से चल रहा था उससे सन्तुष्ट नही थीं। कांग्रेस की ब्रिटिश-कमिटी निस्सन्देह इग्लैण्ड में अपना काम कर रही थी। लेकिन वह वस्तुत एक प्रकार से, उसीके शब्दो में कहे तो, सिर्फ निगरानी रखती थी। श्रीमती बेसेण्ट एक तेजतर्रार और जीती-जागती सस्था चाहती थीं। इसीलिए उन्होंने १९१४ की मदरास-कांग्रेस के स्व-शासन-सम्बन्धी प्रस्ताव के अनुसार १२ जून १९१६ को लन्दन में एक सहायक-होमरूल-लीग की स्थापना की। भारतवर्ष में तो निश्चित रूप से पहली सितम्बर १९१६ ई० को, मदरास के गोखले-हाल में उनकी होमरूल-लीग की स्थापना हुई थी। इस सस्था ने १९१७ भर धडाके से श्रीमती बेसेण्ट-द्वारा निर्धारित प्रणाली पर काम किया। वह इस सस्था की तीन वर्ष के लिए अध्यक्ष चुनी गई थीं। लेकिन सबसे पहले होमरूल-लीग की स्थापना तो, जैसा कि पहले हम बता चुके है, २३ अप्रैल १९१६ को लोकमान्य तिलक की थी, जिसका प्रधान कार्यालय पूना में था। दोनो के नाम में गडबड न हो

इसलिए श्रीमती बेसेण्ट ने अपनी होमरूल-लीग का नाम १९१७ में 'ऑल इंडिया होमरूल-लीग' रख दिया था।

लखनऊ कांग्रेस में लो० तिलक

लोकमान्य तिलक अपनी जनवरी की घोषणा के अनुसार १९१६ की लखनऊ-कांग्रेस में सम्मिलित हुए। उन्हें बम्बई प्रान्त से राष्ट्रीय विचार के लोगों की एक अच्छी खासी सख्या को लखनऊ के अधिवेशन के लिए प्रतिनिधि बनाने में पूर्ण सफलता मिली। कांग्रेस के तत्कालीन विधान के अनुसार ऐसा था कि विषय-समिति में प्रत्येक प्रान्त के महासमिति के सदस्यों के अलावा उन्ही की सख्या के बराबर सदस्य प्रत्येक प्रान्त से, अधिवेशन में सम्मिलित हुए प्रतिनिधियों द्वारा, चुने जायें। लोकमान्य ने नरम-दलवालों के सामने विषय-समिति के चुने जानेवाले सदस्यों के नामों के सम्बन्ध में जो प्रस्ताव रक्खा था वह उन लोगों ने जब स्वीकार नहीं किया तो उन्होंने बम्बई के प्रतिनिधियों से जो सारे-के-सारे राष्ट्रीय विचार के थे, केवल अपने दल के लोगों को ही चुनवाने का निश्चय किया। अधिवेशन में विषय-समिति के सदस्यों के लिए दो-दो नाम एकसाथ पेश किये गये। अर्थात् एक नरम-दलवाले का तो दूसरा राष्ट्रीय दलवाले का। परन्तु हर बार राष्ट्रीय-दल का ही आदमी चुना गया। जब गांधीजी के नाम के मुकाबले में एक राष्ट्रीय-दल के आदमी का नाम रख दिया गया तो गांधीजी भी नहीं चुने जा सके। लेकिन लोकमान्य ने घोषणा कर दी कि गांधीजी चुन लिये गये।

लखनऊ की इस कांग्रेस के सभापति श्री अम्बिकाचरण मुजुमदार चुने गये थे। राष्ट्र के वह एक परखे हुए सेवक थे। राष्ट्रीय कार्यों के लिए उनका जो त्याग था उसके लिए लखनऊ की कांग्रेस का सभापति बनाकर उनका मान करना उनका उचित पुरस्कार ही था। उनका सभापति के पद से दिया गया भाषण वक्तृत्व-कला के लिहाज से वैसा ही था जैसा कि कांग्रेस में होने का उस समय तक रिवाज था। लखनऊ-कांग्रेस की सबसे बड़ी जो सफलता थी वह थी शासन-सुधारों के लिए कांग्रेस-लीग-योजना की पूर्त्ति और हिन्दू-मुसलमानों में पूर्णत समझौता और मेल हो जाना। (परिशिष्ट २)

कांग्रेस लीग योजना

कांग्रेस-लीग-योजना में मुख्य बात यह थी कि कार्यकारिणी कौंसिल के अधीन

रहे। लेकिन यहा यह वात भूल न जानी चाहिए कि स्वय कौंसिल मे ⅕ भाग नामजद सदस्यो का रक्खा गया था। भारत-मन्त्री की कौंसिल को तोड देने की वात थी। सक्षेप में उस समय के वाद की कांग्रेस की तेज रफ्तार की दृष्टि से यदि देखा जाय, तो उस योजना में विशेष सार नही था। फिर भी सरकार की हिम्मत उसे स्वीकार करने की नही थी। उसने इसके मुकावले में स्वय अपनी एक योजना तैयार की, जैसा कि हमें १९१७ के वाद की घटनाओ से मालूम होगा।

लखनऊ की कांग्रेस अपने ढग की अद्वितीय थी। एक तो उसमें हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य हुआ, दूसरे स्वराज्य की योजना तैयार हुई और कांग्रेस के दोनो दलो में जो कि १९०७ से पृथक्-पृथक् थे, एका हो गया। वास्तव मे वह दृश्य देखते ही वनता था—लोकमान्य तिलक और खापर्डे, रासविहारी घोप और सर सुरेन्द्रनाथ वनर्जी, एक ही साथ एक ही स्थान पर वरावर वैठे थे। श्रीमती वेसेण्ट भी अपने दो सहयोगी अरण्डेल और वाडिया साहव के साथ, जिनके हाथो में होमरूल के झण्डे थे, वहीं वैठी थी। मुमलमानो में से राजा महमूदावाद, मजहरुल हक और जिन्नाह साहव भी उपस्थित थे। गाधीजी और मि० पोलक भी वही विराजमान थे। कांग्रेस-लीग-योजना पर, जिसे कांग्रेस ने पास किया था, तुरन्त ही मुस्लिम-लीग ने भी अपनी मुहर लगा दी।

स्वीकृत प्रस्ताव

वम्वई-कांग्रेस की भाति लखनऊ-कांग्रेस में भी उपस्थिति अच्छी थी। अतिरिक्त दर्शकों की एक अच्छी खासी भीड थी, जिनके मारे सारा पण्डाल खचाखच भर गया था। इसमें प्राय वे सव प्रस्ताव पास हुए जिन्हें कांग्रेस अवतक हर साल पास करती चली आ रही थी। कांग्रेस ने दो प्रस्ताव और पास किये थे। एक तो उत्तरी विहार के गोरे जमीदारो और वहा की रैयत के पारस्परिक सम्वन्ध के विपय में था, जिसमें इस वात की आवश्यकता पर जोर दिया गया था कि सरकार शीघ्र ही सरकारी तथा गैर-सरकारी कुछ सदस्यो की एक ऐसी सम्मिलित कमिटी नियुक्त करे जो विहार के इन किसानो के कष्टो का पता लगावे। दूसरा विश्वविद्यालय-सम्वन्धी विल था जो कि वडी कौंसिल में पेश किया जा चुका था।

उत्तरी विहार के गोरे जमीदार और वहा की रैयत के सम्वन्ध का प्रस्ताव वडा ही महत्त्वपूर्ण था। क्योंकि इसके वाद ही गाधीजी किसानो के असन्तोप के कारणो का पता लगाने विहार गये थे, जिसपर आगे के अध्यायो में प्रकाश डाला जायगा।

भारत के स्व-शासनवाले प्रस्ताव में यह घोषित किया गया था कि (अ) भारत की प्राचीन सभ्यता और शिक्षा में जो उन्नति हुई, और सार्वजनिक कामो में जो रुचि प्रकट की गई है उनको मद्देनजर रखते हुए सम्राट् की सरकार को चाहिए कि वह कृपापूर्वक इस आशय की एक घोषणा कर दे कि ब्रिटिश-नीति का यह लक्ष्य है कि भारत में शीघ्र ही स्व-शासन-प्रणाली को जारी करे, (ब) इस दिशा में एक सीधा कदम इस प्रकार बढ़ाया जा सकता है कि कांग्रेस-लीग-योजना को सरकार स्वीकार कर ले और (स) साम्राज्य के पुनर्निर्माण में भारतवर्ष को अधीन-देशो की स्थिति से निकालकर साम्राज्य के बराबर के साझीदारो में, औपनिवेशिक स्वराज्य-प्राप्त प्रदेशो की भांति, रक्खा जाय।

यहा यह बात भी गौर से देखने योग्य है कि लखनऊ-कांग्रेस ने एक प्रस्ताव द्वारा-डिफेन्स आफ इडिया एक्ट और १८१८ के ३रे रेग्युलेशन (बगाल) के इतने विस्तृत रूप में प्रयोग को बहुत ही चिन्ताजनक दृष्टि से देखा था। इसी प्रस्ताव में इस बात पर जोर दिया गया था कि इडिया डिफेन्स एक्ट के प्रयोग में, जो विशेष परिस्थितियो के लिए है, वही सिद्धान्त प्रयुक्त होना चाहिए जो सयुक्त-राज्य के देश-रक्षा कानून (डिफेन्स ऑफ रेल्म एक्ट) के अनुकूल हो।

कांग्रेस और लीग दोनो के एक समय में एक ही स्थान पर अधिवेशन करने की प्रथा का जो श्रीगणेश बम्बई में हुआ था वही लखनऊ में भी जारी रक्खा गया। लखनऊ के अधिवेशन में स्व-शासन-प्रणाली के लिए जो प्रस्ताव पास हुआ था उसके बाद एक प्रस्ताव इस आशय का भी पास हुआ था कि सारे देश की कांग्रेस-कमिटिया तथा अन्य सगठित संस्थायें और कमिटिया शीघ्र ही एक देशव्यापी प्रचार का कार्य शुरू कर दें। इस आदेश का देश ने आश्चर्यजनक उत्तर दिया। एक प्रान्त ने दूसरे प्रान्त से इस प्रचार-कार्य करने में प्रतिस्पर्द्धा की। और मदरास ने तो श्रीमती बेसेण्ट के नेतृत्व में इस कार्य में सबसे अधिक बाजी मारी। कांग्रेस का लखनऊ-अधिवेशन कोई सुगमता से समाप्त नहीं हो गया। १८९९ में जब कांग्रेस का इसी स्थान पर १५ वा अधिवेशन होने जा रहा था उस समय अकथनीय कठिनाइयो का सामना करना पड़ा था। लेकिन उस समय तत्कालीन लेफ्टिनेण्ट-गवर्नर सर एन्थोनी मैकडोनल्ड ने उन सब का अन्त कर दिया था। इसी तरह की एक घटना १९१६ में भी हुई थी। युक्तप्रान्तीय सरकार के मन्त्रि-मण्डल ने कांग्रेस की स्वागत-समिति को एक चेतावनी भेजी थी कि भाषणों में किसी प्रकार के भी राजद्रोहात्मक भावों को न आने दिया जाय। कांग्रेस के मनोनीत सभापति के पास भी बंगाल-सरकार-द्वारा

उसी की एक नकल भेज दी गई थी। स्वागत-समिति ने इस अकारण तौहीन का मुह-तोड जवाब दे दिया था और सभापति ने उस पत्र की कोई वकत नही की थी। श्रीमती बेसेण्ट तो ठीक इन्ही दिनो वरार और वम्वई की सरकारो से देश-निकाले की आज्ञा पा ही चुकी थी। इसलिए स्वभावत लखनऊ मे भी कुछ ऐसी ही आशकाये थी। लेकिन सर जैम्स मेस्टन की बुद्धिमानी से इस तरह की कोई घटना नही घटी और इसीलिए कोई पेचीदगी पैदा नही हुई। इतना ही नही, अधिकारीवर्ग-सहित सर जैम्स मेस्टन और उनकी धर्मपत्नी कांग्रेस में पधारे थे। सभापति महोदय ने इनका जो स्वागत किया था उसका सर जैम्स ने उपयुक्त उत्तर भी दिया था।

: ३ :

उत्तरदायी शासन की ओर—१९१७

भारतीय राजनीति के विकास में यहा का साम्प्रदायिक मतभेद सदैव एक बडा भारी रोडा रहा है। इसका जन्म तो वैसे वस्तुत लॉर्ड मिन्टो के जमाने में हुआ था। पर १९१७ में जब स्व-शासन की एक योजना तैयार की जाने को थी, उस समय सौभाग्य से भारतवर्ष की दो महान् जातियो में, किसी ऊपरी शक्ति के दवाव से नही वल्कि आपसी तौर पर, एक समझौता हो गया था। यह आगे आनेवाले राजनैतिक सघर्ष के लिए शुभ चिन्ह था। १९१७ में जो राजनैतिक आन्दोलन चलाया गया था, उसकी कल्पना स्पष्ट और भावना शुद्ध थी। १९१७ में सारे देश में बडी तेजी के साथ एक राष्ट्रीय-जागृति पैदा हो गई थी। होमरूल के लिए जो विराट् आन्दोलन इस वर्ष हुआ वह भी वहुत ही लोकप्रिय था। इस आन्दोलन के पीछे-पीछे जो चीज सदैव से अधिक तेजी के साथ चली वह था पुलिस का दमन।

होमरूल आन्दोलन और दमन

होमरूल की आवाज देश के सुदूर कानो तक फैल गई और सर्वत्र होमरूल-लीगो की स्थापना हो गई थी। श्रीमती वेसेण्ट के हाथो में प्रेस की शक्ति खूब ही वढी, यद्यपि प्रेस-एक्ट के अनुसार दमन-चक्र भी खूब ही चला। और लॉर्ड पेण्टलैण्ड की सरकार ने तो सरकारी आज्ञा-पत्र न० ५५९ के अनुसार विद्यार्थियो को भी राजनैतिक आन्दोलन में भाग लेने से रोक दिया था। उन्होने 'हिन्दू' के सम्पादक श्री कस्तूरी रगा आयगर को भी वुला भेजा था, जिन्होने अपनी आध घटे की मुलाकात में गवर्नर से साफ-साफ वाते करके देश की स्थिति को जैसा वह समझते थे वता दिया था। लेकिन श्रीमती वेसेण्ट से, जिनका 'न्यू इडिया' नामक दैनिक और 'कामन-विल' नामक साप्ताहिक पत्र निकलता था, प्रेस और पत्र के लिए २०,०००) की जमानत मागी, गई, और वह जप्त भी कर ली गई।

एक ओर यह हो रहा था तो दूसरी ओर होमरूल का खयाल दावानल की तरह सर्वत्र फैल रहा था। "होमरूल-आन्दोलन की शक्ति", श्रीमती वेसेण्ट के

१९१७ में कलकत्ता-कांग्रेस के सभापति-पद से दिये गये भाषण के अनुसार, "स्त्रियो के उसमें एक बहुत बडी सख्या मे भाग लेने, उसके प्रचार में सहायता करने, स्त्रियो-चित अद्भुत वीरता दिखाने, कष्ट सहने और त्याग करने के कारण दसगुनी अधिक बढ गई थी। हमारी लीग के सबसे अच्छे रगरूट और सबसे अच्छे रगरूट बनानेवाली स्त्रिया ही थी। मदरास की स्त्रियो का दावा है कि जब आदमियो को जुलूस निकालने से रोक दिया गया तब उनके जुलूस निकले और मंदिरो में की गई उनकी प्रार्थना ने नजरबन्दो को मुक्त कर दिया।" इस आन्दोलन की सफलता का एक बडा कारण यह भी था कि प्रारम्भ से ही भाषा के आधार पर प्रान्त बनाने के सिद्धान्तो को मान लिया गया था और उसीके अनुसार देश का प्रान्तीय-सगठन किया गया था। इस प्रकार से इस रूप में वह कांग्रेस से भी आगे निकल गया और सच पूछिए तो कांग्रेस के लिए उसने पूर्व-सूचक का काम किया था।

१५ जून १९१७ को श्रीमती बेसेण्ट, अरण्डेल और वाडिया साहब को नजर-बन्दी का हुक्म मिला। उनको ६ स्थान बताये गये थे जिनमें से एक को उन्हें अपने रहने के लिए पसन्द कर लेना था। कोयम्बटूर और उटकमण्ड को इन लोगो ने पसन्द किया। अपने तीन नेताओ की नजरबन्दी के कारण होमरूल-लीग और भी लोक-प्रिय हो गई और श्री जिन्नाह भी बाद में फौरन उसमें सम्मिलित हो गये। यह तो एक प्रकट-रहस्य है कि सरकारी हुक्म और खुफिया पुलिस की निगरानी होने पर भी श्रीमती बेसेण्ट स्वतन्त्रता-पूर्वक बराबर अपने पत्र 'न्यू-इडिया' के लिए लेख लिखती रही। 'कामन-विल' नामक एक नया साप्ताहिक पत्र भी आपने निकाला। श्री पढरीनाथ काशीनाथ तैलग 'न्यू इडिया' के सम्पादक बनकर मदरास पहुँच गये। जितने दिन तक ये लोग नजरबन्द रहे उतने दिन तक होमरूल-आन्दोलन विद्युत गति से दिन-दूना रात-चौगुना बढा। देश में स्थिति बडी विकट हो गई थी। लेकिन इग्लैण्ड में अधिकारी-वर्ग जरा भी झुकने को तैयार न था। मि० माण्टेगु ने अपनी डायरी में एक कहानी लिखी और उससे एक सबक निकाला "शिव ने अपनी पत्नी के ५२ टुकडे कर दिये थे परन्तु अन्त में उन्हें पता चला कि उनके एक नही ५२ पार्वतिया मौजूद है। वास्तव में यही बात भारत-सरकार पर घटी जब कि उसने श्रीमती बेसेण्ट को नजरबन्द किया।"

भारतवर्ष में जब कि यह राजनैतिक तूफान उमड रहा था, लण्डन में एक शाही युद्ध-परिषद् हो रही थी, जिसमे सारे उपनिवेशो के प्रतिनिधि भी उपस्थित थे। भारत का प्रतिनिधित्व करने के लिए महाराजा बीकानेर और सर सत्येन्द्रप्रसन्न

सिंह इग्लैण्ड में भेजे गये थे। इन लोगो ने अपनी शान-बान और रग-ढग तथा शुद्ध उच्चारण से ऐसा रोब वहा जमाया कि इनका वहा खूब ही स्वागत हुआ, मान हुआ और अखबारो ने भूरि-भूरि प्रशसा की। इसका असर यहा तक हुआ कि ब्रिटिश-कमिटी ने, जिसने कि यह राय दी थी कि भारत से शासन-सुधारो-सम्बन्धी प्रश्न को हल करने के लिए एक शिष्ट-मण्डल इग्लैण्ड बुलाया जाय, अपनी राय बदल दी और उसी समय इग्लैण्ड में एक आन्दोलनकारी कार्यक्रम बनाने की सलाह दी। वास्तव में ७ अप्रैल १९१७ को महासमिति की बैठक बुलाई गई थी, इसलिए कि वह इग्लैण्ड में एक शिष्ट-मण्डल भेजने का और विलायत मे ही काग्रेस का अधिवेशन करने का आयोजन करे। इन महानुभावो को शिष्ट-मण्डल का सदस्य बनने के लिए कहा गया था—सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, रासविहारी घोष, भूपेन्द्रनाथ वसु, मदनमोहन मालवीय, सर कृष्णचन्द्र गुप्त, राजा महमूदाबाद, तेजबहादुर सप्रू, श्रीनिवास शास्त्री और सी० पी० रामस्वामी ऐयर। ब्रिटिश-कमिटी ने बहुतेरा प्रयत्न किया कि भारत-मंत्री मि० आस्टिन चैम्बरलेन भारत-विषयक सरकारी नीति की घोषणा कर दें और सेना में भारतीयो को कमीशन देना स्वीकार कर लें, लेकिन वह दोनो में से एक भी करने को तैयार न थे। ८ मई १९१७ को इग्लैण्ड में एक छोटी-सी परिषद् हुई। उस समय सर सत्येन्द्रप्रसन्न सिंह भी वहा थे। इसी परिषद् का वह निश्चय था, जिसके अनुसार भारत से शिष्ट-मण्डल भेजने की सलाह वापस ले ली गई थी।

भारतवर्ष इस समय होमरूल के सम्बन्ध में नजरबन्द हुए लोगो को छुडाने के लिए सत्याग्रह करने की योजना तैयार कर रहा था। जुलाई १९१७ में महासमिति और मुस्लिम-लीग की कौंसिल की एक सम्मिलित बैठक बुलाई गई, जिसमें सबसे पहला जो प्रस्ताव पास हुआ वह था भारत के वृद्ध पितामह की मृत्यु पर दु ख मनाने का। सर विलियम वेडरबर्न की सलाह के अनुसार एक छोटा-सा शिष्ट-मण्डल इग्लैण्ड भेजने का निश्चय हुआ। उसके सदस्य थे—श्री जिन्नाह, शास्त्री, (यदि वह न जायें तो सी० पी० रामस्वामी ऐयर), सप्रू और वजीरहसन। सत्याग्रह करने के प्रश्न पर यह तय हुआ कि प्रान्तीय-काग्रेस-कमिटियो और मुस्लिम-लीग की कौंसिल से प्रार्थना की जाय कि वे सत्याग्रह पर सिद्धान्तत और राजनैतिक कार्य करने की दृष्टि से विचार करें, कि आया उनकी राय में सत्याग्रह करना उचित और उपयुक्त है या नहीं ? इस विषय में उनकी जो राय हो उसे ६ सप्ताह के अन्दर काग्रेस के प्रधानमंत्री के पास भेज देने की बात भी प्रस्ताव में थी। इस सम्मिलित बैठक ने बगाल-सरकार की उस धावलेबाजी के प्रति तीव्र विरोध का भी एक प्रस्ताव पास किया जो कि उसने

श्रीमती बेसेण्ट और मि० अरण्डेल व वाडिया के नजरबन्द होने के विरोध में डॉ० रासविहारी घोष के सभापतित्व मे होनेवाली एक सार्वजनिक सभा रोककर की थी। प्रस्ताव में यह आशा प्रकट की गई थी कि "बगाल के निवासी प्रत्येक कानूनी उपाय से अपने अधिकारो की रक्षा करेगे।" एक बहुत ही 'युक्तिपूर्ण वक्तव्य तत्कालीन स्थिति के सम्बन्ध में इस कमिटी ने तैयार किया था। इसमें यह बताया गया था कि यहा भारतवर्ष में किस प्रकार लॉर्ड चैम्सफोर्ड ने, उन्नीस आदमियो-द्वारा भेजे गये उस आवेदन-पत्र को बुरा-भला कहते हुए उसे "महान् आपत्ति ढा देनेवाला परिवर्तन" कहा था, और किस प्रकार इग्लैण्ड में लॉर्ड सिडेनहम ने "भारत के खतरे" का भय दिखाकर और इस आवेदन-पत्र को "क्रान्तिकारी प्रस्ताव" कहकर इसकी निन्दा की थी एव दमन करने की सलाह यह कहकर दी थी कि इसके पीछे 'जर्मनी की साजिश' है। इसके बाद ही सरकार ने स्वराज्य के लिए किये गये लोक-आन्दोलन के सम्बन्ध मे सरकार की नीति का निर्देश करते हुए एक गश्ती-पत्र भेजा था, और वही फोनोग्राफ की तरह शीघ्र ही पजाब, में सर माइकल ओडायर और मदरास में लॉर्ड पेण्टलैण्ड के मुह से घोषणाओ के रूप में सुनाई देने लगा। इन्होने लोगो को व्यर्थ की आशायें न रखने की चेतावनी देते हुए दमन करने की धमकी दी। सर माइकल ओडायर ने तो यहा तक कह डाला था कि सुधार मागनेवाले दल ने जो शासन में परिवर्तन चाहे है वे क्रान्तिकारी और कानून और व्यवस्था उलट देनेवाले है। सरकार को जिस बात की सबसे अधिक चिढ थी वह यह कि एक ओर तो शिमला और दिल्ली से जो गुप्त खरीते शासन-सुधारो के सम्बन्ध में जा रहे थे उनसे पहले काग्रेस तथा लीग और कुछ कौंसिल के सदस्यो की योजना और आवेदन-पत्र विलायत कैसे पहुँच गये? प्रान्तीय सरकारो के गवर्नरो ने इस अदूरदर्शिता को नही देखा कि जनता से खुल्लम-खुल्ला यह कहने का क्या फल निकलेगा कि शासन-सुधार बहुत ही साधारण से दिये जायँगे। लेकिन यदि वे अदूरदर्शी थे तो कम-से-कम इतना तो कहना ही पडेगा कि वे ईमानदार थे। हा तो उस वक्तव्य में नजरबन्दी का विरोध किया गया था और स्थिति को सुधारने की दृष्टि से यह सलाह दी थी कि (१) साम्राज्य-सरकार इस बात की घोषणा करे कि वह भारत में शीघ्र ही ब्रिटिश-साम्राज्य की स्व-शासन-प्रणाली स्थापित कर देगी, (२) शासन-सुधारो की जो योजना सम्मिलित रूप से तैयार की गई है उसे वह मजूर करने के लिए फौरन ही आगे कदम बढायगी, (३) अधिकारी-वर्ग ने जो प्रस्ताव किये है उनको शीघ्र ही प्रकाशित करेगी, और (४) दमन-नीति का परित्याग करेगी।

सत्याग्रह के प्रस्ताव पर प्रान्तों के मत

३० जुलाई को भारत-मंत्री, प्रधान मंत्री तथा सर विलियम वेडरबर्न को इस वक्तव्य का मुख्य भाग तार-द्वारा विलायत भेज दिया गया। इस बीच सत्याग्रह करने के प्रस्ताव पर विभिन्न प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटियों ने गम्भीरतापूर्वक अगस्त और सितम्बर के महीनो में विचार किया। बरार की राय में तो सत्याग्रह करना उचित था। पर बम्बई, बर्मा और पंजाब का कहना था कि अभी सत्याग्रह स्थगित रक्खा जाय, क्योंकि मि० माण्टेगु के भारत आने की सम्भावना है। युक्त-प्रान्त ने "वर्तमान अवस्था में" सत्याग्रह करना अनुपयुक्त बताया। बिहार की सम्मति में "होमरूल के नजरबन्दो—मौलाना अबुलकलाम आजाद तथा अली-भाइयो को छोडने के लिए एक तारीख नियत कर देना चाहिए।" इस दी गई मियाद के बीच में बिहार स्वयं स्थान-स्थान पर सभायें करके इस माग का बल बढाने को तैयार था। यदि सरकार इसपर ध्यान न दे तो, बिहार के सार्वजनिक कार्यकर्त्ता स्वयं सत्याग्रह का प्रचार करने के लिए तैयार हो जायेंगे और उसके लिए हर प्रकार के बलिदान करेंगे और मुसीबतें सहेंगे। मदरास-प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी ने १४ अगस्त १९१७ को सत्याग्रह करने का समर्थन करते हुए प्रस्ताव पास किया।

मदरास-नगर में तो एक प्रतिज्ञा-पत्र तैयार किया गया। इसपर सबसे पहले हस्ताक्षर करनेवाला जो व्यक्ति था वह थे सर एस० सुब्रह्मण्य ऐयर, जोकि मदरास हाईकोर्ट के पेंशनयाफ्ता जज, पुराने कांग्रेसी तथा आल इंडिया होमरूल-लीग के अध्यक्ष थे। उन्होंने अपनी 'सर' की उपाधि को श्रीमती बेसेण्ट तथा उनके सहयोगियो के नजरबन्द किये जाने के विरोध में त्याग दिया था। आपने राष्ट्रपति विल्सन को भी एक पत्र अमरीका श्रीमती और श्रीयुत होचनर के हाथ भेजा था। प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करनेवाले दूसरे व्यक्ति 'हिन्दू' के सम्पादक और निरभिमान देश-सेवक श्रीकस्तूरी रंगा आयंगर थे।

माण्टेगु की घोषणा

जिस समय भारतवर्ष में आन्दोलन इस प्रगति से बढ रहा था उसी समय मि० माण्टेगु की घोषणा प्रकाशित हुई, जिससे स्थिति में बहुत परिवर्तन हो गया। इसपर मदरास-प्रान्तीय-कांग्रेस-कमिटी ने यह प्रस्ताव पास किया—"राजनैतिक परिस्थिति में जो परिवर्तन हुआ है उसे मद्देनजर रखते हुए सत्याग्रह के प्रश्न पर विचार करना आगे के लिए स्थगित किया जाय। इस बात की इत्तला महासमिति को दे दी जाय।"

वह बदली हुई परिस्थिति कौन-सी थी, गत महायुद्ध के जमाने में मेसोपोटामिया में युद्ध का प्रबन्ध अच्छा नही रहा। इसी सम्बन्ध में कामन-सभा मे एक बड़ा ही महत्त्वपूर्ण वाद-विवाद हुआ, जिसमे मि० माण्टेगु ने मि० आस्टिन चैम्बरलेन को, जो कि भारत-मत्री थे, बुरी तरह आडे हाथो इसलिए लिया कि मेसोपोटामिया में भारत से प्रचुर-मात्रा में सामग्री तथा सिपाही न पहुँचने के कारण ही गडबड हुई थी। इसीके परिणाम-स्वरूप मि० चैम्बरलेन ने अपने पद से इस्तीफा दे दिया और उनके स्थान पर मि० माण्टेगु भारत-मत्री नियत हुए। उस समय माण्टेगु साहब बिलकुल नौजवान थे। उनकी अवस्था उस समय ३६ वर्ष से अधिक न थी। लेकिन फिर भी वह इससे पहले ४ वर्ष तक बराबर उपभारत-मत्री रह चुके थे और १९१२ में भारतवर्ष का पूरा दौरा भी कर चुके थे। मि० बोनर ला का एक कडा भाषण हुआ था, जिसमें उन्होने बताया था कि भारतवर्ष की राजधानी कलकत्ते से दिल्ली हटाने और वग-भग के निर्णय को रद कर देने में खर्च भी अधिक हुआ है और सरकार की प्रतिष्ठा को भी धक्का पहुँचा है। इसके उत्तर मे मि० माण्टेगु ने भारत के प्रति बहुत सहानुभूतिपूर्ण भाषण दिया था। मि० माण्टेगु का भारत-मत्री बना दिया जाना, भारतवर्ष ने अपनी एक बहुत बडी विजय समझी। लोगो की आशा के मुताबिक, मत्री-पद का कार्य सम्हालने के कुछ ही समय बाद २० अगस्त को मन्त्रि-मण्डल की ओर से, मि० माण्टेगु ने निम्नलिखित घोषणा की, जिसमें ब्रिटिश-नीति का अन्तिम ध्येय भारत को उत्तरदायित्वपूर्ण शासन-प्रणाली देना बताया गया था —

"सम्राट्-सरकार की यह नीति है, और उससे भारत-सरकार पूर्णत सहमत है, कि भारतीय-शासन के प्रत्येक विभाग में भारतीयो का सम्पर्क उत्तरोत्तर बढे और उत्तरदायी शासनप्रणाली का धीरे-धीरे विकास हो, जिससे कि अधिकाधिक प्रगति करते हुए स्व-शासन-प्रणाली भारत में स्थापित हो और वह ब्रिटिश-साम्राज्य के एक अग के रूप में रहे। उन्होने यह तय कर लिया है कि इस दिशा मे, जितना शीघ्र हो, ठोस रूप से कुछ कदम आगे बढाया जाय।"

"मैं इतना और कहूँगा", मि० माण्टेगु ने कहा, "इस नीति मे प्रगति क्रमश ही अर्थात् सीढी-दर-सीढी होगी। ब्रिटिश-सरकार और भारत-सरकार ही, जिनके ऊपर कि भारतीयो के हित और उन्नति का भार है, कब और कितना कदम आगे बढाना चाहिए, इस बात के निर्णायक होगे। वे एक तो उन लोगो के सहयोग को देखकर ही आगे बढाने का निश्चय करेंगे जिन्हें कि इस तरह सेवा का नया अवसर मिलेगा, और दूसरे यह देखा जायगा कि किस हद तक उन्होंने अपनी जिम्मेदारी को

ठीक-ठीक अदा किया है और इसलिए कितना विश्वास उनपर किया जा सकता है। पार्लमेण्ट के सम्मुख जो प्रस्ताव पेश होंगे उनपर सार्वजनिक रूप में वादविवाद करने के लिए पर्याप्त समय दिया जायगा।"

लोगो के प्रति अपने विश्वास-भाव को प्रकट करने के लिए उन्होने उस जातिगत प्रतिवन्ध को भारतीयो पर से हटा दिया जिसके कारण वे सेना में उच्च पद नही पा सकते थे। आगे चलकर उन्होने यह भी घोषित किया कि वह भारत आवेंगे और वाइसराय से परामर्श करेंगे, एव भारत के स्वराज्य की ओर वढने में जो समुदाय दिलचस्पी रखते होगे उन सबसे भी बातें करेंगे। २० अगस्त की घोषणा हो चुकी थी और नई नीति के अनुसार श्रीमती बेसेण्ट तथा उनके सहयोगी १६ सितम्बर को मुक्त कर दिये गये थे।

कांग्रेस का आवेदन-पत्र

६ अक्तूबर को इलाहाबाद में महासमिति और मुस्लिम-लीग की कौंसिल की एक सम्मिलित बैठक फिर हुई। इसपर कसरत राय यह ठहरी कि सत्याग्रह न किया जाय। श्रीमती बेसेण्ट स्वय सत्याग्रह करने के विरुद्ध थी। इससे एक प्रभावकारी कार्यक्रम एकदम रुक गया, जिससे नवयुको में बडी निराशा फैली। सम्मिलित बैठक ने सत्याग्रह करने की बात तय करने के स्थान पर वाइसराय तथा भारत-मत्री के पास एक शिष्ट-मण्डल भेजने की बात तय की। इसके अतिरिक्त, इस शिष्ट-मण्डल के हाथ काग्रेस-लीग-योजना के समर्थन में एक युक्ति-सगत आवेदन-पत्र भी भेजने की बात तय हुई। इस कार्य के लिए १२ व्यक्तियो की एक कमिटी नियुक्त की गई। श्री० सी० वाई० चिन्तामणि उसके मत्री थे। इसका काम था एक आवेदन-पत्र और एक अभिनन्दन-पत्र तैयार करना। शिष्ट-मण्डल आवेदन-पत्र के साथ लॉर्ड चेम्सफोर्ड और मि० माण्टेगु से नवम्बर १९१७ में मिला। उस आवेदन-पत्र का मुख्य अग निम्नलिखित है —

"हर समय और हर परिस्थिति में केवल अधीन-देश की अवस्था वहा के लोगो के स्वाभिमान को ठेस पहुँचानेवाली होती है। खासकर उन लोगो को, जो काग्रेस के शब्दो में एक प्राचीन सभ्यता के उत्तराधिकारी है और जिन्होने शासन तथा व्यवस्था करने की अच्छी योग्यता का काफी परिचय दिया है। जबकि एक ओर अवस्था यह है तो दूसरी ओर गत दो वर्षों से एक ऐसी जरूरी आवश्यकता पैदा हो गई है जिसके कारण यहा के निवासी इस बात पर बल-पूर्वक जोर दे रहे है कि उनके देश

को साम्राज्य के अन्य उपनिवेशो की श्रेणी में रख दिया जाय। यह तो अब स्पष्ट हो गया है कि अन्य उपनिवेशो की भविष्य मे साम्राज्य-सम्बन्धी मामलो में एक जोरदार आवाज होगी। अब वे बाल्यावस्था मे नही है, बल्कि उन्हें ब्रिटेन के साथ बराबरी का समझा जाता है। अब पाच स्वतत्र राष्ट्र ब्रिटेन के साथ मिलकर एक समूह बन गये हैं। अगर, जैसा कि कुछ लेखको की राय है, एक पार्लमेण्ट और (या) साम्राज्य की एक कौंसिल बनाई जाय और उसमें सयुक्त-राज्य तथा उपनिवेशो के प्रतिनिधि हो और अगर सारे साम्राज्य के मामलो को येही या यह कौंसिल तय किया करें, और मौजूदा कामन-सभा और लॉर्ड-सभा केवल ब्रिटेन के मामलो को ही तय किया करें, तो यह स्पष्ट है कि भारतवर्ष पर ब्रिटेन के साथ-साथ उपनिवेशो का भी शासन हो जायगा। अगर साम्राज्य की नीति में कोई ऐसा परिवर्तन होने जा रहा हो तो भारतवासी उसका बडी दृढता से विरोध करेंगे। और अगर उपनिवेशो का रुख भारत और भारतीयो की ओर ऐसा हो जिसमें अपवाद की कोई गुजाइश ही न हो, तो भी भारतवासी अपनी दासता की हद को बढाने के लिए कभी तैयार न होगे। भारतवासियो के दृष्टि-कोण से अनिवार्य शर्त केवल यही हो सकती है कि यदि साम्राज्य का नये सिरे से सगठन हो तो उसमें भारत का भी शाही-कौसिल और (या) पार्लमेण्ट मे प्रतिनिधित्व अवश्य हो। चुने हुए सदस्यो की वही कसौटी रक्खी जाय जो उपनिवेशो पर लागू हो।

कांग्रेसी हलचलें

इस बीच में काग्रेसवाले खामोश नही बैठे थे। वे काग्रेस-लीग-योजना के लिए लोगो के हस्ताक्षर करा रहे थे, जैसा कि पहले बताया जा चुका है। अपनी नजरबन्दी से छुटकारा पाने के बाद श्रीमती बेसेण्ट ने वाइसराय से कितनी ही बार मिलने के लिए समय मागा, लेकिन उन्हें नही दिया गया। लॉर्ड चेम्सफोर्ड श्रीमती बेसेण्ट को दूर ही रखना चाहते थे। मि० माण्टेगु ने भी उनके नेतृत्व के लिए कोई आदर-भाव प्रदर्शित नही किया। अपने छुटकारे के बाद ही उन्होने सत्याग्रह से अपनी अलहदगी दिखलाई। इसका कारण आजतक अगम्य ही रहा है।

१६१७ के अन्त के महीनो में भारत के राजनैतिक वातावरण में माण्ट-फोर्ड ही माण्ट-फोर्ड हो रहे थे। मि० माण्टेगु और लॉर्ड चेम्सफोर्ड का सर्वत्र दौरा हो रहा था। इनसे विभिन्न स्थानो पर शिष्ट-मण्डल मिलते थे और ये लोगो से हर जगह मिलते थे। श्रीमती बेसेण्ट ने १६१७ के अन्त में, मि० माण्टेगु से भेंट कर लेने के

पश्चात्, अपने कुछ मित्रो से कहा था, "हमें मि० माण्टेगु का साथ देना चाहिए।" नरम-दल वालो ने श्रीमती बेसेण्ट के इन शब्दो की दुहाई प्रत्येक स्थान पर दी। जाहिर है कि मि० माण्टेगु का उद्देश यह था कि वह भारत के परस्पर-विरोधी हित रखनेवाले दलो से परामर्श करें और पार्लमेण्ट में पेश करने के लिए एक मसविदा तैयार करें। इनमें से पहला काम तो लखनऊ में १९१६ में हिन्दू-मुस्लिम समझौते ने पहले ही कर दिया था और उसे मि० माण्टेगु ने ज्यो-का-त्यो मान भी लिया था। लेकिन दूसरी बात के सम्बन्ध में जो असलियत है वह तो बहुत से लोगो के लिए एक बिलकुल ही नवीन बात होगी। वह यह कि माण्टेगु-चेम्सफोर्ड की यह सारी योजना विस्तृत-रूप से मार्च १९१६ में ही तैयार हो गई थी। बात यह थी कि लॉर्ड चेम्सफोर्ड को वाइसराय नियुक्त करने का जब हुक्म पहुँचा उस समय वह भारत की टेरीटोरियल फौज में मेजर थे। मार्च १९१६ में जब वह इग्लैण्ड पहुँचे तो उन्हे तैयार की हुई यह सारी योजना दिखाई गई, जिसके साथ ही उनका नाम जोटा जानेवाला था। इसका पता हमें १९३४ में जाकर लगा। इसमें सन्देह नही कि मि० माण्टेगु श्रीमती बेसेण्ट, लोकमान्य तिलक और गाधीजी जैसे व्यक्तियो से भी मिले और उनकी बातें सुनी। लेकिन असलियत में मि० माण्टेगु ने अपनी भारत-यात्रा में जो कुछ किया वह तो यह छाट लेना था कि भावी शासन में मत्री, कार्यकारिणी के सदस्य और एडवोकेट-जनरल कौन-कौन बनाने लायक है। वह उन आदमियो के सम्बन्ध में निश्चित होना चाहते थे जो उनकी योजना को कार्य-रूप में परिणत करते। इसकी प्रतिध्वनि उस सामूहिक ध्वनि के पीछे सुनाई पडती थी जिसे हम सुनते थे। वह यह कि "हमें मि० माण्टेगु का साथ देना चाहिए।"

१९१७ के इस काल में जब श्रीमती बेसेण्ट का होमरूल-आन्दोलन उन्नति के शिखर पर पहुँच गया था, गाधीजी अपने कुछ चुने हुए सहयोगियो के साथ—जैसे राजेन्द्र बाबू, बृजकिशोर बाबू, गोरख बाबू, अनुग्रह बाबू (बिहार) से और अध्यापक कृपलानी तथा भारत-सेवक-समिति के डॉ० देव को लेकर—बिहार में निल्हे गोरो के प्रति वहा के किसानो की जो शिकायतें थी, उनकी जाच कर रहे थे। पूरे ६ मास तक वह स्वय आन्दोलन से कतई अलग रहे और अपने सब साथियो को भी अलग रक्खा।

गाधीजी ने, जो अपनी जादू-भरी शक्ति का परिचय चम्पारन में दे चुके थे, एक बहुत ही सादा किन्तु कारगर प्रस्ताव रक्खा कि काग्रेस-लीग-योजना देश की भाषाओ में अनुवादित करा दी जाय, लोगो को उसे समझाया जाय और उसमें

शासन-सुधारो की जो योजना है उसके पक्ष में लोगो के हस्ताक्षर कराये जायँ। इस प्रस्ताव को ज्यो ही कार्य-रूप में लाया गया त्योही देश ने काग्रेस की शासन-सुधार-योजना का स्वागत किया। यहा तक कि १६१७ के अत तक दस लाख से ऊपर लोगो ने हस्ताक्षर कर दिये। यह देश-व्यापी सगठन, काग्रेस की ओर से सम्भवत पहला ही प्रयत्न था। लेकिन स्व-शासन के सम्बन्ध में देश को सगठित करने का इससे पहले भी एक प्रयत्न किया गया था। और उसके लिए देश तथा इग्लैण्ड मे धन भी एकत्र किया गया था। १६१५ की बम्बई काग्रेस के अधिवेशन में, जिसके सभापति सर सत्येन्द्रप्रसन्न सिंह थे, महासमिति ने यह तय किया था कि काग्रेस के लिए एक स्थायी कोष एकत्र किया जाय। इस कार्य के लिए एक कमिटी भी बनाई गई थी। परन्तु इस दिशा में कोई सक्रिय कार्रवाई नही हुई। १८८६ में इस दिशा में एक बार कोशिश और हुई थी। ५० हजार रुपया इसलिए मजूर किया गया था कि इतनी रकम एकत्र करके काग्रेस के स्थायी कोष का कार्य प्रारम्भ किया जाय। इस रकम में से केवल ५ हजार रुपया एकत्र हुआ और वह ओरियण्टल बैंक में जमा कर दिया गया था। १८६० वाली बम्बई की उथल-पुथल में इस बैंक का दिवाला निकल गया और यह छोटी-सी रकम भी डूब गई।

१९१७ की कांग्रेस

श्रीमती बेसेण्ट का काग्रेस के सभानेत्री-पद से दिया गया भाषण, भारत के स्व-शासन पर, परिश्रम-पूर्वक लिखा गया एक सुन्दर निबन्ध है। सेना और भारत की व्यापारिक समस्या पर विस्तार के साथ उसमें पूर्णत प्रकाश डाला गया है। उसमे जानकारी प्राप्त करने के इच्छुक विद्यार्थियो के लिए बहुत-सी सामग्री है। उन्होने वस्तुत १६१८ में पेश करने के लिए एक ऐसे बिल की माग पेश की थी जिसके अनुसार "भारत को ब्रिटिश उपनिवेशो के समान स्वराज्य दे दिया जाय। वह भी १६२३ तक, या अधिक-से-अधिक १६२८ तक। बीच के पाच या दस वर्ष अग्रेजो के हाथो से सरकार के भारतीय हाथो मे आने में लगे। और अग्रेजो से भारत का वही सम्बन्ध बना रहे जो अन्य उपनिवेशो के साथ है।" श्रीमती बेसेण्ट के सभानेतृत्व में कागेस तीन दिन का कोई मेला हो कर नही रह गया था। उसमें रोजमर्रा जिम्मेदारी के साथ काम करने की बात थी। इस दृष्टि से, उस समय तक, श्रीमती बेसेण्ट ही कागेस की सर्वप्रथम सभानेत्री कही जा सकती है जिन्होने साल-भर तक अपने पद की जिम्मेदारी निबाहने का दावा किया था। यह दावा कोई नया नही था, परन्तु काग्रेस

के अवतक के इतिहास में किसी सभापति ने उसपर अमल किया नहीं था। कलकत्ते के अधिवेशन मे, ४,९६७ प्रतिनिधि और ५,००० दर्शक उपस्थित हुए थे।

१९१७ की कांग्रेस के इस कलकत्तेवाले अधिवेशन में जो प्रस्ताव पास हुए वे भी कुछ को छोडकर पहले-के-से साचे में ढले हुए ही थे। वृद्ध पितामह दादाभाई नौरोजी और कलकत्ते के ए० रसूल की मृत्यु पर शोक-प्रस्ताव और सम्राट् के प्रति भारत की राजभक्ति के प्रस्ताव पास होने के बाद मि० माण्टेगु के स्वागत का प्रस्ताव पास हुआ। मौलाना मुहम्मदअली और शौकतअली के, जो कि अक्तूबर १९१४ से नजरवन्द थे, रिहा कर देने का भी प्रस्ताव पास हुआ। कांग्रेस ने एक प्रस्ताव-द्वारा, भारतीयो को उचित सैनिक-शिक्षा देने की आवश्यकता पर सदा की भाति जोर देते हुए इस विषय में उनके साथ न्याय किये जाने की माग की और जाति-गत भेद-भाव मिटाकर भारतीयों को सेना में कमीशन देने की जो सुविधा सरकार से मिल गई थी उसपर सन्तोष प्रकट करते हुए ९ भारतीयो को सेना में कमीशन देने पर प्रसन्नता प्रकट की और इस बात की आशा प्रकट की कि अधिक संख्या में भारतीयो को कमीशन देने की शीघ्र ही व्यवस्था की जायगी। इस बात पर जोर दिया गया कि उनकी तनख्वाह आदि में वृद्धि की जाय। कांग्रेस ने एक प्रस्ताव द्वारा (१) १९१० के प्रेस-एक्ट-द्वारा शासको को बहुत विस्तृत और निरकुश सत्ता दिये जाने, (२) आर्म्स-एक्ट, (३) उपनिवेशो में भारतीयो के साथ किये जानेवाले दुर्व्यवहार और उनकी असुविधाओ के प्रति अपने विरोध को दोहराया। कांग्रेस ने कुली-प्रथा को पूर्णरूप से उठा देने के लिए माग पेश की। एक पार्लमेण्टरी कमीशन की नियुक्ति पर जोर दिया गया जो कि लिखने, व्याख्यान देने, सभा करने आदि की स्वतन्त्रता के दमन के लिए विशेष प्रकार के कानूनो तथा इसी प्रकार के कार्यो के दमन के लिए भारत-रक्षा-कानून के प्रयोग के सम्बन्ध में जाच करे। १० दिसम्बर को सरकार ने रौलट-कमीशन की नियुक्ति की घोषणा की थी। कांग्रेस ने इसकी एक प्रस्ताव-द्वारा इसलिए निन्दा की कि इस कमीशन का उद्देश दमन के लिए नये कानूनो की व्यवस्था करना था, लोगो के कष्ट दूर करना नही। कांग्रेस की राय में इससे अधिकारियो को बगाल के क्रान्तिकारी कहे जानेवालो के दमन के लिए और भी अधिक शक्ति मिल जाती थी। इसी प्रस्ताव में कांग्रेस ने १८१८ के रेग्युलेशन ३ और भारत-रक्षा-कानून के विस्तृत तौर पर किये गये प्रयोग पर चिन्ता और भय प्रकट किया और इन कानूनो के आख मीचकर विस्तृत प्रयोग किये जाने के कारण जो असन्तोष फैला हुआ था उसको मद्देनजर रखते हुए सारे राजनैतिक कैदियो को मुक्त कर देने की प्रार्थना की।

एक प्रस्ताव द्वारा काग्रेस ने, अर्जुनलालजी सेठी के प्राण बचाने के लिए, जो कि धार्मिक कारणो से वेलूर-जेल में आमरण अनशन कर रहे थे, सरकार से बीच में पडकर हस्तक्षेप करने की प्रार्थना की। दूसरे प्रस्ताव-द्वारा, प्रत्येक प्रान्त में भारतीयो के प्रबन्ध में, भारतीय-वालन्टर-मण्डल स्थापति करने की सिफारिश की। मुख्य प्रस्ताव स्वराज्य के सम्बन्ध में था, जो इस प्रकार है —

"सम्राट् के भारत-मत्री ने साम्राज्य-सरकार की ओर से यह घोषित किया है कि उसका उद्देश भारत में उत्तरदायी शासन स्थापित करना है—इसपर यह काग्रेस कृतज्ञता-पूर्वक सन्तोष प्रकट करती है।

"यह काग्रेस इस बात की आवश्यकता पर जोर देती है कि भारतवर्ष में स्व-शासन की स्थापना का विधान करलेवाला एक पार्लमेण्टरी कानून बने और उसमें बताये हुए समय तक पूरा स्वराज्य मिल जाय।

"इस काग्रेस की यह दृढ राय है कि शासन-सुधार की काग्रेस-लीग-योजना कानून के द्वारा सुधार की पहली किस्त के रूप में प्रारम्भ की जानी चाहिए।"

एक नया प्रस्ताव जो कलकत्ता-काग्रेस में पास हुआ वह था आन्ध्र-प्रान्त को एक पृथक् काग्रेस प्रान्त बनाने के सम्बन्ध में। इस विषय मे इतना बता देना जरूरी है कि १९१३ से लेकर १९१५ की काग्रेस तक आन्ध्र में इस सम्बन्ध में एक राष्ट्रीय या यो कहें कि उप-राष्ट्रीय आन्दोलन बराबर चलता रहा था। आन्दोलन की बुनियाद यह थी कि आन्ध्रवाले कहते थे कि भाषा के लिहाज से प्रान्तो का पुन निर्माण किया जाय। वास्तव में इसका बीज तो तबसे बोया गया जब से कि १८९४ मे श्री महेशनारायण ने बगाल से बिहार को पृथक् कराने का प्रयत्न किया था। १९०८ मे काग्रेस ने बिहार को एक पृथक् प्रान्त बना दिया। २५ अगस्त १९११ को प्रान्तीय स्वाधीनता की योजना के सम्बन्ध में भारत-सरकार का जो खरीता विलायत गया था, उसमें भी यह सिद्धान्त मान्य किया गया था और उसी का यह फल था कि बिहार बगाल से अलग कर दिया गया। इस सम्बन्ध मे सब लोगो का दृढ विश्वास था कि प्रान्तीय स्वराज्य को सफल बनाने के लिए, शासन और शिक्षा दोनो का माध्यम उस प्रान्त की भाषा हो। यह निश्चितरूप से माना जाता था कि स्थानीय-शासन के सम्बन्ध में ब्रिटिश शासन को जो असफलता मिली है, उसका कारण यह है कि ब्रिटिश भारत में प्रान्तो का विभाजन न तो बुद्धिपूर्वक किया गया है, न जातियो के निवास को ध्यान मे रख कर किया गया है, बल्कि जैसे-जैसे इलाका हाथ आता गया वैसे-वैसे प्रान्त बनाते चले गये। १९१५ मे काग्रेस इस प्रश्न पर विचार करने के लिए

तैयार न थी। लेकिन १९१६ की आन्ध्र-प्रान्तीय परिषद् ने इस प्रश्न पर बहुत जोर दिया, और ८ अप्रैल १९१७ को महासमिति ने जिसके पास निर्णय के लिए १९१६ की लखनऊ-कांग्रेस ने इस विषय को भेज दिया था, मदरास तथा बम्बई की प्रान्तीय कांग्रेस कमिटियो से पूर्ण परामर्श करके, इस सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया और निश्चय किया कि "मदरास प्रान्त के तेलगू भाषा बोलनेवाले जिलो का एक पृथक् प्रान्त बना दिया जाय।" इसके बाद सिन्ध और उसके बाद करनाटक का भी नम्बर आया। इस विषय पर १९१७ की कलकत्ता-कांग्रेस की विषय-समिति में बडी गरमा-गरम बहस हुई। गाधीजी की भी यह राय थी कि शासन-सुधार चालू हो जाने तक इस मामले में ठहरे रहें। लेकिन लोकमान्य तिलक ने इस बात को अनुभव किया कि वास्तविक प्रान्तीय स्वाधीनता के लिए भाषा के अनुसार प्रान्तो का निर्माण करना अत्यन्त आवश्यक है। कलकत्ता-कांग्रेस की सभानेत्री श्रीमती बेसेण्ट ने भी इसका खूब विरोध किया और दक्षिण के तामिल-भाषा-भाषी मित्रो ने भी बहुत जोर से मुखालिफत की। इस विषय पर बहस करते-करते दो घण्टे बीत गये। अन्त में रात के १०½ बजे आन्ध्र का पृथक् प्रान्त बनाना तय हो गया। ६ अक्तूबर १९१७ को महासमिति ने सिन्ध को भी पृथक् प्रान्त मान लिया। उस समय जो सिद्धान्त स्वीकार किया गया था, नागपुर-कांग्रेस के बाद, प्रान्तो के पुनर्निर्माण में, उसीके अनुसार काम किया गया। इसके फल-स्वरूप हमारे पास अब २१ प्रान्त है जब कि ब्रिटिश-सरकार के केवल ९ प्रान्त ही है।

राष्ट्रीय झण्डा

कलकत्ते में श्रीमती बेसेण्ट श्री सी० पी० रामस्वामी ऐयर को सेक्रेटरी बनाने की बडी इच्छुक थी। इसलिए कांग्रेस-विधान में संशोधन करके वह तीन मन्त्रियो की नियुक्ति पर जोर देती थी। यह बात स्वीकार कर ली गई और श्री सुब्बराव पन्तुलु ने, जो कि मन्त्री चुने जा चुके थे, तुरन्त ही अपना त्यागपत्र दे दिया। श्रीमती बेसेण्ट के सभापतित्व में, कलकत्ता-कांग्रेस में, होमरूल-लीग और कांग्रेस एक-दूसरे के बहुत ही निकट आ गई। कलकत्ता की कांग्रेस इसलिए स्मरणीय है कि उसमें पहली बार राष्ट्रीय झण्डे का सवाल बाजाब्ता उठाया गया था। वास्तव में होमरूल-लीग तो पहले ही तिरगे झण्डे को अपनाकर उसे लोकप्रिय बना चुकी थी। इस कार्य के लिए एक कमिटी नियुक्त की गई जिसके सुपुर्द यह काम किया गया कि वह झण्डे का नमूना निश्चित करे। अवनीन्द्रनाथ ठाकुर भी उस कमिटी में थे। लेकिन इस कमिटी की बैठक कभी

नही हुई। अन्त में होमरूल का झण्डा ही काग्रेस का झण्डा बन गया। बाद में उसमें चरखा और जोड दिया गया था। वह १९३१ तक रहा, फिर झण्डा-कमिटी ने उसमें लाल रग की जगह केसरिया रग कर दिया।

: ४ :

माण्टेगु-चेम्सफोर्ड-योजना—१९१८

महासमिति की बैठकें

१९१७ की कांग्रेस के अधिवेशन के बाद तुरन्त ही ३० दिसम्बर की महासमिति की पहली बैठक में, कांग्रेस के लिए स्थाई कोष जमा करने के प्रश्न पर विचार किया गया, और प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटियो से अनुरोध किया गया कि वे भारत और इंग्लैण्ड में शिक्षा और प्रचार-कार्य आरम्भ करने के लिए एक कार्य-समिति बना दें। इसके बाद के महीने अनवरत रूप से कार्य करने में ही व्यतीत हुए। विशेषकर मदरास में तो लाखो नोटिस छपवाकर वितरण कराये गये, जिनमें कांग्रेस-लीग-योजना पर प्रकाश डाला गया था। और जिस समय मि० माण्टेगु मदरास पहुँचे उस समय उन्हें इस योजना के समर्थन में, केवल उसी प्रान्त से, ९ लाख व्यक्तियो के हस्ताक्षर कराके दिये गये।

महासमिति की दूसरी बैठक दिल्ली में २३ फरवरी १९१८ में हुई। उसमें सर विलियम वेडरबर्न की मृत्यु पर शोक-प्रस्ताव पास करने के पश्चात् वाइसराय के पास एक शिष्ट-मण्डल भेजने का प्रस्ताव पास हुआ, जो उनसे जाकर यह प्रार्थना करे कि लोकमान्य तिलक और विपिनचन्द्र पाल के दिल्ली और पंजाब में प्रवेश करने पर जो प्रतिबन्ध लगा दिया है उसे मसूख कर दें। शिष्ट-मण्डल वाइसराय से मिला, लेकिन निरर्थक। लॉर्ड चेम्सफोर्ड और मि० माण्टेगु शासन-सुधारो-सम्बन्धी अपनी रिपोर्ट निकालने ही वाले थे। इसलिए महासमिति ने यह निश्चय किया था कि रिपोर्ट के प्रकाशित होते ही लखनऊ या इलाहाबाद में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन बुलाया जाय। उसने इंग्लैण्ड को एक शिष्ट-मण्डल भेजना भी तय किया था।

३ मई १९१८ को महासमिति की तीसरी बैठक हुई। उसमें सीलोन (लंका) और जिब्राल्टर से दोनो होमरूल-लीग के शिष्ट-मण्डलो को, जो इंग्लैण्ड को जा रहे थे, वापस लौटा देने पर सरकार का खूब विरोध किया गया। कमिटी ने इस बात पर जोर दिया कि यह अधिकारपूर्ण घोषणा कर दी जाय कि लड़ाई खतम होने पर भारत

को उत्तरदायी शासन दिया जायगा। इससे कम के लिए हिन्दुस्तानी नौजवान कभी युद्ध की सफलता के लिए काफी तादाद में आगे नही बढेगे।

१९१८ के प्रथम पाच मास मे श्रीमती बेसेण्ट ने अथक परिश्रम किया। श्रीमती मारगरेट कजिन्स और श्रीमती डोरोथी जिनराजदास ने श्रीमती बेसेण्ट को पत्र लिखकर, काग्रेस-लीग-योजना में, स्त्रियो को मताधिकार देने के लिए अनुरोध किया था इग्लैण्ड से मि० जोन स्कर ने उन्हे लिखा था कि काग्रेस, जून १९१८ में होनेवाली मजदूर-परिषद् को निमत्रण दे कि वह अपने भाईचारे के नाते १९१८ की कांग्रेस में अपने प्रतिनिधि भेजे। महासमिति ने ऐसा ही किया था। यह विचार लोगो को तथा सस्थाओ को पसन्द आया और फैलने लगा। और यह प्रजासत्तात्मक सस्थाओ के लिए उपयुक्त भी था। "दोनो होमरूल-लीगो ने, दूसरे मास में ही, मि० बैपटिस्टा को, भाईचारे के नाते, अपना प्रतिनिधि बनाकर मजदूर-परिषद् मे भेजा" श्रीमती बेसेण्ट ने अपने सभानेत्री-पद से दिये गये भाषण में कहा, "और मेजर ग्राहम पोल उनकी तरफ से हमारे यहा आ रहे है।" वह ब्रिटेन और भारत में सम्बन्ध बनाये रखने की दृढ पक्षपाती थी। इसमें कोई सन्देह नही कि उनकी कल्पना उन दिनो में होमरूल से, जैसा कि उसका अर्थ उन दिनो लिया जाता था, आगे नही बढ सकी, यद्यपि १९२६ के उपनिवेशो के दरजे से उस समय के उपनिवेशो का दरजा कम था और निश्चित-रूप से उसकी तुलना आज के उपनिवेशो से तो कदापि नही की जा सकती। कुछ भी हो, श्रीमती बेसेण्ट शीघ्र ही इस बात को महसूस करने लगी कि उनकी विचार-धारा का मेल न तो सरकार के साथ ही खाता है और न जनता के साथ ही। सरकार उनकी उग्रता को पसन्द नही करती थी और जनता उनके पिछडेपन को। बम्बई की विशेष काग्रेस के समय (सितम्बर १९१८) उनके बहुतेरे अनुयायी थे और उनका बहुत बडा प्रभाव था, लेकिन दिल्ली-काग्रेस में (दिसम्बर १९१८) वह बहुत पिछड गई थी।

दिल्ली में युद्धपरिषद्

भारत-रक्षा-कानून का दौर देश में सर्वत्र बडे जोर के साथ चल रहा था। १९१७ मे ही लोकमान्य तिलक और विपिनचन्द्र पाल के खिलाफ दिल्ली और पजाब से देश-निकाले की आज्ञा निकल चुकी थी। लेकिन वह लोकप्रिय आन्दोलन दमन के इन चक्रो से भी नही दबाया जा सका। जब बम्बई के गवर्नर ने महायुद्ध के सम्बन्ध में नेताओ की एक सभा की तो लोकमान्य तिलक ने स्वराज्य के प्रश्न को छेडा, लेकिन उन्हें दो मिनट से अधिक नही बोलने दिया गया। जब वाइसराय ने दिल्ली में एक सभा

की तो गाधीजी उसमें उपस्थित थे, यद्यपि पहले उन्होने उसमें सम्मिलित होने से इन्कार कर दिया था—क्योकि एक तो लोकमान्य और श्रीमती बेसेण्ट को उसमें आमन्त्रित नही किया गया था, और दूसरे ब्रिटेन गुप्त सधि करके कुस्तुन्तुनिया रूस को देने जा रहा था। वह इस विषय में लॉर्ड चेम्सफोर्ड से मिले भी थे। उन्होने गाधीजी को विश्वास दिलाया कि यह समाचार स्वार्थी लोगो का (रूस का) फैलाया हुआ है। गाधीजी से उन्होने कहा कि फिर ऐसे समय में जबकि युद्ध चल रहा हो, ऐसा प्रश्न न तो उठ ही सकता है और न उसपर विचार ही किया जा सकता है। इस बातचीत का फल यह हुआ कि गाधीजी युद्ध-सभा में सम्मिलित होने के लिए राजी हो गए। उन्होने लोकमान्य को दिल्ली आने के लिए तार दिया, यद्यपि उनके लिए कोई निमत्रण नही था। लेकिन दिल्ली तो वह स्थान था जहा से लोकमान्य के लिए देश-निकाले की आज्ञा हो चुकी थी। उन्होने कहा कि जबतक यह आज्ञा मसूख न हो जाय तबतक मै दिल्ली नहीं आ सकता। लेकिन ऐसा करने से तो सरकार की शान जो बिगड जाती।

अगस्त १९१८ में लोकमान्य को मजिस्ट्रेट की पहले से आज्ञा प्राप्त किये बिना व्याख्यान देने की मनाही का नोटिस मिला। एक सप्ताह पूर्व लोकमान्य युद्ध के लिए रगरूट भर्ती करने में लगे हुए थे और अपनी सदिच्छा के प्रमाण स्वरूप उन्होने ५० हजार का एक चेक गाधीजी के पास भेजकर आश्वासन दिया था कि यदि गाधीजी सरकार से ऐसा वादा करालें कि भारतीयो को सेना में कमीशन मिलने लगेगा तो वह महाराष्ट्र से ५ हजार सिपाही देंगे। गाधीजी का मत यह था कि सहायता सौदे के रूप में नही दी जानी चाहिए। अत उन्होने लोकमान्य का चेक लौटा दिया था। १९१७–१८ में काग्रेस लोकमान्य तिलक से सशक रहती थी। नौकरशाही तो निश्चित-रूप से उनके पीछे पडी ही हुई थी। अकेली श्रीमती बेसेण्ट ही उनका साथ दे रही थी।

माण्टेगु चेम्सफोर्ड रिपोर्ट

जून १९१८ में माण्टेगु-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट प्रकाशित हुई। साहित्यिक दृष्टि से वह ऊँचे दरजे की चीज थी। यह ब्रिटिश राजनीतिज्ञो द्वारा तैयार किये गये राजनैतिक लेखो के समान, भारत को स्व-शासन देने के सम्बन्ध में एक निष्पक्ष बयान था। उसमें सुधारों के मार्ग की रुकावटो का बडी स्पष्टता के साथ वर्णन किया गया था और फिर भी जोर दिया गया था कि सुधार अवश्य मिलने चाहिएँ। रिपोर्ट के पक्ष में एक और बात भी थी। देश की दो महान् सस्थाओ ने मिलकर जिस योजना को तैयार किया

था उसमे अपरिवर्तनीय कार्यकारिणी की तजवीज थी। परन्तु इसमें उत्तरदायी शासन की एक बडी ही आकर्षक-योजना थी, जिसमें मन्त्रि-मडल बदला जा सकता था। मन्त्रि-मडल की जिम्मेदारी सामूहिक थी, और वह कौसिल के मतो पर निर्भर करती थी। यह ठीक ब्रिटिश नमूने के स्वराज्य से मिलती हुई थी। भारतवर्ष के लोगो को और चाहिए ही क्या था? इसके अनुसार, हिन्दुस्तानियो की राय में, कौंसिलें भारतीय राजनीतिज्ञो के लिए तालीमगाह न रहकर सार्वजनिक न्यायालय हो जाती थी, जहाँ कि मन्त्रीगण को मतदाताओ के सामने अपनी स्थिति साफ करनी पडती और अपने साथी-सदस्यो की राय पर उनका भाग्य अवलम्बित रहता। इसलिए कितने ही भारतीय इसके भुलावे में आ गये और इसकी तारीफो के पुल बाधने लगे। पलडा काग्रेस-योजना की ओर से माण्ट-फोर्ड-योजना की ओर झुक गया था। मि० माण्टेगु की डायरी मे हमे यह लिखा हुआ मिलता है कि श्रीमती बेसेण्ट ने इस बात का वादा किया था कि सर शकरन् नायर जो कुछ स्वीकार कर लेंगे वह उन्हें भी मान्य होगा। और सर शकरन् नायर ने इसे स्वीकार कर लिया था। श्री० सी० पी० रामस्वामी ऐयर के सम्बन्ध में मि० माण्टेगु कहते हैं—"मैने स्पष्ट-रूप से उनसे पूछा कि वह क्या चाहते हैं? वह शास्त्रीजी की चार कसौटिया मानते हैं। मुझे भय है कि वह कभी समय-समय पर होनेवाली जाच-पडताल को पसन्द न करेगे। जो कुछ वह चाहते हैं वह है एक मीयाद का मुकर्रर हो जाना। लेकिन इस मीयाद के मानी उससे कही अधिक हैं जो समझे जाते है।" इसके बाद श्री एस० श्रीनिवास आयगर का जिक्र है, "उन्होने मुझे विश्वास दिलाया कि वास्तव मे लोग पूरी काग्रेस-लीग-योजना की स्वीकृति की आशा नही रखते है। फिर भी यदि लोगो को यह विश्वास हो जाय कि इसमें और विकास की गुजायश है तो वे विशेष परवा न करेगे।" उनका कहना है कि करटिस की योजना सबसे अच्छी है। श्रीनिवास आयगर के साथ न्याय करने के लिए हमें यहा यह बता देना जरूरी है कि उस समय वह कागेसी नही थे। इन बयानो के बाद हमें मि० माण्टेगु-द्वारा यह जानने की कोई विशेष आवश्यकता नही है कि सीतलवाड, चन्दावरकर और रहीमतुल्ला ने 'सरक्षणो की योजना' का समर्थन किया था।

एक ओर यह था तो दूसरी ओर राष्ट्रीय विचार के लोगो ने मि० माण्टेगु के दिमाग में अपनी माग के विषय मे किसी भी सदेह की गुजाइश नही रहने दी। "मोतीलाल नेहरू सन्तुष्ट हो जायँगे यदि उन्हे बीस वर्ष मे उत्तरदायी शासन-प्रणाली दे दी जाय।" (पृष्ठ ६२) "चितरजन दास को पहले ही से निश्चय था कि द्वैध शासन-प्रणाली अवश्य विफल हो जायगी। वह ५ वर्ष के भीतर वास्तविक उत्तरदायी

शासन चाहते थे और उसका वादा उसी समय चाहते थे।" (पृष्ठ ९१) मि० माण्टेगु ने सुरेन्द्रनाथ बनर्जी को पटा लिया था।

रिपोर्ट के सम्बन्ध में लोगो का यह आमतौर पर विश्वास था कि उसका अधिकाश मजमून सर (बाद को लॉर्ड) जैम्स मेस्टन और मि० (बाद को सर) मैरिस ने तैयार किया था और लायनल करटिस ने इस कार्य में उनकी मदद की थी। मि० करटिस राउन्ड टेबलवालो में से थे, जिनकी कि प्रवृत्ति अध्ययन की ओर विशेष थी। वह "साम्राज्य की सेवा के लिए" अनेक देशो का भ्रमण करते रहते थे। भारतीय शासन-सुधारो के सम्बन्ध में इन्होने एक पत्र लिखा था। वह गलती से कही-का-कही जा पहुँचा और हिन्दुस्तानी पत्रकारो के हाथ मे पड गया। वह 'बॉम्बे क्रानिकल' तथा 'लीडर' में छपा भी था। पत्रकारो के इस साहसिक कार्य ने नौकरशाही की चालबाजियो का भण्डाफोड कर दिया, जिसका फल यह हुआ कि सारा अधिकारी जगत् राष्ट्रीय विचारवालो के विरुद्ध क्रोध से उबल पडा।

कांग्रेस का विशेष अधिवेशन

माण्ट-फोर्ड रिपोर्ट के प्रकाशित होते ही, इस बात पर भिन्न-भिन्न नेताओ मे तेजी से चर्चा होने लगी कि इसके विषय मे हमें क्या करना चाहिए। ऐसी दशा में यह तो जाहिर ही है कि महासमिति ने कांग्रेस के विशेष अधिवेशन को बुलाने का जो निश्चय किया था उसके अनुसार उसका बुलाया जाना लाजिमी थी। लेकिन यह बात अनुभव की जाने लगी कि लखनऊ और इलाहाबाद इसके लिए उपयुक्त स्थान न रहेंगे। अत बम्बई में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन करना तय हुआ और थोडे ही समय मे सारी तैयारी की गई। कांग्रेसवालो मे बडा तीव्र मतभेद हो गया था। वैसे कोई भी दल योजना से सन्तुष्ट नही था। लेकिन हा, उनके आलोचना करने के ढग में अन्तर जरूर था। ऐसा जान पडता था कि एक दल तो, जो कि उग्र था, उसे बिलकुल ही अस्वीकार कर देने पर जोर देगा और दूसरा उसमें सुधार चाहेगा। कांग्रेस का अधिवेशन २९ अगस्त १९१८ को हुआ। श्री हसन इमाम सभापति थे। कांग्रेस में उपस्थिति खूब थी। ३,८४५ प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। श्री विट्ठलभाई पटेल स्वागत-समिति के सभापति थे। दीनशा वाचा, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, भूपेन्द्रनाथ बसु और अम्बिकाचरण मजुमदार जैसे कांग्रेस के पुराने महारथी आये ही नहीं थे। चार दिन के वाद-विवाद के पश्चात् कांग्रेस ने अपनी पुरानी योजना के आधारभूत सिद्धान्तो का ही समर्थन किया और इस बात की घोषणा कर दी कि भारतीय आकाक्षा साम्राज्य के अन्तर्गत

स्व-शासन से कम में सन्तुष्ट नही हो सकती। माण्टेगु-योजना की उसने विस्तारपूर्वक आलोचना की। उसने यह घोषणा की कि भारत अवश्य ही उत्तरदायी शासन के योग्य है। माण्टेगु-रिपोर्ट में इसके खिलाफ जो बात कही गई थी उसका प्रतिवाद किया। काग्रेस ने प्रान्तीय तथा केन्द्रीय दोनो शासनो में एक-साथ ही सुधार जारी करने पर जोर दिया और इस बात से सहमति प्रकट की कि प्रान्त ही वह स्थान है जहा उत्तरदायी शासन् के क्रमिक विकास के लिए पहले कार्य-प्रारम्भ होना चाहिए—और जबतक इस बात का अनुभव न हो जाय कि इन प्रान्तो की शासन-प्रणाली में जो परिवर्तन करने का विचार है उनका क्या असर होता है तबतक आवश्यक बातो मे भारत-सरकार का अधिकार अक्षुण्ण रहे। साथ ही काग्रेस ने यह माना कि जिन बातो से शान्ति और देश-रक्षा का प्रत्यक्ष-रूप से सबध होगा उनमें भारत-सरकार को इन अपवादो के साथ पूरा अधिकार होगा (क) न्यायालय के निर्णय और खुले तौर पर कानूनन मुकदमा चलाये बिना (सम्राट् की) किसी भी भारतीय प्रजा की स्वतत्रता, जान या सम्पत्ति नही ली जायगी और न उसकी लिखने या बोलने या सभाओं में सम्मिलित होने की स्वतत्रता छीनी जायगी, (ख) ग्रेट-ब्रिटेन के समान लाइसेन्स खरीदकर हथियार रखने का अधिकार प्रत्येक भारतीय प्रजा को होगा, (ग) छापेखाने स्वतत्र रहेंगे और किसी छापेखाने या समाचार-पत्र की रजिस्ट्री होते समय कोई लाइसेन्स या जमानत नहीं मागी जायगी, (घ) समस्त भारतीय कानून के सामने बराबर होगे। एक दूसरे प्रस्ताव द्वारा इस बात पर दृढ मत प्रकट किया कि बडी कौंसिल को आर्थिक मामलो में उसी हद तक की स्वतत्रता रहे जिस हद तक की स्वतत्र साम्राज्य के स्वराज्य-प्राप्त प्रान्तो को है। उस प्रस्ताव में, जिसमें कि सुधार-योजना पर सीधे तौर से मत प्रकट किया गया था, भारत-मत्री और वाइसराय के प्रयत्नो की, जोकि उन्होंने भारत मे उत्तरदायी शासन-प्रणाली प्रारम्भ करने के लिए किये, सराहना की। प्रस्ताव में यह भी कहा गया था कि यद्यपि उसमे कुछ प्रस्ताव ऐसे है जिनके द्वारा वर्तमान अवस्था की अपेक्षा कुछ दिशाओ में उन्नति होती है, किन्तु आमतौर पर ये प्रस्ताव निराशा और असतोष-जनक है। आगे चलकर प्रस्ताव में वे बाते भी सुझाई गईं जिनका होना उत्तरदायी शासन की ओर बढने के लिए पूर्णतया आवश्यक था। जैसे भारत-सरकार से सम्बन्धित बातो के लिए काग्रेस ने यह इच्छा प्रकट की कि प्रान्तो के लिए जिस जिस तरह स्वरक्षित और हस्तान्तरित विषय रक्खे जायें उसी तरह केन्द्रीय सरकार के लिए भी रक्खे जायें। रक्षित विषय ये होगे—वैदेशिक कार्य (उपनिवेशो का सम्बन्ध छोड कर), सेना, जल-सेना, भारतीय राजाओ के साथ सम्बन्ध; और शेष सब

विषय हस्तान्तरिक रहेंगे। भारत-सरकार और प्रान्तीय सरकारो का उत्तरदायित्व निर्वाचको के प्रति बढाया जाय और पार्लमेण्ट और भारत-मन्त्री के अधिकार कम किये जायें। इडिया-कौंसिल तोड दी जाय। भारत-मन्त्री को सहायता देने के लिए दो स्थायी सहायक-मन्त्री रहें, जिनमें से एक भारतीय हो। जातिगत प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में काग्रेस ने निश्चय किया कि छोटी और बडी कौंसिलो में मुसलमानो का प्रतिनिधित्व वही रहना चाहिए जो काग्रेस-लीग-योजना में रक्खा गया है। स्त्रिया मताधिकार के अयोग्य न ठहराई जायें। आर्थिक मामलो में भारत-सरकार को पूरी स्वतन्त्रता रहनी चाहिए। सेना में भारतीयो को कमीशन दिये जाने के सम्बन्ध में जो माग पेश की गई थी उसे सरकार ने बिलकुल अपूर्ण-रूप मे स्वीकार किया था। इसपर काग्रेस ने गहरी निराशा प्रकट की और यह राय दी कि भारतीयो को सेना में कम-से-कम २५ प्रतिशत कमीशण्ड जगह देने की कार्रवाई होनी चाहिए और यह औसत धीरे-धीरे बढकर १५ साल में ५० फी सदी तक हो जाय। काग्रेस ने इग्लैण्ड में शिष्ट-मण्डल भेजना तय किया और सदस्यो के चुनाव के लिए एक कमिटी नियुक्त कर दी।

इस तरह यह दीख पडेगा कि जिस विशेष अधिवेशन के लिए यह भय हो रहा था कि इसमें सुधार के विषय में फूट पड जायगी, वह सफलतापूर्वक समाप्त हो गया और गौर के साथ चर्चा होने के बाद ऐसे निर्णयो पर पहुँचा जिससे विभिन्न मतो में मेल हो गया और सारे देश के अधिकाश काग्रेसियो ने पूर्ण-रूप से उनका समर्थन किया। उन्ही दिनो मुस्लिम-लीग की भी बैठक की गई थी, जिसके सभापति थे महमूदाबाद के राजा साहब। उसमें भी काग्रेस से मिलता-जुलता ही प्रस्ताव पास हुआ। लेकिन भारत के दु खो का अन्त नही हुआ। भारत-रक्षा-कानून, जो देश के किसी भी व्यक्ति को कुछ भी करने से रोक सकता था, या कुछ भी करने की आज्ञा दे सकता था, जोरो के साथ अपना काम कर रहा था। मौलाना अबुलकलाम आजाद तथा अली-भाइयो की नजरबन्दी का तो हम पहले ही जिक्र कर चुके हैं। अमृतसर-काग्रेस के पहले अली-बन्धु काग्रेसी नही थे। १९१९ में रिहा होते ही वह अमृतसर-काग्रेस में पहुँच थे। मुहम्मद अली "कामरेड" नाम के तेज और चरपरे साप्ताहिक का सम्पादन करते थे। उनके बडे भाई शौकतअली "हमदर्द" के सम्पादक थे। यह उर्दू का दैनिक पत्र था। महायुद्ध के छिडते ही ब्रिटिश-सरकार की तरफ से लोगो को दिखाने के लिए बडी शान से एक घोषणा की गई, जिसमें यह कहा गया था कि युद्ध निर्बल राष्ट्रो की रक्षा के लिए लडा जा रहा है। मौलाना मुहम्मदअली ने अपने पत्र में एक जोरदार लेख लिखा था, जिसका नाम था "मिश्र को खाली कर दो"। मौलाना और अली-बन्धु उसी समय

नजरबन्द कर दिये गये थे। वे इसी अवस्था में २५ दिसम्बर १६१६ तक रहे थे, जब कि शाही घोषणा के अनुसार, जिसमें कि राजनैतिक कैदी छोड दिये गये थे, वे भी मुक्त कर दिये गये।

महायुद्ध के लिए धन एकत्र करने और सिपाही भर्ती करने का तरीका निहायत एतराज के काबिल था। इन तरीको की बदौलत, जिन्हें लॉर्ड विलिंगडन की सरकार ने "दबाव और समझाने के तरीके" कहा था परन्तु जो दरअसल ज्यादतिया थी, पजाब और अन्य जगह आगे चलकर भयकर स्थितिया पैदा हो गईं। देहात में तो "इडेण्ट" की प्रथा प्रचलित थी, जिसके अनुसार स्थानीय अधिकारियो को यह बताना आवश्यक था कि उनके हलके से युद्ध के लिए कितना धन मिल सकता था और फिर उसीके अनुसार मातहत अधिकारी, अपनी बात को कायम रखने के लिये, "दबाव तथा समझाने" की नीति को काम मे लाकर युद्ध के लिए जितना हो सकता था रुपया वसूल करते थे। इन उपायो से अन्त में ऐसी स्थिति पैदा हुई कि एक बार लोगो ने क्रोध में आकर एक तहसीलदार का बगला घेर लिया और उसके बाल-बच्चो को छोडकर उसे मय बगले के जलाकर भस्म कर दिया।

रौलट कमिटी की रिपोर्ट

यहा यह बात स्मरण रखना चाहिए कि इससे पहले वर्ष सरकार ने एक कमिटी नियुक्त की थी। सर सिडने रौलट उसके सभापति थे और कुमारस्वामी शास्त्री और प्रभासचन्द्र मित्र सदस्य थे। इसका काम इस बात की जाच करके रिपोर्ट करना था कि भारत में किस प्रकार और किस हद तक क्रान्तिकारी-आन्दोलन से सम्बन्ध रखनेवाले षड्यन्त्र फैले हुए हैं। और उनका मुकाबला करने में जो दिक्कतें पेश आती हैं उनकी भी छान-बीन करके, यदि उसके लिए किसी कानून को बनाने की जरूरत हो तो उसके लिए भी, वह सरकार को उचित सलाह दे। कमिटी ने जाच करके अपनी रिपोर्ट सरकार के पास भेज दी। रिपोर्ट में जिस कानून की सलाह दी गई थी, वह बडी कौंसिल में पेश भी कर दिया गया। इससे सारे देश में एक तहलका मच गया। सब जगह विरोध-प्रदर्शन किया गया। काग्रेस के विशेष अधिवेशन के समय तक केवल रिपोर्ट ही प्रकाशित हो पाई थी। काग्रेस ने रौलट-कमिटी की सिफारिशो की निन्दा की और कहा कि यदि उसे कार्य-रूप में लाया गया तो भारतीयो के मौलिक अधिकारो में हस्तक्षेप होगा और वह उचित लोकमत के बनने में बाधक बनेगा।

दिल्ली-कांग्रेस

काग्रेस का साधारण वार्षिक अधिवेशन (आगामी दिसम्बर मास में) दिल्ली मे होनेवाला था। दिल्ली अधिवेशन का सभापति प्रान्तीय-काग्रेस-कमिटियो और स्वागत-समिति ने लोकमान्य तिलक को चुना था। लेकिन उन्हे वेलेन्टाइन चिरोल पर चलाये गये मुकदमे के सम्बन्ध में इग्लैण्ड जाना था। अत सभापति बनने मे उन्होने अपनी असमर्थता प्रकट की। इसपर प० मदनमोहन मालवीय को सभापति बनाया गया। हकीम अजमलखा स्वागताध्यक्ष थे। ११ नवम्बर १९१८ की अस्थायीसन्धि के बाद महायुद्ध का अन्त हो गया था। मित्र-राष्ट्रो को पूर्ण सफलता मिली थी और राष्ट्रपति विल्सन, लायड जार्ज तथा मित्र-राष्ट्रो के अन्य राजनीतिज्ञो ने आत्म-निर्णय के सिद्धान्तो की घोषणा कर दी थी। इसलिए यह स्वाभाविक ही था कि इन घोषणाओ को तथा आलोचनाओ को, जो माण्ट-फोर्ड-रिपोर्ट पर विशेष अधिवेशन के बाद हुई थी, सामने रखकर काग्रेस-शासन-सुधार-योजना पर पुन विचार करे। दिल्ली-काग्रेस में भी उपस्थिति बहुत थी। ४,८६५ प्रतिनिधि आये थे।

काग्रेस ने एक प्रस्ताव-द्वारा सम्राट् के प्रति राजभक्ति प्रकट की और युद्ध के, जो कि ससार के सब लोगो की स्वाधीनता के लिए लडा गया था, सफलतापूर्वक समाप्त हो जाने पर बधाइया दी। दूसरे प्रस्ताव-द्वारा काग्रेस ने स्वतन्त्रता, न्याय और आत्म-निर्णय के लिए मित्र-राष्ट्रों के सैनिको की वीरता और खासकर भारतीय सेना की सफलताओ की प्रशसा की। तीसरे प्रस्ताव द्वारा इस बात की प्रार्थना की गई कि शान्ति-सम्मेलन और ब्रिटिश-पार्लमेण्ट भारत को उन उन्नतिशील देशो में समझें जिनपर स्व-शासन का सिद्धान्त लागू होगा। इसके लिए जो तत्काल कार्रवाई करनी चाहिए वह यह बताई गई कि उन सारे कानूनो, आर्डिनेंसो और रेग्युलेशनो को, जिनके कारण स्वतन्त्रतापूर्वक राजनैतिक समस्याओ पर खुलकर वादविवाद नही किया जा सकता, और जिनके द्वारा अधिकारियो को गिरफ्तार करने, नजरबन्द करने, रोकने, देश-निकाला देने, सजा करने का, साधारण अदालतो में बिना मुकदमा चलाये ही अधिकार दे दिया है, तुरन्त ही उठा लिया जाय। काग्रेस ने एक प्रस्ताव द्वारा यह भी माग पेश की थी कि साम्राज्य-नीति के पुन निर्माण में पार्लमेण्ट शीघ्र ही भारत को ऐसे पूर्ण उत्तरदायी शासन देने का एक कानून पास करे जैसा कि उपनिवेशो में है। काग्रेस ने यह भी इच्छा प्रकट की थी कि शान्ति-सम्मेलन में भारत का प्रतिनिधित्व भी चुने हुए व्यक्तियो-द्वारा हो। इसके लिए लोकमान्य तिलक, गाधीजी और श्री हसन इमाम को प्रतिनिधि भी चुना गया।

शासन-सुधारो के लिए काग्रेस ने उसी विशेष अधिवेशनवाले काग्रेस-लीग-योजना के प्रस्ताव को ही दोहराया। साथ ही यह बात भी दोहराई गई कि भारतवर्ष स्वराज्य के योग्य है और शान्ति एव देशरक्षा-सम्बन्धी सब अधिकार, कुछ अपवादो को छोडकर, भारत-सरकार को हैं। एक दूसरे प्रस्ताव-द्वारा, इनके अलावा जो मुद्दे रह गये थे उन्हें भी दोहराया गया—सिर्फ कुछ अपवादो को छोडकर, जो कि ये है—(१) प्रान्तो में तुरन्त ही पूर्ण उत्तरदायी शासन जारी कर देना चाहिए और (२) प्रस्तावित वैध सुधारो के लाभो से किसी भी भाग को वचित न रखना चाहिए। रौलट-कमिटी की रिपोर्ट पर भी विचार हुआ। इसके सम्बन्ध में भी बम्बई के प्रस्ताव का समर्थन करते हुए यह बात कही गई कि इससे शासन-सुधारो को सफलतापूर्वक व्यावहारिक-रूप देने में बाधा पडेगी। काग्रेस ने इस बात पर भी जोर दिया कि तुरन्त ही भारत-रक्षा-कानून, प्रेस-एक्ट, राजद्रोह सभाबन्दी-कानून, क्रिमिनल लॉ अमेण्डमेण्ट एक्ट, रेग्युलेशन्स तथा इसी प्रकार के अन्य दमनकारी कानूनों को उठा लिया जाय और सारे नजरबन्दो तथा राजनैतिक कैदियो को मुक्त कर दिया जाय।

औद्योगिक कमीशन की रिपोर्ट पर भी, जिसके प० मदनमोहन मालवीय भी एक सदस्य थे, विचार हुआ। उसकी सिफारिशो का और इस नीति का स्वागत करते हुए कि भविष्य में सरकार को इस देश की औद्योगिक उन्नति के लिए अधिक काम करना चाहिए, काग्रेस ने आशा की कि इस सिद्धान्त को कार्यान्वित करने में यह उद्देश सामने रक्खा जायगा कि भारतीय पूजी और व्यापार को प्रोत्साहन दिया जाय और विदेशों की लूट से भारत को बचाया जाय। काग्रेस ने इस बात पर खेद प्रकट किया कि टैरिफ के प्रश्न की जाच को कमीशन की सीमा से बाहर कर दिया गया है। काग्रेस ने कमीशन की इस सिफारिश का समर्थन किया कि भारत-सरकार की कार्य-कारिणी में उद्योग-धन्धे का पृथक् प्रतिनिधित्व रक्खा जाय और उद्योग-धन्धो के प्रान्तीय विभाग भी हो। काग्रेस ने प्रान्तीय तथा भारतीय ऐसे सलाहकार-मण्डल बनाये जाने की आवश्यकता बताई जिनमें भारतीय औद्योगिक तथा व्यापारिक सस्थाओ और व्यापारी-मण्डलो द्वारा चुने गये प्रतिनिधि हो। उसकी राय में, जिन इम्पीरियल इडस्ट्रीयल और केमिकल नौकरियो का प्रस्ताव किया जा रहा था उनका सगठन निश्चित वेतन पर किया जाय और विश्वविद्यालय व्यापारिक कालेजो की स्थापना करें और सरकार उनको मदद दे। रिपोर्ट की सिफारिशो में उद्योग-धन्धो को आर्थिक सहायता पहुँचानेवाली सस्थाओ का सगठन करने की सिफारिश नही की गई थी, इसपर काग्रेस ने खेद प्रकट किया और औद्योगिक बैंक जारी करने पर जोर दिया। एक और प्रस्ताव-

द्वारा काग्रेस ने सरकार से अली-बन्धुओ को मुक्त कर देने की प्रार्थना की। युद्ध के बन्द हो जाने और अभूतपूर्व आर्थिक सकट के कारण काग्रेस ने सरकार से अनुरोध किया कि युद्ध के कार्यो के लिए ४ करोड ५ लाख रुपया देने के भार से भारत को मुक्त कर दिया जाय। आयुर्वेदिक और यूनानी दवाइयो के सम्बन्ध में भी एक बडा ही मनोरजक प्रस्ताव काग्रेस ने पास किया। उसमें सरकार से सिफारिश की गई कि विदेशी चिकित्सा प्रणाली के लिए जो सुविधाएँ प्राप्त है उन्ही की व्यवस्था आयुर्वेदिक और यूनानी प्रणालियो के लिए भी कर दी जाय।

इस वर्णन से यह मालूम हो जायगा कि एक ओर जहा इस काग्रेस ने बम्बई-काग्रेस के प्रस्तावो को प्राय दोहराया, वहा कुछ आगे भी कदम बढाया। लेकिन यहाँ की काग्रेस में वह मेल-मिलाप नही रहा जो बम्बई में (सितम्बर १६१८) दिखाई दिया। मदरास प्रान्त और अन्य नरम-दलवाले तो बम्बई प्रस्ताव के पक्ष में थे, लेकिन बहुमत बम्बई-प्रस्ताव को अस्वीकार कर देने के अनुकूल था। और जब इगलैण्ड को एक शिष्ट-मण्डल भेजने का प्रश्न उपस्थित हुआ तो यह निश्चय हुआ कि शिष्ट-मण्डल के सदस्य दिल्ली की माग के लिए ही उद्योग करें। इससे वे लोग शिष्ट-मण्डल में से स्वत ही निकल गये जो बम्बई-प्रस्ताव के पक्ष में थे। शास्त्रीजी ने "निराशा-जनक और असन्तोषजनक" शब्दो को निकाल देने का सशोधन उपस्थित किया और कहा कि १५ वर्ष की मीयाद को प्रस्ताव में से निकाल दिया जाय। लेकिन बहुमत से मूल प्रस्ताव ही पास हुआ। अन्त में युवराज का स्वागत-सबधी प्रस्ताव जहा का तहा रह गया।

: ५ :

अहिंसा मूर्त्त-रूप में—१९१९

दिल्ली-कांग्रेस से देश में कोई शान्ति स्थापित नहीं हुई। १९१९ के फरवरी में रौलट-बिल ने देश को अपना दर्शन दिया। वे दो बिल थे। एक तो अस्थायी था। उसका उद्देश था भारत-रक्षा-कानून के समाप्त हो जाने से जो स्थिति पैदा होती उसका मुकाबला करना। वह भी युद्ध के बाद शान्ति स्थापित होने के ६ मास बाद। उसमें यह विधान था कि क्रान्तिकारियों के मुकदमे हाईकोर्ट के तीन जजों की अदालत में पेश हों और वे शीघ्र उनका फैसला कर दें एव जिन स्थानों में क्रान्तिकारी अपराध बहुत हो वहां अपील भी न हो सके। इस कानून-द्वारा यह अधिकार भी दे दिया गया था कि राज्य के विरुद्ध अपराध करने का जिस व्यक्ति पर सदेह हो उससे जमानत ले ली जाया करे, उसे किसी स्थान-विशेष में रहने और किसी खास काम को करने से रोका जा सके। किसी व्यक्ति को ऐसा हुक्म देने से पहले उसके विरुद्ध जो आरोप होंगे उनकी जाच एक जज और एक गैर-सरकारी आदमी किया करेगा। तीसरे प्रान्तीय सरकारों को यह अधिकार दे दिया गया था कि वे किसी भी ऐसे व्यक्ति को, जिसपर उचित-रूप में यह सदेह हो कि वह कुछ ऐसे अपराध करने जा रहा है जिससे सार्वजनिक शान्ति-भग होने की आशका हो, तो वह उन्हें गिरफ्तार करके उल्लिखित स्थानों में बन्द कर दें और यह बता दें कि इन अवस्थाओं या स्थिति में रहना पड़ेगा। और वे खतरनाक आदमी, जो कि पहले से ही जेलों में हैं, उन्हें इस बिल के अनुसार लगातार जेल में रोक रक्खा जा सकता था। दूसरा बिल साधारण फौजदारी-कानून में एक स्थायी परिवर्त्तन चाहता था। किसी राजद्रोही सामग्री का प्रकाशन या वितरण करने के उद्देश से पास रखना, ऐसा अपराध करार दे दिया जाता जिसमें जेल की सजा हो सकती थी। यदि कोई व्यक्ति सरकारी गवाह बनने को राजी हो तो उसकी रक्षा का भार अधिकारियों पर रक्खा गया था। उन अपराधों के लिए, जिनके लिए सरकार की आज्ञा पहले से प्राप्त किये बिना मुकदमा नहीं चल सकता, जिला-मजिस्ट्रेटों को यह अधिकार दिया गया था कि वे पुलिस-द्वारा उस मामले की प्रारम्भिक जाच करवा लें। किसी भी ऐसे आदमी से, जिसे राज्य के विरुद्ध कोई अपराध करने में सजा

मिल चुकी हो, उनकी सजा के बाद दो वर्ष तक की नेकचलनी की जमानत ली जा सकती थी।

रौलट-बिल का गांधीजी द्वारा विरोध

रौलट-रिपोर्ट के बाद, ६ फरवरी १९१९ को, विलियम विन्सेण्ट ने वडी कौसिल में, रौलट-बिलो को पेश किया। पहला बिल मार्च के तीसरे सप्ताह में पास हो गया था और दूसरा वापस ले लिया गया। गाधीजी ने यह घोषणा की कि यदि रौलट-कमीशन की सिफारिशो को बिल का रूप दिया गया तो वह सत्याग्रह-युद्ध छेड देंगे। इसके लिए गाधीजी ने देश में सर्वत्र दौरा किया। उनका सब जगह धूमधाम से स्वागत हुआ। गाधीजी तो देश के लिए, अन्य नेताओ की अपेक्षा, अपरिचित व्यक्ति के समान ही थे। लेकिन फिर भी देश ने उनका और उनके कार्यक्रम का इतना स्वागत क्यो किया? सरकार इसका उत्तर अपनी १९१९ की रिपोर्ट में इस प्रकार देती है :—

"मि० गाधी अपनी नि स्वार्थता और ऊँचे आदर्शों के कारण आमतौर पर टॉल्स्टाय के अनुयायी समझे जाते हैं। भारतीयो के लिए दक्षिण अफ्रीका में उन्होंने जो लडाई लडी उसके कारण उन्हें वह सब मान-गौरव प्राप्त है जोकि पूर्वी देशो में एक तपस्वी और त्यागी नेता को प्राप्त होता है। जबसे वह अहमदाबाद में रहने लगे हैं, बराबर विभिन्न प्रकार की सामाजिक सेवा में लगे हुए हैं। दलितो और पीडितो की सेवा के लिए तैयार रहने के कारण, वह अपने देशवासियो को और भी प्रिय हो गये हैं। बम्बई अहाते भर में तो, क्या देहात और क्या नगर, अधिकाश जगह उनका अत्यधिक प्रभाव है और उनकी सबपर धाक है। उन्हें लोग जिस आदर-भाव से देखते हैं उसके लिए 'पूजा' शब्द का प्रयोग करना अत्युक्ति नही कहा जा सकता। भौतिक बल से उनका विश्वास आत्मबल में अधिक है। इसीलिए गाधीजी का यह विश्वास हो गया है कि उन्हें इस शक्ति का प्रयोग सत्याग्रह के रूप में रौलट-एक्ट के खिलाफ करना चाहिए, जिसे कि उन्होने दक्षिणी अफ्रीका में सफलता-पूर्वक आजमाया था।" २४ फरवरी को उन्होने इसकी घोषणा कर दी कि यदि बिल पास किये गये तो वह सत्याग्रह प्रारम्भ कर देंगे। सरकार तथा बहुत-से भारतीय राजनीतिज्ञो ने इस घोषणा को बहुत चिन्ता की दृष्टि से देखा। बडी कौसिल के कुछ नरम-दलवाले सदस्यो ने तो सार्वजनिक-रूप से ऐसे कार्य के अनिष्ट परिणामो को बतलाया था। श्रीमती बेसेण्ट ने तो, जिन्हें भारतीय मनोवृत्ति का अच्छा ज्ञान था, गाधीजी को अत्यन्त गभीरता-पूर्वक चेतावनी दी कि यदि उन्होने कोई भी ऐसा आन्दोलन चलाया तो उससे ऐसी शक्तिया उमड उठेंगी जिनसे

न जाने क्या-क्या भयकर बुराइया हो सकती है। यहा यह बात स्पष्ट-रूप से बता देना चाहिए कि गाधीजी के रुख या घोषणा मे कोई भी ऐसी बात नही थी जिससे कि उनके आन्दोलन का श्रीगणेश होने से पहले सरकार उनके विरुद्ध कोई कारंवाई कर सकती। सत्याग्रह तो आक्रमणकारी नही रक्षात्मक पद्धति है। गाधीजी तो शुरू ही से पशु-बल की निन्दा करते थे। उन्हें यह विश्वास था कि वह सविनय-भग के रूप में सत्याग्रह करके सरकार को इस बात के लिए मजबूर कर देंगे कि वह रौलट-एक्ट का परित्याग कर दे। १८ मार्च को उन्होंने रौलट-बिल के सम्बन्ध में एक प्रतिज्ञा-पत्र प्रकाशित कराया, जो इस प्रकार है —

"सच्चे हृदय से मेरा यह मत है कि इडियन क्रिमिनल लॉ अमेण्डमेण्ट बिल न० १ और क्रिमिनल इमरजेन्सी पावर बिल न० २ अन्यायपूर्ण है और न्याय और स्वाधीनता के सिद्धान्तो के घातक है। उनसे व्यक्ति के उन मौलिक अधिकारो का हनन होता है जिनपर कि भारत की और स्वय राज्य की रक्षा निर्भर है। अत -हम शपथ-पूर्वक प्रतिज्ञा करते है कि यदि इन बिलो को कानून का रूप दिया गया, तो जबतक इन्हें वापस न ले लिया जाय तबतक हम इन तथा अन्य कानूनो को भी, जिन्हें कि इसके बाद नियुक्त की जानेवाली कमिटी उचित समझेगी, मानने से नम्रतापूर्वक इनकार कर देंगे। हम इस बात की भी प्रतिज्ञा करते हैं कि इस युद्ध में हम ईमानदारी के साथ सत्य का अनुसरण करेंगे और किसीके जान-माल को किसी तरह नुकसान न पहुँचावेंगे।"

देश ने चारो तरफ से आन्दोलन में खूब साथ दिया। हा, प्रारम्भ में बगाल अलबत्ते खामोश रहा था। दक्षिण ने भी उसमें आशातीत साथ दिया। गाधीजी ने उपवास के साथ आन्दोलन का श्रीगणेश किया। ३० मार्च १९१९ का दिन हडताल के लिए नियत किया गया था। इस दिन लोगो को उपवास रखने, ईश्वर-प्रार्थना करने, प्रायश्चित करने तथा देशभर में सार्वजनिक सभायें करने के लिये कहा गया था। बाद को यह तारीख बदलकर ६ अप्रैल नियत की गई। परन्तु इस परिवर्तन की सूचना ठीक समय पर दिल्ली नही पहुँची। इसलिए वहा ३० मार्च को ही जुलूस निकला और हडताल हुई। गोली भी चली। इस दिन के जुलूस का नेतृत्व स्वामी श्रद्धानन्दजी कर रहे थे। उन्हें कुछ गोरे सिपाहियों ने गोली मारने की धमकी दी। इसपर उन्होंने अपनी छाती खोल दी और कहा—'लो, मारो गोली।' बस, गोरो की धमकी हवा में उड गई। लेकिन दिल्ली के रेलवे-स्टेशन पर कुछ झगडा हो गया, जिसमें गोली चली और ५ मरे तथा अनेक घायल हुए। "६ अप्रैल को देशव्यापी प्रदर्शन हुआ।" सरकार की १९१९ की रिपोर्ट में कहा गया है—"सब लोग बडे ही उत्तेजित थे। उस समय एक बात मार्के

की दिखाई पड़ती थी। और वह था हिन्दू-मुस्लिम-भ्रातृ-भाव। अब दोनो जातियो के नेता बस इसी एकता की रट लगाये हुए थे। हर सभा से यही आवाज निकलती थी। इस जोशो-खरोश के जमाने में छोटी जातियो ने भी अपने मतभेद भुला दिये। वह भ्रातृ-भाव का एक अद्भुत दृश्य था। हिन्दू-मुसलमान एक-दूसरे के हाथ से खुल्लम-खुल्ला पानी लेते-देते-थे। जुलूसो के झण्डो और नारो दोनो से, हिन्दू-मुसलमानो का मेल ही प्रकट होता था। एक जगह तो एक मसजिद के इमाम पर खड़े होकर हिन्दू-नेताओ को बोलने भी दिया गया था।" इस प्रकार के मेल का एक तात्कालिक कारण था। युद्ध के पश्चात् टर्की की अस्तव्यस्त अवस्था हो गई थी। इसपर मुसलमान स्वभावत बहुत खिन्न थे। साथ ही खिलाफत के लिए जो खतरा था उससे तो उनमें और भी उत्तेजना फैली हुई थी। हिन्दुओ ने मुसलमानो की इन भावनाओ के साथ पूरी सहानुभूति प्रकट की।

देश ने इस नई विचार-धारा को तुरन्त ही हृदय से अपनाया। कांग्रेस तथा देश दोनो के लिए गांधीजी बहुत मान्य हो गये थे। १९१८ की दिल्ली-कांग्रेस में शान्ति-सम्मेलन में प्रतिनिधि भेजने के सम्बन्ध में श्री चित्तरजन दास का एक प्रस्ताव था। उसमें गांधीजी का नाम भूल से छूट गया था। श्री व्योमकेश चक्रवर्ती ने ज्योही इस ओर प्रस्तावक का ध्यान खीचा, उन्होने क्षमा-याचना करते हुए प्रतिनिधियो की सूची में गांधीजी का नाम जोड़ दिया। इंग्लण्ड के लिए जानेवाले शिष्ट-मण्डल के सदस्यो में भी उनका नाम था। १९१९ के अप्रैल मास से भारतीय इतिहास का नया अध्याय प्रारम्भ होता है।

पंजाब की दुर्घटनायें

भारतवर्ष के कष्ट-सहन और सघर्ष का दृश्य अब पजाब में दिखाई देने लगा जो कि विदेशी उद्योग-धन्धे और व्यापारिक आक्रमण के लिए भारत का द्वार बना हुआ है। पजाब सिक्खो तथा भारत की अन्य सैनिक जातियो का निवास-स्थान है। क्या पजाब को, पढ़े-लिखे और कांग्रेसी लोगो को अपने स्वराज्य-आन्दोलन के लिए इस्तेमाल करने को खाली छोड़ दिया जाय? इसलिए पजाब का निरकुश शासक सर माइकेल ओडायर इस बात पर तुला हुआ था कि वह अपने प्रान्त में कांग्रेस-आन्दोलन की छूत की बीमारी को न फैलने दे। और वास्तव में कांग्रेस और उसमें इस बात पर रस्सा-कशी थी कि आया १९१९ में अमृतसर में होनेवाली कांग्रेस पजाब मे हो या न हो। १० अप्रैल १९१९ के दिन प्रात काल ही अमृतसर के जिला-मजिस्ट्रेट ने डाक्टर

किचलू और डाक्टर सत्यपाल को, जो कि काग्रेस का सगठन कर रहे थे, अपने बगले पर बुला भेजा और वहा से चुपचाप किसी अज्ञात स्थान को भेज दिया। इस घटना से एक सनसनी फैल गई। खबर फौरन ही दूर-दूर तक पहुँच गई। और लोगो का एक झुण्ड जिला-मजिस्ट्रेट के यहा उनका पता पूछने के लिये जानेवाला था, परन्तु उस चौराहे पर, जो शहर से सिविल-लाइन की ओर जाते हुए सिविल-लाइन और शहर के बीच में है, फौजी सिपाहियो ने भीड को रोक लिया। और अब वह ईंटो के फेंकने की कहानी आती है जो सरकार की मदद के लिए हर वक्त तैयार रहती है। भीड पर गोली चलाई गई, जिसके फल-स्वरूप एक या दो की मृत्यु के साथ-साथ अनेक लोग घायल हुए। लोगो की भीड अब शहर को वापस लौटी और मरे हुए और घायलो का शहर मे होकर जुलूस निकाला। रास्ते मे नैशनल-बैंक की इमारत में आग लगा दी और उसके यूरोपियन मैनेजर को मार डाला। इस प्रकार लोगो की उत्तेजित भीड ने ५ अग्रेजो को मारा और बैंक, रेलवे का गोदाम तथा और सार्वजनिक इमारतो को जला कर खाक कर दिया। स्वभावत अधिकारी इन घटनाओ से आग-बबूला हो गये। स्थानीय अधिकारियो ने अपने ही आप १० अप्रैल को शहर फौज के अधिकार में दे दिया, इस आशा में कि ऊपर के अधिकारी इसकी स्वीकृति दे देंगे।

गुजरानवाला और कसूर में बहुत अधिक खून-खराबी हुई। कसूर में तो १२ अप्रैल को भीड ने रेलवे-स्टेशन को बहुत नुकसान पहुँचाया। तेल के एक छोटे गोदाम को जला दिया। तार और सिगनल तोड-फोड डाले। एक ट्रेन पर आक्रमण किया, जिसमे कुछ यूरोपियन थे। दो सिपाहियो को इतना पीटा कि उनके प्राण निकल गये। एक ब्राञ्च-पोस्ट आफिस को लूट लिया। मुख्य पोस्ट आफिस को जला डाला। मुन्सिफी कचहरी में आग लगा दी, और भी बहुत-सी इमारतो को नुकसान पहुँचाया। यह सरकारी बयान का साराश है। परन्तु लोगो का यह कहना है कि पहले भीड को उत्तेजना दिलाई गई थी।

गुजरानवाले में १४ अप्रैल को भीड ने एक ट्रेन को घेर लिया, और उसपर पत्थर बरसाये। एक छोटे-से रेलवे-पुल को जला दिया और एक दूसरे रेलवे-पुल को भी जलाया, जहा कि गाय का एक मरा बच्चा लटका हुआ था। लोगो का कहना है कि उसे पुलिस ने मार डाला और हिन्दुओ की भावनाओ को ठेस पहुँचाने के लिए उसे पुल पर टाग दिया था। इसके साथ-ही-साथ तार-घर, डाक-खाना और रेलवे-स्टेशन में भी आग लगा दी थी। डाक-बगला, कलक्टरी कचहरी, एक गिरजा, एक स्कूल और एक रेलवे का गोदाम भी जला दिया था।

ये तो हुईं खास-खास घटनायें। अन्य छोटे-छोटे स्थानो में कुछ गडवड हुई। जैसे रेल-गाडियो पर पत्थरो का फेंका जाना तारो का काटा जाना और रेलवे-स्टेशनो में आग का लगाया जाना।

इन्ही दिनो में देश के विभिन्न भागो में इक्के-दुक्के हिंसा-काण्ड हुए। लाहौर में भी लूट-मार हुई और गोली चली। कलकत्ते जैसे सुदूर स्थान से भी बुरे समाचार प्राप्त हुए। पजाव की दुर्घटनाओ की वात सुनकर तथा स्वामी श्रद्धानन्द और डॉ० सत्यपाल के वुलाने पर गाधीजी ८ अप्रैल को दिल्ली के लिए चल पडे।' रास्ते में ही उन्हें हुक्म मिला कि पजाव और दिल्ली के भीतर प्रवेश न करो। उन्होने इस हुक्म को मानने से इन्कार कर दिया। इसपर उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और दिल्ली से कुछ दूर पलवल नामक स्टेशन से एक स्पेशल ट्रेन में उन्हें विठाकर १० अप्रैल को वम्बई भेज दिया गया।

गाधीजी की गिरफ्तारी के समाचार से अहमदावाद में कई उपद्रव हो गये, जिनमें कुछ अग्रेज और कुछ हिन्दुस्तानी अफसर जान से मारे गये। १२ अप्रैल को वीरमगाव और नडियाद में भी कुछ उत्पात हुए। कलकत्ते में भी उपद्रव हुआ था—वहा गोली चली थी, जिससे ५ या ६ आदमी जान से मारे गये थे और १२ वुरी तरह घायल हुए थे। वम्बई पहुँच कर गाधीजी ने स्थिति को शान्त करने में मदद की और फिर वहा से अहमदावाद को चल पडे। उनकी उपस्थिति ने शान्ति स्थापित करने में वहुत काम किया। इन उपद्रवो के कारण उन्होने सत्याग्रह को स्थगित कर दिया और उसके सम्वन्ध मे एक वक्तव्य निकाला।

एक ओर यह स्थिति थी तो दूसरी ओर अमृतसर में दुर्घटनायें विकट रूप धारण करती जा रही थी। यहा स्मरण रखना चाहिए कि १३ अप्रैल तक फौजी-कानन जारी करने की कोई घोषणा नही की गई थी। वैसे सरकार यह वात स्वीकार करती है कि १० अप्रैल से ही व्यावहारिक-रूप में फौजी-कानून जारी था। सच पूछिए तो लाहौर और अमृतसर में तो १५ अप्रैल को ही फौजी-कानून जारी करने की घोषणा की गई थी। उसके वाद ही पजाव के दो-तीन जिलो में वह और जारी कर दिया गया था। १३ अप्रैल (वर्ष-प्रतिपदा) को, जो कि हिन्दुओ के सवत्सर का दिन था, अमृतसर में एक सार्वजनिक सभा करने की घोषणा की गई और जालियावाला-वाग में एक वडी भारी सभा हुई। यह खुला हुआ स्थान शहर के मध्य में है। शहर के मकान ही इसकी चहार-दीवारी वनाये हुए है। इसका दरवाजा वहुत ही सकडा है, इतना कि एक गाडी उसमें होकर नही निकल सकती। वाग में जव वीस हजार आदमी इकट्ठे हो गये, जिनमें,

पुरुष, स्त्रिया और बच्चे भी थे, जनरल डायर ने उसमें प्रवेश किया। उसके पीछे सशस्त्र सौ हिन्दुस्तानी सिपाही और पचास गोरे सैनिक थे। जिस समय ये लोग घुसे उस समय हसराज नाम का एक आदमी व्याख्यान दे रहा था। इसी समय जनरल डायर ने घुसते ही गोली चलाने का हुक्म दे दिया। जैसे कि हन्टर कमीशन के सामने अपनी गवाही में उसने कहा था कि उसने लोगो को तितर-बितर होने की आज्ञा दी और फिर बस गोली चलाने का हुक्म दे दिया। लेकिन उसने यह स्वीकार किया कि तितर-बितर हो जाने के हुक्म देने के तीन मिनट बाद ही उसने गोली चलवा दी थी। यह बात तो स्पष्ट ही है कि बीस हजार आदमी दो-तीन मिनट में तितर-बितर नही हो सकते थे। और वह भी विशेष कर एक बहुत-ही तग दरवाजे में होकर। गोली तबतक चलती रही जबतक कि सारे कारतूस खतम नही होगये। कुल सोलह सौ फैर किये गये थे। सरकार के स्वय अपने बयान के मुताबिक चार सौ मरे और घायलो की सख्या एक और दो हजार के बीच में थी। गोली हिन्दुस्तानी फौजो से चलवाई गई थी, जिनके पीछे गोरे सिपाहियों को लगा दिया गया था। ये सब-के-सब बाग में एक ऊँचे स्थान पर खड़े हुए थे। सबसे बड़ी दु:खद बात वास्तव में यह थी कि गोली चलाने के बाद मृतक और वे लोग जो सख्त घायल हो गये थे, उन्हें सारी रात वही पडा रहने दिया गया। वहा उन्हें रात-भर न तो पानी ही पीने को मिला और न डॉक्टरी या कोई अन्य सहायता ही। डायर का कहना था, जैसा कि बाद को उसने प्रकट किया, "चूकि शहर फौज के कब्जे में दे दिया गया था और इस बात की डोडी पिटवा दी गई थी कि कोई भी सभा करने की इजाजत नही दी जायगी, तो भी लोगो ने उसकी अवहेलना की, इसलिए मैने उन्हें एक सबक बता देना चाहा, ताकि वे उसकी खिल्ली न उडा सके।" आगे चल कर उसने कहा कि "मैंने और भी गोली चलाई होती, अगर मेरे पास कारतूस होते। मैंने सोलह सौ बार ही गोली चलाई, क्योकि मेरे पास कारतूस खतम हो गये थे।" उसने और कहा—"मै तो एक फौजी गाडी (आरमर्ड कार) ले गया था, लेकिन वहा जाकर देखा कि वह बाग के भीतर घुस ही नही सकती थी। इसलिए उसे वही बाहर छोड दिया था।"

जनरल डायर के राज्य में कुछ ऐसी सजायें भी देखने को मिली जिनका सपने में भी खयाल नही हो सकता था। उदाहरण के लिए अमृतसर में नलो में पानी बन्द कर दिया गया था, और बिजली का सिलसिला काट दिया गया था। सबके सामने बेंत लगाना आमतौर पर चालू था। लेकिन 'पेट के बल रेंगने के हुक्म' ने इन सबको मात कर दिया था। मिस शेरवुड नाम की एक पादरी लेडी-डॉक्टर पर उस

समय कुछ लोगो ने अक्रमण किया था जब कि वह एक गली में साइकिल पर होकर जा रही थी। इसलिए उस गली मे निकलनेवाले हरेक आदमी को पेट के बल रेंगकर जाने की आज्ञा थी। उस गली में जितने आदमी रहते थे सभी को पेट के बल रेंगकर जाना और आना पडता था, हालाकि उस गली में रहनेवाले भले आदमियो ने ही मिस शेरवुड की रक्षा की थी। तारीफ तो यह है कि बडी कौंसिल में क्वार्टर-मास्टर-जनरल हट्सन के लिए यह घटना एक हँसी का विषय बन गई थी।

रेलवे-स्टेशनो पर तीसरे दर्जे का टिकट बेचने की मनाही कर दी गई थी। इससे लोगो का सफर करना आमतौर पर बन्द हो गया था। दो आदमियो से अधिक एक-साथ पटरियो पर नही चल सकते थे। साइकिलें सब-की-सब फौज ने अपने कब्जे मे ले ली थी। केवल यूरोपियन लोगो की साइकिलें उनके पास रहने दी गई थी। जिन लोगों ने अपनी दूकाने बन्द कर दी थी उन्हे खोलने के लिए बाध्य किया गया। न खोलनेवाले के लिए कठोर दण्ड की आज्ञा थी। चीजो की कीमत फौजी अफसरो ने नियत कर दी थी। बैलगाडिया उन्होंने अपने कब्जे में कर ली थी। किले के नीचे नगा करके सब के सामने बेंत लगवाने के लिए एक चबूतरा बनवाया गया था और शहर के अनेक भागो में बेत लगवाने के लिए टिकटिकिया लगवा दी गई थीं।

अमृतसर में खास अदालत द्वारा जिन मुकदमो का फसला किया गया था, उनके कुछ आकडे यहा देते है। सगीन जुर्मो के अभियोग में २९८ आदमियो पर मार्शल-लॉ-कमीशन के सामने मुकदमे चले। मुकदमा चलाने में कानून, सफाई तथा जाब्ते के साधारण नियमो के पालन करने का भी, जिनके अनुसार आमतौर पर हर जगह मुकदमे चलाये जाते है, कोई ध्यान नही रक्खा गया था। इनमें से २१८ आदमियो को सजायें दी गईं। ५१ को फासी की सजा, ४६ को आजन्म कालापानी, २ को १०-१० बरस की सजा, ७९ को ७-७ बरस की सजा, १० को ५-५ की, १३ को ३-३ की और ११ को बहुत थोडी-थोडी मियाद की सजायें दी गईं। इनमें वे मुकदमे शामिल नही है जिनका फैसला सरसरी में फौजी अफसरो ने किया था। इनकी सख्या ६० थी, जिनमे से ५० को सजा हुई थी, और १०५ आदमियो को मार्शल-लॉ के अनुसार मुल्की-मजिस्ट्रेटो ने सजा दी थी।

हन्टर-कमिटी के सदस्य जस्टिस रैंकिन के प्रश्न के उत्तर मे जनरल डायर ने जो उत्तर दिया था उसे भी हम यहा देते है —

जस्टिस रैंकिन—जनरल, मुझे इस प्रकार प्रश्न करने के लिए जरा क्षमा कीजिए, कि आपने जो-कुछ किया वह क्या एक प्रकार का भय-प्रदर्शन नहीं था?

जनरल डायर—नही, वह भय-प्रदर्शन नही था। वह एक भयानक कर्त्तव्य था, जिसका मुझे पालन करना पडा। मेरा खयाल है, वह एक दयापूर्ण कार्य था। मैने सोचा कि मै खूब अच्छी तरह गोली चलाऊँ और इतने जोर के साथ चलाऊँ कि मुझे या अन्य किसी को फिर कभी गोली न चलानी पडे। मेरा खयाल है कि यह सम्भव है कि विना गोली चलाये हुए भी मै भीड को तितर-वितर कर देता। लेकिन वे फिर वापस आ जाते और मेरी हँसी उडाते और मै बेवकूफ बना होता।

जनरल डायर के कार्य को सर माइकेल ओडायर ने, जो पजाब के गवर्नर थे, उचित ठहराया था। आपकी ओर से जनरल डायर को एक तार दिया गया था, जिसमे लिखा था—"आपका कार्य ठीक था। लेफ्टिनेन्ट गवर्नर सराहना करते है।"

उपर्युक्त बातें जो लिखी गई है वे तो वे है जिन्हें हन्टर-कमीशन के सामने १९२० के आरम्भ में जनरल डायर ने स्वय स्वीकार किया था। अमृतसर की दुर्घटना के बाद, पजाब से आने और जानेवाले लोगो पर इतनी कडी निगरानी थी कि दुर्घटना का विस्तारपूर्वक समाचार काग्रेस-कमिटी को भी जुलाई १९१९ से पहले नही ज्ञात हो सका। और मालूम भी हुआ तो खुल्लम-खुल्ला नही। कलकत्ते के लॉ-एसोसिएशन के भवन में जब काग्रेस-कमिटी की बैठक हो रही थी, यह समाचार कानो-कान डरते-डरते कहा गया—फिर भी यह सावधानी रक्खी गई कि यह समाचार औरो से न कहा जाय। पजाब की दुर्घटना अमृतसर तक ही सीमित न रही बल्कि लाहौर, गुजरानवाला और कसूर आदि स्थानो को भी अत्याचार और बर्बरतापूर्ण अमानुष कृत्यो का शिकार होना पडा था, जिनकी कथा सुनकर खून खौलने लगता है।

फौजी कानून

सरकारी रिपोर्ट के अनुसार, अन्य स्थानो की अपेक्षा लाहौर मे फौजी कानून का बहुत जोर था। करफ्यू-आर्डर तो तुरन्त ही जारी कर दिया गया था। यदि कोई व्यक्ति शाम के ८ बजे के बाद बाहर निलकता तो वह गोली से मार दिया जा सकता था, बेत लगाये जा सकते थे, जुर्माना हो सकता था, कैद हो सकती थी, या और कोई दण्ड दिया जा सकता था। जिनकी दूकानें बन्द थी उन्हे खोलने की आज्ञा दे दी गई थी। न खोले उसे या तो गोली से उडाया जा सकता और या उसकी दूकान खोलकर सारा सामान लोगो में मुफ्त बाट दिया जा सकता था।

वकील तथा दलालो को यह आज्ञा दे दी गई थी कि वे शहर से बाहर कही न जावें। जिनके मकानो की दीवारो पर फौजी कानून के नोटिस चिपकाये गये थे

उन्हें यह हुक्म दे दिया गया था कि वे उनकी हिफाजत करें और यदि किसी ने उन्हें बिगाड दिया या फाड दिया तो वे सजा के मुस्तहक होगे, हालाकि रात्रि के समय उन्हें बाहर रहने की इजाजत नहीं थी। एक-साथ बराबर दो आदमियो से अधिक के चलने की मनाही थी। कॉलेज के विद्यार्थियो के लिए यह आज्ञा थी कि वे दिन में चार बार, फौजी अफसरो के सामने, विभिन्न स्थानो पर हाजिरी दिया करें। लगर या अन्न-क्षेत्र बन्द कर देने का हुक्म दे दिया गया था। हिन्दुस्तानियो की मोटर-साइकिलो तथा मोटरो को फौज में जमा कर देने का हुक्म जारी कर दिया था। इतना ही नही, अधिकारियो को वे इस्तेमाल के लिए भी दे दी गई थी। हिन्दुस्तानियो के पास अपने जो बिजली के पखे थे उन्हें तथा बिजली के अन्य सब सामान को घरो से निकलवाकर गोरे सिपाहियो के इस्तेमाल के लिए जमा करा लिया गया था। किराये पर चलनेवाली सवारियो को शहर से बहुत दूर एक स्थान पर जाकर हाजिरी लिखानी पडती थी। एक दिन एक बूढा आदमी, शाम के आठ बजे के बाद, अपनी दूकान के द्वारके बाहर गली में अपनी गाय की देख-भाल करते पाया गया। वह तुरन्त ही गिरफ्तार कर लिया गया और करफ्यू-आर्डर तोडने के इलजाम में उसके बेंत उडवा दिये। तागेवालो ने भी हडताल में भाग लिया था। इन लोगो को सबक सिखाने के लिए ३०० तागे जमा कर लिये गये थे, और यह हुक्म दे दिया गया था कि वे नगर की घनी आबादी से बाहर, कुछ खास मुकर्रर वक्त और जगहो पर, अपनी हाजिरी दिया करें। इसमें तुर्रा यह था कि फौजी अफसर, चाहे जिस तागे को, चाहे जब, अपनी इच्छा पर ही रोक लेता था और इसमें उसकी दिन-भर की कमाई पर पानी फिर जाता था। कर्नल जॉनसन ने इस बात को स्वीकार किया था कि उसकी बहुत-सी आज्ञायें पढे-लिखे तथा पेशेवर आदमियो के लिए ही थी, जैसे वकील आदि। उसका खयाल था कि यही वे लोग है जिनमें से राजनैतिक आन्दोलन करनेवाले पैदा होते हैं। व्यापारी लोग तथा अन्य निवासियो को, जिनकी इमारतो पर फौजी कानून के आर्डर चिपके हुए थे, उन नोटिसो की रक्षा के लिए चौकी-पहरा बिठाना पडा था ताकि उन्हें कोई बिगाड या फाड न जाय। मुमकिन था कि पुलिस का गुर्गा ही उन्हें फाड-फूड जाय। एक आदमी ऐसा पकडा भी गया था जब लोगो ने चौकीदारों के लिए पासो की दरख्वास्त दी ताकि ये लोग रात के ८ बजे के बाद बाहर रह कर उन नोटिसों की रखवाली कर सकें, तो उत्तर मिला था कि उन्हें अपने लिए पास मिल सकते हैं, औरो के लिए नहीं। १६ से २० वर्ष की उम्र के लडको तथा विद्यार्थियो पर विशेष-रूप से कडी नजर थी। लाहौर जैसे शहर में, जहा कई कॉलेज है, विद्यार्थियो को दिन

में चार बार हाजिरी देने का हुक्म था। जहा हाजिरी ली जाती थी उनमें एक हाजिरी का स्थान कॉलेज से ४ मील की दूरी पर था। अप्रैल मास की कड़ाके की धूप में, जोकि पजाब मे वर्ष का सबसे अधिक गर्म महीना होता है और जबकि गरमी १०८ डिग्री से ऊपर होती है, इन नौजवानो को रोजाना १९ मील पैदल चलना पडता था। इनमें से कुछ तो रास्ते में बेहोश हो कर गिर भी जाते थे। कर्नल जॉनसन का खयाल था कि इससे उनको लाभ होता है और वे शरारत करने से बाज रहते है। एक कॉलेज की दीवार से फौजी कानून का एक नोटिस फाड डाला गया था। इस अपराध में कॉलेज के वेतनभोगी सारे कर्मचारी, जिनमें कॉलेज के प्रिन्सिपल भी शामिल थे, गिरफ्तार कर लिये गये थे और फौजी पहरे में उन्हें किले तक कवायद करते हुए ले जाया गया था, जहा कि वह फौजी पहरे में तीन दिन तक कैद रक्खे गये थे। किले के एक कोने मे उन्हें रहने को स्थान दिया गया था।

इतना होने पर भी कर्नल जॉनसन, इन दिनो में जो कुछ भी उन्होने किया उससे, बहुत ही प्रसन्न थे। और लाहौर के यूरोपियनो ने तो उन्हें विदाई देते समय एक दावत दी थी और "गरीबो का रक्षक" की उपाधि से अलकृत करके उनकी भूरिभूरि प्रशसा की थी। गुजरानवाला में कर्नल ओब्रायन ने, कसूर में कैप्टन डोवटन ने और शेखूपुरा में मिस्टर बॉसवर्थ स्मिथ ने खास तौर पर अत्याचार करने में खूब ही नाम कमाया था।

अमानुषिक क्रूरताएँ

कर्नल ओब्रायन ने कमिटी के सामने अपनी गवाही में कहा था कि भीड जहा कही पाई गई वही उसपर गोली चला दी गई। यह बात उन्होने हवाई जहाजो के सम्बन्ध में कही थी। एक बार एक हवाई जहाज ने, जो कि लेफ्टिनेण्ट डॉड्किन्स के चार्ज में था, एक खेत में २० किसानो को एकत्र देखा। उन्होने उनपर मशीनगन से तबतक गोली चलाई जबतक कि वे भाग नही गये। उन्होंने एक मकान के सामने आदमियो के एक झुण्ड को देखा। वहा एक आदमी व्याख्यान दे रहा था। इसलिए वहा उन्होने उनपर एक बम गिरा दिया। क्योकि उनके दिल में इस तरह का कोई शक नही था कि वे लोग किसी शादी या मुर्दनी के लिए एकत्र नही हुए थे। मेजर कार्वी वह सज्जन है जिन्होने लोगो के एक दल पर इसलिए बम बरसाये कि उन्होने सोचा कि ये लोग बलवाई हैं, जो शहर से आ-जा रहे हैं। उन्ही के शब्दो में सुनिए —

"लोगो की भीड दौडी जा रही थी और मैंने उनको तितर-बितर करने के

लिए गोली चला दी। ज्योही भीड तितर-बितर हो गई, मैंने गाव पर भी मशीनगन लगा दी। मेरा खयाल है कि कुछ मकानो में गोलिया लगी थी। मै निर्दोष और अपराधी में कोई पहचान नही कर सकता था। मैं दो सौ फीट की ऊँचाई पर था और यह भले प्रकार देख सकता था कि मै क्या कर रहा हूँ। मेरे उद्देश की पूर्ति केवल बम बरसाने से ही नही हुई। गोली केवल नुकसान पहुँचाने के लिए ही नही चलाई गई थी, वह स्वय गाववालो के हित के लिए चलाई गई थी। कुछ को मार कर, मै समझता था, मै गाववालो को फिर एकत्र होने से रोक दूँगा। मेरे इस कार्य का असर भी पडा था। इसके बाद शहर की तरफ मुडा। वहा बम बरसाये और उन लोगो पर गोलिया चलाईं जो भाग जाने की कोशिश कर रहे थे।"

गुजरानवाला, कसूर और शेखूपुरा में भी अमृतसर और लाहौर के समान ही करफ्यू-आर्डर जारी कर दिया गया था, हिन्दुस्तानियो की आमदरफ्त रोक दी गई थी, एकान्त में और सबके सामने बेंत लगवाये जाते थे, झुण्ड-के-झुण्ड एक-साथ गिरफ्तार कर लिए जाते थे और सरकारी तथा खास अदालतो से सजायें दिला दी जाती थी।

कर्नल ओब्रायन ने एक यह हुक्म जारी किया था कि जब कोई हिन्दुस्तानी किसी अंग्रेज अफसर को मिले तो वह उसको सलाम करे, अगर सवारी में जा रहा हो या घोडे पर सवार हो तो उतर जाय, अगर छाता लगाये हुये हो तो उसे नीचे झुका दे। कर्नल ओब्रायन ने कमिटी के सामने कहा था कि "यह हुक्म इसलिए अच्छा था कि लोगो को यह मालूम हो जाय कि उनके नये मालिक आये हैं। लोगो के कोडे लगवाये गये, जुर्माना किया गया और पूर्वोक्त राक्षसी हुक्म न मानने पर अन्य अनेक प्रकार की सजायें दी गईं। उन्होने बहुत-से आदमियो को गिरफ्तार कराया था, जिनको बिना मुकदमा चलाये ही ६ हफ्ते तक जेल में रक्खा। एकबार उन्होने शहर के बहुत-से प्रमुख नागरिको को यकायक पकडकर मालगाडी के एक डब्बे में भर दिया। उस डब्बे में उन लोगो को एक-के-ऊपर-एक करके लाद दिया। सो भी तब जब कि वे कडाके की धूप में कई मील पैदल चलाकर लाये गये थे। कुछ लोगो के बदन पर तो पूरे कपडे भी नही थे। मालगाडी के डब्बे में भरकर उन्हें लाहौर भेज दिया था। उन्हें पाखाना-पेशाब तक करने की आज्ञा नही दी गई थी। इसी अवस्था में वे माल-गाडी के डब्बे में ४४ घंटे तक रक्खे गये। उनकी जो भयानक दयनीय दशा हो गई थी, उसका वर्णन करके बताने की विशेष आवश्यकता नही। वे जिस समय गलियो में होकर ले जाये जा रहे थे उस समय उनके साथ-साथ रास्ते-चलते और लोग भी योही

पकड लिये जाते थे और इसलिए उनकी सख्या सदैव बढती रहती थी। उन्हें हाथो में हथकडिया डालकर और जजीरो से बाधकर निकाला गया था। हिन्दू और मुसलमान दोनो ही जजीरो में बाध कर ले जाये गये थे। लोग समझते थे कि हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य का यह मजाक उडाया जा रहा है। कर्नल ओब्रायन का कहना था कि यह इत्तफाक से हुआ था। यह सारी कार्रवाई किस स्पिरिट में की जा रही थी, इसे देखने के लिए इतना बता देना काफी होगा कि नगर के एक वयोवृद्ध महानुभाव भी इस घटना के शिकार हुए थे। वह शहर के एक बडे ही उपकारक सज्जन थे, जिन्होने एक लाख रुपया सम्राट् की भारत-यात्रा के उपलक्ष्य में किंग जार्ज स्कूल को दान दिया था। बाद में रिलीफ-फण्ड और वार-लोन में भी उन्होने बहुत कुछ रुपया दिया था।

दूसरी मिसाल, कर्नल ओब्रायन के कारनामो की, यह है कि उन्होने एक बुड्ढे किसान को गिरफ्तार किया था। वह इसलिए कि वह बेचारा अपने दो लडको को पेश नही करा सका। इतना ही नही, आपने उसकी सारी सम्पत्ति भी जब्त कर ली थी, और लोगो को यह चेतावनी दे दी थी कि अगर किसी ने भी उसको अपनी फसल से मदद की तो उसे गोली से उडा दिया जायगा। उन्होंने कमिटी के सामने यह स्वीकार किया था कि बुड्ढे ने स्वय—कोई अपराध नही किया था, "लेकिन उसने यह नही बताया कि उसके बेटे कहा हैं।"

कर्नल ओब्रायन के बडे-बडे कारनामो के इतिहास में से ये कुछ नमूने यहा दिये गये है। दो सौ आदमियो को सरसरी अदालतो से सजायें मिली। बेंत की सजा या एक महीने से लेकर दो वर्ष तक की सजा का दण्ड दिया गया। कमीशन ने १४९ आदमियो को सजा दी, जिनमें से २२ को फासी, १०८ को आजन्म काला-पानी तथा शेष को दस साल और उससे कम की सजा का दण्ड दिया गया था। कर्नल ओब्रायन का अन्तिम कार्य यह था कि उन्हें जब यह मालूम हुआ कि कल फौजी कानून समाप्त होनेवाला है तो उन्होने बहुत-से लोगो के मुकदमो को २४ घटे के भीतर ही खतम कर देने की व्यवस्था की। ओब्रायन महाशय इतने आतुर थे कि जिन मुकदमो की तारीख कई दिन पहले की डाली गई थी उनको अदालत-द्वारा तत्काल ही फैसल करा दिया कि कही ऐसा न हो कि फौजी कानून खतम हो जाय और लोग उनके न्याय से वञ्चित रह जायें।

कैप्टन डोवटन कसूर के इलाके मे एक प्रकार से सर्वे-सर्वा ही थे। इस स्थान पर लोगो को खुलेआम फासी देने के लिए एक फासी-घर बनाया गया। यह स्थान, वहा के निवासियो के लिए, एक आतक-गृह हो गया था। रेलवे-स्टेशन के पास एक

वडा पिंजडा वनवाया गया था, जिसमें १५० आदमी रक्खे जा सकते थे। जिन लोगो के ऊपर सदेह होता था उन्हे इसमें वन्द कर दिया जाता था, ताकि आम जनता उन्हें देख सके। नगर के सारे पुरुष-निवासियो की परेड शनाख्त करने के लिए कराई जाती थी।

लोगो को खुलेआम वेंत लगवाये गये। लोगो को सिर से पैर तक नगा करके तार के खम्भे या टिकटिकियो से वाधा जाता था। यह सार्वजनिक प्रदर्शन सोच-समझ के निश्चित किया हुआ था। एकवार नगा करके पिटता हुआ देखने के लिए, शहर की वेश्यायो को लाया गया था। इस घटना के लिए कैप्टन साहव को हृन्टर-कमीशन के सामने गवाही देते हुए जब अधिक दवाया गया तो कुछ 'शर्म' मालूम हुई थी—ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कर्नल जॉनसन को एक वरात को वेंत लगवाने के मामले में कमिटी के सामने 'दु ख हुआ था।' कैप्टन साहव का कहना था कि उन्होने पुलिस सवइन्सपेक्टर को हुक्म दिया था कि वदमाशो को वेंत लगना देखने के लिए वुला लाओ। लेकिन जव वहा मैंने स्त्रियो को देखा तो मै दग रह गया। परन्तु कैप्टन साहव उन वेश्याओ को वापस इसलिए नही भेज सके कि उनके पास उस समय उन्हें पहुँचाने के लिए सिपाही न थे। सो वे वेंतो की मार देखने के लिए वहा-की-वही वनी रही।

कैप्टन डोवटन छोटी-मोटी सजाओ का आविष्कार करने में वडे दक्ष थे। इनके आविष्कार करने में उनका एक-मात्र उद्देश यह था, उनको "इतना आसान और नरम वनाना" जितना कि उस परिस्थिति में सम्भव था। फौजी-कानून के अपराधियो से रेलवे-स्टेशनो के माल-गोदामो पर मालगाडियो में माल लादने और उतारने का काम लिया जाता था। उन्होने एक ऐसा नियम चलाया कि जिसके अनुसार लोगो को नाक रगडनी पडती थी।

मि० वॉसवर्थ स्मिथ एक सिविलियन अफसर थे जिन्होने शेखूपुरा में फौजी-कानून का दौर-दौरा किया था। उन्होने अपने वयान में इस वात को स्वीकार किया था कि फौजी-कानून 'आवश्यक तो न था, परन्तु मेरी राय में वह 'वाञ्छनीय' अवश्य था। उन्होने अपने हलके के सारे मुकदमो का फैसला किया था और जैसा कि अन्य स्थानो में हुआ था, उनके यहा से भी वेंत की सजायें दी जाती थी। और, अदालत उठने ही अपराधियो के वेंत लगवा दिये जाते थे। ६ मई से लेकर २० मई तक उन्होने ४७७ आदमियो के मुकदमे किये थे।

फौजी अधिकारियो ने एक हुक्म जारी किया था, जिसके अनुसार स्कूल के

लडके वाध्य थे कि वे दिन में तीन वार परेड करें और झण्डे को सलामी दें। यह हुक्म स्कूल की छोटी जमातों के वच्चो के लिए भी लागू था, जिनमें ५ और ६ वरस तक के वच्चे भी शामिल थे। कितने ही वच्चे लू लग कर मर गये थे। कुछ मौको पर लडको से यह कहलाया जाता था, "मैंने कोई अपराध नही किया है, मैं कोई अपराध नही करूँगा, मुझे अफसोस है, मुझे अफसोस है, मुझे अफसोस है!"

मेजर स्मिथ से, जो कि गुजरानवाला, गुजरात और लायलपुर में फौजी-कानून के अधिष्ठाता थे, जव सर चिमनलाल सीतलवाड ने पूछा कि "आया यह हुक्म उनके सारे इलाके-भर में लागू कर दिया गया था और आया यह सव क्लासो पर लागू और छोटे वच्चो की क्लास भी उसमें शामिल थी?" मेजर ने जवाव दिया कि उनके इलाके में जहा-जहा फौजें थी वहा-वहा सव जगह हुक्म किया गया था। यहा तक कि पाच और छ वरस तक के वच्चो से भी परेड कराई जाती थी। लेकिन छोटे वच्चो को शाम की परेड में शामिल होने से वरी कर दिया गया था।"

कर्नल ओव्रायन ने अपनी गवाही में कहा था, कि मैं एक दिन वजीरावाद में था। मैंने देखा कि एक लडका झण्डे की ओर मार्च करने में वेहोश हो कर गिर गया। मैंने फौज के अधिकारियो को इसके सम्वन्ध में लिखा। दूसरे दिन दो की जगह तीन वार परेड कराई गई थी। इस प्रश्न के उत्तर में, कि यदि ऐसा किया था तो क्या यह वच्चो के साथ सख्ती नही हुई? कर्लन ओव्रायन ने उत्तर दिया, 'नहीं'।

कुछ भी हो, मि० वॉसवर्थ के दिमाग में लोगो से अफसोस जाहिर कराने की भावना अवश्य प्रवल रही थी। उन्होंने इस वात को स्वीकार किया कि उनका विचार एक "प्रायश्चित्त-गृह" वनाने का था। लेकिन उन्होंने इस वात से इन्कार किया कि इस इमारत मे दस हजार रुपये लगे थे। इन घटनाओ के विस्तृत वर्णन पढने के इच्छुको को तो काग्रेस-कमिटी के सामने दी गई गवाहिया और काग्रेस की रिपोर्ट ही पढनी चाहिए।

दुर्घटनाओं के वाद

गाधीजी के हृदय को, घटनाओ के ऐसा अकल्पित रूप धारण कर लेने मे वहुत वडा धक्का लगा। उन्होंने इस वात को स्वीकार किया कि मैंने हिमालय के समान महान् भूल की है। अत. उन्होने एक ओर तो सत्याग्रह को स्थगित कर दिया और दूसरी ओर यह घोषणा की, कि मैं शान्ति स्थापित करने में हर प्रकार से सहायता करने को तैयार हूँ। लॉर्ड चेम्सफोर्ड ने १४ अप्रैल १९१९ को एक हुक्म निकाला,

जिसमें स्पष्ट शब्दो में सरकार की यह इच्छा घोषित की गई थी कि वह उत्पातो का शीघ्र ही अन्त कर देने के लिए जितनी शक्ति उसके पास है उस सब को लगा देगी। इसी बीच तीसरे-अफगान-युद्ध ने पजाव की स्थिति को और भी पेचीदा बना दिया। ४ मई को सारी फौज युद्ध के लिए तैयार कर ली गई थी। इधर फौजी कानून अपने खूनी कारनामो को ११ जून तक बराबर चलाता रहा और रेलवे के अहातो में तो यह बहुत दिनो तक इसके बाद भी जारी रहा था। फौजी कानून को अनावश्यक-रूप से एक मुद्दत तक जारी रखने के विरोध में सर शकरन् नायर ने १९ जुलाई को वाइसराय की कार्यकारिणी से इस्तीफा दे दिया। इस सारे समय में पजाव पर एक कठोर सेंसर विठा दिया गया था। एण्डरूज साहब को पजाब की भूमि में कदम रखने की मनाही कर दी गई थी। बाद मे उन्हें गिरफ्तार करके अमृतसर भेज दिया। यह मई मास के प्रारम्भ की बात है। मिस्टर ई० नार्टन बैरिस्टर को, जो कि पजाब इसलिए जाना चाहते थे कि वहा कैदियो की पैरवी करें, पजाब मे घुसने की मनाही कर दी गई थी। चारो ओर से पजाब में हुए अत्याचारो की जाच के लिए एक कमीशन बैठाने की पुकार मच रही थी। खास फौजी अदालतो-द्वारा जो लोगो को घातकी और जगली सजायें दी गई थी उन्हे भी कम करने के लिए एक देश-व्यापी माग थी। लाला हरकिशनलाल को, जो कि एक प्रतिष्ठित कांग्रेसी और बहुत बडे धनिक व्यक्ति थे, आजन्म काले-पानी की सजा दी गई थी। ४० लाख रुपये के लगभग उनकी सारी सम्पत्ति भी जब्त करने का हुक्म दिया गया था।

सितम्बर १९१९ में वाइसराय ने हन्टर-कमीशन की नियुक्ति की घोषणा की, कि वह पजाब के उपद्रवो की जाच करेगा। परन्तु इसके साथ ही, १८ सितम्बर को, इनडेम्निटी-बिल आया, जो कि आमतौर पर फौजी कानून के साथ आया करता है। पण्डित मदनमोहन मालवीय ने इसे मुल्तवी कराने के लिए बहुतेरा जोर लगाया, वह साढे चार घटे तक बराबर बोले, लेकिन जवाब यह दिया गया कि बिल की मशा केवल कानूनी सजा से रहित रखने की ही है—उन अधिकारियो को जिन्होंने 'शान्ति और व्यवस्था के कायम रखने की इच्छा से प्रेरित होकर ही' सब कुछ किया था। फिर भी उनके साथ महकमे की कार्रवाई तो की ही जा सकती है।

सर दीनशा वाचा ने यह घोषित किया कि इनडेम्निटी-बिल के सम्बन्ध में सरकार का जो रुख है वह ठीक है। श्रीमती बेसेण्ट, जो अबतक बराबर गाधीजी से लडती रही थी, बोली कि रौलट-बिल मे कोई भी ऐसी बात नहीं है जिसपर कि किसी ईमानदार नागरिक को एतराज हो सके। "जब लोगो की भीड सिपाहियों

पर रोडे बरसावे तब सिपाहियो को गोली के कुछ फैर करने की आज्ञा दे देना अधिक दयापूर्ण है।" इस लेख के बाद ही श्रीमती बेसेण्ट के नाम के साथ यह वाक्य—"ईंट के रोडो के बदले मे बन्दूक की गोलिया"—सदा के लिए जुड गया था। इस समय श्रीमती बेसेण्ट की लोकप्रियता रसातल को पहुँच गई थी।

२० और २१ अप्रैल को महासमिति की बैठक हुई, उसमें सरकार ने गाधीजी को दिल्ली और पजाब से देश-निकाले का जो हुक्म दिया था उसका विरोध किया गया और पजाब में किये गये अत्याचारो की जाच करने पर जोर दिया गया। देश में जो गम्भीर राजनैतिक परिस्थिति पैदा हो गई थी उसको मद्देनजर रखते हुए श्री विट्ठलभाई पटेल और श्री नृसिंह चिन्तामणि केलकर का एक शिष्ट-मण्डल इग्लैण्ड भेजने का भी निश्चय हुआ। ये लोग २९ अप्रैल १९१९ को इग्लैण्ड के लिए रवाना भी हो गये थे। ८ जून को महासमिति की दूसरी बैठक इलाहाबाद में हुई। इधर गवर्नर-जनरल ने २१ अप्रैल को ही एक आर्डिनेन्स जारी कर दिया था, जिसमे पजाब की सरकार को यह अधिकार दे दिया था कि ३० मार्च तक जितने जुर्म हुए हो उनका मुकदमा वह खास फौजी अदालत द्वारा करा सके। गिरफ्तारशुदा लोगो को अपने इच्छानुसार वकील चुनने की इजाजत नही थी। देश के सारे प्रमुख पत्रो के सम्पादको ने, श्रीमती बेसेण्ट ने और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने भी, एण्डरूज साहब से अनुरोध किया था कि वह पजाब जाकर दुर्घटना और उपद्रव के सम्बन्ध में स्वतन्त्र रूप से जाच करें। पर वह वहा गिरफ्तार कर लिये गये। ८ जून की बैठक में इस और अन्य दूसरे मामलो पर विचार हुआ था। उसमें यह बात भी सुझाई गई कि तहकीकात के लिए जो कमिटी नियत हो वह पजाब जाकर इस बात की भी जाच करे कि सर माइकेल ओडायर के शासन में फौज के लिए रगरूट भर्ती करने में किन हथकण्डो और ढगो को काम मे लाया गया था, किस प्रकार 'लेबर कोर' मे आदमियो को भर्ती किया गया था, किस प्रकार लडाई के लिए कर्ज लिया गया, और फौजी कानून के दिनो में किस प्रकार शासन किया गया था। मि० हार्निमैन को इसलिए देश-निकाला कर दिया गया था, कि उन्होने 'बाम्बे क्रानिकल' में सरकार की पजाब-सम्बन्धी नीति की कडे शब्दो में निन्दा की थी। महासमिति ने इस सम्बन्ध में भी एक प्रस्ताव पास किया कि सरकार हार्निमैन साहब को दिये गये देश-निकाले के हुक्म को मसूख कर दे।

यग इण्डिया

यहा पर प्रसगवश यह बात भी बता देना अनुचित न होगा कि हार्निमैन

साहव के चले जाने के कारण लोगो को एक राष्ट्रीय पत्र की आवश्यकता अनुभव होने लगी, जिसकी 'यग इण्डिया' द्वारा पूर्ति करने का यत्न किया गया। प्रारम्भ में 'यग इण्डिया' को श्री जमनादास द्वारकादास ने होमरूल के दिनो मे निकाला था। वाद मे वह एक सस्था के हाथो में आ गया। श्री शकरलाल वैकर इस सस्था के एक सदस्य थे। जव मि० हार्निमैन को देश-निकाला दे दिया गया, और 'वाम्बे क्रानिकल' के ऊपर कडा सेंसर विठा दिया गया था, तव गाधीजी ने 'यग इण्डिया' को अपने हाथो में ले लिया।

पंजावकाण्ड की जांच

हा, तो फिर महासमिति ने एक कमिटी इसलिए नियुक्त की कि वह पजाव की दुर्घटनाओ की जाच करे, इस सम्बन्ध में इग्लैंड तथा भारत दोनो स्थानो में आवश्यक कानूनी कार्रवाई करे और इस कार्य के लिए धन एकत्र करे। इस कमिटी मे वाद को यानी १६ अक्तूवर को, गाधीजी, एण्डरूज, स्वामी श्रद्धानन्द तथा अन्य लोगो को भी शामिल कर लिया गया था। नवम्वर के प्रारम्भ में मि० एण्डरूज को तो यकायक ऐन मौके पर दक्षिण-अफ्रीका चला जाना पडा था। उन्होंने गवाहियो के रूप में जितनी सामग्री एकत्र की थी वह सव काग्रेस-कमिटी को देते गये थे। यह भी निश्चय हुआ था कि लन्दन और वम्वई के श्री नेविली और कैप्टिन को, जो कि क्रमश दोनो स्थानो में सालिसिटर थे, इस कमिटी में सहायता के लिए रख लिया जाय। महासमिति की तरफ से एक तार पण्डित मदनमोहन मालवीय ने प्रधानमत्री को, एक भारत-मत्री को, और एक लॉर्ड सिंह को दिया था, जिनमें इन लोगो से अनुरोध किया गया था कि जवतक काग्रेस की जाच पूरी न हो जाय तवतक फौजी कानून के अनुसार दी गई तमाम सजायें मुल्तवी रक्खी जायें। इस समय तक सर सत्येन्द्रप्रसन्न सिंह प्रिवी-कौंसिल के मेम्बर हो गये थे, नाइट हो गये थे, और लॉर्ड हो गये थे। तभी से वह रायपुर के लॉर्ड सिंह कहलाये जाने लगे। वह उपभारत-मत्री नियुक्त किये गये, और वाद में उन्होंने ही लॉर्ड सभा मे गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया विल पेश किया था। १९ और २० जुलाई को कलकत्ते में महासमिति की वैठक फिर हुई, जिसमें विचारणीय मुख्य वात यह थी कि कांग्रेस का आगामी अधिवेशन कहा किया जाय और उसे अमृतसर में ही करने का निश्चय हुआ। एक प्रस्ताव-द्वारा उस माग को फिर दोहराया गया था जिसमें सम्राट् की सरकार-द्वारा जाच करने के लिए एक कमिटी नियुक्त करने की प्रार्थना की गई थी। यहा यह वात स्मरण रखने योग्य है कि १९

जुलाई को ही सर शकरन् नायर ने वाइसराय की कार्यकारिणी से फौजी-कानून जारी रखने के विरोध मे इस्तीफा दे दिया था। महासमिति ने उनके इस्तीफे की वडी कृतज्ञता-पूर्वक सराहना की, और उनसे प्रार्थना की कि वह तुरन्त ही इग्लैण्ड के लिए रवाना हो जायँ और वहा जाकर भली प्रकार से पजाव के मामले को रक्खे और उन लोगो के सारे दु खो को दूर करावे। १० हजार रुपये की एक रकम पजाव-कमिटी के लिए जमा की गई।

सत्याग्रह स्थगित

२१ जुलाई को गाधीजी का वक्तव्य प्रकाशित हुआ, जिसमे सत्याग्रह को कुछ समय के लिए स्थगित करने का जिक्र था। वह इस प्रकार है —

"वम्वई के गवर्नर के द्वारा भारत-सरकार ने मुझे एक बहुत ही गभीर चेतावनी दी है, कि सत्याग्रह के फिर से आरम्भ करने से जनता के लिए बहुत ही बुरा परिणाम निकल सकता है। वम्वई के गवर्नर ने मुझे मिलने के लिए वुलाया था, उस समय यह चेतावनी और भी जोर के साथ दोहराई थी। इन चेतावनियो को और दीवानवहादुर एल० ए० गोविन्द राघव ऐयर, सर नारायण चदावरकर तथा अन्य कई सम्पादको ने जो खुले-रूप से इच्छा प्रकट की उन सवको ध्यान में रखकर, मैंने वहुत सोच-विचार करने के वाद यह निश्चय किया है कि फिलहाल सत्याग्रह आरम्भ न करूँ। मै यहा पर इतना और वता देना चाहता हूँ कि उन कुछ मित्रो ने भी, जो गरम-दल के माने जाते है, मुझे यही सलाह दी है, उनका कहना सिर्फ इतना ही था कि इससे सम्भव है वे लोग, जिन्होने सत्याग्रह के सिद्धान्त को भले प्रकार नही समझा है, फिर मार-काट कर वैठें। जब दूसरे सत्याग्रहियो के साथ मै इस नतीजे पर पहुँचा कि अव समय आ गया है कि सविनय भग के रूप में सत्याग्रह शुरू कर दिया जाय, तब मैंने वाइसराय को एक पत्र भेज कर उनपर अपना यह इरादा प्रकट कर दिया और उनसे यह अनुरोध किया था कि वह रौलट-विल को वापस ले लें, एक जोरदार और निष्पक्ष कमिटी शीघ्र नियुक्त करने की घोषणा करें, जिसे यह भी अधिकार रहे कि पजाव की दुर्घटनाओ के सम्वन्ध में दी गई सजाओ की फिर से निगरानी कर सके और वा० कालीनाथ राय (सम्पादक 'ट्रिब्यून') को, जिनके मुकदमे के कागजात देखकर सिद्ध होता है कि उन्हें अन्याय-पूर्वक दण्ड दिया गया है, छोड दे। भारत-सरकार ने श्री राय के मामले मे जो निर्णय किया उसके लिए वह धन्यवाद की पात्र है, यद्यपि इससे उनके साथ पूरा न्याय नही होता। मुझे इस

वात का विश्वास दिलाया गया है कि जिस जाच-कमिटी की नियुक्ति के लिए मैंने जोर दिया था वह नियुक्त की जा रही है। सद्भावना के इन प्रमाणों के मिलते हुए मेरी ओर से यह वडी ही नासमझी होगी, यदि मैं सरकार की चेतावनी पर ध्यान न दूँ। वास्तव में मेरा सरकार की सलाह मान लेना लोगों को सत्याग्रह का पाठ पढाना है। एक सत्याग्रही कभी सरकार को विषम स्थिति में डालना नहीं चाहता। मैं अनुभव करता हूँ कि मैं देश की, सरकार की और उन पजाबी नेताओं की, जिन्हें कि मेरी राय में अन्यायपूर्वक सजा दी गई है, और वह भी बडी ही निर्दयतापूर्वक, और भी अधिक सेवा करूगा, यदि मैं इस समय सत्याग्रह को स्थगित कर दू । मेरे ऊपर यह इलजाम लगाया गया है कि आग तो मैंने ही लगाई थी। अगर मेरा कभी-कभी सत्याग्रह करना आग लगाना है, तो रौलट-कानून और उसे कानून की किताब में ज्यों-का-त्यों बनाये रखने का हठ देश में हजार स्थानों में आग लगाना है। सत्याग्रह फिर से न होने देने का एक-मात्र उपाय यही है कि उस कानून को वापस ले लिया जाय। भारत-सरकार ने उस बिल के समर्थन मे जो कुछ भी प्रमाण दिये हैं उनमें भारतीय-जनता के दिल पर कोई ऐसा असर नहीं हुआ है जिससे उसके विरोधी रुख मे कोई परिवर्तन हो जाय।" अन्त मे गांधीजी ने अपने साथी सत्याग्रहियों को सलाह दी कि वे हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य को बढावे और स्वदेशी के प्रचार में सबका सहयोग प्राप्त करे।

इस समय इग्लैण्ड में लॉर्ड सेलबार्न की अध्यक्षता में संयुक्त पार्लमेण्टरी कमिटी की बैठक हो रही थी। अब हम यहा भारत से इग्लैण्ड को गये हुए शिष्ट-मण्डलों की कार्रवाई को देखें, यद्यपि हमारा मुख्य सम्बन्ध कांग्रेसी शिष्ट-मण्डल से ही है, जिसमे श्री विट्ठलभाई पटेल और वी० पी० माधवराव ने बडी योग्यता से भारतवर्ष का पक्ष उपस्थित किया था। इनके साथ लोकमान्य तिलक, विपिनचन्द्रपाल गणेश श्रीकृष्ण खापर्डे डाक्टर प्राणजीवन मेहता, ए० रंगास्वामी आय्यगर, नृसिंह चिन्तामणि केलकर, सय्यद हसनइमाम डॉ० साठये, मि० हार्निमैन आदि भी थे। इस शिष्ट-मण्डल का काम था कि वह ब्रिटिश जनता के सामने भारतवर्ष के दावे को रक्खे। श्री वी० पी० माधवराव मैसूर-राज्य के भूतपूर्व दीवान थे। उनकी शिष्टता और सौजन्य तथा स्पष्टवादिता और स्वतंत्रता-प्रिय स्वभाव ने कांग्रेस को इग्लैण्ड की जनता की नजरों में बहुत ही ऊँचा उठा दिया था और मि० बेन स्पूर (एम० पी०) जैसों ने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी।

भारतीय प्रतिनिधियों की उपस्थिति का लाभ उठाकर, इग्लैण्ड के विभिन्न

भागो में प्रचारार्थ सभाओ का आयोजन किया गया। मजदूर-दल ने कामन-सभा के भवन में उन्हें विदाई की दावत दी और भारतीय राष्ट्र-महासभा को सहानुभूति का सन्देश भेजा। स्वतन्त्र-मजदूर-दल ने ग्लासगो में हुए अपने सम्मेलन में एक प्रस्ताव पास किया, जिसमें आयर्लण्ड और मिस्र के साथ-साथ भारत को भी आत्मनिर्णय का अधिकार देने के लिए कहा गया। इसी प्रकार 'नैशनल पीस कौंसिल' ने भी अपने वार्षिकोत्सव में प्रस्ताव पास किया; और मजदूर-दल ने स्कारबरो में होनेवाले अपने वार्षिकोत्सव में माग की कि "अल्पसख्यको के लिए पर्याप्त सरक्षण रखते हुए, आत्म-निर्णय के सिद्धान्त के अनुसार, भारतीय सरकार का पुनस्सगठन किया जाय।" पजाब के जोरो-जुल्म का तो सभी सस्थाओ ने समान-रूप से प्रबल विरोध किया।

महासमिति के प्रस्तावानुसार, जून के अन्तिम सप्ताह में स्वामी श्रद्धानन्द, प० मोतीलाल नेहरू और मदनमोहन मालवीय पजाब में हुई दुर्घटनाओ की जाच के लिए पजाब गये। कुछ ही समय बाद दीनबन्धु एण्डरूज भी वहा पहुँच गये। इसके बाद प० मोतीलाल और मालवीयजी लौट आये, लेकिन मोतीलालजी दुबारा फिर वहा गये। प० जवाहरलाल नेहरू और पुरुषोत्तमदास टण्डन एण्डरूज साहब के साथ हुए। गाधीजी भी, जैसे ही उनपर से प्रवेश-निषेध का हुक्म उठाया गया, १७ अक्तूबर को सबके साथ जा मिले। पजाब के लोग भयभीत हो रहे थे, लेकिन ज्यो ही गाधीजी उनके पास पहुँचे त्योही उनमें फिर से आत्म-विश्वास आ गया। लाहौर और अमृतसर मे, दोनो जगह, उनके आगमन को विजय से कम नही समझा गया। इसी बीच सरकारी जाच की घोषणा हुई। जिन बातो की जाच सरकारी जाच-कमिटी करनेवाली थी उनकी मर्यादा काग्रेस की जाच से बहुत कम थी। फिर भी सरकारी कमिटी से सहयोग करना ठीक समझा गया। चित्तरजन दास तुरन्त कलकत्ता से पजाब आये और काग्रेस की ओर से हण्टर-कमीशन के सामने हाजिर हुए। लेकिन काग्रेस-उप-समिति को ऐसी कठिनाइयो का सामना करना पडा जिनकी पहले कल्पना भी न थी, इसलिए दुर्घटनाओ की जाच करनेवाली कमिटी (हण्टर-कमीशन) से उसको अपना सहयोग हटा लेना पडा। इस समय की परिस्थिति का इतिहास एक आवेदन-पत्र में अकित है। काग्रेस-उप-समिति चाहती थी कि मार्शल-लॉ के कुछ कैदियो को पहरे के अन्दर जाच के समय हाजिर रहने व जाच में मदद करने के लिए बुलाया जाय, लेकिन इस बात की इजाजत नही दी गई। उप-समिति ने इसपर पजाब-सरकार के खिलाफ भारत-सरकार और भारत-मत्री से अपील की, लेकिन उन्होंने हस्तक्षेप करने से इन्कार किया। ऐसी हालत में उन लोगो ने भी, जो कि फौजी कानून के मातहत जेलो में थे, सहयोग न करने के

निश्चय की ही ताईद की—और, बाद के अनुभव ने भी इस निश्चय को उचित ही सिद्ध किया। और तो और, पर उसकी जाच की परिधि इतनी सीमित थी कि वे घटनाये भी उसके कार्य-क्षेत्र मे समाविष्ट नही थी, जो न्यायत अप्रैल १९१९ की घटनाओ में ही सम्मिलित होती हैं पर अनुचित रूप से उन्हें उससे अलग रक्खा गया अतएव काग्रेस ने एक कमिटी के द्वारा अपनी जाच अलग शुरू की। गाधीजी, मोतीलाल नेहरू, चित्तरजन दास, फजलुल हक और अब्बास तैयबजी इस कमिटी के सदस्य थे और के० सन्तानम् मत्री। लेकिन इसके बाद शीघ्र ही प० मोतीलाल नेहरू अमृतसर-काग्रेस के सभापति निर्वाचित हुए, इसलिए उन्होने पद-त्याग किया और श्री मुकुन्दराव जयकर उनकी जगह सदस्य बनाये गये। लन्दन के सालिसिटर मि० नेविली भी, जिनके सुपुर्द प्रिवी-कौंसिल में की जानेवाली अपीलो का काम था, कमिटी के साथ थे। साथ ही यह भी निश्चय हुआ कि जालियावाला-बाग को प्राप्त करके वहा शहीदो का एक स्मारक बनाया जाय, और उसके लिए मालवीयजी की अध्यक्षता में एक कमिटी बना दी गई। प्रसगवश यह भी बता देना चाहिए कि अब यह बाग ले लिया गया है और राष्ट्र की ही सम्पत्ति है।

परन्तु गैर-सरकारी रिपोर्ट अमृतसर-काग्रेस तक तैयार न हो सकी। तब सोचा तो यहा तक गया कि सुविधापूर्वक विस्तृत-रूप से जब वह तैयार हो जाय तब उसपर विचार करने के लिए काग्रेस का विशेष अधिवेशन किया जाय। लेकिन इतना तो कमिटी ने कही दिया था, कि "हण्टर-कमीशन के सामने जनरल डायर ने जो कुछ कहा है उससे यह बात बिलकुल निस्सदिग्ध हो गई है कि उसका १३ अप्रैल का कार्य निर्दोष, निरीह, नि शस्त्र मर्दो और बच्चो के जान-बूझ कर किये हुए नृशस हत्या-काण्ड के सिवा और कुछ नही है। यह ऐसी हृदय-हीन और बुजदिल पशुता है जिसकी आधुनिक काल में और कोई मिसाल नही मिलती।" जो हो, कुल मिलाकर १९१९ के साल की परिस्थिति न केवल निराशाजनक बल्कि बडी भयावह भी थी।

तिलक का प्रतिसहयोग

महायुद्ध में जो शक्तिया लगी हुई थी उन्हें पार्लमेण्ट की तरफ से धन्यवाद देने का प्रस्ताव पेश करते हुए मि० लायड जार्ज ने कहा था—"हिन्दुस्तान के विषय में कहूँ तो, उसने हमारी इस विजय में, और खास कर पूर्व में, जो प्रशसनीय सहायता दी है उसके कारण उसे यह नया अधिकार मिल गया है कि जिससे हम उसकी मागो पर ज्यादा ध्यान दें। उसका यह दावा इतना जोरदार है कि हमें अपने तमाम पूर्व-विश्वासो

और (हमारी) आशकाओ को, जो कि उसकी प्रगति के रास्ते में रुकावट डाल सकते हैं, दूर कर डालना चाहिए।" जहातक इस 'नये दावे' से सम्बन्ध है, अस्थायी सधि के बाद भारत-सरकार ने भारत की इन गौरवपूर्ण सेवाओ का बदला धारा सभाओ और अधिकारियो-द्वारा दमन के रूप में चुकाया है। माण्ट-फोर्ड बिल ने लोगो के दिलो को और भी आघात पहुँचाया। द्विविध प्रणाली, कौंसिल मे नामजद-सदस्यो का रहना, राज्य-परिपद्, 'सर्टिफिकेशन' और 'विटो' के अधिकार, ऑर्डिनेन्स बनाने की सत्ता और ऐसी तमाम पीछे हटानेवाली बाते उस बिल में थी। अब १९३५ के कानून म ये और भी बढा-चढा कर दाखिल कर दी गई है। यही वे भयानक राक्षस थे, जिनका मुकाबला करने के लिए अमृतसर-काग्रेस बुलाई गई थी। यह बताने की जरूरत नही है कि इस बीच आपस में फूट फैलाने और तोड-फोड करनेवाली शक्तिया अवश्य जोर-शोर के साथ हिन्दुस्तान में काम कर रही होगी। क्योकि भारतीय राजनीति में ये हमेशा काम करती रही है और विदेशी-शासन में तो ये अपना जोर जताती ही है। खुद होमरूल-लीग में भी उनके दर्शन हुए थे। अमृतसर में वे अपने पूरे दल-बल के साथ प्रकट हुई। लोकमान्य तिलक उस समय तक इग्लैण्ड से लौट आये थे। सर वेलण्टाइन चिरोल पर चलाये गये मान-हानि के मुकदमे में उनकी हार हो चुकी थी। उन्होने यह सुनते ही कि पार्लमेण्ट में बिल पास हो गया है, सम्राट् को भारतीय राष्ट्र की तरफ से बधाई का तार भेजा। उस समय वह अमृतसर जा रहे थे। उन्होने सुधारो को कार्यान्वित करने के सम्बन्ध में 'प्रतियोगी-सहयोग' करने का आश्वासन दिया था। यह शब्द गढा हुआ तो था मि० बैपटिस्टा का, और तार का मजमून बनाया था केलकर साहब ने। काग्रेसी हलके में इसकी कल्पना भी नही की जाती थी और, इसलिए, अमृतसर-काग्रेस भिन्न-भिन्न विचारवालो के सघर्ष का एक अखाडा ही बन गई।

अमृतसर-कांग्रेस

अमृतसर-काग्रेस में श्री चित्तरजन दास प्रमुखता से सामने आये। उस अधिवेशन में उपस्थित करने के लिए प्रस्ताव का मसविदा दास बाबू बनाकर लाये थे और सशोधन के बाद विपय-समिति ने उसे मजूर किया था। वह इस प्रकार है —

"(क) यह काग्रेस अपने पिछले वर्ष की इस घोषणा को दोहराती है कि भारतवर्ष पूर्ण उत्तरदायित्वपूर्ण शासन के योग्य है और इसके खिलाफ जो बातें समझी या कही जाती है उनको यह काग्रेस अस्वीकार करती है।

(ख) वैध सुधारो के सम्बन्ध मे दिल्ली की काग्रेस-द्वारा पास किये गये

प्रस्तावों पर भी कायम हुई है और इसकी राय है कि सुधार-कानून अपूर्ण, असंतोषजनक और निराशापूर्ण है।

(ग) आगे यह कांग्रेस अनुरोध करती है कि आत्म-निर्णय के सिद्धान्त के अनुसार भारत में पूर्ण उत्तरदायी सरकार कायम करने के लिए पार्लमेण्ट को शीघ्र कार्रवाई करनी चाहिए।"

गांधीजी ने 'निराशापूर्ण' शब्द को हटा देने और उसमें चौथा पैरा और जोड़ने का संशोधन पेश किया जो इस प्रकार है —

"(घ) जबतक ऐसा न हो, यह कांग्रेस शाही घोषणा में प्रदर्शित मनोभावों का अर्थात् यह कि 'यह नया युग मेरी प्रजा और अधिकारी दोनों के इस निश्चय के साथ आरम्भ हो कि वे सबके एक ध्येय के लिए मिलकर काम करेंगे', राजभक्तिपूर्वक उत्तर देती है और विश्वास रखती है कि अधिकारी और प्रजा दोनों मिलकर शासन-सुधारों को कार्यान्वित करने में इस तरह सहयोग करेंगे कि जिससे पूर्ण उत्तरदायी शासन शीघ्र स्थापित हो। और यह कांग्रेस माननीय माण्टेगु को इस सिलसिले में किये उनके परिश्रम के लिए हार्दिक धन्यवाद देती है।"

कांग्रेस ने दास बाबू के असली प्रस्ताव और गांधीजी के पूर्वोक्त टुकड़े की जगह यह टुकड़ा जोड़कर मंजूर किया—"यह कांग्रेस विश्वास करती है कि जबतक इस प्रकार की कार्रवाई नहीं की जाती तबतक, जहांतक संभव हो, लोग सुधारों को इस प्रकार काम में लावेंगे जिससे भारतवर्ष में शीघ्र पूर्ण उत्तरदायी शासन कायम हो सके। सुधारों के सम्बन्ध में माननीय माण्टेगु साहब ने जो मिहनत की है उसके लिए यह कांग्रेस उन्हें धन्यवाद देती है।" श्रीमती बेसेण्ट ने इनकी जगह जो प्रस्ताव रक्खा था वह गिर गया।

फिर भी यह समझौता असंदिग्ध नहीं था—हालांकि देशबन्धु ने अपने भाषण में यह साफ कर दिया था कि जहां कहीं सम्भव होगा वहां सहयोग और जहां आवश्यक होगा वहां अड़गा-नीति काम में लाने का राष्ट्र का अधिकार सुरक्षित है। परन्तु इसमें विधि की गति तो देखिए—दास बाबू या तो अड़गा-नीति चाहते थे या सुधारों को अस्वीकृत कर देना—क्या इसे हम असहयोग न कहें? और गांधीजी वहां सहयोग के पुरस्कर्ता बने हुए थे। इसमें कोई शक नहीं कि वह सारी कांग्रेस गांधीजी की ही एक विजय थी। उनके व्यक्तित्व, दृष्टि-बिन्दु, सिद्धान्त और आदर्श, नीति-नियम एवं उनके सत्य और अहिंसाधर्म का प्रभाव पहले ही कांग्रेस पर पड़ चुका था। अमृतसर-कांग्रेस में ५० प्रस्ताव पास हुए, जिनमें ठेठ लॉर्ड चेम्सफोर्ड को वापस बुलाने से लेकर कानून माल्गुजारी,

मजदूरो की दुरवस्था और तीसरे दर्जे के मुसाफिरो के दु खो की जाच की माग तक के प्रस्ताव थे। खुद काग्रेस में ३६ हजार लोग आये थे, जिनमे ६ हजार मामूली प्रतिनिधि थे और कोई १२०० किसान-प्रतिनिधि भी थे। काग्रेस के सारे वातावरण में मानो बिजली फैली हुई थी। पजाब और उसपर हुए अत्याचारो पर स्वभावत ही सबसे अधिक ध्यान दिया गया था। गाधीजी उत्सुक थे कि पजाब और गुजरात में जो मार-काट लोगो की तरफ से हो गई थी उसकी निन्दा की जाय। लेकिन विषय-समिति में उनका प्रस्ताव गिर गया। गाधीजी को इससे निराशा हुई। रात बहुत हो चुकी थी। उन्होने यदि काग्रेस उनके दृष्टि-बिन्दु को न अपना सके तो दृढता परन्तु साथ ही शिष्टता और अदब के साथ काग्रेस मे रहने की अपनी असमर्थता प्रकट की। दूसरे ही दिन सुबह प्रस्ताव न० ५ मजूर हुआ, जो इस प्रकार है—"यह काग्रेस इस बात को स्वीकार करती है कि बहुत अधिक उत्तेजित किये जाने पर (ही) जन-समूह के लोग क्रोध से बावले हुए थे, तो भी पिछले अप्रैल के महीने में पजाब और गुजरात के कुछ हिस्सो में जो ज्यादतिया हुईं और उनके कारण जान-माल का जो नुकसान हुआ उसपर यह काग्रेस दु ख प्रकट करती है और उन कृत्यो की निन्दा करती है।" इस विषय पर गाधीजी ने जो व्याख्यान दिया वह तो बडी उच्चकोटि का और प्रभावशाली था। उन्होने बहुत सक्षेप में अपने सग्राम की योजना और भावी नीति का दिग्दर्शन कराया था। "इससे बढकर कोई प्रस्ताव काग्रेस के सामने नहीं है। हमारी भावी सफलता की सारी कुजी इसी बात में है कि हम इसके मूलभूत सत्य को समझ लें, हृदय से स्वीकार कर ले और उसके अनुसार आचरण भी रक्खें। जिस अश तक हम उसके मूल शाश्वत सत्य को मानने में असमर्थ होगे उसी हद तक हमारी असफलता भी निश्चित है। मैं कहता हूँ कि यदि हम लोगो ने मार-काट न की होती—जिसके कि हमारे पास बहुत प्रमाण हैं और उन्हें मैं आपके सामने पेश कर सकता हूँ, वीरमगाम, अहमदाबाद और बम्बई-काण्ड के उदाहरण दे-देकर कि वहा हमने जान-बूझकर हिंसाकाण्ड किया है—हा, मै मानता हूँ कि डॉ, किचलू, डॉ० सत्यपाल और मुझे पकडकर—मै तो डॉ० सत्यपाल और स्वामीजी का निमत्रण पाकर शान्ति-स्थापना के लिए कमर कसकर जा रहा था, सरकार ने लोगो को भडकने और गरम हो जाने का जबर्दस्त कारण दिया था—तो यह बखेडा न खडा होता, लेकिन उस समय सरकार भी पागल हो गई थी और हम भी पागल हो गये थे। मै कहता हूँ, पागलपन का जवाब पागलपन से मत दो, बल्कि पागलपन के मुकाबले में समझदारी से काम लो और देखो कि सारी बाजी आपके हाथ में है।" कैसे आत्मा को जगानेवाले शब्द हैं

गे, जो अबतक कानों में गूजते हैं। परन्तु सवाल यह है कि क्या लोगों ने उस समय उसके पूरे रहस्य को समझा होगा? सच पूछिए तो फिर कांग्रेस में सारी बातें इसी प्रस्ताव के सुर में हुई थीं। उस समय तक गांधीजी सरकार से सहयोग तोड़ने के लिए न तो राजी थे और न तैयार ही थे। इसीलिए युवराज के स्वागत करने का प्रस्ताव यहां पास किया गया—गोया दिल्ली में जो बात छूट गई थी उसकी पूर्ति यहां की गई। यही कारण है कि अमृतसर में सहयोग के आश्वासनवाले प्रस्ताव में जोड़ा गया टुकड़ा पास हो गया, हालांकि समझौते के कारण वह बहुत-कुछ कमजोर हो गया था। सत्य और अहिंसा को माननेवाले इस प्रस्ताव से मिलते-जुलते प्रस्ताव थे (१) स्वदेशी-सम्बन्धी—हाथ-कताई और हाथ-बुनाई के पुराने धंधों को फिर से जीवित करने की सिफारिश करना, (२) दुधार गाय और सांडों का निर्यात बन्द करने सम्बन्धी, (३) प्रान्तों में आबकारी-नीति-सम्बन्धी और (४) तीसरे तथा मझले-दर्जे के मुसाफिरों के दुःख दूर करने के विषय में। इस श्रेणी के प्रस्तावों के ही ढंग के प्रस्ताव थे—बकरीद पर गोकुशी बन्द कर देने की मुसलमानों-द्वारा की गई सिफारिश के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना और तुर्की एवं खिलाफत के मसले पर ब्रिटिश-सचिवों के विरोधी रुख का विरोध करना। वर्षों के बाद इस अमृतसर-कांग्रेस ने किसानों की ओर ध्यान दिया। मजदूरों की तरफ भी उसने उतनी ही तवज्जह दी। यूनानी और आयुर्वेदिक चिकित्सा-पद्धति की ओर सरकार का ध्यान दिलाया। ब्रिटिश-कमिटी को उसकी सेवाओं के बदले धन्यवाद दिया गया। उसी तरह इंग्लैण्ड के मजदूर-दल को, और खासकर बेन स्पूर को भी। लाला लाजपतराय को भी, उनकी अमरीका में की गई भारत के प्रति सेवाओं के लिए धन्यवाद दिया गया। इसी तरह कांग्रेस के शिष्ट-मण्डल को भी उन सेवाओं के लिए धन्यवाद दिया जो उसने इंग्लैण्ड में की थी। भला 'प्रवासी भारतवासी' भी कैसे छूट सकते थे? ट्रांसवाल-निवासियों से अबतक भी जमीन-जायदाद और व्यापार करने के अधिकार छीने जा रहे थे। पूर्व अफ्रीका में भारतीयों का आन्दोलन अलग अपना सिर उठा रहा था। प्रवासी भारतीयों के लिए की गई एण्डरूज साहब की सेवायें पंजाब में की गई उनकी सेवाओं से कम देश के धन्यवाद की पात्र नहीं थी। कांग्रेस ने खुले-आम इस बात को स्पष्ट किया कि क्यों उसे हण्टर-कमीशन का बहिष्कार करना पड़ा? लेफ्टिनेन्ट-गवर्नर ने "पंजाब के जो नेता कैद हैं उनमें से कुछ को भी, कैदी की तरह हिरासत में भी, कमिटी-रूप में बैठकर अपने वकील को सहायता और सलाह देने की आज्ञा नहीं दी" इसलिए कांग्रेस ने उसके बहिष्कार को योग्य और शानदार कार्य माना और उप-समिति को अपनी स्वतंत्र रिपोर्ट का आदेश

किया। कांग्रेस ने सर शंकरन् नायर को इस्तीफा दे देने पर बधाई दी और लॉर्ड चेम्स-फोर्ड को वापस बुलाने, जनरल डायर को अपने पद से हटा देने और सर माइकेल ओडायर को फौजी कमिटी की सदस्यता से हटा देने की माग की।

पंजाब में किये गये अत्याचारों के प्रश्न पर विचार करते हुए कांग्रेस ने उस [illegible], जो वहां लोगों पर फौजी-कानून लागू की गई थी, तथा फौजी अदालतों के द्वारा [illegible] और [illegible] के खिलाफ जो सजायें दी गईं उन्हें रद करने की प्रार्थना की। मौलिक अधिकारों सम्बन्धी भी एक प्रस्ताव पास हुआ, जिससे शासन-सुधार-सम्बन्धी प्रस्ताव का वजन और बढ़ गया। इस प्रस्ताव को पास कराने के लिए [illegible] विजयराघवाचार्य जोर देते रहे। इसी तरह कांग्रेस ने प्रेस-ऐक्ट और रौलट-ऐक्ट को उठा देने और सम्राट् की ओर से [illegible] की घोषणा होने पर भी जो कैदी [illegible] जेल में पड़े हुए थे उनकी रिहाई के लिए जोर दिया।

मि० हॉर्निमैन का देश-निकाला भी कांग्रेस के विरोध का एक विषय था और उसे रद करने पर बड़ा जोर दिया गया। यह भी आग्रह किया गया कि ब्रह्मदेश को भी सुधार दिये जावें और दिल्ली तथा अजमेर-मेरवाड़ा को पूरे प्रान्त के हक दे दिये जावें। इन और प्रस्तावों में [illegible] तथा लोगों से रुपया वसूल करने की कार्रवाई की गई और अधिवेशन खतम हुआ। इस अधिवेशन में इतना अधिक काम करना पड़ा कि सभापति पण्डित मोतीलाल नेहरू बहुत थक गये, उनकी आवाज बैठ गई। विषय-समिति की बैठकें रात रात भर चलतीं। पंजाब में सर्दी भी बड़े जोरों की पड़ती थी।

उस समय की दो घटनायें मनोरंजक हैं और उनका वर्णन यहां कर देना ठीक होगा। राजनैतिक कैदियों को छोड़ देने की शाही घोषणा हुई। कांग्रेस के अधिवेशन के एक दिन पहले वह अमृतसर पहुँची और उसके साथ ही आये अली-भाई! बस, लोगों के उत्साह और खुशी की सीमा न रही। एक बड़ा जुलूस निकला और मौ० मुहम्मदअली ने कहा कि मैं छिन्दवाड़ा-जेल से 'रिटर्न-टिकट लेकर' आ रहा हूँ। तबसे उनके ये शब्द बहुत प्रचलित हो गये हैं। दूसरी घटना लन्दन के एक सालिसिटर मि० रेजिनल्ड नेविल्ली से सम्बन्ध रखती है, जो कुछ दिनों से भारतवर्ष में थे और कांग्रेस-सप्ताह में अमृतसर ही थे। २५ दिसम्बर १९१९ को जालन्धर के तोपखाने के कोई २० गोरे सिपाही रात को (होटल में) उनके कमरे में घुस गये, उनका अपमान किया और पूछा कि एक यूरोपियन होकर तुमने डायर के खिलाफ काम कैसे किया? उनमें

[तीसरा भाग : १९२०-१९२८]

: १ :

असहयोग का जन्म—१९२०

खिलाफत-सम्बन्धी अन्याय

१९२० का आरम्भ भारतीय राजनैतिक क्षेत्र में दलवन्दियो से हुआ। उदार अर्थात् नरम-दलवाले काग्रेस से अलग हो गये थे और १९१९ के दिसम्बर में कलकत्ते में एकत्र हुए थे। काग्रेस में भी ताजा होनेवाली घटनाओ के कारण बाकी बचे काग्रेसियो में फूट के लक्षण दिखाई पड रहे थे। अमृतसर में मुख्य प्रश्न था असहयोग या अडगा। नये साल का आरम्भ होने के कुछ महीने बाद अमृत-सर मे बने दलो की स्थिति उलट गई। गाधीजी ने असहयोग का बीडा उठा लिया था और जो लोग अमृतसर में उनके सहयोग के विरुद्ध थे वे अब एकबार फिर उनके खिलाफ एकत्र हो गये थे। यह आकस्मिक परिवर्तन किस कारण हुआ? असली बात यह थी कि पजाब के अत्याचार और खिलाफत के सवाल पर जनता में खलबली बढ रही थी।

१९२० की घटनाये खिलाफत के महान् आन्दोलन को लेकर हुई थी। यहा खिलाफत के प्रश्न की उत्पत्ति का परिचय कराना आवश्यक है। महायुद्ध के समय प्रधान-मत्री मि० लायड जार्ज ने भारत के मुसलमानो को कुछ वचन दिये थे, जिनके कारण भारतीय मुसलमान देश से बाहर गये और अपने तुर्की सहधर्मियो से लडे। जब युद्ध समाप्त हो गया तो दिये गये वचनो का बुरी तरह भग किया गया। ब्रिटिश-प्रधान-मत्री के विश्वासघात से भारत के मुसलमानो में क्रोध की लहर फैल गई। लायड जार्ज ने स्पष्ट शब्दो में वचन दिया था, कि "हम टर्की को उसके एशिया-माइनर और थ्रेस के प्रसिद्ध और समृद्ध द्वीपो से वचित करने के लिए, जिनकी आबादी मुख्यत तुर्क है, लडाई नही लड रहे है।" मुसलमानो का कहना था कि जजीरतुलअरब, जिसमें मेसोपोटामिया, अरबिस्तान, सीरिया, फिलस्तीन और उनके सारे धार्मिक स्थान शामिल है, हमेशा खलीफा के सीधे अधिकार में रहना चाहिए। परन्तु अस्थायी सन्धि

की शर्तों के फल-स्वरूप तुर्की को अपने प्रदेशों से वंचित होना पड़ा। थ्रेस यूनान की नजर कर दिया गया और तुर्की-साम्राज्य के एशियाई प्रदेशों को ब्रिटेन और फ्रान्स ने लीग के आज्ञा-पत्रों के बहाने आपस में बांट लिया। मित्र-राष्ट्रों-द्वारा एक हाई-कमीशन नियुक्त किया गया जो हर लिहाज से तुर्की का असली शासक बना दिया गया था और सुलतान एक कैदी-मात्र रह गया था। भारत के मुसलमान ही नहीं, बल्कि अन्य जातियां भी ब्रिटिश-प्रधान-मन्त्री के इस विश्वासघात से क्रुद्ध हो गई थीं। अमृतसर में प्रमुख कांग्रेसी और खिलाफत नेता एकत्र हुए और उन्होंने लायड जार्ज की करतूत से उत्पन्न हुई देश की स्थिति के सम्बन्ध में चर्चा की और अन्त में गांधीजी के नेतृत्व में खिलाफत आन्दोलन करने का निश्चय किया गया।

१९ जनवरी १९२० को डॉ० अन्सारी की अध्यक्षता में एक शिष्ट-मण्डल वाइसराय से मिला और उन्हें बताया कि तुर्की-साम्राज्य को और सुलतान को खलीफा बनाये रखना कितना आवश्यक है। वाइसराय का उत्तर बहुत कुछ निराशाजनक था। इसपर मुसलमान नेताओं ने एक वक्तव्य प्रकाशित किया, जिसमें उन्होंने यह दृढ़ संकल्प किया कि यदि संधि की शर्तें मुसलमानों के धर्म और भावों के खिलाफ गई तो इसमें मुसलमानों की वफादारी को धक्का लगेगा।

फरवरी और मार्च के महीनों में खिलाफत का प्रश्न भारत के राजनैतिक क्षेत्र में बराबर प्रमुख स्थान प्राप्त किये रहा। १९२० के मार्च में एक मुस्लिम शिष्ट-मण्डल मौलाना मुहम्मदअली के नेतृत्व में इंग्लैण्ड गया। इस शिष्ट-मण्डल से भारत-सचिव की ओर से मि० फिशर मिले। शिष्ट-मण्डल प्रधान-मन्त्री से भी मिला। उसने अपने विचार शान्ति-परिषद् की बड़ी कौंसिल के आगे रखने की अनुमति चाही, पर वह न मिली।

१७ मार्च को लायड जार्ज ने मुस्लिम शिष्ट-मण्डल को उत्तर दिया, जिसके दौरान में उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि ईसाई राष्ट्रों के साथ जिस नीति का व्यवहार किया जा रहा है, तुर्की के साथ उससे भिन्न नीति का व्यवहार नहीं किया जा सकता। परन्तु साथ ही इस बात पर जोर दिया कि वैसे तुर्की तुर्की-भूमि पर अधिकार रख सकेगा, पर जो प्रदेश तुर्की नहीं है उनपर कोई अधिकार न रख सकेगा। बस, इसने तो भारत के खिलाफत-सम्बन्धी सारे प्रश्न की ही जड़ काट डाली। इसलिए १९ मार्च राष्ट्रीय शोक-दिवस नियत हुआ जिस दिन उपवास, प्रार्थनायें और हड़तालें की गईं। गांधीजी फिर मैदान में आये; उन्होंने फिर घोषणा की कि यदि तुर्की के साथ संधि की शर्तें भारत के मुसलमानों के भावों के अनुकूल न हो तो मैं असहयोग-आन्दोलन

शुरू करूँगा। गाधीजी ने अपने विचार अपने १० मार्च के घोषणा-पत्र मे प्रकट कर दिये थे, जिसमें उन्होंने अपनी असहयोग-सम्बन्धी तजवीज पहली बार प्रकट की थी। वह इस प्रकार है —

"यदि हमारी मागे स्वीकार न हुई तो हमें क्या करना चाहिए, इसपर विचार कर लेना आवश्यक है। एक जगली मार्ग खुल्लम-खुल्ला या छिपे हुए युद्ध का है। इस मार्ग को छोडिए, क्योकि यह अव्यवहार्य है। यदि मै सबको समझा सकू कि यह उपाय हमेशा बुरा है, तो हमारे सब उद्देश बहुत जल्दी सिद्ध हो जायँ। कोई व्यक्ति या कोई राष्ट्र हिंसा के त्याग-द्वारा जो शक्ति उत्पन्न कर सकता है उसका मुकाबला कोई नही कर सकता। परन्तु आज जो मैं हिंसा के विरुद्ध तर्क पेश कर रहा हूँ सो इस कारण कि परिस्थिति ऐसी ही है, और ऐसी अवस्था में हिंसा बिलकुल व्यर्थ सिद्ध होगी। अतएव हमारे लिए असहयोग ही एकमात्र औषधि है। यदि यह सब तरह की हिंसा से मुक्त रक्खी जाय तो यही सबसे अच्छी और रामबाण औषधि है। यदि सहयोग के द्वारा हमारा पतन और तेजोनाश होता हो और हमारे धार्मिक भावो को आघात पहुँचता हो, तो असहयोग हमारे लिये कर्त्तव्य हो जाता है। इग्लैण्ड हमसे यह आशा नहीं रख सकता कि हम उन अधिकारो का हनन चुपचाप सह लेंगे जो मुसलमानो के जीवन-मृत्यु का प्रश्न है। इसलिए हमें जड और चोटी दोनो ओर से काम आरम्भ करना चाहिए। जिन लोगो को सरकारी उपाधिया और सम्मान प्राप्त हैं उन्हें वे त्याग देनी चाहिएँ। जो नीचे दर्जे की सरकारी नौकरियो पर है उन्हें भी नौकरिया छोड देनी चाहिएँ। असहयोग का खानगी नौकरियो से कोई वास्ता नही है। पर मै उन लोगो के, जो असहयोग की औषधि को नही अपनाते, सामाजिक बहिष्कार की धमकी देने की बात को पसन्द नही कर सकता। आप होकर नौकरी छोड देना ही जनता के भावो और असतोष की कसौटी है। सैनिको से सेना में काम करने से इन्कार करने को कहने का समय अभी नही आया है। यह उपाय अन्तिम है, पहला नहीं है। जब वाइसराय, भारत-मत्री और प्रधान मत्री हमें दाद ही न दें तभी हमें इस उपाय का अवलम्बन करना चाहिए। इसके अलावा सहयोग तोडने में एक-एक कदम बहुत समझ-बूझकर रखना होगा। हमें धीरे-धीरे बढना होगा, जिससे बडे-से-बडे उत्तेजन पर भी हम अपना आत्म-सयम बनाये रख सकें।"

असहयोग का प्रारम्भ

अशान्ति के इस वातावरण में २५ मार्च १९२० को पजाब के अत्याचारो पर

गैरसरकारी रिपोर्ट प्रकाशित हुई। उसने सर माइकेल ओडायर को ही अपने कटाक्षों का लक्ष्य बनाया। उसने शिक्षित-समुदाय की जिस प्रकार जान-बूझकर अवहेलना की थी, उसने जिस ज्यादती के साथ रगरूटो की भर्ती और चदा-सग्रह किया था और लोकमत को दवा-रक्खा था, उससे वह स्वभावत ही जनता के अभियोग का पात्र बन गया था। १९१९ की घटनायें ६ अप्रैल से आरम्भ हुईं और उनका अन्त १३ तारीख को जालियांवाला-बाग-हत्या-काण्ड के रूप में हुआ। अत वह सप्ताह १९२० में राष्ट्रीय सप्ताह मनाया गया और तबसे अबतक मनाया जाता है। १४ मई १९२० को तुर्किस्तान के साथ सधि की शर्तें प्रकाशित हुईं, जिससे खिलाफत-आन्दोलन ने और भी जोर पकडा। इसके बाद ही गाधीजी ने इस संकल्प की घोषणा की कि मैं शर्तों में सशोधन कराने के लिए असहयोग-आन्दोलन आरम्भ करूँगा। लोकमान्य तिलक ने इस आन्दोलन का समर्थन हृदय से नहीं किया, पर साथ ही विरोध भी नही किया।

इन दोनो महान् नेताओ ने अप्रैल के तीसरे हफ्ते में महत्त्वपूर्ण वक्तव्य प्रकाशित कराये। इसी अवसर पर गाधीजी ने होमरूल-लीग का सभापतित्व ग्रहण, किया, और निम्न वक्तव्य प्रकाशित किया—

"मेरी राय में स्वराज्य शीघ्र प्राप्त करने का साधन स्वदेशी, हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य, हिन्दुस्तानी को राष्ट्र-भाषा मानना, और प्रान्तो का भाषाओ के अनुसार नये सिरे से निर्माण करना है। इसलिए मैं लीग को इन कामो में लगाना चाहता हूँ।

"मैं इस बात को खुले तौर से कहता हूँ कि राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की किसी भी योजना में सुधारो का स्थान गौण है। क्योंकि मैं समझता हूँ कि मैंने जिन कामो का जिक्र किया है यदि राष्ट्रीय शक्ति उनमें लग जाय तो हममें से घोर अतिवादी (extremist) भी जो सुधार चाहेगा वे स्वत ही प्राप्त हो जायगे, और चूंकि इन कार्यों में लगने से पूर्ण स्व-शासन जल्दी-से-जल्दी प्राप्त हो सकता है, इसलिए मैंने इन्हें राष्ट्रीय कार्य-क्रम में सबसे आगे रक्खा है। मैं अखिल-भारतीय होमरूल-लीग को किसी भी रूप में किसी खास दल की सस्था समझने को तैयार नही हूँ। मैं किसी दल से सबध नही रखता और न रक्खूगा। मैं जानता हूँ कि लीग के नियमो के अनुसार कांग्रेस की सहायता करना आवश्यक है। पर कांग्रेस किसी दल-विशेष की सस्था नहीं है। ब्रिटिश-पार्लमेण्ट में सभी दल रहते हैं। समय-समय पर एक-न-एक दल का उसपर अधिकार रहता है, पर वह किसी दल-विशेष की संस्था नही है। मुझे आशा है कि सारे दल कांग्रेस को एक ऐसी राष्ट्रीय सस्था बनाना चाहेंगे जिसके द्वारा वे कांग्रेस की नीति निर्धारित करने के लिए राष्ट्र से अपील कर सकें। मैं लीग की नीति को

ऐसा बनाना चाहता हूँ जिससे कांग्रेस दलबन्दियों से ऊपर रहकर अपना राष्ट्रीय पद कायम रख सके।

"अब मेरे शासन की बारी आई है। मेरा विश्वास है कि देश के राजनैतिक जीवन में कठोर सत्य और ईमानदारी का वातावरण उत्पन्न करना सम्भव है। मैं लीग से यह आशा नहीं रखता कि वह सत्याग्रह के मामले में मेरा साथ देगी, पर मैं शक्ति-भर चेष्टा करूँगा कि हमारे सारे राष्ट्रीय कामों में सत्य और अहिंसा से काम लिया जाय। तब हम सरकार और उनके उपायों से न भयभीत होंगे न उनके प्रति अविश्वास करेंगे। मैं इस प्रसंग पर और अधिक कुछ नहीं कहना चाहता। मैं यह समय पर ही टालता हूँ कि मैंने जो यह साहसपूर्ण वक्तव्य दिया है उससे उत्पन्न होनेवाले अनेक प्रश्नों का वह किस ढंग से निपटारा करता है। फिलहाल मेरा उद्देश अपने काम के औचित्य या उसमें समाविष्ट नीति की सत्यता का प्रदर्शन करना नहीं है, बल्कि लीग के सदस्यों पर विश्वास करके अपने कार्यक्रम पर उनकी आलोचना-सूचनाओं को आमन्त्रित करना है।"

लोकमान्य तिलक ने अपने वक्तव्य में नये सुधारों के प्रति अपनी नीति प्रकट की —

"जैसा कि नाम से प्रकट है, कांग्रेस-प्रजातन्त्र दल में कांग्रेस के प्रति अगाध भक्ति और प्रजातन्त्र के प्रति आस्था काम कर रही है। इस दल का विश्वास है कि भारत की समस्याओं को सुलझाने में प्रजातन्त्र के सिद्धान्त अचूक हैं। यह दल शिक्षा के प्रसार और राजनैतिक मताधिकार को अपने दो सबसे बढ़िया हथियार समझता है। यह दल चाहता है कि जाति या रिवाज के कारण जो नागरिक, राजनैतिक या सामाजिक बंधन लगा दिये गये हैं उन्हें उठा दिया जाय। इस दल का धार्मिक सहिष्णुता और अपने लिए अपने धर्म की पवित्रता में विश्वास है और उस पवित्रता की खतरे से रक्षा करना सरकार का अधिकार और कर्तव्य है। यह दल मुसलमानों के उस दावे का समर्थन करता है जो खिलाफत-सम्बन्धी प्रश्नों का हल इस्लाम-धर्म के सिद्धान्तों और धारणाओं और कुरान के आदेशों के अनुसार चाहता है।

"यह दल मानवता के मंगल और मानव-समाज के भ्रातृत्व की वृद्धि के लिए ब्रिटिश-राष्ट्र-समूह के रूप में भारत की स्थिति में विश्वास करता है, पर भारत के लिए स्वतंत्र शासन का अधिकार चाहता है, और यह चाहता है कि उसे ब्रिटिश-राष्ट्र-समूह के अन्य हिस्सेदारों के साथ, जिनमें स्वयं ब्रिटेन भी शामिल है, बराबरी और भाई-चारे का अधिकार मिले। यह दल राष्ट्र-समूह के भीतर भारतीयों के लिए

बराबरी के नागरिक-अधिकारो पर जोर देता है और चाहता है कि जहा यह अधिकार न मिले उस उपनिवेश के प्रति बदले का व्यवहार किया जाय। यह दल राष्ट्र-सघ का, संसार की शान्ति बनाये रखने, देशो का स्वतत्र अस्तित्व कायम रखने, राष्ट्रो और जातियो की स्वतंत्रता और सम्मान की रक्षा करने, और एक देश के द्वारा दूसरे देश का रक्तशोषण बन्द करनेवाली सस्था के रूप में स्वागत करता है।

"यह दल जोर के साथ प्रतिपादन करता है कि भारत प्रातिनिधिक और उत्तरदायी शासन के सर्वथा योग्य है, और आत्म-निर्णय के सिद्धान्त पर भारत की जनता के लिए अपनी सरकार का ढाचा स्वय तैयार करने का और यह निर्णय करने का कि कौन-सी शासन-प्रणाली भारत के लिए सबसे अच्छी रहेगी, पूर्ण अधिकार चाहता है। यह दल माण्टेगु-सुधार विधान को अपर्याप्त, असन्तोषपूर्ण और निराशाजनक समझता है और इस दोष को दूर करने की चेष्टा करने के निमित्त मजदूरदल के सदस्यो और ब्रिटिश-पार्लमेण्ट के अन्य भारत-हितैषियो की सहायता से शीघ्र-से-शीघ्र एक नवीन सुधार-बिल पास करायेगा जिसका उद्देश भारत में पूर्ण उत्तरदायी शासन स्थापित करना हो और जो सेना पर पूरा अधिकार और अर्थ-सम्बन्धी नीति में पूरी स्वतन्त्रता प्रदान करे और वैधानिक-गारण्टियो-सहित अधिकारो की विस्तृत घोषणा करे। इस उद्देश की सिद्धि के लिए यह दल विचार रखता है और सिफारिश करता है कि भारत में और उन देशो में जो राष्ट्र-सघ के सदस्य है खूब जोर का प्रचार किया जाय। इस मामले में इस दल का गुरुमत्र होगा—'प्रचार, आन्दोलन और सगठन'।

"यह दल माण्टेगु-सुधारो को, जैसे कुछ भी वे है, सफल बनाने का विचार रखता है, जिससे देश में जल्दी ही पूर्ण उत्तरदायी सरकार कायम हो जाय, और इसलिए यह दल, बिना किसी सकोच के, लोकमत को कार्य-रूप देने के लिए जब जैसी जरूरत पड़े सहयोग प्रदान करेगा या वैध-रूप से विरोध करेगा।"

इसके बाद केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकार-सम्बन्धी उन विषयो की एक सूची दी गई थी जिनके लिए उनका दल आन्दोलन करना चाहता था। उनमें दमनकारी कानूनो, राजद्रोह के अभियोगो का जूरी-द्वारा निर्णय, जेल-व्यवस्था में इगलैण्ड के जैसा सुधार, मजदूरो का सगठन और सुधार, जीवन के लिए आवश्यक पदार्थों के निकास पर नियत्रण, स्वदेशी का प्रचार, रेलवे को राष्ट्रीय सम्पत्ति बनाना, सैनिक-खर्च में कमी, कर-व्यवस्था, सैनिक शिक्षा, नौकरिया, राष्ट्रभाषा, राष्ट्रीय एकता, कर-पद्धति प्रान्तिक स्वराज्य, ग्रामवासियो को जगलो के उपयोग करने की छूट, अनिवार्य शिक्षा, ग्राम-पचायत की स्थापना, नशा-निषेध सहयोग-समितिया, आयुर्वेद-पद्धति को

प्रोत्साहन, और औद्योगिक तथा इजीनियरी शिक्षा आदि विषयो का समावेश किया गया था।

अभी मुसलमानो का शिष्ट-मण्डल यूरोप में ही था कि तुर्किस्तान के साथ सधि की प्रस्तावित शर्तें प्रकाशित हो गई और भारत में उनके साथ-ही-साथ वाइसराय का सदेश भी प्रकाशित हुआ, जिसमें भारतीय मुसलमानो को वे शर्तें समझाई गई थी। सदेश में यह बात स्वीकार की गई थी कि सधि की शर्तों से भारत के मुसलमानो के दिलो को अवश्य ठेस पहुँची होगी, पर साथ ही उनसे कहा गया कि वे अपने तुर्की सहधर्मियो के इस दुर्भाग्य को सन्तोष और धैर्य के साथ सहन करें। किन्तु इन शर्तो के प्रकाशन से मुसलमानो के क्रोध का ठिकाना न रहा। हण्टर-कमिटी की रिपोर्ट भी उसी समय प्रकाशित हुई थी। बस, सारे देश में आग लग गई। खिलाफत-कमिटी की बैठक बम्बई में हुई जिसमें गाधीजी के असहयोग-कार्यक्रम पर विचार किया गया· और १९२० की २८ मई को असहयोग भारतीय मुसलमानो का एकमात्र शस्त्र समझ कर अपना लिया गया। ३० मई को महासमिति की बैठक बनारस में हुई, जिसमे हण्टर-कमिटी की रिपोर्ट और तुर्किस्तान के साथ सन्धि की शर्तो पर विचार किया गया। लम्बे-चौडे वाद-विवाद के बाद असहयोग पर विचार करने के लिए काग्रेस का विशेष अधिवेशन करने का निश्चय किया गया।

गाधीजी ने 'तिलक-सम्बन्धी स्मृतिया' नामक पुस्तक में बताया है कि असहयोग के प्रति लोकमान्य तिलक का क्या रुख था। "असहयोग के सम्बन्ध में उन्होने मार्मिक ढग से उसी बात को फिर दुहराया जिसे वह पहले भी मुझसे कह चुके थे, 'असहयोग का कार्यक्रम मुझे पसन्द है। पर इसमे जिस आत्म-त्याग की जरूरत है, उसके लिए देश हमारे साथ होगा या नही, इसमे मुझे सन्देह है। मै आपकी सफलता चाहता हूँ। यदि आप जनता का ध्यान अपनी ओर खीच सकें तो मुझे आप अपना कट्टर समर्थक पायेंगे।"

गाँधी जी द्वारा विभिन्न सत्याग्रह

इस समय गाधीजी चम्पारन, खेडा और अहमदाबाद मे सत्याग्रह करके या करने की धमकी देकर देश को स्थायी लाभ पहुँचाने का श्रेय प्राप्त कर चुके थे। उन्होंने चम्पारन में सत्याग्रह किया। खेडा जिले में वर्षा अधिक होने के कारण फसल मारी गई थी। वहा गाधीजी ने लगान न देने के सम्बन्ध मे सत्याग्रह किया। और अन्त में अहमदाबाद में मिल-हडताल का अन्त कराया। १९१८ में गाधीजी ने खेडा जिले के

किसानो के कष्ट दूर करने का काम अपने हाथ में लिया। उन्होने किसानो को सलाह दी कि जबतक समझौता न हो जाय, तबतक लगान अदा न किया जाय। गुजरात-सभा ने शिष्ट-मण्डल वनाया, जो अधिकारियो के पास पहुँचा। परन्तु उस ताल्लुके का कमिश्नर विगड गया और शिष्ट-मण्डल से बडी अभद्रता के साथ पेश आया। इसपर गुजरात-सभा ने किसानो के नाम नोटिस जारी करके उन्हें लगान न देने की सलाह दी। इस कारंवाई की जिम्मेदारी गाधीजी ने अपने ऊपर ली। सत्याग्रह अनिवार्य हो गया। खेडा के मामले में भी मोहनलाल पण्डया पहले सत्याग्रही थे जो गिरफ्तार किये गये (शोक है कि १८ मई १९३५ को उनका देहान्त हो गया)। अन्त में खेडा के किसानो को आशिक छूट मिल गई। तीसरी घटना अहमदावाद मिल-हडताल थी, जो १९१८ के मार्च मे आरम्भ हुई। अन्त में मजदूरो और मालिको के वीच में एक समझौता ठहराया गया, पर इसी वीच में कुछ मजदूरो ने दुर्वलता और विह्वलता का परिचय दिया और मजदूरो का सगठन टूटता-सा दिखाई देने लगा। इस नाजुक अवसर पर गाधीजी ने उपवास करने की प्रतिज्ञा की। इस प्रकार की भीपण प्रतिज्ञा करने का गाधीजी का यह पहला अवसर था। पर इसके सिवा और कोई चारा न था। उन्होने कहा—"आनेवाली पीढी कहे कि दस हजार आदमियो ने उस प्रतिज्ञा को अचानक तोड दिया जो उन्होने वीस दिन तक लगातार ईश्वर के नाम पर दोहराई थी, इससे तो यही अच्छा है कि मै अपनी प्रतिज्ञा के द्वारा मिल-मालिको की स्थिति और स्वतन्त्रता को अनुचित-रूप से कठिनाई में डालनेवाला कहलाऊँ।" (इसके विस्तृत विवरण के लिए इसी अध्याय के अन्त में दिये परिशिष्ट को देखिए)

कुली-प्रथा का अन्त

भारत के राजनैतिक क्षेत्र में १९२० की घटनाओ का जिक्र करने से पहले हमे १९२० की १ जनवरी के उत्सव की चर्चा करनी है। इस दिन उपनिवेशो में शर्त-वन्दी कुली-प्रथा का अन्त हुआ। यह प्रथा एक शताब्दी से जारी थी। जव भारत-सरकार ने और अधिक मजदूर भर्ती करने की अनुमति देने से इन्कार कर दिया तो नेटाल मे इस प्रथा का अन्त हो गया। मारिशस में कुली-प्रथा का अन्त स्वत ही हो गया, क्योकि वहा मजदूरो की और अधिक जरूरत न रही। परन्तु पृथिवी के अन्य भागो के उपनिवेशो में शर्तवन्दी कुली-प्रथा उसी प्रकार जारी थी। जव १९१४-१५ में भारत-सरकार ने उन प्रान्तो की सरकारो मे पूछ-ताछ की तो उसे पता चला कि गाव-वाले इस प्रथा के घोर विरुद्ध है। १९१५ में दीनवन्धु एण्टरूज और मि० पियरसन फिजी

गये और वहा से बडे ही बुरे समाचार लेकर आये, जिसे रिपोर्ट के रूप में प्रकाशित किया गया। इस रिपोर्ट का इतना प्रभाव पडा कि जब पण्डित मदनमोहन मालवीय ने बडी कौंसिल मे कुली-प्रथा उठाने का प्रस्ताव पेश किया तो लॉर्ड हार्डिंग ने उसे मजूर कर लिया। पर साथ ही उन्होने यह भी कहा कि सब कुछ ठीक-ठाक करते-कराते कुछ समय लग ही जायगा। बाद को पता चला कि वह औपनिवेशिक विभाग से इस बात पर राजी हो गये है कि भारत में अभी पाच साल तक भर्ती होती रहे। एण्डरूज साहब ने भारत-सरकार को चुनौती दी कि इस प्रकार का गुप्त राजीनामा हुआ है या नही ? और जब यह बात प्रकट की गई कि इस प्रकार के राजीनामे पर व्हाइट-हाल के दोनो—औपनिवेशिक और भारतीय—विभागो ने दस्तखत किये है तो सारे देश में क्रोध की लहर फैल गई। गाधीजी ने उत्तर और पश्चिम भारत में कुली-प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन आरम्भ कर दिया। श्रीमती बेसेण्ट ने मदरास में श्रीगणेश किया। १९१७ के मार्च-अप्रैल मे आन्दोलन पूरे जोर पर था। भारत-सरकार ने १५ जून को जिन कारणो से श्रीमती एनी बेसेण्ट को नजरबन्द किया उनमें से एक यह भी रहा होगा। लॉर्ड चेम्स-फोर्ड ने गाधीजी को बुलाया और तब उनकी समझ में स्थिति की गभीरता आई। हरेक प्रान्त की भारतीय महिलाओ का एक शिष्ट-मण्डल लॉर्ड चेम्सफोर्ड से अपनी मजूर बहनो की ओर से मिला। गाधीजी ने ३१ मई १९१७ का दिन नियत कर दिया कि उस दिन तक यह प्रथा बन्द हो जानी चाहिए, नही तो भर्ती रोकने के लिए सत्याग्रह आरम्भ होगा। लॉर्ड चेम्सफोर्ड ने १२ अप्रैल १९१७ को घोषणा की कि भारत-रक्षा-विधान के अन्तर्गत युद्ध-कालीन कार्रवाई के रूप में मजदूरो की भर्ती बन्द की जाती है। पर यह स्पष्ट था कि युद्ध समाप्त होते ही वे सारे उपनिवेश इस प्रश्न को फिर उठायेंगे जिनका उसमे बहुत बडा आर्थिक-हित था। इसलिए एण्डरूज साहब गाधीजी की सलाह और श्री रवीद्रनाथ ठाकुर की हार्दिक सहानुभूति प्राप्त करके ताजा मसाला इकट्ठा करने के लिए एकबार फिर फिजी गये, जिससे युद्ध के बाद प्रश्न उठने पर उसका उपयोग किया जा सके। वह कोई एक साल तक फिजी में रहे और पहली बार से भी अधिक भयकर हकीकतें इकट्ठा कर लाये। उन्होने इस प्रश्न के नैतिक पहलू पर आस्ट्रे-लियन महिलाओ का ध्यान भी काफी आकर्षित कर लिया और उन्हें कुली-प्रथा को उठाने के पक्ष में प्रबल समर्थन प्राप्त हो गया। १९१८ के मार्च मे उन्होने मि० माण्टेगु से दिल्ली में भेंट की और उनके सामने सारा मामला पेश करके साबित कर दिया कि शर्तबन्दी कुली-प्रथा घोर अनैतिक है। १९१९ मे सरकार ने यह घोषणा की कि अब गिरमिट के लिए अनुमति न मिलेगी और जिन मजदूरो की पाच साल की मियाद

पूरी नहीं हुई हैं उन्हें बन्धन-मुक्त किया जायगा। फलत पहली जनवरी १६२० को फिजी, ब्रिटिश-गाइना, ट्रिनिडाड, सुरीनाम और जमेका के प्रवासी भारतीयो में हर्ष का वारापार न रहा, क्योकि वहा अभीतक यह प्रथा जारी थी। उस बन्धन-मुक्ति के दिन जो भारतीय गिरमिट के अनुसार यहा पहुँचे थे वे भी आजाद कर दिये गये। यह प्रथा १८३५ में आरम्भ की गई थी, जिससे उपनिवेशो में शकर की खेती के लिए मजदूर मिल सकें। इसके पहले अफ्रीका के ईसाई गुलाम काम करते थे, पर १८३३ में गुलामी का अन्त कर दिया गया था। इस प्रकार शकर की खेती जारी रखने के लिए जो तरकीब सोची गई थी वह गुलामी से कुछ विशेष भिन्न न थी। इतिहासकार सर डब्ल्यू० विलसन हन्टर ने इस प्रथा को अर्द्ध-गुलामी मजदूरी कहा था, और यह वर्णन ठीक भी है।

हण्टर-रिपोर्ट

१६२० की २८ मई को हन्टर-रिपोर्ट प्रकाशित हुई, जिससे देश में निराशा और क्षोभ की बाढ आ गई। रिपोर्ट में सब सदस्य सहमत न थे। हिन्दुस्तानी सदस्यो का अंग्रेज सदस्यो से मतभेद था। मतभेद इस विषय पर था कि पजाब का उपद्रव आकस्मिक था या पहले से निश्चित किया हुआ था ? अंग्रेज सदस्यो की राय थी कि वह पहले से निश्चित किया हुआ था, और हिन्दुस्तानी सदस्यों की राय इसके विपरीत थी, इसलिए उनकी सम्मति थी कि फौजी-कानून की कोई आवश्यकता न थी तथा इस उपद्रव का दोष चन्दा इकट्ठा करने और रंगरूट भर्ती करने में पजाब के गवर्नर ओडायर के जुल्म को दिया। उन्होंने सरकार को ऐसी खबरें दबाने का दोषी ठहराया, जिनसे भ्रान्त धारणा फैली। सरकार ने यह बात स्वीकार की कि "फौजी-कानून का शासन-शक्ति के दुरुपयोग, अव्यवस्था, अन्याय और उत्तदायित्व-हीन कार्यों के द्वारा दूषित कर दिया गया था। जनरल डायर ने जो किया वह अनावश्यक था, दूसरा कोई समझदार आदमी ऐसा न करता। और उस स्थिति में जिस मानवी भाव से काम लेना चाहिए था, उसने उससे काम न लिया।" सम्राट् की सरकार ने उन कई निर्दयतापूर्ण और अनुचित सजाओ को बिलकुल नापसन्द किया और भारत-सरकार को ताकीद कर दी कि इस प्रकार के कार्यो के लिए जिम्मेदार अफसरो को धिक्कार-द्वारा तथा दूसरे उपायो से इस नापसन्दगी का खुले तौर से परिचय करा दिया जाय। परन्तु मि० माण्टेगु ने कहा कि 'जनरल डायर ने जैसा उचित समझा उसके अनुसार बिलकुल नेकनीयती के साथ काम किया, अलबत्ता उससे परिस्थिति को ठीक-ठीक समझने में गलती

हो गई।" भारत को इस बात से कोई सान्त्वना न मिली कि भविष्य के लिए फौजी-कानून की नियमावली तैयार करने के लिए भारत-सरकार को हिदायत कर दी गई है। न पजाब या भारत को इस बात से ही कोई तसल्ली हुई कि जो अधिकारी फौजी-कानून की करतूतो के लिए जिम्मेदार थे उनके सम्बन्ध में बडे ध्यान के साथ जाच-पडताल की गई है, क्योंकि जिन अधिकारियो के आचरण को धिक्कारा गया था उनमें से बहुत से चले गये थे या भारत-सरकार की नौकरी छोड चुके थे।

हण्टर-कमिटी की रिपोर्ट प्रकाशित होने के बाद ही ३० मई को महासमिति की बैठक बनारस में हुई, जिसमें इन सारे प्रश्नो पर भारत की ओर से क्रोध प्रकट किया गया और मामले पर विचार करने के लिए विशेष काग्रेस करने का निश्चय किया गया। लोकमान्य तिलक उस अवसर पर बनारस से होकर गुजरे, पर उन्होने महासमिति में भाग न लिया क्योकि खिलाफत-आन्दोलन उन्हें कुछ रुचा न था। फिर भी उन्होने देशभक्ति और सौजन्य का परिचय देते हुए यह अवश्य कह दिया कि वह महासमिति के आदेश का पालन करेंगे। इसी अवसर पर गाधीजी ने असहयोग-आन्दोलन को, नेताओ का एक सम्मेलन बुलाकर उसके सामने रखने का निश्चय किया। अबतक असहयोग-आन्दोलन खिलाफत के प्रश्न से ही सम्बन्ध रखता था। सारे दलो के नेता २ जून १९२० को इलाहाबाद मे इकट्ठे हुए। इस सम्मेलन में असहयोग की नीति अपनाने का निश्चय किया गया और कार्यक्रम तैयार करने के लिए गाधीजी और कुछ मुसलमान नेताओ की एक कमिटी बनाई गई। इस कमिटी ने रिपोर्ट प्रकाशित करके स्कूलो, कालेजो और अदालतो के बहिष्कार की सिफारिश की। वास्तव में नवम्बर १९१९ में दिल्ली में अ० भा० खिलाफत-परिषद् ने गाधीजी की सलाह के मुआफिक सरकार से असहयोग करने का निश्चय कर लिया था। इस निश्चय की पुष्टि कलकत्ता और अन्य स्थानो के मुसलमानो ने, और १७ अप्रैल १९२० को मदरास की खिलाफत-परिषद् ने, कर दी थी। मदरास की खिलाफत-परिषद् ने असहयोग की योजना की जो परिभाषा की थी उसके अनुसार उपाधियो और सरकारी नौकरियो का परित्याग, ऑनरेरी पदो और कौसिलो की मेम्बरी तथा पुलिस और फौज की नौकरी का त्याग और कर अदा करने से इन्कार करना भी आवश्यक था। खिलाफत और पजाब के अत्याचारो और अपर्याप्त सुधारो की फल्गु ने उबलती हुई त्रिवेणी का रूप धारण कर लिया। इस त्रिधारा ने राष्ट्रीय असन्तोष के प्रवाह को और भी प्रबल कर दिया। असहयोग के लिए वातावरण तैयार था। लोकमान्य तिलक तक ने महासमिति के निश्चय को मानने का वचन दे दिया था। पर शोक, ३१ जुलाई की आधीरात को

वह परलोक सिधार गये और इस प्रकार गाधीजी एक महान् शक्ति की सहायता से वंचित रह गये।

इधर मुसलमानो ने अफ़गानिस्तान को हिजरत करने का निश्चय किया, क्योंकि अब तुर्किस्तान के साथ ब्रिटेन की सधि के बाद भारत में अग्रेजो के शासन मे रहना उन्होंने ठीक नही समझा। यह आन्दोलन सिन्ध मे आरम्भ हुआ और सीमान्तप्रदेश में जा फैला। कचगढी में मुहाजिरीन और सैनिको में जोर की मुठभेड हो गई, जिससे जनता में और भी आग लग गई और अगस्त के भीतर-भीतर अनुमानत १८,००० आदमी अफगानिस्तान के लिए चल पड़े। पर अफगान-सरकार ने शीघ्र ही इन मुहाजिरीन का दाखिला बन्द कर दिया और अनेक कष्ट झेलने और मरने-खपने के बाद इन मुसलमानो के विचारो में परिवर्त्तन हुआ।

जब अगस्त में बडी कौंसिल की बैठक हुई तो असहयोग जारी था। कई सदस्यो ने अपने पदो से इस्तीफा दे दिया था। वाइसराय ने घोषणा की कि असहयोग की नीति से अव्यवस्था उत्पन्न होगी और पूछा कि क्या कोई इससे भी अधिक अविवेक-पूर्ण कार्य हो सकता है? उन्होंने आन्दोलन को "सारी मूर्खता-पूर्ण योजनाओ में सबसे अधिक मूर्खता-पूर्ण योजना" बताया, परन्तु नई कौंसिल खोलने के लिए युवराज को भारत बुलाने का विचार, जिसका विरोध बम्बई लिबरल परिषद् में श्री शास्त्री तक ने किया था, अन्त में छोड दिया गया। अगस्त में ही डॉ० सप्रू को वाइसराय की कार्य-कारिणी का सदस्य नियुक्त किया गया।

असहयोग का प्रस्ताव

असहयोग की योजना का बाकायदा आरम्भ १ अगस्त को हुआ। गाधीजी और अली-भाइयो ने देश का दौरा किया। गाधीजी ने जनता को अनुशासन का पाठ पढाया और उसके उछलते हुए उत्साह को सयम में रक्खा। जैसा हमेशा से होता आया है, गाधीजी ने जब-जब अपने अनुयायियो को लताड बताई तो सरकार ने उसका उद्धरण भीड की निरकुशता सिद्ध करने में किया। कांग्रेस को अपने पुराने वैध रास्ते को छोडकर नया रास्ता अपनाने को कहा गया था। यह असाधारण बात थी, जिसके लिए कांग्रेस के विशेष-अधिवेशन की आवश्यकता थी। इस अधिवेशन का निश्चय मई में ही हो चुका था। यह १९२० के ४ से ९ सितम्बर तक कलकत्ते में हुआ।

यह अधिवेशन बडा ही महत्त्वपूर्ण था। बगाल गाधीजी से पूरी तरह सहमत न

था और देशबन्धु दास तो गाधीजी के असहयोग-कार्यक्रम के सोलह आने विरुद्ध थे। उनके या अधिकाश प्रतिनिधियो के हृदयो में कौसिलो और अदालतो के बहिष्कार की योजना के प्रति बिलकुल सहानुभति न थी। पर तो भी ७ मत के सकीर्ण पर निश्चयात्मक बहुमत से कार्य-समिति ने गाधीजी का प्रस्ताव पास कर दिया, जिसमे उन्होने शनै शनै बहिष्कार करने की सलाह दी थी। उस समय वातावरण ही ऐसा था कि असहयोग अवश्यम्भावी था। भारत-सरकार ने हण्टर-रिपोर्ट के बहुसख्यक-पक्ष की बात ग्रहण कर ली थी और वह अधिकारियो की काली करतूतो पर अधकार का पर्दा डालना चाहती थी। बहुसख्यक-पक्ष की राय में डायर का आचरण केवल "समझ की बडी भूल" था, "जिसके कारण वह आवश्यकता की परिधि से बाहर चला गया।" उसकी राय में डायर ने जो किया वह कर्त्तव्य को नेकनीयती के साथ, पर गलत ढग से अपना कर्त्तव्य समझने के कारण, किया। मि० माण्टेगु ने भी इन सिफारिशो को बिना चू तक किये स्वीकार कर लिया और पजाब के अधिकारियो की करतूतो की ओर से एक प्रकार आखें बन्द कर ली। उन्होने कहा कि "डायर ने कठोर कर्त्तव्य और नेकनीयती से काम लिया था।" कामन-सभा में डायर के प्रति किये गये अत्याचार और उसे दिये गये अन्यायपूर्ण दण्ड के सम्बन्ध में वाद-विवाद हुआ। लार्ड सभा में लॉर्ड फिनले का प्रस्ताव स्वीकार किया गया जो गलत, एक पक्षीय, और शब्द तथा भाव दोनो प्रकार से झूठी बातो से भरा हुआ था। इस वाद-विवाद के द्वारा भारतीय जनता के अधिकारो और स्वतत्रता के साथ विश्वास-घात किया गया। इस वाद-विवाद और खिलाफत-सम्बन्धी अन्याय को लेकर कलकत्ते के विशेष अधिवेशन में कडे प्रस्ताव पास किये गये।

काग्रेस का यह विशेष अधिवेशन कलकत्ते में बडे जोशोखरोश के बीच हुआ। श्री व्योमकेश चक्रवर्ती स्वागत-समिति के प्रधान थे और लाला लाजपतराय, जो हाल ही अमरीका से लौटे थे, सभापति थे। पहले प्रस्ताव मे लोकमान्य बाल गगाधर तिलक की मृत्यु पर काग्रेस के गहरे दु ख को प्रकट करते हुए कहा गया कि उनका निर्मल एव विशुद्ध जीवन, देश के लिए किया गया उनका त्याग और सेवायें, जनता के हित के लिये उनकी तीव्र लगन और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के युद्ध मे किये गये उनके भगीरथ प्रयत्नो के कारण उनकी स्मृति हमारे देशवासियो के हृदय-पटल पर सदा आदर-सहित अकित रहेगी और अनगिनत पीढियो तक हमारे देशवासियो को बल व स्फूर्ति प्रदान करती रहेगी। डॉ० महेन्द्रनाथ ओहदेदार की मृत्यु से देश को जो क्षति पहुँची थी, उसपर भी काग्रेस ने अपने दु ख को प्रकट किया।

दूसरा प्रस्ताव सर आशुतोष चौधरी ने, जो कलकत्ता-हाईकोर्ट की जजी से फारिग हुए ही थे, पेश किया। उसमें पंजाब-जांच-कमिटी के निर्णय स्वीकार किये गये, हन्टर-कमिटी के बहुमत की पक्षपात तथा वर्ण-द्वेष-पूर्ण नीति की निन्दा की गई, और यह कहा गया कि उसके द्वारा ब्रिटिश-न्याय की निष्पक्षता से लोगों का विश्वास उठ गया है।

तीसरा प्रस्ताव भी पंजाब के बारे में था। पंजाब में किये गये अत्याचारों के विरुद्ध ब्रिटिश-सरकार-द्वारा पर्याप्त कार्रवाई न किये जाने पर, ब्रिटिश-सरकार-द्वारा भारत-सरकार की सिफारिशों को ज्यों-का-त्यों मान लिये जाने पर, और उसके द्वारा पंजाब के अधिकारियों के काले कारनामों को असलियत में दर-गुजर कर देने पर घोर निराशा प्रकट की गई।

लेकिन अधिवेशन का मुख्य प्रस्ताव असहयोग से सम्बन्ध रखनेवाला था, जिसे गांधीजी ने पेश किया और जो ८८४ प्रतिनिधियों के विरुद्ध १८८६ प्रतिनिधियों की रायों से पास हुआ। यह प्रस्ताव इस प्रकार था :—

"चूंकि खिलाफत के प्रश्न पर भारत व ब्रिटेन दोनों देशों की सरकारें भारत के मुसलमानों के प्रति अपना फर्ज अदा करने में खास तौर से असफल रही हैं और ब्रिटिश-प्रधान-मंत्री ने जान-बूझ कर उन्हें दिये हुए वादे को तोड़ा है और चूंकि प्रत्येक गैर-मुस्लिम भारतीय का यह फर्ज है कि अपने मुसलमान भाई पर आई हुई धार्मिक विपत्ति को दूर करने में प्रत्येक उचित उपाय से सहायता करे;

"और चूंकि अप्रैल १९१९ की घटनाओं के मामले में उक्त दोनों सरकारों ने पंजाब की बेकसूर जनता की रक्षा करने में और उन अफसरों को सजा देने में जो पंजाब की जनता के प्रति असभ्य व सैनिक-धर्म-विरुद्ध आचरण करने के दोषी ठहरे हैं, घोर लापरवाही की है और चूंकि उक्त दोनों सरकारों में सर माइकेल ओडायर को जो अफसरों द्वारा किये गये बहुत-से अपराधों के लिए स्वयं प्रत्यक्ष-रूप से उत्तरदायी था और जिसने जनता के दुःखों व कष्टों की सरासर अवहेलना की, बरी कर दिया, और चूंकि इंग्लैण्ड की लॉर्ड-सभा में हुए वाद-विवाद से भारतीय जनता के प्रति सहानुभूति का दुःखपूर्ण अभाव स्पष्टतः प्रकट हो गया है और पंजाब में सुसंगठित-रूप से आतंक और त्रास फैलाया गया है; और चूंकि वाइसराय की सबसे ताजी घोषणा इस बात का प्रमाण है कि खिलाफत व पंजाब के मामलों पर तनिक भी पछतावे का भाव नहीं है, अतः इस कांग्रेस की राय है कि भारत में तबतक शान्ति नहीं हो सकती जबतक कि उक्त दोनों भूलों का सुधार नहीं किया जाता। राष्ट्रीय सम्मान की मर्यादा को कायम

रखने के लिए और भविष्य मे इस प्रकार की भूलो को दोहराने से बचाने के लिए उपयुक्त मार्ग केवल स्वराज्य की स्थापना ही है। इस काग्रेस की यह राय है कि जबतक उक्त भूलो का सुधार न हो जाय और स्वाराज्य की स्थापना न हो जाय, भारतवासियो के लिए इसके सिवा और कोई मार्ग नही है कि वे गाधीजी-द्वारा सचालित क्रमिक अहिंसात्मक असहयोग नीति को स्वीकार करे और अपनावें।

"और चूकि इसकी शुरुआत उन लोगो को ही करनी चाहिए जिन्होने अब तक लोकमत को बनाया और उसका प्रतिनिधित्व किया है, और चूकि सरकार अपनी शक्ति का सगठन लोगो को दी गई उपाधियो व सम्मान से, अपने द्वारा नियन्त्रित स्कूलो से, व अपनी अदालतो व कौंसिलो से ही करती है, और चूकि आन्दोलन को चलाने में यह वाञ्छनीय है कि कम-से-कम खतरा रहे और वाञ्छित उद्देश की सिद्धि के लिए आवश्यक कम-से-कम त्याग का आवाहन किया जाय, यह काग्रेस सरगर्मी के साथ सलाह देती है कि—

(अ) सरकारी उपाधियो व अवैतनिक पदो को छोड दिया जाय और जिला और म्युनिसिपल बोर्ड व अन्य सस्थाओ मे जो लोग नामजद हुए हो वे इस्तीफा दे दें,

(ब) सरकारी दरबारो, स्वागत-समारोहो तथा सरकारी अफसरो-द्वारा किये गये या उनके सम्मान में किये जानेवाले अन्य सरकारी व अर्ध-सरकारी उत्सवो में भाग लेने से इनकार किया जाय,

(स) सरकार के, सरकार से सहायता प्राप्त करनेवाले व सरकार-द्वारा नियन्त्रित स्कूल व कालेजो से छात्रो को धीरे-धीरे निकाल लिया जाय, उनके स्थान में भिन्न-भिन्न प्रान्तो मे राष्ट्रीय स्कूल व कालेजो की स्थापना की जाय,

(द) वकीलो व मुवक्किलो-द्वारा ब्रिटिश अदालतो का धीरे-धीरे बहिष्कार हो और उनकी मदद से खानगी झगडो को तय करने के लिए पचायती अदालतो की स्थापना हो,

(य) फौजी, क्लर्की व मजदूरी करनेवाले लोग मेसोपोटामिया में नौकरी करने के लिए भर्ती होने से इनकार करे,

(फ) नई कौसिलो के चुनाव के लिए खडे हुए उम्मीदवार अपने नाम उम्मीदवारी से वापस ले लें और यदि काग्रेस की सलाह के बावजूद कोई उम्मीदवार चुनाव के लिए खडा हो तो मतदाता उसे वोट देने से इनकार करे,

(ज) विदेशी माल का बहिष्कार किया जाय।

"और चूकि असहयोग को अनुशासन व आत्म-त्याग के एक साधन के रूप में पेश किया गया है जिसके बिना कोई भी राष्ट्र सच्ची उन्नति नही कर सकता और चूकि असहयोग के सबसे पहले युग मे ही हर स्त्री-पुरुष व वालक को इस प्रकार के अनुशासन व आत्म-त्याग का अवसर मिलना चाहिए, यह काग्रेस सलाह देती है कि एक बडे पैमाने पर स्वदेशी वस्त्रो को अपनाया जाय; और चूकि भारतीय श्रम व प्रबंध से चलनेवाली भारत की वर्तमान मिलें देश की जरूरियात के लिए पर्याप्त सूत व कपडा तैयार नही कर सकती और न ही इस वात की कोई सम्भावना है कि एक लम्बे अर्से तक वे ऐसा करने मे समर्थ हो सके, यह काग्रेस सलाह देती है कि हरेक घर में हाथ की कताई को फिर से और देश के इन असख्य जुलाहो द्वारा, जिन्होने अपने पुराने व सम्मानित पेशे को उत्साह न मिलने के कारण छोड दिया था, हाथ की वुनाई को पुनरुज्जीवित करके वडे पैमाने पर वस्त्रो की उत्पत्ति तुरन्त ही वढाई जाय।"

इस प्रस्ताव पर गरमागरम वहस हुई। वावू विपिनचन्द्र पाल ने एक सशोधन पेश किया, जिसका देशवन्धु चित्तरजनदास ने समर्थन किया। इस सशोधन के अनुसार ब्रिटेन के प्रधान-मत्री को भारत के एक शिष्ट-मण्डल से मिलने के लिए कहा गया।

वहुत देर के विवाद के वाद, अन्त मे गाधीजी का प्रस्ताव पास हो गया।

यहा प्रसगवश यह भी कह दिया जाय कि गाधीजी ने पहले जिला व म्यू-निसिपल वोर्ड आदि स्थानिक सस्थाओ के वहिष्कार को भी अपने कार्यक्रम मे शामिल कर लिया था, लेकिन फिर मित्रो की मर्जी के खातिर उसे निकाल दिया। राष्ट्रीय दल भी कार्यक्रम से कुछ मतभेद रखता था, लेकिन तिसपर भी वह काग्रेस के प्रति वफादार रहा। अमृतसर-काग्रेस के प्रस्ताव के अनुसार जो राष्ट्रीय पक्ष के उम्मीदवार नई कौंसिलो के चुनाव के लिए खडे हुए थे और जिन्होने चुनाव-आन्दोलन में काफी समय, परिश्रम व धन व्यय किया था, वे लगभग सव एकदम चुनाव से हट गये। मत-दाताओं तक ने, लगभग ८० प्रतिशत ने, काग्रेस के निर्णय को माना और वोट देने से इनकार किया। कई जगहो से तो वोट की पर्चिया डालने के वक्स रीते-के-रीते लौट गये। स्वय सरकार ने इस वात को स्वीकार किया कि "गाधीजी के असहयोग-आन्दोलन में नई कौंसिलो का वहिष्कार अवश्य ही अगले कुछ वर्षों के इतिहास पर जवरदस्त प्रभाव डालकर रहेगा। इस वहिष्कार के

कारण नई कौंसिलो में कई लोक-प्रतिष्ठित व उग्र-विचारवादी न आ सके और नरम-दलियो का रास्ता साफ हो गया।"

नवम्बर के शुरू होते ही सरकार ने इस आन्दोलन के प्रति अपनी नीति को स्पष्ट करना आवश्यक समझा। सरकार ने कहा, "उसने प्रान्तीय सरकारो को आदेश किया है कि वह केवल उन्ही लोगो के विरुद्ध कार्रवाई करें जो आन्दोलन को चलाते-चलाते उस हद से भी बाहर निकल जाय जो उसके सचालको ने नियत कर रक्खी है और जिन्होने लेखो व भाषणो से जनता को खुले-आम हिंसा के लिए भडकाया है, या जिन्होने पलटन व पुलिस की वफादारी को बिगाडने का प्रयत्न किया है।" सरकार ने अपना यह विश्वास भी प्रकट किया कि "उच्च-वर्ग के व्यक्ति व सर्व-साधारण दोनो ही असहयोग-आन्दोलन को एक शेखचिल्ली की योजना समझकर रद कर देंगे। क्योकि यदि यह योजना सफल हो जाय तो उससे चारो ओर अशान्ति व राजनैतिक गोलमाल फैले बिना नही रह सकता और जिन लोगो के देश में कुछ भी स्वार्थ-सबध हैं उनका सर्वनाश हुए बिना नही रह सकता। असहयोग-आन्दोलन अज्ञान और पूर्व-विश्वासो के सहारे ही टिक सकता है, और उसके उद्देश में रचनात्मक तत्त्वो के तो कीटाणु भी नही है।"

२ अक्तूबर १९२० को महासमिति ने अपनी बैठक में अखिल-भारत तिलक-स्मारक-कोष व स्वराज्य-कोष नाम के दो कोष इकट्ठे करने का निश्चय किया, लेकिन उसका यह प्रस्ताव दिसम्बर १९२० तक रद्दी की टोकरी मे ही पडा रहा। असहयोग-आन्दोलन सम्बन्धी नये प्रस्तावो का भी बगाल और महाराष्ट्र में कुछ अच्छा स्वागत न हुआ। लोकमान्य तिलक के एक साथी गणेश श्रीकृष्ण खापर्डे ने एक छोटी-सी पुस्तिका प्रकाशित करके तुलनात्मक-रूप से बताया कि किस प्रकार कलकत्ता-कांग्रेस के प्रस्ताव कांग्रेस की शक्तियो को आत्मबल व नैतिक श्रेष्ठता प्राप्त करने की दिशा में तो ले जाते है, लेकिन प्रश्न के राजनैतिक पहलू को बिलकुल भुला देते हैं। "देश की वास्तविक सरकार से हमारा सब सम्पर्क हटाकर यह आन्दोलन हमें राजनैतिक रग में रगे जाने से और एक इस प्रकार का राजनैतिक स्वभाव बनाने से रोकता है जो एक करारी लडाई को शान्ति से किन्तु सुव्यवस्थित-रूप से और जम कर चलाने के लिए आवश्यक है। असहयोग का आन्दोलन सहनशक्ति को बढाने में सहायक हो सके, यह सम्भव है, लेकिन वह हमारे अन्दर वह कार्य-शक्ति, साधनशीलता व व्यावहारिक चातुर्य्य पैदा करने में असमर्थ है जो एक राजनैतिक आन्दोलन के लिए आवश्यक है। कांग्रेस ने जिन तीन बहिष्कारो

की सिफारिश की है वे बेकार है और उनमें सुदूर राजनैतिक दृष्टि का बिलकुल अभाव है। आल-इण्डिया-होमरूल-लीग (जो अब स्वराज-सभा के नाम से जानी जाती है) के ध्येय को बदलते समय जो विवाद व कार्रवाई हुई उसे देखने से प्रतीत होता है कि अब सारा झुकाव फिर एकतन्त्र व व्यक्तिगत सत्ता की ओर है। चाहे यह सत्ता एक बहुत ही बढे-चढे व नीतिवान् व्यक्ति को क्यो न दी जाय, है आपत्तिजनक और समय की स्पिरिट के विरुद्ध।"

इसमें होमरूल-लीग के ध्येय-परिवर्तन और गाधीजी द्वारा स्वराज-सभा बनाने की ओर ध्यान दिलाया गया। कलकत्ते में जब असहयोग का भाग्य तराजू के पलडो पर लटका हुआ था, गाधीजी ने पुराने होमरूल-वादियो को, जिनसे श्रीमती बेसेण्ट अलग-सी हो गई थी, एक झण्डे के नीचे इकट्ठा किया और लीग का ध्येय बदल डाला। इस ध्येय को नागपुर में फिर काग्रेस ने भी अपना लिया। गाधीजी ने लीग का नाम भी बदल कर स्वराज-सभा रक्खा। लेकिन इस सभा को चलने का मौका नही मिला, क्योकि कलकत्ता में तो काग्रेस ने असहयोग के मार्ग को ग्रहण कर लिया था और नागपुर में उसपर फिर दोहरी छाप लगा दी। यह विधि के विधान में और राजनीति में कैसी घटना है कि असहयोग-सम्बन्धी प्रस्ताव लगातार दो बार ऐसे प्रान्तो की राजधानियो में पास हुए जहाँ कि असहयोग-आन्दोलन का प्रबल-से-प्रबल विरोध किया गया था।

नागपुर-कांग्रेस

नागपुर-काग्रेस में असहयोग के कार्यक्रम पर अन्तिम-रूप से विचार होकर निश्चय होना था। काग्रेस में आये हुए प्रतिनिधियो की सख्या बहुत अधिक थी। नागपुर के पहले या बाद की कोई भी काग्रेस इस बात का दावा नहीं कर सकती कि उसके अधिवेशनो में प्रतिनिधियो की सख्या नागपुर के बराबर थी। नागपुर में प्रतिनिधियो की सख्या १४,५८२ थी, जिसमें १०५० मुसलमान थे और १६९ स्त्रिया। काग्रेस के सभापति दक्षिण के पुराने व अनुभवी नेता चक्रवर्ती विजयराघवाचार्य थे। कर्नल वेजवुड, मि० हालफोर्ड नाइट व मि० बेन स्पूर ने कांग्रेस में इगलैण्ड के मजदूर-दल के मित्र-प्रतिनिधि की हैसियत से भाग लिया और मजदूर-दल की सहानुभूति को प्रदर्शित किया।

श्री चित्तरजनदास पूर्वी बगाल व आसाम से लगभग २५० प्रतिनिधियो का एक दल लाये थे, उनका दोनो ओर का खर्चा भरा और अपनी जेब से लगभग

३६,०००) इसलिए खर्च किया कि कलकत्ते के निर्णय पर पानी फेरा जा सके। श्री दास के आदमियो में और उनके विरोधी श्री जितेन्द्रलाल बनर्जी के आदमियो में एक मामूली-सी तकरार भी हो गई। महाराष्ट्र का विरोध भी कुछ कम तगडा या कुछ कम संगठित न था। कर्नल वेजवुड ने और मि० बेन स्पूर व मि० हालफोर्ड नाइट ने विपय-समिति की बैठक में भी भाग लिया था। कर्नल वेजवुड ने असहयोग के विरोध में दलीलें पेश करने में अपनी सारी शक्ति लगा दी परन्तु नतीजा कुछ भी न हुआ। खादी-सम्बन्धी धारा और भी कडी कर दी गई। असहयोग का प्रस्ताव फिर दोहराया गया और काग्रेस का ध्येय "इस तर्ज से बदल डाला गया कि उसमें ब्रिटिश-सम्बन्ध व वैध-आन्दोलन का जिनमें काग्रेस अभीतक विश्वास करती थी, कोई उल्लेख ही न रहा।" ये सरकार के शब्द है। अधिवेशन में गाधीजी के व्यक्तित्व की विजय हुई।

अब हम नागपुर-काग्रेस से सम्बन्ध रखनेवाली घटनाओ पर और उसने काग्रेस के ध्येय व विधान तथा आदर्शों व दृष्टिकोण में क्या-क्या आमूल परिवर्तन किये, इसपर भी दृष्टिपात करें। असहयोग-सम्बन्धी प्रस्ताव का स्वीकार हो जाना स्वय एक बडी भारी बात थी, लेकिन उसके बारे में सबसे बडी बात यह थी कि उसे श्री चित्तरजनदास ने पेश किया और उसका लाला लाजपतराय ने समर्थन किया। नागपुर में गाधीजी को निस्सन्देह कलकत्ते से अधिक समर्थन प्राप्त हुआ। कलकत्ते में केवल एक ही परले सिरे के राजनीतिज्ञ प० मोतीलाल नेहरू ने गाधीजी का साथ दिया था, और सो भी अधिवेशन की समाप्ति के करीब जबकि गाधीजी ने नेहरूजी का यह सशोधन स्वीकार कर लिया कि अदालतो व कालेजो का बहिष्कार धीरे-धीरे हो।

नागपुर के असहयोग-सम्बन्धी प्रस्ताव ने करीब-करीब कलकत्तावाले प्रस्ताव को ही दोहराया। एक ओर पदविया छोड देने की बात तो दूसरी ओर करो के न देने तक की बात उसमें शामिल कर ली गई। व्यापारियो से अनुरोध किया गया कि वे धीरे-धीरे विदेशी व्यापारिक-सम्बन्धो को छोडें और हाथ की कताई-बुनाई को प्रोत्साहन दें। देश से अनुरोध किया गया कि वह राष्ट्रीय-आन्दोलन में अधिक-से-अधिक त्याग करे। राष्ट्रीय सेवक-दल (इण्डियन नेशनल सर्विस) को सगठित करने और अखिल-भारतीय तिलक-स्मारक-कोष* को बढाने के लिए काग्रेस पर

---

*कोष एकत्र करने का निश्चय तो अक्तूबर में ही हो गया था, लेकिन बाद में अखिल-भारत-लोकमान्य-स्मारक-कोष व स्वराज्य-कोष को मिलाकर एक कर दिया गया।

जोर दिया गया। कौंसिलो के लिए चुने गये सदस्यो से इस्तीफा देने की और मत-दाताओं से उन सदस्यो से किसी भी प्रकार की राजनैतिक सेवा न लेने की प्रार्थना की गई। पुलिस व पलटन और जनता में मित्रता के जो भाव बढ रहे थे उनको स्वीकार किया गया। सरकारी कर्मचारियो से अपील की गई कि वे जनता से वर्ताव करते समय अधिक नरमी व ईमानदारी का परिचय देकर राष्ट्र-कार्य में सहायता करे और सब सार्वजनिक सभाओ में बिना डर के खुले तौर पर भाग लें। इस बात पर भी जोर दिया गया कि अहिंसा असहयोग-आन्दोलन का अविच्छिन्न अग है। वचन और कर्म दोनो में अहिंसा का होना आवश्यक माना गया और उसपर जोर दिया गया, क्योंकि हिंसा-भाव लोकशासन की स्पिरिट के विरुद्ध ही नही बल्कि असहयोग की आगे की सीढियो तक पहुँचने के मार्ग में भी बाधक है। प्रस्ताव के अन्त में इस बात पर जोर दिया गया कि सब सार्वजनिक सस्थायें सरकार से अहिंसात्मक असहयोग करने में अपना सारा ध्यान लगा दे और जनता में परस्पर पूर्ण सहयोग स्थापित करें। इस प्रकार के परिवर्तित वातावरण में इग्लैण्ड के साप्ताहिक 'इण्डिया' को बन्द करना निश्चित हुआ, यद्यपि इस बात को महसूस किया गया कि भारत और विदेशियो में भारत के बारे में सच्ची बातो के फैलाने की आवश्यकता है। आयर्लैण्ड के वीर योद्धा स्वर्गीय मैक्स्विनी ने जो आयर्लैण्ड के उत्थान के लिए लडते-लडते ६४ दिन की भूख-हडताल के पश्चात् अपने प्राणो को उत्सर्ग कर दिया था इसके लिए उन्हें श्रद्धाञ्जलि दी गई।

विनिमय की दर में वृद्धि होने और उसके फल-स्वरूप "रिवर्स कौंसिलो" द्वारा स्वर्ण-विनिमय-मान-कोप (Gold Exchange Standard Reserve) कागजी-मुद्रा कोप (Paper Currency Reserve) में "घाटा" पडने के कारण नागपुर में जोरो से इस बात की माग पेश की गई कि ब्रिटिश-सरकार इस घाटे को पूरा करे। पाचवें प्रस्ताव में तो यह भी कहा गया कि "ब्रिटिश माल की तिजारत करनेवाले व्यापारी विनिमय की वर्तमान दरों पर अपना वादा पूरा करने से इन्कार करने के हकदार हैं।" ड्यूक आफ कनाट के सम्मान में किसी उत्सव व समारोह में भाग न लेने के लिए देश से अनुरोध किया गया। मजदूरों को प्रोत्साहित किया गया और ट्रेड-यूनियनों के जरिये जारी किये गये उनके संग्राम के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित की गई। [illegible] के निर्वासन [illegible] की निन्दा की गई। मुकदमा चलाकर या बिना मुकदमा चलाये जिन राजनैतिक कार्यकर्ताओं को [illegible] गिरफ्तार करके सजा दी गई उनके प्रति भी सहानुभूति दिखाई गई। [illegible]

दिल्ली व अन्य स्थानो में पुन प्रारम्भ हुए दमन को ध्यान मे रखा गया और जनता से कहा गया कि वह सब कुछ धैर्य से सहे। कांग्रेस ने सब देशी-नरेशो से भी प्रार्थना की कि वे अपनी-अपनी रियासतो में पूर्ण उत्तरदायी शासन स्थापित करने के लिए शीघ्र-से-शीघ्र प्रयत्न करें। हार्निमैन साहब को भारतीयो से अलग रखने की सरकारी नीति की निन्दा की गई और मि० हार्निमैन के प्रति भारत की कृतज्ञता प्रकाशित की गई। ईशर-कमिटी व उसकी सिफारिशो को भारत की पराधीनता व असहायता को बढाने मे सहायक मान कर उनकी निन्दा की गई और उन सिफारिशो को भी असहयोग-आन्दोलन का एक और कारण माना गया। मुसलमानो को गो-वध के विरुद्ध प्रस्ताव पास करने पर धन्यवाद दिया गया और जनता से आग्रह किया गया कि वह जानवर और चमडे की निर्यात को निरुत्साहित करे। नि शुल्क शिक्षा व देशी-चिकित्सा-पद्धति के बारे में भी प्रस्ताव पास हुए।

अन्त में हम कांग्रेस के विधान पर आते है। कांग्रेस का ध्येय बदल दिया गया। कांग्रेस का ध्येय "शान्तिमय व उचित उपायो से स्वराज्य प्राप्त करना" घोषित किया गया। कांग्रेस का प्रान्तीय सगठन प्रान्तो की भाषा के अनुसार किया गया। विषय-समिति की बैठको का कांग्रेस के खुले अधिवेशन से दो-तीन दिन पहले करना व उसकी सदस्यता केवल महासमिति के सदस्यो तक सीमित रखना---ये मार्के के परिवर्तन थे, लेकिन विषय-समिति के सदस्यो की सख्या बढाकर ३५० तक कर दी गई। सभापति, मत्री व कोषाध्यक्ष समेत १५ सदस्यो की एक कार्य-समिति का नियुक्त होना नये विधान का एक ऐसा अग था जिसने कांग्रेस के रोजमर्रा के कार्य में एक क्रान्ति ही कर दी है।

इस अध्याय को समाप्त करने से पहले हम यह बता दे कि कांग्रेस ने पूर्वी व दक्षिण अफ्रीका के भारतीयो को उनके साथ किये जानेवाले दुर्व्यवहार के विरुद्ध उच्चता और वीरतापूर्ण सग्राम छेडने पर सहायता देने का भी प्रस्ताव पास किया और पूर्वी अफ्रीका में भारतीयो-द्वारा प्रारम्भ की गई शान्तिमय असहयोग की नीति को पसन्द किया। फिजी के भारतीयो की, जिन्हें भारत लौटने के लिए बाधित किया गया था, भारत-द्वारा कोई सहायता न हो सकने पर दु ख प्रकट किया। सबसे अन्त में प्रवासी भारतीयो की सेवा करने के उपलक्ष्य में कांग्रेस ने दीनबन्धु एण्ड्रूज को धन्यवाद दिया।

अध्याय १ का परिशिष्ट

१—चम्पारन-सत्याग्रह

विहार के उत्तर-पश्चिमी कोने मे चम्पारन एक जिला है। उन्नीसवी शताब्दी के प्रारम्भ में गोरे खेतिहरो ने इस जिले में नील की खेती करना प्रारम्भ किया। आगे चलकर इन लोगो ने वहा के जमीदारो से, अस्थायी और स्थायी जैसे भी सौदा वना, भूमि के बडे-बडे भाग अपने हाथ कर लिये। विशेषकर महाराज वेतिया की जमीन ली, क्योकि उनके सिर कर्ज का वहुत वडा वोझा लदा हुआ था। इन गोरे खेतिहरो ने अपने प्रभाव और रुतबे से, जो कि उन्होने जमीन प्राप्त करके यहा पैदा कर लिया था, और कुछ उस प्रभाव के कारण भी जोकि उन्हें हुकूमत करनेवाली जाति का होने के नाते प्राप्त था, शीघ्र ही वहा के गावो के किसानो से अपने लिए नील की खेती कराना प्रारम्भ कर दिया। आगे चलकर यह अनिवार्य हो गया कि किसान अपनी ३/२० या ३/२० भूमि पर नील अवश्य वोयें। कुछ ही दिनो में इन लोगो ने वगाल-टेनेन्सी एक्ट में इस वात को कानून का रूप दिलवा दिया। नील पैदा करने की यह प्रथा आगे चलकर तीनकठिया के नाम से मशहूर हुई, जिसके मानी थे एक वीघे का ३/२० भाग। किसानो की यह शिकायत थी कि नील की खेती से उन्हें कोई फायदा नही है। लेकिन फिर भी उसे करने के लिए उन्हे मजबूर किया जाता था। इससे उनकी अन्य खेती को नुकसान पहुँचता था और इसके लिए उन्हें जो मजदूरी मिलती थी वह नाममात्र की थी। वीसवी शताब्दी के प्रारम्भ में अन्य अनेक चीजों के मेल से रग तैयार होने लगे। इसका आवश्यक परिणाम यह हुआ कि पूर्वोक्त अवस्था में नील पैदा कराने पर भी नील का व्यवसाय लाभ-प्रद नही रहा। फलत उनके नील के कारखाने वन्द होने लगे। लेकिन इस नुकसान को अपने कधे पर लेने के वजाय उन्होने उसे गरीब किसानो के सिर मढ देने के उपाय सोचे। इसके लिए उन्होने दो उपायो से काम किया। उन गावो में, जिनकी जमीन के लिए उनके पास स्थायी पट्टा था; उन्होने किसानो से लगान में बढोतरी कराने के इकरारनामे लिखा लिये और वदले में उन्हें नील पैदा करने के वन्धन से मुक्त कर दिया। इस प्रकार के हजारो ही शर्तनामे लिखाये गये। इन शर्तनामो की रजिस्ट्री कराने के लिए सरकार ने खास रजिस्ट्रार नियुक्त किये थे। लेकिन जहा उनके स्थायी पट्टे नही थे, वहा किसानो से उन्होने जैसा कि किसानो का आरोप था, नील पैदा करने से मुक्त करने के लिए जवरदस्ती नकद रुपया वसूल किया, या रुपये के मूल्य की कोई और चीज ले

ली। गरीब किसानो से कोई १२ लाख रुपया वसूल किया। क्योकि सारा चम्पारन जिला इन्ही गोरो के हाथो में आ गया था, इसलिए उन्होने उसके मुख्तलिफ टुकडे कर लिये थे। गोरो के प्रत्येक सघ के पास चंम्पारन जिले का कोई-न-कोई भाग था जिसमें उनकी हुकूमत थी। इनका प्रभाव सरकारी हलको मे इतना था कि वेचारे गरीब किसान इस बात का साहस, जिस्मानी और माली जोखिम उठाने के लिए तैयार हुए बिना, कर ही नही सकते थे कि इन गोरो के विरुद्ध दीवानी या फौजदारी किसी भी प्रकार का मामला चलावें या किसी भी हाकिम से शिकायत कर सकें। उच्च जाति के हिन्दुओ तक को पिटवाना, काजीहाउसो में उन्हे बन्द करा देना तथा हजार ढग से उन्हें तग करना और उनपर अत्याचार करना, जिनमें मकानो की लूट, नाई, धोबी, चमार बन्द करा देना, उनके मकानो से उन्हें बाहर निकाल देना, उन्हींकि मकानो के भीतर उन्हें बन्द कर देना, अछूतो को उनके दरवाजो पर बिठा देना आदि बातें भी शामिल थी, जो आये दिन बराबर उनपर बीतती रहती थी। ये लोग किसानो से जबरदस्ती अनुचित-रूप से भाति-भाति के नजराने भी लिया करते थे। जाच करने पर यह ज्ञात हुआ था कि ५० प्रकार के नजराने वसूल किये जाते थे। उनमें से कुछ के नाम यहा देना अनुचित न होगा। विवाह पर, चूल्हे पर, कोल्हू पर लाग लगी हुई थी। यदि साहब बीमार हैं और पहाड पर जाने की आवश्यकता है, तो वहा के किसानो को इसके लिए "पहाडही" नामक लाग देनी पडती थी। यदि साहब को सवारी के लिए घोडा, हाथी या मोटर की जरूरत होती तो किसानो को उसके मूल्य के लिए "घोडाही" "हाथियाही" या "हवाई" नामक विशेष लाग देनी पडती थी। इन लागो के अतिरिक्त किसानो से भारी-भारी जुर्माने भी वसूल किये जाते थे। यदि किसी किसान से कोई ऐसा कार्य बन पडा जिससे साहब को या किसी दूसरे को बुरा लगा, तो उसपर जुर्माना कर दिया जाता था। इस प्रकार से यह लोग एक तरह से उस जिले की अदालत और हाकिम ही बन बैठे थे।

यह अवस्था थी जबकि कुछ इन किसानो के और कुछ बिहार के प्रतिनिधि गाधीजी के पास लखनऊ-काग्रेस के अवसर पर पहुँचे। उन्होने उन्हें चम्पारन आकर स्थिति का अध्ययन करने का वचन दे दिया।

१९१७ में गाधीजी मोतीहारी पहुँचे। यह जिले का मुख्य स्थान था। गावो को देखने के लिए वह रवाना होने ही वाले थे कि दफा १४४ का नोटिस मिला कि तुरन्त ही जिले से बाहर चले जाओ। गाधीजी भला इस हुक्म को कब माननेवाले

थे। उन्होंने अपना 'कैसरेहिन्द' का स्वर्ण-पदक, जो कि सरकार ने उन्हें उनके लोकोपयोगी कार्यों के पुरस्कार में दिया था, सरकार को लौटा दिया। मजिस्ट्रेट की अदालत में उनपर दफा १४४ भग करने का मुकदमा चला। उन्होंने अपनेको अपराधी स्वीकार करते हुए एक विलक्षण बयान अदालत के सम्मुख दिया, जो उस समय एक अपरिचित और नई स्फुरणा को लिये हुए था, हालाकि आज हम उससे भली-भाति परिचित हो चुके हैं। सरकार ने अन्त में मुकदमा वापस ले लिया और उन्हें अपनी जाच करने दी। इस जाच में उन्होंने अपने मित्रो की सहायता से कोई २० हजार किसानो के बयान कलमबन्द किये। इन्ही बयानों के आधार पर गाधीजी ने किसानो की मागें पेश की। आखिरकार सरकार को एक कमीशन नियुक्त करना पडा जिसमें जमीदार, सरकार और निलहे गोरो के प्रतिनिधि थे। गाधीजी को किसानो की ओर से प्रतिनिधि रक्खा गया था। इस कमीशन ने जाच के बाद एक मत होकर अपनी रिपोर्ट लिखी, जिसमें किसानो की लगभग सभी शिकायतो को जायज माना गया। उस रिपोर्ट में एक समझौता भी लिखा गया था जिसमें किसानो पर बढाये गये लगान को कम कर दिया गया था और जो रुपया गोरों ने नकद वसूल किया था उसका एक भाग लौटा देना तय हुआ था। इनकी सिफारिश को बाद में कानून का रूप दे दिया गया था, जिसके अनुसार नील को पैदा करना या 'तीनकठिया' लेना मना कर दिया गया। इसके कुछ वर्ष बाद ही अधिकाश निलहे गोरो ने अपने कारखाने बेंच दिये, जमीन बेच दी और जिला छोड़कर चले गये। आज उन स्थानो के, जो कभी निलहे गोरो के महल थे, खण्डहर ही शेष है। वे लोग, जो अभीतक वहा मौजूद हैं, नील का काम कतई नही कर रहे है, बल्कि दूसरे किसानो की तरह खेती-बाडी करके बसर करते हैं। अब न तो उनकी वह गैर-कानूनी आमदनी ही रह गई है और न वह प्रतिष्ठा ही, जो उनकी आमदनी का एक कारण थी। जिन अत्याचारो और मुसीबतो को देश के अनेक नेता और सरकार दोनो पिछले सौ वर्षों से दूर न कर सके वे इस प्रकार कुछ ही महीनो में मिट गये।

२—खेडा-सत्याग्रह

सफलता की दृष्टि से चाहे नही, बल्कि सत्याग्रह के सिद्धान्त का जहातक प्रश्न है, चम्पारन-सत्याग्रह के समान ही महत्त्वपूर्ण खेडा का (१९१८) भी सत्याग्रह है। गाधीजी के भारत के सार्वजनिक क्षेत्र में प्रवेश करने से पहले, भारतीय किसान यह नही जानते थे कि घोर-से-घोर अकाल के दिनो में भी वे सरकार के

लगान लेने के अधिकार के सम्बन्ध में कुछ ऐतराज कर सकते हैं। उनके प्रतिनिधि सरकार के पास आवेदन एव प्रार्थनापत्र भेजते थे, स्थानीय कौंसिलो में प्रस्ताव करते थे। बस यहापर उनका विरोध समाप्त हो जाता था। १६१८ में गाधीजी ने एक नये युग का श्रीगणेश किया। गुजरात के खेडा जिले में इस वर्ष ऐसा बुरा समय आया कि जिले भर की सारी फसल खराब हो गई। अवस्था अकाल के समान हो गई थी। किसान लोग यह महसूस करने लगे थे कि अवस्था को देखते हुए लगान स्थगित होना चाहिए। आमतौर पर ऐसे मौको पर जो उपाय काम में लाये जाते थे, उन सबको आजमाया जा चुका था। सारे उपाय बेकार हो चुके थे। अत गाधीजी के पास किसानो को सत्याग्रह की सलाह देने के अलावा कोई चारा ही नही था। उन्होंने लोगो से स्वय-सेवक और कार्यकर्त्ता बनने की भी अपील की और कहा कि वे किसानो में जाकर उन्हें अपने अधिकारों आदि का ज्ञान करावें। गाधीजी की अपील का असर तुरन्त ही हुआ। सबसे पहले स्वय-सेवक बनने को आगे बढनेवाले सरदार वल्लभभाई पटेल थे। आपने अपनी खासी और बढती हुई वकालत पर लात मार दी, और सब कुछ छोडकर गाधीजी के साथ फकीरी ले ली। खेडा का सत्याग्रह ही इन दो महान् पुरुषो को मिलाने का कारण बना। सरदार वल्लभभाई के सार्वजनिक जीवन में प्रवेश करने का यह श्रीगणेश था। उन्होंने अन्तिम निश्चय करके अपने-आपको गाधीजी के अर्पण कर दिया। किसानो ने एक प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर किये कि वे अपने को झूठा कहलाने की अपेक्षा और अपने स्वाभिमान को नष्ट करके जबरदस्ती बढाया हुआ कर देने की अपेक्षा अपनी जमीनो को जब्त कराने के लिए तैयार हैं।

अब किसानो को एक नये ढग से शिक्षित किया जाने लगा। उन सिद्धान्तो की शिक्षा उन्हें दी गई जो उन्होने पहले कभी सुने तक न थे। उन्हें यह बताया जाता है कि आपका यह हक है कि आप सरकार के लगान लगाने के अधिकार पर ऐतराज करें। यह भी कि सरकारी अफसर आपके मालिक नही, नौकर है, इसलिए आपको अफसरों का सारा भय अपने दिल से निकालकर डराये-धमकाये जाने की, दमन और दबाव की और उससे भी बदतर जो आ पडे उन सबकी परवा न करते हुए अपने हको पर डटे रहना चाहिए, उन्हें नागरिकता के प्रारम्भिक नियमो को भी सीखना था, जिनके जाने बिना बडे-से-बडा साहस-कार्य भी आगे चलकर दूषित और भ्रष्ट हो सकता है। गाधीजी, सरदार पटेल तथा उनके अन्य साथियो का रोज यही काम था कि वे नित्य-प्रति एक गाव से दूसरे और वहा से तीसरे में जाकर

किसानो को यही उपदेश और शिक्षा देते थे और कहते थे कि मवेशियो तथा अन्य वस्तुओ के कुर्क किये जाने, जुर्माना और जमीन जब्त होने की धमकी के मुकाबले में भी दृढ़तापूर्वक डटे रहो। इस युद्ध के लिए धन की कोई विशेष आवश्यकता नही थी, फिर भी वम्बई के व्यापारियो ने चन्दा करके आवश्यकता से अधिक धन भेज दिया। इस सत्याग्रह से गुजरात को सविनय-भग का पहला सवक सीखने का अवसर प्राप्त हुआ। किसानो के हृदय को मजबूत बनाने के खयाल से गाधीजी ने लोगो को सलाह दी कि जो खेत बेजा कुर्क कर लिया गया है उसकी फसल काटकर ले आवें और (स्वर्गीय) श्री मोहनलाल पण्डया इस कार्य में किसानों के अगुआ बने। लोगो को अपने ऊपर जुर्माने कराने और जेल की सजा को आमंत्रित करने की शिक्षा ग्रहण करने का यह अच्छा अवसर था, जोकि सत्याग्रह का आवश्यक परिणाम हो सकता है। मोहनलाल पण्डया एक खेत की प्याज की फसल काटकर ले आये। उन्हें इस कार्य में कुछ किसानो ने भी मदद दी। उन सब लोगो की गिरफ्तारिया हुईं, मुकदमे चले और थोटे-थोडे दिन की सजायें हुईं। लोगो के लिए यह एक अद्भुत प्रयोग था। इन सब बातो को वे आनन्द के साथ करते थे। वे अपने नेताओ की जय-जयकार करते थे और जेल से छूटने पर उनके जुलूस निकालते थे।

इस झगडे का यकायक ही अन्त हो गया। अधिकारियों ने गरीब किसानो के लगान को मुल्तवी कर दिया। लेकिन उन्होंने यह कार्य किया बिना किसी प्रकार की सार्वजनिक घोषणा किये हुए। उन्होने किसानो को यह भी न अनुभव होने दिया कि यह उनके साथ किसी प्रकार का समझौता करके हुआ है। चूंकि यह रियायत एक तो देर से दी गई, दूसरे यह जाहिर नहीं होने दिया कि यह लोगो के आन्दोलन के फलस्वरूप है, तीसरे दी भी बिना मन के, इसलिए इससे बहुत कम किसानों को लाभ पहुँचा। यद्यपि सिद्धान्ततः सत्याग्रह की विजय हुई, फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि वह पूर्ण विजय थी। लेकिन उसके अप्रत्यक्ष फल बहुत बड़े निकले। इस लडाई से गुजरात के किसानो में एक महान् जागृति की नींव पड़ी और वास्तविक राजनैतिक शिक्षा का सूत्रपात हुआ। गाधीजी अपनी 'आत्म-कथा' में लिखते हैं:—

"गुजरात के प्रजा-जीवन में नया तेज आया, नया उत्साह भर गया। सबने समझा कि प्रजा की मुक्ति का आधार खुद अपने ही ऊपर है, त्याग-शक्ति पर है। सत्याग्रह ने खेड़ा के द्वारा गुजरात में जड़ जमाई।"

३—अहमदाबाद-सत्याग्रह

गाधीजी-द्वारा अहमदाबाद के मिल-मजदूरो के सगठन की कहानी उपन्यास की भाति ऐसी रोमाचकारी है कि उससे किसी भी जाति के स्वतत्रता के इतिहास की शोभा बढ सकती है। उस समय महात्माजी ने काग्रेस का नेतृत्व ग्रहण नही किया था। औद्योगिक झगडो को सुलझाने के लिए इतिहास में सबसे पहली बार अहमदाबाद में ही उन उपायो को काम में लाया गया जिनका आधार सत्य और अहिंसा था। उसके ऐसे मजबूत और दूरगामी परिणाम निकले हैं, जिनके कारण अहमदाबाद का मजदूर-सघ कितने ही औद्योगिक तूफानो का सामना कर चुका है और जिसे देख-देखकर पश्चिमी यात्री दग रह जाते है और बहुत प्रशसा करते हैं। उस कहानी का यदि सक्षिप्त वर्णन भी इस इतिहास में किया जाय तो अनेक पृष्ठ रगे जा सकते हैं—परन्तु मै यहा केवल इतनी ही बात लिखकर सतोष करूँगा कि गाधीजी ने इसमें कितना कार्य किया है और इस सगठन की मुख्य रूप-रेखा क्या है जिससे यह मालूम हो जाय कि इसमें तथा भारत के और ससार के ऐसे ही दूसरे मजदूर-सगठनो में कितना अन्तर है।

१९१६ से श्रीमती अनुसूया बेन साराभाई मजदूरो में शिक्षा-सबन्धी कार्य कर रही थी। १९१८ में बुनकरो और मिल-मालिको में जो झगडा उठ खडा हुआ था उसके सम्बन्ध में परामर्श लेने के लिए उन्हें गाधीजी के पास जाना पडा। उन्होने ने मिल-मालिको को जबरदस्ती मनवाने की कोशिश करने की अपेक्षा उनसे पचायत के सिद्धान्त को स्वीकार करा लिया। यह मजदूर-आन्दोलन के लिए एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात थी। गाधीजी और सरदार वल्लभभाई पटेल ने मजदूरो की ओर से पच होना स्वीकार कर लिया। लेकिन पच-फैसले की बात बीच में ही टूट गई, क्योकि थोडी मिलो के कुछ मजदूरो ने बीच ही में हडताल कर दी। गाधीजी ने स्वय इसके लिए खेद प्रकाशित करके मजदूरो को वापस काम पर भेज दिया। यद्यपि समझौता-भग दोनो ओर से हुआ था, तो भी मिल-मालिक कुछ सुनते ही न थे। गाधीजी ने मजदूरो को कुछ निश्चित कार्य करने की सलाह देने से पहले खुद इस समस्या का गहराई के साथ अध्ययन किया। व्यापारिक अवस्था, उससे मिलो को होनेवाले लाभ, जीवन की आवश्यक वस्तुओ की महगाई और दूसरी ओर मिलो में उत्पत्ति-खर्च की वृद्धि—ये उनकी जाच के मुख्य विषय थे। इस जाच के पश्चात् जिस परिणाम पर गाधीजी पहुँचे वह यह था कि मजदूरो की मजदूरी में कम-से-कम ३५ फी सदी की वृद्धि की जाय। मजदूरो की माग यद्यपि इससे बहुत अधिक थी, तो भी वे उसे स्वीकार कर लेने पर राजी कर लिये गये।

मिल-मालिकों ने २० फी सदी से अधिक देने से कतई इन्कार कर दिया और कह दिया कि २२ फरवरी १९१८ से मिलो में ताले डाल दिये जायेंगे। इसपर गाधीजी ने सारे मजदूरो की एक सभा बुलाई और एक पेड के नीचे, जो अभीतक पवित्र समझा जाता है, उनसे प्रतिज्ञा कराई, कि वे तबतक काम पर नही लौटेंगे जबतक कि उनकी पूरी माग स्वीकार नही हो जाती। प्रतिज्ञा में यह बात भी थी कि वे लोग जबतक मिलो मे ताले पडे रहेंगे तबतक किसी हालत में शान्ति-भग न करेंगे। यह प्रतिज्ञा कराने के बाद मजदूरो में शिक्षा देने का कार्य बडे जोर-शोर के साथ प्रारम्भ किया गया। श्रीमती अनसूया बेन दरवाजे-दरवाजे जाती थी। श्री शकरलाल बैंकर तथा छगनलाल गाधी भी इसी कार्य में जुट पडे थे। नोटिस बाटे जाते थे, रोज स्थान-स्थान पर विराट् सार्वजनिक सभायें की जाती थी। इन नोटिसो को गाधीजी स्वय लिखते थे। उनमें वह मजदूरो को बडी आसान भाषा में यह समझाते थे कि जिस सघर्ष में वे लोग जुटे हुए हैं वह केवल औद्योगिक ही नही बल्कि एक आध्यात्मिक और नैतिक सघर्ष भी है जिसमें उनका प्रत्येक दृष्टि से उत्थान होगा और साथ-ही-साथ मजदूरी में भी वृद्धि हो जायगी। यह सघर्ष एक पखवाडे तक बराबर चलता रहा। लेकिन मजदूर लोग इस बात के आदी नही थे कि वे अधिक समय तक अपनी मजदूरी का घाटा सह सकें, इसलिए उनमें कमजोरी के लक्षण प्रतीत होने लगे। उन लोगो में जो नासमझ थे वे तो यहा तक बडबडाने लगे कि गाधीजी के लिए यह बात ठीक हो सकती है कि वह हमें इस बात का उपदेश दें कि हम लोग अपनी प्रतिज्ञाओ पर डटे रहें, लेकिन हम लोगो के लिए, जिनके बाल-बच्चो के भूखो मरने की नौबत आ गई है, यह इतना आसान नही है। यह गाधीजी के लिए एक ईश्वरीय चेतावनी सिद्ध हुई। उन्होंने शाम की सभा में यह घोषित कर दिया कि जबतक मजदूर लोग अपनी प्रतिज्ञा पर डटे रहने की शक्ति नही पा जाते तबतक न तो वह किसी सवारी में ही चलेंगे और न भोजन ही करेंगे। यह समाचार विद्युत् गति से सारे भारतवर्ष मे फैल गया। यह आमरण अनशन था। मजदूरो ने उन्हें बहुतेरा समझाया, पर उनका निर्णय अटल था। इसपर गाधीजी ने उनसे अपील की कि वे अपना समय व्यर्थ ही नष्ट न करे, और उन्हें जो कोई भी काम मिल जाय उसपर ईमानदारी के साथ अपनी रोटी पैदा करें। गाधीजी के लिए यह बहुत आसान था कि वह इन मजदूरो की आर्थिक सहायता के लिए धन की अपील करते, जिससे काफी धन अवश्य आ जाता, लेकिन इस तरह भिक्षान्न देना उन्हें पसन्द न था। उनका कहना था कि मजदूरो की सारी तपस्या निष्फल हो जायगी और उसका सारा मूल्य चला जायगा, यदि उन्हें इस प्रकार भिक्षा-द्वारा सहायता दी जाय। सत्याग्रहा-

श्रम साबरमती की भूमि पर सैकडो मजदूरो को काम मिल भी गया, जहा कि इमारतें बन रही थी। वे आश्रम के सदस्यो के साथ बडे आनन्द से काम करने लगे। इनमें सबसे आगे श्रीमती अनसूया बेन थी, जो मिट्टी, ईंट और चूना ढो रही थी। इसका बडा ही नैतिक प्रभाव पडा। इससे मजदूर अपनी प्रतिज्ञा पर और भी दृढ हो गये, और मिल-मालिको के भी दिल दहल गये। देश के विभिन्न भागो से नेताओ ने उनसे अपीलें की। अपील करनेवाले नेताओ में डॉ० बेसेण्ट का नाम उल्लेखनीय है, जिन्होने मिल-मालिको को यह तार भेजा था—"भारत के नाम पर मान जाओ और गाधीजी के प्राण बचाओ।" उपवास के चौथे दिन एक ऐसा रास्ता हाथ आया जिससे मजदूरो की भी प्रतिज्ञा भग नही होती थी और इधर मिल-मालिक भी अपनी प्रतिष्ठा कायम रखते हुए उनके साथ न्याय कर सकते थे। दोनो ने पच-फैसला मानना स्वीकार कर लिया। पचो ने मजदूरों की माग के अनुसार ही ३५ फी सदी बढोतरी कर देने का निर्णय किया।

मजदूरो की समस्या के शान्तिपूर्ण ढग से सुलझ जाने के कारण काग्रेसी नेताओ और मजदूरों में एक सुदृढ सम्बन्ध स्थापित हो गया। इसीके फलस्वरूप मजदूरो का 'मजूर-महाजन' नामक एक ऐसा स्थायी सगठन हो गया जो आज १५ वर्ष से श्रीमती अनसूया बेन और श्री शकरलाल बैंकर की देख-रेख में प्रगति के साथ काम करता हुआ चला आ रहा है। ये दोनो काग्रेस के प्रमुख व्यक्ति हैं। इस सस्था की बदौलत मजदूर अबतक कितने ही कठिन तूफानो को पार कर गये हैं और अहमदाबाद नगर को बडे-बडे औद्योगिक सकटो से बचाया है।

: २ :

असहयोग पूरे जोर में—१९२१

पंजाब-काण्ड पर सरकार का दुख-प्रकाश

नागपुर-कांग्रेस के प्रस्ताव में भारत के इतिहास में एक नया युग पैदा होता है। निर्बल क्रोध और आग्रहपूर्वक प्रार्थनाओं का स्थान जिम्मेवारी का एक नया भाव और स्वावलम्बन की स्पिरिट ले रहे थे। अब १९२० के आखीर और १९२१ की शुरुआत में भारत में जो कुछ घटनायें हुईं उनपर हम जरा देर के लिए गौर करें। १९२० के अन्त तक नरम-दलवालों ने सदा के लिए कांग्रेस से अपना सम्बन्ध तोड़ लिया। लिबरल-फेडरेशन के दूसरे वार्षिक अधिवेशन में श्री सी० वाई० चिन्तामणि ने उत्तम भाषण दिया। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी 'सर' हो गये थे। लॉर्ड सिंह बिहार और उड़ीसा के पहले गवर्नर बन चुके थे। १९२१ के आरम्भ में ही नये मन्त्रियों में लाला हरकिशन-लाल (पंजाब) जैसों का भी नाम आया, जो कुछ ही महीने पहले बुरे बताये जाते थे, जिन्हें आजन्म देश-निकाले की सजा दी गई थी और जिनकी सारी जायदाद जब्त कर ली गई थी। ड्यूक ऑफ कनाट, सम्राट् पंचम जॉर्ज के चाचा, भारतवासियों के मनो-भावों को शान्त करने और भारत में नया युग जारी करने के लिए यहां भेजे गये। उन्होंने एक बढ़िया वक्तृता दी —

"मैं अपने जीवन के उस काल में पहुँच गया हूँ जबकि मेरी यही इच्छा हो सकती है कि पुराने जख्मों को भरूँ और जो अलग हो गये हैं उन्हें फिर से मिलाऊँ। मैं भारत का एक पुराना मित्र हूँ और उसी नाते आप सबसे अपील करता हूँ कि मृत भूत-काल के साथ पिछली गलतियों को भी कब्र में गाड़ दीजिए, जहां माफ ही करना है माफ कर दीजिए और कन्धे-से-कन्धा भिड़ाकर एकसाथ काम कीजिए, जिससे उन सब आशाओं की पूर्ति हो जो आज के दिन पैदा हो रही है।"

इसके बाद, जब बड़ी कौंसिल में पंजाब-हत्या-काण्ड पर प्रस्ताव लाया गया उस समय सरकार की तरफ से बहस का नेतृत्व सर विलियम विंसेण्ट कर रहे थे। "उन्होंने उन अनुचित कार्यों के किये जाने पर शासकों की ओर से दिली अफसोस जाहिर करते हुए अपना यह दृढ़ निश्चय प्रकट किया था कि जहांतक मनुष्य की दृष्टि जाती

हूं अब फिर से ऐसी घटनाओ का होना असम्भव हो जायगा।" इतना कह चुकने के बाद सरकार ने चतुराई खेलकर प्रस्ताव का तीसरा टुकडा, जिसमें कि "सबक देने लायक सजा देने" की तजवीज थी, प्रस्तावक से वापस करा लिया। परन्तु बात दर-असल यह थी कि जनरल डायर जो अपने पद से हटा दिया गया था, और इसलिए जो सम्भवत पेंशन के हक से भी हाथ धो बैठा था, उसे अर्पण करने के लिए अग्रेज महिलाओ ने भारत में २०,००० पौंड एकत्र किये, क्योकि वे उसे "अपना त्राता" समझती थी। इतना ही नही, बल्कि उसे एक तलवार भेंट करके इग्लैण्ड और हिन्दुस्तान में उसका खुले-आम बडा आदर किया गया। उसे जो कुछ हानि उठानी पडी हो उसकी जरूरत से ज्यादा पूर्ति इस तरह हो गई थी। कर्नल जॉन्सन जो दूसरा प्रमुख अपराधी था, उसे भारत में एक व्यापारिक जगह मिल गई और अपने 'नुकसान' का कसकर बदला मिल गया। न तो ड्यूक साहब की अपील से और न होममेम्बर सर विलियम विंसेण्ट के 'शासको की तरफ से खेद-प्रकाशन' से भारतवासियो के मनोभावो को शान्ति मिली। असहयोग की जड जम चुकी थी। परन्तु एक बात ठीक हो रही थी और वह यह कि बडी कौंसिल ने १९२१ की शुरुआत में एक कमिटी बैठाई थी कि वह दमनकारी कानूनो की जाच करे। और अन्त को वे सब कानून, क्रिमिनल-लॉ-अमेण्डमेण्ट-एक्ट को छोड कर, १९२२ की शुरुआत में ही सचमुच रद कर दिये गये थे। परन्तु इस सारी मरहम-पट्टी के होते हुए भी भारत का जख्म तो ताजा ही बना रहा, उसमें से बराबर मवाद बहता रहा और काग्रेस को 'शाही-घोषणा-पत्रो' और 'कौंसिलो-द्वारा कानूनो को रद कराने' की पुरानी दवाओ का अवलम्बन छोडकर खुद उसका इलाज अपने हाथो में लेना पडा।

असहयोग प्रारंभ

नागपुर-काग्रेस के आदेश का उत्तर लोगो ने काफी दिया। कौंसिलो के बहिष्कार में सराहनीय सफलता मिली। हा, अदालतों और कॉलेजो के बहिष्कार में उससे कम सफलता मिली, फिर भी उनकी शान और रोब को तो गहरा धक्का पहुँचा। देशभर में कितने ही वकीलो ने वकालत छोड दी और दिलो-जान से अपनेको आन्दोलन में झोक दिया। हा, राष्ट्रीय-शिक्षा के क्षेत्र में अलबत्ता आशातीत सफलता दिखाई पडी। गाधीजी ने देश के नौजवानो से अपील की थी और उसका जवाब उनकी ओर से बडे उत्साह के साथ मिला। यह काम महज बहिष्कार तक ही सीमित न था। राष्ट्रीय विद्यापीठ, राष्ट्रीय कॉलेज और राष्ट्रीय स्कूल जगह-जगह खोले गये। युक्त-प्रान्त,

पंजाब और बम्बई-अहाते में यह युवक-आन्दोलन जोरो से चला। बगाल भी पीछे नही रहा। लगभग जनवरी के मध्य में देशबन्धु दास की अपील पर हजारो विद्यार्थियो ने अपने कॉलेजो और परीक्षाओ को ठोकर मार दी। गाधीजी कलकत्ता गये और उन्होने ४ फरवरी को वहा एक राष्ट्री कॉलेज का उद्घाटन किया। इसी तरह वह पटना भी (दोबारा) गये और वहा राष्ट्रीय-कॉलेज को खोलकर बिहार-विद्यापीठ का मुहूर्त किया। इस तरह चार महीने के भीतर-ही-भीतर राष्ट्रीय-मुस्लिम विद्यापीठ, अलीगढ, गुजरात-विद्यापीठ, बिहार-विद्यापीठ, बगाल राष्ट्रीय विश्वविद्यालय, तिलक-महाराष्ट्र-विद्यापीठ और एक बडी तादाद में राष्ट्रीय स्कूल देश में चारो ओर खुल गये। हजारो विद्यार्थी उनमें आये। राष्ट्रीय शिक्षा को देश में जो प्रोत्साहन मिल रहा था उसका यह फल था। आन्ध्र-देश में १९०७ में राष्ट्रीय-शिक्षा की ज्योति प्रज्वलित हुई थी। वह कभी टिमटिमाती और कभी तेजी से जलने लगती थी। वह अब फिर से तेजी और स्पष्टता के साथ जलने लगी। रेगुलेशन-सस्थाओ से असहयोग करनेवालो की सख्या बहुत थी और आज के बहुतेरे प्रान्तीय और जिला-नेता उन्ही लोगो मे से है, जिन्होने १९२०-२१ में वकालत और विद्यालय छोडे थे।

नागपुर के प्रस्तावो को कार्यान्वित करने के लिए कार्य-समिति की बैठक १९२१ मे अक्सर हर महीने मुख्तलिफ जगहो में हुई। महासमिति की पहली बैठक जो नागपुर में हुई उसने कार्य-समिति का चुनाव किया और २१ प्रान्तो में महासमिति के सदस्यो की सख्या का बटवारा किया। जनवरी १९२१ में नागपुर-काग्रेस के स्वागताध्यक्ष सेठ जमनालाल बजाज ने अपनी रायबहादुरी की पदवी छोड दी और असहयोगी वकीलो की सहायता के लिए तिलक-स्वराज्य-कोष में एक लाख रुपया दिया। ३१ जनवरी १९२१ को कलकत्ते में कार्य-समिति ने तिलक-स्वराज्य-कोष के उपयोग के नियम बनाये। इस कोष का २५ फी सदी भिन्न भिन्न प्रान्तो की रकम से कार्य-समिति को देना तय हुआ था। किसी वकील को १००) महीने से ज्यादा सहायता नही मिल सकती थी और किसी राष्ट्र-सेवक को ५०) मासिक से अधिक नही। कर्ज का होना इन सेवा के लिए एक अपात्रता मानी गई। राष्ट्रीय शिक्षा के लिए सविस्तर पाठ्यक्रम अभी नही बन सका था। परन्तु हिन्दुस्तानी भाषा और चर्खा कातना सिखाना तय हुआ और ग्राम-कार्यकर्ता के लिए एक तालीम का क्रम निश्चित हुआ। देशबन्धु दास के जिम्मे हुआ मजदूर-सगठन पर देख-रेख और श्री तेरसी आर्थिक बहिष्कार कमिटी के संयोजक बनाये गये। बेजवाडा में ३१ मार्च और १ अप्रैल को कार्य-समिति की भी बैठक हुई। कार्य-समिति में सबका यही मत था कि लगानबन्दी का समय अभी नही

आया है। बेजवाडा में ही महासमिति ने यह तय किया कि स्वराज्य-कोष के लिए एक करोड रुपया जमा किया जाय, एक करोड कांग्रेस के मेम्बर बनाये जायें और बीस लाख चर्खे चलवाये जायें। प्रान्त की आबादी के अनुपात से इनकी पूर्ति करनी थी। पंचायत का संगठन और शराब छुडवाने पर ज्यादा जोर दिया गया था। हालांकि लोग ऐसे सुधार और संगठन के निर्दोष कार्यों का प्रचार करते थे, तो भी सरकार ने पहले ही से दफा १४४ और १०८ का दौर शुरू कर दिया था। उस समय महासमिति ने यह ठहराया कि देश में अभी इतना नियम-पालन का गुण और संगठन-बल नहीं आ गया है कि जिससे तुरन्त ही सविनय भंग जारी किया जा सके और जिन-जिनके नाम पूर्वोक्त दफाओं के अनुसार आज्ञायें जारी हुई थीं उन्हें उनको मान लेने के लिए कहा गया। सच तो यह है कि देश में मार्च के दूसरे सप्ताह से ही जोश उमड रहा था। देशबन्धु दास मैमनसिंह जाने से रोक दिये गये। बाबू राजेन्द्रप्रसाद और मौ० मजहरुल हक को आरा जाने की मनाही कर दी गई। श्री याकूब हुसेन कलकत्ता जाने से और लाला लाजपतराय पेशावर जाने से रोके गये। कुछ और लोगों के नाम भी हुक्म निकले थे। लाहौर में सभाबन्दी-कानून जारी कर दिया गया था। परन्तु ननकाना-काण्ड के मुकाबले में ये कुछ भी नहीं थे। मार्च के पहले हफ्ते में गुरुद्वारा में कुछ सिक्ख इकट्ठे हुए। वह शान्तिमय समुदाय था। एकाएक उनपर धावा बोला गया और गोलियां चलाई गईं, जिसमें लोगों के कथनानुसार १९५ और सरकार के अनुसार ७० मौतें हुई थीं। वहां के महन्त ने, जोकि राजभक्त था, ४००० कारतूस और ६५ पिस्तौल जमा कर रक्खे थे। एक गड्ढा खोद कर रक्खा गया था और बडी-सी आग जलाई जा रही थी। ५ मार्च को किसी सार्वजनिक विषय पर परामर्श करने के लिए लोग इकट्ठे होनेवाले थे। कई बदमाशों ने मिलकर यह करतूत की थी। सरकार की ओर से कहा गया था कि यह तो सिक्खों के दो फिरकों की लड़ाई थी। ननकाना जैसा भीषण-काण्ड, जहां कि यात्री इस तरह मार डाले गये हों और जिनमें अभी कुछ जान बाकी थी वह भी उस जलते हुए गड्ढे में डाल दिये गये हों, पहले कहीं नहीं हुआ था।

कांग्रेस की शुरुआत के सालों में, हमने देखा ही है कि, सारे कार्य का केन्द्र ब्रिटिश कमिटी बन रही थी और उसका खर्च-वर्च और जरूरतें बहुत बढ़ी-चढी थीं। कई साल तक लगभग ६०,०००) साल उसके खर्च के लिए मंजूर किये जाते रहे। परन्तु अब उसकी जगह भारतवर्ष आन्दोलन-केन्द्र बन गया था। इसलिए बेजवाडा में यह निश्चय हुआ कि इस वर्ष के शेष दिनों के लिए १७,०००) मंजूर किया जाय, जोकि अध्यक्ष, मंत्री और खजाची के दफ्तर-खर्च में काम आवे। लालाजी और

केलकर साहब की सलाह से अमरीका की होमरूल-लीग वाले श्रीयुत राय को तार-द्वारा एक हजार डालर भेजे गये। ६ और १३ अप्रैल के दिन उपवास और प्रार्थना के रूप में मनाये जाने तय हुए। महासमिति में कांग्रेस-प्रान्तो के प्रतिनिधियो की सख्या का बटवारा इस तरह किया गया कि जिससे भूतपूर्व सभापतियो को छोडकर ३५० की सख्या में गडबड न हो। १० मई को जब इलाहाबाद में कार्य-समिति बैठी तो अगली बैठक के लिए तजौर और शोलापुर से उसे निमत्रण मिले थे, परन्तु इस बैठक में कोई महत्त्व-पूर्ण बात नही हुई। १५ जून को बम्बई में फिर उसकी बैठक हुई, जिसमें गाधीजी ने वाइसराय के साथ हुई अपनी मुलाकात के सम्बन्ध में वक्तव्य पेश किया।

गाँधी रीडिंग मुलाकात

यह मुलाकात मालवीयजीने करवाई थी। उस समय लॉर्ड रीडिंग वाइसराय हुए थे। यह अप्रैल १९२१ की बात है। इस मुलाकात में उन्हें गाधीजी की सच्चाई और शुद्धभाव को देखने का अवसर मिला। वह इस नतीजे पर पहुँचे कि खुद असहयोग-आन्दोलन के खिलाफ कोई कार्रवाई करना मुनासिब न होगा। प्रसगवश उन्होने अली-भाइयो के कुछ व्याख्यानो की ओर गाधीजी का ध्यान दिलाया, जिनसे गाधीजी के असहयोग-आन्दोलन-सम्बन्धी विचारो का खडन होता था। गाधीजी को बताया गया कि इन व्याख्यानो का तात्पर्य हिंसा को सूक्ष्म-रूप से उत्तेजना देने के पक्ष में लगाया जा सकताहै। गाधीजी तो ठहरे बडे ही मुसिफ-मिजाज। उन्हें भी जँचा कि हा इन भाषणो का ऐसा अर्थ लगाया जा सकता है, इसलिए उन्होने अली-भाइयो को लिखा और उनसे इस आशय का वक्तव्य निकलवाया कि उनका आशय ऐसा नही था।

यह 'माफी-प्रकरण' इस आन्दोलन के इतिहास में एक युगान्तरकारी घटना है। गोरे लोग सरकार की इस विजय पर बडे खुश थे। माफी से लॉर्ड रीडिंग को तसल्ली हो गई और उन्होने अली-भाइयो पर मुकदमा चलाने का इरादा छोड दिया।

असहयोग और दमन

बम्बईवाली कार्य-समिति की बैठक में राजनैतिक मुकदमो की सफाई देने के सम्बन्ध में स्थिति साफ की गई। कार्य-समिति ने यह तय किया कि किसी असहयोगी पर यदि दीवानी और फौजदारी मुकदमा चलाया जाय तो उसे उसकी सुनवाई में कोई हिस्सा न लेना चाहिए। सिर्फ अदालत में अपना एक वक्तव्य दे देना चाहिए। जिससे लोगो के सामने उसकी निर्दोषता सिद्ध हो जाय। यदि जाब्ता फौजदारी की

रू से कोई जमानत तलब की जाय तो वह उसे देने से इन्कार कर दे और उसकी एवज मे जेल भुगत ले। आगे चलकर यह भी नियम बनाया कि असहयोगी वकीलो को फीस लेकर या बिना फीस के किसी अदालत में पैरवी न करना चाहिए। उस समय यह अन्देशा था कि कही अगोरा मे तुर्किस्तान की सरकार के साथ भिडन्त न हो जाय। इसपर कार्य-समिति की यह राय थी कि मुसलमानो की राय की परवा न करते हुए यदि लडाई छिड जाय तो प्रत्येक भारतवासी का यह कर्तव्य होगा कि इस कार्य में वह ब्रिटिश-सरकार की मदद न करे और हिन्दुस्तानी सिपाहियो का यह कर्तव्य है कि वे इस सिलसिले मे ब्रिटिश-सरकार की कोई सेवा या कार्य न करें।

२८, २९ और ३० जुलाई १९२१ को बम्बई में महासमिति की एक महत्त्वपूर्ण बैठक हुई। बेजवाडा-कार्यक्रम को देश में जो सफलता मिली थी उससे चारो ओर खुशिया छाई हुई थी। तिलक-स्वराज्य-कोष में निश्चित से १५ लाख रुपये अधिक आ गये थे। काग्रेस सदस्यो की सख्या आधे के ऊपर पहुँच कर रह गई, मगर चर्खे करीब-करीब बीस लाख चलने लगे थे। इसके बाद अब बुनने तथा खादी-सम्बन्धी विविध क्रियाओ की ओर देश का ध्यान गया। इस उद्देश की सिद्धि के लिए विदेशी कपडे के बहिष्कार और खादी की उत्पत्ति में सारी शक्ति लगाने का प्रश्न देश के सामने था। महासमिति ने यह भी सलाह दी कि "तमाम काग्रेसी आगामी १ अगस्त से विदेशी कपडो का उपयोग छोड दें।" बम्बई और अहमदाबाद के मिल-मालिको से अनुरोध किया गया कि "वे अपने कपडो की कीमत मजदूरो की मजदूरी के अनुपात से रक्खे और वह ऐसी हो जिससे गरीब भी उस कपडे को खरीद सकें और मौजूदा दरो से तो दाम हर्गिज न बढाये जायँ।" विदेशी कपडे मगानेवालो से कहा गया कि वे विदेशी कपडो के आर्डर न भेजें और अपने पास के माल को हिन्दुस्तान के बाहर खपाने का उद्योग करें।

महासमिति ने यह राय जाहिर की कि किसी भी नागरिक का यह कुदरती हक है कि वह सरकारी नौकरो पर सरकार की मुल्की या फौजी नौकरी छोडने-सम्बन्धी अपनी राय जाहिर करे और साथ ही यह भी हरेक नागरिक का कुदरती हक है कि हरेक फौजी या मुल्की कर्मचारी से खुले तौर पर इस बात की अपील करे कि उस सरकार से वे अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर लें जिसने भारतीय जनता के विशाल बहुमत का विश्वास एव समर्थन गँवा दिया है। मद्य-निषेध-आन्दोलन के सम्बन्ध में, शराबियो को शराब की दूकानो पर न जाने के लिए समझाने में सरकारी कर्मचारियो-द्वारा किये अनुचित और अकारण हस्तक्षेप की बदौलत, धारवाड, मतिया तथा अन्य

स्थानो में कुछ कठिनाइया खडी हो गई थी। इसपर महासमिति ने चेतावनी दी कि अगर ऐसा ही होता रहा तो उसे ऐसे हस्तक्षेपो की अवहेलना करके पिकेटिंग जारी रखने का आदेश देना पडेगा। थाना के जिलाबोर्ड ने पिकेटिंग के सिलसिले में पास किये अपने प्रस्ताव मे पिकेटिंग जारी रखने का निश्चय किया था, उसके लिए उसे धन्यवाद देते हुए महासमिति ने भारत के अन्य जिला व म्युनिसिपल बोर्डों से थाना-बोर्ड-द्वारा बताये गये रास्ते का तुरन्त अनुसरण करने के लिये कहा। यहा यह स्मरण रखना चाहिए कि इस समय तक काग्रेस में पिकेटिंग के बारे में कोई प्रस्ताव पेश नही हुआ था, और इस समय भी उसे सार्वजनिक-सस्थाओ तक ही महदूद रक्खा था। व्यापारियो से प्रार्थना की गई थी कि वे नशीली चीजो का व्यापार बन्द कर दें। पूर्ण अहिंसा बनाये रखने के राष्ट्र के कर्तव्य के प्रति काग्रेस सतर्क थी।

दमन-चक्र बड भयावह और विस्तृत-रूप मे जारी था। खासकर युक्तप्रान्त में उसका बहुत जोरोशोर था। कई जगह तो गोली-काण्ड भी हुए थे। बहुत से लोग, बिना मुकदमा लडे, जेलो में पडे हुए थे। उन सबको बधाई देते हुए महासमिति ने घोषणा की, कि स्वेच्छा-पूर्वक कष्ट-सहन और सफाई या जमानत दिये बगैर जेल जाने से ही हम स्वतत्रता के मार्ग पर अग्रसर होगे। परिस्थिति यह थी कि देश के विभिन्न भागो ने प्रान्तीय सरकारो द्वारा किये गये दमन के जवाब मे सविनय अवज्ञा शुरू करने की माग की थी। सीमाप्रान्त की सरकार ने तो उस कमिटी के सदस्यो के प्रान्त में प्रवेश करने की भी मनाही कर दी थी, जो अधिकारियो-द्वारा वन्नू मे किये गये कथित अत्याचारो की जाच के लिए काग्रेस की ओर से नियुक्त की गई थी। इतने पर भी, यह प्रस्ताव पास किया गया कि "हिन्दुस्तान-भर में अहिंसात्मक वातावरण को और भी अधिक सुदृढ करने, इस बात की परीक्षा करने के लिए कि सर्व-साधारण के ऊपर काग्रेस का प्रभाव किस हद तक कायम हुआ है, और देश में ऐसा वातावरण पैदा करने के लिए कि जिससे स्वदेशी का काम क्षणिक जोश की बात न रह कर नियमित रूप मे और सुगमता-पूर्वक चलने लगे, महासमिति की राय है कि सविनय अवज्ञा को उस वक्त तक स्थगित कर देना चाहिए जबतक कि स्वदेशी-सम्बन्धी प्रस्ताव मे उल्लिखित कार्यक्रम पूरा न हो जाय।" युवराज के आगमन के सिलसिले में महासमिति ने निश्चय किया, कि "(उनके) आगमन के सिलसिले में सरकारी तौर पर या अन्य किसी प्रकार के जो भी समारोह हो, हरेक का यह कर्तव्य है कि न तो उनमें शरीक हो और न किसी प्रकार की कोई सहायता ही उनके आयोजन में करे।"

धारवाड मे १ जुलाई १९२१ को अधिकारियों ने भीड पर जो गोली-बार किया

था उसकी जाच करके विस्तृत रिपोर्ट पेश करने के लिए कार्य-समिति ने नागपुर के असहयोगी वकील श्री भवानीशकर नियोगी (जो अब मध्य-प्रान्तीय हाइकोर्ट के एक जज हैं), बडौदा के अवकाश-प्राप्त जज अब्बास तय्यबजी तथा मैसूर में कुछ समय तक जज रहनेवाले श्री सेटलूर की एक समिति नियुक्त की। ३० सितम्बर से पहले-पहले विदेशी कपडे का भली-भाति बहिष्कार हो जाय, इसके लिए कार्य-समिति ने, घर-घर जाकर विदेशी कपडे जमा करने की आवश्यकता पर जोर दिया और इस काम के लिए उपयुक्त नियत्रण मे अलग स्वय-सेवको को रखने के लिए कहा। अखिल-भारत तिलक-स्वराज्य-फड मे जमा होनेवाली प्रान्त की कुल रकम का कम-से-कम एक-चौथाई विस्तृत-रूप से हाथ-कताई का सगठन करने, हाथ-कते सूत व हाथ-बुने कपडे का सग्रह करने और खद्दर का विभाजन करने के लिए अलग रखने को कहा गया। चकि कुछ प्रान्तो ने यह २५ फी सदी रकम कार्य-समिति को नही भेजी थी, कार्य-समिति ने उन प्रान्तों को मदद देना बन्द कर दिया। कार्य-समिति की अगली बैठक भी जल्दी ही—६, ७, ८, ९ सितम्बर को कलकत्ता मे हुई। यह बैठक महत्त्वपूर्ण थी। धारवाड-गोलीकाण्ड और मोपला-उत्पात की जाच की रिपोर्ट उसमें पेश हुई। इनमें से मोपला-उत्पात पर कार्य-समिति ने जो प्रस्ताव पास किया, उसके कुछ अश निम्नलिखित है—

"मोपलो-द्वारा किये गये हिंसात्मक कृत्यो की तो कार्य-समिति निन्दा करती ही है, लेकिन इसके साथ ही यह भी जाहिर कर देना चाहती है कि इस सम्बन्धी जो सामग्री उसके पास है उससे मालूम पडता है कि मोपलो को असहनीय-रूप से उत्तेजित किया गया था, सरकारी तौर पर या सरकार के द्वारा इस सम्बन्ध में जो खबरे प्रकाशित हुई हैं उनमें मोपलो-द्वारा किये गये अत्याचारो का इकतरफा और बहुत अतिरजित वर्णन किया गया है तथा शान्ति और व्यवस्था के नाम पर सरकार ने जो अनावश्यक जन-सहार किया उसको उससे बहुत कम बताया गया है जितना कि वस्तुत वह हुआ है।

"कार्य-समिति को यद्यपि इस बात का दु ख है कि कुछ धर्मोन्मत्त मोपलो-द्वारा जबरदस्ती धर्म-परिवर्त्तन कराने के उदाहरण पाये गये है, तथापि सर्व-साधारण को वह इस बात से आगाह करती है कि सरकारी या जानबूझकर गढी गई बातो पर वे एकाएक विश्वास न करे। समिति को प्राप्त खबरो से मालूम पड़ता है कि जिन परिवारो के जबरदस्ती मुसलमान बनाये जाने की खबर है वे मजेरी के आस-पास रहते थे। यह स्पष्ट है कि हिन्दुओ को जबरदस्ती मुसलमान उसी धर्मोन्मत्त-दल ने बनाया जो हमेशा खिलाफत व असहयोग-आन्दोलन का विरोधी रहा है, और जहातक हमें मालूम हुआ है, अभी तक तीन ही ऐसे मामले हुए हैं।"

अली-भाइयों की गिरफ्तारी

घटनायें एक के बाद एक तेजी से घट रही थी। १६२१ की अखिल भारतीय खिलाफत-परिषद् ८ जुलाई को कराची में हुई जिसको लेकर अलीबन्धु, डॉ० किचलू, शारदा पीठ के जगद्गुरु श्री शकराचार्य, मौलाना निसारअहमद, पीर गुलाममुजदीद और मौलवी हुसेनअहमद पर मुकदमा चला। मुस्लिम मागो की ताईद करते हुए, उस परिषद् ने एक प्रस्ताव-द्वारा घोषणा की थी कि "आज से किसी भी ईमानदार मुसलमान के लिए फौज में नौकर रहना, या उसकी भर्ती में नाम लिखाना, या उसमें मदद करना हराम है।" साथ ही यह भी ऐलान किया गया कि अगर ब्रिटिश-सरकार अगोरा-सरकार से लड़ाई करेगी तो हिन्दुस्तान के मुसलमान सिविल नाफरमानी (सविनय-अवज्ञा) शुरु कर देंगे और अपनी कामिल आजादी कायम करके कांग्रेस के अहमदाबादवाले जलसे में भारतीय प्रजातन्त्र का झण्डा लहरा देंगे।

इस प्रस्ताव का मूल कारण कार्य-समिति का एक प्रस्ताव था जिसके द्वारा सरकारी फौज को नौकरी छोडने के लिए कहा गया था। इस प्रस्ताव में "कलकत्ता और नागपुर की कांग्रेसो में निश्चित किये गये सिद्धान्त की पुष्टि-मात्र की गई थी।" ५ अक्तूबर को कार्य-समिति की बैठक बम्बई में हुई, जिसमें एक वक्तव्य के दौरान मे कहा गया—"किसी भी भारतीय का किसी भी हैसियत में ऐसी सरकार की नौकरी करना, जिसने जनता की न्यायपूर्ण अभिलाषाओ को कुचलने के लिए फौज और पुलिस से काम लिया (जैसे रौलट-एक्ट के आन्दोलन के अवसर पर किया गया), जिसने फौज का उपयोग मिस्र-वासियो, तुर्कों, अरबो और अन्य राष्ट्रवालो की राष्ट्रीय भावना को कुचलने के लिए किया, राष्ट्रीय गौरव और राष्ट्रीय हित के विरुद्ध है।" अली-भाइयो और उनके सहयोगियो पर मुकदमा चलाने की आज्ञा दी गई थी। कार्य-समिति ने अली-भाइयो और उनके सहयोगियो को उसपर बधाई दी और घोषणा की कि मुकदमा चलाने का जो कारण बताया गया है वह धार्मिक स्वतन्त्रता में बाधा डालनेवाला है। उसने यह भी कहा—"कार्य-समिति ने अबतक फौजी सिपाहियो और सिविलियनो को कांग्रेस के नाम पर नौकरी छोडने को इसलिए नही कहा कि जो सरकारी नौकरी छोड सकते है पर अपना भरण-पोषण करने में असमर्थ है उनके निर्वाह का प्रबन्ध करने में कांग्रेस अभी समर्थ नही है। परन्तु साथ ही कार्य-समिति की यह राय है कि कांग्रेस के असहयोग-सम्बन्धी प्रस्ताव के अनुसार हरेक सरकारी नौकर का, चाहे वह फौजी नौकरी में हो चाहे मुल्की में, यह कर्त्तव्य है कि वह यदि कांग्रेस की सहायता के बिना निर्वाह कर सकता हो तो वह नौकरी छोड दे।" उन्हें बताया गया कि कातना, बुनना

आदि स्वतन्त्र निर्वाह करने के सम्मानपूर्ण साधन है। देश-भर की काग्रेस कमिटियो ने कहा गया कि वे इस प्रस्ताव को अपनावें और १६ अक्तूबर को इस आज्ञा का पालन किया गया। विदेशी कपडे का वहिष्कार अभी अधूरा पडा था। कार्य-समिति ने कहा कि जबतक यह पूरा न होगा किसी भी जिले या प्रान्त में सामूहिक-सत्याग्रह आरम्भ करना असम्भव है, और जबतक हाथ से कातने और बुनने का काम उतना न वढ जायगा कि उससे उस जिले या प्रान्त की आवश्यकतायें पूरी हो सकें, तबतक सत्याग्रह की इजाजत भी न दी जायगी। हा, व्यक्तिगत सत्याग्रह उन लोगो के द्वारा किया जा सकता है जिनके स्वदेशी का प्रचार करने के काम में रुकावट डाली जाय। पर इसकी अनुमति प्रान्तीय-काग्रेस-कमिटी से लेना जरूरी है और प्रान्तीय-काग्रेस-कमिटी को इस बात का आश्वासन मिलना चाहिए कि अहिंसात्मक वातावरण बना रक्खा जायगा। युवराज के स्वागत के बहिष्कार के सम्बन्ध में विस्तृत योजना बनाई गई। तय हुआ कि उनके भारत में पैर रखने के दिन देश-भर में स्वेच्छा-पूर्वक पूर्ण हड़ताल मनाई जाय और वह भारत के नगरो में जहा-जहा जायें, हडतालें की जायें। इसके प्रबन्ध का कार्य कार्य-समिति ने भिन्न-भिन्न प्रान्तीय-काग्रेस-कमिटियो को सौंप दिया। साथ ही विदेशी राष्ट्रो के प्रति यह महत्त्वपूर्ण घोषणा की गई कि भारत-सरकार भारतीय लोकमत व्यक्त नही करती और स्वराज्य-प्राप्त भारत को अपने पडोसियो से डरने का कोई कारण नही है, क्योंकि भारतवासियो का उनके प्रति किसी प्रकार का बुरा भाव नही है, इसलिए उनका इरादा ऐसे व्यापारिक-सम्बन्ध जोडने का नही है जो अन्य राष्ट्रो के हितो के विरुद्ध हो या जिन्हें वे न चाहते हो। उन पडोसी राज्यो को जो भारत के प्रति शत्रुता का भाव न रखते हो, यह चेतावनी भी दी गई कि वे ब्रिटिश-सरकार के साथ किसी प्रकार का समझौता न करें।

इस अवसर पर अली-भाइयो को गिरफ्तार किया गया। जब यह पता चला कि कराची के भाषण को लेकर मामला चलाया जायगा तो गाधीजी ने, जो इस अवसर पर त्रिचनापल्ली में थे, भाषण को स्वय दोहराया। उन्होंने इस गिरफ्तारी को इतना महसूस किया कि सारे राष्ट्र को कार्य-समिति के इस विषय पर पास किये गये प्रस्ताव को दोहराने की आज्ञा दी। समय तेजी के साथ बीतता चला जा रहा था और स्वराज्य की अवधि में केवल एक महीना रह गया था। देश ने अली-भाइयो की और अन्य नेताओ की गिरफ्तारी पर जिस सयम का परिचय दिया उससे प्रभावित होकर दिल्ली की ५ नवम्बर १९२१ की महासमिति की बैठक ने प्रान्तीय काग्रेस-कमिटियो को अपनी जिम्मेदारी पर सत्याग्रह आरम्भ करने का अधिकार दे दिया। सत्याग्रह में करबन्दी

भी शामिल थी। सत्याग्रह किस प्रकार आरम्भ किया जाय, इसके निर्णय का भार प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटियो पर छोड दिया गया। हा, इन शर्तों का पूरा होना जरूरी समझा गया—हरेक सत्याग्रही ने असहयोग के कार्यक्रम के उस अश को जो उसपर लागू होता हो, पूर्ति कर ली हो, वह चर्खा चलाना जानता हो, विदेशी कपडा त्याग चुका हो, खद्दर पहनता हो, हिन्दू-मुस्लिम एकता में विश्वास रखता हो, खिलाफत और पजाब के अन्यायो को दूर करने और स्वराज्य-प्राप्त करने के लिए अहिंसा में विश्वास रखता हो, और यदि हिन्दू हो तो अस्पृश्यता को राष्ट्रीयता के लिए कलक समझता हो। सामूहिक सत्याग्रह के लिए एक जिले या तहसील को एक इकाई समझा जाय जहा के अधिकाश लोग स्वदेशी का पालन करते हो और वही पर हाथ से तैयार हुई खादी पहनते हो, और असहयोग के अन्य सारे अगो में विश्वास रखते और उनका पालन करते हो। कोई सार्वजनिक चन्दे से किसी प्रकार की सहायता की आशा न करे। कार्य-समिति यदि चाहे तो प्रान्तीय कमिटी के अनुरोध पर किसी खास शर्त को कमिटियो पर लागू न करे।

मलाबार की अवस्था पर भी प्रस्ताव पास किया गया, जिसमे हिन्दुओ के जबर्दस्ती मुसलमान बनाये जाने और हिंदू-मदिरो के अपवित्र किये जाने का भी जिक किया गया।

चिराला की हिजरत

यहा अहिंसात्मक असहयोग-आन्दोलन में दो महत्त्वपूर्ण अवस्थाओं के उत्पन्न होने के सम्बन्ध में कुछ कहना आवश्यक है। १९२१ मे सरकार का मुकाबला करने की प्रवृत्ति देश के सार्वजनिक जीवन में मुख्य बात थी, और जनता इस प्रवृत्ति का परिचय भिन्न-भिन्न प्रान्तो में अपने आसपास की स्थिति को देखकर तथा वहा की स्थानिक नागरिक समस्याओ के अनुसार दे रही थी। महासमिति की बैठक ३१ मार्च को आध्र-प्रान्त के बेजवाडा नगर में हुई, जिसने जनता में उत्साह की लहर आ गई। कुछ ही दिनो बाद चिराला के लोगो को अपने गाव के म्युनिसिपैलिटी के रूप में बदले जाने की समस्या का सामना करना पडा। स्थानिक स्वराज्य के मत्री पनगल के राजा थे, जो काग्रेस-दल के घोर विरोधी थे। अब काग्रेस-दल भी इसकी कसर निकालने के लिए आतुर था। चिराला की जनता म्युनिसिपैलिटी नहीं चाहती थी। जब गाधीजी की सलाह ली गई तो उन्होंने कहा कि यदि जनता म्युनिसिपैल्टि की परवा नहीं करती तो वह उसकी सीमा छोड़कर बाहर जा बसे। गाधीजी ने यह भी चेतावनी दे दी कि

यह सब कांग्रेस के नाम पर न किया जाय। विचार बड़ा आकर्षक था और उस महान् कार्य का बीड़ा उठाने के लिए नेता भी योग्य ही मिला। आन्ध्ररत्न डी० गोपाल-कृष्णय्या ने इस विचार की पूर्ति करने में अपनी सारी शक्ति लगा दी और हिजरत का नेतृत्व किया। यह हिजरत हमें सिंध के मुसलमानों की अफगानिस्तान-यात्रा की याद दिलाती है। चिराला के लोगों को बहुत दिनों तक अनेक कष्ट उठाने पड़े। वे म्युनिसिपैलिटी की सीमा के बाहर १० महीनों तक झोपड़ों में पड़े रहे। उधर अनेक नेताओं की गिरफ्तारी एक-एक करके जारी रही। जिन्होंने असहयोग नहीं किया था वे धमकाने-फुसलाने से राजी हो गये और एक साल तक घर-बार छोड़े रहने के बाद लोगों ने म्युनिसिपैलिटी को मान लिया।

मोपला-उत्पात

यहां उन परिस्थितियों का जिक्र करना भी आवश्यक है जिनसे मलाबार में मोपला-उत्पात उत्पन्न हुआ। मोपले वे मुसलमान हैं जिनके पूर्वज अरब थे, मलाबार के सुन्दर स्थान पर आ बसे थे और वहीं शादी-ब्याह करके रहने लगे थे। साधारणतया वे छोटा-मोटा व्यापार या खेती-बारी करते हैं। पर धार्मिक उन्माद की धुन में वे इतने असहिष्णु हो जाते हैं कि प्राणों की या शारीरिक सुख तक की बिलकुल चिन्ता नहीं करते। मोपलों के आये दिन के दंगों ने "मोपला दंगा-विधान" नामक एक विशेष कानून को जन्म दिया। सरकार आरम्भ से इस बात के लिए चिन्तित थी कि "भड़क जाने-वाले" मोपलों में असहयोग की चिनगारी न लगने पावे। पर आन्दोलन और सब जगहों की भांति केरल में भी पहुंचा। फरवरी में चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य और मी० याकूब-हसन जैसे प्रमुख नेता अहिंसा का प्रचार करने के लिए उस प्रान्त में गये। याकूब-हसन ने खासतौर से कह दिया था कि असहयोग पर व्याख्यान न दूंगा, परन्तु इतने पर भी उनके खिलाफ निषेधात्मक आज्ञा जारी की गई और १६ फरवरी १९२१ को याकूब-हसन, माधवन नैयर, गोपाल मेनन और मुईउद्दीन कोया नामक चार नेता गिरफ्तार कर लिये गये। मोपले मुख्यतः वालुवनद और ऐरनड ताल्लुकों में रहते हैं। सरकार ने इन ताल्लुकों में दफा १४४ लगा दी। अगस्त आते-आते रंग-ढंग ही बदल गया और मोपलों ने, जो अपने बंगलों या मुल्लाओं के मस्जिदों में किये गये अपमान से क्षुब्ध हो रहे थे, मारकाट आरम्भ कर दी। शीघ्र ही उनकी हिंसा ने सैनिक-रूप धारण कर लिया। मोपलों ने बन्दूकों और तलवारों से लुक-छिपकर छापे मारने आरम्भ कर दिये। अक्तूबर के मध्य में पहले की अपेक्षा अधिक कठोर फौजी-कानून जारी किया गया।

मोपले सरकारी अफसरो को लूटने और बरबाद करने के अलावा हिन्दुओ को बलपूर्वक मुसलमान बनाने, लूटने, आग लगाने और हत्यायें करने के भागी बने। अंग्रेजो के प्राण सकट में थे। श्री एम० पी० नारायण मेनन नामक एक कांग्रेसी सज्जन ने, जिन्होने सारे मलाबार में कांग्रेस का सगठन करने के काम में बहुत-कुछ भाग लिया था, मोपलो को समझा-बुझाकर अंग्रेजो के प्राण बचाये। पर इसी कार्यकर्त्ता को नवम्बर में पकड कर पहले शाही कैदी के रूप में रक्खा और फिर सरकार के खिलाफ दगा करने के अभियोग में आजीवन निर्वासित कर दिया गया। यह १९३४ में पूरी सजा काटने के बाद छूटे। इन्हें पहले भी छोडा जा सकता था, पर इनसे यह शर्त जबानी मानने को कहा गया कि छूटने पर तीन वर्ष तक वाल्लनद ताल्लुके में न घुसेंगे। इन्होने यह शर्त मजूर न की, और जान-बूझकर वीरतापूर्वक जेल में रहे। मोपला-विद्रोह ने आगे क्या-क्या रूप धारण किये, या अगस्त के बाद उसमें जो मारकाट चलने लगी, उनसे हमारा प्रयोजन केवल इतना ही है कि महासमिति ने अपनी नवम्बर की बैठक में उनके अत्याचारो का विरोध किया।

युवराज का सफल बहिष्कार

१७ नवम्बर को युवराज भारत में आये। नई बडी कौंसिल को वही खोलने-वाले थे, पर १९२० के अगस्त के वातावरण को देखकर भारत-सरकार ने ड्यूक ऑफ कनाट को बुलाया। १९२१ के नवम्बर में युवराज को ब्रिटिश-सरकार की शान बनाये रखने के लिए भेजा गया। कांग्रेस ने पहले से ही निश्चय कर लिया था कि युवराज की अगवानी से सम्बन्ध रखनेवाले सारे उत्सवो का बहिष्कार किया जाय। यही किया गया और जगह-जगह विदेशी कपडो की होली भी जलाई गई। युवराज के बम्बई-पदार्पण के दिन ही शहर में केवल मुठभेड ही नहीं हुई बल्कि चार दिनो तक दगे और खून-खच्चर होते रहे, जिनके फल-स्वरूप ५३ आदमी मरे और लगभग ४०० आदमी घायल हुए। ये दगे सरोजिनी देवी और गाधीजी के रोके भी न रुके, यद्यपि उन्होने घमासान लडाइयो में घुस-घुस कर लोगो को तितर-बितर होने को कहा। इन दगो में असख्य आदमी घायल हुए। गाधीजी ने जबतक शान्ति स्थापित न हो जाय, जनता की ज्यादतियो का प्रायश्चित्त करने के निमित्त ५ दिन का व्रत किया। इन्ही दृश्यों को देखकर गाधीजी ने कहा था कि मुझे स्वराज्य की सडाद आ रही है। युवराज के आगमन के फल-स्वरूप देशभर के स्वयसेवको के दल सगठित हुए। अबतक कांग्रेस के स्वयसेवक ऐसे सामाजिक कार्यकर्त्ता मात्र थे जो मेलो और उत्सवो के अवसर पर यात्रियो की

सहायता करते, सक्रामक रोगो के फैलने पर रोगियों की ओर कोई स्थानिक विपत्ति होने पर पीडितो की सहायता करते और परिषदो और अन्य राष्ट्रीय अवसरो पर काम में आते। पर खिलाफत के स्वयसेवक "सैनिक" ढग के थे, जो कि सरकार के कथनानुसार "कवायद करते और वाकायदा दल वनाकर मार्च करते और वर्दिया पहनते थे।" इन दोनो सस्थाओ के स्वयसेवको ने हडतालो का और विदेशी कपडो के वहिष्कार का सगठन किया। ये दोनो दल मिल गये और महा-समिति की शर्तों का पालन करने की शर्त के साथ सत्याग्रही वन गये। हजारो की सख्या में गिरफ्तारिया हुई। युवराज २५ दिसम्वर को कलकत्ता जानेवाले थे। वगाल-सरकार ने वम्वई-सरकार की तरह नहीं किया और पहले से ही क्रिमिनल-लॉ-अमेण्डमेण्ट-एक्ट के अनुसार स्वयसेवक भर्ती करना गैर-कानूनी करार दे दिया। वहुत से आदमी गिरफ्तार हुए जिनमें देशवन्धु दास, उनकी धर्मपत्नी और पुत्र भी थे। इसके वाद ही युक्त-प्रान्त और पजाव की वारी आई। अहमदावाद-काग्रेस होते-होते लालाजी, पण्डित मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू और सपरिवार देशवन्धु दास क्रिमिनल-लॉ-अमेण्ड-मेण्ट-एक्ट के अतर्गत या ताजिरात-हिन्द की १४४ धारा या १०८ धारा के अनुसार जेल में थे। १९२० के अगस्त में सर तेजवहादुर सप्रू वाइसराय की कार्य-कारिणी के कानून-सदस्य (लॉ-मेम्वर) हुए थे। ऐसा कहा जाता है कि इन धाराओ को इन्होने खोज निकाला था और राजनैतिक लोगो पर लागू करने की सलाह दी थी। वम्वई ने साधारण कानून का उपयोग किया, पर वगाल, युक्तप्रान्त और पजाव ने दमनकारी कानूनो की शरण ली।

इसी अवसर पर काग्रेस और सरकार में समझौते की वातचीत चल पडी। भारत की राजधानी को कलकत्ते से दिल्ली ले जाते समय यह प्रवन्ध किया गया था कि वाइसराय हर साल वडे दिनो में तीन-चार सप्ताह कलकत्ते में व्यतीत करेंगे। युवराज के वडे दिन भी कलकत्ते ही विताने का निश्चय किया गया। पण्डित मदनमोहन मालवीय जैसे मध्यस्थ सज्जनो ने कलकत्ते में लॉर्ड रीडिंग की परिस्थिति का उपयोग करके सरकार और जनता में समझौता कराने की चेष्टा की। लॉर्ड रीडिंग भी राजी हो गये, चाहे २५ दिसम्वर के उत्सव का वहिष्कार टालने के लिए ही सही। २१ दिसम्वर को पण्डित मदनमोहन मालवीय के नेतृत्व में एक शिष्ट-मण्डल वाइसराय से मिला। देशवन्धु दास कलकत्ते के अलीपुर-जेल में थे। उनसे मध्यस्थो की टेलीफोन-द्वारा वात हुई। शीघ्र ही गाधीजी से वात-चीत करना आवश्यक समझा गया। वह अहमदावाद में थे। तार-द्वारा सरकार इस वात पर राजी हो गई कि सत्याग्रह

के कैदियो को छोड दिया जाय और मार्च में गोलमेज-परिषद् बुलाई जाय, जिसमें काग्रेस की ओर से २२ प्रतिनिधि हो। इस परिषद् में सुधार-योजना पर विचार किया जाय। देशबन्धु दास की माग यह थी कि नये कानून (क्रि० लॉ० अ० एक्ट) के अनुसार सजा पाये हुए सारे कैदियो को छोड दिया जाय। समझौते के निश्चय का फल यह होता कि लालाजी जैसे कैदी और फतवे के कैदी, जिनमें मौलाना मुहम्मदअली, मौलाना शौकतअली, डॉ० किचलू और अन्य नेता शामिल थे, जेल में ही रह जाते। कराची के कैदी वे थे जिन्हें १ नवम्बर १९२१ को अखिल-भारतीय खिलाफत-परिषद् में, जिसमे फौजी नौकरिया छोडने के सम्बन्ध में प्रस्ताव पास हुआ था, भाग लेने के अपराध में दण्ड दिया गया था। कुछ उलेमा ने इस प्रस्ताव का समर्थन फतवे में किया था। फतवा मुसलमानो के मौलवियो द्वारा जारी किया धार्मिक आदेश होता है जिनमें खास परिस्थितियो मे आचरण करने के सम्बन्ध में निर्देश होता है।

परन्तु गाधीजी कराची के कैदियो का छुटकारा चाहते थे। सरकार ने आशिक-रूप में इसे भी स्वीकार कर लिया। उन्होने माग पेश की कि फतवे के कैदियो को भी छोडा जाय और पिकेटिंग जारी रखने का अधिकार माना जाय। ये मांगे नामजूर करदी गई। इस स्थिति के सम्बन्ध में लॉर्ड रीडिंग के नाम गाधीजी का तार-द्वारा उत्तर कलकत्ता समय पर न पहुँच सका—अभाग्यवश तार को रास्ते में देर लग गई और लॉर्ड रीडिंग के सहयोगी कलकत्ते से रवाना हो गये। (२३ दिसम्बर)। फलत समझौते की बात असफल रही। श्री० जिन्ना और पण्डित मदनमोहन मालवीय मध्यस्थ थे। (१९२१ के दिसम्बर की सन्धि-चर्चा का पूरा हाल जानना हो तो पाठको को श्री कृष्णदास की अग्रेजी पुस्तक "गाधीजी के साथ सात महीने" पढनी चाहिए। पुस्तक पढने योग्य है।) समझौते की बात असफल होने पर युवराज के आगमन के सम्बन्ध में बहिष्कार के कार्यक्रम का पालन अवशिष्ट भारत ने भी उसी प्रकार किया। कलकत्ते मे पूर्ण हडताल हुई। कसाइयो तक की दूकानें बन्द थी। इसमें यूरोपियनो को बडा क्रोध आया। १९२१ के दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में अहमदाबाद-काग्रेस हुई, जिसमें असहयोग का कार्य-क्रम अपनी चरम-सीमा पर जा पहुँचा था। नागपुर में अधिवेशन के बाद मे राजनैतिक अवस्था मे कोई परिवर्तन न हुआ था।

सत्याग्रह की तैयारी और अहमदाबाद-कांग्रेस

वातावरण में सनसनी थी। हर एक के दिल मे यही आशायें उमड रही थी— एक साल में स्वराज्य। गांधीजी ने यह वादा किया था कि यदि मेरे कार्यक्रम को पूरा

कर दोगे तो स्वराज्य एक साल में मिल जायगा। साल खतम होने को था, और हर शख्स राजनैतिक आकाश की ओर ध्यान लगाये हुए था कि कोई चमत्कार हो जाय और स्वराज्य उसके चरणों में आकर खड़ा हो जाय। परन्तु हा, हर शख्स अपनी तरफ से शक्ति-भर कुछ करने और जो-कुछ भी भुगतना पड़े उसे भुगतने के लिए तैयार था—इसलिए कि वह दैवी-घटना जल्दी-से-जल्दी हो जाय, वह सुदिन जल्दी-से-जल्दी आ जावे। कोई २० हजार के ऊपर व्यक्तिगत सत्याग्रही पहले ही जेल जा चुके थे। उनकी संख्या शीघ्र ही ३० हजार तक हो जानेवाली थी, लेकिन सामूहिक सत्याग्रह लोगों को बहुत लुभा रहा था। और वह क्या था? उसका क्या रूप होगा? गाधीजी ने इसका खुद कोई लक्षण नही बताया, कभी उसे विस्तार से नही समझाया, न खुद उनके दिमाग में ही उसकी स्पष्ट कल्पना रही होगी। वह तो एक शोधक, एक शुद्ध हृदय के सामने उसी तरह अपने-आप खुल जाता है, उसके एक-एक कदम दिखाई पड़ते है, जिस तरह एक बयाबान जगल में एक आदमी चलता है और उस थके-मादे निराश मुसाफिर को घूमते-घामते अपने-आप रास्ता मिल जाता है। सामूहिक सत्याग्रह तो सुयोग्य व्यक्तियो द्वारा किसी अनुकूल क्षेत्र मे नियत शर्तो के पालन होने के बाद ही शुरू करना था। न तो उसमे जल्दी की गुजाइश थी न थकावट की। इसके अनुसार गाधीजी गुजरात में लगानबन्दी-आन्दोलन करना चाहते थे।

अब लोग भय छोड़ चुके थे। एक तरह का आत्मसम्मान का भाव राष्ट्र में पैदा हो चुका था। कांग्रेसियो ने समझ लिया कि सेवा-भाव और त्याग के ही बल पर लोगों का विश्वास प्राप्त किया जा सकता है। सरकार की प्रतिष्ठा और रोब की भी जड़ बहुत-कुछ हिल गई थी और स्वराज्य की कल्पना के सम्बन्ध मे लोगो का काफी ज्ञान बढ़ गया था।

अहमदाबाद का अधिवेशन कई सुधारो के लिए प्रसिद्ध है। प्रतिनिधियो के बैठने के लिए कुर्सिया और बेंच तो हटा ही दिये गये थे, जिनके लिए नागपुर-अधिवेशन में कोई ७० हजार रुपया खर्च हुआ था। स्वागताध्यक्ष वल्लभभाई पटेल का भाषण छोटे-से-छोटा था। कम-से-कम प्रस्ताव—कुल ९ उस अधिवेशन में पास हुए। हिन्दी कांग्रेस की मुख्य भाषा रही। और कांग्रेस-कार्य के लिए जो तम्बू और डेरे लगे थे, उनके लिए २ लाख से ऊपर की खादी मोल ली गई थी।

यहा हम सक्षेप में उन सब घटनाओ को एक निगाह से देख लें जिनकी तरफ कांग्रेस का ध्यान था। देशबन्धु की जगह हकीम साहब इसलिए सभापति चुने गये कि वह हिन्दू-मुस्लिम-एकता की प्रति-मूर्ति थे। यहा तक कि दिल्ली में हिन्दू-महासभा

के एक परिषद् में वह उसके सभापति चुने गये थे। देशबन्धु के प्रतिनिधि के योग्य ही उनका भाषण था। देशबन्धु का भाषण उनकी भाषा और भाव के अनुरूप योग्यता से ही सरोजिनी देवी ने पढा। देशबन्धु ने भारतीय राष्ट्र-धर्म का ठीक और व्यापक-रूप से सिंहावलोकन किया। सस्कृति मे ही उसकी जड है इसलिए उन्होने कहा, "पेश्तर इसके कि हमारी सस्कृति पश्चिमी सभ्यता को आत्म-सात करने के लिए तैयार हो, उसे पहले अपने-आपको पहचान लेना होगा।" इसके बाद उन्होंने भारत-सरकार-कानून (गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया एक्ट) पर विचार किया और कहा, "इस कानून को सरकार के साथ सहयोग करने की बुनियाद पर स्वीकार करने की सिफारिश मै आप से नही कर सकता। मै इज्जत को खोकर शान्ति खरीदना नही चाहता। जब-तक इस कानून का वह प्राक्कथन कायम है, और जबतक अपने घर का इन्तजाम हम आप करें, अपने स्वतत्र व्यक्तित्व का विकास करे और अपने भाग्य का निर्माण आप करें, हमारे इस अधिकार को तसलीम नही कर लिया जाता, मै सुलह की किसी शर्त पर विचार करने के लिए तैयार नही हूँ।"

देशबन्धु के उस शानदार भाषण से अहमदाबाद के भव्य प्रस्तावो को देखने की सही दृष्टि मिल जाती है। मुख्य प्रस्ताव तो सचमुच असहयोग, उसके सिद्धान्त और कार्य-क्रम पर एक खासा निबन्ध ही है। यहातक कि खुद गाधीजी ने उसे पेश करते समय कहा था कि इस प्रस्ताव को अग्रेजी और हिन्दुस्तानी में मुझे बारीकी से पढने में ३५ मिनट लगे हैं। उन्होने कहा कि पिछले १५ महीनो में देश में जो कुछ राष्ट्रीय कार्य हुए है उनका वह बिलकुल स्वाभाविक परिणाम है। इस प्रस्ताव के द्वारा सुलह का रास्ता बन्द नही कर दिया था, बल्कि वाइसराय यदि सद्भाव रखते हो तो दर्वाजा उनके लिए खुला रक्खा गया था। "परन्तु यदि उनके भाव ठीक न हो तो दर्वाजा उनके लिए बन्द है। परवा नहीं कितने ही लोगो को तबाह हो जाना पडे, परवा नही यह दमन कितना ही उग्ररूप धारण करले। हा, उनके लिए गोलमेज-परिषद् का पूरा अवसर है, परन्तु वह वास्तविक परिषद् होनी चाहिए। यदि वह ऐसी परिषद् चाहते है कि जिसमें बराबरी के लोग बैठे हो और उनमें एक भी भिखारी न हो, तो दर्वाजा खुला है और खुला रहेगा। इस प्रस्ताव में ऐसी कोई बात नहीं है कि जिससे विनय और विवेक रखनेवाले को शर्मिन्दा होना पडे।" उन्होंने फिर कहा कि "यह प्रस्ताव किसी व्यक्ति के लिए कोई उद्धत चुनौती नही है, बल्कि यह तो उन हुकूमत को चुनौती है, जो उद्धतता के सिंहासन पर विराजमान है। यह एक नम्र परन्तु दृढ चुनौती है, उस हुकूमत को जो अपने को बचाने की गरज से राय देने और मिलने-जुलने

की आजादी को कुचल देना चाहती है, और यह दो तरह की आजादी तो मानो स्वाधीनता की शुद्ध वायु की सास लेने के लिए दो फेफडो के समान है।" असहयोग और उसके प्रति देश के कर्तव्य के सम्बन्ध मे जो मुख्य प्रस्ताव वहा पास हुआ वह इस प्रकार है —

(१) "चूकि काग्रेस के पिछले अधिवेशन के समय से भारतीय जनता को अपने अनुभव से मालूम हुआ है कि अहिंसात्मक असहयोग के करने से देश ने निर्भयता, आत्म-बलिदान और आत्मसम्मान के मार्ग पर बहुत उन्नति की है और चूकि इस आन्दोलन ने सरकार के सम्मान को बहुत बडा धक्का पहुँचाया है और चूकि देश की प्रगति स्वराज्य की ओर तीव्र गति से हो रही है, इसलिए यह काग्रेस कलकत्ता के विशेष अधिवेशन-द्वारा स्वीकृत और नागपुर में दोहराये गये प्रस्ताव को स्वीकार करती है और दृढ निश्चय प्रकट करती है कि जबतक पजाब और खिलाफत के अत्याचारो का निवारण नही हो जायगा, स्वराज्य की स्थापना नही हो जायगी और भारतवर्ष का शासन-सूत्र एक उत्तरदायित्व-हीन सस्था के हाथ से निकलकर लोगो के हाथ में नही आ जायगा तबतक अहिंसात्मक असहयोग का कार्यक्रम इस समय की अपेक्षा अधिक उत्साह से उस प्रकार चलता रहेगा जिस प्रकार प्रत्येक प्रान्त निश्चय करेगा।

और चूकि वाइसराय ने पहले हाल के भाषण में धमकी दी है, जिसका परिणाम यह हुआ है कि भारत-सरकार ने अनेक प्रान्तो में गैर-कानूनी और उच्छृखल-रूप से स्वयसेवक-सस्थाओ को विच्छिन्न करके, और सार्वजनिक सभाओ और कमिटी की बैठको की भी मनाही करके और भिन्न-भिन्न प्रान्तो में अनेक काग्रेस-कार्यकर्त्ताओ को गिरफ्तार करके दमन प्रारम्भ किया है, और चूकि यह स्पष्ट है कि यह दमन काग्रेस और खिलाफत के कामो को विच्छिन्न करने और जनता को उनकी सहायता से वचित करने की गरज से चलाया गया है, इसलिए यह काग्रेस निश्चय करती है कि जहा तक आवश्यकता हो काग्रेस के सब कार्य स्थगित रक्खे जायें। और सब लोगो से प्रार्थना करती है कि वे शान्ति के साथ बिना किसी धूम-धाम के स्वयसेवक-सस्थाओ के सदस्य होकर गिरफ्तार होवें। ये स्वयसेवक-सस्थायें देशभर में कार्य-समिति के बम्बई के गत २३ नवम्बर के निश्चयानुसार सगठित की जावें। किन्तु जो व्यक्ति नीचे लिखे प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर नही करेगा वह स्वयसेवक नही बनाया जायगा—

'ईश्वर को साक्षी करके मै प्रतिज्ञा करता हूँ कि—

(१) मै राष्ट्रीय स्वयसेवक-सघ का सदस्य होना चाहता हूँ।

(२) जबतक मै सघ का सदस्य रहूँगा तबतक वचन और कर्म में अहिंसात्मक रहूँगा और इस बात का अत्यन्त अधिक प्रयत्न करूँगा कि मन से भी अहिंसात्मक रहूँ। क्योकि मेरा विश्वास है कि भारतवर्ष की वर्तमान परिस्थिति में अहिंसा से ही खिलाफत और पजाब की रक्षा हो सकती है और उसीसे स्वराज्य स्थापित हो सकता है और भारतवर्ष की समस्त जातियो में—चाहे वे हिन्दू, मुसलमान, सिख, पारसी, ईसाई या यहूदी हो—एकता स्थापित हो सकती है।

(३) मुझे ऐसी एकता पर विश्वास है और उसकी उन्नति के लिए सदैव प्रयत्न करता रहूँगा।

(४) मेरा विश्वास है कि भारतवर्ष के आर्थिक, राजनैतिक और नैतिक उद्धार के लिए स्वदेशी (का प्रयोग) आवश्यक है और मै दूसरी तरह के सब कपडो को छोडकर केवल हाथ के कते और बुने खद्दर का ही इस्तेमाल करूँगा।

(५) हिन्दू होने की हैसियत से मैं अस्पृश्यता को दूर करने की न्यायपरता और आवश्यकता पर विश्वास करता हूँ और प्रत्येक सम्भव अवसर पर दलित लोगो के साथ व्यक्तिगत सम्पर्क रक्खूगा और उनकी सेवा करूँगा।

(६) मै अपने बडे अफसरो की आज्ञाओ और स्वयसेवक-सघ, कार्य-समिति या काग्रेस-द्वारा स्थापित दूसरी सस्थाओ के उन सब नियमो का पालन करूँगा जो इस प्रतिज्ञा-पत्र के प्रतिकूल न होगे।

(७) मै अपने धर्म और अपने देश के लिए बिना विरोध किये जेल जाने, आघात सहने और मरने तक के लिए तैयार हूँ।

(८) अगर मैं जेल जाऊँ तो अपने कुटम्बियो या जो लोग मुझपर निर्भर है उनकी सहायता के लिए काग्रेस से कुछ नही मागूँगा।'

"इस काग्रेस को विश्वास है कि १८ वर्ष और उससे अधिक उम्र का प्रत्येक व्यक्ति स्वयसेवक-सघ मे शामिल हो जायगा।

"सार्वजनिक सभाओ के किये जाने की जो मनाही की गई है उसकी परवा न करते हुए और यह देखते हुए कि कमिटी की बैठको को भी सार्वजनिक सभा कह देने का प्रयत्न किया गया है, यह काग्रेस सलाह देती है कि कमिटी की बैठकें और सार्वजनिक सभायें हुआ करें। सार्वजनिक सभायें घिरी हुई जगहो में टिकट के द्वारा और पहले से सूचना देकर की जावें, जिनमे सभवत वही वक्ता अपना लिखा हुआ भाषण पढे जिनकी सूचना पहले से ही दी जा चुकी हो। हर हालत में इस बात का खयाल

रक्खा जाय कि लोग उत्तेजित न हो जावे और उसके फल-स्वरूप जनता के द्वारा हिंसक कार्य न हो जायँ।

"आगे इस काग्रेस की राय है कि जब किसी व्यक्ति या सस्था के अधिकारो का निरकुश, अत्याचारी और अपमानप्रद प्रयोग रोकने के लिए और सब प्रयोग किये जा चुके हो तो सशस्त्र क्राति के स्थान पर सत्याग्रह ही एक-मात्र सभ्य और प्रभावप्रद उपाय रह जाता है। इसलिए यह काग्रेस समस्त काग्रेस-कार्यकर्त्ताओ और उन दूसरे लोगो को, जिन्हे शान्तिपूर्ण उपायो पर विश्वास हो और जिनका यह निश्चय हो गया हो कि वर्तमान सरकार को भारतीयो के प्रति पूर्णतया अनुत्तरदायी-पद से उतारने के लिए किसी-न-किसी प्रकार के त्याग के सिवाय अब दूसरा उपाय नही रह गया है, यह सलाह देती है कि लोगो को अहिंसा के नियमो की पूर्ण शिक्षा मिल चुकने पर या महासमिति की दिल्लीवाली पिछली बैठक के उस विषय के प्रस्तावानुसार देशभर में व्यक्तिगत और सामूहिक सत्याग्रह का सगठन करें।

"इस काग्रेस की राय है कि सामूहिक या व्यक्तिगत आक्रमणात्मक या रक्षात्मक सत्याग्रह पर पूरा ध्यान रखने के लिए उचित प्रतिबन्धो और समय-समय पर कार्य-समिति या उस प्रान्त की प्रान्तीय काग्रेस-कमिटी की सूचनाओ के अनुसार जब, जहा और जितने स्थान पर आवश्यक समझा जाय तब, वहा और उतने स्थान पर काग्रेस के लिए और सब कार्य स्थगित कर दिये जायँ।

"यह काग्रेस १८ वर्ष और उससे अधिक उम्र के विद्यार्थियो से और विशेषकर राष्ट्रीय विद्यालयो के विद्यार्थियो और अध्यापको से कहती है कि वे तुरन्त उपर्युक्त प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करके राष्ट्रीय स्वय-सेवक-सघ के सदस्य हो जायँ।

"यह देखते हुए कि थोडे समय में बहुत-से काग्रेस-कार्यकर्त्ताओ के गिरफ्तार होने का भय है और चूकि यह काग्रेस चाहती है कि काग्रेस का प्रबन्ध उसी तरह चलता रहे और वह जहा शक्ति में हो वहा साधारण तौर से काम करती रहे, इसलिए जब तक आगे कोई सूचना न दी जाय तबतक यह काग्रेस महात्मा गाधी को अपना सर्वाधिकारी नियत करती है और उन्हें महा-समिति के समस्त अधिकार देती है। इसमें काग्रेस का विशेष अधिवेशन बुलाने और महासमिति और कार्य-समिति की बैठक कराने के अधिकार भी शामिल हैं। इन अधिकारो का प्रयोग महा-समिति की किन्ही दो बैठको के बीच किया जायगा और उन्हे (महात्मा गाधी को) मौका आ जाने पर अपना उत्तराधिकारी नियत करने का भी अधिकार रहेगा।

"यह कांग्रेस उपर्युक्त उत्तराधिकारी और उनके बाद नियत किये जानेवाले अन्य उत्तराधिकारियो को ऊपर के सब अधिकार देती है।

"किन्तु इस प्रस्ताव के किसी अश का यह अर्थ नही है कि महात्मा गाधी या उनके उपर्युक्त उत्तराधिकारियो को महासमिति की स्वीकृति और उसपर इसी कार्य के लिए किये गये काग्रेस के विशेष अधिवेशन की मजूरी के बिना भारत-सरकार या ब्रिटिश-सरकार से सधि करने का अधिकार है, और काग्रेस के सगठन की पहली धारा भी काग्रेस की पूर्व-स्वीकृति के बिना महात्मा गाधी या उनके उत्तराधिकारियो-द्वारा नही बदली जायगी।

"यह काग्रेस उन सब देश-भक्तो को बधाई देती है जो अपने अन्त करण के विश्वास या देश के लिए जेल की यातना भोग रहे है और यह समझती है कि उनके बलिदान से स्वराज्य बहुत निकट आ गया है।"

(२) "जो लोग पूर्ण असहयोग या असहयोग के सिद्धान्त पर विश्वास नही करते किन्तु जो राष्ट्रीय सम्मान के लिए खिलाफत और पजाब के अत्याचारो का प्रतिकार होना आवश्यक समझते है और उसपर जोर देते है और राष्ट्र के पूर्ण विकास के लिए तुरन्त स्वराज्य स्थापित कराने पर जोर देते है, उन सबसे काग्रेस यह प्रार्थना करती है कि वे भिन्न-भिन्न धार्मिक समाजो में एकता कराने में पूरी सहायता दे, जो लाखो कृषक भूखो मरने की अवस्था पर पहुँचे हुए है, उनकी आमदनी बढाने के लिए आर्थिक दृष्टि से धुनने, हाथ से कातने और बुनने का प्रचार करें और इसके लिए हाथ से कते और बुने कपडो को पहनने की शिक्षा दें और पहनें, नशीली वस्तुओ का प्रयोग पूर्णतया बन्द करने में सहायता दें और यदि वे हिन्दू हो तो अस्पृश्यता दूर करने और दलित जाति के लोगो की अवस्था सुधारने में मदद दें।"

हम उस बहस की ओर भी मुखातिब हो जिसे मौलाना हसरत मोहानी ने शुरू किया था। उनकी तजवीज थी कि काग्रेस के ध्येय में स्वराज्य की व्याख्या इस तरह की जाय—"पूर्ण स्वतत्रता, विदेशियो के नियत्रण से बिलकुल आजादी।" इस घटना को अब इतना अरसा गुजर चुका है कि अब तो यह भी ताज्जुब हो सकता है कि काग्रेस और गाधीजी ने इसका विरोध क्यो किया ?

गाधीजी ने उस समय कडी भाषा का प्रयोग किया था, किन्तु सवाल यह है कि क्या वह बहुत कडी थी ? गाधीजी ने एक नया आन्दोलन चलाया, नया ध्येय तजवीज किया और नये ढग से हमला करने की मोर्चाबन्दी की थी। यह एक ऐसा सग्राम था कि जिसमें उद्देश और उसे पाने के लिए की गई व्यूह-रचना स्पष्ट-रूप से

निश्चित थी। दोनो तरफ के सैनिको में छोटी-बडी मुठभेड हो जाया करती थी। एक कडी लडाई की तैयारी हो रही थी। ठीक ऐसे मौके पर यदि कोई सिपाही आकर जनरल और सेना से कहे कि हमारे उद्देश का निर्णय फिर से होना चाहिए, तो लडाई की सारी रचना न बिगड जायगी ? लेकिन उनकी जिस दलील ने असर किया वह तो थी—"सबसे पहले तो हम शक्ति-सग्रह करें—सबसे पहले हम यह देख लें कि हम कितने गहरे पानी मे है। हमें ऐसे समुद्र में न कूद पडना चाहिए जिसकी गहराई का पता हमें न हो। और हसरत मोहानी साहब का यह प्रस्ताव हमको अथाह समुद्र में ले जा रहा है।"

दूसरे प्रस्तावो में एक तो विधान-सम्बन्धी था और दूसरे के द्वारा पदाधिकारियो की नियुक्ति की गई थी। एक मोपला-उत्पात के विषय में था, जिसमें कहा गया था कि असहयोग या खिलाफत-आन्दोलन से इसका कोई सम्बन्ध नही था। इस उत्पात के छ महीने पहले ही से अहिंसा के सन्देश के प्रचारको का जाना ही वहा रोक दिया गया था, और यह हलचल इतने दिनो तक न रही होती, यदि याकूब हसन जैसे या खुद महात्मा गाधी जैसे प्रमुख असहयोगियो को वहा जाने दिया गया होता। जब मोपला कैदी वेलारी भेजे गये तब कोई १०० मोपलाओ को एक मालगाडी के डब्बे में भर दिया गया, जिससे १९ नवम्बर १९२१ की रात को दम घुटकर ७० कैदी मर गये थे। इस अमानुष व्यवहार पर रोष और सन्ताप प्रकट किया गया। १७ नवम्बर को बम्बई में जो दुर्घटनायें हुई, काग्रेस ने उनकी निन्दा की और सब दलो तथा सब जातियो को आश्वासन दिया कि काग्रेस की यही इच्छा और यह दृढ निश्चय है कि उनके अधिकारो की पूरी-पूरी रक्षा करे। इसके बाद मुस्तफा कमालपाशा को यूनानियो पर मिली फतह के लिए जिससे सेवर की सन्धि में परिवर्तन किया गया, कोमागाटामारू वाले बाबा गुरुदत्तसिंह को जो ७ वर्ष तक अज्ञातवास में रहकर अपने-आप पुलिस के सुपुर्द हो गये थे, और उन सिक्खो को धन्यवाद दिया गया जो इस तथा अन्य अवसरो पर पुलिस और फौजी सिपाहियो द्वारा बहुत जोश दिलाये जाने पर भी शान्त और अहिंसात्मक बने रहे।

अहमदाबाद-काग्रेस मे एक खास बात हुई मुसलमान उलेमा का राजनैतिक मामलो में काग्रेस को सलाह देना। व्यक्तिगत तथा सामूहिक सत्याग्रह की शर्तों के विषय में अहिंसा पर बहुत बहस-मुबाहसा हुआ था—यह कि आया, मन, वचन और कर्म से उसपर अमल किया जाय ? यहा यह याद रहे कि कलकत्तावाले प्रस्ताव में सिर्फ 'वचन और कर्म' का ही उल्लेख था। स्वयसेवको की प्रतिज्ञा में 'मन' शब्द के

जोडने पर मुसलमानो को ऐतराज था। उनका कहना था कि यह 'शरीयत' के खिलाफ जाता है। इसलिए 'मन' की जगह 'इरादा' शब्द रख दिया गया। इन सब मामलो में अलकुरान, 'शरीयत और हदीस' के मुताबिक राजनैतिक विचारो और भावो का अर्थ और निर्णय करने में उलेमा ने बहुत बडा काम किया। आगे चलकर हम देखेंगे कि कौंसिल-प्रवेश और उसके बाद की कार्रवाइयो के बारे में भी उनकी राय और फतवे लिये जाते थे।

मुलशीपेठा सत्याग्रह

१९२१ का विवरण समाप्त करने से पूर्व मुलशीपेठा सत्याग्रह का परिचय दे देना अप्रासंगिक न होगा। मुलशीपेठा पूना से ३० मील दूर है। ताता कम्पनी ने यहा बिजली पैदा करने के लिए इस इलाके के जलप्रपातो को बाधने के उद्देश्य से मजदूर भेजे। मुलशीपेठा के निवासियो ने अपने बाप-दादा की जमीन छोडने से इन्कार किया और श्री केलकर आदि की सलाह से सत्याग्रह का निश्चय किया। इस बिजली-योजना से ५१ गाव और ११,००० स्त्री-पुरुष बच्चे जमीन-जायदाद और घरबार से हाथ धोनेवाले थे। रामनवमी (अप्रैल १९२१) के दिन १२०० मावले बन्द पर जाकर बैठ गये। मजदूरो ने काम तुरत बन्द कर दिया। एक महीने तक यह सत्याग्रह चलता रहा। दिसम्बर में फिर आन्दोलन चला लेकिन बहुत समय तक चल न सका। मावले स्वय कर्ज के बोझ से दबे हुए थे। साहूकार उन्हें और दबाने लगे। यद्यपि इसमें सफलता नही हुई, लेकिन इसका एक यह परिणाम तो जरूर हुआ कि उन्हें जमीनो के दाम अच्छे मिल गये। इस सत्याग्रह में १२५ मावलो, ५०० स्वयसेवको और नेताओ ने जिनमें स्त्रिया और बच्चे भी थे, सजा पाई। इस आन्दोलन को चलानेवाली काग्रेस तो न थी, लेकिन काग्रेसी नेता अवश्य थे।

: ३ :

गांधीजी जेल में—१९२२

सर्व-दल-सम्मेलन

अभी १९२१ अच्छी तरह खतम भी न हुआ था कि कांग्रेस के हितैषी मित्रो ने, जो उसका नया कार्यक्रम स्वीकार नही कर सकते थे, कांग्रेस और सरकार में समझौता कराने की उत्सुकता प्रकट की। अभी अहमदाबाद के प्रस्तावो की स्याही सूखने भी न पाई थी कि १४, १५ और १६ जनवरी को बम्बई में एक सर्व-दल-सम्मेलन बुलाया गया, जिसमें भिन्न-भिन्न दलो के लगभग ३०० सज्जनो ने भाग लिया।

सम्मेलन के आयोजको ने एक ऐसा प्रस्ताव तैयार करने की बात सोची जिसके आधार पर अस्थायी संधि की बात चलाई जा सके। गाधीजी ने असहयोगियो की स्थिति साफ करते हुए कहा कि सम्मेलन मे तो वह-बाजाब्ता भाग न ले सकेंगे, हा, वैसे वह सम्मेलन की सहायता अवश्य करेंगे। इसका कारण उन्होने बताया कि सरकार की तरफ से दमन बराबर जारी है, और जबतक कि सरकार के मन में उसपर कोई अफ़सोस नही है तबतक ऐसे सर्वदल-सम्मेलन करने से क्या फायदा? सम्मेलन के बीस सज्जनो की एक विषय-समिति ने जो प्रस्ताव तैयार किया वह सम्मेलन के इजलास में रक्खा गया और गाधीजी ने फिर असहयोगियो की स्थिति स्पष्ट की। सर शंकरन् नायर इस सम्मेलन के सभापति थे। उन्होंने इस प्रस्ताव को नापसद किया और सम्मेलन छोडकर चले गये। उनका स्थान सर एम० विश्वेश्वरय्या ने लिया। सम्मेलन ने एक ऐसा प्रस्ताव सर्व-सम्मति से पास किया कि जिसमें सरकार की दमन-नीति को धिक्कारा गया था और साथ में यह भी सलाह दी गई थी कि जबतक समझौते की बातचीत चलती रहे अहमदाबाद के प्रस्ताव के अनुसार सत्याग्रह शुरु न किया जाय। इस प्रस्ताव के द्वारा एक ऐसी गोल-मेज-परिषद् शीघ्र ही बुलाने की पुष्टि की गई जिसे खिलाफत, पजाब और स्वराज्य-सम्बन्धी मामलो पर समझौता करने का अधिकार हो, और साथ ही जो देश में अनुकूल वातावरण तैयार करने के लिए क्रिमिनल-लॉ-अमेण्डमेण्ट-एक्ट के अंतर्गत संस्थाओ को गैर-कानूनी करार देनेवाले सारे आदेशो को और राज-

द्रोहात्मक सभा-बन्दी-कानून को रद करने और उनके सजायाफ्ता या विचाराधीन लोगों को और साथ ही फतवा-कैदियों को छोड़ने के लिए सरकार से अनुरोध करे। कमिटी के जिम्मे उन मुकदमों की जांच का भी काम किया गया जिनके मातहत आन्दोलन में भाग लेनेवालों को साधारण कानून के अनुसार सजा दी गई थी। सम्मेलन के बाद सर शंकरन् नायर ने गलत बातों से भरा एक वक्तव्य प्रकाशित करके गांधीजी पर घोर आक्रमण किया। इस वक्तव्य के खण्डन में श्री जिन्ना, जयकर और नटराजन को मंत्री की हैसियत से और अन्य सज्जनों को भी अपने-अपने बयान प्रकाशित करने पड़े।

अन्तिम चेतावनी

इस सम्मेलन ने जो प्रस्ताव असहयोगियों के सम्बन्ध में पास किये थे, कार्य-समिति ने अपनी ७ जनवरी की बैठक में उनकी पुष्टि कर दी और सत्याग्रह उस महीने के अन्त तक के लिए मुल्तवी कर दिया गया। वाइसराय ने सम्मेलन की शर्तों को मन्जूर करने से इन्कार कर दिया। इससे यह स्पष्ट हो गया कि कलकत्ते में लॉर्ड रीडिंग ने जो आश्वासन दिया था वह कितना खोखला था। इसपर गांधीजी ने १-२-२२ को वाइसराय के नाम पत्र भेजा जिसमें उन्होंने बारडोली में सत्याग्रह-आन्दोलन करने का विचार प्रकट किया।

पत्र (१ फरवरी १९२२) इस प्रकार है :—

"बारडोली बम्बई-प्रान्त के सूरत-जिले का एक छोटा-सा ताल्लुका है जिसकी जन-संख्या कुल मिलाकर ८७,००० है।

"गत नवम्बर की दिल्लीवाली महासमिति की बैठक में जो प्रस्ताव पास हुआ था, इस ताल्लुके ने उसकी भारी शर्तों के अनुसार अपनी योग्यता साबित कर दी और गत २९ जनवरी को श्री विट्ठलभाई जवेरभाई पटेल की अध्यक्षता में सामूहिक सत्याग्रह करने का निश्चय किया। पर चूंकि इस निश्चय की जिम्मेवारी मुख्यतः शायद मेरे ऊपर ही है, इसलिए मैं उन हालत को, जिसमें यह निश्चय किया गया है, आपके और जनता के सामने रखना अपना कर्तव्य समझता हूँ।

"महासमिति के प्रस्ताव के अनुसार बारडोली को सामूहिक सत्याग्रह का पहला केन्द्र बनाने का निश्चय किया गया था जिससे सरकार की भारत के खिलाफत, पंजाब और स्वराज्य-सम्बन्धी संकल्प की असभ्य अवहेलना करने की नीति के विरुद्ध देश-व्यापी असन्तोष प्रकट किया जा सके।

"इनके बाद ही बम्बई में १७ नवम्बर को शोचनीय दंगा हो गया, जिसके फल-स्वरूप बारडोली की कार्रवाई स्थगित कर देनी पड़ी।

"इधर भारत-सरकार की रजामन्दी से बगाल, आसाम, युक्त-प्रान्त, पजाब, दिल्ली-प्रान्त और एक प्रकार से बिहार में और अन्य स्थानो पर भी घोर दमन से काम लिया गया। मैं जानता हूँ कि इन प्रान्तो के अधिकारियो ने जो कुछ किया है, उसे 'दमन' के नाम से पुकारने पर आपको ऐतराज है। पर मेरी सम्मति यह है कि यदि जरूरत से ज्यादा कार्रवाई की गई हो तो निस्सन्देह उसे दमन के नाम से ही पुकारा जायगा। सम्पत्ति का लूटना, निर्दोष व्यक्तियो पर हमला करना, जेल में लोगो पर पाशविक अत्याचार करना और उनपर कोड़े बरसाना किसी तरह भी कानूनी, सभ्यता-पूर्ण या आवश्यक कार्य नही कहा जा सकता। इस सरकारी गैर-कानूनी-पन को केवल गैर-कानूनी दमन के नाम से ही पुकारा जा सकता है।

"हड़ताल और पिकेटिंग के सिलसिले मे असहयोगियो या उनके साथ हम-दर्दी रखनेवालो द्वारा डराने-धमकाने की बात किसी हद तक ठीक है, पर केवल इसी कारण शान्तिपूर्ण पिकेटिंग या उतनी ही शान्तिपूर्ण सभाओ को एक ऐसे असाधारण कानून का अनुचित उपयोग करके जिसे उद्देश और कार्य दोनो प्रकार से हिंसापूर्ण हलचलो को दबाने के लिए पास किया गया था, अन्धाधुन्ध गैर-कानूनी करार देना न्यायपूर्ण नहीं कहा जा सकता। निर्दोष व्यक्तियो के ऊपर साधारण कानून का जिन गैर-कानूनी ढगो मे प्रहार किया गया है, न उसे ही दमन के अलावा और किसी नाम से पुकारा जा सकता है। रही प्रेस की आजादी का अपहरण करने की बात, सो यह जिस कानून के अनुसार किया गया है वह अब रद होने ही वाला है। यह सरकारी हस्तक्षेप भी दमन के नाम से ही पुकारा जा सकता है।

"फलत देश के सामने सबसे बड़ा काम लिखने-बोलने और सभा करने की आजादी को इस साधन से जीवन-दान देना है।

"आजकल भारत-सरकार जिस मनोवृत्ति का परिचय दे रही है, और हिंसा के मूल-स्रोतो पर अधिकार करने के मामले में देश जिस प्रकार गैर-तैयार अवस्था में है, उसे देखते हुए असहयोगियो ने मालवीय-परिषद् से किसी प्रकार का सम्बन्ध रखने से इन्कार कर दिया था। इस परिषद् का उद्देश था कि वह आपको एक गोलमेज-परिषद् करने के लिए तैयार करे। मैं अनावश्यक दुख-कष्ट से लोगो को बचाना चाहता था, इसलिए मैंने बिना सकोच काग्रेस की कार्य-समिति को मालवीय-परिषद् की सिफारिशो को स्वीकार करने की सलाह दी। मेरी सम्मति में शर्तें

आपकी आवश्यकताओ के अनुसार, जैसा मैंने आपके कलकत्तेवाले भाषण से और अन्य सूत्रो से समझा, वाजिब ही थी, फिर भी आपने उन्हें एकबारगी नामजूर कर दिया।

"ऐसी हालत में अपनी मागें मनवाने के लिए—जिनमें भाषण देने, मिलने-जुलने और लिखने की आजादी-सम्बन्धी मागें भी शामिल हैं—किसी अहिंसात्मक उपाय का अवलम्बन करने के सिवा देश के आगे और कोई रास्ता नही है। मेरी विनम्र सम्मति में हाल की घटनाये उस सभ्यता-पूर्ण नीति के बिलकुल खिलाफ है, जिसका आरम्भ आपने अली-भाइयो की उदारता और वीरतापूर्ण और बिना किसी प्रकार की शर्त के क्षमा याचना करने के अवसर पर किया था। वह नीति यह थी कि जबतक असहयोगी शब्दो और कार्यों में अहिंसात्मक रहें, तबतक उनके कार्य-कलाप में सरकार कोई बाधा न डाले। यदि सरकार उदासीन रहने की नीति बरतती और जनता की सम्मति को परिपक्व होने और अपना प्रभाव दिखाने का अवसर देती तो उस समय तक के लिए सत्याग्रह मुल्तवी करना सम्भव होता जबतक कांग्रेस उपद्रवकारी शक्तियो पर पूरा अधिकार न कर लेती और अपने लाखो अनुयायियों में अधिक सयम और नियमबद्धता न ला देती। परन्तु गैर-कानूनी दमन-नीति के कारण (जो इस अभागे देश के इतिहास में अपने ढग की निराली है) सामूहिक सत्याग्रह तत्काल ही आरम्भ करना हमारा कर्तव्य हो गया है। कार्य-समिति ने सत्याग्रह को कुछ खास-खास इलाको तक ही सीमित कर दिया है। इन इलाकों को समय-समय पर मैं स्वयं निश्चित करूँगा। फिलहाल सत्याग्रह बारडोली तक ही सीमित रहेगा। यदि मैं चाहूँ तो इस अधिकार के द्वारा तत्काल ही मदरास-प्रान्त के गन्तूर जिले के १०० गावों में सत्याग्रह आरम्भ करने की स्वीकृति दे दूँ। बशर्ते कि वे अहिंसा, भिन्न भिन्न धर्मों में मेल बनाये रखने, हाथ का बना-बुना खद्दर पहनने और बनाने और अस्पृश्यता दूर करने की शर्तो का पालन करें।

"परन्तु पेश्तर इसके कि बारडोली की जनता बाकायदा सत्याग्रह आरम्भ करे, आपके सरकार के प्रधान अफसर होने की हैसियत से, मैं आपसे सादर [illegible] अनुरोध करता हूँ कि आप अपनी नीति में परिवर्तन करें और उन सारे असहयोगी कैदियो को मुक्त कर दें जो अहिंसात्मक कार्यों के लिए जेल गये हैं या जिनका मामला अभी विचाराधीन है। मैं आपसे यह भी अनुरोध करता हूँ कि आप साफ-साफ शब्दों में देश की सारी अहिंसात्मक हलचल में—चाहे वह किसी भी प्रकार की [illegible] हो, चाहे पजाब या स्वराज्य के सम्बन्ध में, चाहे और किसी विषय में हो, [illegible]

ताजिरात हिन्द या जाब्ता फौजदारी की दमनकारी धाराओ के या दूसरे दमनकारी कानूनो के भीतर क्यों न आती हो—सरकार की तटस्थता की घोषणा कर दे। हा, अहिंसा की शर्त अवश्य हमेशा लागू रहे। मैं आपसे यह भी अनुरोध करूँगा कि आप प्रेस पर से कड़ाई उठा ले और हाल मे जो जुर्माने किये गये हैं उन्हे वापस करा दें। मैं जो आपसे यह करने का अनुरोध कर रहा हूँ, सो ससार के उन सभी देशो मे किया जा रहा है जहा की सरकारें सभ्य हैं। यदि आप सात दिन के भीतर इस प्रकार की घोषणा कर दें तो मै उस समय तक के लिए उग्र सत्याग्रह मुल्तवी करने की सलाह दूगा जबतक सारे कैदी छूटकर नये सिरे मे अवस्था पर विचार न कर ले। यदि सरकार उक्त प्रकार की घोषणा कर दे तो मैं उसे सरकार की ओर से लोकमत के अनुकूल कार्य करने की इच्छा का सबूत समझूगा और फिर नि सकोच भाव से सलाह दूगा कि दूसरे पर हिंसात्मक दवाव न डालते हुए देश अपनी निश्चित मागो की पूर्ति के लिए और भी ठोस लोकमत तैयार करे। ऐसी अवस्था में उग्र सत्याग्रह केवल तभी किया जायगा जब सरकार बिलकुल तटस्थ रहने की नीति का परित्याग करेगी, या जब वह भारत के अधिकाश जनसमुदाय की स्पष्ट मागो को मानने से इन्कार कर देगी।"

भारत-सरकार ने तुरन्त ही गाधीजी के वक्तव्य का उत्तर छपवाया, जिसमें दमन-नीति का यह कहकर समर्थन किया गया कि यह नीति बम्बई के दगो, अनेक स्थानो पर खतरनाक और गैर-कानूनी प्रदर्शनो और स्वय-सेवक दलो-द्वारा हिंसा, डराने-धमकाने और दूसरे के काम-काज में बाधा डालने के फल-स्वरूप है। इस उत्तर मे यह भी स्पष्ट कर दिया गया कि सरकार की नीति वही है जो अली-भाइयों के माफी मागने के अवसर पर वाइसराय ने बताई थी, क्योकि उस अवसर पर वाइसराय ने यह बात स्पष्ट कर दी थी कि "सरकार जब और जैसे ठीक समझेगी राजद्रोहात्मक आचरण के विरुद्ध कानून का उपयोग करेगी।" उत्तर में यह भी कहा गया कि सरकार ने गोलमेज-परिषद् के प्रस्ताव को बिलकुल ही रद नही कर दिया। वास्तव में इस प्रकार की परिषद् के लिए यह आवश्यक था कि असहयोगी-दल गैर-कानूनी कार्रवाइया बन्द कर दे। पर यह बात सर्व-दल-सम्मेलन के प्रस्तावो मे कही नही थी। केवल हड़ताल, पिकेटिंग और सत्याग्रह बन्द करना तय हुआ था, और यह कहा गया था कि अन्य गैर-कानूनी काम बदस्तूर जारी रहेगे। इसके अलावा "गाधीजी ने यह बात भी साफ कर दी है कि गोलमेज-परिषद् का काम उनके निर्णयो पर सही करना मात्र होगा।" उनकी मागें दो श्रेणियो में बाटी जा सकती हैं (१) अहिंसात्मक

आचरण के लिए दण्डित अथवा विचाराधीन सभी कैदियों को छोड़ दिया जाय, (२) यह आश्वासन दिया जाय कि सरकार असहयोग-दल के सभी अहिंसात्मक कार्यों में तटस्थता की नीति बरतेगी, फिर वे कार्य ताजिरात-हिन्द के भीतर भी क्यों न आते हों।

चौरी-चौरा काण्ड

पर कांग्रेस के सिर पर एक अशुभ मंडरा रहा था। ५ फरवरी को युक्त-प्रान्त में गोरखपुर के निकट चौरी-चौरा में एक कांग्रेस-जुलूस निकाला गया। इस अवसर पर २१ सिपाहियों और एक थानेदार को भीड़ ने एक थाने में खदेड़ दिया और आग लगा दी। वे सब आग में जल मरे। उधर १३ जनवरी को मदरास में वही हुआ जो १७ नवम्बर को बम्बई में हुआ था, जिसमें ५३ आदमी मरे थे और ४०० घायल हुए थे। इस अवसर पर मदरास में युवराज गये थे। मदरास के काण्ड ने बम्बई जैसा विशाल रूप धारण नहीं किया। तब १२ फरवरी को बारडोली में कार्य-समिति की एक बैठक हुई, जिसमें इन घटनाओं के कारण सामूहिक सत्याग्रह आरम्भ करने का विचार छोड़ दिया गया। कांग्रेसियों से अनुरोध किया गया कि गिरफ्तार होने और सजा पाने के लिए कोई काम न किया जाय और स्वयंसेवकों का संगठन और सभायें केवल सरकार की आज्ञा को तोड़ने के लिए न की जायें। एक रचनात्मक कार्यक्रम तैयार किया गया जिसमें कांग्रेस के लिए एक करोड़ सदस्य भर्ती करना, चरखे का प्रचार, राष्ट्रीय विद्यालयों को खोलना और मादक-द्रव्य-निषेध का प्रचार और पंचायतें संगठित करना आदि शामिल था। उधर जिस कमिटी को गन्तूर जिले का दौरा करने के लिए नियुक्त किया गया था उसने अपनी सिफारिश प्रकाशित करके लोगों से कर अदा करने को कहा और सारा लगान १० फरवरी तक अदा कर दिया गया। यह बात माननी पड़ेगी कि आन्ध्र-देश में करबन्दी का आन्दोलन सफल हुआ, क्योंकि जबतक कांग्रेस की निषेधाज्ञा जारी रही सरकार ५ फी सदी लगान तक वसूल न किया जा सका।

व्यक्तिगत सत्याग्रह

बारडोली के प्रस्तावों से देश में कई प्रकार के भाव उत्पन्न हुए। बहुत लोग ऐसे थे जो गांधीजी और उनके निश्चय में अगाध-विश्वास रखते थे। कुछ लोग भी थे जो आपत्ति प्रकट करने-योग्य कोई अवसर हाथ से न जाने देते थे। तब २४

और २५ फरवरी को दिल्ली मे महासमिति की बैठक हुई तो उसमे कार्य-समिति के बारडोली-सम्बन्धी लगभग सारे प्रस्तावो का समर्थन हुआ। हा, व्यक्तिगत-रूप से किसी खास कानून के खिलाफ सत्याग्रह करने की अनुमति अवश्य दे दी गई। विदेशी कपडे की पिकेटिंग की भी इजाजत उन्ही शर्तों पर दी गई थी जो बारडोली के प्रस्ताव में शराब की पिकेटिंग के लिए रक्खी गई थी। महासमिति ने सत्याग्रह में अपनी आस्था प्रकट की और यह राय कायम की कि यदि कार्यकर्त्ता रचनात्मक कार्य में अपनी सारी शक्ति लगा दे तो जिस अहिंसात्मक वातावरण की आवश्यकता है वह अवश्य उत्पन्न हो जायगा।

महासमिति ने व्यक्तिगत सत्याग्रह की यह परिभाषा की कि व्यक्तिगत सत्याग्रह वह है जिसके अनुसार एक व्यक्ति या व्यक्ति-समूह के द्वारा किसी सरकारी आज्ञा या कानून का उल्लघन किया जाय। उदाहरण के लिए ऐसी निषिद्ध सभा जिसमे प्रवेश करने के लिए टिकटो की आवश्यकता हो, और जिसमें सबको खुलेआम आने की इजाजत न हो व्यक्तिगत सत्याग्रह की मिसाल है। और ऐसी निषिद्ध सभा जिसमे जन-साधारण बिना किसी रोकटोक के आ सकें, सामूहिक सत्याग्रह की। यदि इस प्रकार की सभा कोई रोजमर्रा का कार्यक्रम पूरा करने के लिए की जाय तो वह आत्मरक्षा के लिए की गई समझी जायगी। यदि सभा कोई दैनिक कार्यक्रम पूरा करने के लिए नही बल्कि गिरफ्तार होने और सजा पाने के लिए की गई हो तो वह उग्रस्वरूप की सभा समझी जायगी।

जब महासमिति ने व्यक्तिगत-सत्याग्रह-सम्बन्धी प्रस्ताव पास किया तो मध्यस्थ लोगो मे दिल्ली में हलचल मच गई। ये सज्जन काग्रेस और सरकार के पारस्परिक-समझौते की तो आशा छोड बैठे थे। पर साथ ही गाधीजी की गिरफ्तारी की विपद को बचाना चाहते थे। यदि महासमिति अब भी सामूहिक सत्याग्रह को अपना अन्तिम लक्ष्य और व्यक्तिगत सत्याग्रह को तुरन्त शुरू किया जानेवाला कार्यक्रम न बनाती तो सम्भव था सरकार कोई कार्रवाई न करती। उधर गाधीजी के विरुद्ध यह आवाज उठी कि उन्होने आन्दोलन को बिलकुल ठडा कर दिया। पडित मोतीलाल नेहरू और लाला लाजपतराय ने जेल के भीतर से लम्बे-लम्बे पत्र लिखे। उन्होने गाधीजी को किसी एक स्थान के पाप के कारण सारे देश को दण्ड देने के लिए आडे हाथो लिया। जब महासमिति की बाकायदा बैठक हुई तो गाधीजी पर चारो ओर से बौछारे पडने लगी। आन्दोलन से पीछे हटने और बारडोली के प्रस्तावो के लिए उन्हें आडे हाथो लिया गया। बगाल और महाराष्ट्र तो गाधीजी

पर टूट ही पडे। व्यक्तिगत सत्याग्रह क्यो न जारी रक्खा जाय? चाहे कुछ भी हो, बगाल तो चौकीदारी-टैक्स देने से रहा। बाबू हरदयाल नाग जैसे गाधीभक्त ने बगावत का झण्डा खडा किया। सत्याग्रही खद्दर क्यो पहनें? बारडोली के प्रस्तावो की एक-एक सतर की कडी आलोचना की गई। महासमिति की बैठक मे डॉ॰ मुजे ने गाधीजी के विरुद्ध निन्दा का प्रस्ताव पेश किया और कुछ सज्जनो ने भाषणो-द्वारा उनका समर्थन भी किया। पर राय लेने के वक्त केवल उन्ही सज्जनो ने प्रस्ताव के लिए मत दिये जो गाधीजी के विरुद्ध बोले थे। गाधीजी ने इस प्रस्ताव के विरोध में किसी को बोलने की अनुमति न दी। तूफान आया और निकल गया, और गाधीजी उसी प्रकार पर्वत की भाति अचल रहे।

गांधीजी की गिरफ्तारी

पासा पड चुका था। अब गाधीजी को धर दबोचने की सरकार की बारी थी। कोई भी सरकार देश में किसी नेता पर उस समय हमला नही करती जब उसकी लोक-प्रियता बढी हुई हो। वह सब्र के साथ अपना अवसर देखती रहती है और जब सेना पीछे हटने लगती है तो दुश्मन अपने पूरे वेग के साथ आ टूटता है। १३ मार्च को गाधीजी गिरफ्तार कर लिये गये, यद्यपि उनकी गिरफ्तारी का निश्चय फरवरी के अन्तिम सप्ताह में ही कर लिया गया था। गाधीजी को राजद्रोह के अपराध में सेशन सुपुर्द कर दिया गया।

यह 'ऐतिहासिक मुकदमा' १८ मार्च को अहमदाबाद मे आरम्भ हुआ। कानूनी अहलकारो ने तीन लेख छाटे जिसके लिए गाधीजी पर मुकदमा चलाया गया था—(१) 'राज-भक्ति में दखल', (२) 'समस्या और उसका हल', (३) 'गर्जन-तर्जन'। ज्योही अभियोग पढकर सुनाये गये, गाधीजी ने अपना अपराध स्वीकार किया। श्री बैंकर ने भी अपने को अपराधी कुबूल किया। इसके बाद गाधीजी ने अपना लिखित बयान पढा, जो निम्न प्रकार है —

"यह जो मुकदमा चलाया जा रहा है वह इग्लैण्ड की जनता को सन्तुष्ट करने के लिए। इसलिए मेरा कर्तव्य है कि मै इग्लैण्ड की और भारतीय जनता को यह बता दू कि मै कट्टर सहयोगी से पक्का राजद्रोही और असहयोगी कैसे बन गया। मै अदालत को भी बताऊँगा कि मै इस सरकार के प्रति जो देश मे कानूनन कायम हुई है, राजद्रोहपूर्ण आचरण करने के लिए अपने आपको दोषी क्यों मानता हूँ।

'मेरे सार्वजनिक जीवन का आरम्भ १८९३ में दक्षिण-अफ्रीका में विपन

परिस्थिति में हुआ। उस देश के ब्रिटिश अधिकारियो के साथ मेरा पहला समागम कुछ अच्छा न रहा। मुझे पता लगा कि एक मनुष्य और एक हिन्दुस्तानी के नाते वहा मेरे कोई अधिकार नही है। मैने यह भी पता लगा लिया कि मनुष्य के नाते मेरा कोई अधिकार इसलिए नही है, क्योकि मै हिन्दुस्तानी हूँ।

"पर मैने हिम्मत न हारी। मैने समझा था कि भारतीयो के साथ जो यह दुर्व्यवहार किया जा रहा है यह दोप एक अच्छी-खासी शासन-व्यवस्था में योही आकर घुस गया है। मैने खुद ही दिल से सरकार के साथ सहयोग किया। जब कभी मैने सरकार मे कोई दोप पाया तो मैने उसकी खूब आलोचना की, पर मैने उसके विनाश की इच्छा कभी नही की।

"जब १८९० में बोअरो की चुनौती ने सारे ब्रिटिश-साम्राज्य को महान् विपद् में डाल दिया, उस अवसर पर मैने उसे अपनी सेवायें भेंट की—घायलो के लिए एक स्वयसेवक-दल बनाया और लेडी स्मिथ की रक्षा के लिए जो कुछ लडाइया लडी गई उनमे काम किया। इसी प्रकार जब १९०६ में जुलू लोगो ने 'विद्रोह' किया तो मैने स्ट्रेचर पर घायलो को ले जानेवाला दल सगठित किया और जबतक 'विद्रोह' दब न गया, बराबर काम करता रहा। इन दोनो अवसरो पर मुझे पदक मिले और खरीतो तक में मेरा जिक्र किया गया। दक्षिण अफ्रीका में मैने जो काम किया उसके लिए लॉर्ड हार्डिंग ने मुझे कैसर-ए-हिन्द पदक दिया। जब १९१४ में इग्लैण्ड और जर्मनी मे युद्ध छिड गया तो मैने लन्दन में हिन्दुस्तानियो का एक स्वय-सेवक-दल बनाया। इस दल में मुख्यत विद्यार्थी थे। अधिकारियो ने इस दल के काम की सराहना की। जब १९१७ में लॉर्ड चेम्सफोर्ड ने दिल्ली की युद्ध-परिषद् में खास तौर से अपील की तो मैने खेडा मे रगरूट भर्ती करते हुए अपने स्वास्थ्य तक को जोखिम मे डाल दिया। मुझे इसमे सफलता मिल ही रही थी कि युद्ध बन्द हो गया और आज्ञा हुई कि अब और रगरूट नही चाहिएँ। इन सारे सेवा-कार्यो में मेरा एक-मात्र यही विश्वास रहा कि इस प्रकार मै साम्राज्य में अपने देशवासियो के लिए बराबरी का दर्जा हासिल कर सकूँगा।

"पहला धक्का मुझे रौलट-एक्ट ने दिया। यह कानून जनता की वास्तविक स्वतत्रता का अपहरण करने के लिए बनाया गया था। मुझे ऐसा महसूस हुआ कि इस कानून के खिलाफ मुझे जोर का आन्दोलन करना चाहिए। इसके बाद पजाब के भीषण काण्ड का नम्बर आया। इसका आरम्भ जालियावाला बाग के कत्ले-आम मे और अन्त पेट के बल रेंगाने, खुले आम बेत लगाने और दूसरे बयान से बाहर अपमान-

जनक कारनामो के साथ हुआ। मुझे यह भी पता लग गया कि प्रधान-मंत्री ने भारत के मुसलमानो को जो आश्वासन दिया था कि तुर्की और इस्लाम के तीर्थ-स्थानो की एकता बदस्तूर रक्खी जायगी, वह कोरा आश्वासन ही रहेगा।

"मैंने १९१९ की अमृतसर-कांग्रेस में अनेक मित्रों ने मुझे सावधान किया और मेरी नीति की सार्थकता में सन्देह प्रकट किया, पर फिर भी मैं इस विश्वास पर अडा रहा कि भारतीय मुसलमानो के साथ प्रधान-मंत्री ने जो वादा किया है उसका पालन किया जायगा, पंजाब के जख्मो को भरा जायगा और लाख नाकाफी और असन्तोष-जनक होने पर भी सुधार भारत के जीवन में एक नई आशा को जन्म देंगे। फलतः मैं सहयोग और माण्टेगु-चेम्सफोर्ड-सुधारो को सफल बनाने की बात पर अडा रहा।

"पर मेरी सारी आशायें धूल में मिल गईं। खिलाफत-संबंधी वचन पूरा किया जानेवाला नहीं था। पंजाब-संबंधी अपराध पर लीपापोती कर दी गई थी। इधर अधपेट भूखे रहनेवाले भारतवासी धीरे-धीरे निर्जीव होते जा रहे हैं। वे यह नहीं समझते कि उन्हें जो थोडा-सा सुख-ऐश्वर्य मिल जाता है वह विदेशी शोषक की दलाली करने के कारण है और सारा नफा और सारी दलाली जनता के खून से निकाली जाती है। वे यह नहीं जानते कि ब्रिटिश-भारत में जो सरकार कानूनन कायम है वह इसी जनता के धन-शोषण के लिए चलाई जाती है। चाहे जितने झूठे-सच्चे तर्क से काम लिया जाय, हिन्दुस्तान के साथ चाहे जैसी चालाकी की जाय, असख्य गावो में जो नर-कंकाल दिखाई पड रहे हैं उनकी प्रत्यक्ष गवाही को किसी तरह नहीं झुठलाया जा सकता। यदि हमारा कोई ईश्वर है तो मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि इतिहास में जो यह अपने ढंग का निराला अपराध किया जा रहा है उसकी जवाबदेही इंग्लैण्ड की जनता और हिन्दुस्तान के नगरवासियो को करनी होगी। इस देश के कानून का उपयोग विदेशी धन-शोषको के सुभीते के लिए किया गया है। पंजाब के फौजी कानून के संबंध में मैंने जो निष्पक्ष जांच की है, उससे मैं इस नतीजे पर पहुँचता हूँ कि १०० पीछे ९५ मामलो में सजा के फैसले बिलकुल खराब रहे। हिन्दुस्तान के राजनैतिक मुकदमो का तजुर्बा मुझे बताता है कि दस पीछे नौ दण्डित आदमी सोलह आने निर्दोष थे। इन आदमियो का केवल इतना ही अपराध था कि वे अपने देश से प्रेम करते थे। १०० पीछे ९९ मामलों में देखा गया है कि हिन्दुस्तान की अदालतो में हिन्दुस्तानी को यूरोपियन के मुकाबले में न्याय नहीं मिलता। मैं अतिशयोक्ति से काम नहीं ले रहा हूँ। जिस-जिस भारतवासी को इस तरह के

मामलो में काम पड़ा है उनका यही तजुर्बा है। मेरी राय में कानून का दुरुपयोग जानबूझ कर सही या बिना जानेबूझे सही, धन-शोषक के लाभ के लिए किया जाता है।

जिस १२४ ए धारा के अतर्गत मुझपर मुकदमा चलाया गया है वह नागरिकों की आजादी का अपहरण करने में ताजिरात हिन्द की धाराओ में सिरताज है। प्रेम न तो उत्पन्न किया जा सकता है न कायदे-कानून के मातहत रह सकता है। यदि किसी आदमी के हृदय मे किसी दूसरे आदमी के प्रति प्रेम के भाव न हो, तो जबतक वह हिंसा-पूर्ण कार्य या विचार या प्रेरणा न करे तबतक उसे अपने अप्रीति के भाव प्रकट करने का पूरा अधिकार होना चाहिए। पर श्रीयुत बैंकर पर और मुझपर जिस धारा का प्रयोग किया गया है उसके अनुसार अप्रीति फैलाना अपराध है। इस धारा के अतर्गत चलाये गये कुछ मामलो का मैंने अध्ययन किया है, और मैं जानता हूँ कि इस धारा के अनुसार देश के कई परमप्रिय देश-भक्तो को सजा दी गई है। इसलिए मुझपर जो इस धारा के अनुसार मामला चलाया गया है उसे मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ। मैंने सक्षेप में अपनी अप्रीति के कारणो का दिग्दर्शन करा दिया है। किसी शासक के प्रति मेरे मन में किसी प्रकार का दुर्भाव नही है, और स्वय सम्राट् के व्यक्तित्व के प्रति तो मुझमें अप्रीति का भाव बिलकुल है ही नही। परन्तु जिस शासन-व्यवस्था ने इस देश को अन्य सारी शासन-व्यवस्थाओ की अपेक्षा अधिक हानि पहुँचाई है उसके प्रति अप्रीति के भाव रखना मै सद्गुण समझता हूँ। अंग्रेजो की अमलदारी मे हिन्दुस्तान में पुरुषत्व का अन्य अमलदारियो की अपेक्षा अधिक अभाव हो गया है। जब मेरी ऐसी धारणा है तो इस शासन-व्यवस्था के प्रति प्रेम के भाव रखना मैं पाप समझता हूँ। और इसलिए मैंने अपने इन लेखो में, जो मेरे खिलाफ प्रमाण के तौर पर पेश किये गये है, जो कुछ लिखा है उसे लिख पाना अपना परम-सौभाग्य समझता हूँ।

"वास्तव में मेरा विश्वास तो यह है कि इग्लैण्ड और भारत जिस अप्राकृतिक रूप से रह रहे है, मैंने असहयोग के द्वारा उससे उद्धार पाने का मार्ग बताकर दोनो की एक सेवा की है। मेरी विनम्र सम्मति में जिस प्रकार अच्छाई से सहयोग करना कर्तव्य है उसी प्रकार बुराई से असहयोग करना भी कर्तव्य है। इससे पहले बुराई करनेवाले को क्षति पहुँचाने के लिए असहयोग को हिंसात्मक ढग से प्रकट किया जाता रहा है। पर मै अपने देशवासियो को यह बताने की चेष्टा कर रहा हूँ कि हिंसा बुराई को कायम रखती है, इसलिए बुराई की जड काटने के लिए यह आवश्यक है

कि हिंसा से बिलकुल अलग रहे। अहिंसा का मतलब यह है कि बुराई से असहयोग करने के लिए जो कुछ भी दण्ड मिले उसे स्वीकार कर ले। इसलिए मै यहा उस कार्य के लिए जो कानून की निगाह मे जान-बूझ कर किया गया अपराध है और जो मेरी निगाह में किसी नागरिक का सबसे बडा कर्त्तव्य है, सबसे बडा दण्ड चाहता हूँ और उसे सहर्ष ग्रहण करने को तैयार हूँ। आपके, जज और असेसरो के, सामने सिर्फ दो ही मार्ग हैं। यदि आप लोग हृदय से समझते है कि जिस कानून का प्रयोग करने के लिए आपसे कहा गया है वह बुरा है और मैं निर्दोष हूँ, तो आप लोग अपने-अपने पदो से इस्तीफा दे दे और बुराई से अपना सम्बन्ध अलग कर लें, अथवा यदि आपका विश्वास हो कि जिस कानून का प्रयोग करने मे आप सहायता दे रहे है वह वास्तव में इस देश की जनता के मगल के लिए है और मेरा आचरण लोगो के अहित के लिए है, तो मुझे बडे-से-बडा दण्ड दे।"

जज ने फैसले में लोकमान्य तिलक का दृष्टान्त देते हुए गाधीजी को छ वर्ष की सजा दी, और श्री शकरलाल बैंकर को एक वर्ष की सजा और १०००) जुर्माने का दण्ड हुआ। जुर्माना न देने पर छ मास और। गाधीजी ने गिने-चुने शब्दो में उत्तर दिया, जिसमें उन्होने कहा कि यह मेरे लिए परम सौभाग्य की बात है कि मेरा नाम लोकमान्य तिलक के नाम के साथ जोडा गया। उन्होने जज को सजा देने के मामले में विचारशीलता से काम लेने के लिए और उसकी शिष्टता के लिए धन्यवाद दिया। अदालत मे उपस्थित लोगो ने गाधीजी को विदा किया। बहुतो की आखो में आसू भी भरे हुए थे।

इस प्रकार गाधीजी को दण्ड देकर राष्ट्र की गोद में से हटा दिया गया। यह बात अचानक हुई हो, सो नही। स्वय गाधी जी ने ९ मार्च को 'यग इडिया' मे "यदि मै गिरफ्तार हो गया" शीर्षक लेख मे लिखा था कि चौरी-चौरा के मामले मे श्री कुजरू की रिपोर्ट निश्चयात्मक है और बरेली से काग्रेस-मत्री की रिपोर्ट मे भी यह बात जाहिर है कि वैसे स्वय-सेवको का जुलूस निकालने में चाहे हिंसा न हो पर हिंसा की प्रवृत्ति अवश्य मौजूद है। फलत उन्होने सत्याग्रह बन्द करने का आदेश दिया और लिखा कि जैसी हालत है उसमे सत्याग्रह 'सत्याग्रह' नही, 'दुराग्रह' होगा। पर गाधीजी की समझ में सत्याग्रह के विरुद्ध उस अग्रेज-जाति का दृष्टिकोण न आया, जो सशस्त्र विद्रोह तक की सराहना करती आई है। अग्रेज की दृष्टि मे सत्याग्रह अनोखी-सी चीज दिखाई पडी। यदि गाधीजी की गिरफ्तारी से सारे देश में तूफान आ जाता तो बडे दुख की बात होती। गाधीजी की इच्छा थी कि सारे काग्रेस-कार्यकर्त्ता यह दिखा दें कि उनका

की आशका निर्मूल है, न हडतालें हो, न शोरगुल के साथ प्रदर्शन किये जायें, न जुलूस निकाले जायें। यदि वारडोली में निश्चित किया गया कार्यक्रम पूरा किया जायगा तो उससे वे तो आजाद हो ही जायेंगे, स्वराज्य भी मिल जायगा। गाधीजी ने इन्ही शब्दो के साथ गिरफ्तारी का आवाहन किया था, क्योकि उन्होने समझ लिया कि इससे उनके दैवी शक्ति-सम्पन्न होने के सम्बन्ध में जो धारणा फैली हुई है उसका अन्त हो जायगा। यह खयाल भी दूर हो जायगा कि लोगो ने असहयोग-आन्दोलन उनके प्रभाव मे आकर अपनाया था, हमारी स्वराज्य की योग्यता साबित हो जायगी, और साथ ही उन्हें शान्ति और शारीरिक विश्राम मिल जायगा जिसके सम्भवत वह अधिकारी थे। और देश ने भी उनकी इच्छा का पालन किया—उनकी गिरफ्तारी और सजा पर चारो ओर शान्ति कायम रही।

जेल जाने के बाद

गाधीजी की सजा के बाद तीन महीने तक कार्य-समिति काम-काज को ठीक-ठाक करती रही। खद्दर-विभाग सेठ जमनालाल बजाज के जिम्मे कर दिया गया और ५ लाख रुपये उनके हाथ में रखने का निश्चय किया गया। मलाबार में कष्ट-निवारण के लिए कमिटी ने ८४,०००) की मजूरी दी। सेठ जमनालाल बजाज ने वकीलो के भरण-पोषण के लिए उदारतापूर्वक एक लाख रुपया और भी दिया। खद्दर के अनिवार्य 'उपयोग' का अर्थ 'पहनना' लगाया गया। असहयोगी वकीलो को एक-बार फिर चेतावनी दी गई कि वे मुकदमे हाथ में न ले, और असहयोगियो को आदेश दिया गया कि वे अपनी पैरवी न करें। एक कमिटी बनाई गई, जिसके जिम्मे इन बातो की जाच और रिपोर्ट पेश करने का काम हुआ—(१) मोपला-विद्रोह होने के कारण, (२) विद्रोह ने क्या-क्या रूप धारण किया, (३) सरकार ने विद्रोह को दबाने के लिए फौजी-कानून आदि किन-किन उपायो से काम लिया, (४) मोपलो-द्वारा बलपूर्वक मुसलमान बनाया जाना, (५) सम्पत्ति का विध्वस, (६) हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य स्थापित कराना, यदि आवश्यक हो तो किन-किन उपायो से काम लिया जाय। मध्यप्रान्त (मराठी) की काग्रेस-कमिटी ने असहयोग-कार्यक्रम में कुछ सशोधन पेश किये। अस्पृश्यता-निवारण-सम्बन्धी योजना बनाने के लिए एक कमिटी नियुक्त की। ७, ८ और ९ जून १९२२ को लखनऊ में महासमिति की बैठक हुई, जिसमें ऊपर लिखी और अन्य सिफारिशो पर गौर किया गया। असल में महासमिति का काम था असहयोग, सविनय भग और सत्याग्रह के सिद्धान्त और

व्यवहार का मूल्य फिर से निश्चित करना और उनके विज्ञान और कला का सिंहाव-लोकन करना। देशबन्धु दास और विट्ठलभाई पटेल जैसे चोटी के नेता, जिन्होंने असहयोग को बहुत-कुछ सकोच के बाद अपनाया और बाद को उसकी जोरदार पुष्टि की थी, मूल में कुछ परिवर्तन करना चाहते थे। वे ऐसा असहयोग चाहते थे जिसका प्रवेश खास नौकरशाही के गढ में हो सके। तदनुसार महासमिति तथा गाधीजी ने शान्ति और सत्य के सदेश के द्वारा मानव-समाज की जो सेवा की थी उसकी सराहना की, अहिंसात्मक असहयोग मे अपनी आस्था प्रकट की और कार्य-समिति का वह प्रस्ताव पास किया जिसे पण्डित मोतीलाल नेहरु ने, जो हाल ही में जेल से छूटकर आये थे, पेश किया था और जिसमे मालवीयजी ने सशोधन किया था। इस प्रस्ताव में सरकार की दमन-नीति को धिक्कारा गया और इस नीति का मुकाबला करने के लिए किसी-न-किसी रूप में सत्याग्रह या और इसी प्रकार का कोई उपाय अपनाया जाय, इस बात को अगस्त के लिए स्थगित कर दिया गया। साथ ही सभापति से अनुरोध किया गया कि कुछ सज्जनो को देश का दौरा करके वर्तमान हालत की रिपोर्ट आगामी कमिटी मे पेश करने के लिए नियुक्त किया जाय। तदनुसार सभापति ने पण्डित मोतीलाल नेहरू, डॉ० अन्सारी, श्रीयुत् विट्ठलभाई पटेल, सेठ जमनालाल बजाज, चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य और सेठ छोटानी को मुकर्रर किया। हकीम अजमलखा को कमिटी का अध्यक्ष बनाया गया। सेठ जमनालाल ने नियुक्ति स्वीकार न की और उनके स्थान पर श्री एस० कस्तूरी रगा आयगर को नियुक्त किया गया। सेठ छोटानी शरीक न हो सके।

सत्याग्रह-कमिटी की कारंवाई और उसकी रिपोर्ट का जिक्र करने से पहले हमें मार्च महीने को एकबार फिर देख लेना चाहिए। मि० माण्टेगु ने तुर्की से की गई सेवर्स की सन्धि के सम्बन्ध में एक सरकारी कागज का भेद खोल दिया था, इसलिए उन्हें २३ मार्च १९२२ को मन्त्रि-मण्डल से इस्तीफा देना पडा। उस समय तुर्की ने यूनानियों को करारी हार दी थी। गिरफ्तारियो और सजाओ का चारो तरफ दौर-दौरा था। पजाब में लारेंस की मूर्ति जनता के क्रोध का भाजन बन गई थी। आन्ध्र मे गोदावरी में राष्ट्रीय झण्डा फहराने से नौकरशाही भडक उठी थी और कन्वन्दी-आन्दोलन भी मौजूद था ही। कानून का शासन १०८ और १४४ धाराओं का शासन रह गया था। सरकारी कार्य-कारिणी के भारतीय सदस्य अपनी लाचारी प्रकट करते थे— क्योंकि कलक्टर (डिप्टी-कमिश्नर) ही सर्व-सर्वा बने हुए थे। न्याय-विभाग से अपील करने से कुछ होने की सम्भावना थी, पर असहयोगी अपील को तैयार न होते

थे। लोगो के बिगड उठने का एक कारण प्रधान-मन्त्री लायड जॉर्ज की 'स्टील फ्रेम स्पीच' थी। यह इसलिए दी गई थी कि ओडानल-सर्कुलर नामक एक गश्ती-पत्र सारी प्रान्तीय सरकारो में घुमाया गया था। उनसे ऊँचे पदो पर भारतीय रखने के प्रश्न पर राय पूछी गई थी, जिससे भारत-सरकार सारी स्थिति पर विचार कर सके। यह बात कही खुल गई और भारत व इग्लैण्ड के अफसर बिगड खडे हुए। उन्हें शान्त करने के लिए लायड जार्ज ने भाषण में कहा कि भारत की सिविल-सर्विस सारे शासन-तन्त्र का फौलादी ढाचा है। उन्होने यह भी कहा कि मेरी समझ में तो ऐसा कोई समय न आयगा जब भारत ब्रिटिश-सिविल-सर्विस की सहायता और पथ-प्रदर्शन के बगैर काम चला सकेगा। ब्रिटिश-सिविल-सर्विस का इसी प्रकार सहायता प्रदान करते रहना ब्रिटेन की भारत-स्थिति बडी भारी जिम्मेदारी को पूरा करने के लिए आवश्यक है।

बोरसद-सत्याग्रह

यह सत्याग्रह १९२२ में बोरसद में हुआ। कुछ दिनो से बोरसद ताल्लुका में देवर बाबा नाम का एक छटा हुआ डाकू उपद्रव कर रहा था। इधर एक मुसलमान डाकू उठ खडा हुआ और देवर बाबा के मुकाबले में छापे मारने शुरू कर दिये। पुलिस लाचार थी। सरकार ने अपना सबसे बढिया अफसर इस काम पर नियुक्त किया, पर उसे भी सफलता न हुई। बडौदा-पुलिस भी उपद्रवियो का पता लगाना चाहती थी, क्योकि बडौदा रियासत बोरसद के बगल में ही है। अन्त में ताल्लुके और रियासत के पुलिस और रेवेन्यू अफसरो ने मिलकर अपराधियो का पता लगाने की एक तरकीब सोच निकाली। उन्होने देवर बाबा को पकडने के लिए मुसलमान डाकू को मिला लिया। मुसलमान डाकू इस शर्त पर राजी हुआ कि उसके पास हथियार रहें और ४–५ सशस्त्र सिपाही दिये जायें। अधिकारी राजी हो गये। चोर को पकडने के लिए चोर मुकर्रर किया गया। पर पुलिस के इस नये सगी ने अपने आदमियो और हथियारो का उपयोग तहसील में और भी धूम-धडाके के साथ लूटमार करने में किया।

अपराधो की सख्या बढी और अन्त में सरकार ने सोचा कि इन अपराधो में गाववालो की भी साजिश है। तहसील में दण्ड-स्वरूप अतिरिक्त पुलिस बैठाई और एक भारी ताजीरी कर भी लोगो पर लगा दिया और वह कर हमेशा की बेरहमी के साथ वसूल किया जाने लगा। इधर गुजरात के नेताओ को पुलिस और मुसलमान डाकू के समझौते का पता चला और श्री वल्लभभाई पटेल ने इस मामले में सरकार को

चुनौती दी। वह बोरसद गये और लोगो से कर न देने को कहा। जिन लोगो को डाकुओ ने घायल किया था उनके शरीर से गोलिया निकाली गई तो साबित हुआ कि गोलिया सरकारी हैं। अब कोई सन्देह न रहा कि डाकुओ ने सरकारी गोलिया और सरकारी रायफलो का उपयोग किया है। श्री वल्लभभाई पटेल ने २०० स्वयसेवक रात-दिन चौकी पहरा देने के लिए तैनात किये। लोग-बाग कई हफ्तो से शाम से ही घरो के दरवाजे बन्द कर लेते थे। श्री पटेल ने उन्हे दरवाजे खुले रखने को राजी किया। गाववालो ने फोटो की तसवीरो द्वारा प्रमाणित कर दिया कि ताल्लुके में जो ताजीरी पुलिस नियुक्त की गई है उसके आदमी भीतर से स्वय दरवाजे बन्द कर देते है और बाहर से भी ताले लगा देते है, जिससे डाकुओ को भ्रम हो जाय कि घर खाली हैं। बाहर जहा जरा-सा शोर हुआ कि पुलिसवाले अपनी चारपाइयो के नीचे घुस जाते थे। फोटो की तसवीरो के द्वारा ये सारी बातें बिलकुल सच्ची साबित हुईं। अब सरकार के आगे दो मार्ग थे। या तो वह इस प्रकार के अभियोग लगानेवालो पर मुकदमा चलाती, या चुप्पी साधकर अपने-आपको कुसूरवार साबित करती। जब इस प्रकार के अभियोग लगाये गये, तो बडौदा-पुलिस गावो से झटपट रियासत में हटा ली गई। पर ब्रिटिश-पुलिस उसी प्रकार बनी रही और ताजीरी कर के लिए सामान कुर्क करती रही। इसी समय बम्बई के गवर्नर लॉर्ड लायड भारत से चले गये और उनका स्थान सर लेसली विल्सन ने लिया। जब उन्होने बोरसद की कथा सुनी तो वहा तत्काल होम-मेम्बर को भेजा, जिसने सारी बातो की तसदीक कराई और उसी समय पुलिस हटा ली गई। इधर देवर बाबा वल्लभभाई और स्वय-सेवको के पहुंचते ही वहा से गायब हो गया था।

गुरु-का-बाग

इसके बाद वर्ष में दो महत्त्वपूर्ण घटनायें हुईं। एक सत्याग्रह-कमिटी का गर्मियो में देश में दौरा करना, और दूसरी गुरु-का-बाग की घटना जो अन्त में हुई। शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रबन्धक-कमिटी सिक्खो का सुधारक-दल था। ये लोग अपने-आपको अकाली कहते थे। जो सनातनी सिक्ख थे वे अपने-आपको उदासी कहते थे और गुरुद्वारो के महन्त इन्हीं का पक्ष करते थे। सुधारक सिक्ख सत्याग्रह करके गुरुद्वारो पर दखल करना चाहते थे। कुछ अकालियो ने गुरु-का-बाग के गुरुद्वारे की जमीन का एक पेड़ काट डाला। महन्त ने पुलिस से शिकायत की। पुलिस ने रक्षा का भार लिया। अब सिक्खो के जत्थे अहिंसा का व्रत लिये पुलिस की टुकडियो के बीच में

से निकलते और उन्हें गैर-कानूनी समुदाय की हैसियत से खूब पीटा जाता। देश में इस दृश्य से सनसनी मच गई। यह अहिंसा का पाठ था, जो भारत की वह वीर जाति पढ़ा रही थी जिसने यूरोप में जर्मनो से मोर्चे लिये थे और अग्रेजो के निमित्त विजय प्राप्त की थी।

अकालियो के इस आत्म-नियत्रण की प्रशसा सरकार ने भी खुले दिल से की। दस वर्ष बाद भारतीय राजनीति में जिस लाठी-चार्ज को इतना प्रमुख भाग मिलनेवाला था, उसकी कला में गुरु-का-बाग में ही प्रवीणता प्राप्त की गई थी। अन्त में १९२२ के नवम्बर में सर गगाराम नामक एक सज्जन ने वह जगह महन्त से पट्टे पर ले ली और अकालियो के पेड़ काटने पर कोई एतराज न किया।

सत्याग्रह कमिटी की सिफारिशें

सत्याग्रह-कमिटी ने देश-भर का दौरा किया। लोगो का उत्साह भग न हुआ था। कमिटी के सदस्य जहा कही गये, उनका जोरदार स्वागत हुआ। कमिटी ने अपना काम समाप्त करके रिपोर्ट पेश की। आरम्भ में महासमिति इसकी चर्चा १५ अगस्त की बैठक में करना चाहती थी, पर ऐसा न हो सका और कुछ दिनो बाद कलकत्ते में जब देशबन्धु दास की दूसरी कन्या के विवाह के अवसर पर कुछ लोग एकत्र हुए तो खानगी तौर से इसकी चर्चा की गई। कहते हैं कि इस अवसर पर पण्डित मोतीलाल नेहरू को सत्याग्रह के स्थान पर कौंसिल-प्रवेश के लिए राजी कर लिया गया। कुछ समय बाद जब रिपोर्ट प्रकाशित हुई तो पता चला कि सब-के-सब सदस्यो के सामने यह प्रश्न था कि कौंसिल के लिए खडा होना चाहिए या नही? खिलाफत-कमिटी ने भी इसी ढग की एक कमिटी कायम की, जिसने अपनी रिपोर्ट में कौंसिलो का बहिष्कार जारी रखने की सिफारिश की। सत्याग्रह-कमिटी की सिफारिशें नीचे दी जाती हैं—

१—सत्याग्रह—देश फिलहाल छोटे पैमाने पर या सामूहिक सत्याग्रह के लिए तैयार नही है, जैसे किसी खास कानून का भग या किसी खास कर की गैर-अदायगी। हम सिफारिश करते है कि प्रान्तीय काग्रेस-कमिटियो को अधिकार दे दिया जाय कि यदि महासमिति की सत्याग्रह-सम्बन्धी शर्तें पूरी होती हो तो वे अपनी जिम्मेवारी पर छोटे पैमाने पर सामूहिक सत्याग्रह की मजूरी दे सकें।

२—कौंसिल-प्रवेश—(अ) काग्रेस और खिलाफत अपने गया के अधिवेशनो में यह बात घोषित कर दें कि चूकि कौंसिलो ने अपने पहले सत्र (सेशन) के

द्वारा यह दिखा दिया है कि वे खिलाफत और पजाब-सवधी ज्यादतियो की दादरसी में रुकावट वन रही है, स्वराज्य की शीघ्रप्राप्ति में बाधक हो रही है, और जनता के लिए बडी कष्टदायिनी सावित हुई है, इसलिए अहिंसात्मक असहयोग के सिद्धान्तो का कडाई के साथ पालन करते हुए, जिससे भविष्य में ऐसी बुराइया न उत्पन्न हो, निम्नलिखित उपायो से काम लेना चाहिए—

(१) असहयोगियो को उम्मीदवारी के लिए पजाब और खिलाफत की ज्यादतियो की दादरसी और तत्काल-स्वराज्य-प्राप्ति के उद्देश से खडा होना चाहिए और अधिक-से-अधिक सख्या मे पहुँचने की कोशिश करनी चाहिए।

(२) यदि असहयोगी इतनी अधिक सख्या में पहुँच जायें कि उनके बगैर कोरम पूरा न हो सके तो उन्हें कौंसिल-भवन में जाकर बैठने के वजाय एक साथ वहा से चले आना चाहिए और फिर किसी बैठक में शरीक न होना चाहिए। बीच-बीच में वे कौंसिलो में केवल इसलिए जायें कि उनके रिक्त स्थान पूरे न हो सकें।

(३) यदि असहयोगी इतनी सख्या में पहुँचें कि अधिक होने पर भी उनके बिना कोरम पूरा हो सकता हो, तो उन्हें हरेक सरकारी कारंवाई का, जिसमें बजट भी शामिल हो, विरोध करना चाहिए और केवल पजाब, खिलाफत और स्वराज्य-सम्बन्धी प्रस्ताव पेश करने चाहिएँ।

(४) यदि असहयोगी अल्प सख्या में पहुँचे तो उन्हें वही करना चाहिए जो न० २ में बताया गया है, और इस प्रकार कौंसिल के बल को घटाना चाहिए।

नई कौंसिलो का निर्वाचन १९२४ की जनवरी से पहले न होगा, इसलिए हमारा प्रस्ताव है कि कांग्रेस का अधिवेशन १९२३ के दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह के वजाय पहले सप्ताह में हो, और यह मामला एक बार फिर उसमें पेश किया जाय जिससे निर्वाचन के सम्बन्ध में कांग्रेस अपना अन्तिम वक्तव्य दे सके। (हकीम अजमलखां, पडित मोतीलाल नेहरू और श्री विट्ठलभाई पटेल की सिफ़ारिश)

(आ) कौंसिलो के बहिष्कार के सम्बन्ध में कांग्रेस की नीति में किसी प्रकार का परिवर्तन न होना चाहिए। (डा० एम० ए० अन्सारी, चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य, श्री एस० कस्तूरी रंगा आयगर की सिफारिश)

३—स्थानिक सस्थायें—हमारी सिफारिश है कि स्थिति को साफ़ करने के लिए यह घोषणा करना वाञ्छनीय है कि असहयोगी रचनात्मक कार्यक्रम को अमली शक्ल देने के लिए म्युनिसिपैलिटियो, जिला और लोकल-बोर्डों की उम्मीदवारी में खडे हो, परन्तु असहयोगी सदस्यो के वहा आचरण के सम्बन्ध में अभी किसी प्रकार

ढग के नियम-उपनियम न वनायें जायें। हा, यह जरूरी है कि वे प्रान्तीय और स्थानिक काग्रेस-सस्थाओ के साथ मिल-जुलकर काम करे।

४—स्कूल-कालेजों का वहिष्कार—स्कूल-कालेजो के सम्वन्ध में हमारी सिफारिश है कि इस मामले में वारडोली के वहिष्कार-प्रस्ताव का पालन करना चाहिए और मौजूदा जोरदार प्रचार वन्द करके विद्यार्थियो को स्कूलो और कालेजो का वहिष्कार करने की सलाह न देनी चाहिए। जैसा कि प्रस्ताव में कहा गया है, हमें अपने राष्ट्रीय विद्यालय इतने उत्तम वना देने चाहिएँ कि विद्यार्थी स्वय ही सरकारी स्कूल-कालेजो से खिचकर वहा चले आयें। हमें पिकेटिंग आदि उग्र उपायो का अवलम्वन न करना चाहिए।

५—अदालतो का वहिष्कार—पचायतें स्थापित करने की कोशिश करनी चाहिए और इस ओर लोक-प्रवृत्ति जाग्रत करनी चाहिए।

हमारी यह भी सिफारिश है कि इस समय वकीलो पर जो प्रतिवघ लगे हुए हैं, वे उठा दिये जायें।

६—मजदूर-सगठन—नागपुर-काग्रेस-द्वारा पास किया गया प्रस्ताव न० ८ तत्काल अमल में लाना चाहिए।

७—आत्मरक्षा का अधिकार—(अ) हमारी सिफारिश है कि कानून के भीतर आत्म-रक्षा करने की स्वतत्रता सवको दी जाय। हा, जब काग्रेस का काम कर रहे हो, या उसके सिलसिले में कोई अवसर उपस्थित हो, तो दूसरी वात है। पर इस वात का हमेशा खयाल रहे कि इससे खुल्लम-खुल्ला हिंसा की नौवत न आ जाय। धर्म के मामले में, स्त्रियो की रक्षा करने में, या लडको और पुरुषो पर अनुचित अत्याचार होने पर शारीरिक वल का प्रयोग किसी हालत में मना नही है। (श्री विट्ठलभाई पटेल को छोडकर सवकी सहमति)

(आ) असहयोगियो को कानून के भीतर आत्म-रक्षा करने का अधिकार रहना चाहिए, शर्त सिर्फ यही रहनी चाहिए कि इससे सामूहिक हिंसा की नौवत न आ जाय। और किसी प्रकार की शर्त न होनी चाहिए। (श्री विट्ठलभाई पटेल)

८—अग्रेजी माल का वहिष्कार—(अ) हम इसे सिद्धान्त-रूप में स्वीकार करते है और सिफारिश करते हैं कि इस प्रश्न को विशेषज्ञो के सुपुर्द करना चाहिए और उनकी विशद रिपोर्ट काग्रेस के पहले आ जानी चाहिए। (चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य को छोडकर सवकी सहमति)

(आ) विशेषज्ञो के सारी वातो के सग्रह करने और उनकी जाच-पडताल करने

में कोई हानि नही है, परन्तु महासमिति-द्वारा सिद्धान्त-रूप में स्वीकृति होने से देश को गलतफहमी होगी और आन्दोलन को हानि पहुँचेगी।" (चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य) .

इसपर से यह स्पष्ट है कि असहयोग के पुराने और नवीन दल समान-रूप से बँटे हुए थे। पर दोनो थे असहयोग के ही दल; और सरकार से सहयोग करने को दोनो में से कोई दल तैयार न था। अन्तर केवल इतना ही था कि नवीन दल असहयोग की कमान में एक दूसरी डोरी चढाकर उससे नौकरशाही के गढ कौंसिलो के भीतर से ही तीर छोडने का समर्थक था। स्थानिक बोर्डों के निर्वाचन के सम्बन्ध में जो सिफारिशें की गईं उनकी कल्पना तो पहले ही से की जा सकती थी। कांग्रेसियो और असहयोगियो ने म्युनिसिपैलिटियो और स्थानिक बोर्डों के लिए खडा होना आरम्भ कर दिया था। सफल होने पर ये अस्पतालो में खद्दर और नौकरो के लिए खादी की वर्दियो के व्यवहार पर जोर देते, ऑफिसो पर राष्ट्रीय झण्डा फहराने का आग्रह करते, स्थानिक और म्युनिसिपल स्कूलो में चर्खा और हिन्दी के प्रचार की सिफारिश करते और यदा-कदा गवर्नरो और मिनिस्टरो के आगमन का बहिष्कार करने पर जोर देते। इस प्रकार इन्होने सरकार की नाक में दम करना आरम्भ कर दिया था। पर इन सारी कार्रवाइयो से केवल उनके रुख का पता लगता था, कोई ठोस काम होता नजर न आता था।

महासमिति की बैठक १५ अगस्त को होनेवाली थी, वह नवम्बर तक के लिए रुक गई। उस महीने की २०, २१, २२, २३ और २४ तारीख को कमिटी की ऐतिहासिक बैठकें हुई। कांग्रेस-कमिटी की चर्चा क्या थी एक प्रकार का टूर्नामेण्ट था, जिसमें अपने-अपने पक्ष के योद्धाओ को ध्यान-पूर्वक छाटा गया था। पहले दिन की बैठक इण्डियन एसोसियेशन के कमरो में हुई, पर वहा खुली हवा न मिलती दिखाई दी, इसलिए बाकी चार दिन की बैठक १४८ रसा रोड में देशबन्धु चित्तरजन दास के भव्य भवन में शामियाने के नीचे हुई। वैसे वृद्ध नेहरू और दास जैसे चोटी के नेता कौंसिल-प्रवेश के कार्यक्रम की पुष्टि कर रहे थे, और उनकी सहायता पर उनका पुराना सहयोगी महाराष्ट्र था, परन्तु एक तो गांधीजी जेल में थे, फिर उनके प्रति उनके अनुयायियो की श्रद्धा और भक्ति ने भी जोर लगाया, असहयोग का कार्यक्रम लडायक था और दूसरी ओर का कार्यक्रम ऐसा जोरदार नही था। पाच दिन की उधेड-बुन, नुक्ताचीनी, तानाजनी और वाक-प्रहारो के बाद कमिटी ने निर्णय किया कि देश सामूहिक सत्याग्रह के लिए तैयार नही है। पर कमिटी ने प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटियो को अधिकार दे दिया कि यदि कोई मौका आ पडे तो वे अपनी जिम्मेवारी

पर सीमित-रूप में सत्याग्रह की मजूरी दे सकती है, बशर्ते कि उस सम्बन्ध मे लगाई गई सारी शर्तें पूरी होती हो। कौंसिल-प्रवेश का अधिक जटिल प्रश्न गया-काग्रेस के लिए मुल्तवी कर दिया गया। इसी प्रकार अग्रेजी माल के बहिष्कार का प्रश्न, स्थानिक बोर्डों में प्रवेश करने का प्रश्न, स्कूलो, कालेजो और अदालतो के बहिष्कार का प्रश्न, काग्रेस का काम करते समय को छोडकर अन्य हर समय कानून के भीतर आत्म-रक्षा करने के अधिकार का प्रश्न—ये सब भी मुल्तवी कर दिये गये। बोर्डों में प्रवेश प्रश्न को स्थगित इसलिए किया गया कि जिससे रचनात्मक कार्य में बाधा न पड़े। इस प्रकार सत्याग्रह-कमिटी की चर्चा समाप्त हुई, जिसमें काग्रेस के १६,०००) खर्च हुए।

गया-कांग्रेस

गया-काग्रेस का जिक्र करने से पहले कार्य-समिति की बैठको का पूरा विवरण दे देना ठीक होगा। गुरु-का-बाग-काण्ड की जाच करने के लिए एक प्रभावशाली कमिटी मुकर्रर की गई, 'अमृतबाजार पत्रिका' के वयोवृद्ध देशभक्त सम्पादक मोतीलाल घोष की मृत्यु पर शोक प्रकाश किया गया, और मुलतान में हिन्दू-मुस्लिम-एकता कराने के लिए एक कमिटी मुकर्रर की गई।

पिछले दो वर्षों से हिन्दू-मुसलमानो में जैसा सराहनीय मेल रहा था वह १९२२ के मुहर्रमो में मुलतान में भग हो गया, दंगा हुआ, आदमी मरे और खूब लूटमार हुई। यह बडे शोक की बात हुई। लाख कोशिशें की गईं, पर बेकार साबित हुईं। 'इण्डिया १९२२—२३,' नामक पुस्तक में लिखा है—"गाधीजी ने जिस इमारत को इतने परिश्रम से तैयार किया था वह बुरी तरह से नष्ट हो गई।" जिस प्रकार १९१७ के सितम्बर से हर महीने की १५ वी तारीख को एनी बेसेण्ट-दिवस, जबतक एनी बेसेण्ट छूट न गई, मनाया जाता रहा, उसी प्रकार १८ अप्रैल के बाद से प्रति मास की १८ वी तारीख को देश-भर में गाधी-दिवस मनाया जाता रहा। एक दूसरी महत्त्वपूर्ण घटना यह हुई कि जवाहरलाल नेहरू युवराज का बहिष्कार करने के सिलसिले में मिली सजा भुगतकर लौटे तो १९२२ की मई में उन्हे फिर गिरफ्तार करके जेल भेज दिया गया। उनकी गिरफ्तारी के वारण्ट पर वही चिर-परिचित १२४ ए लिखा हुआ था। पर उनपर मकदमा चलाया गया "धमकाने और रुपया वसूल करने की कोशिश में सहायता देने" के लिए। उन्होने एक व्याख्यान में विदेशी दूकानो पर धरना देने का इरादा जाहिर भी किया था। उन्होने एक कमिटी की मीटिंग का सभापतित्व भी ग्रहण किया था, जिसमें कपडे के व्यापारियो से अपने नियमो के अनुसार जुर्माना

मागने के लिए एक पत्र लिखने का निश्चय किया गया था। मामला ताजिरात-हिन्द की ३८५ धारा के अनुसार चलाया गया। असली बात यह थी कि उनपर विदेशी कपड़ो की दूकानो पर पिकेटिंग करने के लिए मामला चलाया जा रहा था। उन्होंने १७ मई १९२२ को अदालत में बड़ा ही सुन्दर बयान दिया, जिसमें उन्होंने बताया कि किस प्रकार अबसे दस साल पहले वह हैरो और केम्ब्रिज की सभ्यता में पले हुए अग्रेज हो गये थे, और किस प्रकार दस वर्ष के समय में भारत-सरकार की वर्तमान शासन-प्रणाली के कट्टर-शत्रु (बागी) हो गये। उन्होंने कहा—"मुझे अपने सौभाग्य पर स्वय ही आश्चर्य होता है। स्वतंत्रता के युद्ध में भारत की सेवा करना बड़े सौभाग्य की बात है। और उसकी सेवा महात्मा गांधी जैसे नेता के नेतृत्व में करना दुगुने सौभाग्य की बात है। परन्तु प्यारे देश के लिए कष्ट सहना! किसी भारतीय के लिए इससे बढ़कर सौभाग्य और क्या हो सकता है कि अपने गौरवपूर्ण लक्ष्य की सिद्धि में उसके प्राण चले जायें ?"

१९२२ की गया-कांग्रेस हर प्रकार से अपने ढंग की निराली थी।

प्रतिनिधियों में जिस बात को लेकर सबसे ज्यादा हो-हल्ला मचा और सबसे अधिक मत-भेद उपस्थित हुआ वह कौंसिल-प्रवेश-सम्बन्धी समस्या थी। कलकत्ते-वाली महासमिति की बैठक ने यह समस्या कांग्रेस के अवसर के लिए मुल्तवी कर दी थी। कांग्रेस को इस मामले पर और अन्य मामलों पर निर्णय करने के लिए पांच दिन तक बैठना पड़ा। कुछ लोग ऐसे थे जो समझते थे कि यदि कौंसिल-प्रवेश की इजाजत दे दी गई तो असहयोग की योजना भंग हो जायगी, इसलिए वे इस बात पर जोर देते थे कि कौंसिल-प्रवेश-सम्बन्धी प्रतिबन्ध न उठाया जाय। कुछ ऐसे बुद्धिशाली व्यक्ति थे, जो कहते थे, कि हम कौंसिलों में जाकर न शपथ लेंगे न स्थान ग्रहण करेंगे और इस ढंग से शत्रु को पराजित कर देंगे। इसके बाद उन ओजस्वी राजनीतिज्ञों की बारी थी, जो कहते थे कि हम कौंसिलों पर कब्जा कर लेंगे, मंत्रि-मण्डल और मंत्रियों को तहस-नहस कर देंगे, और को उनको बाद में जाकर पराजित करेंगे, बजटों को मंजूरी न देंगे और धिक्कार का प्रस्ताव पास करेंगे, और सरकारी तंत्र का चलना असम्भव कर देंगे।

देशबन्धु दास ने जो भाषण पढ़ा वह तर्क, अध्ययन और व्यावहारिक आदर्श-वाद में अपना सानी नहीं रखता। यद्यपि असहयोग की बात को दूसरी ओर से उनके के विरुद्ध अनेक शक्तियां जुट गईं, तो भी एस० श्रीनिवास आयंगर और पंडित मोती-लाल नेहरू की प्रतिभा के बावजूद वह बात अपने पक्ष में न कर सके। एस० श्रीनिवास

आयगर ने सशोधन पेश किया कि काग्रेसी उम्मीदवारी के लिए खडे हो परन्तु कौंसिलो में स्थान ग्रहण न करें। पण्डित मोतीलाल नेहरू कुछ शर्तों के साथ इसपर रजामन्द हो गये। श्रीनिवास आयगर ने एक वर्ष पहले मदरास-कौंसिल से इस्तीफा दे दिया था, अपना एडवोकेट-जनरल का पद और सी० आई० ई० की उपाधि त्याग दी थी और बधाइयो की वर्षा के मध्य आन्दोलन में पैर रक्खा था। खिलाफतवाले जमैयत-उल-उलेमा के प्रभाव में थे जिसने फतवा निकाला था कि कौंसिल-प्रवेश ममनून है, हराम नही है। पर गया में किसीकी न चली। गाधीवाद का चारो ओर दौर-दौरा था। हर किसीका यह विश्वास था कि काग्रेस का अपने नेता के अनुपस्थित होते ही उसके प्रति पीठ दिखाना कृतघ्नता होगी। स्वर्गीय मोतीलाल घोष और अम्बिका-चरण मुजुमदार के प्रति सम्मान प्रकट करने के बाद गाधीजी और उनके सिद्धान्तो को साधुवाद दिया गया।

शहीद अकालियो की उनकी असाधारण वीरता और अन्य राजनैतिक कैदियो की उनके अहिंसा का सुन्दर उदाहरण पेश करने के लिए प्रशसा की गई। कमालपाशा को उसकी सफलता के लिए बधाई दी गई। कौंसिलो का बहिष्कार करने को कहा गया। सरकार को चेतावनी दी गई कि वह और अधिक ऋण न ले, और लोगों को भी सावधान किया गया और नामधारी कौंसिलो के नाम पर जारी किये गये नौकरशाही के ऋण में रुपया न लगाने के लिए कहा गया। गत नवम्बर की महा-समिति के सत्याग्रह-सम्बन्धी प्रस्ताव की एक प्रकार से पुष्टि की गई। इस बीच में देश से इस कार्य के लिए रुपया और आदमी एकत्र करने को कहा गया। कालेजो और अदालतो का बहिष्कार जारी रहा और नवम्बर में आत्म-रक्षा-सबधी अधिकार के विषय में जो कुछ निश्चित किया गया था उसे मान लिया गया। मजदूरो का सगठन करने के लिए एण्डरूज साहब, श्री सेनगुप्त और चार दूसरे सज्जनो की कमिटी बनाई गई जिसे आवश्यकतानुसार बढाया जा सकता था। दक्षिण-अफ्रीका और काबुल की काग्रेस-सस्थाओ को काग्रेस के साथ शामिल किया गया और उन्हें काग्रेस में क्रमश १० और २ प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिया गया।

स्वराज्य पार्टी

जिस समय देशबन्धु दास ने गया-काग्रेस का सभापतित्व ग्रहण किया था उस समय उनकी जेब में वास्तव में दो महत्त्वपूर्ण कागज थे। एक था सभापति का

भाषण और दूसरा था सभापति-पद से त्याग-पत्र, जिसके साथ उनकी स्वराज्य-पार्टी के नियम-उपनियम भी थे। यह किसीको आशा न थी कि दास जैसे व्यक्तित्व का पुरुष, पण्डित मोतीलाल नेहरू और श्री विट्ठलभाई पटेल जैसे चोटी के आदमियो का सहारा पाकर भी, जनता के आगे चुपचाप सिर झुका देगा और कौंसिल-बहिष्कार के लिए राजी हो जायगा। फलत एक पार्टी बनाई गई और कार्यक्रम तैयार किया गया। श्री दास के जिम्मे बगाल की प्रान्तीय कौंसिल पर कब्जा करने का काम रहा और नेहरूजी को दिल्ली और शिमला पर धावा बोलने का काम दिया गया।

१९२२ का साल खतम करने से पहले यहा राजनैतिक कैदियो और जेल के नियमो का जिक्र करना ठीक होगा। पिछले सालो की तरह अब सरकार राजनैतिक शब्द से उतना नही बचती थी। उनके साथ अब अधिक उदारता का व्यवहार किया जाने लगा। पर इनमें वे कैदी शामिल न थे जो हिंसात्मक कार्यों के लिए, या जमीन-जायदाद आदि के मामलो में, या सैनिको या पुलिस को फुसलाने के मामले में, या किसी को डराने-धमकाने के सिलसिले में दण्डित हुए थे। किस कैदी के साथ कैसा व्यवहार किया जाय, यह उसके अपराध, शिक्षा, सामाजिक स्थिति और चरित्र के ऊपर निर्भर किया गया। इस तरह चुने हुए कैदियो को मामूली कैदियो से अलग रक्खा जाता था और उन्हें पुस्तकें रखने, अपना खाना खाने और बिछौना इस्तेमाल करने, समय-समय पर चिट्ठिया लिखने और इष्टमित्रो से मुलाकात करने की अधिक छूट दी गई। उन्हें कठिन परिश्रम से बरी किया गया। हमने भारत-सरकार की इन सारी हिदायतो को विशद-रूप से इसलिए दिया है कि उनका पालन जेल-अधिकारियों ने अधिकाश कैदियो के सम्बन्ध में न उस समय किया था, न बाद को। बाद को तो सरकार ने 'राजनैतिक' शब्द ही मानने से इनकार कर दिया।

: ४ :

कौंसिलों के भीतर असहयोग—१९२३

खिलाफत का खात्मा

देश के राजनैतिक वातावरण को १९२३ के आरम्भ में साम्प्रदायिक मत-भेदो ने फिर गदा कर दिया था। १९२२ में मुलतान में दगा हो ही चुका था। १९२३ के मुहर्रमो में बगाल और पजाब में भयकर दगे हुए। १९२२ में खिलाफत के प्रश्न का अचानक अन्त हो गया था। १९२२ के अक्तूबर में मुदानिया में अस्थायी संधि हुई। २० नवम्बर को लूसान में मित्र-राष्ट्रो की एक परिषद् हुई। यहा दो महीने तक बात-चीत होती रही। इसी अवसर पर अगोरा-सरकार के प्रतिनिधियो ने नगर के शासन की बागडोर अपने हाथ में ले ली और तुर्की के सुलतान को एक अग्रेजी जहाज में छिपकर प्राण बचाने के लिए माल्टा भागना पडा। उसके विदा होते ही वह सुलतान और खलीफा दोनो पदो से च्युत कर दिया गया। उसका भतीजा अब्दुलमजीद एफेन्डी नया खलीफा चुना गया। सुलतान का अस्तित्व समाप्त हो गया और तुर्की में प्रजातत्र हो गया। इस प्रकार खिलाफत सिर्फ मजहबी बातो तक ही सीमित रह गई।

समझौते की कोशिश

गया में अपरिवर्त्तनवादियो की जो विजय हुई वह स्थायी साबित न हुई। १ जनवरी १९२३ को महासमिति ने निश्चय किया कि ३० अप्रैल १९२३ तक २५ लाख रुपया एकत्र किया जाय और ५०,००० स्वयसेवक भर्ती किये जायँ। कार्य-समिति के जिम्मे यह सारा काम सौंपा गया। उसे यह भी अधिकार दिया गया कि तुर्की की अवस्था के कारण यदि कोई खास मौका आ पडे तो सत्याग्रह-सम्बन्धी दिल्ली की कडाई को ढीला कर दिया जाय। डॉ० अन्सारी को दूसरी बैठक के लिए एक राष्ट्रीय-पैक्ट का मसविदा तैयार करने को कहा गया। परन्तु सबसे अधिक जरूरी बात सभापति का त्याग-पत्र था। उन्होंने पहले ही विषय-समिति को अपनी स्वराज्य-पार्टी वाली योजना बना दी थी, इसलिए पद-त्याग आवश्यक

ही था। पर त्याग-पत्र पर विचार महासमिति की २७ फरवरी १९२३ को इलाहाबाद में होनेवाली बैठक के लिए स्थगित कर दिया गया। इस बैठक में आपस में समझौता करके दोनो दलो ने निश्चय किया कि ३० अप्रैल तक किसी ओर से कौंसिल-सम्बन्धी प्रचार-कार्य न हो और इस बीच में अपने-अपने कार्यक्रम का बाकी हिस्सा दोनो दल पूरा करने को स्वतन्त्र रहें। कोई किसीके काम में दखल न दे। ३० अप्रैल के बाद जैसा तय हो उसके अनुसार दोनो दल अपना रवैया रक्खें।

इस समय तक मौलाना अबुलकलाम आजाद और पण्डित जवाहरलाल नेहरू जेल से छूट गये थे। महासमिति ने यह समझौता करने के लिए दोनो को धन्यवाद दिया।

इधर कांग्रेस का रचनात्मक कार्यक्रम जोर-शोर से फैलाया गया। इस काम के लिए जो शिष्ट-मण्डल नियुक्त किया गया था उसमें बाबू राजेन्द्रप्रसाद, चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य, सेठ जमनालाल बजाज और श्री देवदास गांधी थे। इस शिष्ट-मण्डल ने देशभर का दौरा किया और तिलक-स्वराज्य-कोष के लिए काफी चन्दा इकट्ठा किया। मई १९२३ को बम्बई में हुई कार्य-समिति की बैठक में इसने अपने कार्य की रिपोर्ट पेश की थी।

१९२३ की २५, २६ और २७ मई को कार्य-समिति की बैठक के साथ ही महासमिति की एक बैठक हुई, जिसमें तय किया गया कि गया-कांग्रेस के अनुसार मतदाताओं में कौंसिल-प्रवेश-प्रचार करने का जो प्रस्ताव पास किया गया था उसपर अमल न किया जाय। इस बैठक में कोई महत्वपूर्ण बात नहीं हुई। हां, नागपुर के स्वयंसेवकों को नागपुर में झण्डा-सत्याग्रह जारी रखने के लिए बधाई दी गई और साथ ही देश के स्वयंसेवकों को आवश्यकता पड़ने पर नागपुर-सत्याग्रह में भाग लेने को तैयार रहने का आदेश दिया गया।

बम्बई के इस समझौते से कई प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटियां असन्तुष्ट [illegible] हुईं। बाद को नागपुर में महासमिति की बैठक हुई, जिसमें २६ मई के समझौते वाले प्रस्ताव को जायज और उचित समझा गया और इस बात की [illegible] घोषणा की गई। पर इसी समिति में अचानक एक ऐसा प्रस्ताव पेश किया गया और पास हुआ जिसका नोटिस पहले से नहीं दिया गया था। इस प्रस्ताव के अनुसार [illegible] में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन करने का निश्चय किया गया जिसमें कौंसिल बहिष्कार के प्रश्न पर विचार किया जाय। मौलाना अबुलकलाम आजाद को

इसका सभापति चुना गया और कार्य-समिति को इस सम्बन्ध में जल्दी कार्रवाई करने का अधिकार सौंपा गया।

झण्डा-सत्याग्रह

कांग्रेस का विशेष अधिवेशन बम्बई में नहीं, दिल्ली में हुआ। पर पहले हमें उस समय की महत्त्वपूर्ण घटनाओं का जिक्र करना चाहिए। इसमें नागपुर-सत्याग्रह की ओर हमारा ध्यान सबसे पहले जाता है। नागपुर की पुलिस ने १ मई १९२३ को १४४ धारा के अनुसार सिविल लाइन्स में राष्ट्रीय झण्डे समेत जुलूस ले जाने का निषेध कर दिया। स्वयंसेवकों ने कहा—हमें अधिकार है, जहां चाहें झण्डा ले जायेंगे। बस, गिरफ्तारियां और सजायें आरम्भ हो गईं। बात-की-बात में इस घटना ने आन्दोलन का रूप धारण कर लिया और जिसे पहले कार्य-समिति ने, जैसा कि हम कह आये हैं, आशीर्वाद दिया और फिर महासमिति ने अपनी ८, ९ और १० जुलाई की नागपुर-वाली बैठक में। कमिटी ने आन्दोलन को सफल बनाने के लिए उसकी सहायता करने का निश्चय किया और साथ ही देश को आवाहन किया कि आगामी १८ तारीख को जो गांधी-दिवस होनेवाला है, उसे झण्डा-दिवस कहकर मनाया जाय। प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटियों को आज्ञा हुई कि उस दिन जुलूस निकालकर जनता-द्वारा झण्डे फहरायें। इस समय तक इस सत्याग्रह के सिलसिले में सेठ जमनालाल बजाज भी गिरफ्तार हो चुके थे। कमिटी ने सेठजी को उनकी सजा पर बधाई दी। सेठजी की मोटर ३,०००) जुर्माना न देने के कारण कुर्क कर ली गई। पर नागपुर में कोई उसके लिए बोली लगानेवाला न निकला और अन्त में उसे काठियावाड़ ले जाया गया। नागपुर के इस आन्दोलन में भाग लेने के लिए कार्य-समिति और महासमिति ने देश का जो आवाहन किया था उसके उत्तर में देश के कोने-कोने से सत्याग्रही आकर गिरफ्तार होने लगे और इन्हें कष्ट भी काफी मिले। नागपुर झण्डा-सत्याग्रह शीघ्र ही एक अखिल-भारतीय आन्दोलन हो गया और श्री वल्लभभाई पटेल से १० जुलाई से उसकी जिम्मेवारी लेने का अनुरोध किया गया। देश के कोने-कोने से स्वयंसेवक भेजे जा रहे थे। अगस्त के आरम्भ में कार्य-समिति की जो बैठक हुई उसमें श्री विट्ठल-भाई पटेल को उनके नागपुर-सत्याग्रह के संचालन में सहायता देने के लिए साधु-वाद दिया गया और आशा की गई कि वह इसी प्रकार स्थल पर मौजूद रहकर संचालक वल्लभभाई पटेल की आन्दोलन में सहायता करेंगे। सरकार का कहना था कि जुलूस-वालों को इजाजत मांगनी चाहिए। कांग्रेस कहती थी कि सड़क सबके लिए है,

हमें अधिकार है, जहा चाहेंगे बगैर किसी रुकावट के जायँगे। एक जोरदार आन्दोलन का निश्चय किया गया। वल्लभभाई पटेल ने जनता की सारी गलतफहमी दूर कर दी और १८ तारीख के लिए जुलूस का मार्ग निश्चित कर दिया। दफा १४४ अभी बदस्तूर लगी हुई थी, यही नही, उसे हाल ही दुबारा लगाया गया था। पर इतने पर भी १८ तारीख को जुलूस को जाने दिया गया। बाद को इस विषय को लेकर खूब हो-हल्ला मचा। अधगोरे अखबार कहते थे, सरकार की जीत हुई, क्योंकि कांग्रेस ने इजाजत की दरख्वास्त की, और कांग्रेस का कहना था कि ऐसा कभी नही किया गया, और ठीक भी यही था। दिल्ली-कांग्रेस ने नागपुर के झण्डा-सत्याग्रह के आयोजको और स्वयसेवको को अपने वीरता-पूर्ण बलिदान और कष्ट-सहिष्णुता द्वारा युद्ध को अन्त तक निबाहने और इस प्रकार अपने देश के गौरव की रक्षा करने के लिए हृदय से बधाई दी।

प्रवासी भारतीय

जुलाई, अगस्त और सितम्बर मे प्रवासी भारतीयो के सम्बन्ध में कुछ महत्व-पूर्ण हल-चल हुई, जिसकी ओर कांग्रेस का ध्यान खिचा रहा। केनिया में अवस्था दिन-पर-दिन बुरी होती जा रही थी। यहा के प्रवासी भारतीयो की अवस्था बहुत दिनो से असतोषजनक थी। यह उपनिवेश जो इतना आबाद हो गया उसका श्रेय भारतीय मजदूरो और भारतीय धन को बहुत कुछ था। कई मामलो में भारतीयो ने ही सबसे पहले वहा कदम आगे बढाया था और यूरोपियनो की अपेक्षा वे आबादी में अधिक थे। भारतवासियो को इस उपनिवेश के उस हाईलैण्ड्स (ऊँची भूमि) की खेती योग्य जमीनें देने की जो मुमानियत कर दी गई थी, जो युगाण्डा को जानेवाली सडक के दूसरी ओर तक चली गई है। और जहा कपास की खेतियों में भारतीयो का काफी धन लगा हुआ है, उससे भारतीयो में बडा असतोष फैला। औपनिवेशिक मत्री चर्चिल ने १९२३ के आरम्भ में केनिया के गवर्नर को बुला भेजा। गवर्नर के साथ अतिम समझौते की शर्तों पर चर्चा करने के लिए यूरोपियन और भारतीय प्रतिनिधि भी गये। भारतीय (बडी) कौंसिल ने भी एक प्रतिनिधि-मण्डल भेजा, जिसके सदस्य माननीय श्रीनिवास शास्त्री थे। एण्डरूज साहब भी साथ गये।

यह समस्या इसलिए और भी महत्वपूर्ण हो गई थी, क्योंकि टैंगेनिका, टागा-निका, न्यासालैण्ड, युगाण्डा और केनिया का एक बडा यूनियन बनाने की चर्चा हो रही थी। युगाण्डा के प्रवासी भारतवासियों की अवस्था केनिया-जैसी ही [illegible]

टारे पर निर्भर थी। "अलग रखने" का जहर इस उपनिवेश मे भी काम कर रहा था। कम्पाला की वस्ती में यूरोपियन आवादी से दूर एक जगह एशियावालो के लिए नियत कर दी गई थी। भारत-सरकार की इस सम्वन्ध में सारी लिखा-पढी वेकार गई। १९२१ में टागानिका में लॉर्ड मिलनर के आश्वासन पर भारतवासियो ने शत्रु की जमीनें-जायदाद खरीद ली थी। अव तीन आर्डिनेन्स "आर्थिक प्रयोजन के लिए" जारी किये गये, जिनके द्वारा भारतीयो के वरावरी के अधिकार छीनने की चेप्टा की गई। इसके सम्वन्ध में व्यापक हडताल की गई जो १९२२ के अप्रैल तक जारी रही। पहले दर्जे में भारतीयो के सफर करने की मुमानियत की गई, पर वाद को यह मुमानियत उठा दी गई।

इस विपय पर महासमिति ने जो प्रस्ताव पास किया वह इस प्रकार है :—

"केनिया के सम्वन्ध में ब्रिटिश-सरकार ने जो निश्चय किया है उससे यह प्रकट है कि ब्रिटिश-साम्राज्य में भारत के लिए वरावरी और सम्मान का स्थान मिलना सम्भव नही है। अतएव इस महासमिति की राय है कि इस घटना के विरुद्ध देशभर में जोरदार प्रदर्शन किया जाय।"

कमिटी ने वताया कि २६ अगस्त को देशभर में हडताल की जाय और जगह-जगह सभायें की जायें जिनमें जनता से ब्रिटिश-साम्राज्य-प्रदर्शिनी में, साम्राज्य परिपद् में और साम्राज्य-दिवस में भाग न लेने को कहा जाय।

विशेष अधिवेशन

यह अधिवेशन दिल्ली में सितम्वर के तीसरे हफ्ते में हुआ। सभापति मौलाना अवुलकलाम आजाद थे जो वडे मुसलमान मौलवी हैं। वंगाल और दिल्ली में इनकी एक-समान ख्याति और मान है। काग्रेस के दोनो दल इनकी वुद्धि और निष्पक्षता के कायल थे। कौंसिल-प्रवेश का समर्थन करनेवाले दल ने विना कठिनता के काग्रेस से अनुमति-सूचक प्रस्ताव पास करा लिया कि "जिन काग्रेस-वादियों को कौंसिल-प्रवेश के विरुद्ध धार्मिक या और किसी प्रकार की आपत्ति न हो उन्हें अगले निर्वाचनों में खडे होने और अपनी राय देने के अधिकार का उपयोग करने की आजादी है, इसलिए कौंसिल-प्रवेश के विरुद्ध सारा प्रचार वन्द किया जाता है।" साथ ही यह भी कहा गया कि रचनात्मक कार्यक्रम को पूरा करने में दूनी शक्ति से काम लेना चाहिए। पण्डित रामभजदत्त चौधरी के स्वर्गवास, जापान के भूकम्प, महाराजा नाभा के जवर्दस्ती गद्दी छोडने और विहार, कनाडा और वर्मा मे वाढ आने के सम्वन्ध में सहानुभूति और सम-

वेदना-सूचक प्रस्ताव पास किये गये। एक कमिटी नियुक्त की गई जिसके सुपुर्द सत्याग्रह-सम्बन्धी आन्दोलन सगठित करने और विभिन्न प्रान्तो की तत्सम्बन्धी हलचल को व्यवस्थित करने का काम हुआ। एक और कमिटी नियुक्त हुई जिसके जिम्मे कांग्रेस के विधान में परिवर्त्तन-परिवर्द्धन करने का काम हुआ। एक दूसरी कमिटी राष्ट्रीय-पैक्ट तैयार करने के लिए नियुक्त की गई। समाचार-पत्रो को चेतावनी दी गई कि साम्प्रदायिक मामलो में बडे सयम से काम लिया जाय और जिले-जिले में मेल-कमिटिया मुकर्रर करने की सलाह दी गई। शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रबन्धक कमिटी ने जाच के लिए जो कमिटी नियुक्त की थी उसे भी गिरफ्तार कर लिया गया था। अकाली लोग दमन का जिस साहस और अहिंसा के साथ सामना कर रहे थे, उसके लिए उन्हें एकबार फिर बधाई दी गई। खद्दर के उत्तेजन के द्वारा विदेशी कपडे का बहिष्कार करने पर जोर दिया गया और एक कमिटी देशी माल बनानेवालो को उत्तेजन और खासकर अंग्रेजी माल का बहिष्कार करने के लिए सबसे बढिया उपाय निश्चित करने को मुकर्रर की गई। झण्डा-सत्याग्रह-आन्दोलन को उसकी सफलता के लिए बधाई दी गई और जेल से छूटे नेताओ का, खास कर लालाजी और मौलाना मुहम्मदअली का, स्वागत किया गया।

केनिया के सम्बन्ध में क्षोभ और तुर्की के सम्बन्ध में हर्ष प्रकट किया गया। दो कमिटिया और भी नियुक्त की गईं जिनमें से एक के सुपुर्द हिन्दू-मुस्लिम-कलह को रोकने का काम, जो अब फिर शुरू हो गया था, और दूसरी के सुपुर्द शुद्धि और शुद्धि-विरुद्ध आन्दोलनो में बल का प्रयोग करने की सत्यता की जाच करने का काम हुआ। शान्ति और सुव्यवस्था कायम रखने के लिए रक्षक-दल बनाने और शारीरिक बल की वृद्धि करने के सम्बन्ध में जोर दिया गया।

इस प्रकार दिल्ली में कांग्रेस के क्रम को फिर से निश्चित करने का मार्ग सफल हो गया। गया में जो बगावत की गईं थी अब वह लगभग फलित हो गई। जो लोग आगामी निर्वाचनो में भाग लेना चाहते थे उनके लिए रास्ता साफ हो गया। अब कांग्रेस-वादियो में पहली बार उस कार्यक्रम के ऊपर मतभेद हुआ, जो खुद भी आगे जाकर बँट गया था। स्वराज्य-पार्टी को किस नीति और किन सिद्धान्तों का अनुसरण करना चाहिए, यह एक घोषणा-पत्र में रख दिया गया।

कोकनडा-कांग्रेस

कांग्रेस का आगामी अधिवेशन कोकनडा में होना निश्चित हुआ। कुछ अपरिवर्तनवादियो को अब भी थोडी-बहुत आशा थी कि दिल्ली ने जो कुछ कर डाला,

कोकनडा उसे चाहे बिल्कुल मिटा न सके, क्योंकि उस समय तक चुनाव खतम हो जायेंगे, फिर भी वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर उसी पुराने असहयोग का झण्डा खड़ा रक्खा जायगा। मौलाना मुहम्मदअली को सभापति चुना गया। कोकनडा-कांग्रेस में खूब गमागरम रही। अपरिवर्तनवादी-दल के कुछ प्रसिद्ध नेता शरीक नहीं हुए। राजेंद्र बाबू अस्वस्थता के कारण कोकनडा-कांग्रेस में न आ सके और चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य ने दिल्ली के प्रस्ताव पर अपना वजन डाला। श्री वल्लभभाई उपस्थित थे, परन्तु दिल्ली के प्रस्ताव के समझौते के सम्बन्ध में दिल्ली-अधिवेशन के अवसर पर उनकी स्वीकृति बंगाल के वृद्ध-जर्जर बाबू श्यामसुन्दर चक्रवर्ती ने हासिल कर ली थी। उन्हें देश निर्वासन और कारावास, निर्धनता और दरिद्रता में अनेक वर्ष बिताने पड़े थे। उन्होंने कोकनडा-कांग्रेस के प्रबल समुदाय को अपने कौंसिल-प्रवेश-विरोधी भाषण से भर्रा दिया। परन्तु पासा पड़ चुका था। कौंसिल-बहिष्कार के भाग्य का निपटारा हो चुका था। वहां का मुख्य प्रस्ताव इस प्रकार है —

"यह कांग्रेस कलकत्ता, नागपुर, अहमदाबाद, गया और दिल्ली में पास किये प्रस्ताव को फिर दोहराती है।

"दिल्ली में कौंसिल-प्रवेश के सम्बन्ध में जो असहयोग का प्रस्ताव पास किया था उसे लेकर संदेह उठ खड़ा हुआ है कि कांग्रेस की नीति में कहीं कोई परिवर्तन तो नहीं हुआ। यह कांग्रेस स्पष्ट-रूप से प्रकट करती है कि बहिष्कार के सिद्धान्त और उसकी नीति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है।

"और यह कांग्रेस इस बात की भी घोषणा करती है कि उक्त नीति और सिद्धान्त रचनात्मक-कार्य के आधार-रूप है और देश से प्रार्थना करती है कि बारडोली में निश्चित रचनात्मक कार्यक्रम को उसी रूप में पूरा करें और सत्याग्रह के लिए तैयारी करे। यह कांग्रेस सारी प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटियों को आदेश करती है कि इस सम्बन्ध में आवश्यक कार्रवाई शीघ्र करें, जिससे लक्ष्य-सिद्धि में विलम्ब न हो।"

कोकनडा-कांग्रेस को एस० कस्तूरी रंगा आयंगर और अश्विनीकुमार दत्त जैसे नेताओं की मृत्यु पर शोक-प्रकाश करने का अप्रिय कर्त्तव्य पालन करना पड़ा। श्री एस० कस्तूरी रंगा आयंगर का देश-प्रेम दादाभाई की भांति उनकी आयु के साथ-साथ दिन-दिन बढ़ता जाता था। श्री अश्विनीकुमार दत्त को सारा बंगाल प्रेम करता था और उनकी स्मृति का मान सारा देश करता है। विनायक दामोदर सावरकर को लगातार जेल में बन्द रखने की निन्दा की गई। जो राष्ट्रीय पैक्ट तैयार किया गया था उसे देशबन्धु दास के बंगाल-पैक्ट के साथ वितरित करने का निश्चय किया

गया। कांग्रेस ने अखिल-भारतीय स्वयंसेवक-दल की रचना करने के आन्दोलन का स्वागत किया। इस संस्था में बाद को रक्षक-दल भी मिला दिया गया।

दिल्ली में जो सविनय-भंग-कमिटी नियुक्त की गई थी वह और सत्याग्रह-कमिटी कार्य-समिति में मिला दी गई। अखिल-भारतीय चर्खा-संघ बनाया गया, जिसे खद्दर का काम चलाने का अधिकार दिया गया। सरकार ने शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रबंधक-कमिटी के अकाली-दल पर आक्रमण करके भारतीयों के अहिंसात्मक उद्देश से एकत्र होने के अधिकार को जो चुनौती दी थी उसे कांग्रेस ने स्वीकार कर लिया और उनके वर्तमान संघर्ष में उनका साथ देने और उन्हें आदमी और रुपये और हर प्रकार की सहायता देने का निश्चय किया।

गुरुद्वारा-आन्दोलन

यहां वर्तमान प्रसंग को छोड़कर, सिक्खों में सुधार-संबंधी जो आन्दोलन उठ खड़ा हुआ था उसका थोड़ा-सा जिक्र करना ठीक होगा। काली पगड़ी बांधे "सत् श्रीकाल" का घोष करनेवाले सिक्ख और उनके लंगरखाने अब कांग्रेस के जाने-बूझे अंग हो गये हैं। जब कोई विदेशी सरकार किसी देश का शासन अपने अधिकार में लेती है तो स्वभावत ही उस देश की सारी संस्थाओं पर—चाहे वे आर्थिक हों या शिक्षण-सम्बन्धी, और चाहे धार्मिक ही क्यों न हों—केंकड़े की भांति अपने पंजे फैला देती है। अंग्रेजों ने पंजाब को १८४६ में ब्रिटिश-भारत में मिलाया। इस रद्दो-बदल के अवसर पर सिक्ख-धर्म के केन्द्र और गढ़-स्वरूप अमृतसर के दरबारसाहब के बंदोबस्त में गड़बड़ मची हुई थी। इस अवसर पर अमृत छके हुए सिक्खों की एक कमिटी को ट्रस्टी बनाया गया और सरकार-द्वारा नियत व्यक्ति सरबराह या अभि-भावक बना। एक मैनेजर नियुक्त किया गया जिसके हाथों में हर साल लाखों रुपये निकलते थे। जैसा अकसर होता है, १८८१ में यह कमिटी भंग हो गई और मैनेजर के हाथ में ही सारे अधिकार आ गये। नियंत्रण के अभाव में गैर-जिम्मेवारी और आचार-हीनता का जन्म हुआ। एक ओर मैनेजर और ग्रन्थियों और दूसरी ओर सिक्ख-जनता में आये दिन मुठभेड़ होने लगी। सरकार परेशान थी कि क्या करें। अन्त में १९२० के अन्त में एक कमिटी बनाई गई जो बाद को शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रबन्धक-कमिटी हुई। इस कमिटी के पहले सभापति सरदार सुन्दरसिंह मजीठिया हुए, जो कुछ दिनों बाद ही पंजाब-सरकार की कार्य-कारिणी के सदस्य नियुक्त किये गये। सुधारक सिक्ख अकाली कहलाते थे। इन्होंने अपेक्षा-कृत अधिक ऐतिहासिक गुरुद्वारों को अपने

हाथ मे लिया। तरन-तारन मे फसाद हो गया और कई सिक्ख घायल हुए और दो मरे। हम कह ही आये हैं कि १९२१ के आरम्भ में ननकानासाहब में किस प्रकार निर्दोष यात्रियो की हत्या की गई थी। पुलिस की निगाह मे यह आन्दोलन गुरुद्वारो के साथ प्राप्त होनेवाली शक्ति और सामर्थ्य को अपने कब्जे में करने के लिए था। इस दृष्टिकोण से महन्तो को बढावा मिला। इन महन्तो में वे लोग भी थे जिन्होने अकालियो से समझौता कर लिया था। अब वे इस समझौते से हट गये। सरकार "सुधारक सिक्खो के अन्धा-धुन्ध दमन पर उतारू थी।" १९२१ के मई मास में सैकडो सिक्ख जेलो में ठूस दिये गये और प्रतिष्ठा-हीन महन्तो को फिर अधिकार दिया गया। फलत जहातक उस सुधार का सम्बन्ध था, शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रबन्धक-कमिटी ने १९२१ की मई मे सरकार से असहयोग का प्रस्ताव पास कर दिया।

सरकार जो गुरुद्वारा-बिल पास कराना चाहती थी, वह सिक्खो मे नरम-दलवालो और सहयोगियो तक को मजूर न हुआ। फलत उसका विचार छोड दिया गया। सिक्खो पर एक निश्चित लम्बाई से अधिक बडी कृपाणे पहनने के लिए मुकदमे चलाये गये। पजाब-प्रान्तीय-काग्रेस-कमिटी ने १० जुलाई १९२१ को इसका विरोध किया, और महीने के अन्त मे सिक्खो को जेल से छोड दिया गया। झब्बा के भाई करतारसिंह और भूचड के भाई राजासिंह को १८ और ७ वर्ष का बर्बरता-पूर्ण कारावास-दण्ड दिया गया। २८ अगस्त १९२१ को कौंसिलो के सिक्ख सदस्यो को इस्तीफा देने को कहा गया। सरदारबहादुर सरदार महताबसिंह बैरिस्टर ने गुरुद्वारा-आन्दोलन के सम्बन्ध मे सरकार की नीति के विरोध में सरकारी वकालत और पजाब-कौंसिल के उपाध्यक्ष के पद से इस्तीफा दे दिया। १९२१ के सितम्बर के आरम्भ में उपर्युक्त लम्बी सजा पाये हुए दोनो सिक्खो तथा अन्य कई को छोड दिया गया। परन्तु पजाब प्रान्तीय काग्रेस-कमिटी के प्रधान-मन्त्री सरदार शार्दूलसिंह कवीश्वर को, जिन्हें १९२१ के जून में १२४ ए धारा के अनुसार पाच वर्ष का सपरिश्रम कारावास हुआ था, और गुरुद्वारे के अन्य कार्यकर्त्ताओ को न छोडा गया। अचानक १९२१ की ७ नवम्बर को सरकार ने अमृतसर के दरबारसाहब की चाबिया छीन ली, जिसके फल-स्वरूप गुरु नानक के जन्म-दिवस पर सजावट न हो सकी। सरकार की ओर से एक मैनेजर नियुक्त किया गया, पर उसे शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रबन्धक-कमिटी ने चार्ज न लेने दिया और उसे इस्तीफा देना पडा। बस, इसके बाद से चाबिया ही सारे झगडे की जड बन गईं और जन-सभाओ-द्वारा उसका विरोध किया जाने लगा। सरकार ने राजद्रोही सभाबन्दी-कानून जारी किया

और सरदार खड्गसिंह और सरदार मेहताबसिंह को कड़ी कैद की सजा दी गई। गुरु गोविन्दसिंह का जन्म-दिवस ५ जनवरी १९२२ को था। सरकार ने चाबियां उस समय तक के लिए सौंपने की तैयारी दिखाई जबतक कि उसके द्वारा दीवानी अदालत में दायर किये गये मुकदमे का फैसला न हो। शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रबन्धक-कमिटी ने चाबियां लेने से इन्कार कर दिया। जब २०० सिक्ख-कार्यकर्त्ता गिरफ्तार हो चुके तो सरकार ने हाथ रोक लिया और सारे कैदियों को बिना किसी शर्त के छोड़ दिया। १९२२ की ११ जनवरी को चाबियां भी सौंप दी गईं। पर पण्डित दीनानाथ को नहीं छोड़ा। फलतः राजद्रोही सभाबन्दी-कानून के विरुद्ध फिर सत्याग्रह जारी हुआ और १९२२ की ८ फरवरी को शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रबन्धक-कमिटी की प्रबन्ध-समिति के सारे सदस्य एक सभा में बोले। अन्त में पण्डित दीनानाथ को रिहा कर दिया गया और कोमागाटामारू (१९१४) वाले बाबा गुरुदत्तसिंह को भी छोड़ दिया गया।

अकाली काली पगड़ी पहनते थे। १९२२ के मार्च मास के दूसरे सप्ताह से, पहले से ही निश्चित किये गये कार्यक्रम के अनुसार, पंजाब के १३ चुने हुए जिलों में और पटियाला और कपूरथला की रियासतों में अकाली सिक्खों को एक-साथ गिरफ्तार करना आरम्भ कर दिया गया। १५ दिन के भीतर-भीतर १७०० काली पगड़ीवाले सिक्ख पकड़ लिये गये। शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रबन्धक-कमिटी और पंजाब-प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी के सभापति सरदार खड्गसिंह को ४ वर्ष का कठिन कारावास-दण्ड दिया गया। मार्च १९२२ के आरम्भ में सरकार ने कहा—"कृपाण तलवारें हैं जिनके बनाने के लिये लाइसेन्स की जरूरत है।" लोगों को निर्देश किया गया कि सरकार-द्वारा बताये गये ढंग से कृपाण पहनी जायें। फौजी सिक्खों का कृपाण धारण करना ही जुर्म माना गया। कुछ को गिरफ्तार करके ४ वर्ष से लेकर १८ वर्ष तक की कड़ी सजा दी गई। कोमागाटामारूवाले बाबा गुरुदत्तसिंह को फिर गिरफ्तार कर लिया गया और १९२२ में उन्हें ५ वर्ष का निर्वासन-दण्ड मिला। रौलट-कानून के विरुद्ध आन्दोलन में प्रसिद्धि पाये हुए मास्टर मोतासिंह को ८ साल की सजा मिली।

चारों ओर क्रिमिनल-लॉ-अमेण्डमेण्ट-एक्ट का दौर-दौरा था और जमानत-सम्बन्धी धारायें उसकी सहायक थीं। एक नेता ने लिखा—"सब कुछ पुलिस के हाथ में था, और पुलिस ने भी उससे खूब आनन्द उठाया।" पण्डित मदनमोहन मालवीय पंजाब गये और राजा नरेन्द्रनाथ की अध्यक्षता में कमिटी नियुक्त कराई, जिसके जिम्मे सरकारी ज्यादतियों, गैर-कानूनी कार्रवाइयों और निर्दयता के सम्बन्ध में जांच करना था। १९२२ की १४ मई को पंजाब-सरकार ने एक विज्ञप्ति निकालकर धार्मिक-

गुरुद्वारों को चेतावनी दी कि वे उन लोगों के "जिनका सुधार से कोई वास्तविक सम्बन्ध नहीं है, बदअमनी फैलानेवाले और गैर-कानूनी कामों में" अलग रहें। १५ जून १९२२ तक १,९०० से २,००० तक सिक्ख गिरफ्तार किये जा चुके थे।

गुरु-का-बाग-काण्ड

इसी अवसर पर गुरु-का-बाग-काण्ड हुआ जिसका जिक्र १९२२ की चर्चा में हो चुका है। इतना ही कहना काफी है कि सिक्खों ने गांधीजी का यह कहना चरितार्थ कर दिखाया कि गोली खाने के बजाय लाठी की मार सहना कठिन है, और जो उस मार को सहते हैं वे आदर के पात्र हैं। उस काण्ड के सिलसिले में जो ज्यादतियां की गईं उनकी जांच पंजाब-सरकार के एक यूरोपियन सदस्य ने की। एण्डरूज साहब जैसे व्यक्तियों ने उन ज्यादतियों के गम्भीर स्वरूप की पुष्टि की। उन्होंने कहा, "अबतक मैंने जितने हृदयविदारक और लज्जाजनक दृश्य देखे हैं, यह उनमें सबसे बढकर है। अहिंसा की पूरी विजय हुई है। ये लोग सचमुच शहीद हो रहे हैं।" जैसा कि पण्डित मोतीलाल नेहरू ने कहा है, 'एक घेरा डाल दिया गया था और कई दिन तक कांटेदार लोहे के तारों को भेदकर कोई अन्न का दाना भीतर न ले जा सका। जो ले गये, उन्हें बुरी तरह पीटा गया। जब मेरी मोटरकार की गुरुद्वारे के द्वार पर तलाशी ले ली गई, तब कहीं उस घेरे के एक छोटे-से प्रवेश-द्वार में जाने की इजाजत मिली।"

एक स्त्री घायल कर दी गई, क्योंकि उसने कुछ पीडितो की सुश्रूषा की थी। एक के शरीर पर घोडे की टाप के निशान थे। दो आदमी मारे गये थे और सरकार ने कथित अपराधियो पर मुकदमा चलाया तो वे बरी कर दिये गये। कुछ दर्शकों को परेशान किया गया। अखबारो मे पुलिस के विरुद्ध चोरी, डाकाजनी और लूट-मार के अभियोग लगाये गये। पुलिस-सुपरिण्टेण्डेण्ट मि॰ मैकफरसन ने लाठी के अभ्यास पर एक पुस्तक लिखी। उन्होंने अभियोग की सत्यता की इस प्रकार तसदीक की —

"बहुत सम्भव है, सिर आदि फूटने की किस्म की चोटें आ गई हो। जत्थो ने पुलिस का मुकाबला कभी नहीं किया और वे बराबर अहिंसात्मक आचरण करते रहे। सम्भव है, कुछ घायल बेहोश भी हो गये हो। चोटो के ९५३ केस नजर से गुजरे जिनमे से २६९ ऊपर के भाग में थे, ३०० शरीर के आगे के भाग मे, ७९ सिर पर, ६० फोतो पर, १९ गुदा-द्वार पर, ७ दांतों पर, १५८ रगड के घाव, ८ बन्द चोटो के, २ छिल जाने के, ४० पेशाब-सम्बन्धी शिकायतें, ९ सिर फटने के, और २ हड्डियो के जोड टूटने के थे।"

इस सिलसिले में २१० गिरफ्तारियां हुईं। एक ही आनरेरी मजिस्ट्रेट ने ४

इजलासो मे १,२७,०००) के जुर्माने किये। स्वामी श्रद्धानन्द को १८ महीने की सजा मिली। २२ अक्तूबर को एक जत्था अमृतसर से गुरु-का-बाग को रवाना हुआ। इस जत्थे में १०१ फौजी पेन्शनयाफ्ता लोग थे, जिनमें से ५५ नान-कमिशन्ड अफ्सर थे और बाकी सिपाही थे। ये लोग मारू बाजा बजाते रवाना हुए। इनके साथ ५०,००० आदमी दर्शक-रूप में थे। पजासाहब के स्टेशन से होकर एक रेलगाड़ी गुजरनेवाली थी, जिसमे फौजी कैदी थे। स्टेशन पर कुछ लोग उनके लिए भोजन की सामग्री लिये बैठे थे। जब उन्हें मालूम हुआ कि गाड़ी स्टेशन पर न रुकेगी तो वे पटरियो पर लेट गये। रेलगाडी तब भी न रोकी गई। फलत २ आदमी मरे और ११ घायल हुए। कुछ दिनो बाद पीटना बन्द कर दिया गया और गिरफ्तारिया आरम्भ हुईं। जत्थो के मुखियों को कडी सजायें मिली। पर अभी इससे भी बुरी घटना आने को थी। जनता के दबाव और ८ मार्च १९२३ के कौंसिल के प्रस्ताव के उत्तर में अकालियो को थोडा-थोडा करके छोडा जाने लगा। १७० अकालियों को रावलपिण्डी में छोडा गया, पर उन्हें बुरी तरह मारा-पीटा गया। कसूर यह बताया गया कि वे रेलवे-स्टेशन से बताये रास्ते से होकर नहीं गये थे। फौजी सिपाही, पुलिस और घुडसवार—सबने एकसाथ मिलकर उन्हे तितर-बितर किया। १२८ लोगों को संगीन चोटें आईं। ७ मई से रावलपिण्डी ने पूर्ण हडताल मनानी आरम्भ की। जब पंजाब-कौंसिल में इस मामले की जाच करने के लिए एक कमिटी नियुक्त करने का सवाल उठाया गया तो सरकार के चीफ सेक्रेटरी ने बडी शान्ति से सलाह दी कि पुरानी बातों को भुला देना ही ठीक है। हटर-कमिटी की भाति पुराने जख्मों को दुबारा खोलने का नतीजा ठीक न होगा। गुरु-का-बाग-काण्ड की दुखदायी घटनाओं की स्मृति को जितनी जल्दी भुला दिया जाय, अच्छा है। परन्तु अकालियों के दुर्दिन अभी पूरे न हुए थे। यद्यपि अब हमें १९२४ की घटनाओं का कुछ जिक्र करना पडेगा, फिर भी अकाली-आन्दोलन का वर्णन यहीं एक सिलसिले में कर देना ठीक है। १९२[illegible] के मध्य में महाराजा नाभा ने गद्दी 'त्याग दी', पर शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रबंधक-कमिटी ने इसे महाराजा का गद्दी से उतारा जाना समझा और उन्हें दुबारा गद्दी पर बिठाने के लिए नाभा-रियासत के जैतो नामक स्थान पर और दूसरी जगहों पर सभायें आदि करके एक आन्दोलन खडा कर दिया। जो भाषण दिये गये उन्हें [illegible] गया और वक्ताओं को अखण्ड-पाठ पढने-पढाने [illegible] गिरफ्तार कर लिया गया।

इस प्रकार नाभा-रियासत के जैतो नामक स्थान पर अखण्ड-पाठ के [illegible] शुरू हो गया और कुछ समय तक २५–२५ सिक्खों के जत्थे रोज [illegible]

वाद को फरवरी में ५०० आदमियो का शहीदी जत्था भेजा गया। डा० किचलू और आचार्य गिडवानी इस जत्थे के साथ दर्शक की हैसियत से गये। जैतो के निकट इस जत्थे पर गोली चलाई गई और कुछ आदमी मरे। किचलू और गिडवानी दोनो को नाभा के अधिकारियों ने गिरफ्तार कर लिया, क्योकि वे घायलो की सुश्रूषा कर रहे थे। कुछ दिनो वाद किचलू को तो छोड दिया गया, पर गिडवानी उस वर्ष के अन्त तक नाभा जेल ही में रहे। शहीदी जत्थे वरावर जाते रहे और गिरफ्तारिया भी होती रही। इस प्रकार अकाली हजारो की सख्या में जेल में पहुँच गये। उनके साथ जो व्यवहार किया गया उसकी खराव रिपोर्टें आईं। अकाली-सहायक ब्यूरो में आचार्य गिडवानी का स्थान श्री पणिक्कर ने लिया। काग्रेस की कार्य-समिति ने जेल में अकालियो के साथ किये गये दुर्व्यवहार की जाच के लिए जाच-कमिटी भेजी और साथ ही अकाली-परिवारो को काफी आर्थिक सहायता भी दी। वाद को जब गुरुद्वारो के प्रवन्ध के सम्वन्ध में कानून वना दिया गया तो यह प्रश्न भी तय हो गया।

: ५ :

कांग्रेस चौराहे पर—१९२४

गांधीजी की बीमारी

जब १९२४ का आरम्भ हुआ तो देश के वातावरण में भारी उदासी फैली हुई थी। गाधीजी की अचानक और भयानक बीमारी ने और सारी बातो को ढक दिया था।

१२ जनवरी १९२४ को महात्मा गाधी के 'अपेंडिसाइटिस' रोग से भयकर रूप में बीमार पडने और आधी रात में कर्नल मैडॉकद्वारा भारी आपरेशन किये जाने के समाचार से देशभर में चिन्ता उत्पन्न हो गई। पर गाधीजी के स्वस्थ होने लगने और अन्त को ५ फरवरी को उन्हें समय से पहले ही बिना किसी शर्त के छोड दिये जाने से वह चिन्ता दूर हो गई।

पर जेल से छूट कर भी उन्हें न शान्ति मिली न विश्रान्ति। कोकनडा-काग्रेस में जो फूट पैदा हो गई थी वह दिन-पर-दिन बढती जा रही थी। एक ओर अपरिवर्त्तनवादी आशा कर रहे थे कि गाधीजी अब छूट ही गये है, इससे काग्रेस का इजन फिर सत्याग्रह के पुराने मार्ग पर लौट पडेगा। दूसरी ओर परिवर्तन-वादियो को चिन्ता थी कि दिल्ली और कोकनडा में प्राप्त हुई विजयो को पक्का करके अपने ऊपर जो कुछ धब्बा बाकी रह गया है उसे धो लिया जाय। देश के परस्पर-विरुद्ध दृष्टिकोणो और समस्याओ में सामजस्य स्थापित करने की जी-तोड़ चेष्टा की गई। गाधीजी ने बम्बई के निकट जुहू नामक समुद्रतटवर्ती स्थान पर कुछ समय व्यतीत किया। यहा पर गाधीजी, दास बाबू और नेहरूजी में कुछ दिनो तक बात-चीत चलती रही, जिससे लोगो को आशा होती रही कि समझौता हो जायगा। १९२४ के मई मास में गाधीजी ने वक्तव्य प्रकाशित किया, साथ ही श्री दास और नेहरू ने भी एक सम्मिलित वक्तव्य दिया।

परन्तु इन ऐतिहासिक वक्तव्यो को देने से पहले यहा यह बताना ठीक होगा कि कौंसिलो में स्वराज्य-पार्टी ने क्या किया और कौंसिलों के भीतर विभिन्न शक्तियो को किस प्रकार अपने अधिकार में कर लिया।

स्वराज्य पार्टी ने क्या किया

स्वराज्य-पार्टी बनने के बाद देश की विभिन्न कौंसिलो के निर्वाचनो में भाग लिया गया। बडी कौंसिल में ४५ स्वराजी पहुँचे जिनमे खूब अनुशासन था और जो अपना कार्यक्रम पूरा करने का व्रत लिये हुए थे। वे राष्ट्रीय-दल का सहयोग और सहानुभूति प्राप्त करके कौंसिल में आसानी से बहुमत प्राप्त कर सके। पहली विजय तब हुई जब श्री टी० रगाचारी ने शासन-व्यवस्था में तत्काल परिवर्त्तन करने के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव पेश किया और पण्डित मोतीलाल नेहरू ने यह सशोधन पेश किया कि भारत में पूर्ण उत्तरदायी सरकार की सिफारिश करने के लिए एक गोलमेज-परिषद् बुलाई जाय।

सरकार को यो तो कई बार हार खानी पडी, परन्तु इन प्रस्तावो पर उसकी हार विशेष-रूप से उल्लेख-योग्य है—कुछ राजनैतिक कैदियो को छोडने का प्रस्ताव, १८१८ के रेग्युलेशन ३ को रद करने का प्रस्ताव, दक्षिण-अफ्रीका से भारत मे आनेवाले कोयले पर कर लगाने का प्रस्ताव, और सिक्ख-आन्दोलन की अवस्था के सम्बन्ध में जाच करने के लिए एक कमिटी बैठाने का प्रस्ताव। सरकार की पराजय स्वराज्य-पार्टी की विजय थी। जिसका बल स्वतत्र, राष्ट्रीय तथा कभी-कभी नरम-दल तक का सहयोग प्राप्त होने के कारण भी बढ गया था। हम यह इसलिए कहते है कि स्वराज्य-पार्टी ने अपने कार्यक्रम में रख छोडा था कि "हमारी माग सारे राजनैतिक कैदियो की रिहाई, दमनकारी-कानूनो को रद करने और एक ऐसा राष्ट्रीय कन्वेंशन बुलाने की अन्तिम चेतावनी का रूप धारण करे जो भारत के लिए भावी शासन-व्यवस्था तैयार करे।"

स्वराज्य-पार्टी ने दूसरा काम यह किया कि 'सरकारी मागो' की चार मदो को नामजूर कर दिया। ऐसा पहले कभी न हुआ था। यह तो मानो रसद बन्द करना हुआ पर पण्डित मोतीलाल ने कहा कि "मेरे इस प्रस्ताव का असहयोग की विध्वस-कारिणी नीति से कोई सम्बन्ध नही है। यह प्रस्ताव तो देशवासियो की शिकायतो की ओर ध्यान आकर्षित करने का बिलकुल वैध और वाजिब उपाय है।"

१९२४ की गर्मियो में जो कुछ हो रहा था उसका चित्र पाठको के आगे पेश करने के लिए हम अब गाधीजी, दास बाबू और नेहरूजी के वे वक्तव्य देते है जो शुरू के वार्तालाप के बाद प्रकाशित किये गये।

गांधीजी का वक्तव्य

"अपने स्वराजी मित्रो के साथ कांग्रेसवादियो के द्वारा कौंसिल-प्रवेश के जटिल प्रश्न पर बातचीत करने के बाद मुझे दुःख के साथ कहना पडता है कि मैं उनसे सहमत

न हो सका। × × × देश के कुछ परम-आदरणीय और बहुमूल्य नेताओ के विरोध का विचार करना भी मेरे लिए सुखदायी नही हो सकता। × × × परन्तु चेष्टा करनें और इच्छा रहने पर भी मैं उनके तर्क को न समझ सका। मेरी अब भी यही सम्मति है कि असहयोग के सम्बन्ध में जैसी मेरी धारणा है उसके अनुसार कौंसिल-प्रवेश असगत है। हमारा मतभेद 'असहयोग' शब्द की भिन्न-भिन्न परिभाषा तक ही सीमित हो सो बात भी नही है, यह मतभेद तो चित्तवृत्ति से सबध रखता है, जिसके कारण महत्त्वपूर्ण समस्याओ के सुलझाने में मतभेद अनिवार्य हो जाता है। उस मनोवृत्ति के पैमाने से ही बहिष्कार-त्रयी की सफलता या विफलता को जाचना होगा, फल-सिद्धि के पैमाने से नही। मैं इसी दृष्टिकोण से कह रहा हूँ कि देश के लिए कौंसिलो से बाहर रहना उनके भीतर रहने की अपेक्षा कही अधिक लाभदायक होगा। परन्तु मैं अपने स्वराजी मित्रो को अपने दृष्टिकोण पर न ला सका। तथापि मैं यह समझता हूँ कि जबतक उनका विचार दूसरा रहेगा, उनका स्थान निस्सदेह कौंसिल में है। हम सबके लिए यही अच्छा भी है।

"दिल्ली और कोकनडा-काग्रेस ने उन काग्रेसवादियो को इच्छा होने पर कौंसिलो और असेम्बली में जाने की इजाजत दे दी है जिनकी आत्मा उन्हें न रोकती हो। इसलिए मेरी राय में स्वराजी कौंसिलो में जाने का और अपरिवर्त्तन-वादियो से तटस्थ रहने की आशा रखने का अधिकार रखते है। उनको वहा जाकर अडगा-नीति धारण करने का भी हक है, क्योकि उनकी नीति ही यह थी और काग्रेस ने उनके कौंसिल-प्रवेश के सम्बन्ध में किसी प्रकार की शर्त नही लगाई थी। यदि स्वराजियो को सफलता हुई और देश को लाभ पहुँचा, तो मेरे जैसे सशयशील व्यक्तियो को अपनी भूल अवश्य मालूम हो जायगी। और यदि अनुभव के द्वारा स्वराजियो का मोह दूर हो गया, तो मैं जानता हूँ कि वे देशभक्त हैं और अवश्य अपना कदम पीछे हटा लेंगे। इसलिए मैं उनके मार्ग में बाधा डालने के काम में शरीक न होऊँगा और न स्वराजियो के कौंसिल-प्रवेश के विरुद्ध प्रचार करने में ही भाग लूगा। हा, मैं ऐसे कार्य में स्वय कोई ऐसी सहायता नही दे सकता जिसमें मेरा विश्वास नही है।

"कौंसिलो में क्या ढग अपनाना चाहिए, इसके सम्बन्ध में मेरा कहना यही है कि मै कौंसिलो में तभी घुसूगा जब मुझे मालूम हो जाय कि मैं उसके उपयोग से लाभ उठा सकूगा। अतएव यदि मैं कौंसिलो में जाऊँगा तो मैं सोलह आने अडगा-नीति का अवलम्बन न करके काग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम को सफल बनाने की चेष्टा करूँगा।

मैं उस हालत में प्रस्ताव पेश करके केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकारों से चाहूँगा कि —

(१) वे सारे कपडे हाथ के कते और हाथ के बुने खद्दर के खरीदें।

(२) विदेशी कपडो पर बहुत भारी चुगी लगा दें।

(३) शराब आदि की आय को ही रद कर दें, और सेना-विभाग के व्यय में, अपेक्षाकृत ही सही, कमी कर दें।

"यदि सरकार कौंसिलो में पास होने के बाद भी इन प्रस्तावो पर अमल करने से इन्कार कर दे, तो मैं सरकार से कौंसिलो को भग करने के लिए कहूँगा और उन्ही खास-खास बातो पर फिर निर्वाचको के वोट हासिल करूँगा। यदि सरकार कौंसिल भग करने से इन्कार कर दे तो मैं अपनी जगह से इस्तीफा दे दूगा और देश को सत्याग्रह के लिए तैयार करूँगा। जब यह अवस्था आ पहुँचे तो स्वराजी मुझे फिर अपने साथ और अपने नेतृत्व में पायेंगे। सत्याग्रह-सम्बन्धी योग्यता के सम्बन्ध में मेरी कसौटी वही पुरानी है।"

स्वराजी-वक्तव्य

देशबन्धु चित्तरजन दास और पण्डित मोतीलाल नेहरू ने अपने वक्तव्य में कहा —

"हमें अफसोस है कि हम गाधीजी को कौंसिल-प्रवेश के सम्बन्ध में स्वराजियो की स्थिति के औचित्य का कायल न कर सके। हमारी समझ में यह नही आता कि कौंसिल-प्रवेश नागपुर के कांग्रेस के असहयोग-सम्बन्धी प्रस्ताव के अनुकूल क्यो नही है। परन्तु यदि असहयोग मनोवृत्ति से ही सम्बन्ध रखता हो और हमारे राष्ट्रीय जीवन की वास्तविक अवस्था से उसका कोई विशेप सम्बन्ध न हो, जबकि हमारे राष्ट्रीय-जीवन की गति-विधि नौकरशाही के हमेशा बदलते रहनेवाले रग-ढग पर निर्भर रहती है, तो हम देश के वास्तविक हित के लिए असहयोग तक का बलिदान करना अपना कर्त्तव्य समझते है। हमारी राय में इस सिद्धान्त में उन सभी कामो में, जिनके द्वारा राष्ट्रीय-जीवन की समुचित वृद्धि हो और स्वराज्य के मार्ग में बाधा डालनेवाली नौकरशाही का सामना किया जा सके, आत्मनिर्भरता की आवश्यकता है। • • •

"हम यह भी स्पष्ट कर देना चाहते है कि हमने अपने कार्यक्रम में 'अडगा' शब्द का जो व्यवहार किया है सो ब्रिटेन की पार्लमेण्ट के इतिहास के वैधानिक अर्थ में नही। मातहत और सीमित अधिकारोवाली कौंसिलो में उस अर्थ में अडगा डालना

असम्भव है, क्योंकि सुधार-कानून के अतर्गत असेम्बली और कौंसिल के अधिकार गिने-चुने है। पर हम यह कह सकते है कि हमारा विचार अडगा डालने की अपेक्षा स्वराज्य के मार्ग में नौकरशाही-द्वारा डाली गई रुकावटो का मुकाबला करने का अधिक है। 'अडगा' शब्द का व्यवहार करते समय हमारा मतलब इसी मुकाबले से है। हमने स्वराज्य-पार्टी के विधि-विधान की भूमिका में असहयोग की परिभाषा करते हुए इस बात को अच्छी तरह स्पष्ट कर दिया है।

"अब हम इसी सिद्धान्त और नीति को सामने रखकर अपना भावी कार्य-क्रम, जिसे हम कौंसिलो में और कौंसिलो से बाहर पूरा करेंगे, बयान करते हैं।

"कौंसिलो के भीतर हमें निम्नलिखित काम जारी रखना चाहिए —

१—बजट रद करना—जबतक हमारे अधिकारो की मान्यता के रूप में वर्तमान सरकार के विधान में परिवर्त्तन न कर दिया जाय, या जबतक पार्लमेण्ट और इस देश की जनता के बीच मे समझौता न हो जाय, तबतक बजट रद करते रहना।

२—कानून सम्बन्धी प्रस्तावो को रद करना—कानून बनाने के सम्बन्ध में सारे प्रस्तावो को, जिनके द्वारा नौकरशाही अपनी जड मजबूत करना चाहती है, रद करना।

३—रचनात्मक कार्यक्रम—जो प्रस्ताव, योजनायें और बिल हमारे राष्ट्रीय-जीवन की वृद्धि करने के लिए और फलत नौकरशाही की जड उखाड़ने के लिए आवश्यक हो उन सबको पेश करना।

४—आर्थिक नीति—एक ऐसी निश्चित आर्थिक नीति का अवलम्बन करना जो पूर्वोक्त सिद्धान्तो के ऊपर तय की गई हो और जिसका उद्देश भारत से बाहर जाते हुए धन-प्रवाह को रोकना हो। इसके लिए धन-शोषण करनेवाले सारे कामो में रुकावट करना आवश्यक है।

"इस नीति को फलदायिनी बनाने के लिए हमें प्रान्तीय और केन्द्रीय कौंसिलो पर कब्जा कर लेना चाहिए जो चुनाव के लिए खुली हो। हमें ऐसी सारी प्राप्य जगहो पर तो कब्जा करना ही चाहिए, साथ ही हमे हरेक कमिटी में भी जहाँतक सम्भव हो घुस जाना चाहिए। हम अपनी पार्टी के सदस्यो का ध्यान इस ओर आकर्षित करते है और उन्हें निमंत्रण देते है कि इस सम्बन्ध में निश्चय शीघ्र-से-शीघ्र कर डालें।

"कौंसिलो के बाहर हमारी नीति इस प्रकार होनी चाहिए—पहली बार

तो यह है कि हमें महात्मा गांधी के कार्यक्रम का हृदय से समर्थन करना चाहिए और कांग्रेस की संस्थाओ के द्वारा उसको पूरा करना चाहिए। हमारी यह निश्चित राय है कि कौंसिलो के बाहर रचनात्मक कार्य की सहायता के बिना कौंसिलो के भीतर हमारे काम का बल बहुत कम हो जायगा। क्योंकि हमें जिस बल की जरूरत है वह कौंसिलो के भीतर नही, बाहर तलाश करना होगा, और उस बल के बिना हमारी कौंसिल-नीति की सफलता असम्भव है। रचनात्मक कार्य के मामले मे कौंसिलो के भीतर और बाहर के कार्य का एक-दूसरे की सहायता करना आवश्यक है जिससे उस बल को, जिसपर हम निर्भर करते हैं, मजबूती आये। इस सम्बन्ध में हम महात्मा गांधी की सत्याग्रह-सम्बन्धी सलाह को बिना किसी हिचकिचाहट के स्वीकार करते हैं। हम उन्हें आश्वासन देते हैं कि ज्यो ही हमें मालूम हो जायगा कि सत्याग्रह के बिना नौकरशाही की स्वार्थ-पूर्ण हठधर्मी का सामना करना असम्भव है, हम तत्काल कौंसिलो को छोडकर देश को सत्याग्रह के लिए तैयार करने में, यदि वह स्वय ही उस समय तक तैयार न कर दिया गया हो तो, उनकी सहायता करेंगे। तब हम बिना किसी हीला-हवाले के उनके पीछे हो लेंगे और कांग्रेस की संस्थाओ के द्वारा उनके झण्डे के नीचे काम करेंगे जिससे सब मिलकर सत्याग्रह का ठोस प्रोग्राम पूरा कर सकें। ⋅⋅ ”

अहमदाबाद में महासमिति

अहमदाबाद में २७, २८ और २९ जून को जो निश्चय किया गया, जुहू के वार्तालाप ने उसके लिए पहले से ही मार्ग तैयार कर दिया था। निर्वाचित कांग्रेस-संस्थाओ के सारे सदस्यो के लिए हर महीने २,००० गज अच्छी तरह ऐंठा और कता हुआ सूत भेजना लाजिमी कर दिया गया। न भेजने पर उस सदस्य का स्थान खाली समझने को कहा गया। जिस समय इस विषय पर चर्चा हो रही थी, कुछ सदस्य इस जुर्मानेवाली बात के विरुद्ध रोष प्रकट करने के लिए बैठक से उठकर चले गये। यह प्रस्ताव पास हो गया। ६७ अनुकूल और ३७ प्रतिकूल रहे। पर यह सोचकर कि जो लोग उठकर चले गये थे यदि वे खिलाफ राय देते तो सम्भव था कि यह गिर जाता, गांधीजी ने जुर्मानेवाली बात हटा ली और महासमिति ने नागा करनेवालो के खिलाफ जाब्ता कार्रवाई करने की सिफारिश की।

विदेशी कपडे, अदालतो, स्कूल-कालेजो, उपाधियो और कौंसिलो के पांचो प्रकार के (कोकनडा के प्रस्ताव को ध्यान में रखते हुए) बहिष्कार पर जोर दिया

गया और कांग्रेस के मत-दाताओ को खास तौर से हिदायत कर दी गई कि उन लोगों को कांग्रेस की मातहत-संस्थाओ में न चुना जाय जो पाचो प्रकार के बहिष्कार के सिद्धान्त में विश्वास न रखते हो और स्वय भी उसपर अमल न करते हो। सरकार की अफीम-सम्बन्धी नीति की निन्दा की गई और एण्डरूज सा० से अनुरोध किया गया कि वह आसामवालो के अफीम-व्यसन के सम्बन्ध में जाच करें। सिक्खो ने जैतो के अनावश्यक और निर्दयता-पूर्ण गोली-काण्ड के अवसर पर जो शान्तिपूर्ण साहस दिखाया था उसके लिए उन्हें बधाई दी गई।

इस बैठक में जिस प्रस्ताव ने काफी जोश पैदा किया वह गोपीनाथ साहा-द्वारा आर्नेस्ट डे की हत्या के धिक्कार और मृत व्यक्ति के परिवार के प्रति समवेदना-प्रकाशन के सम्बन्ध में था। प्रस्ताव में गोपीनाथ साहा के देश-प्रेम की बात को, जिससे प्रेरित होकर उसने हत्या की, हृदय के साथ स्वीकार किया गया, पर साथ ही उसे पथ-भ्रष्ट बताया गया। महासमिति ने इस और इसी प्रकार की सारी राजनैतिक हत्याओ को जोरदार शब्दो मे धिक्कारा और अपनी स्पष्ट राय प्रकट की कि इस प्रकार के कृत्य कांग्रेस की अहिंसा की नीति के विरुद्ध हैं, स्वराज्य के मार्ग में रुकावट डालते हैं और सत्याग्रह की तैयारी में बाधक बनते हैं। इस प्रस्ताव पर खूब वाग्युद्ध हुआ। यह बात छिपी नही थी कि यह प्रस्ताव देशबन्धु को पसन्द न आया। इसलिए नही कि वह अहिंसा के कायल थे, बल्कि इसलिए कि वह प्रस्ताव के भिन्न-भिन्न अशों के जोर को बहुत बदल देना चाहते थे। गाधीजी को यह देखकर बड़ा ही सन्ताप हुआ कि उनके कुछ निकटस्थ और अभिन्न-हृदय अनुयायियों ने इस प्रस्ताव के विरुद्ध राय दी। इसी प्रसग को लेकर उनकी आखो में आसू आ गये। ऐसे अवसर उनके जीवन में अधिक नही आये हैं। वातावरण में तीव्रता इसलिए और भी उत्पन्न हो गई थी कि दीनाजपुर (बंगाल) की प्रान्तीय-परिषद् में एक और भी अधिक जोरदार प्रस्ताव पास हो चुका था, जिसमें गोपीनाथ साहा के स्वार्थ-त्याग और बलिदान की सराहना की गई थी और उसकी देश-भक्ति के प्रति सम्मान प्रकट किया गया था।

स्वराजी इस बैठक में अपने इच्छानुसार सब-कुछ प्राप्त न कर सके और उन्हें अपनी कठोर परिश्रम से प्राप्त की सफलता को मजबूत बनाने के लिए नवम्बर तक रुकना पड़ा। जहातक अपरिवर्तनवादियो का सम्बन्ध था, सूतवाली शर्त को उन्होने आश्चर्यजनक रीति से पूरा किया। अगस्त में २७८० सदस्य थे, सितम्बर में ६२०१ हुए, अक्तूबर में ७७४१ और नवम्बर में ७६०५ हो गये।

साम्प्रदायिक दंगे और गांधीजी का उपवास

परन्तु उस वर्ष की सबसे बुरी बात थी जगह-जगह साम्प्रदायिक दंगो का होना, खासकर दिल्ली, गुलबर्गा, नागपुर, लखनऊ, शाहजहांपुर, इलाहाबाद और जबलपुर में। सबसे अधिक भयकर दगा कोहाट मे हुआ। कोहाट के दगे ने तो भारतवर्ष की कमर ही तोड दी। दगो के कारणो और परिस्थितियो के सम्बन्ध में गाधीजी और मौ० शौकतअली की एक कमिटी नियुक्त की गई। दोनो ने रिपोर्ट पेश की, पर दुर्भाग्य से दोनो का इस विषय में मत-भेद था कि दगो की जिम्मेदारी किसपर है। १९२४ की ९ और १० सितम्बर की घटनाओ को बीते आज दस वर्ष से भी अधिक हुए, पर दगे के फौरन बाद ही कोहाट के मातृस्कूल के हेडमास्टर लाला नन्दलाल ने जो रिपोर्ट लिखी और जिसे कोहाट-दगा-पीडित-सहायक-समिति ने प्रकाशित किया, उसे पढने पर तो अब भी शरीर में रोमाच हो आता है। हम इससे अधिक और कुछ नही कह सकते कि ९ और १० सितम्बर के गोलीकाण्ड और कत्ले-आम के बाद एक स्पेशल ट्रेन ४००० हिन्दुओ को सवार कराकर ले गई। इनमे से २६०० दो महीने बाद तक रावलपिण्डी की जनता की और १४०० अन्य स्थानो की जनता की दान-शीलता पर जीते रहे।

ऐसी दशा में यह कोई आश्चर्य की बात नही जो गाधीजी ने २१ दिन के उपवास का व्रत लिया। इस क्रोधोन्माद और हत्या-प्रवृत्ति का जिम्मेदार उन्होने अपने-आपको ठहराया और उपवास के द्वारा प्रायश्चित्त करने का निश्चय किया। अभी अपेण्डिसाइटिस के भयकर और लगभग साघातिक प्रकोप से उठे उन्हें अधिक दिन नही हुए थे। अत यह उनके लिए अग्नि-परीक्षा थी। गाधीजी ने व्रत मौलाना मुहम्मदअली के मकान पर आरम्भ किया, पर बाद को उन्हें शहर के बाहर एक मकान में ले जाया गया। इस अवसर का लाभ उठाकर सारी जातियो के नेताओ को एकत्र किया गया। कलकत्ते के बडे पादरी भी शरीक हुए। यह एकता-परिषद् २६ सितम्बर से २ अक्तूबर सन् १९२४ तक होती रही। परिषद् के सदस्यो ने प्रतिज्ञा की कि वे धर्म और मत की स्वतन्त्रता के सिद्धान्त का पालन कराने का अधिक-से-अधिक प्रयत्न करेंगे और उत्तेजन मिलने पर भी इनके विरुद्ध किये गये आचरण की निन्दा करने में कोई कसर न रक्खेंगे। एक केन्द्रीय राष्ट्रीय पचायत बनाई गई, जिसके सयोजक और अध्यक्ष गाधीजी हुए और हकीम अजमलखा, लाला लाजपतराय, के० एफ० नरीमान, डॉ० एस० के० दत्त और लायलपुर के मास्टर सुन्दरसिंह सदस्य हुए। परिषद् ने धार्मिक सिद्धान्तो को मानने, धार्मिक विचारो को प्रकट करने और

धार्मिक रीति-रिवाजो का पालन करने, धर्मस्थानो की पवित्रता का ध्यान रखने और गोवध और मस्जिद के आगे बाजा बजाने के सम्बन्ध में सबका एक-समान अधिकार माना, पर साथ ही उनकी मर्यादाओ का भी निदर्शन किया। अखबारो को चेतावनी दी कि वे साम्प्रदायिक मामलो मे समझबूझ कर लिखा करें और जनता से अनुरोध किया गया कि गाधीजी के उपवास के अन्तिम सप्ताह में देशभर में प्रार्थना की जाय। ८ अक्तूबर जन-सभाओ द्वारा ईश्वर का धन्यवाद देने के लिए नियत किया गया।

अभी गाधीजी ने अपना उपवास समाप्त ही किया था कि उन्हें बम्बई मे २१ और २२ नवम्बर को सर्वदल-सम्मेलन में और उसके बाद ही और उसीके सिलसिले मे २३, २४ को महासमिति की बैठक में शरीक होना पडा। सर्वदल-सम्मेलन करने का उद्देश यह था कि बगाल मे सरकार का दमन जोर पकडता जा रहा था। यह दमन-नीति स्वराज्य-पार्टी और तारकेश्वर में सत्याग्रह करनेवाले कार्यकर्त्ताओ के विरुद्ध आरम्भ की गई थी। लोकमत को इसके विरुद्ध तैयार करना था। परिषद् ने बगाल-सरकार-द्वारा जारी किये गये क्रिमिनल-लॉ-अमेण्डमेण्ट-आर्डिनेन्स के विरुद्ध निन्दा का प्रस्ताव पास किया और उसके साथ ही १८१८ के रेग्युलेशन ३ को रद करने पर जोर दिया। सर्व-दल-सम्मेलन ने बगाल की अशान्ति का कारण स्वराज्य न मिलना ठहराया और एक कमिटी नियुक्त की, जिसके सुपुर्द स्वराज्य की योजना और साम्प्रदायिक समझौता तैयार करने का काम किया गया। इस कमिटी में देश के सारे राजनैतिक दलो के प्रमुख व्यक्तियो को रक्खा गया। ३१ मार्च १९२५ तक रिपोर्ट मागी गई। परिषद् के द्वारा कुछ विशेष काम होने की आशा न थी। पर इससे सम्भवत देशबन्धु चित्तरजन दास की गिरफ्तारी टल गई। उस वर्ष की मुख्य घटना थी गाधीजी का देशबन्धु और नेहरूजी के आगे बहिष्कार के मामले में झुक जाना। इन तीनो प्रमुख व्यक्तियो ने एक सम्मिलित वक्तव्य प्रकाशित किया और उसे महासमिति ने मान लिया। इस वक्तव्य का साराश यह था कि सारी पार्टियो का सहयोग प्राप्त करने के लिए असहयोग को राष्ट्रीय कार्यक्रम के रूप में स्थगित किया जाता है। हा, विदेशी कपडा न पहनने के सम्बन्ध में वही पुरानी नीति रहेगी। यह भी कहा गया कि अन्य दल भिन्न-भिन्न दिशाओं में रचनात्मक कार्य करें, और स्वराज्य-पार्टी कौंसिलो में काम करे। इसके एवज में गाधीजी ने यह तय कराया कि कांग्रेस-सदस्यो के द्वारा ४।। सेर के बजाय २००० गज हाथ का बना सूत प्रति मास दिया जाय।

बेलगांव-कांग्रेस

असहयोग के इतिहास में बेलगाव-काग्रेस खास महत्त्व रखती है। गाधीवाद के विरुद्ध जो विद्रोह उठा था वह करीब-करीब अन्तिम सीमा तक पहुँच चुका था। काग्रेस अब ऐसे स्थान पर खडी थी जहा से दो मार्ग दो ओर को जाते थे। काग्रेस-वादियो को अब दो परस्पर-विरुद्ध दलो में बट जाना चाहिए या समझौता करके अपने भेद-भाव को मिटा लेना चाहिए, और यदि समझौते की बात ठीक हो तो इस जटिल काम को गाधीजी के सिवा और कौन हाथ में ले ? केवल गाधीजी ही ऐसे थे जो सत्याग्रह का कार्यक्रम वापस लेकर भी अपरिवर्त्तन-वादियो को शान्त कर सकते थे और कौंसिल-प्रवेश का सामना करके भी स्वराजियो को सन्तुष्ट रख सकते थे। १९२४ की काग्रेस के सभापति गाधीजी हुए। उन्होने अपना अद्भुत भाषण पेश किया। पर काग्रेस में उसका सक्षेप ही सुनाया गया। इस भाषण में उन्होने १९२० से उस समय तक की घटनाओ पर प्रकाश डाला और बताया कि किस प्रकार काग्रेस मुख्यत एक ऐसी सस्था रही है जिसके द्वारा भीतर से शक्ति का विकास होता रहा है। सब तरह के बहिष्कारो को भिन्न-भिन्न दलो ने अपनाया। वैसे कोई भी बहिष्कार पूरा न हो सका, फिर भी जिन-जिन सस्थाओ का बहिष्कार किया गया उनका रोब बहुत-कुछ कम हो गया। सबसे बडा बहिष्कार हिंसा का बहिष्कार था। पर अहिंसा ने असहायावस्था की निष्क्रियता को छोडकर अभी साधन-सम्पन्न और परिष्कृत-रूप धारण नही किया था। जिन्होने असहयोग मे साथ नही दिया उनके विरुद्ध एक प्रकार की छिपी हुई हिंसा से काम लिया गया। पर अहिंसा जैसी कुछ भी थी, उसने हिंसा को दबाये रक्खा। पर 'ठहरो' कहने का भी समय आया और जिन्होने असहयोग किया था उनमें से बहुत से लोग पश्चात्ताप भी करने लगे। फलत सब प्रकार के बहिष्कार उठा लिये गये और केवल एक बहिष्कार—विदेशी कपडो का—रह गया। इस प्रकार बहिष्कार करने का जनता का न केवल अधिकार ही था, बल्कि कर्त्तव्य भी था। उनके और स्वराजियो के मत-भेदो में समझौता हो गया था। स्वराजी सूत कात कर देने को राजी हो गये और गाधीजी ने उनके कौंसिलो में काम करने पर आपत्ति नही की। उन्होने कोहाट के दगे पर सताप प्रकट किया, अकालियो के साथ सहानुभूति प्रकट की, अस्पृश्यता के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये और स्वराज्य-योजना का जिक्र किया। यह तो लक्ष्य है, पर हम इसे नही जानते। चरखा, हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य और अस्पृश्यता-निवारण ये साधन हैं। "मेरे लिए तो साधनो का जानना ही काफी है। मेरे जीवन-सिद्धान्त में साधन और साध्य पर्य्यायवाची

शब्द हैं।" इस प्रकार भूमिका बाधने के बाद गाधीजी ने स्वराज्य की योजना के सम्बन्ध में कुछ बातें बताईं।

मताधिकार के लिए शारीरिक परिश्रम की शर्त, सैनिक व्यय में कमी, सस्ता न्याय, मादक द्रव्य और उससे आनेवाली चुगी का अन्त, सिविल और सैनिक नौकरियो के वेतनो में कमी, प्रान्तो का भाषा की दृष्टि से पुनर्निर्माण, इस देश में विदेशियो के इजारो (मोनोपली) की नये सिरे से जाच-पड़ताल, भारतीय नरेशो को उनकी पद-मर्यादा की गारण्टी और केन्द्रीय सरकार-द्वारा खलल न पहुँचने का आश्वासन, तानाशाही का अन्त, नौकरियो में जाति-भेद का अन्त, भिन्न-भिन्न सस्थाओ को धार्मिक स्वतन्त्रता, देशी-भाषाओ-द्वारा सरकारी काम-काज, और हिन्दी को राष्ट्रीय-भाषा मानना।

पूर्ण स्वराज्य के प्रश्न की ओर भी गाधीजी का ध्यान आकर्षित हुआ। अहमदाबाद के बाद से उनके विचार सौम्य हो गये थे, क्योकि उस समय वह आशा से भरे हुए थे, किन्तु अब जहातक सरकार के रग-ढग और स्थिति का सम्बन्ध था, गाधीजी की आशाओ पर पानी पड गया था। उन्होने कहा "मै साम्राज्य के भीतर ही स्वराज्य पाने की चेष्टा करूँगा, पर यदि स्वय ब्रिटेन के दोष से ही उससे सारे नाते तोडना आवश्यक हुआ तो मै ऐसा करने में सकोच नहीं करूँगा। इसके बाद उन्होने स्वराज्य-पार्टी और रचनात्मक कार्यक्रम का जिक्र किया और बगाल की अवस्था के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करने के बाद अहिंसा में अपनी आस्था प्रकट करके भाषण समाप्त किया। बगाल में लॉर्ड रीडिंग ने १९२४ का आर्डिनेन्स न० १ जारी कर दिया था, जिसके द्वारा उन लोगो को जिनपर स्थानिक सरकार-द्वारा क्रातिकारी-दल से सम्बन्ध रखने का सन्देह किया जाता हो गिरफ्तार किया जा सकता था और स्पेशल कमिश्नरो की अदालतो में उनके मामले का सरसरी में फैसला किया जा सकता था। गाधीजी ने इस बात को माना कि यह सब कुछ स्वराजियो के विरुद्ध किया जा रहा है।

कांग्रेस ने बी अम्मा, सर ए० चौधरी, सर आशुतोष मुकर्जी, भूपेन्द्रनाथ बसु, डॉ० सुब्रह्मण्य ऐयर, ए० जी० एम० भुरगी और अन्य कई कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओ और नेताओ की मृत्यु पर शोक-प्रकाश किया। नवम्बर में महासमिति ने गाधीजी, दास बाबू और नेहरूजी के जिस समझौते को पास किया था उसे सही किया गया। कांग्रेस-मताधिकार में भी परिवर्त्तन किया गया। हिन्दुओ के कोहाट-त्याग पर खेद प्रकट किया गया। कोहाट के मुसलमानो को सलाह दी गई कि वे हिन्दुओ को उनके

जान-माल के सम्बन्ध में आश्वासन दें, साथ ही हिन्दू मुहाजरीन को सलाह दी गई कि जबतक कोहाट के मुसलमान उन्हें सम्मानपूर्वक न बुलावें तबतक वे वापस न जायँ। इसी तरह गुलबर्गा के पीडितो के प्रति भी सहानुभूति दिखाई गई। अस्पृश्यता और वायकोम-सत्याग्रह के सम्बन्ध में उचित कार्रवाई की गई। वैतनिक राष्ट्र-सेवा को पूर्ण सम्मानप्रद बताया गया। अकालीदल मदिरा और अफीम के सम्बन्ध मे भी विचार हुआ और कांग्रेस के विधान मे कुछ जरूरी तब्दीलिया की गईं।

प्रवासी-भारतवासियो के लिए श्री वझे, प० बनारसीदास चतुर्वेदी और श्रीमती सरोजिनी नायडू की सेवाओ की सराहना की गई। सरकार भी चुपचाप नही बैठी थी। वह भी केनिया के मामले में काफी जोर की लडाई लड रही थी। भारत-सरकार ने "भारत-मत्री को चेतावनी दी कि यदि निश्चय केनिया-प्रवासियो के विरुद्ध गया तो भारत में ब्रिटिश-साम्राज्य से पृथक् होने और उपनिवेशो के विरुद्ध बदले की कार्रवाई करने के सम्बन्ध में जोर का आन्दोलन आरम्भ हो जायगा।" अगस्त १९२४ में उपनिवेश-मत्री मि० थामस ने निश्चय किया कि दूसरे देशो से आकर बसने पर प्रतिबन्ध लगाने के सम्बन्ध मे जो आर्डिनेन्स बनाया गया था वह अमल में न लाया जाना चाहिए, परन्तु हाइलैण्ड्स और मताधिकार के सम्बन्ध में जो निश्चय है वही कायम रहेगा। यह भी निश्चय किया कि जो भारतवासी दक्षिण-अफ्रीका में जाकर बसना चाहें वे निचली भूमि पर जाकर बस सकते है और उसपर खेती कर सकते है। १९२४ के जून में सम्राट की सरकार ने एक ईस्ट अफ्रीकन कमिटी नियुक्त की, जिसके चेयरमैन लॉर्ड साउथबरो थे। इसके सामने भारतीय दृष्टिकोण रक्खा जा सकता था। इसी बीच दक्षिण-अफ्रीका की सरकार में परिवर्त्तन हो गया, इसलिए 'क्लास-एरिया-बिल' अपने-आप ही रद हो गया। साथ ही 'नेटाल बरोज आर्डिनेन्स' पास हो गया, जिसके अनुसार और अधिक भारतीय नागरिक या रईस न हो सकते थे।

: ६ :

हिस्सा या साझा ?—१९२५

स्वराजियों की सफलता

१९२५ की राजनीति मुख्यत: कौंसिलो में किये गये काम तक सीमित रही। अब स्वराजियों को अपरिवर्तन-वादियो की तरफ से परेशानी न रही। क्योंकि गाधीजी दोनो दलो को एक तराजू पर रखने को मौजूद थे ही। मध्यप्रदेश और बगाल में द्वैधशासन का अन्त हो गया था। लॉर्ड लिटन के निमत्रण पर देशबन्धु दास ने बगाल में मन्त्रिमण्डल बनाने से इन्कार कर दिया और न दूसरो को ही बनाने दिया। वह इसी प्रकार के विध्वस की बात सोचते आ रहे थे। जब लॉर्ड रीडिंग का १९२४ का न० १ आर्डिनेन्स समाप्त हुआ तो बगाल-कौंसिल में एक बिल पेश किया गया जिसे स्वराजियो ने और स्वराजियो के प्रभाव ने १९२५ की जनवरी में रद कर दिया। लॉर्ड लिटन ने उसे सही कर दिया और लन्दन सम्राट्-सरकार की मजूरी के लिए भेजा। १७ फरवरी को बगाल-कौंसिल ने प्रस्ताव पास करके बजट में मन्त्रियो के वेतन की गुजाइश रखने की सिफारिश की। स्वराजियो को हारना पड़ा। पर उन्होंने शीघ्र ही इस क्षति को पूरा कर लिया। २३ मार्च को बजट पर बहस के दौरान में मन्त्रियो के वेतन ६९ रायो से रद कर दिये गये। पक्ष में ६३ रायें थीं। इधर बगाल असहयोग के इस निश्चित मार्ग पर चल रहा था, उधर मध्यप्रान्त में इस बात की चर्चा की जा रही थी कि स्वराज्य-पार्टी को मन्त्रित्व ग्रहण क्यो नहीं करना चाहिए, जिससे वह भीतर से विध्वस कर सके? बड़ी कौंसिल में स्वराज्य-पार्टी १९२४ और १९२५ में विरोधी दल का काम करती रही। स्वराजियो ने सिलेक्ट कमिटियो में भाग लिया और लाभदायक कानून पास करने में सहयोग दिया। कभी किसी पार्टी का साथ दिया, कभी किसी का, और यदा-कदा सरकार का भी।

जब श्री सी० दौरास्वामी आयगर ने बगाल-आर्डिनेन्स को एक कानून के द्वारा रद करने का प्रस्ताव पेश किया तो उसके पक्ष में ५८ और विपक्ष में ४५ रायें आईं। १९२५ की ३ फरवरी को श्री विट्ठलभाई पटेल ने १८५० का शाही कैदियो का कानून, १८६७ का सीमान्त के अत्याचारों का कानून और १९२१ का राजद्रोही

समाबन्दी कानून रद करने के लिए बिल पेश किया तो सीमान्तवाले कानून के सिवा बाकी हिस्सा पास हो गया।

श्रीयुत नियोगी ने अपना बिल पेश किया, जिसके द्वारा वह रेलवे-एक्ट का संशोधन करके किसी जाति-विशेष के लिए डब्बे रिजर्व करने की प्रथा को मिटा देना चाहते थे। यह बिल नामंजूर हुआ। डॉ० गौड ने बिल पेश किया कि लन्दन की प्रिवी कौंसिल में अपीलें न भेजी जाया करें, पर वह रद हो गया और स्वराजियो ने उसमें सरकार का साथ दिया। वेंकटपति राजू का यह प्रस्ताव कि देश में तत्काल सैनिक-विद्यालय कायम किया जाय, पास हो गया और सरकार को हार खानी पड़ी। २५ फरवरी १९२५ को रेलवे-बजट की बहस में स्वराजियो और स्वतन्त्र-दलवालो ने सरकारी सदस्यो का मुकाबला करने के बजाय एक-दूसरे पर प्रहार किया और फलत पण्डित मोतीलाल का बजट को रद करने का प्रस्ताव ६६ रायो से रद हो गया। पक्ष में केवल ४१ रायें आईं। इस प्रकार बजट और उसकी मदो पर उनके गुण-दोषो के अनुसार ही विचार किया गया। आरम्भ में लगातार और एकसा अडगा डालने का जो सकल्प किया गया था, उससे कही काम न लिया गया। पण्डित मोतीलाल का कार्यकारिणी के सदस्यो का सफर-खर्च घटाने का प्रस्ताव ६५ ४८ से पास हो गया। कोहाट का दगा, सेना में भारतीयो का अभाव, मुडीमैन-कमिटी की रिपोर्ट, गोलमेज-परिषद्, दमन आदि सब लिये गये थे। जब असेम्बली में ऐसा बिल पेश किया गया जिसके अनुसार बगाल-क्रिमिनल-लॉ-अमेण्डमेण्ट-एक्ट के मातहत मामलो की अपील हाईकोर्ट में की जा सकती थी, तो बड़ी विचित्र अवस्था हुई। बिल में तीन अन्य धारायें ऐसी थी जिनके द्वारा अदालत में हाजिर होने के हुक्मनामे को रद किया और अभियुक्तो को बगाल से बाहर नजरबन्द रक्खा जा सकता था। स्वतन्त्र-दलवाले और स्वराजी बिल के पहले विभाग का तो अनुमोदन करना चाहते थे और बाकी तीन विभागो को रद करना। सरकार की दृष्टि से बिल इस प्रकार बिलकुल अधूरा रह जाता। फलत जब उसे राज्य-परिषद् ने पास कर दिया तो लॉर्ड रीडिंग ने उसपर सही कर दी।

इस समय तक देशबन्धु दास ने कांग्रेस में अपने लिए एक गौरवपूर्ण स्थान तैयार कर लिया था। इसके अतिरिक्त बेलगाव-कांग्रेस के अवसर पर एक समाचार प्रकाशित हुआ कि देशबन्धु दास ने अपनी सारी सम्पत्ति देश के अर्पण कर दी है, जिसका उपयोग परोपकार में किया जायगा। इस बात से देशबन्धु दास जनता की निगाह में बहुत ऊँचे उठ गये। इधर डॉ० बेसेण्ट के नेशनल कन्वेन्शन ने 'कामनवेल्थ आफ

इण्डिया बिल' का मसविदा भी प्रकाशित कर दिया था। एकता-परिषद् ने साम्प्रदायिक समस्या को सुलझाने के लिए जो कमिटी नियुक्त की थी वह अलग माथा-पच्ची कर रही थी। लाला लाजपतराय ने हिन्दू-महासभा की ओर से २१ फरवरी को एक प्रश्नावली प्रकाशित की। गत नवम्बर मे बम्बई मे जो सर्व-दल-सम्मेलन हुआ था उसके द्वारा नियुक्त की गई उप-समिति कोई अच्छी स्वराज्य-योजना तैयार न कर सकी और अन्त को मार्च में अनिश्चित समय के लिए स्थगित हो गई। १९२५ के मार्च और अप्रैल मे गाधीजी ने दक्षिण-भारत और केरल में दौरा किया। वायकोम-सत्याग्रह जोरो पर था। गाधीजी की उपस्थिति ने समझौता होने में मदद दी। कुछ खास सडको पर से होकर अस्पृश्य न गुजर पाते थे। यह आन्दोलन इस कडाई को दूर करने के लिए आरम्भ किया गया था। त्रावणकोर-सरकार ने सत्याग्रहियो का प्रवेश रोकने के लिए कुछ बाडे बना दिये थे और सिपाही तैनात कर दिये थे। त्रावणकोर-सरकार को यह बात सुझाई गई कि उसके इस रवैये से वह जनता में यह धारणा उत्पन्न कर देगी कि वह त्रावणकोर के हिन्दुओ की सकीर्णता का अपने शारीरिक-बल-द्वारा समर्थन कर रही है। जब सरकार ने बाडे और सिपाही हटा लिये तो सत्याग्रहियों का शत्रु केवल लोकमत रह गया और सत्याग्रह का कारण उस समय के लिए हट गया।

दक्षिण से गाधीजी बगाल जानेवाले थे। दास बाबू अस्वस्थ होने लगे थे। उन्हे शाम को ज्वर रहने लगा, जो चिन्ता का कारण हो रहा था। इलाज के लिए उनके यूरोप जाने का प्रबन्ध किया गया था। साथ ही यह आशा थी कि वह ब्रिटिश-सरकार के साथ समझौता करा सकेंगे। यह 'सफलता' की मनोवृत्ति उन सारे कार्यकर्ताओ मे मिलती है जिन्होने बडे-बड़े आन्दोलनो का सगठन किया है।

देशबन्धु की मृत्यु और उसके बाद

फरीदपुर की बगाल-प्रान्तीय परिषद् के अवसर पर यही स्थिति थी। देशबन्धु ने फरीदपुर में कुछ शर्तो पर सहयोग प्रदान करने की जो बात कही सो इसी मनोवृत्ति से प्रेरित होकर। गाधीजी का विश्वास था कि वर्तमान अशान्ति दूर करने के लिए जिस प्रकार के हृदय-परिवर्तन की आवश्यकता है, वह दिखाई नही पडता। पर दास बाबू का विश्वास था कि हृदय में परिवर्तन हो गया है। उन्होने 'स्टेट्समैन' के प्रतिनिधि से कहा—"मैं हृदय-परिवर्तन के लक्षण हर जगह देख रहा हूँ। मेल-जोल के चिह्न मुझे हर जगह दिखाई पड रहे है। ससार सघर्ष से थक गया है और उसमे मुझे सर्जन और सगठन की इच्छा दिखाई पड रही है।" दास बाबू ने ब्रिटिश-

राजनीतिज्ञो को सवोधन करते हुए कहा—"आज आप ऐसी शान्ति प्राप्त कर सकते है जो हम दोनो के लिए सम्मान-प्रद हो।" इन दिनों गाधीजी ने दास वावू को अपना 'एटर्नी' कहा था और स्वराज्य-पार्टी को कौंसिलो में काग्रेस की प्रतिनिधि कहा करते थे। उनकी अपने-आपको भुला देने की क्षमता अद्भुत थी और कभी-कभी उनके पुराने अनुयायियो की भक्ति तो नही, पर धैर्य भग करनेवाली अवश्य सिद्ध होती थी।

इस अवसर पर लॉर्ड रीडिंग कुछ महीनो की छुट्टी पर इग्लैण्ड में थे। लॉर्ड वर्कनहेड ने स्वराजियो को सलाह दी थी कि वे विध्वस के वजाय सहयोग करें। इन दोनो वातो ने मिलकर दास वावू के हृदय में आशा उत्पन्न कर दी थी। इसके अलावा कर्नल वेजवुड और मि० रेमजे मैकडानल्ड भारत में समझौता कराने की चेष्टा कर रहे थे। गाधीजी ने दास वावू की मृत्यु के वाद एक मर्मपूर्ण वात कही थी। उन्होने कहा था कि दास वावू को लॉर्ड वर्कनहेड में वडी आस्था थी और उन्हें विश्वास था कि वर्कनहेड भारत के लिए वहुत-कुछ करेंगे।

देशवन्धु दास ने पडित मोतीलाल नेहरू को जो अन्तिम पत्र लिखा था, जिसे पण्डितजी देशवन्धु का अन्तिम राजनैतिक वसीयतनामा कहा करते थे, उसमें उन्होंने कहा—"हमारे इतिहास की सवसे अधिक नाजुक घडी आ रही है। इस वर्ष के अन्त में ठोस काम होना चाहिए और दूसरे साल के आरम्भ में हमारी सारी शक्तिया काम में लग जायँगी। इधर हम दोनो वीमार पडे है। ईश्वर ही जाने, क्या होनेवाला है।" इसके कुछ ही दिनो वाद ईश्वर की ऐसी इच्छा हुई कि उसने देशवन्धु को स्वर्ग में वुला लिया। १६ जून १९२५ को दार्जिलिंग में उनका परलोकवास हुआ। दास वावू का जीवन स्वय ही भारत के इतिहास का एक परिच्छेद था। दास वावू के देहान्त के सम्बन्ध में खुलना में गाधीजी ने गद्गद् होकर कहा था—"उनकी स्मृति को अमर वनाने के लिए हमें क्या करना चाहिए ? आसू वहाना वडा आसान है। परन्तु आसुओ से हमें या उनके निकटस्थ और प्रिय व्यक्तियो को कोई लाभ न होगा। यदि हम सव, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, वे सव जो अपने-आपको भारतीय कहते है, सकल्प कर लें कि जिस काम के लिए देशवन्धु जिये और जिस काम में वह निमग्न रहे, उसे पूरा करेंगे, तो हम सचमुच उनके स्मारक के रूप में कुछ कर सकेंगे। हम सव परमात्मा में विश्वास रखते हैं। हमें जानना चाहिए कि शरीर नाशमान् है। आत्मा का नाश कभी नही होता। जिस शरीर में देशवन्धु दास की आत्मा का निवास था वह नष्ट हो गया। पर उनकी आत्मा का नाश कभी न होगा। उनकी आत्मा ही क्यो, उनका नाम भी, जिन्होने इतनी सेवा की है और इतना त्याग किया है, अमर रहेगा और जो कोई वूढा

-या जवान उनका जरा भी अनुकरण करेगा वह उनकी स्मृति को अमर बनाने में सहायक होगा। हम सबमें उनके-जैसी बुद्धि नही है, पर वह जिस उत्साह के साथ अपनी मातृभूमि को प्रेम करते थे, हम उनका अनुकरण अवश्य कर सकते हैं।" यहा जरा सरकारी राय का उद्धरण भी देना चाहिए—"श्री दास में अपने प्रतिद्वन्द्वी की दुर्बलताओ को अचूक खोज निकालने की जन्म-जात शक्ति थी। वह अपनी योजनाओ को पूरा करने में लौह-सकल्प से काम लेते थे, जिसके कारण उनका स्थान अपने योग्य-से-योग्य साथियो से कही ऊँचा रहता था।" महात्मा गाधी की तरह उनकी भी प्रशसा शत्रु तक करते थे। उनके प्रति जिन असख्य लोगो ने सम्मान प्रकट किया था उनमें से अनेक यूरोपियन और सरकार के उच्चपदस्थ अफसर भी थे। जिन-जिनने सन्देशे भेजे उनमें भारत-मत्री और वाइसराय भी थे। जब कौंसिल की बैठक अगस्त में हुई तो सबसे पहले देशबन्धु दास की और फिर वयोवृद्ध देश-भक्त सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी की, जिनका परलोकवास ६ अगस्त को हुआ, मृत्यु के द्वारा हुई देश की क्षति का उल्लेख उपयुक्त शब्दो में किया गया।

गाधीजी देशबन्धु दास से अत्यन्त स्नेह रखते थे। वह बगाल ही में रुक गये और उनकी स्मृति में एक महान् स्मारक बनाया। उन्होंने दस लाख रुपया एकत्र किया। देशबन्धु दास का भवन १४८ रसा-रोड देश के अर्पण हुआ। इस भवन को दास बाबू की उस ट्रस्ट-योजना के अनुसार, जो उन्होंने वेलगाव-कांग्रेस से पहले प्रकट की थी, स्त्रियो और बच्चो का अस्पताल बना दिया गया। गाधीजी ने स्वराजियों के हाथ में सारी शक्ति देने और बगाल में स्वराज्यपार्टी की जड मजबूत जमाने में कोई कसर न उठा रक्खी। इस प्रकार श्री जे० एम० सेनगुप्त को कौंसिल में स्वराज्य पार्टी का नेता, कलकत्ता-कारपोरेशन का मेयर, और बगाल प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी का सभापति बनाने का काम उन्हींका था। यह तिहरा राजमुकुट जो दास बाबू धारण किये हुए थे, सेनगुप्त के सिर पर रख दिया गया।

गांधीजी इस्तीफ़े के लिए तैयार

इधर गाधीजी स्वराजियो को निश्चिन्त करने की भरसक चेष्टा कर रहे थे, उधर गाधीजी की इस उदारता का उत्तर स्वराज्य-पार्टी दूसरे ढग से दे रही थी। स्वराज्य-पार्टी की जनरल कौंसिल का विरोध सूत देने की उस शर्त के खिलाफ हुआ था, जो वेलगाव में तय हो चुकी थी। वह विरोध बढता ही गया, और अन्त में इस शर्त को उडा देने का फ़ैसला महासमिति के हाथ में सौंप दिया गया। महासमिति म

स्वराज्य-पार्टी का बहुमत था ही। १५ जुलाई को महासमिति की कलकत्ते की बैठक के बाद सम्भवत: गाधीजी ने पण्डित मोतीलाल नेहरू के पास एक पर्ची लिखकर भेजी कि चूकि काग्रेस में स्वराजियो की बहुलता है, और चूकि आप स्वराज्य-पार्टी के सभापति हैं, इसलिए आपको कार्य-समिति के सभापतित्व का भार भी अपने ऊपर लेना चाहिए। गाधीजी ने यह भी सपष्ट कर दिया कि मैं इसका सभापति और अधिक रहना नही चाहता। इस पर्ची से स्वराजियो में हलचल मच गई। पर अन्त में यह तय हुआ कि कम-से-कम उस साल के अन्त तक गाधीजी ही महासमिति के सभापति बने रहेंगे, पर यदि अगली बैठक में सूत कातने की शर्त उठा दी जायगी तो वह इस्तीफा दे देंगे और एक अलग चर्खा-सघ स्थापित करेंगे। कार्य-समिति ने सूत कातने की शर्त में परिवर्तन करने के प्रश्न पर विस्तार के साथ विचार किया और अन्त में सारे प्रश्न पर दुबारा विचार करने के लिए १ अक्तूबर को बैठक करने का निश्चय किया। इस बीच में गाधीजी ने स्वराज्य-पार्टी का समर्थन करने में कुछ उठा न रक्खा। अगस्त में गाधीजी ने लिखा था—"मुझे काग्रेस के मार्ग में और अधिक खडा न होना चाहिए। काग्रेस का पथ-प्रदर्शन मुझ-जैसे आदमी के द्वारा, जिसने अपने-आपको अपढ जनता में मिला दिया है और जिसका भारत के शिक्षित-समाज की मनोवृत्ति से मौलिक अन्तर है, होने की अपेक्षा शिक्षित भारतीयो के द्वारा होने के मार्ग में मैं बाधक बनना नही चाहता। मैं अब भी उनपर अपना असर डालना चाहता हूँ, परन्तु काग्रेस को छोडकर नही। यह काम तभी अच्छी तरह हो सकता है, जब मैं रास्ते में से हट जाऊँ और काग्रेस की सहायता से, उसके नाम पर, अपना सारा ध्यान रचनात्मक कार्य में लगा दू। मैं काग्रेस की सहायता और उसके नाम का उपयोग उसी हद तक करूँगा जिस हद तक शिक्षित भारतीय मुझे अनुमति देंगे।" असली बात यह थी कि एक ओर तो स्वराजी लोग गाधीजी के सिद्धान्तो का खण्डन करते थे और दूसरी ओर उनका नेतृत्व भी चाहते थे। वे उनका सहयोग अपनी शर्तों पर चाहते थे।

स्वराजी प्रस्ताव

पण्डित मोतीलाल नेहरू ने असेम्बली के १९२५–२६ के शिमला-अधिवेशन से कुछ पहले ही भारतीय सैण्डहर्स्ट कमिटी में स्थान ग्रहण किया था। कमिटी का काम यह देखना था कि सम्राट् की सेना में अफसरो के पद के लिए योग्य भारतीय उम्मीदवार किस प्रकार प्राप्त हो, और उनके मिलने पर उन्हें सबसे अच्छे ढग से किस प्रकार शिक्षा दी जाय। इसलिए कमिटी से यह पता लगाने को कहा गया कि भारत

में सैनिक-विद्यालय खोलना उचित और सम्भव है या नही और यदि सम्भव हो तो इस विद्यालय में ही शिक्षा की पूरी व्यवस्था हो या उम्मीदवारो को इग्लैण्ड भेजा जाय।

१९२४ में मुडीमैन-कमिटी की नियुक्ति यह पता लगाने के लिए हुई कि माण्टेगु-चेम्सफोर्ड-सुधार कैसे चल रहे है। इस कमिटी की दो रिपोर्टें थी—बहु-सख्यक और अल्प-सख्यक। बहुसख्यक-रिपोर्ट सरकारी थी, पर सरकार इस रिपोर्ट की सिफारिशें भी मानने को तैयार न थी। १९२५ के सितम्बर में एक प्रस्ताव पेश किया गया कि सरकार की रिपोर्ट को सिद्धान्त-रूप में मान लेना चाहिए। और वह सिद्धान्त यह था कि सुधारो की मशीन जहा-जहा आवाज दे रही है, उसमें तेल लगाया जाय, और उसके कल-पुर्जों में तेल लगाकर उन्हें चिकना कर दिया जाय, जिसने मत्रियो को नियुक्त करना आसान हो, उनके वेतनो पर बजटो की बहस में रायें न ली जायें और वे अडगा डालने पर भी सरकारी काम करते रहें। मान्ट-फोर्ड सुधारो में तो इस प्रकार की घटनाओ को सुदूरवर्ती सम्भावना मात्र समझा गया था पर अब तो वे कल ही की प्रत्यक्ष घटनायें हो चुकी हैं। स्वराज्य-पार्टी ने बडी कौंसिल में घुसने के कुछ ही दिनो बाद पता लगा लिया था कि माण्टेगु-चेम्सफोर्ड सुधार-योजना में क्या-क्या बातें पीछे हटानेवाली है। उसने १९२४ की फरवरी में निम्नलिखित प्रस्ताव पेश किया था —

"यह बडी कौंसिल स-कौंसिल गवर्नर-जनरल से सिफारिश करती है कि भारत-सरकार-विधान में इस प्रकार सशोधन कराने के लिए आवश्यक कार्रवाई करे कि देश में पूर्ण उत्तरदायी शासन कायम हो जाय, और इस उद्देश से (१) शीघ्र ही एक गोलमेज-परिषद् बुलाये जो महत्वपूर्ण अल्प-संख्यक जातियो या वर्गों के अधिकारो और हितो को ध्यान में रखकर, भारत के लिए शासन-विधान की सिफारिश करे, और (२) बडी कौंसिल को भग करके नई निर्वाचित कौंसिल की स्वीकृति के लिए उसके आगे वह योजना पेश करे और फिर उसे कानून का रूप देने के लिए ब्रिटिश-पार्लमेण्ट के पास भेज दे।"

इस प्रस्ताव के फल-स्वरूप ही मुडीमैन-कमिटी नियुक्त हुई थी, जिसने अल्प-सख्यक और बहु-सख्यक दो रिपोर्टें पेश की थी। इन रिपोर्टों पर ७ सितम्बर १९२५ को सर अलेक्जेण्डर मुडीमैन के प्रस्ताव के रूप में विचार किया गया था। इस प्रस्ताव के ऊपर पण्डित मोतीलाल नेहरू ने एक लम्बा-चौडा सशोधन पेश किया था, जिसका साराश यह था कि (१) सम्राट् की सरकार को पार्लमेन्ट में तत्काल ही

यह घोषणा करने का प्रबन्ध करना चाहिए कि भारत की शासन-व्यवस्था और शासन-प्रणाली में ऐसे परिवर्त्तन किये जायँगे कि देश की सरकार पूर्णतया उत्तरदायी हो जायगी, (२) एक गोलमेज-परिषद् या इसी प्रकार का कोई उपयुक्त साधन पैदा किया जाय जिसमें भारतीय, यूरोपियन और अधगोरो के हितो का पूरा प्रतिनिधित्व रहे। यह बैठक अल्प-सख्यक जातियो या वर्गों के हितो को ध्यान मे रखकर ऊपर लिखे सिद्धान्तो के अनुसार एक विस्तृत योजना बडी कौंसिल की स्वीकृति के लिए तैयार करे। स्वीकृति के बाद उसे विधान का रूप देने के लिए ब्रिटिश-पार्लमेण्ट के पास भेजा जाय। यह सशोधन दो दिनो के वाद-विवाद के बाद सरकार के खिलाफ ४५ रायो के मुकावले ७२ रायो से पास हो गया।

बगाल में जहा स्वराजी-दल ने मन्त्रि-मण्डल का निर्माण असम्भव-सा कर दिया था वहा अब उसका प्रभाव कौंसिल मे कम होता जा रहा था। कौसिल के अध्यक्ष-पद का स्वराजी उम्मीदवार एक स्वतन्त्र-दलवाले के मुकावले पर ६ रायो से हार गया। अन्तिम जोर-आजमाई के अवसर पर भी, जब दास बाबू को स्ट्रेचर पर डालकर कौंसिल-भवन में ले जाया गया था, अवस्था सदिग्ध थी। डॉ० सुहरावर्दी ने स्वराज्य-पार्टी से इस्तीफा दे दिया था। उन्होने गवर्नर से मुलाकात की थी, जिसके ऊपर गाधीजी ने उन्हें बडे आडे हाथो लिया था और कहा कि उन्होने यह बडा अनुचित काम किया और इस तरह "अपने देश को बेच दिया।" जब डॉ० सुहरावर्दी ने यह सुना तो उन्होने इस्तीफा दे दिया और कहा—"मैं इस नई जी-हुक्मी के आगे सिर झुकाने के बजाय राजनैतिक मृत्यु कर लेना अधिक सम्मान-प्रद समझता हूँ।" डॉ० सुहरावर्दी के गवर्नर से मुलाकात करने का समाचार प्रकाशित होने के दूसरे दिन गाधीजी ने कलकत्ते के अधगोरे पत्र को अपने रुख के सम्बन्ध मे पूरा वक्तव्य दिया और कहा —

"मैं यह कहे विना नही रह सकता कि स्वराज्य-पार्टी के सदस्यो को विना पार्टी की अनुमति लिए सरकारी अफसरो से मिलने से रोकने के सम्बन्ध में जो नियम है वह अच्छा है।"

२२ अगस्त को श्री विट्ठलभाई पटेल बडी कौंसिल के पहले गैर-सरकारी अध्यक्ष चुने गये।

पटना-महासमिति

इस समय २१ सितम्बर १९२५ को पटना में महासमिति की बैठक हुई। जब हम स्मरण करते हैं कि पटने की १९३४ की मई की बैठक में सत्याग्रह उठाया

गया था तो हमें यह बैठक विशेष रूप से दिलचस्प मालूम होती है, क्योंकि इस बैठक मे कांग्रेस की स्थिति मे तीन महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये गये थे। खद्दर का राजनैतिक महत्त्व छिन गया। हाथ-कता सूत देने की शर्त केवल चार आना न देने की हालत में ही लागू रही। राजनैतिक काम का भार स्वराज्य-पार्टी को सौंप दिया गया। अब स्वराज्य-पार्टी कांग्रेस का एक अग-मात्र—वह अल्पमत जिसे रिआयतें मिलें या वह थोडा-सा बहुमत जिसे सहायता के लिए औरो का मुह ताकना पडे—न रही। वह स्वय कांग्रेस हो गई। इसके बाद से निर्वाचन का काम स्वराज्य-पार्टी नहीं स्वय कांग्रेस करेगी। कौंसिल-प्रवेश में विश्वास रखनेवाले बडी कौंसिल के सदस्य अब "स्वराजिस्ट" नही कहलायेंगे, बल्कि कौंसिलो में कांग्रेस-सदस्य कहलायेंगे। सूत कातने की शर्त अब एकमात्र शर्त नही रही। इसका कारण यह न था कि उस शर्त को माननेवाले कम थे।—१०,००० सदस्य मौजूद थे—परन्तु यह था कि स्वराजियो को यह शर्त पसन्द न थी। गाधीजीने लॉर्ड बर्केनहेड और लॉर्ड रीडिंग को करारा उत्तर देने के लिए स्वराजियो को जो उन्होने मागा दे डाला। जब गोपीनाथ साहा के सम्बन्ध में सीराजगज के प्रस्ताव को लेकर दास बाबू की स्थिति और स्वतत्रता खतरे में पडी, और बगाल-आर्डिनेन्स एक्ट बना, तो गाधीजी ने दास बाबू का साथ देने का निश्चय किया। वर्ष बीत गया पर बर्केनहेड की शेखी मौजूद थी। गाधीजी ने बचा-खुचा असहयोग भी समेटने का निश्चय किया, जिससे कौंसिलो के मोर्चे पर पूरी सहायता पहुँचाई जा सके। उन्हें भारत-मन्त्री को उत्तर देने की कोई जरूरत नहीं थी। उन्होंने राजनैतिक अवस्था का सामना करने के लिए स्वराज्य-पार्टी को कांग्रेस का अधिकार दे दिया।

उस समय गाधीजी की जैसी मनोदशा थी उसमें पण्डित मोतीलाल नेहरू के लिए कोई चीज सिर्फ मागने की देर थी, और वह उन्हें तुरन्त मिल जाती। गाधीजी ने महासमिति के अध्यक्ष की हैसियत से स्वराज्य-पार्टी-द्वारा बडी कौंसिल में किये गये काम की आलोचना तक न होने दी, क्योंकि इससे सौहार्द्र-पूर्ण वातावरण में खलल पडता और उदाराशयता की शोभा और मूल्य बहुत-कुछ कम हो जाता। जब राजेन्द्र बाबू ने गाधीजी से पूछा कि क्या उनका दास बाबू और नेहरूजी के साथ कोई पैक्ट हुआ है, तो उन्होने कहा कि "नहीं, परन्तु मेरा सम्मान यह कहता है कि दूसरा पक्ष जो कुछ मुझसे मागे, मैं दे दू।"

पटना की बैठक के अवसर पर और उसके बाद प्रश्न यह था कि पटना के निश्चय के द्वारा कांग्रेस की दोनो पार्टियो में साझा तय हुआ था या हिस्सा? कांग्रेस में

परिवर्त्तन बडी तेजी से एक-के-बाद-एक होते गये। हर बार कोई नया दृश्य, नया रग और नई बात दिखाई देती थी। जून में कोई बात निश्चित न हो सकी। जब १९२४ के जून में अहमदाबाद में बैठक हुई तो गाधीजी अब भी अपनी स्थिति के मल सिद्धान्तो पर अडे हुए थे। उन्होंने खद्दर-सम्बन्धी कडाई को और भी कडा कर दिया और कार्य-समिति के सदस्यो को कातने पर विवश कर दिया। सीराजगज के प्रस्ताव के ऊपर नौकरशाही ने दास बाबू का अनुकरण करनेवालो को धमकी दी तो गाधीजी काग्रेस के भीतरी मतभेद को मिटाने पर तुल गये। एक इच झुकने का परिणाम यह होता है कि सोलह आने झुकना पडता है। यहा भी यही बात हुई। बेलगाव के निर्णय को पटना में रद कर दिया गया। पटना में कौसिल ने काग्रेस की सारी मर्यादा अपने हाथ में ले ली और सूत कातने की शर्त को भी उडा दिया। इस प्रकार खद्दर के समर्थको और कौंसिल के समर्थको में काग्रेस का बटवारा हो गया। एकता ऊपर-ही-ऊपर थी। वास्तव में खद्दर के समर्थको में असतोष फैला हुआ है, यह बात छिपाई न जा सकती थी। स्वराज्य-पार्टी ने गोलमेज-परिषद् या और किसी उपयुक्त साधन की जो माग पेश की थी वह नाकाफी समझी गई। लोगो में यह भाव उत्पन्न हुआ कि एटर्नी ने अपने स्वामी की आज्ञा का उल्लघन किया है या उसका पूरी तौर से पालन नही किया है। पर गाधीजी इस प्रकार के गणित का हिसाब-किताब नही लगाते। वह जब कभी झुकते हैं तो पूरे तौर से झुकते हैं, जिससे न उन्हें पछतावा रहे न दूसरे पक्ष को। भीष्म ने भी सब प्रकार के दान में इसी नीति का अनुसरण करने की सलाह दी है। फलत पटना में जो कुछ निश्चित हुआ कानपुर में हमें उसपर सही करनी पडी।

कानपुर-कांग्रेस

१९२५ की कानपुर-काग्रेस के दिन आ लगे थे। जनता ज्यो-की-त्यो थी—उसमें पहले की भाति प्रबल शक्ति उत्पन्न हो सकती थी, पर वह तभी जब "शिक्षित" समुदाय उनके पास कोई जीता-जागता आदर्श, कोई फडकता हुआ कार्यक्रम ले जायें। परन्तु उन्होने ऐसा नही किया। फलत मसाला मौजूद था, पर उसकी 'शक्ति' गायब हो गई थी। जिस प्रकार किसी मोटरकार के साधारण उपायो से न चलने पर उसे पीछे से ढकलने का उपाय अपनाया जाता है, और इस प्रकार ढकेले जाने के दो-चार कदम बाद मोटर के इजन में गति उत्पन्न हो जाती है और वह दुबारा रोके जाने तक काम करता रहता है, उसी प्रकार सत्याग्रह की सारी शक्तिया उस समय के लिए रुकी हुई थी और उसमें गति उत्पन्न करने के लिए हर तरह का उपाय किया जा रहा था।

स्थानिक सस्थाओ पर कब्जा करने का कार्यक्रम दिन-पर-दिन आकर्षक होता जा रहा था। कलकत्ते के मेयर-पद को देशबन्धु दास और बाद को श्री सेनगुप्त ने जिस सुन्दरता के साथ सुशोभित किया था, उससे आकर्षण और भी बढ गया था। देश के चार कारपोरेशन काग्रेसवादियो के हाथ में थे। श्री वल्लभभाई पटेल अहमदाबाद-म्युनिसिपैलिटी के चेयरमैन थे और १९२८ तक उसी पद पर रहे। बम्बई-कारपोरेशन के मेयर का पद श्री विट्ठलभाई पटेल सुशोभित कर रहे थे। प० जवाहरलाल इलाहाबाद-म्युनिसिपैलिटी के अध्यक्ष बनाये गये, पर उन्हें यह पता लगाने में देर न लगी कि वह वहा निभ न सकेंगे और स्थानिक सस्थायें काग्रेसवादियों के मतलब की चीज नही हैं। बाबू राजेन्द्रप्रसाद पटना-म्युनिसिपैलिटी के अध्यक्ष हुए, पर उन्हें जो अनुभव हुए वे आनन्द-दायक न थे, फलत वह १५ महीने के बाद ही वहा से अलग हो गये। मदरास के म्युनिसिपैलिटी मे नेता श्री श्रीनिवास आयगर काग्रेस के भी नेता हो गये—परन्तु सरकार की चक्की के पहिये वैसे धीरे-धीरे पीसते है, पर पीसते अचूक है। इसलिए थोडे ही दिनो में सरकार ने काग्रेसियो के लिए यह असम्भव कर दिया कि वे स्थानिक सस्थाओ के द्वारा रचनात्मक कार्यक्रम को आगे बढा सकें। वे जेल हो आनेवालो को नौकरी नही दिला सकते थे, खादी नही खरीद सकते थे, हिन्दी की शिक्षा नही दे सकते थे, शालाओ में चरखा नही चला सकते थे, राष्ट्रीय नेताओ को मानपत्र नही दे सकते थे और न म्युनिसिपैलिटी के स्कूलों पर राष्ट्रीय झण्डा फहरा सकते थे।

स्वराज्य-पार्टी मे फूट

१९२५ का साल बडी हलचल का साल रहा है। अब इतने समय के बाद जब हम पुरानी घटनाओ पर निगाह दौडाते हैं तो उस समय काग्रेस के भीतर भिन्न-भिन्न दलो में, और दलो के भीतर भिन्न-भिन्न वर्गो में, जो कशमकश चल रही थी उसकी ओर ध्यान गये बिना नही रह सकता। जब अपरिवर्तनवादी ही, जिनके जिम्मे खद्दर, अस्पृश्यता-निवारण और साम्प्रदायिक एकता के रूप में बची-खुची रचनात्मक बातें थी, आपस मे मतभेद उपस्थित कर रहे थे तो परिवर्तन-वादियो का कार्यक्रम तो नया और आन्दोलनकारी समझा जानेवाला कार्यक्रम था, फिर उनमें मत-भेद होना कोई आश्चर्य की बात न थी। स्वराज्य-पार्टी के सिद्धान्तो के विरुद्ध मध्यप्रान्त और महाराष्ट्र ने झण्डा खडा किया। ये प्रान्त बगाल के योग्य सहयोगी थे और जबतक देशबन्धु जीवित रहे, बगाल के साथ-साथ चलते रहे। देशबन्धु का स्वभाव [illegible]

करने का न था, वह उसे कठोरता के साथ कुचल देते थे। परन्तु उनकी मृत्यु होते ही महाराष्ट्र आदि प्रान्तो में अनहोनी बातें हो गईं। मध्यप्रातीय कौंसिल के अध्यक्ष श्री ताम्बे ने मध्यप्रान्त की सरकार की कार्यकारिणी का पद स्वीकार कर लिया। इसपर मध्यप्रान्त और बरार के नेताओ और बम्बई प्रान्त के महाराष्ट्र के नेताओ में खूब घमासान युद्ध हुआ। पण्डित मोतीलाल नेहरू ने भी श्री ताम्बे के आचरण पर और श्री केलकर और श्री जयकर जैसे व्यक्तियो के उनकी सफाई पेश करने पर बडी आपत्ति की और इन दोनो के विरुद्ध जाब्ता कार्रवाई करने की धमकी दी और कहा कि इन्होने "अपराध में सहायता की है।" इधर श्री केलकर और श्री जयकर ने भी बम्बई प्रान्त की स्वराज्य-पार्टी से इन्ही विचारो को दोहराने के लिए कहा।

१ नवम्बर को नागपुर में अखिलभारतीय स्वराज्य-पार्टी की बैठक हुई, जिसमें श्री श्रीपाद बलवन्त ताम्बे की कार्रवाई नियम के विरुद्ध और दल के साथ विश्वास-घात समझी गई और उनकी निन्दा की गई। फिर पण्डित मोतीलाल नेहरू श्री जयकर और केलकर के विद्रोह को कुचलने के लिए नागपुर से झटपट बम्बई पहुँचे। इस बीच इन दोनो ने 'प्रतियोगी सहयोग' की आवाज पहले से ही ऊँची कर रक्खी थी। इन्होने अखिलभारतीय स्वराज्य-पार्टी की कार्य-समिति से इस्तीफा दे दिया, यही नही, इसके बाद डॉ० मुजे, श्री जयकर और श्री केलकर ने बडी कौंसिल से भी इस्तीफा दे दिया, क्योकि वे स्वराज्य-पार्टी के टिकट पर चुने गये थे।

अब हम कानपुर-काग्रेस पर आते हैं। कानपुर को पटना के निर्णय पर सही करनी थी। पटना में भी यह बात सदिग्ध समझी जा रही थी कि बेलगाव के आदेश के विरुद्ध सूत कातने के, मिल्कियत का बटवारा करने के और कार्य-विभाग करने के सम्बन्ध में जो निश्चय किया गया है वह महासमिति भी स्वीकार करेगी या नही। इसके बाद यह बात और भी अधिक विचारणीय थी कि स्वराज्य-पार्टी के मूडीमैन-कमिटीवाले प्रस्ताव पर प्रस्तुत किये गये सशोधन में की गई माग की पुष्टि करेगी या नही। कानपुर-काग्रेस के अधिवेशन के सामने, जिसकी सभानेत्री भारत की कवयित्री सरोजिनी नायडू थी, इसी प्रकार के जटिल प्रश्न मौजूद थे। इस काग्रेस की एक अजूबा बात थी पिछले वर्ष के सभापति गाधीजी-द्वारा इस वर्ष की सभानेत्री श्रीमती सरोजिनी नायडू को काग्रेस का भार सौंपा जाना। गाधीजी केवल ५ मिनट बोले। उन्होने कहा कि "अपने ५ वर्ष के काम का पर्य्यालोचन करने के बाद मैं अपनी ऐसी एक भी बात नही पाता जिसे रद करूँ, न अपना ऐसा कोई वक्तव्य ही पाता हूँ जिसे वापस लू। यदि मुझे विश्वास हो जाय कि लोगो में जोश और उत्साह है तो मैं आज सत्याग्रह

आरम्भ कर दू। पर अफसोस! हालत ऐसी नही है।" सरोजिनीदेवी ने गिने-चुने शब्दो के साथ भार ग्रहण किया। उन्होने सभानेत्री की हैसियत से जो भाषण दिया वह कांग्रेस-मच से दिया गया शायद सबसे छोटा भाषण था और साथ ही वह मधुरता में अपना सानी न रखता था। उन्होने राष्ट्रीय एकता पर जोर दिया और उस राष्ट्रीय माग की चर्चा की जो बडी कौंसिल में पेश की गई थी और भय को दूर करने की सलाह दी। उन्होने कहा—"स्वतन्त्रता के युद्ध में भय ही एकमात्र अक्षम्य विश्वास-घात है, और निराशा एकमात्र अक्षम्य पाप।" फलत उनका भाषण मानो साहस और आशा की प्रतिमूर्ति था। इस सुकुमार हस्त-द्वारा अनुशासन और सहिष्णुता के उपयोग करने का फल यह हुआ कि कानपुर-कांग्रेस का अधिवेशन मजदूरो के प्रदर्शन और कुछ प्रतिनिधियो के उपद्रव को छोडकर, जिन्हें काबू करने के लिए जवाहरलाल जैसे कठोर व्यक्तित्व की आवश्यकता पडी, निर्विघ्न समाप्त हो गया।

कानपुर-कांग्रेस का अधिवेशन स्वभावत ही देशबन्धु दास, सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, डॉ० सर रामकृष्ण गोपाल भाण्डारकर और अन्य नेताओ की मृत्यु पर शोक-प्रकाश के साथ प्रारम्भ हुआ। उस समय देश में दक्षिण अफ्रीका से एक शिष्ट-मण्डल आया हुआ था। कांग्रेस ने उसका स्वागत किया और यह जाहिर किया कि 'एरिया रिजर्वेशन और इमिग्रेशन रजिस्ट्रेशन बिल', अर्थात् भिन्न-भिन्न जातियो के लिए पृथक् स्थान नियत करने और आकर बसने के लिए नाम लिखाने के सम्बन्ध में पेश किया गया बिल, १९१४ के गाधी-स्मट्स-समझौते के विरुद्ध है, और यह भी कहा कि १९१४ के समझौते का ठीक-ठीक अर्थ करने के लिए एक पचायत बैठाकर निपटारा करा लिया जाय। कांग्रेस ने इस प्रश्न के निपटारे के लिए एक गोलमेज-परिषद् की बात की पुष्टि की और सम्राट् की सरकार से अनुरोध किया कि यदि बिल पास हो जाय तो उसे स्वीकृति प्रदान न की जाय। बगाल-आर्डिनेन्स-एक्ट और गुरुद्वारा-आन्दोलन के कैदियो के सम्बन्ध में भी उपयुक्त प्रस्ताव पास हुए। बर्मा के गैर-बर्मन अपराधियो को निर्वासित करने और समुद्र-यात्रा करनेवालो पर कर लगाने के सम्बन्ध में पेश किये बिलो को नागरिको की स्वतन्त्रता पर नया आक्रमण समझा गया। उसके बाद कांग्रेस का मताधिकार-सम्बन्धी प्रस्ताव आया, जिसने २२ सितम्बर १९२५ के पटनावाले प्रस्ताव के (आ) भाग की पुष्टि की जिसमें कांग्रेस से, उस कोष को छोडकर जो अखिलभारतीय चर्खा-सघ के सुपुर्द कर दिया गया है, बाकी सारे कोष और मशीनरी का उपयोग देश-हित के लिए आवश्यक राजनैतिक कार्य में करने को कहा गया था। कांग्रेस ने सत्याग्रह अर्थात् सविनय-भग में अपनी आस्था प्रकट की और

इस बात पर जोर दिया कि सारे राजनैतिक कामो मे आत्मनिर्भरता ही एकमात्र पथ-प्रदर्शक समझी जाय। इसके बाद काग्रेस ने नीचे लिखा कार्यक्रम अपनाया —

कार्यक्रम

१—देश के भीतर काग्रेस का काम यह होगा कि देश-वासियो को उनके राजनैतिक अधिकारो के सम्बन्ध मे शिक्षा दी जाय और उन्हें इतना बल और प्रतिकार करने की शक्ति हासिल करने की तालीम दी जाय कि वे अपने अधिकार प्राप्त कर सके। इस उद्देश की पूर्ति के लिए काग्रेस का रचनात्मक कार्यक्रम पूरा किया जाय। इस रचनात्मक कार्यक्रम मे विशेषकर चर्खे और खद्दर के प्रचार, साम्प्रदायिक ऐक्य की वृद्धि करने, अस्पृश्यता-निवारण करने, दलित जातियो का उद्धार करने और नशे की चीजो का सेवन न करने पर जोर दिया जायगा और इस कार्यक्रम में स्थानिक सस्थाओ पर अधिकार करना, ग्राम-सगठन करना, राष्ट्रीय ढग से शिक्षा का प्रचार करना, मिल-मजदूरो और खेती का काम करनेवाले मजदूरो का सगठन करना, मजदूरो और मालिको, तथा जमीदारो और किसानो में सौहार्द्र स्थापित करना, और देश के राष्ट्रीय, आर्थिक, उद्योग-सम्बन्धी एव व्यापारिक हितो की वृद्धि करना शामिल रहेगा।

२—देश से बाहर काग्रेस का काम विदेशी राष्ट्रो में वस्तुस्थिति का प्रसार करना होगा।

३—यह काग्रेस देश की ओर से समझौते की उन शर्तो को मजूर करती है जो बडी कौंसिल की इण्डिपेण्डेण्ट और स्वराज्य-पार्टियो ने अपने १८ फरवरी १९२४ के प्रस्ताव-द्वारा सरकार के आगे रक्खी थी, और यह देखते हुए कि सरकार ने अभीतक कोई उत्तर नही दिया है, निश्चय करती है कि निम्नलिखित कारंवाई की जाय —

स्वराज्य-पार्टी जल्दी-से-जल्दी बडी कौंसिल में सरकार से उन शर्तो पर अपना आखिरी निर्णय सुनाने का अनुरोध करेगी और यदि फरवरी के अन्त तक कुछ निर्णय सरकार न दे सके या जो निर्णय सुनाया जाय उसे काग्रेस की कार्य-समिति-द्वारा नियुक्त विशेष समिति ने और उन सदस्यो ने, जिन्हें महासमिति नियुक्त करना चाहे, सतोष-जनक न समझा, तो स्वराज्य-पार्टी उचित कारंवाई-द्वारा बडी कौंसिल में सरकार को सूचित कर देगी कि अब वह पहले की तरह वर्त्तमान कौसिलो मे काम न करेगी। बडी कौंसिल और राज्यपरिषद् के स्वराजी-सदस्य बजट की नामजूरी के लिए वोट देंगे और तत्काल ही अपनी जगह छोडकर चले जायगे। जिन प्रान्तीय

कौंसिलो की बैठक उस अवसर पर न हो रही हो, उसके सदस्य फिर उन कौंसिलो में न जायगे और वे भी उसी प्रकार विशेष-समिति को इस बात से सूचित कर देंगे।

(२) उसके बाद स्वराज्य-पार्टी का कोई सदस्य—चाहे वह राज्यपरिषद् में हो, चाहे बड़ी कौंसिल में, चाहे छोटी कौंसिलो में—उनकी किसी बैठक में, या उनके द्वारा नियुक्त की गई किसी कमिटी में शरीक न होगा। हा, अपनी जगह को खाली घोषित होने से रोकने और प्रान्तीय बजटो को नामजूर करने या कोई नया कर लगानेवाले बिल को रद करने के लिए कौंसिलो में जाया जा सकता है।

इस कार्यक्रम के विस्तार के लिए विशेष समिति और महासमिति को अधिकार देने की शर्तों का भी उल्लेख इस लम्बे प्रस्ताव में था।

कानपुर-कांग्रेस का मुख्य प्रस्ताव बिना तू-तू मैं-मैं के पास न हो सका। पण्डित मदनमोहन मालवीय ने एक सशोधन पेश किया जिसका अनुमोदन श्री जयकर ने किया। उनका सशोधन इस प्रकार था —

"कौंसिलो में काम इस प्रकार जारी रक्खा जायगा कि उनका उपयोग शीघ्र ही पूर्ण उत्तरदायी सरकार के स्थापित करने में किया जा सके, जब राष्ट्रहित की वृद्धि सहयोग के द्वारा होगी तो सहयोग किया जायगा, और रुकावट डालने से होगी तो रुकावट डाली जायगी।"

इस सशोधन का अनुमोदन करते हुए ही श्री जयकर ने अपने और श्री [illegible] व डॉ० मुजे के बडी कौंसिल से इस्तीफा देने का जिक्र किया। इस चर्चा के दौरान में पण्डित मोतीलालजी पर भारतीय सैण्डहर्स्ट या स्कीन-कमिटी की सदस्यता स्वीकार करने के लिए भयकर आक्रमण किया गया। उन्होंने कहा—"बड़ी कौंसिल ने भारतीय सैण्डहर्स्ट की माग पेश की थी और सरकार ने कहा, 'अच्छा मार्ग दिखाओ।' हम लोग यह चाहते थे कि ऐसा मार्ग दिखाने के लिए, जिससे द्वारा सरकार हमारी मागें स्वीकार कर ले, उससे बात-चीत चलाई जाय। यदि इसी प्रकार सरकार हमसे सुधारो का मार्ग दिखाने को कहे तो हम निश्चय ही उसके साथ सहयोग करेंगे।"

अन्त में कांग्रेस और महासमिति की कार्रवाई के लिए हिन्दुस्तानी भाषा अपनाई गई। महासमिति को प्रवासी भारतवासियों के हितों की देख-भाल करने के लिए अपने अन्तर्गत एक वैदेशिक-विभाग खोलने का अधिकार दिया गया। अगला अधिवेशन आसाम में करना तय हुआ। डॉ० मुख्तारअहमद अन्सारी, श्री ए० रंगास्वामी आयगर और श्री के० सन्तानम प्रधानमंत्री नियत हुए। कानपुर-कांग्रेस

के कुछ ही दिनो बाद १६२६ की जनवरी के दूसरे सप्ताह में मि० बी० जी० हार्निमैन भारत वापस लौट आये।

कानपुर-कांग्रेस की एक विशेषता यह थी कि उसमें अमरीका के मि० होल्मृस मौजूद थे। यह वैसे अमरीकन कपडे पहने थे पर सिर पर गाधी-टोपी दिये थे। करतलध्वनि के बीच यह उठे और बोले—"कल मैंने डॉ० अब्दुलरहमान को यह दावा करते हुए सुना कि गाधीजी तो दक्षिण अफ्रीकन हैं। क्या मैं आज यह दावा नही कर सकता कि वह सारे ससार के हैं? क्या मैं यह नही कह सकता कि 'मित्र-मण्डल' (सोसाइटी आफ फ्रेन्ड्स), जिसकी ओर से मैं बोल रहा हूँ, उन्हें उसी आदर की दृष्टि से देखता है जिससे आप देखते हैं और आपकी ही भाति वह भी उनके काम में विश्वास करता है? मुझे कहना चाहिए कि हम लोग अपनी पाश्चात्य-सभ्यता की धुन मे बहुत गलत रास्ते पर चले गये हैं। हम लोग धन और शक्ति की खोज में बहुत आगे बढ गये है। हमारी सारी पाश्चात्य सभ्यता में यह एक बहुत बडा दुर्गुण है। हम पैसे से प्रेम करते रहे, फलत वह एक स्थान पर एकत्र हो गया। हम शक्ति के लिए लालायित रहे, फलत युद्धो पर युद्ध होते गये और सम्भवत और भी होंगे और अन्त में हमारी सभ्यता विध्वस हो जायगी। इसीलिए हम आपकी ओर प्रसन्नता-पूर्वक मुखातिब हुए है। आप एक नया और अधिक अच्छा मार्ग दिखा रहे हैं, और हम आशा करते है कि जहा हम प्रकृति और आविष्कारो की अच्छी-अच्छी चीजो को अपनाये रखेंगे, वहा हम उस भ्रातृभाव का अनुकरण करेंगे जिसकी अभिव्यक्ति आपके मध्य में इस महान् पैगम्बर ने की है।"

हिन्दू मुस्लिम दंगे

इस वर्ष को समाप्त करने से पहले हमें उन हिन्दू-मुस्लिम दगो का जिक्र करना है जो बीच-बीच मे १६२५ में और १६२६ में भी होते रहे। हिन्दू-मुस्लिम दगो का जिक्र करके हुए १६२५ की पहली मई को गाधीजी ने कलकत्ते के मिर्जापुर-पार्क में कहा था—"मैंने अपनी अयोग्यता स्वीकार कर ली है। मैंने स्वीकार कर लिया है कि इस रोग की औषधि बतानेवाले वैद्य की विशेषता मुझमे नहीं है। मै तो नहीं देखता कि हिन्दू या मुसलमान मेरी औषधि को स्वीकार करने के लिए तैयार हैं। इसलिए आजकल मैंने इस समस्या की यो ही उडती-सी चर्चा करके सन्तोष करना आरम्भ कर लिया है। मै यह कहकर सन्तोष कर लेता हूँ कि यदि हम अपने देश का उद्धार करना चाहते है तो एक-न-एक दिन हम हिन्दू और मुसलमानो को एक होना पडेगा। और

यदि हमारे भाग्य में ही यह बदा है कि एक होने से पहले हमें एक-दूसरे का खून बहाना चाहिए, तो मेरा कहना यह है कि जितनी जल्दी हम यह कर डालें हमारे लिये उतना ही अच्छा है। यदि हम एक-दूसरे का सिर तोडने पर उतारू है तो हमे ऐसा मर्दानगी के साथ करना चाहिए, हमें झूठ-मूठ के आसू न बहाने चाहिएँ, और यदि हम दूसरे के साथ दया नही करना चाहते तो हमें किसी दूसरे से सहानुभूति की याचना नही करनी चाहिए।"

१९२५ की जुलाई में सारे महीने-भर दगे होते रहे। इनमें प्रमुख स्थान दिल्ली, कलकत्ता और इलाहाबाद थे। बकर-ईद के अवसर पर निजाम की रियासत मे हुस्नाबाद नामक स्थान पर भी दगा हो गया। १९२५ का साल समाप्त करने से पहले सिक्खो की समस्या का जिक्र करना भी आवश्यक है। १९२५ में सिक्खो की समस्या ने शान्ति धारण कर ली थी। पजाब-कौंसिल में गुरुद्वारा-बिल पेश किया गया और पास हो गया, साथ ही सर मालकम हेली ने कहा कि यदि गुरुद्वारा-आन्दोलन के कैदी शर्तनामे पर दस्तखत करके नये कानून को मजूर कर लेंगे और पहले की भाति आन्दोलन न करने का जिम्मा लेंगे तो उन्हें छोड दिया जायगा। बहुतो ने इसपर क्रोध प्रकट किया, पर धीरे-धीरे क्रोध शान्त हो गया। बहुतसे कैदियो ने कानून मानने का जिम्मा लिया। शिरोमणि-गुरुद्वारा-कमिटी में इस बात को लेकर फूट पड गई। अधिकाश कैदी छोड दिये गये, पर कुछ पूरी सजा भुगतने के लिए जेलो में ही रहे।

: ७ :

कौंसिल का मोर्चा—१९२६

सहयोग की तरफ

१९२६ का आरम्भ कौंसिलो के कार्यक्रम के लिए कुछ विशेष शुभ न रहा। १९२३ की नवीनता का आकर्षण इस समय तक फीका पड चुका था। केवल 'युद्ध' की खातिर लगातार 'युद्ध' किये जाना कुछ थकानेवाली बात साबित हुई और नये वर्ष के आरम्भ में ही थकावट और प्रतिक्रिया के लक्षण दिखाई देने लगे।

वास्तव में १९२५ के अन्त में ही प्रतियोगी सहयोग की आवाज निश्चयात्मक रूप से सुनाई देने लगी थी। बडी कौंसिल २० जनवरी को खुलनेवाली थी, पर उससे पहले ही बम्बई-कौंसिल की स्वराज्य-पार्टी ने प्रतिसहयोगी-दल को उसके प्रचार-कार्य में सहायता देने का पूरा निश्चय कर लिया था।

६ और ७ मार्च को महासमिति की बैठक रायसीना (दिल्ली) में हुई, जिसमें कानपुर के निश्चय की पुष्टि की गई। एकबार फिर दिल्ली ने प्रकट किया कि "स्वराज्य के मार्ग में रोडे अटकानेवाले किसी भी कार्य का, चाहे वह सरकारी हो या और किसी प्रकार का, पूरे सकल्प के साथ मुकाबला किया जायगा। और विशेष रूप से उस समय तक कौंसिलो में गये हुए काग्रेसी सरकार-द्वारा प्रदान किये जानेवाले पदो को स्वीकार न करेंगे जबतक कि सरकार की ओर से सन्तोष-जनक उत्तर न मिलेगा।"

महासमिति की चर्चा करते हुए यहा यह भी कह देना उचित होगा कि ५ मार्च को कार्य-समिति ने २०००) हिन्दुस्तानी-सेवा-दल को और ४०००) विदेशी प्रचार-कार्य के लिए मजूर किया था। हिन्दुस्तानी सेवा-दल स्वयसेवको का वह दल था जिसका सगठन कोकनडा-काग्रेस के प्रस्ताव के अनुसार हुआ था। इसके दो वार्षिक अधिवेशन हो चुके थे—एक मौलाना शौकतअली की अध्यक्षता में बेलगाव में और दूसरा श्री तुलसीचरण गोस्वामी की अध्यक्षता में कानपुर में।

असेम्बली में वाक-आउट

बडी कौंसिल में जब बजट की चर्चा आरम्भ हुई तो पण्डित मोतीलाल नेहरू ने जाहिर किया कि मै और मेरे समर्थक मत देने में कोई भाग न लेंगे। कौंसिल-भवन की गैलरिया खचाखच भरी हुई थी, क्योंकि स्वराजियो के बडी कौंसिल से 'वाक-आउट' करने की बात पहले से ही लोगो को अच्छी तरह मालूम थी। पण्डित मोतीलाल नेहरू ने बताया कि सरकार ने देशबन्धु की सम्मानपूर्ण समझौते की बात का किस प्रकार तिरस्कार किया और सरकार को चेतावनी दी कि यदि उसने सावधानी से काम न लिया तो देशभर मे गुप्त-समितिया कायम हो जायेंगी। इतना कहकर नेहरूजी अपनी पार्टी के सदस्यो के साथ कौंसिल-भवन से बाहर चले गये।

इस 'वाक-आउट' के कारण एक और घटना भी हुई, जिसका संक्षिप्त वर्णन करना उचित है। अध्यक्ष पटेल ने इस 'वाक-आउट' का जिक्र करते हुए कहा कि चूकि कौंसिल की सबसे जबर्दस्त पार्टी कौंसिल-भवन छोडकर चली गई है, इसलिए अब भारत-सरकार कानून के अनुसार आवश्यक प्रातिनिधिक रूप इस कौंसिल का नही रह जाता है। अब यह बात भारत-सरकार ही निश्चित करे कि बडी कौंसिल की बैठक जारी रहे या नही ? उन्होंने सरकार से अनुरोध किया कि वह कोई विवादग्रस्त कानून पेश न करें, नही तो मुझे विवश होकर उन विशेष अधिकारो का उपयोग करके, जो भारत-सरकार-कानून ने मुझे प्रदान किये है, बैठक को अनिश्चित समय तक के लिए स्थगित करना पडेगा। दूसरे दिन उन्होंने बडी सज्जनता के साथ अपने शब्द वापस लिये और कहा—"मै यह भी कहना चाहता हूँ कि अच्छी तरह विचार करने के बाद मै इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि अध्यक्ष को अपने अधिकारो का जिक्र न करना चाहिए था, और न ऐसी भाषा का ही व्यवहार करना चाहिए था जिसका अर्थ सरकार को धमकी देने के रूप में किया जा सके, बल्कि कोई कार्रवाई करने से पहले मुझे देखना चाहिए था कि आगे क्या होता है।" इससे सरकार की चिन्ता मिट गई।

समझौते की असफल चेष्टा

असहयोग का जो पत्थर गया में ऊँचाई से ढलकना शुरू हुआ था वह १९२६ के आरम्भ मे साबरमती में करीब-करीब नीचे आ गिरा। हम यह देख ही चुके है कि प्रतिसहयोगी स्वतन्त्र और राष्ट्रीय-दलवालो के कितना निकट पहुँच गये थे। तदनुसार उन्होंने ३ अप्रैल को बम्बई में अन्य दलो के नेताओ के साथ एक बैठक की, जिसके फल-स्वरूप "इण्डियन नेशनल पार्टी" का जन्म हुआ। इस पार्टी का कार्यक्रम था,

शान्तिपूर्ण और वैध उपायो से (सामूहिक सत्याग्रह और करबन्दी को छोडकर) औपनिवेशिक स्वराज्य जल्दी स्थापित करने की तैयारी करना। और इसमें कौसिलो के भीतर प्रतियोगी-सहयोग की नीति वरतने की स्वतत्रता दी गई थी। पण्डित मोतीलाल नेहरू ने इस पार्टी के सगठन को स्वराज्य-पार्टी के विरुद्ध चुनौती समझा। कुछ समझौते की वात-चीत के वाद यह निश्चय किया गया कि स्वराज्य-पार्टी के दोनो दलो की एक वैठक २१ अप्रैल को यह देखने के लिए कि मेल सम्भव है या नही, सावरमती मे वुलाई जाय। इस वैठक में अन्य नेताओ के अलावा सरोजिनीदेवी, लाला लाजपतराय, श्री केलकर, जयकर, अणे और डॉ० मुजे भी थे। यहा महासमिति-द्वारा पुष्टि मिलने की शर्त रखते हुए समझौते पर हस्ताक्षर करनेवाले नेताओ के वीच में यह तय हुआ कि १९२४ की फरवरी मे स्वराजियो ने जो माग पेश की थी उसके सरकार-द्वारा दिये गये उत्तर को सतोप-जनक समझा जाय, यदि मन्त्रियो को प्रान्तो में अपने कर्तव्य का पालन करने के लिए आवश्यक अधिकार, उत्तरदायित्व और स्वेच्छापूर्वक कार्य करने की सुविधा कर दी जाय। भिन्न-भिन्न प्रान्तो की कौसिलो के काग्रेसी सदस्यो के ऊपर इस वात का निर्णय छोडा गया कि इस प्रकार दिये गये अधिकार पर्याप्त है या नही, पर साथ ही उनके निर्णय पर एक कमिटी की, जिसमें पण्डित मोतीलाल नेहरू और श्री मुकुन्दराव जयकर हो, पुष्टि मिल जाना आवश्यक रक्खा गया। 'इण्डिया १९२५–२६' में कहा गया है—"पर अभी इस समझौते की स्याही मुश्किल से सूखी होगी कि आन्ध्र प्रान्तीय-काग्रेस-कमिटी के सभापति श्री प्रकाशम् ने अपनी असहमति प्रकट की और कहा कि "काग्रेस की स्थिति को सावरमती मे कानपुर से भी अधिक कमजोर वना दिया गया।" अन्य अनेक प्रमुख काग्रेसवादियो ने भी इसी प्रकार का असतोप प्रकट किया। साधारणतया यह समझा जाने लगा, चाहे कुछ ही दिनो के लिए सही, कि स्वराजी शीघ्र ही फिर कौंसिलो में चले जायँगे और मन्त्रि-मण्डल कायम करेंगे। परन्तु प० मोतीलालजी ने यह प्रकट करके कि पद-ग्रहण करने से पहले तीन शर्तों का पूरा होना जरूरी है, वातावरण को स्वच्छ कर दिया। वे तीन शर्तें ये हैं —

(१) मत्री कौंसिलो के प्रति पूर्ण-रूप से उत्तरदायी समझे जायें, और उनपर सरकार का कोई शासन न रहे। (२) आय का एक उचित भाग "राष्ट्र-निर्माण" विभाग के लिए नियत किया जाय। (३) मन्त्रियो को हस्तान्तरित विभागो की नौकरियो पर पूरा अधिकार हो।

परन्तु सारी वातें फिर खटाई में पड गईं। श्री जयकर ने उस मसविदे को,

जो कमिटी के सामने रक्खा गया, समझौते के बिलकुल विरुद्ध बताया और कहा कि समझौते के ठीक-ठीक अर्थों के संबंध में संदेह और मतभेद को दूर करने के बहाने शर्तों का पूरी तरह खण्डन किया गया है। बस, इसके बाद से स्वराजियों और प्रतियोगी-सहयोगियों का मन-मुटाव बढ़ता गया, परन्तु अभी साबरमती के समझौते का महासमिति-द्वारा निपटारा होना था, जो ५ मई को हुई। इस बैठक में पंडित मोतीलाल नेहरू ने कहा कि "चूंकि शर्तों के ठीक-ठीक अर्थ के संबंध में समझौते पर हस्ताक्षर करने-वालों में इतना मतभेद है कि उसका दूर होना असम्भव है, इसलिए मैं पिछले कुछ दिनों से समझौते की जो बात-चीत चल रहा था वह भंग हो गई है, और इसलिए पैक्ट को समाप्त और रद समझा जाय।" वह इंग्लैण्ड जाना चाहते थे, इसलिए उन्होंने दो महीने की छुट्टी ली और श्री श्रीनिवास आयंगर ने उनका स्थान ग्रहण किया।

हिन्दू-मुसलिम दंगे

१९२६ के मध्य में हमें देश की राजनैतिक स्थिति का सिंहावलोकन करने के लिए ठहर जाना चाहिए। ६ अप्रैल १९२६ को लॉर्ड अर्विन भारत में आये। लगभग उसी समय कलकत्ते में बड़ा ही भयानक साम्प्रदायिक दंगा हो गया। ६ सप्ताह तक कलकत्ते की सड़कें हत्या-काण्ड और अव्यवस्था का अखाड़ा बनी रहीं। जगह-जगह सड़कों पर दंगे हुए, ११० जगह आग लगाई गई, मन्दिरों और मस्जिदों पर हमला किया गया। सरकारी बयान के अनुसार पहली मुठभेड़ में ४४ आदमी मरे और ५८४ घायल हुए और दूसरी मुठभेड़ में ६६ आदमी मरे और ३९१ घायल हुए। ६ सप्ताह के विध्वंस और हत्या-काण्ड के बाद दंगा शान्त हुआ। लॉर्ड अर्विन इन दंगों से बड़े बेचैन हुए। उन्होंने इस विषय पर जो भाषण दिये उनमें उन्होंने अपनी सारी आस्था और विह्वलता, सारी धर्म-भावना और सहृदयता रख दी। उन्होंने जनता को समझाया कि भारत के राष्ट्रीय जीवन और धर्म के नाम पर भारत की उस सुकीर्ति को बचाओ जिसे वर्तमान वैमनस्य मिटा रहा है।

अगस्त के महीने में हिल्टन-यंग-कमीशन ने मुद्रा और विनिमय पर अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की और सरकार ने उसके अनुसार झटपट १८ पेंसवाला बिल पेश कर दिया। सरकार की इस जल्दबाजी की निन्दा हुई और उसने १९२७ की फरवरी तक ठहर जाना मंजूर कर लिया, जिससे लोगों और जानकारों को यह निर्णय करने का अवसर मिले कि कीमतें १८ पेंस के अनुपात पर आकर ठहर रही हैं या नहीं।

सितम्बर में लाला लाजपतराय और पण्डित मोतीलाला नेहरू में बड़ी

कौंसिल के काम के सबध मे फिर मतभेद उठ खडा हुआ। लालाजी का खयाल था कि स्वराजियो की 'वाक-आउट' की नीति हिन्दू-हितो के लिए स्पष्टतया हानिकर है। वह पद-ग्रहण करने के सम्बन्ध में साबरमती के समझौते की पुष्टि के पक्ष में भी थे। इसलिए उन्होने बडी कौसिल मे काग्रेस-पार्टी से इस्तीफा दे दिया। बडी कौसिल की अवधि भी शीघ्र ही समाप्त होनेवाली थी। नये निर्वाचन सिर पर मौजूद थे।

इसी अवसर पर सर अब्दुलरहीम भारत-सरकार की कार्यकारिणी मे एक मुसलमान की नियुक्ति की चेष्टा कर रहे थे। लॉर्ड अर्विन ने उसका करारा उत्तर दिया—"किसकी नियुक्ति सार्वजनिक हितो के लिए सबसे अधिक लाभकारी सिद्ध होगी, इसका निर्णय करने के सबध में गवर्नर-जनरल स्वतत्र रहेगा।" वास्तव में लॉर्ड अर्विन हरेक को साम्प्रदायिक ऐक्य के लाभ से प्रभावित कर रहे थे।

१६२६ के नवम्बर में निर्वाचन हुआ। मदरास में काग्रेसी उम्मीदवार—अब वे स्वराजी न कहलाते थे—पूर्ण-रूप से विजयी हुए। लॉर्ड बर्कनहेड प्रतीक्षा कर रहे थे कि देखें, गोहाटी में काग्रेस के सहयोग करने का कोई लक्षण दिखाई देता है या नही। श्री एस० श्रीनिवास आयगर गोहाटी-काग्रेस के सभापति चुने गये।

गोहाटी-कांग्रेस

गोहाटी-काग्रेस स्वभावत ही तनातनी के वातावरण में हुई। तनातनी का कारण सहयोग और असहयोग का पारस्परिक सघर्ष था। यह याद रखने की बात है कि आरम्भ मे असहयोग का अर्थ लगातार और एक-सी रुकावट डालना था, उसके बाद इस नीति का अनुसरण उस अवस्था में जब कौसिलो में स्वराजियो का मताधिक्य हो, करने की बात कही गई। धीरे-धीरे यह सहयोग लगभग असहयोग के निकट आ लगा, क्या कौंसिलो की कमिटियो की निर्वाचन द्वारा प्राप्त होनेवाली जगहो के सम्बन्ध में, और क्या भारत-सरकार की कमिटियो की नामजद जगहो के सम्बन्ध मे। अन्त में यह असहयोग साबरमती में सहयोग के आस-पास घूमने लगा, पर झिझक के साथ। कौंसिल-पार्टी इस सम्बन्ध में बात-चीत चलाने को तो तैयार थी, पर स्वीकार करने से सकोच करती थी। इसके अलावा स्वराज्य-पार्टी मे भी सहयोग करने की प्रवृत्ति मौजूद थी। पर वह राष्ट्रीय-दल, स्वतन्त्र-दल या उदार दलवालो की स्थिति अपनाने को तो तैयार न थी। सहयोग के विचार को तो वह खिलवाड में उडाती थी, परन्तु स्वराजी खुद प्रतिसहयोग की, सम्मान-पूर्ण सहयोग की, सम्भव होने पर सहयोग

और आवश्यक होने पर अडंगा डालने की, और सुधारो के मामले में सहयोग करने की बात करते जरूर थे। इन्ही सूक्ष्म पर पूर्ण-रूप से व्यावहारिक प्रश्नो ने प्राग्ज्योतिषपुर (गोहाटी) में आपस में खिंचाव पैदा कर दिया था। साथ ही सरकार भी खुल्लम-खुल्ला प्रशसा करके, और अप्रत्यक्ष-रूप से उसे आमन्त्रित करके, प्रलोभन दे रही थी और उन सारे हथकण्डो से काम ले रही थी, जिनके द्वारा अनिश्चित मस्तिष्क और भीरु-हृदय काबू में आते हैं।

स्वामी श्रद्धानन्द की हत्या

यह खिंचाव ही काफी सताने और तपानेवाला था, पर दुखान्त न था। किन्तु जब अकस्मात् गोहाटी मे यह समाचार पहुँचा कि एक मुसलमान ने स्वामी श्रद्धानन्द को रोगशय्या पर, उनसे मुलाकात करने के बहाने, गोली मार दी तो यह और भी बढ गया। जिस दिन यह समाचार मिला उस दिन गोहाटी में कांग्रेस के सभापति का हाथी पर जुलूस निकाला जानेवाला था। आसाम हाथियो का देश ठहरा, इसलिए वह कांग्रेस के सभापति का सम्मान अद्भुत और अपूर्व ढंग से करना चाहता था। पर जुलूस का विचार छोड देना पडा। हिन्दू-मुसलमान दोनों में इस दुखदायी घटना से शोक छा गया।

गोहाटी के प्रस्ताव हस्बमामूल थे। स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द के सम्बन्ध में प्रस्ताव गांधीजी ने पेश किया और अनुमोदन मौलाना मुहम्मदअली ने। गांधीजी ने समझाया कि मजहब की असलियत क्या है, और हत्या के कारणो को बताया—"शायद अब आप लोग समझ जायँगे कि मैंने अब्दुलरशीद को भाई क्यों कहा। मैं [illegible] उसे स्वामीजी की हत्या का दोषी तक नहीं ठहराता। दोषी तो वास्तव में वे हैं, जिन्होंने एक-दूसरे के विरुद्ध घृणा को उत्तेजित किया।" केनिया का मामला [illegible] था। केनिया में प्रवासी भारतीयों के विरुद्ध कानून और भी कठोर होता जा रहा था। आरम्भ में कर २० शिलिंग था। फिर वह मुद्रा-व्यवस्था [illegible] बढाकर ३० शिलिंग कर दिया गया और उसके बाद कानून के द्वारा ४० शिलिंग [illegible] दिया गया। इस प्रकार वहां यूरोपियन [illegible] भारतीयों की स्वतंत्रता के और उनकी आकांक्षाओं के विरुद्ध की जा रही थी। [illegible] के सम्बन्ध में यह स्पष्ट कर दिया गया कि—

(अ) जबतक सरकार राष्ट्रीय मांग का [illegible] की या महासमिति की राय में सन्तोषजनक हो, [illegible]

या सरकार-द्वारा प्रदान किये जानेवाले और किसी पद को स्वय ग्रहण न करेंगे, और अन्य पार्टियो-द्वारा मन्त्रि-मण्डल की रचना का विरोध करेंगे।

(आ) जबतक सरकार उपर्युक्त प्रकार का उत्तर न देगी तबतक कागेसवादी (ई) धारा में वर्णित बातो का ध्यान रखते हुए धन-सम्बन्धी मागो को अस्वीकार करेंगे और बजटो को रद करेंगे, जब कि महासमिति की आज्ञा कोई और प्रकार की न हो।

(इ) जिन कानूनो के द्वारा नौकरशाही अपनी शक्ति मजबूत करना चाहती हो उनके सम्बन्ध मे किये गये सारे प्रस्तावो को काग्रेसवादी फेक देंगे।

(ई) काग्रेसवादी ऐसे प्रस्ताव पेश करेंगे और ऐसे प्रस्तावो और बिलो का समर्थन करेंगे जो राष्ट्रीय जीवन की उचित वृद्धि के लिए, देश के आर्थिक, कृषि-सम्बन्धी, उद्योग और व्यापार-सम्बन्धी हितो की उन्नति के लिए, और व्यक्तिगत तथा भाषण देने, सभा-सगठन करने और समाचार-पत्रो की आजादी और फलत नौकरशाही को स्थान-च्युत करने के लिए आवश्यक हो।

(उ) काग्रेसवादी कृषको की दशा में उन्नति करने के निमित्त ऐसे प्रस्ताव स्वय पेश करेंगे या उनका अनुमोदन करेंगे, जिनके द्वारा किसानो को मौरूसी हक प्राप्त हो और जिनके द्वारा किसानो की दशा में शीघ्र ही सुधार हो।

(ऊ) और खेती का काम करनेवाले और मिलो में काम करनेवाले मजदूरो के हितो की रक्षा करेंगे और जमीदार और किसान और मजदूर के पारस्परिक सम्बन्ध में सामजस्य स्थापित करेंगे।

बगाल के नजरबन्दो के लिए विशेष कानून पास करने की नीति को धिक्कारा गया। देश में और देश के बाहर काम करने के सम्बन्ध में, हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के सम्बन्ध में, गुरुद्वारा-आन्दोलन के कैदियो के और मुद्रा-नीति के सम्बन्ध मे उपर्युक्त प्रस्ताव पास किये गये। अगले अधिवेशन के लिए स्थान नियत करने का काम महासमिति के ऊपर छोड दिया गया।

गोहाटी-काग्रेस ने ग्राम-सगठन के काम पर जोर दिया और उन काग्रेस-वादियो के लिए, जो प्रतिनिधियो के निर्वाचन के लिए या काग्रेस-सस्था की किसी भी प्रकार की समिति या उपसमिति के निर्वाचन के लिए राय देना चाहते हो, या जो स्वय निर्वाचित होना चाहते हो या काग्रेस की किसी भी सस्था की बैठक या समिति या उपसमिति में भाग लेना चाहते हो, खद्दर पहनना लाजिमी कर दिया।

इस जमाने में कांग्रेस का काम वार्षिक अधिवेशनो में लम्बे-चौडे प्रस्ताव पास करना और कौंसिलो में मुठभेड करते रहना मात्र रह गया था। पर एक बात ऐसी भी थी जिसने उन दिनो में विशेषता धारण कर ली थी। जब से अखिल-भारतीय चर्खा-सघ बना खद्दर, ग्रामोन्नति और मितव्ययिता के पवित्र वातावरण में पनपने लगा। जिन स्त्री-पुरुषो ने खद्दर का व्रत ले लिया था वे अथक् रूप से इसके प्रचार में लगे हुए थे। वार्षिक प्रदर्शिनियो के द्वारा सिद्ध हुआ कि कताई ने कितनी उन्नति कर दिखाई है। विहार ने गोहाटी के अवसर पर खद्दर तैयार करने में अपनी छ-सात साल की जो उन्नति दिखाई वह सारे देश के लिए दृष्टात-स्वरूप थी। दो-एक वर्षो को छोडकर इधर वाकी वर्षो में प्रदर्शिनिया, जो अब कांग्रेस का अनिवार्य अग हो गई है, सोलह आने खद्दर की प्रदर्शिनिया हो गई हैं। इन प्रदर्शिनियो ने देश की राजनैतिक, सामाजिक और सास्कृतिक उन्नति के साथ ही साथ आर्थिक उन्नति की ओर भी ध्यान देने मे सहायता पहुँचाई है और लोगो को विश्वास दिला दिया है कि स्वराज्य का अर्थ है 'निर्धनो के लिए भोजन और वस्त्र'।

: ८ :

कांग्रेस का 'कौंसिल-मोर्चा'—१९२७

बड़ी कौंसिल में कांग्रेस का युद्ध

अब हमें भिन्न-भिन्न कौंसिलो में कांग्रेस-पार्टी-द्वारा किये गये काम का पर्यालोचन करना है। यह याद रहे कि बगाल और माध्य-प्रान्त में पिछले तीन साल से द्वैध-शासन का अंत हो गया था। १९२७ में इन दोनो प्रान्तो में यह फिर कायम कर दिया गया। बगाल में मन्त्री के वेतन की माग के पक्ष में ९४ रायें आईं, विपक्ष में ८८। मध्य-प्रान्त में पक्ष में ५५ और विपक्ष में १६। १९२६ के मार्च में स्वराज्य-पार्टी बडी कौंसिल से उठकर चली गई। उसका इरादा नये निर्वाचन समाप्त होने तक आने का न था। पर जब सरकार ने चाल चलकर १६ पेंस की बजाय १८ पेंस की दर लगाने का प्रस्ताव पेश किया तो स्वराज्य-पार्टी एक मिनट के लिए कौंसिल-भवन में आई और प्रस्ताव को अक्तूबर तक के लिए, अर्थात् वर्तमान कौंसिल भग होने तक, स्थगित करा दिया। जब बडी कौंसिल की नई बैठक हुई तो हरेक को १८ पेंस की दरवाली बात पर उत्तेजना हो रही थी। प्रारम्भिक बैठक में पण्डितजी ने सरकार की नीति के ऊपर अपना पहला आक्रमण आरम्भ किया। उन्होने सत्येन्द्रचन्द्र मित्र की—जो जेल में बन्द रहते हुए भी निर्वाचन के लिए चुने गये थे—अनुपस्थिति की चर्चा करने के लिए कौंसिल की बैठक स्थगित करने का प्रस्ताव पेश किया। अभी हाल ही में १९३५ में बडी कौंसिल में ठीक इसी प्रकार का प्रस्ताव श्री शरतचन्द्र वसु की अनुपस्थिति के सम्बन्ध में पास हुआ। श्री शरतचन्द्र वसु निर्वाचन के समय जेल में शाही कैदी थे। पण्डितजी का कहना था कि श्री मित्र को जेल में बन्द रखकर सरकार बडी कौंसिल के हक पर और उन्हें चुननेवालो के अधिकारो पर आघात कर रही है। इस प्रश्न पर सरकार १८ रायो से हारी। पर तो भी श्री मित्र को बडी कौंसिल में भाग लेने के लिए स्वतन्त्र न किया गया। बगाल के नजरबन्दो का प्रश्न भी उठाया गया। पण्डितजी की माग मूल प्रस्ताव के सशोधन के रूप मे थी, जिसमें उन्होने कहा था कि या तो नजरबन्द छोड दिये जायें या उनपर मामला चलाया जाय।

पण्डितजी का संशोधन १३ रायो की अधिकता से पास हो गया। श्री मिश्रवाले प्रस्ताव के बाद बडी कौंसिल को स्थगित करने के लिए और भी कई प्रस्ताव पेश किये गये। उनमें से एक चीन को सेनायें भेजने के सम्बन्ध में था। दूसरा फिजी को भेजे गये भारतीय शिष्ट-मण्डल की रिपोर्ट प्रकाशित न करने के सम्बन्ध में था। इन प्रस्तावो को पेश करने की अनुमति नही मिली। एक और प्रस्ताव रेलवे-बजट की बहस समाप्त होने और बडे बजट के पेश होने तक विनिमय की दरवाले प्रस्ताव को स्थगित करने के सम्बन्ध में था। यह प्रस्ताव ७ अधिक मत से पास हो गया। अन्तिम प्रस्ताव खड्गपुर की और बगाल-नागपुर-रेलवे के अन्य स्थानो की हडताल की चर्चा करने के सम्बन्ध में था। इसके बाद सरकार में और निर्वाचित सदस्यो में कई प्रश्नो पर मुठभेड हुई। उनमें से एक प्रश्न फौलाद-संरक्षण-बिल-सम्बन्धी था। इस विषय पर दो-एक शब्द कहना अप्रासगिक न होगा। १९२३ के आसपास भारतीय फौलाद और लोहे के उद्योग को सरक्षण प्रदान करने का प्रश्न उठाया गया। टैरिफ-बोर्ड ने सरकार से आर्थिक सहायता देने की सिफारिश की और तीन वर्ष के बाद इस प्रश्न पर फिर विचार करने की भी सिफारिश की। यह समय बीत गया। इसके बाद इस प्रश्न पर दुबारा विचार किया गया तो टैरिफ-बोर्ड इस नतीजे पर पहुँचा कि बाहर से आनेवाले लोहे और फौलाद के माल पर अधिक चुगी लगाई जाय, पर अग्रेजी माल पर एकसी चुगी लगे, और अन्य देशो के माल पर भिन्न-भिन्न प्रकार की चुगिया लगाई जायें। यह साम्राज्य के माल को तरजीह देने का प्रश्न था और लोकमत इसके विरुद्ध था। पर इस मामले पर खूब बहस करने के बाद सरकारी योजना को बडी कौंसिल ने स्वीकार कर लिया। राष्ट्रीय-दल के उपनायक श्री जयकर ने सारे बजट को रद करने का प्रस्ताव पेश किया और इस विषय पर चर्चा होने के बाद श्री जयकर का प्रस्ताव ८ या ९ रायो से पास हो गया। अब सबसे बडा प्रश्न १८ पेंस का आया। इसका प्रभाव भारत के मिल-मालिको और व्यापारियो पर ही नहीं, किसानो पर भी पडता था। कच्चा माल और अन्न बाहर भेजनेवालो पर इसका प्रभाव विशेष रूप से पडता था। युद्ध से पहले और युद्ध के समय पौण्ड की दर १५) थी। अब वही १३।‌-)४ के बराबर हो गई। दूसरे शब्दो में बाहर से माल मगानेवाले को माल मगाने का उत्तेजन दिया गया, क्योकि विदेशी माल फी रुपया २ पेंस सस्ता हो गया या फी १६ पेंस २ पेंस कम हो गया, अर्थात् ८ या १२½% सस्ता हो गया। इसी प्रकार बाहर भेजे जानेवाले कच्चे माल के सम्बन्ध में देखा जाय तो एक पौण्ड की कीमत का कपडा जो पहले १६ पेंस की दर पर भेजा जाता था, और १५) में

पटता था, अब १३।-)४ को पडने लगा, और जो कच्चा माल पौण्ड की कीमत का पहले १५) में विकता था, अब १३।-)४ में विकने लगा। इस प्रकार १९२५ में बाहर भेजे जानेवाले माल का हिसाब लगाया जाय तो किसान को ३१६ करोड के आठवें भाग का अर्थात् लगभग ४० करोड का हर साल घाटा होता रहेगा। यदि साल-भर में बाहर से आनेवाला माल २४९ करोड का था तो यह कहना कि बाहर से माल मगानेवाले देश को ३१ करोड का नफा रहा, उसके लिए कोई सतोष प्रदान नही कर सकता, क्योकि अब भी वह ४० करोड के घाटे में अर्थात् कुल मिलाकर ९ करोड के वार्षिक घाटे में रहा। इस प्रकार भारत जैसे देश को, जिसका व्यापारिक जमा-खर्च उसके अनुकूल है, अर्थात् वह बाहर माल जितना भेजता है उससे कम माल मगाता है, इस प्रकार का घाटा निरन्तर उठाना पडेगा। यही कारण था कि इस प्रश्न पर घमासान युद्ध हुआ, पर लोकमत को ३ रायो से हारना पडा और सरकार के पक्ष में ६८ रायें आईं। फौलाद-रक्षण, आर्थिक और दर-सम्बन्धी समस्याओ का निपटारा होने के बाद, १९२७ में बडी कौंसिल की दिल्ली की बैठक में कांग्रेस के लिए और कोई महत्त्वपूर्ण काम न रहा।

यहा हम कुछ रोचक घटनाओ का जिक्र करना ठीक समझते हैं। अध्यक्ष पटेल एकबार फिर अध्यक्ष चुने गये। उन्होने गाधीजी को अपने वेतन से १६५६) मासिक देते रहने का वचन दिया और २०००) अपने व्यय और अपने पद के अनुरूप मर्यादा और आराम के लिए रख छोडे। गाधीजी इस थाती का प्रबन्ध-भार अकेले अपने ऊपर लेने को तैयार न थे। इसलिए और नेताओ से सलाह ली और दूसरे ट्रस्टी उसमें शामिल किये। ३१ मई १९३५ को गाधीजी ने गुजरात-प्रान्त के रास नामक स्थान पर एक बालिका-विद्यालय का उद्घाटन करते हुए कहा कि इस फण्ड के मद्धे उनके पास ४०,०००) हैं और उनके व्याज में से १०००) खर्च किया गया है।

गाधीजी ने साल-भर-क्षेत्र-सन्यास का जो व्रत कानपुर मे धारण किया था उसकी मीयाद पूरी हो गई थी। उन्होने हाल ही में राजनीति मे जो विश्राम ग्रहण किया है और उसे जो लोग विचित्र या सनक समझते होंगे, वे इस कानपुरवाले व्रत के द्वारा इसका रहस्य समझ जायेंगे। जब कभी कांग्रेस ने उनकी सलाह की अवहेलना की, उन्होने उसके लिए रास्ता साफ कर दिया कि जिधर चाहे जाय। उन्होने काम का आरम्भ देशबन्धु-स्मृति-कोष के लिए विहार में दौरा करके किया। इस प्रकार सग्रह किया हुआ धन खद्दर-प्रचार में लगाया गया। कौंसिल के काम में उनके लिए कोई आकर्षण न था। लाला लाजपतराय तक को यह काम सार-हीन

प्रतीत हुआ था। उन्होंने कौंसिल के कार्य को निस्सार और शक्तियों का अपव्यय मात्र बताया था। लालाजी के बाद एस० श्रीनिवास आयंगर की बारी थी, जिन्होंने कहा, "बड़ी कौंसिल ऐसा स्थान नहीं, और प्रान्तीय कौंसिलें तो और भी कम, जहां राष्ट्रीय रूप में अड़ंगा-नीति सफल हो सके।"

दक्षिण अफ्रीका

१९२४ में दक्षिण-अफ्रीका में स्थिति बहुत ही बुरी थी और जनरल-स्मट्स 'सेग्रेगेशन बिल' पास कराने ही वाले थे कि भारतीय कांग्रेस के अनुरोध से सरोजिनी-देवी पूर्वी-अफ्रीका से दक्षिण-अफ्रीका तक गईं और उनका बड़े जोर का स्वागत हुआ। बिल लगभग पास हो चुका था, पर जनरल स्मट्स की सरकार ने इस्तीफा दिया, इसलिए वह बिल भी त्याग दिया गया। १९२५ में जनरल हर्टजोग ने अधिकार प्राप्त किया और एक पहले से भी अधिक कठोर बिल तैयार किया गया। इस बिल का नाम था 'क्लास एरिया बिल।' यदि वह यूनियन पार्लमेण्ट में पेश किया जाता तो सरकार और विरोधी दल दोनों इसके लिए स्वीकृति दे देते। दीनबन्धु एण्डरूज से गांधीजी और कांग्रेस ने वहां जाने का अनुरोध किया और उन्होंने तत्काल ही यह आवाज उठाई कि यदि बिल पास हो जायगा तो गांधी-स्मट्स-समझौता भंग हो जायगा। बाद को भारत-सरकार ने पैडीसन-शिष्ट-मण्डल भेजा, जिसकी ओर यूनियन-सरकार ने अधिक ध्यान नहीं दिया। पर धीरे-धीरे यह तय हुआ कि प्रस्ताव को उस समय तक रोक रक्खा जाय जबतक भारत-सरकार का शिष्ट-मण्डल, जिसे यूनियन-सरकार के साथ समझौता करने का अधिकार प्राप्त है, पहुँचकर दक्षिण-अफ्रीका-प्रवासी भारतीयों की स्थिति के सम्बन्ध में अच्छी तरह से चर्चा न कर ले।

१६ अक्तूबर १९२६ को दक्षिण-अफ्रीका के लिए एक भारतीय शिष्ट-मण्डल के नियत किये जाने की घोषणा हुई, जिसके नेता सर मुहम्मद हबीबुल्ला थे। १७ दिसम्बर १९२६ को एक परिषद् हुई, जिसका उद्घाटन दक्षिण-अफ्रीका के प्रधान-मन्त्री जनरल हर्टजोग ने किया। यह अधिवेशन १९२७ की १३ जनवरी तक रहा और एक चालू समझौता दोनों प्रतिनिधि-मण्डलों में हुआ।

दक्षिण-अफ्रीका की यूनियन-सरकार ने भारत-सरकार से प्रार्थना की कि वह दोनों सरकारों में लगातार व कारगर सहयोग बनाये रखने के लिए एक एजण्ट नियुक्त करे।

जब प्रथम केपटाउन-परिषद् खतम हुई तो गांधीजी ने, जो दक्षिण-अफ्रीका एजण्ट भेजने के पक्ष में थे ही, भारत के समाचार-पत्रों में माननीय श्रीनिवास शास्त्री का नाम पेश किया। सरकार व भारतीय-जनता फौरन ही इस सलाह से सहमत हो गये। जैसा हम बाद में देखेंगे, श्री शास्त्री की नियुक्ति का परिणाम अच्छा ही रहा।

हिन्दू-मुस्लिम-समस्या का हल

जब गांधीजी ने अपना दौरा शुरू किया तो राजा-महाराजाओं के दिल का डर तो अब निकल चुका था और उनमें से कुछ ने तो गांधीजी को बुलाना भी शुरू कर दिया। वे अब खद्दर को इस नजर से न देखकर कि वह कांग्रेस-स्वयंसेवकों के फौजी-दल की राष्ट्रीय-पोशाक है, इस नजर से देखने लगे कि वह देश के आर्थिक उत्थान के लिए जरूरी चीज है। उन्होंने गांधीजी को एक सच्चा और ईमानदार आदमी पाया, हां, राजनैतिक क्षेत्र में काम करने के उनके उपाय उन्हें गुमराह करनेवाले और उनके राजनैतिक विचार कुछ सनकियों-जैसे मालूम होते थे। गांधीजी कुछ समय तक ही दौरा कर पाये थे कि बीमार पड़ गये। जब बम्बई में १५ व १६ मई को महासमिति की बैठक हुई, कार्य-समिति ने हिन्दू-मुस्लिम-समस्या का एक हल बनाकर उसके सामने पेश किया। महासमिति ने उसे मंजूर भी कर लिया। लेकिन आज इतने समय बाद जब हम उस हल को पढ़ते हैं और इस बात पर विचार करते हैं कि हिन्दू-मुस्लिम-समस्या में उस समय से अबतक कितने उलट-फेर हो गये हैं, तो यह बात हमारे दिमाग में आये बिना नहीं रह सकती कि बम्बईवाला हल वास्तविकता से कोसों परे था। उसके बारे में इतना ही कहना काफी होगा कि उसने प्रान्तों व केन्द्रीय धारा-सभाओं में संयुक्त-निर्वाचन-प्रणाली नियत की थी और आबादी के हिसाब से जगहों का बटवारा किया था। साथ में यह शर्त भी जोड़ दी गई कि यदि भिन्न-भिन्न जातियों में आपस में समझौता हो सके तो सब पंजाब के सिक्खों के अल्प-संख्यक जातियों के साथ रिआयत की जाय और उन्हें हिस्से से ज्यादा जगह दे दी जायें और जिस हिसाब से उन्हें प्रान्तों में अधिक जगहें दी जायें वही हिसाब बड़ी कौंसिल की जगहों के बटवारे में भी लागू हो।

चीन की आजादी की लड़ाई के साथ भारतीयों की सहानुभूति प्रकट की गई और चीन को फौजें भेजने की भारत-सरकार की कार्रवाई की निन्दा की गई, साथ-ही-साथ फौजों की वापसी की भी मांग की गई। हिन्दुस्तानी-सेवा-दल ने चीन

को एम्बुलैन्स कोर भेजने का जो इरादा किया था उसकी भी महासमिति ने प्रशंसा की। ब्रिटेन का प्रस्तावित ट्रेड-यूनियन-कानून, बंगाल-कांग्रेस का झगड़ा, मजदूरों का संगठन, नागपुर का सत्याग्रह तथा ब्रिटिश माल का बहिष्कार ये अन्य विषय थे जिनपर महासमिति ने उपयुक्त प्रस्ताव पास किये। इनमें आखिरी विषय पर गौर से विचार होना था।

इस समय मई के चौथे सप्ताह में एक बड़ा आनन्ददायक समाचार प्राप्त हुआ। चार साल के जेल-जीवन के बाद सुभाष बाबू छोड़ दिये गये। लॉर्ड लिटन इस विषय में जरा घबराते रहते थे, अतः बंगाल के नजरबन्दों के साथ नरमी दिखाने का काम सर स्टैनले जैकसन के जिम्मे पड़ा। सुभाष बाबू का स्वास्थ्य पूरी तरह से बिगड़ गया था और इसी वजह से सबको बड़ी फिक्र होने लगी थी।

गुजरात की बाढ़

जुलाई १९२७ के अन्त में गुजरात प्रान्त में भीषण बाढ़ के रूप में एक दैवी विपत्ति आ गई। चार-पांच दिन में ५० इंच से अधिक मूसलाधार पानी बरसने के कारण बहुत से गांव बह गये। मवेशी, झोंपड़ियां, कपड़े-लत्ते कुछ न बचा, हजारों लोग बे-घर-बार हो गये। ४,००० घर बाढ़ की झपेट में आ गये। इन गांवों में ५०-६० फी सदी और कहीं कहीं ९० फी सदी मकान तक गिर गये। अहमदाबाद म्यूनिसिपल कमिटी तथा गुजरात प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी के अध्यक्ष सरदार पटेल के नेतृत्व में करीब २,००० स्वयंसेवकों ने इस बाढ़ में गजब का काम किया। एक सप्ताह तक तो सरकार की शासन मशीनरी बेकार पड़ी रही। सरकारी कर्मचारी किंकर्तव्य विमूढ़ से हो गये, लेकिन कांग्रेसी स्वयंसेवकों ने पानी के अपार सागर को चीर कर विपत्ति ग्रस्त लोगों को भोजन और कपड़े की सहायता पहुंचाई। कई महीनों तक यह सहायता-कार्य चलता रहा और किसानों को मकान बनाने, बीज बोने तथा हल-बैल खरीदने आदि के कार्यों में कांग्रेसी स्वयंसेवकों ने सरकार का पूरा सहयोग दिया। सरकार ने १,२६,००,००० रुपया दुर्भिक्ष सहायता में दिया। अन्य संस्थाओं ने भी ३ लाख रुपया एकत्र किया। सभी संस्थाएं [illegible] के नेतृत्व में एक साल तक काम करती रहीं। बम्बई के तत्कालीन [illegible] सर चुन्नीलाल मेहता ने इन स्वयंसेवकों की और स० [illegible] के [illegible] की बड़ी प्रशंसा की।

दंगों की बाढ

सन् १९२७ की गर्मियो मे अन्य सालो की भाति कोई मार्के का कानून पास नही हुआ, लेकिन देश में हिन्दू-मुस्लिम दगो की बाढ-सी आ गई। सबसे भीषण दगा लाहौर में हुआ, जो ३ मई से ७ मई तक होता रहा और जिसमें २७ व्यक्ति मारे गये और २७२ घायल हुए। विहार, मुलतान (पजाब), बरेली (युक्त-प्रान्त) व नागपुर (मध्य प्रान्त) में भी इसी प्रकार के दगे हुए। लाहौर के बाद नागपुर का दगा इन सबमें भीषण था, जिसमे १९ व्यक्ति मारे गये और १२३ घायल हुए। इन दगो के पहले क्या-क्या घटनायें घटी, जो इन दगो मे कछ का कारण बनी, इसके बारे में कुछ कहना आवश्यक है। तीन साल पहले एक किताब छपी थी, जिसका नाम था 'रगीला रसूल'। सरकार ने उसके लेखक पर मुकदमा चलाया, जो दो साल तक चलता रहा। अदालत ने दो साल की सजा का हुक्म सुनाया जो अपील में भी बहाल रहा, लेकिन हाईकोर्ट ने सजा रद कर दी और लेखक को बरी कर दिया। 'रिसाला वर्तमान केस' नाम का एक केस और भी हुआ, जिसमें अभियुक्त को सजा हो गई। इन दो मुकदमो का यह फल हुआ कि सरकार ने कानून मे अनिश्चितता देखकर अगस्त १९२७ मे असेम्बली में एक बिल पेश कर दिया, जिसका मुख्य भाग इस प्रकार था —

"जो कोई व्यक्ति सम्राट् की प्रजा के किसी वर्ग की धार्मिक भावनाओ पर जान-बूझकर और बुरे इरादे से चोट पहुँचाने के लिए मौखिक या लिखित शब्दो से या दृश्य-सकेतो से उस वर्ग के धर्म या धार्मिक भावनाओ का अपमान करेगा या अपमान करने का प्रयत्न करेगा, उसे दो साल की सजा मिलेगी या जुर्माना होगा या उसपर सजा व जुर्माना दोनो होगे।"

दो दिन बहस होकर ही बिल पास हो गया। अभीतक २५ दगे हो चुके थे जिनमें १० युक्त-प्रान्त में, ६ बम्बई में और २-२ पजाब, मध्य-प्रान्त, बगाल, बिहार व दिल्ली में हुए थे। २९ अगस्त सन् १९२७ को भारतीय धारा-सभा में भाषण देते हुए वाइसराय लॉर्ड अर्विन ने बताया कि १८ महीने से भी कम समय में दगो के कारण २५० व्यक्ति मौत के घाट उतर गये और २५०० से अधिक घायल हुए। वाइसराय ने एकता की आवश्यकता पर भी जोर दिया इसके बाद एक एकता-सम्मेलन भी किया गया लेकिन उसे कुछ अधिक कामयाबी न मिली। महासमिति ने भी २७ अक्तूबर १९२७ को इसी प्रकार के एक एकता-सम्मेलन का आयोजन किया। सम्मेलन का उद्घाटन श्री श्रीनिवास आयगर ने किया, और बहुत लम्बी बहस के बाद सम्मेलन ने निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया :—

"चूंकि भारत की किसी भी जाति को अपने धार्मिक कर्तव्यों अथवा धार्मिक विचारों को दूसरी जाति पर लादने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए और चूंकि हरेक जाति व व्यक्ति को सार्वजनिक व्यवस्था व सदाचार का विचार रखते हुए अपने धर्म में विश्वास रखने का और उसके अनुसार कार्य करने का अधिकार होना चाहिए, हिन्दुओं को धार्मिक व सामाजिक कार्यों के लिए हर मस्जिद के सामने जुलूस निकालने की और बाजा बजाने की स्वतन्त्रता है; लेकिन उन्हें मस्जिदों के सामने न तो जुलूस रोकना चाहिए न कोई विशेष प्रदर्शन करना चाहिए और न ही मस्जिदों के सामने ऐसे भजन गाने चाहिएं या ऐसी तरह बाजा बजाना चाहिए कि मस्जिदों के इबादत करनेवाले व नमाज पढ़नेवाले दिक हों या उनके कार्य में बाधा हो। जिस शहर या गांव में मुसलमानों को गो-वध करने का अधिकार है, उस शहर या गांव में उन्हें अपने इस अधिकार को काम में लाने की स्वतन्त्रता होगी, लेकिन वे गो-वध न तो किसी आम रास्ते पर करेंगे, न किसी मन्दिर के पास। और न किसी ऐसी जगह पर कि जहां हिन्दुओं की नजर पड़ती हो। गायों को, उनका वध करने के लिए जुलूस में भी न निकाला जाय और न कोई विशेष प्रदर्शन किया जाय। चूंकि गो-वध के सम्बन्ध में हिन्दुओं की भावनायें बहुत गहरी जड़ पकड़ चुकी हैं अतः मुसलमानों से आग्रहपूर्वक अपील की जाती है कि वे गो-वध इस प्रकार न करें जिससे शहर या गांव के हिन्दुओं को दुःख पहुंचे।"

सम्मेलन ने उन्हीं दिनों के कुछ कातिलाना हमलों की भी निन्दा की और हिन्दू व मुसलमान नेताओं से अपील की कि वे देश में अहिंसा का वातावरण उत्पन्न करें। सम्मेलन ने कांग्रेस की महासमिति को भी यह अधिकार दिया कि वह हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रचार करने के लिए हर प्रान्त में एक-एक कमिटी नियुक्त करे।

एकता-सम्मेलन के खतम होते ही २८,२९ व ३० अक्तूबर १९२७ को कलकत्ता में महासमिति की बैठक हुई। साम्प्रदायिक प्रश्न पर एकता-सम्मेलन के प्रस्ताव ज्यों-के-त्यों पास कर दिये गये। इसके पश्चात् बंगाल के नजरबन्दों का सवाल सामने आया। इन नजरबन्दों में कुछ तो चार-चार साल से जेलों में पड़े हुए थे। इसलिए उनकी शीघ्र-से-शीघ्र रिहाई कराने का प्रयत्न करने के लिए एक कमिटी नियुक्त की गई।

कलकत्ते की बैठक में महासमिति ने जिन-जिन विषयों को उपयुक्त प्रस्तावों द्वारा निबटाया वे ये थे—अमरीका-स्थित भारतीय, भारत के हित-समर्थन के लिए

सिनेटर कोपलैण्ड के प्रति कृतज्ञता-प्रकाश, श्री सकलातवाला को पासपोर्ट का न दिया जाना, तथा नाभा-नरेश का 'राज्य-च्युत' होना। यह प्रस्ताव गौहाटी में तो छोड दिया गया था, लेकिन कलकत्ते में इसपर फिर विचार हुआ। इस विषय को श्री बी० जी० हार्निमैन ने उठाया, जिसके फलस्वरूप महासमिति ने महाराज के साथ न्याय किये जाने के लिए एक प्रस्ताव कर दिया।

साइमन-कमीशन

नवम्बर के पहले हफ्ते में कुछ सनसनीदार बातें हुईं। वाइसराय अपने दौरे का कार्यक्रम रद करके वापस दिल्ली आ गये। भारत के मुख्य-मुख्य नेताओ को ५ नवम्बर व उसके बाद की तारीखो मे सुविधानुसार वाइसराय से मिलने का निमन्त्रण दिया गया। गाधीजी इस समय दिल्ली से बहुत दूर बगलौर में थे। उन्हें भी वाइसराय से मिलने का निमन्त्रण मिला। उन्होने अपना कार्यक्रम रद कर दिया और दिल्ली आ पहुँचे। जब वह वाइसराय से जाकर मिले तो कोई ऐसी विशेष बात न निकली। लॉर्ड अर्विन ने गाधीजी के हाथ में साइमन-कमीशन के सम्बन्ध मे भारत-मत्री की घोषणा रख दी। जब गाधीजी ने वाइसराय से पूछा कि क्या बस यही काम है, तो लॉर्ड अर्विन ने कहा, "बस, यही।" गाधीजी ने सोचा कि यह सन्देश तो एक आने के लिफाफे के जरिये भी उनके पास पहुँच सकता था। पर बात यह थी कि साइमन-कमीशन की घोषणा भारत में ८ नवम्बर सन् १६२७ को की गई। वाइसराय उसके प्रति सद्भावपूर्ण सहयोग प्राप्त करने के प्रयत्न में थे। काग्रेस के सिवाय भी भारत की सब पार्टिया साइमन-कमीशन की नियुक्ति से इसलिए नाराज हुई कि उसमें एक भी भारतीय नही रक्खा गया। और काग्रेस का यह मत स्वाभाविक ही था कि साइमन-कमीशन तो उसकी अधकचरी माग के निकट भी कही नही पहुँचता। डॉ० बेसेण्ट ने कहा कि यह जले पर नमक छिडकना नही है तो क्या है?

श्री दिनशा वाचा जैसे अखिल-भारतीय नरम नेताओ ने कमीशन के खिलाफ एक घोषणा-पत्र निकाला। काग्रेस के सिवा भारत के सब राजनैतिक दलो के प्रतिनिधियो ने घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर किये। मिस विल्किन्सन ने तो यहातक कह डाला कि अमृतसर-काण्ड के पश्चात् ब्रिटिश-सरकार के किसी भी कार्य की भारत मे इतनी भारी निन्दा नही हुई जितनी कि साइमन-कमीशन की नियुक्ति की। काग्रेस के सभापति ने भी कमीशन की निन्दा की और कर्नल वेजवुड के विचारो का हवाला दिया कि कमीशन के बहिष्कार से भारत के पक्ष को कोई नुकसान नही पहुँचेगा।

और आखिरकार यह कमीशन जिसे हर जगह धिक्कारा जा रहा था, किस काम के लिए नियुक्त किया गया था? सरकारी शब्दो मे कमीशन को यह काम सौपा गया था कि वह "ब्रिटिश-भारत के शासन-कार्य की, शिक्षा-वृद्धि की, प्रातिनिधिक संस्थाओ के विकास की एव तत्सम्बन्धी विषयो की जाच करे और इस बात की रिपोर्ट पेश करे कि उत्तरदायी शासन का सिद्धान्त लागू करना ठीक है या नही? यदि है तो किस दरजे तक? और अभीतक उत्तरदायी शासन जिस मात्रा मे स्थापित किया गया है, उसे बढाया जाय, या कम किया जाय या उसमे और किसी प्रकार कोई हेर-फेर किया जाय? इन प्रश्नो के साथ इस बात की रिपोर्ट भी पेश की जाय कि प्रान्तो मे दो-दो कौंसिलों का स्थापित करना वाञ्छनीय है या नही?

"जब कमीशन अपनी रिपोर्ट दे देगा और उसपर भारत-सरकार व सम्राट् की सरकार विचार कर लेंगी तो सम्राट्-सरकार का यह फर्ज होगा कि वह पार्लमेण्ट के सामने अपने निर्णय पेश करे। लेकिन सम्राट्-सरकार का पार्लमेण्ट मे यह [illegible] का इरादा नही है कि जबतक उक्त निर्णयो पर भारत के भिन्न-भिन्न विचारवा[illegible] की रायें जाहिर न हो जायें उससे पहले ही वह उन निर्णयो को स्वीकार कर [illegible]। इसीलिए सम्राट्-सरकार ने निश्चय किया है कि वह पार्लमेण्ट मे यह कहे कि [illegible] निर्णय विचारार्थ दोनो हाउसो की एक ज्वाइण्ट (सयुक्त) कमिटी के सुपुर्द किये जायें और इस बात का प्रबन्ध किया जाय कि भारत की केन्द्रीय धारा-सभायें [illegible] कमिटी के सामने अपने विचार पेश करने के लिए प्रतिनिधि-मण्डल भेजें जो ज्वाइण्ट कमिटी की बैठको मे भाग ले और उसके साथ विचार-विमर्श करे। ज्वाइण्ट-कमिटी जिन-जिन सस्थाओ के विचार जानना चाहे उसके प्रतिनिधियो से विचार-विमर्श करने का भी उसे अधिकार हो।"

मदरास-कांग्रेस

अब हम १९२७ की कांग्रेस की ओर आते हैं, जो मदरास [illegible] थी। जब गोहाटी की कांग्रेस हुई थी, लोगो ने उस बात को पसन्द नहीं किया [illegible] कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन किसी कस्बे में हो, और अब तो अर्थात् १९[illegible] कमीशन आनेवाला था। कमीशन के सम्बन्ध मे [illegible] ठीक किसी को पता नही था। गोहाटी मे [illegible] ही छोड दिया गया था। और फिर [illegible]

हो ? १९२७ मे हिन्दू-मुस्लिम दगे हो रहे थे। दो एकता-सम्मेलन हो चुके थे और महासमिति ने एक सम्मेलन के प्रस्ताव भी स्वीकार कर लिये थे। ऐसे साल में कांग्रेस का सभापतित्व एक मुसलमान से बढ़कर और कौन कर सकता था ? और मुसलमानो मे भी डॉ० अन्सारी से बढ़कर ? डॉ० अन्सारी १८९६ या १८९९ में मदरास मेडिकल कॉलेज के छात्र रहे थे और १९१२ में रेडक्रास-मिशन के साथ बालकन-प्रायद्वीप भी गये थे। डॉक्टरी में तो आप नाम पा ही चुके थे। डॉक्टरी-पेशे के बाहर भी अपनी शायस्तगी व विचारो की उदारता के कारण सुविख्यात थे। इसीलिए आप मदरास-कांग्रेस के सभापति चुने गये और, जैसी कि उम्मीद थी, आपने अपने भाषण में साम्प्रदायिक मेल-जोल के प्रश्न को खूब जगह दी। कांग्रेस की नीति का सक्षेप में वर्णन करते हुए आपने बताया कि कांग्रेस की नीति ३५ साल तक तो सहयोग की रही, फिर डेढ़ साल तक असहयोग की, और फिर चार साल कौंसिलो में अटगेबाजी करने, और कौंसिल का काम ही रोक देने की। "असहयोग असफल सिद्ध नही हुआ," डॉ० अन्सारी ने कहा, "हम ही असहयोग के लिए असफल सिद्ध हुए।" इसके पश्चात् आपने शाही कमीशन, नजरबन्द, भारत व एशिया तथा राष्ट्र का स्वास्थ्य आदि विषयो पर अपने विचार प्रकट किये। कांग्रेस-अधिवेशन में मि० स्प्रैट, मि० पार्सेल व पार्लमेण्ट के मजदूर-सदस्य मि० मार्डी जोन्स भी मौजूद थे। शाही कमीशन के प्रस्ताव के अलावा इस वर्ष के प्रस्तावो में कोई खास बात न थी। शोक-प्रस्ताव, साम्राज्यवाद-विरोधी-सघ, चीन, पासपोर्टों का न मिलना आदि ऐसे विषय थे जिनपर लगभग हर साल ही प्रस्ताव पास होते रहते थे। एक प्रस्ताव-द्वारा 'युद्ध के खतरे' की आवाज उठाई गई और कांग्रेस ने यह घोषणा की कि प्रत्येक भारतीय का यह फर्ज है कि वह ऐसे किसी युद्ध में भाग लेने से या सरकार से किसी भी प्रकार का सहयोग करने से इन्कार करे। जनरल अवारी की भूख-हड़ताल को ७५ वा दिन हो चुका था, उन्होंने शस्त्र-कानून के विरुद्ध सत्याग्रह, जिसका मुख्य भाग वर्जित हथियारो के साथ जुलूस निकालना था, छेड़ दिया था। जनरल अवारी को उनकी गैर-हाजिरी में ही बधाई दी गई और उनके साथ सहानुभूति प्रकट की गई। बर्मा को भारत से अलग करने के सरकारी प्रयत्नो की भी निन्दा की गई। स्मरण रहे कि १८८५ में जब पहली कांग्रेस हुई थी तब ही उसने बर्मा के ब्रिटिश-राज्य मे मिलाये जाने का विरोध किया था और यह कहा था कि यदि दुर्भाग्यवश सरकार उसे मिलाने ही का निश्चय करे तो उसे सम्राट् के आधीन एक उपनिवेश (Crown Colony) बना दिया जाय। कांग्रेस ने शाही कैदियो के सम्बन्ध में भी एक प्रस्ताव पास किया

और उनकी शीघ्र-से-शीघ्र रिहाई की माग की। पूर्व-अफ्रीका व दक्षिण-अफ्रीका के प्रवासी भारतीयो के सम्बन्ध में भी दो प्रस्ताव पास हुए। हिन्दू-मुस्लिम एकता पर भी —राजनैतिक अधिकार व धार्मिक एव अन्य अधिकार दोनो ही विषयो पर—एक प्रस्ताव महासमिति के प्रस्ताव के तर्ज पर पास किया गया। ब्रिटिश माल के बहिष्कार पर भी एक प्रस्ताव पास किया गया, यह एक नया विषय था जो काग्रेस के सामने कुछ वर्षो से प्रस्ताव के रूप में आ रहा था। चूंकि स्वराज्य का मसविदा तैयार करने की मांग की गई थी और काग्रेस के सामने कई मसविदे पेश थे, अतः काग्रेस ने कार्य-समिति को अधिकार दिया कि वह अन्य संस्थाओ से मशविरा करके स्वराज्य का मसविदा तैयार करे और उसे एक विशेष कन्वेन्शन (पंचायत) के सामने स्वीकृति के लिए रक्खे। इस कार्य के लिए कार्य-समिति को और सदस्य बढाने का भी अधिकार दिया गया। कांग्रेस के विधान में भी कुछ परिवर्तन किया गया। लेकिन इस वर्ष का सबसे मुख्य प्रस्ताव शाही कमीशन के सम्बन्ध में था, जिसे हम ज्यो-का-त्यो नीचे देते हैं :—

कमीशन का बहिष्कार

"चूंकि ब्रिटिश-सरकार ने भारत के स्वभाग्य-निर्णय के अधिकार की पूर्ण उपेक्षा करके एक शाही कमीशन नियुक्त किया है, यह कांग्रेस निश्चय करती है कि भारत के लिए आत्मसम्मान-पूर्ण एकमात्र मार्ग यही है कि वह कमीशन का हर हालत में और हर तरह से बहिष्कार करे। विशेष करके—

(अ) यह काग्रेस भारत की जनता और देश की समस्त काग्रेस-संस्थाओ से अनुरोध करती है कि वे (१) कमीशन के भारत में आने के दिन सामूहिक प्रदर्शनो का आयोजन करें, और भारत के जिस-जिस शहर में कमीशन जाय वहां भी उस दिन इसी प्रकार के प्रदर्शन करें और (२) जोरो के साथ प्रचार-कार्य करके लोकमत को इस प्रकार सगठित करें कि हर तरह के राजनैतिक विचारवाले भारतीय कमीशन का जोरो से बहिष्कार करने के लिए तैयार हो जायें।

(ब) यह काग्रेस भारतीय कौंसिलो के गैर-सरकारी सदस्यो व भारत के राजनैतिक दलो व जातियों के नेताओ से तथा दूसरे लोगो से अनुरोध करती है कि वे न तो कमीशन के सामने गवाही दें, न सार्वजनिक अथवा खानगी तौर पर उनके साथ सहयोग करें, और न उसके सम्बन्ध में किये जानेवाले किसी सामाजिक उत्सव में भाग लें।

(स) यह काग्रेस भारतीय धारा-सभाओं के गैर-सरकारी सदस्यों से अनुरोध

करती है कि वे (१) कमीशन के सिलसिले में बिठाई जानेवाली किसी भी "सिलेक्ट कमिटी" के लिए न तो राय दें और न उसकी सदस्यता स्वीकार करें और (२) कमीशन के कार्य के सम्बन्ध में अन्य जो कोई भी प्रस्ताव या खर्चे की माग पेश की जाय उसे ठुकरा दें।

(द) यह काग्रेस भारतीय धारा-सभाओ के सदस्यो से यह भी अनुरोध करती है कि वे निम्न सूरतो के सिवाय धारा-सभाओ की बैठको मे भाग न लें, अर्थात् यदि उनका स्थान रिक्त होने से बचाने के लिए या बहिष्कार को सफल व जोरदार बनाने के लिए, या किसी मन्त्रि-मण्डल को गिराने के लिए या किसी ऐसे महत्त्वपूर्ण कानून का विरोध करने के लिए जो काग्रेस की कार्य-समिति की राय में भारत के हितो के विरुद्ध हो, ऐसा करना आवश्यक हो।

(य) यह काग्रेस कार्य-समिति को अधिकार देती है कि बहिष्कार को प्रभावकारी व पूर्ण बनाने के लिए जहातक हो सके वह दूसरी सस्थाओ व पार्टियो से सलाह-मशविरा करे और उनका सहयोग प्राप्त करे।"

काकोरी-केस के अभियुक्तो को बर्बरतापूर्ण सजायें दी जाने पर और उससे जनता में रोष की प्रबल भावना फैलने पर भी सरकार ने उनकी सजायें न घटाईं, उसपर भी एक विशेष प्रस्ताव-द्वारा दु ख प्रकट किया गया और काग्रेस ने उनके परिवारो के साथ अपनी हार्दिक सहानुभूति प्रकट की।

अन्त में काग्रेस के ध्येय की भी एक पृथक् प्रस्ताव-द्वारा परिभाषा की गई। इसके अनुसार यह कहा गया, "यह काग्रेस घोषित करती है कि भारतीय जनता का लक्ष्य पूर्ण राष्ट्रीय स्वतन्त्रता है।" यह प्रस्ताव कुछ साल तक काग्रेस के हरेक अधिवेशन में पेश होता चला आ रहा था। यूरोप से जवाहरलालजी के लौट आने के कारण इस प्रस्ताव को और भी बल प्राप्त हुआ। स्वय श्रीमती बेसेण्ट ने भी इस प्रस्ताव पर कोई आपत्ति न देखी। आपने विषय-समिति की बैठक में कहा कि भारत के लक्ष्य का यह बडा ही शानदार व स्पष्ट वक्तव्य है। गाधीजी उस समय समिति की बैठक में मौजूद नही थे और उन्हें इस प्रस्ताव का पता तभी चला, जब कि वह पास हो गया।

: १ :

भावी संग्राम के बीज—१९२८

कमीशन का बहिष्कार

जब १९२८ का साल प्रारम्भ हुआ तो देश के राजनैतिक वातावरण में साइमन-कमीशन की नियुक्ति के कारण सरकार के प्रति रोष-ही-रोष विद्यमान था। देश कमीशन के बहिष्कार में जी-जान से जुटा हुआ था। कमीशन की घोषणा करते समय लॉर्ड अर्विन ने कहा था कि भारतीय सम्मान तथा भारतीय गौरव को जान-बूझकर अपमानित करने का सम्राट्-सरकार का कोई इरादा नही है। पर साथ मे उन्होने इस बात की भी धमकी दे दी कि यदि कमीशन के कार्य मे भारतीयो की सहायता न प्राप्त हुई तब भी कमीशन अपना कार्य बदस्तूर चलाता रहेगा और अपनी रिपोर्ट पार्लमेण्ट को पेश कर देगा। रिपोर्ट पेश हो जाने के बाद पार्लमेण्ट उसपर अपनी मर्जी के अनुसार जो निर्णय करना चाहेगी करेगी।

३ फरवरी को कमीशन बम्बई में आकर उतरा। उस दिन भारत-भर में हड़ताल मनाई गई और कमीशन के बहिष्कार का श्रीगणेश कर दिया गया। अखिल-भारतीय हड़ताल के अलावा ३ फरवरी को और कोई मार्के की घटना नहीं हुई। हा, मदरास मे हाइकोर्ट के पास भीड में अवश्य कुछ उत्तेजना दिखाई दी। वहा पुलिस ने दुर्भाग्य-वश भीड़ पर गोली चला ही दी, हालाकि काम शायद बिना गोली चलाये भी चल सकता था। पुलिस की गोली से कई व्यक्ति घायल हुए, जिनमें से एक तो जहा-का-तहा मर गया और दो बाद में जाकर मरे। कलकत्ते में भी छात्रो और पुलिस की मुठभेड हुई।

कमीशन बम्बई से चलकर सबसे पहले दिल्ली आया। दिल्ली शहर में जैसे ही कमीशन के चरण पडे कि उसका विरोधी-प्रदर्शनो द्वारा विराट् स्वागत किया गया और "गो बैक, साइमन!" "साइमन वापस लौट जाओ!" के झण्डे तथा तख्ते दिखाये गये। दक्षिण भारत लिबरल फेडरेशन (जो आमतौर पर जस्टिस-पार्टी के नाम से प्रसिद्ध है) व कुछ मुस्लिम-सस्थाओ को छोडकर यह कहा जा सकता है कि भारत ने कमीशन का पूर्ण बहिष्कार किया।

कमीशन के बहिष्कार की इतनी भारी सफलता देखकर सरकार के मन मे यह बात आई कि अब आतक व दबाव से काम लेना चाहिए। लाहौर में कमीशन के विरोध में प्रदर्शन करने के लिए लाला लाजपतराय के नेतृत्व मे एक बडा भारी जन-समूह एकत्र हुआ। पुलिसवालो ने भीड पर हमला किया और कई प्रतिष्ठित नेताओं को डण्डो और लाठियो से ठोका-पीटा। लालाजी के कई जगह गहरी चोटें आईं। यह एक आम खयाल है कि लालाजी की मृत्यु इस बुजदिलाना हमले के कारण ही हुई थी। यद्यपि लालाजी की मृत्यु के सम्बन्ध में खुले तौर पर पुलिस पर यह अभियोग लगाया गया, तो भी सरकार ने निष्पक्ष जाच करने से साफ इन्कार कर दिया।

लखनऊ में भी कमीशन के आने के दिन नि शस्त्र व शान्त भीड पर पुलिस ने कई बार जान-बूझ कर व अकारण डण्डे बरसाये। युक्त-प्रान्त की पुलिस ने तो जवाहरलालजी तक को न छोडा। सब दलो के प्रमुख-प्रमुख कार्यकर्त्ताओं पर डडे व लाठिया बरसाने में तो मानो घुडसवार व पैदल पुलिस ने अपनी सारी चतुराई ही खतम कर दी और बीसियो आदमियो को घायल कर डाला।

लखनऊ तो पैदल व घुडसवार पुलिस के कारण एक विशाल फौजी पडाव-सा ही बन गया। चार दिन तक पुलिस के बर्बरतापूर्ण हमले होते रहे। पुलिसवाले लोगो के घरो तक मे घुस गये और "साइमन वापस चले जाओ!" के नारे लगाने पर ही उन्होने कई प्रतिष्ठित राष्ट्रीय कार्यकर्त्ताओ को गिरफ्तार कर लिया और बुरी तरह पीटा। लेकिन लखनऊ के जोशीले नागरिको को धन्य है कि वे इन बर्बरतापूर्ण हमलो व कृत्यो से तनिक भी न घबराये और अपने प्रदर्शन और भी अधिक जोशो-खरोश के साथ करते रहे! अधिकारी-वर्ग को तो उन्होने एकबार इतना छकाया कि वह देखता-का-देखता रह गया और सारा शहर हँसी के मारे लोट-पोट हो गया। मामला इस प्रकार था। कुछ ताल्लुकेदारो ने कैसरबाग में साइमन-कमीशन को एक पार्टी दी। पुलिस ने कैसरबाग को चारो ओर से घेर लिया और ऐसे किसी भी आदमी को बाग की सडको के करीब न आने दिया जिसपर पुलिस विरोधी-दलवाला होने का सन्देह करने लगती थी। इतना अहतियात रखने पर भी जब आसमान मे सैंकडो काली-काली पतगें व गुब्बारे, जिनपर 'साइमन, चले जाओ', 'भारत भारतवासियो के लिए है' आदि शब्द लिखे हुए थे, आ-आकर बाग मे गिरने लगे तो सारी पार्टी का मजा किर-किरा हो गया।

जब कमीशन पटना पहुँचा तो उसके विरोध मे प्रदर्शन करने के लिए ५० हजार आदमियो की एक भारी भीड इकट्ठी हुई। कमीशन का स्वागत करने के

लिए भी कुछ सरकारी चपरासी और मुट्ठी-भर सरकारी कर्मचारी मौजूद थे। सरकार ने आस-पास के गांवों से लारियों में भर-भरकर किसान बुलवाये, लेकिन स्वागत-कैम्पों में घुसने के बजाय वे बहिष्कार-कैम्पों में जा डटे। और स्टेशन पर विराट् जन-समूह ने कमीशन के विरोध में जो अहिंसा-पूर्ण प्रदर्शन किया उसे और स्वागत तथा बहिष्कार पार्टियों के बल को देखकर तो सरकार की आंखें ही खुल गईं।

"भारत के भिन्न-भिन्न भागों की जातियों व सम्प्रदायों से व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करने के पश्चात्"—जैसा कि सर जान साइमन ने कहा था—कमीशन बम्बई से ३१ मार्च को रवाना हो गया। वास्तव में यह एक प्रकार की मिथ्योक्ति ही थी, क्योंकि सरकारी रिपोर्ट में स्वयं इस बात को स्वीकार किया गया है कि "असेम्बली के विरोधी दलों के नेता कमीशन का केवल सरकारी तौर पर ही नहीं बल्कि सामाजिक तौर पर भी बहिष्कार करने के लिए बद्ध थे।" इसलिए सर जान साइमन और उनके साथियों का उनके सम्पर्क में आना असम्भव था।

कमीशन के भारत आते ही सर जान साइमन ने वाइसराय को एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने कहा कि कमीशन एक संयुक्त स्वतन्त्र सम्मेलन का रूप लेगा जिसमें एक ओर कमीशन के सातों अंग्रेज सदस्य होंगे और दूसरी ओर बड़ी कौंसिल-द्वारा चुने गये सातों भारतीय। सम्मेलन के सब सदस्यों को सब कागजात देखने का अधिकार होगा और भारतीय-सदस्य उनमें बराबरी के दर्जे पर माने जायेंगे।

प्रान्तीय कौंसिलों से भी इसी प्रकार की प्रान्तीय सिलेक्ट कमिटियां चुनने की सिफारिश करने को कहा गया था। यह निश्चय हुआ कि जब केन्द्रीय विषयों पर कमीशन के सामने विचार होगा तो उसके साथ बड़ी कौंसिल-द्वारा निर्वाचित संयुक्त-सिलेक्ट-कमिटी काम करेगी और जब प्रान्तीय विषयों पर विचार होगा तो उस प्रान्तीय कौंसिल की सिलेक्ट कमिटी काम करेगी, जिनका उन विषयों से सम्बन्ध है। कमीशन अपनी रिपोर्ट अलग ब्रिटिश-सरकार को देगा और संयुक्त-सिलेक्ट-कमिटी अपनी रिपोर्ट अलग बड़ी कौंसिल को। इस घोषणा का भारत में कुछ असर न हुआ। घोषणा के निकलने के दो-तीन घंटे के भीतर ही राजनैतिक नेतागण दिल्ली में इकट्ठे हुए और यह घोषणा की कि कमीशन के खिलाफ उनकी जो आपत्तियां थीं वे ज्यों-की-त्यों बनी हुई हैं और वे किसी भी हालत में कमीशन से सरोकार नहीं रखना चाहते। असेम्बली ने तो केन्द्रीय संयुक्त-सिलेक्ट-कमिटी के लिए अपने सदस्य तक चुनने से इन्कार कर दिया। इस सम्बन्ध में लाला लाजपतराय ने १६ फरवरी को असेम्बली में यह प्रस्ताव पेश किया कि चूंकि कमीशन की रचना व इसके कार्य की भावी योजना असेम्बली

को अस्वीकार है अत वह उससे किसी भी हालत में और किसी भी तरह कोई सरोकार नही रखना चाहती। पण्डित मोतीलाल नेहरू ने कहा कि "कमीशन के साथ भारतीय उसी हालत में सहयोग कर सकेंगे जबकि उसमे भारतीय भी इतनी ही सख्या मे नियुक्त किये जायें।" प्रस्ताव ६२ के विरुद्ध ६८ रायो से पास हो गया। सरकार को लाचार होकर स्वय केन्द्रीय कमिटी के लिए असेम्बली के सदस्य नामजद करने पडे। यहा इस बात को सुनकर ताज्जुब होगा कि जब कमीशन बम्बई में घूम रहा था तो 'सर' की पदवी धारण करनेवाले २२ नाइटो में से एक ने भी कमीशन से मिलने की तकलीफ गवारा न की। देश में बहिष्कार की जो लहर फैली हुई थी उसका इससे ज्वलन्त प्रमाण और क्या मिल सकता है?

प्रसगवश यहा यह कह देना भी जरूरी है कि जहा कमीशन तो एक ओर अपने काम में आकर जुट गया, तहा उसके कुछ अधिक चतुर सदस्य, जो राजनीति के मुकाबले तिजारत में अधिक चाव रखते थे, इस बात के अध्ययन मे लग गये कि भारत में तिजारत को बढाने की किस तरफ गुजाइश है। लॉर्ड बर्नहाम ने, जो कमीशन के एक सदस्य थे, देखा कि पजाब में ब्रिटेन और भारत की तिजारत बढाने की सबसे अधिक गुजाइश है। उन्होने इस बात पर भी जोर दिया कि भारत के बाजारो में ब्रिटेन की मोटरो, लारियो व ट्रैक्टरो की खपत बढाने की सबसे अधिक गुजाइश है।

सन् १९२८ की खास-खास घटनायें साइमन-कमीशन का देश में भ्रमण, सर्वदल-सम्मेलन की बैठकें और बारडोली का आन्दोलन है। काग्रेस के प्रस्ताव के अनुसार दिल्ली में फरवरी-मार्च १९२८ में सर्वदल-सम्मेलन की बैठक की गई। सम्मेलन में उपस्थित सस्थायें और काग्रेस इस बात पर एकमत हो गये कि भारत की वैधानिक समस्या पर विचार 'पूर्ण उत्तरदायी शासन' को आधार मानकर ही होना चाहिए। दो महीनो में सम्मेलन की कुल मिलाकर २५ बैठके हुईं और लगभग ⅔ समस्याये शान्तिपूर्वक तय हो गईं। १९ मई को डॉ० अन्सारी के सभापतित्व में फिर सम्मेलन की बैठक हुई, जिसमें यह निश्चय हुआ कि भारतीय विधान के सिद्धान्तो का मसविदा तैयार करने के लिए प० मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता मे एक कमिटी नियुक्त की जाय, जो १ जुलाई १९२८ तक अपनी रिपोर्ट दे दे और मसविदा देश की भिन्न-भिन्न सस्थाओ के पास भेजा जाय। २९ राजनैतिक सस्थाओ ने कमिटी नियुक्त करने के प्रस्ताव के पक्ष में राय दी। इस विषय पर आगे विचार फिर किया जायगा।

जून के महीने में दो-तीन घटनायें ऐसी हुईं जिनका हमें अवश्य जिक्र करना चाहिए। काग्रेस का आगामी अधिवेशन कलकता में होनेवाला था और प० मोतीलाल

नेहरू का नाम उसके सभापतित्व के लिए आमतौर से लिया जा रहा था। यह देखकर पण्डितजी ने 'एम्पायर पार्लमेण्टरी डेलीगेशन' की सदस्यता से भी, जिसके लिए उनको असेम्बली ने पिछले मार्च मे अपने चार प्रतिनिधियो में से एक चुना था, इस्तीफा दे दिया। पण्डितजी ने अपने इस्तीफे का कारण राजनैतिक गगन में नई घटनाओं का होना बताया। स्वय गाधीजी ने कहा—"बगाल को बड़े नेहरू की जरूरत है। वह सम्मानपूर्ण समझौते के मार्ग को ग्रहण करनेवाले आदमियो में से है। देश को इसीकी जरूरत है और देश यही चाहता है, इसलिए नेहरूजी को ही इस कार्य के लिए पकडा जाय।"

बारडोली सत्याग्रह

दूसरी घटना ऐसी थी जिसपर कई दिनो तक लोगो का ध्यान आकर्षित होता रहा, वह है बारडोली का सत्याग्रह। बारडोली वह तहसील है जहा गाधीजी 'सामूहिक सविनय अवज्ञा' का प्रयोग करना चाहते थे, लेकिन दो-तीन बार इरादा बदलकर उन्होने फरवरी १६२२ में आखिर इरादे को पूरी तरह से छोड ही दिया था। बारडोली में बन्दोबस्त, जो अक्सर २० या ३० साल मे हर जगह हुआ करता है, होने-वाला था, बन्दोबस्त का और कोई परिणाम होता हो या न होता हो, यह एक परिणाम अवश्य होता है कि मालगुजारी लगभग २५% अवश्य बढ जाती है। बारडोली के आदमियो का कहना था कि उनपर मालगुजारी बढने का कोई कारण नही होना चाहिए, क्योकि जमीन से जो कुछ भी उनकी फसल बढी है या अच्छी हुई है उसके लिए उनको बहुत परिश्रम और समय खर्च करना पडा था। उनका कहना बिलकुल यह भी नही था कि कर बढाया ही न जाय, वे तो केवल यह चाहते थे कि आर्थिक दशा व मजदूरी, सडको, कीमतो व करो की जाच करने के लिए एक निष्पक्ष कमिटी नियुक्त की जाय और यह देखा जाय कि मालगुजारी बढाई जा सकती है या नही, और यदि हा, तो कितनी? सरकार आमतौर पर अपनी मर्जी से, चुपचाप और बिना किसी निश्चित सिद्धान्त के ही सब बातो का फैसला कर लेती है। जब कभी वह ऐसी या और कोई आर्थिक जाच करती है तो जनता की राय तक, सलाह तक, नही ली जाती। बारडोली में भी सरकार ने २५ प्रतिशत मालगुजारी बढा दी। जाच कराने के सब वैध व प्रचलित उपायो को अमल में लाने की कोशिश की गई, लेकिन कोई परिणाम नही निकला। अन्त में चुनौती दे दी गई और करबन्दी-आन्दोलन शुरू हो गया—आन्दोलन स्वराज्य के लिए नही, सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन के एक अग के रूप में भी नही, बल्कि किसानी

पेशे से सम्बन्ध रखनेवाली अपनी एक शिकायत को रफा कराने के लिए। कांग्रेस ने पहले कोई दखल नही दिया। किसानो ने कर न देने का निश्चय पहले ही अपनी ताल्लुका-परिषद् मे कर लिया था और सरदार वल्लभभाई पटेल को आमन्त्रित किया था कि उनका नेतृत्व करे। इसी हालत मे सरदार पटेल ने आन्दोलन को सगठित किया। सरकार ने जानवरो की कुर्की करना शुरु किया। उसने बाहर से पठान बुला-बुलाकर अन्धाधुन्ध कुर्कियाँ करने की नीति अख्तियार कर ली। पठानो का बुलाना सरासर ज्यादती थी। लोगो ने कुर्किया होने के मार्ग में कोई रुकावट नही डाली थी और सरकार के पास पशु-बल इतनी पर्याप्त-मात्रा में मौजूद था कि खूखार प्रकृति व आदतो के लोगो का बुलाना सरासर अनावश्यक था। कहा जाता है कि सरकार ने लगभग ४० पठान बुला लिये थे, बम्बई के गवर्नर सर लेस्ली विल्सन ने कहा था कि उनकी सख्या केवल २५ ही थी। सवाल सख्या का नही था, सवाल यह था कि पठान बुलाये क्यो गये ? इसके बाद जल्द ही, बम्बई-कौंसिल के कुछ निर्वाचित सदस्यो ने विरोध में कौंसिल की सदस्यता से त्याग-पत्र दे दिया और आन्दोलन में दिलचस्पी लेने लगे। असेम्बली के अध्यक्ष विट्ठलभाई पटेल ने भी वाइसराय को एक पत्र लिखा, जिसमें उन्होने इस बात की धमकी दी कि यदि सरकार न झुकेगी तो वह इस्तीफा देकर इस काम मे जुट जायँगे। आखिरकार एक मार्ग निकल ही आया, जिसके अनुसार एक तीसरे आदमी ने बढाई गई मालगुजारी जमा कर दी, कैदियो की रिहाई की शर्त मान ली गई, जायदाद का लौटाया जाना तय हो गया और आन्दोलन वापस लेने का निश्चय हुआ।

सरकार ने एक अदालत बिठा दी, जिसमे न्याय-विभाग के और शासन-विभाग के प्रतिनिधि थे। अदालत ने मामले की जाच की और यह निश्चय किया कि मालगुजारी केवल ६¼ प्रतिशत बढाई जाय। यह निर्णय अगस्त में हुआ और इसका फायदा चोरासी तहसील को भी हुआ। ज्ञात रहे कि चोरासी तहसील ने इस आन्दोलन मे भाग नही लिया था और बढे हुए कर भी दे दिये थे, यह देखकर सरकार ने बारडोली को सम्बोधित करके कहा भी था—"जब चोरासी तहसील कर दे सकती है, तो बारडोली ही क्यो नही दे सकती ?"

यहा यह कहना शायद मनोरजक होगा कि बम्बई-कौंसिल में भाषण देते हुए बम्बई के गवर्नर ने कहा था कि बारडोली के करबन्दी-आन्दोलन को कुचलने के लिए साम्राज्य की सारी शक्तिया लगा दी जायँगी। इसके कुछ दिन बाद ही फैसला हो गया। वास्तव में देखा जाय तो न तो कानून में ही और न मालगुजारी के नियमो

में ही ऐसा कोई विधान था कि उक्त प्रकार की ऐसी कोई अदालत जाच के लिए बिठाई जाय। इस बात को भी ध्यान में रखना चाहिए कि यद्यपि अदालत ने यह सिफारिश की थी कि केवल ६$\frac{1}{4}$% मालगुजारी बढाई जाय, लेकिन जब इन सब कारणो पर उपयुक्त विचार किया गया जिन्हें किसानो ने पेश किया था लेकिन जिनपर अदालत को विचार करने का अधिकार नही था, तो वास्तव में बारडोली तहसील में मालगुजारी बिलकुल बढी ही नही और फैसले के बाद भी अपनी पहली हद तक ही रही। समझौते की वास्तविक सफलता तो इस बात में थी कि बेची हुई जमीनें मालिको को फिर वापस मिल गई और पटेल व तुलाटियो को अपनी जगहें फिर मिल गईं।

सर्वदल सम्मेलन

नेहरू-कमिटी की रिपोर्ट पर विचार करने के लिए सर्वदल-सम्मेलन की बैठक लखनऊ में फिर २८, २९ व ३० अगस्त १९२८ को हुई। नेहरू-कमिटी को उसके परिश्रम के लिए बधाई दी गई, सम्मेलन ने अपने-आपको औपनिवेशिक स्वराज्य के पक्ष में घोषित किया, यद्यपि उन राजनैतिक दलो को अपने विचारो के अनुसार कार्य करने की स्वतन्त्रता दी गई जिनका ध्येय 'पूर्ण-स्वतन्त्रता' था। उन पूर्ण स्वतन्त्रतावादियो ने, जो औपनिवेशिक स्वराज्य के पक्ष में न थे, सम्मेलन में एक वक्तव्य पढकर सुनाया, जिसमें यह बात स्पष्ट की गई कि भारत का विधान पूर्ण-स्वतन्त्रता के आधार पर ही बनाया जाना चाहिए। उनका उद्देश था कि वे उस प्रस्ताव से, जिसके द्वारा उन्हें कार्य-स्वतन्त्रता दी गई थी, खूब फायदा उठावें। इसलिए जहा उन्होंने प्रस्ताव का समर्थन न करने का निश्चय किया, वहा उन्होंने सम्मेलन के कार्य में भी कोई बाधा न डाली। उन्होंने कहा कि उस प्रस्ताव से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है और इसीलिए वे न तो उसपर होनेवाली बहस में भाग लेंगे और न उसमें कोई सशोधन पेश करेंगे। सम्मेलन में जिन अन्य विषयो पर विचार हुआ वे सिन्ध, प्रान्तो का बटवारा तथा सयुक्त-निर्वाचन से सम्बन्ध रखते थे। इस प्रस्ताव पर बोलते हुए जवाहरलालजी की इस [illegible] से कि महमूदाबाद के महाराज व राजा [illegible] और [illegible] की [illegible] आवश्यकता नहीं, [illegible] लोग [illegible] उठे। इसका यह परिणाम हुआ कि [illegible] यह प्रस्ताव पास किया गया —

"[illegible] की स्वाधीनता के सम्बन्ध में [illegible] जिस आधार का [illegible] [illegible] [illegible] नहीं होगी [illegible]।"

सम्मेलन [illegible] दोनों [illegible] के अलावा डॉ० [illegible], सर अली-

इमाम, सर शकरन् नायर, श्री सच्चिदानन्द सिंह व सर सी० पी० रामस्वामी ऐयर भी उपस्थित थे। ये सब केन्द्रीय या प्रान्तीय कार्यकारिणी के सदस्य रह चुके थे।

सम्मेलन की रिपोर्ट पर महासमिति ने दिल्ली में ४ व ५ नवम्बर को विचार किया। महासमिति ने पूर्ण-स्वतन्त्रता के ध्येय को दोहराया, नेहरू-कमिटी के साम्प्रदायिक फैसले को स्वीकार किया और यह राय जाहिर करते हुए कि नेहरू-कमिटी के प्रस्ताव राजनैतिक प्रगति की ओर ले जाने में सहायक हैं उन्हें आमतौर पर स्वीकार किया, यद्यपि उसकी विगत की बातो में अपने हाथ-पाव नही बाध दिये।

अब हम फिर कौंसिलो की ओर आते हैं। वास्तव में देखा जाय तो कौंसिलो मे अडगे की नीति का, जिसमें विश्वास कम होता जा रहा था, स्थान 'साइमन' का बहिष्कार ले रहा था और वह दिन-पर-दिन जोर पकडता जा रहा था।

असेम्बली में

असेम्बली के कार्यक्रम में रिजर्व-बैक-बिल व सार्वजनिक-रक्षा बिल दो ही मुख्य विषय थे। रिजर्व-बैक-बिल सम्बन्धी लडाई काग्रेस की सरकार के विरुद्ध सम्भवत सबसे बडी लेकिन निरर्थक लडाई थी। सरकार का दावा था कि चूकि यह बिल मुद्रा-सम्बन्धी नीति को भारत-मन्त्री के नियत्रण से हटाकर देश के एक बैक के नियत्रण में कर देगा, अत यह भारत की स्वतन्त्रता-प्राप्ति के मार्ग मे एक बडा पग होगा। लेकिन भारत-सरकार जैसी सरकार, जिसने द्वैध-शासन की योजना को अमल में लाते हुए इतनी खराबी मजूर की, इतनी आसानी से और खुद-बखुद मुद्रा व बैंकिंग पर से अपना नियन्त्रण हटा लेने के लिए कैसे तैयार हो सकती थी ? असेम्बली के सदस्यो को फौरन ही इस बात का सन्देह हो गया कि जनता के हितो के विरुद्ध सरकार अवश्य ही कुछ कर रही है। जब दोनो पक्ष प्रश्न की तह मे उतरे तो कई विवाद-ग्रस्त बातें सामने आईं, जिनमें सबसे मुख्य यह प्रश्न था कि बैंक हिस्सेदारो का हो (जैसा कि सरकार चाहती थी) या सरकारी (जैसा कि जनता कहती थी) ? इसके बाद दूसरा प्रश्न यह था कि बैंक के डाइरेक्टर-मण्डल का निर्वाचक कौन होगा और डाइरेक्टरो में कितने सदस्य नामजद होगे और कितने चुने जायेंगे और कैसे ? यदि एकबार यह तय हो जाय कि बैंक का सगठन कैसा होगा तो शेष प्रश्न स्वय हल हो जायेंगे। यदि बैंक हिस्सेदारो का होगा तो हिस्सेदार ही उसके डाइरेक्टरो को चुनेंगे; लेकिन यदि बैंक सरकारी होगा तो डाइरेक्टरो का चुनाव व्यापार-मण्डल, प्रान्तीय सहकारी बैंक व केन्द्रीय व प्रान्तीय कौंसिलें आदि सस्थायें करेंगी। किस सस्था को कितने डाइरेक्टर चुनने का

अधिकार होगा, इसके पचड़े में पड़ना आवश्यक नहीं। केवल इतना ही कहना काफी है कि सरकार पहले इस बात पर तैयार थी कि १६ डाइरेक्टरो में से ६ चुने हुए हो। लेकिन अब सन् १९३४ मे जो रिजर्व-बैंक-एक्ट बना है उसके अनुसार तो १६ में से केवल ८ ही डाइरेक्टर चुने हुए रक्खे गये है और सो भी इनका चुनाव चार-साल में जाकर होगा। जब बिल पर विचार प्रारम्भ हुआ तो उसमें कदम-कदम पर रद्दोबदल किया गया। अन्त में श्री श्रीनिवास आयगर के प्रस्ताव पर सरकार इस बात के लिए तैयार हो गई कि बैंक स्टाक-होल्डरो का हो, अर्थात् बैंक की पूजी तो सरकार लगाये लेकिन बाद मे वह उस पूजी को इस प्रकार बेच दे कि किसी भी व्यक्ति को १०,०००) से अधिक की पूजी अर्थात् स्टाक न मिले। प्रत्येक स्टाक खरीदनेवाले अर्थात् स्टाक-होल्डर को डाइरेक्टरो के चुनाव में केवल एक मत देने का अधिकार हो। ऐसा प्रतीत होने लगा कि अब सब मामला तय हो जायगा। जब सरकार ने देखा कि सब लोग सन्तुष्ट प्रतीत होते है तो उसके मन में कुछ सन्देह उत्पन्न हुआ और उसने उस बिल के बजाय एक दूसरा बिल पेश करने की सूचना दी। लेकिन अध्यक्ष महोदय ने कामन-सभा के प्रमुख-द्वारा निर्धारित एक सिद्धान्त का हवाला देते हुए कहा कि जब किसी ऐसे बिल में जो सभा के सामने पेश हो चुका हो, आवश्यक परिवर्त्तन करने हो, तो उचित मार्ग यह है कि मूल बिल को पहले वापस लिया जाय और फिर उसमें परिवर्त्तन करके उसे परिवर्तित रूप में दुबारा पेश किया जाय। अध्यक्ष के इस निर्णय के कारण सरकार ने पुराने बिल को ही कायम रखने का निश्चय किया, लेकिन चूंकि एक महत्त्वपूर्ण अश के ऊपर मत-विभाग होते समय सरकार की हार हो गई इसलिए सरकार ने बिल पर विचार अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया।

सार्वजनिक-रक्षा (पब्लिक सेफ्टी) बिल दूसरा बिल था, जिसपर खूब वाद-विवाद चला और जिसका कांग्रेस-पार्टी ने खूब विरोध किया। यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से यह बिल विदेशियो के विरुद्ध काम में लाया जानेवाला था, किन्तु जनता को इस बात पर पूरा-पूरा विश्वास हो गया कि देश-रक्षा-कानून की भांति यह कानून भी भारतीयो के विरुद्ध काम मे लाया जायगा। जब बिल पर मत लिये गये तो दोनो ओर बराबर मत आये। अध्यक्ष ने बिल के विरुद्ध मत दिया और बिल गिर गया।

कलकत्ता-कांग्रेस

कलकत्ता-कांग्रेस राष्ट्रीय सम्मेलनो में एक बड़े महत्त्व का सम्मेलन था, क्योंकि उसे कांग्रेस का भावी मार्ग निर्दिष्ट करना था। इस महत्त्व के कारण पण्डित मोतीलाल

नेहरू उसके सभापति चुने गये। इसके साथ सर्व-दल-सम्मेलन भी लगा हुआ था, जिसका पूरा इजलास कलकत्ते में हुआ। इस समय भारत मे साइमन-कमीशन का दूसरा दौरा शुरू हो चुका था और जिस समय कांग्रेस का अधिवेशन कलकत्ता में हो रहा था उस समय भी कमीशन देश का दौरा कर रहा था। पण्डितजी ने सभापति के अपने अभिभाषण में इस बात को बताया कि कमीशन का देश में, खासकर कानपुर, लाहौर व लखनऊ में, कितने जोर के साथ बहिष्कार हुआ और उस बहिष्कार ने एंग्लो-इण्डियनो के दिमाग पर क्या असर किया। कलकत्ते के कुछ गोरे अखबार तो यह सलाह तक देने लगे कि कम-से-कम बीस वर्ष तक भारत में फौलादी शासन किया जाय और जबतक एक रत्तीभर भी गोला-बारूद रह जाय तब तक भारतीय-स्वतन्त्रता की माग का मुकाबला किया जाय। पण्डितजी ने जोरदार शब्दो में बताया कि हमारा लक्ष्य स्वाधीनता है, जिसका स्वरूप इस बात पर निर्भर है कि वह किस समय और किस परिस्थिति में हमें प्राप्त होती है। आगे पण्डितजी ने इस बात पर जोर दिया कि "सर्व-दल-सम्मेलन जिस स्थल तक पहुँच गया है वही से सरकार को उसका कार्य शुरू कर देना चाहिए और जहातक हम जा सकें वहातक उसे हमारा साथ देना चाहिए।"

कलकत्ता-कांग्रेस की एक भारी विशेषता यह थी कि विदेशो से व्यक्तियो तथा सस्थाओं की सहानुभूति के सैकडो सन्देश प्राप्त हुए जिनमें न्यूयार्क से श्रीमती सरोजिनी नायडू के, श्रीमती सनयात सेन, मोशिये रोम्या रोला के और फारस के समाजवादी दल व न्यूजीलैण्ड के कम्यूनिस्ट-दल के सन्देश विशेष उल्लेखनीय हैं। भारत के भविष्य के बारे में सरकार को अन्तिम चेतावनी देने के अलावा प्रस्तावो के विषय हर साल जैसे ही रहे। विदेशो से आये सन्देशो व बधाइयो के उत्तर में विदेशी मित्रो को भी उसी प्रकार के सन्देश व बधाइया दी गईं और महासमिति को आदेश किया गया कि वह एक वैदेशिक विभाग खोलकर विदेशी मित्रो से सम्पर्क स्थापित करे। अखिल-एशिया-सम्मेलन का आयोजन भारत में करने के लिए भी एक प्रस्ताव पास किया गया। चीन के पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त कर लेने पर उसे बधाई दी गई और मिश्र, सीरिया, फिलस्तीन व ईराक के स्वातन्त्र्य-युद्ध के प्रति सहानुभूति दिखाई गई। साम्राज्य-विरोधी-सघ के द्वितीय विश्व-सम्मेलन के आयोजन का स्वागत किया गया और मदरास-कांग्रेस के 'युद्ध के खतरे' वाले प्रस्ताव को दोहराया गया। ब्रिटिश-माल के बहिष्कार के आन्दोलन पर भी जोर दिया गया। बारडोली की शानदार विजय पर सरदार वल्लभभाई पटेल को बधाई दी गई। सरकारी उत्सवो व दरबारो तथा सरकारी अधिकारियो-द्वारा आयोजित या उनके सम्मान में किये जानेवाले अन्य सब

सरकारी तथा गैर-सरकारी उत्सवो मे भाग लेने की काग्रेस-वादियो को मनाही की गई। देशी-राज्यो में उत्तरदायी-शासन स्थापित करने की भी एक प्रस्ताव-द्वारा माग की गई। चूकि देशी-राज्यो के सम्बन्ध में इस प्रस्ताव को लेकर देश में खूब आन्दोलन उठाया गया है जिससे इस प्रस्ताव का महत्त्व अब बढ गया है, इसलिए इसे हम यहा ज्यो-का-त्यो देते हैं —

"यह काग्रेस भारत के देशी-नरेशो से आग्रह-पूर्वक अनुरोध करती है कि वे अपने राज्यो में प्रतिनिधि-सस्थाओ के आधार पर उत्तरदायी-शासन स्थापित करें और फौरन ही ऐसे आदेश जारी करें या कानून बनायें जिनके द्वारा सभा-सगठन के, स्वतन्त्रता से भाषण देने के व लेख लिखने के, जान-माल की रक्षा के व नागरिकता के तथा इसी प्रकार के अन्य मौलिक अधिकारो को सुरक्षित कर दिया जाय।"

नाभा के भूत-पूर्व नरेश के साथ सहानुभूति दिखाते हुए इस साल भी एक प्रस्ताव पास किया गया। जिन पाच बगालियो की कारावास में ही मृत्यु हो गई थी उनके परिवारवालो के साथ भी काग्रेस ने सहानुभूति प्रकट की। लाहौर में पुलिस-द्वारा किये गये धावो व खानातलाशियो की निन्दा की गई। लाला लाजपतराय, हकीम अजमलखा, आन्ध्र-रत्न श्री गोपाल कृष्णैया, श्री मगनलाल गाधी, श्री गोपबन्धु दास और लॉर्ड सिंह की स्मृति मे एक प्रस्ताव पास किया गया।

सरकार को अन्तिम चेतावनी देने का जो प्रस्ताव पास हुआ वह इस प्रकार था —

"सर्व-दल-समिति (नेहरू-कमिटी) की रिपोर्ट में शासन-विधान की जो तजवीज पेश की गई है उसपर विचार करके काग्रेस उसका स्वागत करती है और उसे भारत की राजनैतिक व साम्प्रदायिक समस्याओ को हल करने में बहुत अधिक सहायता देनेवाली मानती है, और अपनी सब सिफारिशो को प्राय सर्व-सम्मति से ही करने के लिए कमिटी को बधाई देती है। और यद्यपि यह काग्रेस मदरास-काग्रेस के पूर्णस्वाधीनता के निश्चय पर कायम है, फिर भी यह कमिटी-द्वारा तैयार किये गये विधान को राजनैतिक प्रगति की दिशा में एक बडा पग मानकर उसे मजूर करती है, खासकर इस विचार से कि देश के मुख्य-मुख्य राजनैतिक दलो में जितना अधिक-से-अधिक मतैक्य हो सका है उसका वह सूचक है।

"अगर ब्रिटिश-पार्लमेण्ट इस विधान को ज्यो-का-त्यो ३१ दिसम्बर १९२९ तक या उसके पहले स्वीकार कर ले तो यह काग्रेस इस विधान को अपना लेगी, बशर्ते कि राजनैतिक स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन न हो। लेकिन यदि उस तारीख तक

पार्लमेण्ट उसे मजूर न करे या इसके पहले ही उसे नामजूर कर दे तो काग्रेस देश को यह सलाह देकर कि वह करो का देना बन्द कर दे और उन अन्य तरीको-द्वारा, जिनका वाद में निश्चय हो, अहिंसात्मक असहयोग का आन्दोलन सगठित करेगी।

"काग्रेस के नाम पर पूर्ण स्वाधीनता का प्रचार करने मे यह प्रस्ताव कोई वाधा नही डालेगा, यदि ऐसा कार्य इस प्रस्ताव के विरुद्ध न हो।"

खुले अधिवेशन में जिस रूप में कलकत्ता-काग्रेस का मुख्य प्रस्ताव पास हुआ वह तो ऊपर दिया जा चुका है, लेकिन गाधीजी के मूल प्रस्ताव में ३१ दिसम्बर १६२६ के वदले ३१ दिसम्बर १६३० तक की मीयाद थी तथा नीचे लिखा टुकडा था, जो वाद में हटा लिया गया —

"सभापति को यह अधिकार दिया जाता है कि वह इस प्रस्ताव की प्रतिलिपि और रिपोर्ट की प्रति वाइसराय महोदय के पास भिजवा दें जिससे कि वह उस पर अपनी मर्जी के माफिक जो कार्रवाई करना चाहें कर सके।"

भावी कार्य-क्रम

कलकत्ता-काग्रेस ने निम्न प्रस्ताव में अपना अगला कार्यक्रम भी निर्धारित किया —

"इस वीच काग्रेस का भावी कार्यक्रम यह होगा—

(१) सब नशीली चीजो का व्यवहार बन्द कराने के लिए कौंसिलो के भीतर और वाहर देश में हर तरह से कोशिश की जायगी। जहा कही भी उचित और सभव हो वहा शराव, अफीम आदि की दूकानो पर पिकेटिंग करने का प्रवन्ध किया जायगा।

(२) हाथ की कती और वुनी खादी की उत्पत्ति वढाकर और उसके इस्तेमाल का प्रतिपादन करके विदेशी कपडे का वहिष्कार कराने के लिए कौंसिलो के भीतर और वाहर स्थान व अवस्था के अनुसार तुरन्त उपयुक्त उपाय काम में लाये जायँगे।

(३) जहा कही लोगो को कोई खास तकलीफ हो और यदि वे लोग तैयार हो तो उस शिकायत को दूर कराने के लिए अहिंसात्मक अस्त्र का उपयोग किया जाय, जैसा कि हाल ही में वारडोली मे किया गया था।

(४) काग्रेस की ओर से कौंसिलो के लिए जो सदस्य चुने गये हो उन्हें अपना अधिक समय काग्रेस-कमिटी द्वारा समय-समय पर नियत किये गये रचनात्मक कार्यक्रम में लगाना होगा।

(५) नये सदस्यों की भर्ती करके और कड़ा अनुशासन रखके कांग्रेस-संगठन को सुदृढ बनाया जाय।

(६) स्त्रियों की अयोग्यताओं को दूर करने के लिए प्रयत्न किया जायगा और उन्हें राष्ट्र-निर्माण के कार्य में उचित भाग लेने के लिए प्रोत्साहित और आमन्त्रित किया जायगा।

(७) देश की सामाजिक कुरीतियां दूर करने के लिए प्रयत्न किया जायगा।

(८) प्रत्येक कांग्रेसवादी का, जो हिन्दू हो, यह कर्तव्य होगा कि वह अस्पृश्यता को दूर करने के लिए जो कुछ कर सकता है करे और अछूत कहे जानेवालों को उनकी अयोग्यतायें दूर करने और अपनी हालत सुधारने के प्रयत्नों में यथासंभव सहायता दे।

(९) शहर के मजदूरों में काम करने के लिए, और चर्खे और खद्दर के द्वारा जो कार्य हो रहा है उसके अतिरिक्त ग्राम-संगठन का और कार्य करने के लिए, स्वयंसेवक भर्ती किये जायँगे।

(१०) राष्ट्र-निर्माण के कार्य को उसके भिन्न-भिन्न पहलुओं में बटाने के लिए और राष्ट्रीय प्रयत्न में कांग्रेस को भिन्न-भिन्न कारोबार में लगे हुए लोगों का सहयोग प्राप्त कराने के लिए वे सब कार्य किये जायँगे जो उचित समझे जायँगे।

"कांग्रेस हरेक कांग्रेसवादी से आशा करती है कि वह उपर्युक्त कामों का खर्च चलाने के लिए यथाशक्ति अपनी आमदनी का कुछ भाग कांग्रेस-कोष को देता रहेगा।"

कलकत्ता-कांग्रेस के अन्य मुख्य प्रस्तावों में एक प्रस्ताव साम्राज्य-विरोधी संघ के मि० डब्ल्यू० जे० जान्स्टन के सम्बन्ध में था, जिन्हें संघ ने मित्र-प्रतिनिधि के रूप से कांग्रेस में भेजा था। उन्हें गिरफ्तार करने और बिना मुकदमा चलाये देश-निकाला देने पर सरकार की निन्दा की गई और यह मत प्रकट किया गया कि "सरकार ने यह कार्रवाई जान-बूझकर कांग्रेस के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को बढने से रोकने के इरादे से की है।"

कलकत्ता-कांग्रेस में लगभग ५०,००० से अधिक मजदूरों-द्वारा किया गया प्रदर्शन सदा स्मरण रहेगा। आस-पास के मिल-क्षेत्रों के रहनेवाले मजदूर सुव्यवस्थित रूप से एक जुलूस बना कर कांग्रेस-नगर में घुस आये और राष्ट्रीय-झण्डे की सलामी करके पंडाल में आ गये और दो घंटे तक अपनी सभा करते रहे। 'भारत के लिए स्वतन्त्रता' का प्रस्ताव पास करके वे लोग पंडाल छोड़कर चले गये।

देश में युवक-आन्दोलन का प्रादुर्भाव होना इस वर्ष की एक विशेषता थी।

देश में जगह-जगह युवक-सघ व छात्र-सघ बन गये। बम्बई व बगाल में तो उनका बटा जोर था। अगस्त मास में हालैण्ड में यूट स्थान पर जो विश्व-युवक-सम्मेलन हुआ था उसमें इन सस्थाओ में से कुछ ने प्रतिनिधि भी भेजे। युवको ने साइमन-कमीशन के सम्बन्ध में किये गये बहिष्कार-प्रदर्शनो में भी खूब भाग लिया था। लखनऊ में पुलिस की लाठियो और डडो की मार तो खास तौरपर उन्होने खाई थी।

हिन्दुस्तानी-सेवा-दल ने कर्नाटक प्रान्त में बागलकोट में एक व्यायाम-शाला स्थापित की। उसने देश के भिन्न-भिन्न भागो में कई ट्रेनिंग-कैम्प खोले और मिहनत का मोटा-झोटा काम करने में नाम पा लिया।

गांधीजी की ओर

अब हमें पाठको को यह बताना है कि गाधीजी अपने एकान्त-जीवन से कलकत्ता-काग्रेस में कैसे आ फसे। याद रहे कि उन्हें अहमदाबाद-काग्रेस के बाद मार्च १६२२ मे ही गिरफ्तार कर लिया गया था। वह १६२२ की गया-काग्रेस, सितम्बर १६२३ के दिल्ली के विशेष-अधिवेशन और १६२३ के कोकनडा के वार्षिक अधिवेशन में उपस्थित न हो सके। ५ फरवरी १६२४ को वह छूटे और बेलगाव-काग्रेस के सभापति बने। कानपुर-काग्रेस में स्वराज्य-पार्टी मे साझेदारी—या जो कुछ कहिए—के पटना के निर्णयो पर काग्रेस की छाप लगवाने के लिए ही वह आये थे। इसके बाद उन्होने राजनीति में चुप्पी साधने की एक साल की शपथ खा ली और गोहाटी में उसे पूरा कर दिया। गोहाटी में उन्होने काग्रेस के बहस-मुबाहसो में सक्रिय भाग लिया, लेकिन मदरास में तो वह बिलकुल उदासीन रहे और विषय-समिति की बैठको में भी भाग नही लिया। यह बात सन्देह-जनक ही थी कि वह कलकत्ता-काग्रेस के अधिवेशनो में भाग लेंगे या नही। कुछ वर्षो से वह काग्रेस के सालाना अधिवेशनो के पहले एक मास वर्धा-आश्रम में बिताया करते थे। इस साल भी जब काग्रेस का अधिवेशन कलकत्ते में दिसम्बर १६२८ में होने ही वाला था, वह वर्धा में थे। पडित मोतीलाल नेहरू, जिन्हें स्वागतार्थ ३६ घोडो की गाडी में बिठाकर शहर में जुलूस में निकाला गया था, अपने-आपको बडी विकट परिस्थिति में पाने लगे। लखनऊ में सर्व-दल-सम्मेलन में जिन विरोधियो ने सभापति के नाम एक पत्र पर हस्ताक्षर करके औपनिवेशिक-स्वराज्य के विरोध में और स्वतन्त्रता के पक्ष में घोषणा की थी, वे भी वहा मौजूद थे और उन्होने अपना स्वाधीनता-सघ भी बना लिया। इनमें जवाहर-

लाल भी शामिल थे। बगाल ने अपना सघ अलग बनाया था और श्री सुभाषचन्द्र वसु उसके मुखिया थे।

सर्व-दल-सम्मेलन के बारे में भी एक शब्द इस समय कहना बाकी है। सम्मेलन बुरी तरह असफल हुआ, मुसलमानो के सिवा अन्य अल्प-संख्यक जातियो ने एक-एक करके साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व को धिक्कारा। उधर श्री जिन्ना भी, जो अभी इग्लैण्ड से वापस आये थे और जिन्होने आते ही नेहरू-रिपोर्ट को कोसना शुरू कर दिया था, उसका विरोध करने लगे। कुछ मुसलमान पहले ही उसकी मुखालफत जाहिर कर चुके थे। कोरम पूरा न होने के कारण श्री जिन्ना ने लीग की बैठक स्थगित कर दी। कलकत्ते में सर्व-दल-सम्मेलन रोग-शय्या पर या यो कहें कि मृत्यु-शय्या पर पहुँच चुका था। जितना ही अधिक वह जिन्दा रहा, उतनी ही अधिक उसके सम्बन्धियो की, जो वहा इकट्ठे हुए थे, नार्शे घटती जाती थीं। उसकी हालत साबरमती के बछडे की तरह थी। न तो वह जिन्दा रह सकता था और न वह मरता ही था। उसे स्वर्ग मे पहुँचाने की आवश्यकता थी। गाधीजी के अलावा उसे स्वर्ग-द्वार तक कौन पहुँचा सकता था। गाधीजी के अलावा इस मरते हुए जीव की आखिरी सेवा करने की हिम्मत और किसमें थी? अत उन्होने प्रस्ताव किया कि सम्मेलन की कार्रवाई अनिश्चित काल के लिए स्थगित की जाय। प्रस्ताव पास हो गया। अब काग्रेस निश्चित रूप से गाधीजी की ओर झुक रही थी, लेकिन वह अपने खुद के कई बोझो से लदी हुई थी। गाधीजी देखना चाहते थे कि काग्रेस की कौंसिल-पार्टी कौंसिलो का मोह छोड देने के लिए क्या-क्या करने को तैयार है। दिल्ली में अक्तूबर १९२८ में महासमिति कौंसिलो के सम्बन्ध में निम्न प्रस्ताव पास कर ही चुकी थी :—

"यह समिति दुःख के साथ इस बात को देखती है कि काग्रेस के भिन्न-भिन्न कौंसिल-दलो ने कौंसिल-कार्य के सम्बन्ध में मदरास-काग्रेस के प्रस्ताव में किये गये आदेशो पर ध्यान नहीं दिया। इसलिए विषम परिस्थिति को देखकर यद्यपि काग्रेस के कौंसिल-दलो को अधिक स्वतन्त्रता दी गई थी तथापि समिति का विश्वास था कि काग्रेस-प्रस्ताव की स्पिरिट कायम रक्खी जायगी।"

इस प्रस्ताव में चार परस्पर-विरोधी स्थितिया दिखाई गई है। पहले निन्दा, फिर उससे दर-गुजर, फिर कुछ कार्य-स्वतन्त्रता के लिए गुजाइश और फिर काग्रेस-प्रस्ताव की स्पिरिट को न त्यागने की उम्मीद।

गाधीजी कलकत्ता गये, अधिवेशन के कार्य में खूब भाग लिया, प्रस्तावो की रूप-रेखा बनाई और उन्हें सामने लाये। राजनैतिक वातावरण इस समय बहुत

अन्धकारमय था। स्वतन्त्रता के हामियो पर मुकदमे चलने की अफवाहे, वाइसराय का कलकत्ता में उत्तेजनापूर्ण भाषण, "फारवर्ड" के सम्पादक को सजा होना, मदरास में मुकदमो का दौर-दौरा—ये ऐसी घटनायें थी जिन्होने गाधीजी के ऊपर बहुत भारी प्रभाव डाला। यद्यपि ये घटनायें स्वय ही बहुत बेचैनी पैदा करनेवाली थी, पर गाधीजी खास कलकत्ते की घटनाओ से और भी अधिक बेचैन हुए, अर्थात् जान-बूझकर एक समझौते का किया जाना और फिर उसका क्रमश बगाल, युक्त-प्रान्त और अन्त में मदरास-द्वारा तोडा जाना। इन दोनो बातो के अलावा गाधीजी के पास यूरोप आने का भी निमत्रण था। परिस्थिति अनुकूल हुई तो, गाधीजी का पूरा इरादा था कि वह १९२९ के प्रारम्भ में ही यूरोप का दौरा शुरू करें। आश्चर्य की बात है कि प० मोतीलाल नेहरू ने भी उन्हें इस बात की अनुमति दे दी थी। लेकिन खूब विचार कर लेने के बाद और मित्रो से खूब परामर्श कर लेने के बाद गाधीजी इस नतीजे पर पहुँचे कि कम-से-कम इस एक वर्ष के लिए तो उन्हें अपना दौरा बन्द रखना चाहिए। गाधीजी ने लिखा, "मैं अगले वर्ष के बारे में विचार भी नही कर सकता। डेनमार्क के मेरे एक मित्र ने लिखा है कि स्वतन्त्र-भारत का प्रतिनिधि होकर ही मेरा यूरोप आना श्रेयस्कर है। मै इस कथन की सचाई महसूस करता हूँ।" हृदय की आवाज को पहचानकर गाधीजी ठीक निश्चय पर पहुँच गये, उन्होने लिखा, "अन्तरात्मा की आवाज मुझे यूरोप जाने को नही कहती। इसके विपरीत, काग्रेस के सामने रचनात्मक कार्यक्रम का प्रस्ताव रखकर और उसका इतना सर्वव्यापी समर्थन देखकर मुझे यह महसूस होता है कि यदि अब मै यूरोप चला गया तो मै कार्य को छोड भागने का दोषी होऊँगा। अन्तरात्मा की एक आवाज मुझको कह रही है कि जो कुछ कार्य मेरे सामने आवे उसके लिए केवल तैयार ही न रहूँ बल्कि उस कार्यक्रम को, जो मेरी दृष्टि में बहुत बडा है, कार्यान्वित करने के लिए उपाय भी बताऊँ और सोचूँ। इन सबके अलावा सबसे बडी बात तो यह है कि मुझे अगले साल की लडाई के लिए भी अपने-आपको तैयार करना चाहिए, चाहे उस लडाई का स्वरूप कैसा ही हो।"

यह फरवरी १९२९ के प्रथम सप्ताह की बात है। हमे अब देखना है कि फरवरी १९३० के लिए देश के भाग्य में क्या-क्या बदा था।

[चौथा भाग : १६२६-१६३०]

: १ :

तैयारी—१६२६

पब्लिक-सेफ्टी-बिल

१६२६ के आरम्भ में भारत की परिस्थिति वस्तुत बडी विकट थी। इस समय साइमन-कमीशन के साथ-साथ सेण्ट्रल-कमिटी भी देश में दौरा कर रही थी। इस कमिटी में चार सदस्य तो राज्य-परिषद् के चुने हुए थे और पाच सरकार न असेम्बली में से मनोनीत कर दिये थे। साइमन-कमीशन ने भी १४ अप्रैल १६२६ में अपना भारतीय कार्य समाप्त कर दिया। कमीशनवाले विलायत में पहुँचे ही थे कि मई १६२६ में अनुदार-दल की सरकार साधारण चुनाव में हार गई। मजदूर-दल का मन्त्रि-मण्डल बना। मैकडानल्ड साहब प्रधान मत्री बने और वेजवुड बेन साहब भारत-मत्री। लॉर्ड अर्विन चार मास की छुट्टी लेकर जून में इगलैण्ड पहुँचे। इस यात्रा का उद्देश यह था कि "साइमन-कमीशन के परिणाम-स्वरूप भारत के लिए जो सुधार-योजना पार्लमेण्ट के समक्ष रक्खी जाय उससे पहले ऐसा उपाय किया जाय जिससे विधान-सम्बन्धी स्थिति स्पष्ट हो जाय और भारत के भिन्न-भिन्न राजनैतिक दलों का अधिक सहयोग प्राप्त किया जा सके।"

लॉर्ड अर्विन ने वापस आकर नीति-सम्बन्धी जो वक्तव्य दिया उसपर तो हम उचित स्थान पर विचार करेंगे ही। तबतक काग्रेस की कौंसिलो में होनेवाली लडाई का अध्ययन कर लें। पब्लिक-सेफ्टी-बिल जनवरी १६२६ में ही दुबारा पेश हो चुका था, परन्तु उसपर विचार अप्रैल में हुआ। ११ अप्रैल को अध्यक्ष महोदय ने इस बिल पर चर्चा की मनाही कर दी। २ अप्रैल को उन्होने निम्न-लिखित वक्तव्य दिया —

"पब्लिक-सेफ्टी-बिल पर सिलेक्ट-कमिटी ने अपनी रिपोर्ट पेश कर दी है। परन्तु उसपर विचार करने के प्रस्ताव पर चर्चा आरम्भ करने की इजाजत देने से पहले मैं दो शब्द कहना चाहता हूँ। असेम्बली की पिछली बैठक के समय से ही

मैंने दो बातो पर परिश्रम-पूर्वक गौर किया है। इनमें से एक तो है पब्लिक-सेफ्टी-बिल पर समय-समय पर दिये गये सरकारी पक्ष के नेता के भाषण, और दूसरी बात है मेरठ की अदालत में ३१ व्यक्तियो के विरुद्ध सरकार का दावा। इसके अध्ययन से मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि इस बिल का और इस मुकदमे का आधार एक ही है। माननीय सदस्य जानते हैं कि हमारी कार्रवाई के नियमो में एक यह भी है कि साम्राज्य के भीतर किसी अदालत में भी यदि कोई मामला विचाराधीन है तो उसके विषय में न कोई प्रश्न पूछा जा सकता है और न कोई प्रस्ताव रक्खा जा सकता है। अत यह सवाल उठता है कि मेरठ के मुकदमे का कोई हवाला दिये बिना इस सभा में पब्लिक-सेफ्टी-बिल पर वाद-विवाद करना सम्भव है या नही? मेरी समझ से इस मामले में दो रायें नही हो सकती कि इस बिल पर वास्तविक चर्चा होना असम्भव है। साथ ही बिल को स्वीकार करने का मतलब उस मुकदमे के मूल-आधार को स्वीकार करना होगा और बिल को अस्वीकार करने का अर्थ मुकदमे के आधार को अस्वीकार करना होगा। दोनो ही दशाओ में मुकदमे पर बुरा असर पडेगा, भले ही वादी घाटे में रहे या प्रतिवादी। ऐसी स्थिति में मैं नही समझता कि न्याय-पूर्वक मैं इस समय सरकार को इस बिल के सम्बन्ध में आगे कार्रवाई करने की अनुमति कैसे दे सकता हूँ। इसलिए बजाय निर्णय देने के मैंने सरकार को यह सलाह देने का निश्चय किया है कि प्रथम तो मेरी दलीलो पर ध्यान देकर वह स्वय मेरठ का मुकदमा खतम होने तक इस बिल को स्थगित कर दे, और यदि वह इसी समय बिल का पास होना ज्यादा जरूरी समझती है तो पहले मेरठ का मामला उठा ले और बिल का मामला हाथ में ले।"

सरकार ने दोनो में से एक भी बात नही मानी और अध्यक्ष महोदय ने अपना अन्तिम निर्णय यह दिया कि "यह इस सभा की कार्यप्रणाली और शिष्टाचार विरुद्ध है" इसलिए इस प्रस्ताव पर चर्चा होने की इजाजत नहीं दी जा सकती। दूसरे ही दिन वाइसराय साहब ने दोनो धारा-सभाओ में भाषण दिये और घोषणा की कि सरकार के लिए पब्लिक-सेफ्टी-बिल में प्रस्तावित अधिकारो का अविलम्ब प्राप्त करना अत्यावश्यक है। तदनुसार उन्होंने एक विशेष आज्ञा (आर्डिनेन्स) निकालकर अधिकारियो को, जैसी वे चाहते थे, अनियन्त्रित सत्ता दे दी।

ट्रेड-डिस्प्यूट-बिल अर्थात् मजदूरो और मालिको के झगडो-सम्बन्धी प्रस्तावित कानून का जिक्र ऊपर आ चुका है। इस बारे में इतना कहना बाकी है कि यह बिल ८ अप्रैल को पास हुआ और इसके पास होने के साथ-साथ एक स्मरणीय घटना भी

हो गई। घटना यह हुई कि जब राय लेने के बाद असेम्बली फिर से एकत्र हो रही थी और अध्यक्ष आगे की कार्रवाई की घोषणा कर रहे थे उसी समय दर्शकों के झरोखे में से सरकारी पक्ष के बीच मे दो बम आकर गिरे और उनके फटने से कुछ लोग जरा घायल हो गये।

उपसमितियां

कांग्रेस के कलकत्ते के अधिवेशन के बाद तुरन्त ही कार्य-समिति ने कांग्रेस के निश्चयो को कार्य-रूप देने के लिए अनेक उप-समितिया बनाईं। विदेशी वस्त्र के बहिष्कार, मादक-द्रव्यों के निषेध, अस्पृश्यता के निवारण, महासभा के सगठन, स्वय-सेवको और स्त्रियो की बाधाओ को दूर करने के लिए कमिटिया नियुक्त की गई। मालूम होता है कि आखिरी कमिटी ने कोई काम नही किया और कोई रिपोर्ट पेश नही की।

स्वय-सेवको-सम्बन्धी उपसमिति ने कई सिफारिशें की। उसकी खास सूचना यह थी कि हिन्दुस्तानी-सेवादल को दृढ बनाया जाय और राष्ट्रीय कार्य के लिए स्वयसेवक तैयार करने के लिए उसका पूरा उपयोग किया जाय। विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार-समिति के अध्यक्ष थे गाधीजी और मत्री थे श्री जयरामदास दौलतराम। यह समिति वर्षभर काम करती रही। बहिष्कार के पक्ष में जबरदस्त हलचल रही। बहिष्कार के काम में अपना सारा समय लगाने के लिए श्री जयरामदास ने बम्बई-कौंसिल का सदस्य-पद छोड दिया और अपनी समिति का केन्द्र बम्बई में बनाकर बैठ गये। मादक-द्रव्य-निषेध-समिति का काम चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य के हाथ मे था। इन्होने इस कार्य को अपना खास विषय बना लिया और इस आन्दोलन की सफलता के लिए अपनी महान् योग्यता का पूरा उपयोग किया। यह कार्य अधिकतर दक्षिण-भारत और गुजरात में हुआ। सफलता भी अच्छी मिली। इस आन्दोलन की ओर विदेशो तक का ध्यान आकर्षित हुआ। नशे के विरुद्ध सरकारी तौर पर प्रचार करने के लिए मदरास-सरकार चार लाख रुपया खर्च करने को राजी हो गई। युक्तप्रान्त की सरकार से भी इसी प्रकार की कार्रवाई की आशा हुई। श्री राजगोपालाचार्य भारतीय मद्यपान-निषेध-सघ के मत्री हुए और उसके अग्रेजी त्रैमासिक मुख-पत्र 'प्रोहिबिशन' का सम्पादन करते रहे। अस्पृश्यता-निवारण-आन्दोलन का काम श्री जमनालाल बजाज के सुपुर्द किया गया। इन्होने भी काफी परिश्रम किया। जो लोग दीर्घकाल से दलित रक्खे गये हैं उनकी

बाधायें दूर करने के लिए सर्वत्र लोकमत जाग्रत किया गया। जहा दलित-जातियो को मनाई थी, ऐसे अनेक प्रसिद्ध मन्दिरो के द्वार उनके लिए खोल दिये गये। समिति को बहुत से कुएँ और पाठशालायें भी खुलवाने में सफलता मिली। कई म्युनिसिपैलिटियो ने इस कार्य में सहयोग दिया। समिति के मत्री श्री जमनालाल बजाज ने मदरास, मध्यप्रान्त, राजस्थान, सिंध, पजाब और सीमाप्रान्त में लबे प्रवास किये। काग्रेस के पुनस्सगठन के लिए जो समिति बनाई गई थी उसने साल के शुरू में ही अपनी रिपोर्ट पेश कर दी।

गांधीजी पर जुरमाना

कौंसिलो की सितम्बर की बैठको की राम-कहानी फिर से आरम्भ करने के पहले गाधीजी से सम्बन्ध रखनेवाली एक-दो घटनायें वर्णन कर देना आवश्यक है। गाधीजी उस समय भारत का दौरा कर रहे थे और बर्मा जाते हुए कलकत्ते से गुजरे। वहा विदेशी कपडे की होली हुई और इस सम्बन्ध मे मार्च १६२६ के दूसरे सप्ताह मे उनपर यह अभियोग लगाया गया कि उन्होने आज्ञाभग की या आज्ञा-भग में सहायता दी। आज्ञा यह थी कि सार्वजनिक स्थानो पर घास-फूस आदि न जलाया जाय। कलकत्ता के पुलिस-कमिश्नर सर चार्ल्स टैगार्ट ने कलकत्ता-पुलिस के कानून की ६६ वी धारा की दूसरी कलम को खोद निकाला था। पुलिस का इरादा तो यह था कि इस कार्य को सविनय-अवज्ञा सिद्ध किया जाय। परन्तु उसे सफलता नही मिली। गाधीजी पर मुकदमा चला और एक रुपया जुर्माना हुआ। उसके बाद उन्होंने आन्ध्रदेश की स्मरणीय यात्रा की और डेढ मास में खद्दर के लिए दो लाख सत्तर हजार रुपये इकट्ठे किये। थोडे दिन बाद मई १६२६ में महासमिति की बम्बई में बैठक हुई।

बम्बई में महासमिति

बम्बई की बैठक जरा महत्त्वपूर्ण थी। सरकार घोषणा कर चुकी थी कि असेम्बली का कार्य-काल बढाया जायगा। इस बात पर भी काग्रेस को कार्रवाई करने की जरूरत थी। इधर देश-भर में गिरफ्तारियों का ताता बध गया था, कार्य-समिति के सदस्य श्री साम्बमूर्ति पकड लिये गये थे और पजाब मे घोर दमन-चक्र चल रहा था। इससे यह सन्देह होता था कि शायद और बातो के साथ-साथ इनका उद्देश लाहौर के काग्रेस-अधिवेशन की तैयारियो में बाधा डालना भी हो। इन सब कारणों

से प्रत्येक प्रान्त में कांग्रेस की शाखाओ के लिए जोरदार कार्रवाई करना आवश्यक हो गया था। अत बम्बई में यह निश्चय हुआ कि प्रान्तीय-कांग्रेस-कमिटियो में प्रान्त की समस्त जन-सख्या के ½ फी सदी से कम चार आनेवाले सदस्य नही होने चाहिएँ और प्रान्तीय-कमिटी में कम-से-कम आधे जिलो के प्रतिनिधि होने चाहिएँ। जिला और तहसील-कमिटी में आबादी के कम-से-कम ½ फी सदी चार आनेवाले सदस्य होने चाहिएँ और ग्राम-समिति में कम-से-कम एक फी सदी। कार्य-समिति को अधिकार दिया गया कि जो शाखा इन आदेशो का पालन न करे उसका सम्बन्ध-विच्छेद किया जा सकेगा। कार्य-समिति को यह भी सत्ता दी गई कि देश के हित के लिए वह जो उपाय उचित समझे उनका पालन असेम्बली और प्रान्तीय कौसिलो के कांग्रेसी-सदस्यो से भी करा सके। पूर्व-अफ्रीका के विषय में यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ कि वहा भारतीयो की राजनैतिक और आर्थिक समानता की लड़ाई में कांग्रेस पूरी हिमायत करे। समिति ने यह भी निश्चय किया कि कांग्रेस एक ऐसी पुस्तिका तैयार कराये जिसमें स्वराज्य-आन्दोलन के अन्तर्गत जिन राजनैतिक, शासन-सम्बन्धी, आर्थिक और सास्कृतिक समस्याओ का समावेश होता है उनपर अधिकार-पूर्ण परिच्छेद हो। इसके लिए महासमिति को आवश्यक खर्च करने का अधिकार दिया गया।

डॉ० सनयातसेन के मृत्यु-सस्कार के समय भिक्षु उत्तमा को कांग्रेस की ओर से उपस्थित रहने का जो अधिकार अध्यक्ष ने दिया था उसका कार्य-समिति ने समर्थन किया। श्री शिवप्रसाद गुप्त को साम्राज्य-विरोधक-सघ के अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिए भारत का प्रतिनिधि चुना गया। धारा-सभाओ में कांग्रेसी दल के बारे में कार्य-समिति ने यह प्रस्ताव किया कि "बगाल और आसाम के सिवा बडी या अन्य प्रान्तीय कौंसिलो के सारे कांग्रेसी सदस्य इन कौंसिलो की भी बैठक में अथवा उनके द्वारा अथवा सरकार-द्वारा नियुक्त किसी भी समिति की किसी भी बैठक में तबतक शामिल न होंगे जबतक कि महासमिति या कार्य-समिति दूसरा निर्णय न करे। यह भी निश्चय हुआ कि कांग्रेसी सदस्य अबसे अपना सारा उपलब्ध समय कांग्रेस के कार्यक्रम को पूरा करने में ही लगायेंगे। हा, बगाल और आसाम की कौंसिलो के कांग्रेसी सदस्य निर्वाचित होने के बाद अपने नाम दर्ज कराने मात्र के लिए सिर्फ एक-एक बैठक में उपस्थित रह सकेंगे।"

मेरठ-षड्यन्त्र-केस

२० मार्च १९२९ के दिन बम्बई, पजाब और सयुक्त-प्रान्त में ताजिरात-हिन्द

की १२१ अ धारा के अनुसार सैकड़ो घरो की तलाशी ली गई। जो लोग गिरफ्तार किये गये, उनमें महासमिति के ८ सदस्य भी थे। गिरफ्तार किये गये लोगो को मेरठ ले जाकर उनपर मुकदमा चलाया गया। अभियुक्तो पर अपराध साम्यवादी प्रचार का लगाया गया था। आगे चलकर "न्यू स्पार्क" के सम्पादक मिस्टर एच० एल० हचिसन भी अभियुक्तो में शामिल कर दिये गये। अभियुक्तो की सहायता के लिए, एक सेंट्रल डिफेन्स-कमिटी भी बनाई गई। इसमें मुख्यत बडे-बडे काग्रेसी ही थे। कार्य-समिति ने अभियुक्तो की सफाई के लिए अपनी साधारण परिपाटी छोडकर भी १५००) की रकम मजूर की थी। इस मुकदमे में प्रारम्भिक तफतीश में ही कई महीने लग गये और वर्ष का अन्त आ पहुँचा। भारत और इग्लैण्ड में इस मुकदमे ने बडा नाम पाया। मुकदमे के समय सरकारी प्रकाशन-विभाग के सञ्चालक स्वय उपस्थित रहते थे और मुकदमे-सम्बन्धी प्रचार और प्रकाशन के काम की खुद देख-भाल रखते थे।

१५ जुलाई को दिल्ली में कार्य-समिति की बैठक फिर हुई। समिति ने राय दी कि भिन्न-भिन्न कौंसिलो के सदस्यो को इस्तीफा देने की सलाह देने में ही स्वराज्य-आन्दोलन का लाभ है। परन्तु इस प्रश्न के महत्त्व को देखते हुए कार्य-समिति ने सोचा कि अन्तिम निर्णय महासमिति को ही करना चाहिए। इसलिए यह निश्चय किया गया कि शुक्रवार २६ जुलाई १९२९ को प्रयाग में महासमिति की विशेष बैठक बुलाई जाय। स्मरण रहे कि कलकत्ते के मुख्य प्रस्ताव की अन्तिम धारा में लोगो से यह अनुरोध किया गया था कि वे अपनी आय का एक विशेष भाग काग्रेस को दें। पहले-पहल ५ फी सदी रक्खा गया और बाद में २½ फी सदी, परन्तु फिर समिति ने यह मामला लोगो की इच्छा पर ही छोड दिया। जुलाई के बुलेटिन में इस चन्दे की सूची प्रकाशित की गई थी, जिससे मालूम हुआ कि सब मिलाकर बहुत थोडा रुपया प्राप्त हुआ था।

दमन-चक्र जारी

देश में यह बडा दमन-काल था। इस समय सरकार ने डॉ० सण्डरलैंड की "इडिया इन बॉण्डेज" नामक पुस्तक को निषिद्ध ठहरा दिया और इसके प्रकाशित करने के अपराध मे 'मॉडर्न-रिव्यू' के सम्पादक बाबू रामानन्द चटर्जी को गिरफ्तार कर लिया। असेम्बली-बम-केस के अभियुक्त श्री भगतसिंह और दत्त को आजन्म काले-पानी की सजा दी गई। उन्होने प्रकट किया था कि बम तो प्रदर्शन के लिए फेंका गया था। लाहौर षड्यन्त्र-केस के अभियुक्तो की भूख-हडताल का वर्णन विस्तार से

किया ही जा चुका है। कलकत्ते में भी एक सामूहिक अभियोग चल रहा था। इसमें कार्य-समिति के सदस्य श्री सुभाषचन्द्र वसु और अन्य कई प्रमुख कांग्रेसी अभियुक्त थे। बर्मा से और मलाया राज्यो से भी राजनैतिक कारणो से भारतीयो की गिरफ्तारी के समाचार मिले थे।

ये बहुसख्यक मुकदमे तो चल ही रहे थे और राजनैतिक और मजदूर-कार्यकर्ताओ को सजाये दी ही जा रही थी। इनके सिवा पुलिस दमन के ऐसे तरीके भी इस्तेमाल कर रही थी जिन्हें महासमिति ने जगली बताया। एक अवसर पर लाहौर के अभियुक्तो की सफाई के लिए धन एकत्र करनेवाले सात युवको को पुलिस ने जिला-मजिस्ट्रेट की मौजूदगी में इतना मारा कि उनमें से कुछ बे-सुध तक हो गये। चोटें तो सभी को गहरी लगी। उनका अपराध था 'साम्राज्यवाद का नाश हो' और 'क्रान्ति अमर हो' के नारे लगाना। लाहौर-षड्यन्त्र के अभियुक्तो के साथ इससे भी अधिक पाशविक व्यवहार किया गया। वे न्यायाधीश के सामने खुली अदालत में पीटे गये—और, कहा जाता है कि, अदालत के बाहर भी उनके साथ कई तरह का दुर्व्यवहार किया गया। यह भी भूलने की बात नहीं है कि भारत के भिन्न-भिन्न जेलो में और अण्डमान-द्वीप में बहुत-से लम्बी सजाओवाले राजनैतिक कैदी भी थे। इनमें १८१८ के तीसरे रेग्युलेशन के शिकार नजरबन्द और फौजी-कानून के शिकार दूसरे कैदी भी थे। इन कैदियो को १९१९ में पजाब के फौजी-शासन-द्वारा स्थापित विशेष अदालतो ने सजाये दी थी। इनके सिवा जेलो में २७ राजनैतिक कैदी वे भी थे जिन्हें युद्धकाल में, अर्थात् सन् १९१४–१५ में, काले-पानी की सजायें दी गई थी। इनके मुकदमे भी विशेष कमीशनो के सामने हुए थे, मामूली अदालतो में नही। इस समय तक ये लोग १५–१५ वर्ष की जेल काट चुके थे।

कलकत्ता-कांग्रेस के बाद तुरन्त ही कार्य-समिति ने ३० पौण्ड मासिक की रकम इसलिए मजूर की कि बर्लिन में भारतीय छात्रो को सलाह और सहायता देनेवाली एक समिति स्थापित की जाय।

कलकत्ता-कांग्रेस ने महा-समिति को वैदेशिक विभाग खोलने का आदेश दिया था। कार्य-समिति ने इस मामले में आवश्यक कार्रवाई करने का अधिकार प्रधान-मंत्री को दे दिया। वह स्वय इस विभाग की देख-भाल रखने लगे। उन्होने अन्य देशो के व्यक्तियो और सस्थाओ से सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया। यह काम आसान नही था, क्योकि सरकार की कडी नजर के कारण विदेशो से पत्र-व्यवहार रखने में अनेक बाधायें आती थी।

महा-समिति के निर्णयानुसार समिति के कार्यालय की शाखा के रूप में ही मजदूरो-सम्बन्धी प्रश्नो के लिए एक अनुसधान-विभाग भी खोला गया।

हिन्दुस्तानी सेवा-दल ने स्वयसेवक तैयार करने का कार्य देश के भिन्न-भिन्न भागो में किया। अधिकतर कार्य तो कर्नाटक में ही हुआ। वही दल का दफ्तर और व्यायाम-मन्दिर भी था। परन्तु दल की छावनिया देश के अन्य भागो में भी बहुत थी और शिक्षको की माग इतनी रही कि पूरी न की जा सकी। काग्रेस के सदस्य बनाने और विदेशी वस्त्र-बहिष्कार के काम में दल ने बडी मदद दी। लाहौर-काग्रेस के लिए चुस्त स्वयसेवक-सैन्य सगठित करने में दल ने पूरा सहयोग दिया। मासिक झण्डाभिवादन के कार्यक्रम का सगठन करने में हिन्दुस्तानी-सेवादल को आशातीत सफलता मिली। दल ने कलकत्ते में निश्चय किया कि हर महीने के आखिरी रविवार को सुबह ८ बजे देशभर में राष्ट्र-ध्वज फहराया जाय। मासिक झण्डाभिवादन का कार्यक्रम खूब लोकप्रिय हुआ। बहुत-सी म्युनिसिपैलिटियो ने भी अपनी इमारतो पर विधि-पूर्वक राष्ट्रीय झण्डे लगाये। हिन्दुस्तानी-सेवादल की पुनर्रचना की गई।

यतीन्द्र का अनशन

पिछले महीनो से अगस्त कुछ अच्छा नही निकला। नेताओ की गिरफ्तारिया सर्वत्र जारी रही। पजाब में सरदार मगलसिह, मौलाना जफरअलीखा, मास्टर मोतासिह और डॉ० सत्यापाल तथा आन्ध्र-देश में श्री अन्नपूर्णय्या पकडे गये। मास्टरजी तो बेचारे ७ वर्ष की सजा काटकर निकले ही थे। डॉ० सत्यापाल को दो वर्ष की कडी कैद मिली। पजाब में दमन का जोर खास तौर पर रहा। बाहर तो लोग यो पकडे ही जा रहे थे, जेलो के भीतर भी अत्यत कठोरता का व्यवहार किया जा रहा था। श्री भगतसिह, दत्त और अन्य कई कैदियो की भूख-हडताल को इस समय तक डेढ महीना हो चुका था। श्री भगतसिह और दत्त को हाल ही में असेम्बली-बम-केस में तो आजीवन काले-पानी की सजा हुई थी। ये दोनो लाहौर-षड्यन्त्र के मुकदमे में भी अभियुक्त थे। हा, पीछे से श्री दत्त को इस मुकदमे में छोड दिया गया था। यह मुकदमा लाहौर-पुलिस के मिस्टर साडर्स नामक अफसर की हत्या के कारण हुआ था। यह हत्या १७ सितम्बर १९२८ को दिन के ४ बजे हुई थी। भूख-हडताल का उद्देश कुछ कष्टो का निवारण और खास तौर पर कैदियो के लिए मनुष्योचित व्यवहार की प्राप्ति करना था। अनशन करनेवालो में विख्यात श्री० यतीन्द्रनाथ दास

मुख्य थे। श्री यतीन्द्र की शिकायत यह थी कि गोरे और हिन्दुस्तानी कैदियो के साथ भेद-भाव-पूर्ण व्यवहार किया जाता है। इन भूख-हडतालियो को जो खास रिआयतें दी गई थी, उनकी यतीन्द्र ने कुछ परवा नही की और मैक्स्विनी की भाति अकेले ही भूख-हडताल पर अन्त तक डटे रहे और चौंसठवें दिन चल बसे।

प्रयाग में महासमिति की बैठक के अवसर पर अखिल-भारतीय राष्ट्रीय-मुस्लिम-दल की स्थापना हुई। इस बैठक में महासमिति ने कार्य-समिति के इस मत का समर्थन किया कि कौंसिलो के काग्रेसवादी सदस्यो को इस्तीफे दे देने चाहिएँ, परन्तु इस विषय पर जो पत्र प्राप्त हुए उनको ध्यान में रखकर इस विषय को लाहौर-कांग्रेस के बाद के लिए स्थगित रखना ही उचित समझा। इसका यह अर्थ नही था कि जो पहले त्याग-पत्र देना चाहे उन्हें मनाई की गई हो।

पजाब की भूख-हडताल का उल्लेख सक्षेप में ऊपर किया गया है। इन हडतालो से सरकार हैरान हुई। उसने सोचा कि ये हडतालें लाहौर-षड्यन्त्र केस में पुलिस को तग करने के अभिप्राय से की गई है। अत १२ सितम्बर १९२९ को सरकार ने असेम्बली में एक बिल पेश किया। इस बिल में न्यायाधीशो को अधिकार दिया गया था कि यदि अभियुक्त लोग अपने ही कृत्यो से अपने को अदालत में उपस्थित होने में असमर्थ बना ले तो उनकी अनुपस्थिति में भी मुकदमे की कार्रवाई जारी रह सकती है। किन्तु १६ सितम्बर को सरकार ने यह देखकर कि इस बिल पर बडा मतभेद है, यह मजूर कर लिया कि इसपर और अधिक राय ली जाय, परन्तु साथ ही सरकार ने अपना यह हक सुरक्षित रख लिया कि भविष्य में आवश्यकता हुई तो सरकार अपने प्राप्त अधिकारो का प्रयोग करेगी। और आखिर हुआ भी ऐसा ही। गवर्नर-जनरल ने लाहौर-षड्यन्त्र-केस के बारे में एक आर्डिनेन्स निकाल दिया।

लाहौर-कांग्रेस का सभापतित्व

भविष्य के गर्भ में बडी-बडी घटनायें छिपी थी। लाहौर-काग्रेस के लिए सभापति के प्रश्न पर दस प्रान्तो ने गाधीजी के लिए, पांच ने श्री वल्लभभाई पटेल के लिए और तीन ने पण्डित जवाहरलाल नेहरू के लिए राय दी। गाधीजी का चुनाव विधिपूर्वक घोषित हो गया। परन्तु उन्होने त्याग-पत्र दे दिया। विधान के अनुसार उनके स्थान पर दूसरे का निर्वाचन आवश्यक हुआ। अत २८ सितम्बर १९२९ को लखनऊ में महासमिति की बैठक हुई। सबकी दृष्टि गाधीजी पर लगी हुई थी। वे ही ऐसे व्यक्ति दीखते थे जो काग्रेस की रक्षा और उसे विजय-पथ पर अग्रसर

कर सकते थे। कौंसिलो और उनके कुछ सदस्यो से पण्डित मोतीलाल जैसो का भी उकता उठना छिपा नही रह गया था। यह सकेत स्पष्टत आ चुका था कि कौंसिलो की मेम्बरी छोड दी जाय, पर आगे क्या किया जाय ? सविनय-अवज्ञा के सिवाय चारा ही क्या था ? परन्तु इस नवीन मार्ग पर गाधीजी के अतिरिक्त राष्ट्र का सफल पथ-प्रदर्शन और कौन करे ? उन्हे पहले भी दवाया गया था। लखनऊ में उनपर फिर जोर डाला गया कि वह अपनी अस्वीकृति वापस ले लें। परन्तु उनकी दूरदर्शिता ने काग्रेस की गद्दी पर ऐसे किसी युवक को ही विठाने की सलाह दी जिसपर देश के युवक-हृदयो की श्रद्धा हो। गाधीजी ने इसके लिए युवक जवाहरलाल को सभापति वनाना उचित समझा। नवयुवको को काग्रेस की नीति रीति धीमी और सुस्त मालूम होती थी। ऐसी दशा में यदि काग्रेस की विजय-यात्रा को आगे लेजाना हो तो उसका सूत्र किसी नौजावन के हाथ में देना ही उचित है। श्री वल्लभभाई ने गाधीजी और जवाहरलालजी के बीच में आना पसन्द नही किया। लखनऊ में उपस्थिति अधिक नही थी। उपस्थित मित्रो ने वहुमत से प० जवाहरलाल को चुन लिया।

लखनऊ-महासमिति

लखनऊ में महा-समिति के सामने दूसरा विचारार्थ विषय था श्री यतीन्द्र नाथ दास और फुगी विजया के देहावसान का। इनमें से पहले देशभक्त पजाव की जेल में ६४ दिन के अनशन से और दूसरे ब्रह्मदेश में १६४ दिन के उपवास से शहीद हुए। भिक्षु विजया एक वौद्ध साधु थे। वह राजद्रोह के अपराध में २१ मास का कठोर कारावास भुगतकर २८ फरवरी १९२९ को ही छूटे थे। इसके सवा मास वाद ही अर्थात ४ अप्रैल को, वह राजद्रोहात्मक भाषण देने के अभियोग में फिर गिरफ्तार कर लिये गये। उन्हें ६ वर्ष के कालेपानी की सजा हुई। वाद में घटाकर यह सजा ३ वर्ष कर दी गई। गिरफ्तारी के थोडे समय वाद उन्होने अच्छा व्यवहार किये जाने और विशेष अवसरो पर भिक्षुओ के भगवाँ वस्त्र पहनने के अधिकार के मामले में अनशन आरम्भ किया। यह तप १६४ दिन के वाद १९ सितम्बर १९२९ को उनके जीवन के साथ समाप्त हुआ। श्री यतीन्द्रनाथ दास का देहावसान इससे छ दिन पूर्व अर्थात् १३ सितम्बर १९२९ को, हो चुका था। इस प्रकार दो सप्ताह के भीतर इन दो देशभक्तो ने स्वेच्छापूर्वक राष्ट्र के स्वाभिमान के रक्षार्थ अपने प्राणो की वलि चढा दी। श्री दास की मृत्यु पर देश-भर में मातम छा गया और देशवासियो के हृदय उनकी प्रशसा से गद्-गद् हो गये। स्थान-स्थान पर विशाल प्रदर्शन हुए। कलकत्ते

का जुलूस तो अनोखा ही था। इतना ही नहीं, कई विदेशों से भी सहानुभूति-सूचक सन्देश आये। आयर्लैण्ड के मैक्स्विनी-परिवार का पैगाम विशेष रूप से उल्लेखनीय था।

यहां उस प्रस्ताव का जिक्र करना आवश्यक है जो २८ सितम्बर को लखनऊ में महासमिति ने जेल में होनेवाले अनशनों के विषय में पास किया। समिति ने इन बन्दियों के उद्देश की हार्दिक प्रशंसा करते हुए यह राय दी कि गंभीरतम परिस्थिति उत्पन्न हुए बिना भूख-हड़ताल नहीं करनी चाहिए। समिति ने यह भी सलाह दी कि चूंकि श्री दास और श्री विजया के आत्म-बलिदान हो चुके हैं, सरकार ने भी अन्तिम वक्त पर हड़तालियों की अधिकांश मांगें स्वीकार कर ली हैं और पूर्ण कष्ट-निवारण के लिए प्रयत्न जारी है। अतः अन्य भूख-हड़तालियों को अपनी तपस्या खतम कर देनी चाहिए।

लॉर्ड अर्विन की घोषणा

अक्तूबर का महीना घटनापूर्ण था। लॉर्ड अर्विन विलायत जाकर २५ अक्तूबर को लौट आये थे और उन्होंने एक घोषणा भी की थी। पण्डित मोतीलाल नेहरू ने पहली नवम्बर को दिल्ली में कार्य-समिति की जरूरी बैठक बुलाई। समिति के सदस्यों के अतिरिक्त राजधानी में अन्य दलों के नेता भी उक्त घोषणा को सुनने और उसपर सम्मिलित कार्रवाई करने के लिए मौजूद थे। जून १९२९ के अन्त में इंग्लैण्ड को रवाना होते समय लॉर्ड अर्विन ने कहा था, "विलायत पहुंचकर मैं ब्रिटिश-सरकार से इन गम्भीर मामलों पर चर्चा करने के अवसर ढूंढूंगा। जैसा मैं अन्यत्र कह चुका हूं, जो लोग भारतीय राजनैतिक लोकमत के प्रतिनिधि हैं उनकी भिन्न-भिन्न दृष्टियों को ब्रिटिश-सरकार के सम्मुख रखना मेरा कर्त्तव्य होगा।" इसके बाद उन्होंने अगस्त १९१७ की घोषणा और सम्राट्-द्वारा दिये गये उनके नाम के आदेश-पत्र का हवाला दिया। इस आदेश-पत्र में सम्राट् ने कहा था—"हमारी सर्वोपरि इच्छा और प्रसन्नता इसी में है कि हमारे साम्राज्य का अंगभूत रहते हुए ब्रिटिश-भारत को क्रमशः उत्तरदायी शासन-प्राप्ति के लिए पार्लमेण्ट ने जो योजना बनाई है वह इस प्रकार सफल हो कि हमारे उपनिवेशों में ब्रिटिश-भारत को भी अपने योग्य स्थान मिले।"

लॉर्ड अर्विन ने अपनी ३१ अक्तूबर की घोषणा में कहा—"साइमन-कमीशन के अध्यक्ष ने प्रधान-मन्त्री के साथ अपने पत्र-व्यवहार में कुछ महत्त्वपूर्ण सूचनायें दी हैं। पहली बात तो यह कि आगे चलकर ब्रिटिश-भारत और देशी-राज्यों के पार-

स्परिक सम्बन्ध कैसे होंगे ? अध्यक्ष महोदय की सम्मति मे इस बात की पूरी जाच होना आवश्यक है। दूसरी सूचना यह दी है कि यदि कमीशन की रिपोर्ट और उसपर सरकार-द्वारा बननेवाली योजना में यह वृहत् समस्या शामिल करनी हो तो फिर अभी से कार्य-पद्धति में परिवर्तन कर लेना जरूरी मालूम होता है। उनका प्रस्ताव है कि साइमन-कमीशन और सेण्ट्रल कमिटी की रिपोर्टों पर विचार होकर जब वे प्रकाशित कर दी जायें और पार्लमेण्ट की दोनो सभाओ की सम्मिलित समिति नियुक्त हो उससे पहले ब्रिटिश-सरकार को ब्रिटिश-भारत और देशी-राज्य दोनो के प्रतिनिधियों से विचार-विनिमय करना चाहिए, जिससे सरकार की ओर से पार्लमेण्ट के सम्मुख पेश होनेवाली अन्तिम सुधार-योजना के पक्ष में अधिक-से-अधिक सहमति प्राप्त हो सके। भारतीय धारा-सभाओ एव अन्य सस्थाओ की सलाह लेना तो ज्वाइण्ट पार्लमेण्टरी कमिटी के लिए फिर भी लाभदायक होगा ही। परन्तु इसका अवसर तब आवेगा जब यह योजना आगे चलकर बिल के रूप मे पार्लमेण्ट के सामने आवेगी। किन्तु कमीशन की राय मे इससे पहले पूर्वोक्त ढग की परिषद् बुलानी पडेगी। मै समझता हूँ कि ब्रिटिश-सरकार इन विचारो से पूर्णत सहमत है
अगस्त १९१७ की घोषणा में ब्रिटिश-नीति का ध्येय यह बताया गया था कि स्व-शासन-सस्थाओ का क्रमश विकास किया जाय जिससे ब्रिटिश साम्राज्य का अग रहकर भारत धीरे-धीरे दायित्वपूर्ण शासन प्राप्त कर सके। परन्तु १९१९ के सुधार-कानून का अर्थ लगाने में विलायत और भारत दोनो ही देशो में ब्रिटिश-सरकार की इच्छाओ पर सन्देह किया गया है। इसलिए ब्रिटिश-सरकार ने मुझे यह स्पष्ट घोषित कर देने का अधिकार दिया है कि १९१७ की घोषणा में यह अभिप्राय असदिग्ध रूप से है कि भारत को अन्त में उपनिवेश का दर्जा मिले।"

यह घोषणा तो हुई ३१ अक्तूबर को और २४ घटे के भीतर पण्डित मालवीय, सर तेजबहादुर सप्रू और डॉ० बेनेण्ट आदि बडे-बडे लोग दिल्ली आ पहुँचे। काग्रेस की कार्य-समिति तो वहा थी ही, गम्भीर विचार के पश्चात् इस सम्मिलित-सभा ने कुछ निर्णय किये। इन्ही निर्णयो के प्रकाश में एक वक्तव्य तैयार किया गया, जिसमें ब्रिटिश-सरकार की घोषणा की सचाई की और भारतीय लोकमत को सन्तुष्ट करने की सरकार की इच्छा की प्रशसा की गई।

इस वक्तव्य में कहा गया कि "हमें आशा है, भारतीय आवश्यकताओ के अनुकूल औपनिवेशिक विधान तैयार करने के सरकार के प्रयत्न में हम सहयोग दे सकेंगे, परन्तु हमारी राय में देश की मुख्य-मुख्य राजनैतिक सस्थाओ में विश्वास

उत्पन्न करने और उनका सहयोग प्राप्त करने के हेतु कुछ कार्यों का किया जाना और कुछ बातो का साफ होना जरूरी है।

"प्रस्तावित परिषद् की सफलता के लिए हम अत्यन्त जरूरी समझते है कि—

(क) वातावरण को अधिक शान्त करने के लिए समझौते की नीति अख्तियार की जाय।

(ख) राजनैतिक कैदी छोड दिये जायें।

(ग) प्रगतिशील राजनैतिक सस्थाओ को काफी प्रतिनिधित्व दिया जाय और सबसे बडी सस्था होने के कारण काग्रेस के प्रतिनिधि सबसे अधिक लिये जावें।

(घ) औपनिवेशिक दर्जे के सम्बन्ध में वाइसराय की घोषणा में सरकार की ओर से जो कुछ कहा गया है उसके अर्थ क्या है, इस विषय में लोगो ने सन्देह प्रकट किया है किन्तु हम समझते है कि प्रस्तावित परिषद् औपनिवेशिक स्वराज्य की स्थापना का समय निश्चित करने को नहीं बुलाई जा रही है, बल्कि ऐसे स्वराज्य का विधान तैयार करने को आमन्त्रित की जायगी। हमें आशा है कि वाइसराय महत्त्वपूर्ण वक्तव्य का यह भावार्थ और फलितार्थ लगाने में हम भूल नहीं कर रहे है। जबतक नये विधान पर अमल शुरू न हो तबतक हमारे खयाल से यह आवश्यक है कि देश के वर्तमान शासन में उदार भावनाओ का सचार होना चाहिए, प्रबन्ध-विभाग एव कौंसिलो का प्रस्तावित परिषद् के उद्देश्यो के साथ मेल बिठाना चाहिए और वैध उपायो और प्रणालियो का अधिक आदर होना चाहिए। हमारी सम्मति में जनता को यह अनुभव कराना अत्यावश्यक है कि आज ही से नवीन युग आरम्भ हो गया है और नया विधान केवल इस भावना पर मुहर लगावेगा।

"अन्त में परिषद् की सफलता के लिए हम इसे एक आवश्यक बात समझते है कि परिषद् जल्दी-से-जल्दी बुलाई जाय।"

निस्सन्देह इस नये रवैये का कारण मजदूर-सरकार का अधिक उदार दृष्टि-कोण था। इस बीच में अंग्रेज मित्र तार-पर-तार भेजकर गाधीजी पर जोर डाल रहे थे कि वह भारत की सहायता करने के प्रयत्न में मजदूर-सरकार का साथ दें।

गांधीजी का उत्तर

उत्तर में गाधीजी ने कहा, "मैं तो सहयोग देने को मर रहा हूँ। इसी हेतु से पहला मौका आते ही मैंने हाथ आगे बढा दिया है। परन्तु जैसे मैं कलकत्ता-काग्रेस के प्रस्ताव के प्रत्येक शब्द पर कायम हूँ, वैसे नेताओ के इस सम्मिलित वक्तव्य के हर्फ

हर्फ पर भी अटल हूँ। इन दोनो में कोई विरोध नही है। किसी भी दस्तावेज के शब्दो में क्या धरा है, यदि व्यवहार मे उसकी भावना की रक्षा हो जाय। यदि मुझे व्यवहार में सच्चा औपनिवेशिक स्वराज्य मिल जाय तो उसके विधान के लिए मैं ठहरा भी रह सकता हूँ। अर्थात् आवश्यकता इस बात की है कि हृदय-परिवर्तन सच्चा हो, अग्रेज लोग भारतवर्ष को एक स्वतत्र और स्वाभिमानी राष्ट्र के रूप में वस्तुत देखना चाहें और भारत में अधिकारी-मण्डल की भावना सेवापूर्ण हो जाय। इसका अर्थ है सगीनो के वजाय जनता के सद्भाव की स्थापना। क्या अग्रेज स्त्री-पुरुष अपने जान-माल की रक्षा के लिए अपने किलो और तोप-बन्दूको के स्थान पर प्रजा के सद्भाव पर विश्वास रखने को तैयार हैं। यदि उनकी यह तैयारी अभी नही है, तो मुझे कोई औपनिवेशिक स्वराज्य सतुष्ट नही कर सकता। औपनिवेशिक स्वराज्य की मेरी कल्पना यह है कि यदि मैं चाहूँ तो आज ही ब्रिटिश-सम्बन्ध विच्छेद कर सकू। ब्रिटेन और भारत के पारस्परिक सम्बन्धो का निर्णय करने में जबरदस्ती जैसी कोई बात नही चल सकती।

"यदि मैं साम्राज्य के भीतर रहना पसन्द करता हूँ तो इसलिए नही कि शोषण या जिसे ब्रिटिश साम्राज्यवादी ध्येय कहते हैं उसकी वृद्धि हो, बल्कि इसलिए कि ससार में शान्ति और सद्भावना फैलाने की शक्ति में हिस्सा मिले।

"मुझे खूब मालूम है कि जिस स्थिति का मैंने यहा वर्णन किया है उसपर डटे रहने की शक्ति अभी भारतवर्ष में पैदा नही हुई है। इसलिए यदि हमें अभी वह स्थिति प्राप्त हो जाय तो यह अधिकतर ब्रिटिश-राष्ट्र की कृपा का ही फल होगा। यदि इस समय वे लोग ऐसी कृपा करें तो कोई आश्चर्य की बात भी नही होगी। इससे भारत के प्रति किये गये पिछले अन्यायो की थोडी क्षति-पूर्ति तो हो ही जायगी।"

वाइसराय की घोषणा में भारतवासियो को बहुत छोटी-सी चीज देने का वचन दिया गया था। फिर भी पार्लमेण्ट में इसीपर तूफान खडा हो गया। कामन-सभा को सफाई पेश करनी पडी। बाल्डविन साहब को बेन साहब और लॉर्ड अर्विन की सूचनायें स्वीकार करने की जिम्मेवारी अपने सिर लेनी पडी। सर जॉन साइमन को अपनी और अपने कमीशन की जान बचाना मुश्किल हो गया। लायड जार्ज साहब ने कैप्टन बेन साहब से पूछा, भारतीय नेताओ के सम्मिलित वक्तव्य में हमारी नीति का जो अर्थ लगाया गया है, "क्या आपको वह स्वीकार है ?" लान्सबरी साहब ने लोगो से वाइसराय की घोषणा का साधारण अर्थ लगाने का अनुरोध किया। अलबत्ता भारतवासी इसे बाजार-भाव से ही आकना चाहते थे और वस्तुत तो

इसका मूल्य उन्हें और भी कम मालूम हुआ। हाँ, नरमदल वाले भारतीय इस परिषद् के लिए बहुत उत्सुक दिखाई दिये। उन्होंने इसका नाम भी गोलमेज-परिषद् रक्खा, हालांकि लॉर्ड अर्विन इसे लन्दन की परिषद् के नाम से ही पुकारते रहे। कैप्टन बेन साहब हिन्दुस्तानियों से तो यह कहते थे कि हमने अपनी नीति बदल दी है और पार्लमेण्ट के सदस्यों को यह दिलासा देते थे कि नीति नहीं बदली। उनका कहना था कि नीति तो १९१७ के घोषणा-पत्र की भूमिका में दी हुई है, भूमिका १९१९ के सुधार-कानून में दर्ज है, और सुधार-कानून इग्लैण्ड के कानूनों में शामिल कर लिया गया है। इस प्रकार के उद्गारों से युवक कांग्रेसियों में निराशा फैली।

सर्वदल-सम्मेलन

१६ नवम्बर को प्रयाग में सर्वदल-सम्मेलन का अधिवेशन फिर बुलाया गया और साथ ही कार्य-समिति की बैठक हुई। ऐक्य-भाव बनाये रखने के सब प्रयत्न किये गये। कार्य-समिति ने अपना कोई निश्चित निर्णय दिया भी नहीं था कि पण्डित जवाहरलाल और सुभाष बाबू ने समिति की सदस्यता को पहले ही छोड़ दिया। पण्डित मोतीलाल नेहरू अपने नौजवान साथियों से भी बढ़कर थे। उन्हें कामन-सभा की छल-कपट-पूर्ण कार्रवाई और कैप्टन बेन के दुमुहेपन पर बड़ा क्रोध आ रहा था। उन्हें ऐसा लगा कि ब्रिटिश-मन्त्रि-मण्डल जो चित्र खींच रहा था वह ऐसा था कि भारतवासियों को उसमें स्वराज्य दीखे और विलायतवालों को ब्रिटिश-राज्य।

वाइसराय की नेताओं से भेंट

इधर 'पायोनियर' के भूतपूर्व सम्पादक विल्सन साहब समाचार-पत्रों में चिट्ठी-पर-चिट्ठियां छपवा रहे थे और लॉर्ड अर्विन पर ज़ोर डाल रहे थे कि लाहौर-कांग्रेस से पहले सरकार की ओर से कोई ऐसी बात होनी चाहिए जिससे भारत के राजनैतिक नेताओं को खाली हाथ लाहौर न पहुँचना पड़े। लॉर्ड अर्विन, डॉ० सप्रू के मार्फत, १५ तारीख को मिलने का निमन्त्रण पण्डित मोतीलाल नेहरू को भेज चुके थे। परन्तु १५ ता० तक पण्डितजी लखनऊ में अपने वकालत के काम से मुक्त न हो सके। विल्सन साहब ने अखबारों में लिखा कि वाइसराय गांधीजी, पण्डित मोतीलालजी और मालवीयजी से शीघ्र ही मुलाकात करनेवाले हैं। इधर वाइसराय साहब १५ ता० को दक्षिण-भारत के लिए रवाना हो रहे थे, इसलिए उन्होंने डॉ० सप्रू को लिखा कि अगर पहले हैदराबाद (दक्षिण) में न मिल सका तो २३ दिसम्बर को

दिल्ली मे गाधीजी और नेहरूजी से मुलाकात होगी, कुछ भी हो, वडे दिन से पहले जरूर मिल लेंगे। लॉर्ड अर्विन समय पर, अर्थात् २३ दिसम्बर को, दिल्ली लौट आये। उसी दिन नई दिल्ली से १ मील दूर पुराने किले के स्थान पर उनकी गाडी के नीचे वम फटा। लॉर्ड अर्विन तो वाल-वाल वच गये, परन्तु उनके खाने की गाडी को नुकसान पहुँचा और उनका एक नौकर घायल हुआ। उसी दिन गाधीजी और मोतीलालजी काग्रेस की ओर से वाइसराय से नये भवन में मिलनेवाले थे। दूसरे विचारवालो की वात कहनेवालो में श्री जिन्ना, सप्रू और विट्ठलभाई पटेल थे। आशा तो यह थी कि कि वात-चीत मित्रो की भाति दिल खोलकर होगी। पर हुआ यह कि एक वाजाव्ता शिष्ट-मण्डल का रूप वन गया फिर भी लॉर्ड अर्विन ने हसते-हसते वात-चीत की। उनके दिल पर प्रात कालीन दुर्घटना का कोई असर न था। जितने वह शान्त थे उतने ही मेहमानो के प्रति सच्ची खातिरदारी से पेश आये। पौन घण्टे तक तो वम की घटना और उसके परिणामो पर ही चर्चा होती रही। फिर लॉर्ड अर्विन ने प्रस्तुत विपय को हाथ में लिया। उन्हे राजनैतिक कैदियो से अच्छी शुरूआत करनी थी और और राजनैतिक कैदियो का मामला था भी ऐसा जिसमे सद्भाव का परिचय आसानी से दिया जा सकता था। परन्तु गाधीजी तो वाइसराय से औपनिवेशिक स्वराज्य के मसले पर निपट लेना चाहते थे। वह यह आश्वासन चाहते थे कि गोलमेज-परिषद् की कारंवाई पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्य को आधार मानकर होगी। वाइसराय साहव ने उत्तर दिया, "सरकार ने अपने विचार अपने वक्तव्य में स्पप्ट कर दिये है। इससे आगे मै कोई वचन नही दे सकता। मेरी ऐसी स्थिति नहीं है कि औपनिवेशिक-स्वराज्य देने का वादा करके गोलमेज-परिषद् में आप लोगो को वुला सकू।"

लाहौर में

उत्तर-भारत के निर्दय हेमन्त मे लाहौर का काग्रेस-अधिवेशन अन्तिम था। तम्वुओ में रहना प्रतिनिधियो के लिए वडा कष्टप्रद सिद्ध हुआ। कार्य-समिति में वैठे-वैठे हमें वार-वार पैर गरम करने पडते थे। किन्तु यदि वाहर इतनी असह्य सर्दी थी तो भीतर भावना और जोश की गर्मी भी कम न थी। सरकार से समझौता न होने पर रोष था और युद्ध के वाजे सुन-सुनकर लोगो की वाहें फडक रही थी। पण्डित जवाहरलाल नेहरू जितने कम-उम्र थे उतने ही वडे राजनीतिज्ञ और लोकप्रिय नेता थे। उनका अभिभाषण क्या था, मानो उन्होने अपने हृदय को उडेलकर देशवासियो के सामने रख दिया था। उसमें भारत के अपमान पर क्रोध भरा था। उसमे उन्होने

भारत को स्वतन्त्र करने की अपनी योजना, अपने स्पष्ट साम्यवादी आदर्शों और सफल होने के अपने दृढ़-निश्चय को व्यक्त किया था।

औपनिवेशिक स्वराज्य के लिए वेन साहब संसार को विश्वास दिला रहे थे कि व्यवहार में तो वह एक युग से मौजूद है। वर्सेलीज के सन्धिपत्र पर भारतवर्ष के हस्ताक्षर है, हिन्दुस्तानी हाई-कमिश्नर नियुक्त हो चुका है, राष्ट्रसघ के भारतीय प्रतिनिधि-मण्डल का नेता हिन्दुस्तानी रहता है, अन्तर्राष्ट्रीय नेवीगेशन कमीशन में भारत को अलग मताधिकार प्राप्त है, औपनिवेशिक कानून-निर्माताओं की परिषद् में और पञ्चराष्ट्रीय जलसेना-परिषद् में भारत शामिल होता है, अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर-परिषद् की शासन-समिति में भारत को स्थान मिला हुआ है। ये सब बातें व्यावहारिक औपनिवेशिक स्वराज्य के प्रमाणस्वरूप बताई गई। परन्तु लोग ऐसे खिलौनो से धोखे में आनेवाले नही थे। उनके सामने जो वस्तुस्थिति थी उसीके अनुसार उन्हें वर्तमान समस्याओं को हल करना था।

पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने अपने अभिभाषण में बताया कि वाइसराय साहब की घोषणा दीखने में समझौते का प्रस्ताव है। वाइसराय साहब का इरादा नेक और उनकी भाषा मेल-मिलाप की भाषा है। परन्तु हमारे सामने जो कठोर वस्तुस्थिति है उसमें इन मीठी-मीठी बातो से कोई अन्तर नहीं पड़ता। हम अपनी ओर से कोई घोर राष्ट्रीय संग्राम आरम्भ करने की जल्दी नहीं कर रहे हैं। समझौते का द्वार अभी खुला है। परन्तु कैप्टन वेजवुड वेन का व्यावहारिक औपनिवेशिक स्वराज्य हमारे लिए जाल-मात्र है। हम तो कलकत्ते के प्रस्ताव पर कायम हैं। हमारे सामने एक ही ध्येय है और वह है पूर्ण स्वाधीनता का। अध्यक्ष-पद से जवाहरलालजी ने ब्रिटिश-साम्राज्यवाद का वर्णन किया और साफ कहा, "मैं तो साम्यवादी और प्रजातन्त्रवादी हूँ। मैं बादशाहो और राजाओं को नहीं मानता।" इसके पश्चात् उन्होंने अल्प-संख्यक जातियो, देशी-राज्यों और किसानो तथा मजदूरों के तीन बड़े प्रश्नों को लिया। इसके बाद उन्होंने अहिंसा के प्रश्न का विवेचन किया—"हिंसा के परिणाम बहुधा विपरीत और भ्रष्ट करनेवाले होते हैं। खासकर हमारे देश में तो इससे सत्यानाश हो सकता है। यह बिलकुल सच है कि आज जगत् में संगठित हिंसा का ही बोलबाला है। सम्भव है हमें भी इससे लाभ हो, परन्तु हमारे पास तो संगठित हिंसा के लिए न सामग्री है न तैयारी, और व्यक्तिगत अथवा स्फुट हिंसा तो निराशा को कबूल करना है। मैं समझता हूँ हममें से अधिक लोग नैतिक दृष्टि से नहीं, प्रत्युत् व्यावहारिक दृष्टि से विचार करते हैं; और यदि हमने हिंसा के मार्ग का

परित्याग किया है तो सिर्फ इसीलिए किया है कि हमें उससे कोई सार निकलता नहीं दिखाई देता। स्वतंत्रता के किसी भी बड़े आन्दोलन में जनता का शामिल होना जरूरी है और जनता के आन्दोलन तो शान्त ही हो सकते हैं। हां, संगठित विद्रोह की बात अलग है।" अन्त में उन्होंने इन शब्दों में एक महान् प्रयत्न कर देखने की अपील की—"यह कोई नहीं कह सकता कि सफलता कब और कितनी मिलेगी। सफलता हमारे काबू की चीज नहीं। परन्तु विजय का सेहरा प्राय उन्हींके सिर बंधता है जो साहस करके कार्यक्षेत्र में बढ़ते हैं। जो सदा परिणाम से भयभीत रहते हैं, ऐसे कायरों के भाग्य में सफलता क्वचित् ही होती है।"

लाहौर-कांग्रेस के सम्मुख प्रश्न यह था कि स्वाधीनता-सम्बन्धी १९२७ की मदरास-कांग्रेस का प्रस्ताव विधान में ध्येय के रूप में शामिल किया जाय अथवा केवल स्पष्टीकरण के रूप में। इस विषय पर सभापति के भाषण में कुछ बातें मजेदार थी, "हमारे लिए स्वाधीनता का अर्थ है ब्रिटिश-प्रभुत्व और ब्रिटिश-साम्राज्य से पूर्णत मुक्त होना। मुझे जरा भी सदेह नही कि इस प्रकार मुक्त होने के बाद भारतवर्ष विश्व-संघ बनाने के प्रयत्न का स्वागत करेगा और यदि उसे बराबरी का दर्जा मिलेगा तो वह किसी बड़े समूह में शामिल होने के लिए अपनी स्वाधीनता का कुछ हिस्सा छोड़ देने को भी राजी हो जायगा।" आगे चलकर उन्होंने कहा—"जबतक साम्राज्यवाद और उसके साथ लगी हुई सारी खुराफात का अन्त नही हो जाता तबतक ब्रिटिश-राष्ट्र समूह में भारतवर्ष को बराबरी का दर्जा मिल ही नही सकता।" उनके भाषण के कुछ अंश यहाँ और दिये जाते हैं, जिनसे वस्तुस्थिति समझने में सहायता मिलेगी :—

इन विचारों में भारत के नेता गांधीजी और राष्ट्रपति जवाहरलाल नेहरू दोनों सहमत थे। इस कारण लाहौर-कांग्रेस का कार्यसञ्चालन करने में कोई कठिनाई नही हुई। श्री यतीन्द्र दास और श्री फुंगी विजया के महान् आत्मोत्सर्ग की प्रशंसा की गई और पण्डित गोकर्णनाथ मिश्र, प्रोफेसर परान्जपे, श्री सत्यवरमल नायडू, श्री रोहिणीकान्त हाथीबरुवा, श्री लाहिड़ी और श्री व्योमकेश चक्रवर्ती के देहावसान पर शोक प्रदर्शित किया गया। इसके बाद हाल की बम-दुर्घटना पर यह प्रस्ताव पास हुआ :—

"यह कांग्रेस वाइसराय साहब की गाड़ी पर किये गये बम-प्रहार पर खेद प्रकट करती है और अपने इस विश्वास को दोहराती है कि इस प्रकार का कार्य न केवल कांग्रेस के उद्देश के विरुद्ध है बल्कि राष्ट्रीय हित को भी हानि पहुँचाता है। कांग्रेस वाइसराय, लेडी अर्विन, उनके गरीब नौकरों और साथ के अन्य लोगों को सौभाग्यवश बाल-बाल बच जाने पर बधाई देती है।"

पूर्ण-स्वाधीनता

इस कांग्रेस का मुख्य प्रस्ताव पूर्ण स्वाधीनता के सम्बन्ध में था :—

'औपनिवेशिक स्वराज्य के सम्बन्ध में ३१ अक्तूबर को वाइसराय साहब ने जो घोषणा की थी और जिस पर कांग्रेस एवं अन्य दलो के नेताओ ने सम्मिलित वक्तव्य प्रकाशित किया था उस सम्बन्ध में की गई कार्य-समिति की कार्रवाई का यह कांग्रेस समर्थन करती है और स्वराज्य के राष्ट्रीय आन्दोलन को निपटाने के लिए वाइसराय महोदय की कोशिशो की कद्र करती है। किन्तु उसके बाद जो घटनायें हुई है और वाइसराय साहब के साथ महात्मा गांधी, पण्डित मोतीलाल नेहरू और दूसरे नेताओं की मुलाकात का जो नतीजा निकला है उसपर विचार करने पर कांग्रेस की यह राय है कि सम्प्रति प्रस्तावित गोलमेज-परिषद् में कांग्रेस के के शामिल होने से कोई लाभ नहीं। इसलिए गत वर्ष कलकत्ते के अधिवेशन में किये हुए अपने निश्चय के अनुसार यह कांग्रेस घोषणा करती है कि कांग्रेस-विधान की पहली कलम में 'स्वराज्य' शब्द का अर्थ पूर्ण-स्वाधीनता होगा। कांग्रेस यह भी घोषणा करती है कि नेहरू-कमिटी की रिपोर्ट में वर्णित सारी योजना खतम समझी जाय। कांग्रेस आशा करती है कि अब समस्त कांग्रेसवादी अपना सारा ध्यान भारतवर्ष की पूर्ण-स्वाधीनता को प्राप्त करने पर ही लगायेंगे। चूंकि स्वाधीनता का आन्दोलन संगठित करना और कांग्रेस की नीति को उसके नये ध्येय के अधिक-से-अधिक अनुकूल बनाना आवश्यक है, इसलिए यह कांग्रेस निश्चय करती है कि कांग्रेसवादी और राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेनेवाले दूसरे लोग भावी निर्वाचनो में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कोई भाग न लें और कौंसिलो और कमिटियो के मौजूदा कांग्रेसी मेम्बरो को इस्तीफे देने की आज्ञा देती है। यह कांग्रेस अपने रचनात्मक कार्यक्रम को उत्साहपूर्वक पूरा करने के लिए राष्ट्र से अनुरोध करती है और महा-समिति को अधिकार देती है कि वह जब और जहा चाहे, आवश्यक प्रतिबन्धो के साथ सविनय-अवज्ञा और करबन्दी तक का कार्य-क्रम आरम्भ कर दे।"

दूसरी बात इस कांग्रेस ने यह की कि वार्षिक अधिवेशन का समय फरवरी या मार्च बदल दिया :—

देशी-राज्यों का विषय महत्त्वपूर्ण था ही। कांग्रेस ने सोचा अब समय आ गया है कि भारतीय-नरेश अपनी प्रजा को दायित्वपूर्ण शासन प्रदान करें और उनके आवागमन, भाषण, सम्मेलन आदि अधिकारो और व्यक्ति एवं सम्पत्ति की रक्षा के नागरिक हको के बारे में घोषणायें करें और कानून बनावें।

नेहरू-रिपोर्ट के रद्द हो जाने से साम्प्रदायिक समस्या पर फिर से विचार करना पड़ा। इस सम्बन्ध में अपनी नीति घोषित करना जरूरी मालूम हुआ। कांग्रेस ने अपना यह विश्वास व्यक्त किया कि "स्वाधीन-भारत में तो साम्प्रदायिक प्रश्नों का निपटारा सर्वथा राष्ट्रीय ढंग से ही होगा। परन्तु चूंकि सिक्खों ने विशेषत और मुसलमानो और दूसरी अल्प-संख्यक जातियो ने साधारणत नेहरू-रिपोर्ट के प्रस्तावों पर असन्तोष प्रकट किया है, इसलिए कांग्रेस इन जातियो को विश्वास दिलाती है कि किसी भी भावी विधान में कांग्रेस ऐसा कोई साम्प्रदायिक निर्णय स्वीकार नहीं करेगी जिसमे सब पक्षों को पूर्ण सन्तोष न हो।" पार्लमेण्ट के भूतपूर्व सदस्य श्री शापुरजी सकलातवाला और इंग्लैण्ड एवं अन्य विदेशों में रहनेवाले भारतीयो ने स्वदेश को लौटने के लिए सरकार से परवाने मागे थे वे नही दिये गये। इसपर भी कांग्रेस ने निन्दा का प्रस्ताव पास किया।

१९२२ की गया-कांग्रेस के इतने अर्से बाद भारत पर लादे गये आर्थिक भार और उसे अस्वीकार करने के प्रश्न पर भी विचार किया गया "इस कांग्रेस की राय में विदेशी शासन ने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में भारतवर्ष पर जो आर्थिक भार लाद दिया है वह ऐसा नहीं है जिसे स्वतंत्र-भारत बरदाश्त कर सके या उससे बरदाश्त करने की आशा की जाय, अत यह कांग्रेस १९२२ वाले गया-कांग्रेस के प्रस्ताव का समर्थन करती है और सब सम्बन्धित लोगो को सूचना देती है कि स्वाधीन-भारत किसी भी आर्थिक जिम्मेवारी या रिआयत को, फिर भले ही वह किसी भी प्रकार दी गई हो, उसी हालत में स्वीकार करेगा जब कि स्वतंत्र-न्यायालय द्वारा उसका औचित्य सिद्ध हो जायगा, अन्यथा वह रद कर दी जायगी।" बम-दुर्घटना पर जो प्रस्ताव पास हुआ वह आसानी से नहीं हुआ। प्रतिनिधियों के एक खास समूह ने उसका प्रबल विरोध किया और बहुत ही थोड़े बहुमत से प्रस्ताव पास हो सका।

कार्य-विभाग

यह कह देना जरूरी है कि ये भिन्न-भिन्न समितिया कलकत्ता-कांग्रेस के बाद फरवरी १९२९ में बनी थीं। इनका काम विशेषज्ञो को सौंपा गया। स्वय सेवकों का सगठन जवाहरलालजी और सुभाष बाबू के हवाले किया गया। कांग्रेस का कार्य पहली ही बार विभागो में बाटा और कार्य-समिति के अलग-अलग सदस्यो के सुपुर्द किया गया। किन्तु गाधीजी तो यह चाहते थे कि चर्खा-सघ की तरह ये कमिटिया भी स्वतन्त्र रूप से काम करने लगें। परन्तु लोगो ने उनके प्रस्तावो को

सन्देह की दृष्टि से देखा। कारण, नेता अपने अनुयायियो से सदा आगे चलता है और कल उसने जो बात कही वह आज मानी जाती है। हुआ भी यही। आज अर्थात् सन् १९३५ में अस्पृश्यता-निवारण का काम एक ऐसी स्वतन्त्र सस्था चला रही है जो राजनीति के झझावात से वरी है और राष्ट्र के राजनैतिक उतार-चढाव का उसपर कोई असर नही पडता। काग्रेस के प्रतिनिधियो की सख्या भी इस समय वम्बई से एक-तिहाई हो गई है। जो बात गाधीजी लाहौर में नही करवा सके थे वही कुछ तो उनके कारावास के समय हो गई और कुछ उनके छूटने के बाद हो गई।

कलकत्ते में राष्ट्रीय माग को स्वीकार करने के लिए सरकार को बारह मास का समय दिया गया था। तदनुसार ३१ दिसम्बर को ठीक आधी रात के समय प्रस्ताव के इस मत-भेद-पूर्ण अश पर रायो की गिनती खतम हुई। उस समय सारी काग्रेस ने मिलकर पूर्ण स्वाधीनता का झडा फहराया।

सब बातो को देखते हुए लाहौर के अधिवेशन में परिश्रम भी बहुत करना पडा और स्थिति भी नाजुक थी। गाधीजी के मुकाबले में जो प्रस्ताव रक्खे गये वे या तो काल्पनिक थे या ध्वसात्मक। हरबार जो सकुचितता, उग्रता अथवा असहिष्णुता दिखाई दी वह परेशान करनेवाली थी। बगाल के गृह-युद्ध के कारण चुनाव-सम्बन्धी झगडे मुद्दत से चले आ रहे थे। लाहौर के काग्रेस-सप्ताह में वे और भी उग्र रूप में प्रकट हुए और सुभाष बाबू और पण्डित मोतीलालजी में कहा-सुनी भी हो गई। श्री सेनगुप्त और सुभाष बाबू में प्रान्तीय नेतृत्व के लिए स्पर्धा थी ही, कौसिल-प्रवेश के मत-भेद-पूर्ण मसले पर उनका आपसी वैमनस्य और भी तीव्र रूप में सामने आया। गाधीजी ने काग्रेस के ध्येय में 'शान्त एव उचित उपायो' के स्थान पर 'सत्य एव अहिसा-पूर्ण उपायो' को रखवाने की खूब कोशिश की, पर उनकी बात न चली।

कुछ भी हो, लाहौर में गाधीजी और जवाहरलालजी को सफलता मिली, यह निर्विवाद है हा, अधिवेशन के बाद तुरन्त ही श्री श्रीनिवास आयगर और सुभाष बाबू ने काग्रेस डेमाक्रेटिक पार्टी के नाम से एक नये दल की स्थापना घोषित कर दी। इससे सरकार ने उस समय यह धारणा बनाई कि काग्रेस के गरम दल को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न सफल नही हुआ है और काग्रेस में फूट पडने ही वाली है। इन मित्रो की इच्छा थी कि कार्य-समिति का सगठन चुनाव-द्वारा हो। जब इनकी नही चली तो ये कुछ दक्षिण-भारतीय मित्रो के साथ उठकर काग्रेस के बाहर चल दिये। गाधीजी अपनी परिपाटी के अनुसार कार्य-समिति के गत वर्ष के सदस्यो से पूछ

लिया करते थे कि कौन-कौन स्वेच्छा से अलग होना चाहते हैं ? लाहौर में कार्य-समिति दो स्वतन्त्र सचियो के आधार पर बनाई गई थी। एक सूची गाधीजी की सलाह से मोतीलालजी ने तैयार की थी और दूसरी सेठ जमनालाल बजाज ने। दोनो सूचियो में केवल एक नाम का अन्तर था। यह अन्तर ठीक कर लिया गया और कार्य-समिति बन गई। परन्तु इन मित्रो को तो निर्वाचन चाहिए था। जब इनकी इच्छा पूरी न हुई हुई तो उठकर चले गये। दस मिनट के भीतर यह खबर सर्वत्र फैल गई और एक नया दल खड़ा हो गया। श्री सुभाषचन्द्र बोस ने श्रीमती वासन्तीदेवी को यह तार भेजा—"परिस्थिति एव बहुमत के अत्याचार से तग आकर हमने गया की भाति काग्रेस डेमोक्रेटिक पार्टी के नाम से एक अलग दल बना लिया है। आशीर्वाद दीजिये कि देशबन्धु की आत्मा हमारा पथ-प्रदर्शन करे।"

इधर दल के मन्त्रियो ने अपनी जाने की घोषणा में यह कहा, "नया दल भारत की पूर्ण स्वाधीनता के अपने ध्येय को हानि पहुँचाये बिना ध्येय की पूर्ति के लिए देश के अन्य दलो से भी सहयोग करने का भरसक प्रयत्न करेगा।"

हमारी यात्रा कठिन, नाव कमजोर, समुद्र तूफानी, आकाश मेघाच्छादित, चारो ओर कुहरा और केवट नौसिखुये थे। केवल एक बात हमारे बचाव की थी, और वह यह कि हमारा पथ-प्रदर्शक अपना मार्ग जानता था। वह मँजा हुआ कप्तान था। वह अपने नक्शे और कम्पास से सुसज्जित था। यदि यात्री उसकी आज्ञा पालते तो सफलता हाथ में रक्खी थी। अन्यथा राष्ट्र की फौजी अदालत में हमपर अभियोग लगने ही वाला था।

: २ :

प्राणों की बाजी—१९३०

प्रतीक्षा का वर्ष समाप्त होकर कार्य का वर्ष आरम्भ हुआ। परन्तु तीन सप्ताह भी नही बीतने पाये थे कि महाराष्ट्र में विद्रोह खडा हो गया। हम देख चुके है कि असहयोग के आरम्भ-काल में भी महाराष्ट्र और बगाल ने मिलकर उस नवीन आन्दोलन का विरोध किया था। अब महाराष्ट्र-प्रान्तीय-कमिटी ने कार्य-समिति से कौंसिल-बहिष्कार का आग्रह छोड देने का अनुरोध किया और कहा कि देश को दिल्ली की शर्तों और स्वाधीनता के आधार पर गोलमेज-परिषद् में शामिल होना चाहिए। वैसे तो ये प्रश्न सदा के लिए तय हो चुके थे। जब कैदियो को छोडकर सरकार ने हृदय-परिवर्तन का परिचय नही दिया और औपनिवेशिक स्वराज्य की भावना का तुरन्त अमल में लाना शुरू नही किया तो दिल्ली की शर्तो मे धरा ही क्या था? •

नई कार्य-समिति की बैठक २ जनवरी १९३० को हुई। पहला काम उसने किया कौंसिल-बहिष्कार के निश्चय पर अमल करवाने का। इसके लिए उसने मत-दाताओ से अनुरोध किया कि जो सदस्य काग्रेस की अपील पर घ्यान न दें उन्हें मत-दाता मजबूर करें कि वे इस्तीफा दें और नये चुनाव में शामिल न हो। इसके परिणाम-स्वरूप असेम्बली के २७ सदस्यो ने इस्तीफे दे दिये। दूसरा निश्चय कार्य-समिति ने देश-भर में पूर्ण-स्वराज्य-दिवस मनाने का किया और इसके लिए २६ जनवरी १९३० का दिन नियत हुआ। देश-भर में नगर-नगर और गाव-गाव में एक घोषणा-पत्र तैयार करके जनता के सन्मुख पढकर सुनाना और उसपर हाथ उठाकर श्रोताओ की सम्मति लेना तय हुआ। उस दिन सुनाया जानेवाला घोषणा-पत्र यह था —

स्वाधीनता का घोषणा-पत्र

"हम भारतीय प्रजाजन भी अन्य राष्ट्रो की भाति अपना जन्म-सिद्ध अधिकार मानते है कि हम स्वतत्र होकर रहें, अपने परिश्रम का फल हम स्वय भोगें

और हमें जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक सुविधायें प्राप्त हो जिससे हमें भी विकास का पूरा मौका मिले। हम यह भी मानते हैं कि यदि कोई सरकार ये अधिकार छीन लेती है और प्रजा को सताती है तो प्रजा को उस सरकार के बदल देने या मिटा देने का भी अधिकार है। अंग्रेजी सरकार ने भारतवासियों की स्वतंत्रता का ही अपहरण नही किया है बल्कि उसका आधार भी गरीबो के रक्तशोषण पर है और उसने आर्थिक, राजनैतिक, सास्कृतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से भारतवर्ष का नाश कर दिया है। अत हमारा विश्वास है कि भारतवर्ष को अंग्रेजो से सम्बन्ध-विच्छेद करके पूर्णस्वराज्य या स्वाधीनता प्राप्त कर लेनी चाहिए

"भारत की आर्थिक बरबादी हो चुकी है। जनता की आमदनी को देखते हुए उससे बेहिसाब कर वसूल किया जाता है। हमारी औसत दैनिक आय सात पैसे है और हमसे जो भारी कर लिये जाते हैं उनका २० फी सदी किसानो से लगान के रूप में और ३ फी सदी गरीबो से नमक-कर के रूप में वसूल किया जाता है।

"हाथ-कताई आदि ग्राम-उद्योग नष्ट कर दिये गये हैं। इससे साल में कम-से-कम चार महीने किसान लोग बेकार रहते है। हाथ की कारीगरी जाते रहने से उनकी बुद्धि भी मन्द हो गई। और जो उद्योग इस प्रकार नष्ट कर दिये गये है उनके स्थान पर दूसरे देशो की भाति कोई नये उद्योग जारी भी नही किये गये हैं।

"चुगी और सिक्के की व्यवस्था इस प्रकार की गई है कि उससे किसानो का भार और भी बढ गया। हमारे देश में बाहर का माल अधिकतर अंग्रेजी कारखानो से आता है। चुगी के महसूल में अंग्रेजी माल के साथ साफ तौर पर पक्षपात होता है। इसकी आय का उपयोग गरीबो का बोझा हलका करने में नही किया जाता बल्कि एक अत्यन्त अपव्ययी शासन को कायम रखने में किया जाता है। विनिमय की दर भी ऐसे स्वेच्छाचारी ढग से निश्चित की गई है कि जिससे देश का करोडो रुपया बाहर चला जाता है।

"राजनैतिक दृष्टि से भारत का दर्जा जितना अंग्रेजो के जमाने में घटा है उतना पहले कभी नही घटा था। किसी भी सुधार-योजना से जनता के हाथ में वास्तविक राजनैतिक सत्ता नही आई है। हमारे बडे-से-बडे आदमी को विदेशी सत्ता के सामने सिर झुकाना पडता है। अपनी राय आजादी से जाहिर करने और आजादी से मिलने-जुलने के हमारे हक छीन लिये गये है और हमारे बहुत-से देशवासी निर्वासित कर दिये गये है। हमारी शासन की सारी प्रतिभा मारी गई है और सर्वसाधारण को गावो के छोटे-छोटे ओहदो और मुशीगिरी से सन्तोष करना पडता है।

"सस्कृति के लिहाज से, शिक्षा-प्रणाली ने हमारी जड ही काट दी और हमें जो तालीम दी जाती है उससे हम अपनी गुलामी की जजीरो को ही प्यार करने लगे है।

"आध्यात्मिक दृष्टि से, हमारे हथियार जबरदस्ती छीन करे हमें नामर्द बना दिया गया। विदेशी सेना हमारी छाती पर सदा मौजूद रहती है। उसने हमारी मुकाबले की भावना को बडी बुरी तरह से कुचल दिया है। उसने हमारे दिलो में यह बात बिठा दी है कि हम न अपना घर सम्हाल सकते हैं और न विदेशी आक्रमण से देश की रक्षा कर सकते है। इतना ही नही, चोर डाकू और बदमाशो के हमलों से भी हम अपने बाल-बच्चो और जान-माल को नही बचा सकते। जिस शासन ने हमारे देश का इस प्रकार सर्वनाश किया है उसके अधीन रहना हमारी राय में मनुष्य और भगवान् दोनो के प्रति अपराध है। किन्तु हम यह भी मानते है कि हमें हिंसा के द्वारा स्वतत्रता नही मिलेगी। इसलिए हम ब्रिटिश-सरकार से यथासम्भव स्वेच्छा-पूर्वक किसी भी प्रकार का सहयोग न करने की तैयारी करेंगे और सविनय-अवज्ञा एव करबन्दी तक के साज सजावेंगे। हमारा दृढ विश्वास है कि यदि हम राजी-राजी सहायता देना और उत्तेजना मिलने पर भी हिंसा किये बगैर कर देना बन्द कर सके तो इस अमानुषी राज्य का नाश निश्चित है। अत हम शपथपूर्वक सकल्प करते हैं कि पूर्ण स्वराज्य की स्थापना के हेतु काग्रेस समय समय पर जो आज्ञायें देगी उनका हम पालन करते रहेंगे।"

गांधीजी की ११ शर्तें

स्वाधीनता-दिवस जिस ढग से मनाया गया उससे प्रकट हुआ कि ऊपर-ऊपर दीखनेवाली शिथिलता और निराशा की तह में कितनी असीम भावना, उत्साह और स्वार्थ-त्याग की तैयारी दबी पडी थी। स्वदेश-भक्ति और आत्म-बलिदान के अगारे राज-भक्ति या कानून और व्यवस्था की गुलामी की राख से केवल ढके हुए थे। जरूरत इतनी ही थी कि भावना एव उत्साह के लाल अगारो पर जमी हुई राख को फूक मारकर हटा दिया जाय। स्वधीनता-दिवस का समारोह खतम ही हुआ था कि २५ जनवरी को असेम्बली में दिया गया वाइसराय का भाषण भी प्रकाशित हो गया। इसने भारत के आशावादी और विश्वासशील राजनीतिज्ञो की रही-सही आशाओ पर पानी फेर दिया। लॉर्ड अर्विन ने कहा —

"यह सही है कि साम्राज्य के अन्य लोगो के साथ व्यवहार करने में भारत

को स्वराज्यभोगी उपनिवेशो के समान कई अधिकार मिल चुके हैं। परन्तु यह भी सही है कि भारतीय लोकमत इन अधिकारो को सम्प्रति बहुत महत्त्व देने के लिए तैयार नही है। इसका कारण यह है कि इन अधिकारो का प्रयोग ब्रिटिश-सरकार के नियन्त्रण तथा स्वीकृति में है। ब्रिटिश-सरकार जो परिषद् बुलायेगी वह वस्तुत वही चीज नही है जो भारतवासी चाहते हैं। उनकी माग तो यह है कि उसके निर्णय बहुमत से हो और वह जो विधान बना दे उसे पार्लमेण्ट ज्यो-का-त्यो स्वीकार कर ले।

" परिषद् भिन्न-भिन्न मतो को स्पष्ट और एक करने और सरकार को रास्ता दिखाने के हेतु की जायगी, योजना बनाकर पार्लमेण्ट के सम्मुख रखने की जिम्मेवारी तो सरकार पर ही रहेगी।" इस भाषण के जवाब मे गाधीजी ने "यग इण्डिया' में यो लिखा —

"वाइसराय ने वातावरण साफ कर दिया और हमें ठीक-ठीक बता दिया कि कि वह कहा और हम कहा हैं। इसके लिए प्रत्येक काग्रेसवादी को उनका आभारी होना चाहिए।

"वाइसराय साहब को क्या परवाह कि जबतक भारत का प्रत्येक करोडपति ७ पैसे रोज की मजदूरी पानेवाला भिखारी न बन जाय तबतक यदि औपनिवेशिक स्वराज्य के मिलने की प्रतीक्षा ही करनी पडेगी। यदि काग्रेस का वस चले तो आज वह प्रत्येक भूखे किसान को पेट-भर खाना ही नही दे बल्कि करोडपति की हालत तक में पहुँचा दे। वैसे भी जब उसे अपनी दुर्दशा का पूरा ज्ञान हो जायगा और जब वह समझ जायगा कि उसकी यह निस्सहाय अवस्था किस्मत के कारण नही हुई बल्कि वर्तमान शासन के द्वारा हुई है तो वह सगठित होकर उठ बैठेगा और अधीर होकर एक ही सपाटे में वैध-अवैध का ही नही, हिंसा-अहिंसा का भेद भी भूल जायगा। काग्रेस को आशा है कि ऐसी दशा में वह किसानो को सच्चा मार्ग बतायगी।"

आगे चलकर गाधीजी ने लॉर्ड अर्विन के सामने नीचे लिखी शर्ते रक्खी —

(१) सम्पूर्ण मदिरा-निषेध।

(२) विनिमय की दर घटाकर एक शिलिंग चार पेस रख दी जाय।

(३) जमीन का लगान आधा कर दिया जाय और उसपर कौंसिलों का नियन्त्रण रहे।

(४) नमक-कर उठा दिया जाय।

(५)सैनिक व्यय में आरम्भ में ही कम-से-कम ५० फी सदी कमी कर दी जाय।

(६) लगान की कमी को देखते हुए बडी-बडी नौकरियो के वेतन कम-से-कम आधे कर दिये जायें।

(७) विदेशी कपडे की आयात पर निषेध कर लगा दिया जाय।

(८) भारतीय समुद्र-तट केवल भारतीय जहाजो के लिए सुरक्षित रखने का प्रस्तावित कानून पास कर दिया जाय।

(९) हत्या या हत्या के प्रयत्न में साधारण ट्रिब्यूनलो द्वारा सजा पाये हुओ के सिवा, समस्त राजनैतिक कैदी छोड दिये जायँ, सारे राजनैतिक मुकदमे वापस ले लिये जायँ, १२४ अ धारा और १८१८ का तीसरा रेग्यूलेशन उठा दिया जाय और सारे निर्वासित भारतीयो को देश में वापस आजाने दिया जाय।

(१०) खुफिया पुलिस उठा दी जाय, अथवा उसपर जनता का नियंत्रण कर दिया जाय।

(११) आत्म-रक्षार्थ हथियार रखने के परवाने दिये जायँ, और उनपर जनता का नियंत्रण रहे।

गांधीजी ने आगे लिखा—"हमारी बडी-से-बडी आवश्यकताओ की यह कोई सम्पूर्ण सूची नही है, पर देखे वाइसराय साहब इन सीधी-सादी किन्तु अत्यावश्यक भारतीय आवश्यकता की पूर्त्ति तो करके दिखावें। ऐसा होने पर सविनय-अवज्ञा की बात भी उनके कान पर नही पडेगी और जहा अपनी बात कहने और काम करने की पूरी आजादी होगी, ऐसी किसी भी परिषद् में कांग्रेस हृदय से भाग लेगी।" इसका यह अर्थ हुआ कि यदि ये मामूली और जरूरी मांगें पूरी न की गई तो सविनय अवज्ञा होगी।

असेम्बली से इस्तीफे

जब असेम्बली में वाइसराय साहब ने अपना भाषण दिया, तब वसन्तऋतु थी। उस समय वातावरण सरकार के अनुकूल नही था, क्योंकि वस्त्र-उद्योग-रक्षण कानून उसी समय बना था। इसके बहुत-से विरोधी समझते थे कि इनके द्वारा सरकार ने आर्थिक-परिषद् की भावना के विपरीत हिन्दुस्तान के माथे पर साम्राज्य के साथ रिआयत करने की नीति लाद दी है। इस कारण पण्डित मदनमोहन मालवीय और उनके राष्ट्रीय दल के कुछ सदस्यो ने इस्तीफा दे दिया। वस्तुत

काग्रेस-आन्दोलन को इस सहायता की आशा न थी और इसलिए उसे दैविक ही समझना चाहिए।

यहा यह बयान कर देना जरूरी है कि यह कानून क्या था। साथ ही सूती कपडे पर लगाये गये उत्पत्ति-कर और आयात-कर का इतिहास भी बता देना आवश्यक है। महासमर की समाप्ति के समय स्थिति यह थी कि भारतीय कारखानो में बने हुए १९ नम्बर से ऊपर के सूत और कपडे पर ३॥ फी सदी उत्पत्ति-कर लगता था। यह कर सरकार बिक्री या मुनाफे पर नही लेती थी, बल्कि तैयार माल पर लेती थी। विदेशी कपडे पर जो आयात-कर लगता था वह सिर्फ आमदनी के लिए था और माल की कीमत पर ७) फी सदी के हिसाब से लिया जाता था। भारतीय कारखानेदारो, व्यापारियो और नरम-दल-वालो ने अपनी युद्ध-कालीन सेवाओं का हवाला दे दे-कर सरकार को बताया कि युद्ध के बाद विदेशी कपडे के आने से हिन्दुस्तानी कारखानो को बडा धक्का पहुँच रहा है। १९२५ में सरकार ने आयात-कर ७ फी सदी से बढाकर ११ फी सदी कर देना मजूर किया इससे विदेशी कपडा ४ फी सदी महँगा हो गया। स्वदेशी कपडे का उत्पत्ति-कर भी उठा दिया गया, इससे स्वदेशी कपडा ३॥ फी सदी सस्ता हो गया। परन्तु इधर जनता स्वदेशी कपडे के लाभ पर खुशिया मना रही थी, उधर १९२७ के शुरु में ही सरकार ने विनिमय-कानून पास कर दिया। इससे रुपये की कीमत १६ पेंस से बढकर १८ पेंस हो गई। अर्थात् जो एक पौण्ड का विदेशी कपडा पहले लकाशायर से १५) में पडता था उसके अब १३।~)४ पाई ही लगने लगे। इस तरह विदेशी कपडा १२॥ फी सदी सस्ता हो गया। अर्थात् १९२५ मे हिन्दुस्तानी मिल-मालिको को जो ७॥ फी सदी का लाभ हुआ था उसके मुकाबले में विदेशी कारखानेदारो को दो वर्ष बाद ही १२॥ फी सदी का फायदा मिलने लग गया। इस मामले पर भारत में बडी हलचल मची और आयात-कर में परिवर्तन की माग की गई। सरकार ने वस्त्र-उद्योग-रक्षण कानून पास करके इग्लैण्ड के कपडे पर १५ फी सदी और अन्य विदेशी कपडे पर २० फी सदी कर लगा दिया। पण्डित मालवीयजी ने इस भेद-भाव को आर्थिक-परिषद् (फिस्कल कन्वेन्शन) के खिलाफ बताकर उसका विरोध किया। जापान इस समय बडा दूरदर्शी निकला। यह कानून तो लकाशायर के साथ जापान की स्पर्धा को रोकने के लिए बना था, परन्तु जापान ने अपने भारत को भेजे जानेवाले कपडे पर जहाजो का भाडा ५ फी सदी कम करा दिया और जहाजी कम्पनियों को जापानी सरकार ने ५ फी सदी सहायता दे दी। इस तरह भारतीय आयात-कर की चाल धरी

ही रह गई। आगे चलकर भारत-सरकार ने आयात-कर ५ फी सदी और बढा दिया। इससे लकाशायर को ५ फी सदी की हानि हो गई। इसकी क्षति-पूर्ति सरकार ने दूसरी तरह कर दी। उसने भारत मे आनेवाली रुई पर एक आना सेर का महसूल लगा दिया। यह रुई मिश्र और अमरीका से आती है और इससे लकाशायर के मुकाबले का बारीक कपडा तैयार किया जाता है। इस एक आने सेर के महसूल से लकाशायर की स्पर्धा करने में भारतीय-मिलो को उतनी ही बाधा हो गई। ये सब बातें तो प्रसगवश कही गई हैं। जब वस्त्र-उद्योग-रक्षण-बिल असेम्बली में पेश हुआ तो उसपर दो सशोधन उपस्थित किये गये। मालवीयजी का सशोधन यह था कि इग्लैण्ड के साथ कोई रिआयत न करके सब विदेशो के कपडे पर कर की एक ही दर मुकर्रर कर देनी चाहिए। ३१ मार्च को असेम्बली की इस बैठक का अन्तिम दिन था। अध्यक्ष पटेल ने कहा कि यदि सरकार का प्रस्ताव असेम्बली में ज्यो-का-त्यो स्वीकार न हो तो सरकार फिर विचार करके बता दे कि वह अपना बिल वापस ले लेगी क्या? परन्तु सरकार ने कहा कि ऐसा करना अपनी जिम्मेवारी से हाथ धो बैठना है। अन्त में बहस हुई और मालवीयजी का सशोधन तो गिर गया और श्री चेट्टी का सशोधन स्वीकार हुआ। परन्तु सशोधित अवस्था में बिल पर राय ली गई। उससे पहले ही पण्डित मालवीयजी और उनके साथी, दीवान चमनलाल और नई स्वराज्य-पार्टी के अन्य सदस्य उठकर चले गये। उस दिन की सभा बर्खास्त करने से पहले अध्यक्ष ने कहा—"आप सब मुझसे हाथ मिलाते जाइए। कौन जाने हममें से कौन-कौन यहा रहेंगे।" यो देखा जाय तो फरवरी १९३० के बाद की इन घटनाओ का लडाई से कोई सम्बन्ध नही है। परन्तु इनका वर्णन हमने तत्कालीन परिस्थिति का पूरा चित्र खीचने और यह बताने के लिए कर दिया है कि कांग्रेस-दल के पीछे-पीछे मालवीयजी और उनके दल ने भी किस प्रकार मेम्बरी छोड दी।

अब हमें १९३० के महान् आन्दोलन का अध्ययन करना है। यह कहा जा चुका है कि स्वाधीनता-दिवस देशभर में बडी धूम-धाम से मनाया गया। एक-न-एक कारण से भारत में गिरफ्तारिया प्रबल वेग से हो रही थी। मेरठ के ३२ अभियुक्तो में से एक के सिवा सब दौरा सुपुर्द कर दिये गये, कलकत्ते में सुभाष बाबू और उनके ११ साथियो को एक-एक वर्ष की कडी सजा दी गई। कांग्रेस के आदेश पर कौंसिलो के १७२ सदस्यो ने फरवरी १९३० तक इस्तीफे दे दिये। इनमे से २१ असेम्बली के और ९ राज्य-परिषद् के सदस्य थे। प्रान्तीय कौंसिलो में बगाल से ३४, बिहार-उडीसा से ३१, मध्यप्रान्त से २०, मदरास से २०, युक्त-

प्रान्त मे १६, आसाम मे १२, बम्बई से ६, पजाब से २ और बर्मा से १ ने इस्तीफा दिया।

सविनय-अवज्ञा का श्रीगणेश

१४, १५ और १६ फरवरी को कार्य-समिति की साबरमती में बैठक हुई। कौंसिलों के जिन मेम्बरो ने इस्तीफे नही दिये थे या देकर चुनाव में फिर खडे हो गये थे उन्हे कहा गया कि या तो वे काग्रेस की निर्वाचित समितियो की मेम्बरी छोड दे, अन्यथा उनपर जाब्ते की कारंवाई की जायगी। सरकार ने राजनैतिक कैदियो के साथ सद्व्यवहार करने का आश्वासन दिया था, परन्तु सरकार ने उस वचन का पालन नही किया। उसपर साबरमती में कार्य-समिति ने खेद प्रकट किया। किन्तु इस बैठक का मुख्य प्रस्ताव तो सविनय-अवज्ञा के सम्बन्ध में था। वह इस प्रकार था —

"कार्य-समिति की राय में सविनय-अवज्ञा का आन्दोलन उन्ही लोगों के द्वारा आरम्भ और सचालित होना चाहिए जिनका पूर्ण-स्वराज्य की प्राप्ति के लिए अहिंसा में धार्मिक विश्वास हो, और चूकि काग्रेस के सगठन में सब ऐसे ही स्त्री-पुरुष नही हैं बल्कि ऐसे भी लोग शामिल हैं जो अहिंसा को देश की वर्तमान स्थिति में सिर्फ नीति के तौर पर मानते हैं, इसलिए कार्य-समिति महात्मा गाधी के प्रस्ताव का स्वागत करती है और उन्हे तथा अहिंसा में विश्वास रखनेवाले उनके साथियों को अधिकार देती है कि वे जब, जिस तरह और जहा तक उचित समझें सविनय अवज्ञा जारी कर दें। कार्य-समिति को विश्वास है कि जब आन्दोलन वस्तुत चल रहा होगा उस समय सारे काग्रेसवादी और दूसरे लोग सब तरह से सत्याग्रहियो को पूर्ण सहयोग देंगे और बडी-से-बडी उत्तेजना के समय भी सम्पूर्ण अहिंसा का पालन और रक्षण करेंगे। कार्य-समिति को यह भी आशा है कि आन्दोलन के सर्व-साधारण में फैल जाने पर वकील आदि लोग जो सरकार के साथ स्वेच्छा-पूर्वक सहयोग कर रहे हैं, और विद्यार्थीगण जो सरकार से कथित लाभ उठा रहे हैं, वे सब यह सहयोग और यह लाभ छोड देंगे और स्वतन्त्रता के अतिम सग्राम मे कूद पडेंगे।

"कार्य-समिति को विश्वास है कि नेताओ के गिरफ्तार और कैद हो जाने पर जो लोग पीछे रह जायगे और जिनमें त्याग और सेवा की भावना है वे अपनी योग्यता के अनुसार काग्रेस के काम और आन्दोलन को जारी रक्खेंगे।"

जाब्ते के इस प्रस्ताव से भी पहले गाधीजी ने कुछ चुने हुए आमन्त्रित मित्रो के साथ जो खानगी बात चीत की थी वह ज्यादा महत्त्वपूर्ण थी। उसमें एकमात्र

विषय नमक था, अर्थात् नमक का कानून कैसे तोडा जाय, नमक कैसे बनाया जाय पडा हुआ नमक कैसे इकट्ठा किया जाय और नमक के ढेरो पर धावा कैसे बोला जाय ?

नमक-कानून भंग

परन्तु सविनय अवज्ञा शुरू करें तो कैसे ? गाधीजी के इरादे पहले ही जाहिर हो गये थे। बम्बई मे ये समाचार पहुँच चुके थे और कार्य-समिति की साबरमती की बैठक से पहले ही पहुँच चुके थे कि नमक के ढेरो पर धावा बोला जायगा। १४ फरवरी से पहले ही बम्बई में प्रचार-कार्य भी शुरू हो गया। नमक-कर का इतिहास खोद निकाला गया। मालूम हुआ कि १८३६ में एक नमक-कमीशन बैठा था और उसने भारत में अंग्रेजी नमक की बिक्री की खातिर भारतीय नमक पर कर लगाने की सिफारिश की थी। लिवरपूल बन्दर में माल के बिना जहाज खाली पडे थे और अशान्त समुद्र पर वे तबतक चल नही सकते थे जबतक कि आवश्यक भार को पूरा करने के लिए भी कोई माल उनपर लदा न हो। इसलिए कुछ माल, कुछ भार, कुछ वजन तो उन्हे लाना ही पडता था। कुछ समय तक तो उनमें लन्दन के समुद्र-तट की रेत भर कर आती रही, इसीसे कलकत्ते की चौरगी सडक तैयार हुई। यहा पहले हुगली से कालीघाट-मन्दिर तक नहर थी। असल बात यह है कि भारत में सदा से माल आता कम और यहा से जाता अधिक रहा है। १९२५ में निर्यात ३१६ करोड का और आयात २४९ करोड रुपये का रहा। इतना ही नही, निर्यात-माल मे अधिकतर खाद्य-पदार्थ और कच्चा माल होने के कारण वह जगह अधिक घेरता है। सब बातो को ध्यान में रखकर देखा जाय तो निर्यात-माल को लेजाने के लिए आयात—माल लाने की अपेक्षा कम-से-कम चार-पाच गुने जहाजो की जरूरत तो अवश्य होती है। अर्थात् भारत मे आनेवाले जहाजो को खाली आना पडता था। भारतीय व्यापार के लिए आवश्यक जहाजो में ७२ फी सदी या ¾ अंग्रेजी जहाज होते हैं। इसलिए भारत में आनेवाले जहाजो को अपना भार पूरा करने के लिए भी कुछ-न-कुछ अंग्रेजी माल लाना जरूरी होता है। इसके लिए चेशायर के नमक से अच्छी चीज और क्या होती ? हा, अखबारो की रद्दी और चीनी के टुकडे आदि चीजें भी लाई जाती है। इटली के जहाज अपना भार पूरा करने को इटली का सगमरमर और आलू लाते है। यही कारण है कि ये वस्तुयें भारतीय पैदावार से सस्ती पड जाती है।

साबरमती की बैठक के बाद थोडे दिनो मे वातावरण नमक-ही-नमक से

व्याप्त हो गया। लोग पूछने लगे, क्या बनाया हुआ नमक पडता खायगा? सरकारी-कर्मचारी और भी आगे बढे। उन्होने समुद्र के पानी से नमक बनाने में ईंधन और मजदूरी का हिसाब लगाकर बताया कि नमक-कर से तिगुना खर्च नमक बनाने में लगता है। ये बेचारे यह न समझ सके कि यह सग्राम भौतिक नही, नैतिक था।

प्रस्तुत नमक-सत्याग्रह का विकास होनेवाला था। गाधीजी किसी नमक के क्षेत्र में जाकर नमक उठावेंगे। दूसरे नही उठावेंगे। अगर कोई पूछता, 'क्या हाथ-पर हाथ धरे बैठे रहे?' तो यही उत्तर मिलता—'अवश्य। परन्तु मैदान में उतरने के लिये तैयार रहो।' उन्हें तो आशा थी कि परिणाम तत्काल होगा। वल्लभभाई तक को वह कूच में साथ न ले गये। केवल साबरमती-आश्रम के निवासियो को ही उन्होने साथ मे लिया। वर्धा-आश्रमवालो को भी तैयारी करने और गाधीजी की गिरफ्तारी तक ठहरे रहने का आदेश मिला। फिर तो एकसाथ भारत-भर में लडाई शुरू होनेवाली ही थी। गाधीजी की गिरफ्तारी के बाद लोग जो चाहते वह करने को स्वतन्त्र थे। उन्हें दीख गया था कि उनके बाद भारत में सर्वत्र यह आन्दोलन फैल जायगा और खूब जोर पकड लेगा। या तो जीत ही होगी या मर मिटेंगे। परन्तु जिस राष्ट्र ने अग्रेजो का कभी बुरा नही चाहा उसे वे नेस्तनाबूद नही कर सकते थे। ऐसा होने पर तो साम्राज्य तक की जडें हिल जाती। अहिंसा पर अटल रहने का और कोई परिणाम हो ही नही सकता। लोग यदि यह पूछते कि सरकार बम बरसायगी तो क्या होगा? तो उसका उत्तर यही था कि यदि निर्दोष-स्त्री-पुरुष और बच्चो को जमीदोज कर दिया जाय तो उन्हीकी खाक में से साम्राज्य को भस्म करनेवाली अग्नि प्रज्वलित होगी।

वाइसराय को अन्तिम चेतावनी

गाधीजी की योजना सदा उनकी अन्त प्रेरणा से बनी है, मस्तिष्क के भावना-हीन, हानि-लाभ-दर्शक तर्क से नही बनी है। उनका गुरु और मित्र उनका अन्त करण ही रहा है। गाधीजी की दिव्य दृष्टि और शुद्ध विचार का लोहा सभी ने माना। नरम-दल-वालो तक ने नमक-सत्याग्रह को भले ही बेहूदा और खतरनाक बताया हो, गाधीजी के हेतु की पवित्रता से वे भी इन्कार नही कर सके। गाधीजी ने वाइसराय को बहुत देर तक अन्धेरे मे नही रक्खा। सदा की भाति इस बार भी (२ मार्च १९३० को) उन्होने लॉर्ड अर्विन को चिट्ठी भेजी।

सत्याग्रहाश्रम साबरमती से भेजी गई वह चिट्ठी यह थी —

"सविनय-अवज्ञा शुरू करने से और जिस जोखिम को उठाने के लिए मैं इतने सालो से सदा हिचकिचाता रहा हूँ उसे उठाने से पहले, मुझे आपतक पहुँचकर कोई मार्ग निकालने का प्रयत्न करने में प्रसन्नता है।

"अहिंसा पर मेरा व्यक्तिगत विश्वास सर्वथा स्पष्ट है। जान-बूझकर मैं किसी भी प्राणी को दु ख नही पहुँचा सकता, मनुष्यो को दु ख पहुँचाने की तो बात ही नही—भले ही वे मेरा या मेरे स्वजनो का कितना ही अहित कर दें। अत जहा मैं ब्रिटिश-राज्य को अभिशाप समझता हूँ, वहा मैं एक भी अग्रेज या भारत में उसके किसी भी उचित स्वार्थ को नुकसान नही पहुँचाना चाहता।

"परन्तु मेरी बात का अर्थ गलत न समझिए। मैं ब्रिटिश-शासन को भारतवर्ष के लिए जरूर नाशकारी मानता हूँ। परन्तु केवल इसी कारण अग्रेज-मात्र को ससार की अन्य जातियो से बुरा भी नही समझता। सौभाग्य से बहुत-से अग्रेज मेरे प्रियतम मित्र है। असल बात तो यह है कि अग्रेजी राज्य की अधिकाश बुराइयो का ज्ञान मुझे स्पष्टवादी और साहसी अग्रेजो की कलम से ही हुआ है, जिन्होने सत्य को उसके सच्चे रूप में निडरता-पूर्वक प्रकट किया है।

"तो मेरा अग्रेजी राज्य के बारे में इतना बुरा ख्याल क्यो है ?

"इसलिए कि इस राज्य ने करोडो मूक मनुष्यो का दिन-दिन अधिकाधिक रक्त-शोषण करके उन्हें कगाल बना दिया है। उनपर शासन और सैनिक व्यय का असहनीय भार लादकर उन्हे बर्बाद कर दिया है।

"राजनैतिक दृष्टि से हमारी स्थिति गुलामो से अच्छी नही है। हमारी सस्कृति की जड ही खोखली कर दी गई है। हमारे हथियार छीनकर हमारा सारा पौरुष अपहरण कर लिया गया है। हमारा आत्मबल तो लुप्त हो ही गया था। हम सबको नि शस्त्र करके कायरो की भाति नि सहाय और बना दिया गया।

"अनेक देश-बन्धुओ की भाति मुझे भी यह सुख-स्वप्न दीखने लगा था कि प्रस्तावित गोलमेज-परिषद् शायद समस्या हल कर सके। परन्तु जब आपने स्पष्ट कह दिया कि आप या ब्रिटिश मन्त्रि-मण्डल पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्य की योजना का समर्थन करने का आश्वासन नही दे सकते, तब गोलमेज-परिषद् वह चीज नही दे सकती जिसके लिए शिक्षित भारत ज्ञानपूर्वक और अशिक्षित जनता दिल-ही-दिल में छट-पटा रही है। पार्लमेण्ट का निर्णय क्या होगा, ऐसी आशका उठनी ही न चाहिए। ऐसे उदाहरण मौजूद है कि पार्लमेण्ट की मजूरी की आशा में मन्त्रिमण्डल ने किसी खास नीति को पहले से ही अपना लिया हो।

"दिल्ली की मुलाकात निष्फल सिद्ध होने पर मेरे और पण्डित मोतीलाल नेहरू के लिए १९२८ की कलकत्ता-काग्रेस के गभीर निश्चय पर अमल करने के सिवा दूसरा चारा ही नही था।

"परन्तु यदि आपने अपनी घोषणा मे औपनिवेशिक-स्वराज्य शब्द का प्रयोग उसके माने हुए अर्थ में किया हो तो पूर्ण-स्वराज्य के प्रस्ताव से घबराने की जरूरत नही। कारण जिम्मेवार ब्रिटिश राजनीतिज्ञो ने क्या यह स्वीकार नही किया है कि औपनिवेशिक-स्वराज्य व्यवहार मे पूर्ण स्वराज्य ही है ? लेकिन मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि ब्रिटिश राजनीतिज्ञो की यह नीयत ही कभी नही थी कि भारतवर्ष को शीघ्र ही औपनिवेशिक स्वराज्य दे दिया जाय।

"परन्तु ये तो गई-गुजरी बातें हुई। घोषणा के बाद अनेक घटनाये ऐसी हुई है जिनमे ब्रिटिश नीति की दिशा स्पष्ट सूचित होती है।

"दिवाकर की भाति अब साफ-साफ जाहिर हो गया है कि जिम्मेवार ब्रिटिश-राजनीतिज्ञ अपनी नीति में ऐसा कोई परिवर्तन करने का विचार तक नही रखते जिससे ब्रिटेन के भारतीय-व्यापार को धक्का पहुँचने की सम्भावना हो, अथवा भारत के साथ ब्रिटेन के लेन-देन की निष्पक्ष और पूरी जाच करनी पडे। यदि इस शोषण की क्रिया का अन्त नही किया गया तो भारत दिन-दिन अधिकाधिक निस्सत्त्व होता ही जायगा। विनिमय की दर बात-की-बात में १८ पेंस करदी गई और देश को कई करोड की हानि सदा के लिए हो गई। अर्थ-सदस्य इस निश्चय को अटल समझते हैं। और जब और-और बुराइयो के साथ इस अचल निर्णय को मेटने के लिए सविनय किन्तु सीधा हमला किया जाता है तो आप चुप नही रह सकते। आपने भी भारतवर्ष को पीस डालनेवाली प्रणाली की ही दुहाई देकर उस उपाय को विफल करने के लिए धनी और जमीदार-वर्ग की मदद माग ही ली।

"राष्ट्र के नाम पर काम करनेवालो को खुद भी समझ लेना चाहिए और दूसरो को समझाते रहना चाहिए कि स्वाधीनता की इस तडप के पीछे हेतु क्या है। इस हेतु को न समझने से स्वाधीनता इतने विकृत रूप में आ सकती है और यह खतरा हमेशा रहेगा कि जिन करोडो मूक किसानो और मजदूरो के लिए स्वाधीनता की प्राप्ति का प्रयत्न किया जा रहा है और किया जाना चाहिए उनके लिए यह स्वाधीनता कदाचित् निकम्मी सिद्ध हो। इसी कारण मै कुछ अरसे से जनता को वाञ्छित स्वाधीनता का सच्चा अर्थ समझा रहा हूँ।

"उसकी मुख्य-मुख्य बातें आपके सामने भी रख दू।

"सरकारी आय का मुख्य भाग जमीन का लगान है। इसका बोझा इतना भारी है कि स्वाधीन-भारत को इसमें काफी कमी करनी पड़ेगी। स्थायी बन्दोबस्त अच्छी चीज है, परन्तु इसमे भी मुट्ठी भर अमीर जमीदारो को लाभ है, गरीब किसानो को कोई लाभ नहीं। वे तो सदा से बेबसी मे रहे हैं। उन्हें जब चाहे बेदखल किया जा सकता है।

"भूमिकर को ही घटा देने से काम नहीं चलेगा। सारी कर-व्यवस्था ही फिर से इस प्रकार बदलनी पडेगी कि रैयत की भलाई ही उसका मुख्य हेतु रहे। परन्तु मालूम होता है कि सरकार ने जो तरीका जारी किया है वह रैयत की जान निकाल लेने को ही किया है। नमक तो उसके जीवन के लिए भी आवश्यक है। परन्तु उसपर भी कर इस तरह लगाया गया है कि यो दीखने में तो वह सब पर बराबर पडता है, परन्तु इस हृदय-हीन निष्पक्षता का भार सबसे अधिक गरीबो पर ही पडता है। याद रहे कि नमक ही ऐसा पदार्थ है जो अलग-अलग भी और मिलकर भी अमीरो से गरीब लोग अधिक मात्रा में खाते हैं। इस कारण नमक-कर का बोझा गरीबो पर और भी ज्यादा पडता है। नशे की चीजो का महसूल भी गरीबो से ही अधिक वसूल होता है, इसमे गरीबो के स्वास्थ्य और सदाचार दोनो पर कुठाराघात होता है। इस कर के पक्ष में व्यक्तिगत-स्वतन्त्रता की झूठी दलील दी जाती है, परन्तु दरअसल यह लगाया जाता है आमदनी के लिए। १९१९ की सुधार-योजना के जन्मदाताओ ने बडी होशियारी से इस आय को द्वैध-शासन के जिम्मेवार कहलानेवाले विभाग के सुपुर्द कर दिया। इस प्रकार मदिरा-निषेध का भार मत्री पर आ गया और वह बेचारा भलाई करने के लिए शुरू से ही निकम्मा हो गया। यदि अभागा मत्री इस आमदनी को बन्द कर देता है तो उसे शिक्षा-विभाग का खर्च बिलकुल कम कर देना पडता है, क्योंकि वर्तमान स्थिति में आबकारी के बजाय उसके पास और कोई आमदनी का साधन नहीं है। इधर ऊपर से कर का भार लाद-लादकर गरीबो की कमर तोड दी गई है, उधर हाथ-कताई के मुख्य सहायक-धन्धे को नष्ट करके उनकी उत्पादन-शक्ति बर्बाद कर दी गई है।

"भारतवर्ष के विनाश की दुखद कहानी उसके नाम पर लिये गये कर्ज का उल्लेख किये बिना पूरी नहीं हो सकती। हाल में इसपर समाचारपत्रो में काफी लिखा जा चुका है। इस ऋण की स्वतत्र न्यायालय-द्वारा पूरी जाच कराना और जो रकम अन्यायपूर्ण सिद्ध हो उसे चुकाने से इन्कार करना स्वाधीन-भारत का कर्तव्य होगा।

"उपर्युक्त अन्याय ससार के सबसे महँगे विदेशी शासन को कायम रखने के

लिए किये जाते है। आपके वेतन को ही देखिए। दूसरे अनेक लवाजमात के अलावा आपको २१ हजार रुपये मासिक मिलते हैं। आज के विनिमय के भाव से ब्रिटिश प्रधानमत्री को ५००० पौण्ड वार्षिक अर्थात् ५४०० रुपये माहवार ही दिये जाते है। भारतवासियो की औसत दैनिक आय दो आने से कम है और आप ७००) रोज से ज्यादा पाते हैं। एक अग्रेज की रोजाना आमदनी लगभग दो रुपये है और वहा के प्रधानमत्री की १८०) रुपये। इस प्रकार आपको प्रत्येक हिन्दुस्तानी से पाच हजार गुना से भी ज्यादा मिलता है और ब्रिटिश प्रधानमत्री को प्रत्येक अग्रेज से सिर्फ ९० गुना ही अधिक दिया जाता है। मै आपसे हाथ जोडकर विनती करता हूँ कि इस करिश्मे पर गौर कीजिए। यह व्यक्तिगत उदाहरण मैने इसलिए दिया है कि एक हृदय विदारक सत्य आप भलीभाति समझ जायँ। आपके लिए व्यक्तिश मेरे मन मे इतना आदर है कि मै आपके दिल को चोट पहुँचाने की इच्छा भी नही कर सकता। मै जानता हूँ, आपको इतने भारी वेतन की जरूरत भी नही है। शायद आप सारी तनख्वाह खैरात ही कर देते होगे। परन्तु जिस शासन-प्रणाली में ऐसी व्यवस्था हो वह तो जड-मूल से उखाड फेंकने के लायक है। जो बात वाइसराय के वेतन के बारे में सच है, सामान्यत वही सारे शासन पर भी लागू होती है।

"अत कर का भार बहुत अधिक उसी हालत में कम किया जा सकता है जब शासन-व्यय भी उतना ही घटा दिया जाय। इसका अर्थ है शासन-योजना की काया-पलट कर देना। मेरी राय में २६ जनवरी के स्वाभाविक प्रदर्शन में लाखो ग्रामीणो ने स्वेच्छा से जो भाग लिया उसका भी यही अर्थ है। उन्हें लगता है कि इस नाशकारी भार से स्वाधीनता ही छुटकारा दिलायगी।

"फिर भी यदि भारतीय राष्ट्र को जीवित रहना है और यदि भारतवासियो को भूख से तडप-तडपकर शनै शनै मिट नही जाना है तो कष्ट-निवारण का कोई-न-कोई उपाय तुरन्त ढूढना पडेगा। प्रस्तावित परिषद् से तो यह उपाय हो ही नही सकता, यह बात तर्क से मनवाने की नही है। यहा तो बराबर की शक्ति खडी करनी होगी, तर्क-वर्क कुछ नही। ब्रिटेन अपनी सारी शक्ति लगाकर अपने व्यापार एव हितो की रक्षा करेगा। इसलिए भारतवर्ष को मृत्यु के बाहुपाश में से मुक्त होने के लिए उतनी ही शक्ति सम्पादन कर लेनी होगी।

"यह सभी को मालूम है कि भले ही हिंसक-दल कितना ही असगठित या सम्प्रति महत्त्वहीन हो, फिर भी उसका जोर बढता जा रहा है। उसका और मेरा ध्येय एक ही है। परन्तु मेरा दृढ विश्वास है कि वह मूक जनता का कष्ट-निवारण

नहीं कर सकता। मेरा यह विश्वास भी दिन-दिन दृढ़तर होता जा रहा है कि ब्रिटिश-सरकार की संगठित हिंसा को शुद्ध अहिंसा ही रोक सकती है। मेरा अनुभव अवश्य ही सीमित है, परन्तु वह बताता है कि अहिंसा बड़ी जबरदस्त क्रियात्मक शक्ति हो सकती है। मेरा इरादा इस शक्ति-द्वारा सरकार की संगठित हिंसा और हिंसक-दल की बढ़ती हुई असंगठित हिंसा दोनों का मुकाबला करने का है। हाथ-पर-हाथ धर बैठने से तो ये दोनों शक्तियां स्वच्छन्द होकर विचरेंगी। मेरा अहिंसा की सफलता में निःशंक और अटल विश्वास है। ऐसी दशा में और प्रतीक्षा करना मेरे लिए पाप होगा।

"यह अहिंसा सविनय-अवज्ञा के रूप में प्रकट होगी। आरम्भ में आश्रम-निवासी ही इसमें भाग लेंगे, परन्तु बाद में इसकी मर्यादाओं को समझकर जो चाहेंगे वे सभी इसमें शामिल हो जायेंगे।

"मैं जानता हूं कि अहिंसात्मक संग्राम का प्रारम्भ करने में जोखिम है। लोग इस तरह से ठीक ही कहेंगे कि यह पागलपन है। परन्तु सत्य की विजय बहुधा बड़ी-से-बड़ी जोखिमों के उठाये बिना नहीं हुई है। जिस राष्ट्र ने जान या अनजान में अपने से अधिक जन-संख्यावाले, अधिक प्राचीन और अपने-समान सभ्य दूसरे राष्ट्र को शिकार बनाया उसको ठीक रास्ते पर लाने के लिए कोई भी जोखिम बड़ी नहीं है।

"मैंने 'ठीक रास्ते पर लाने' के शब्द जान-बूझकर प्रयोग किये हैं। कारण, मेरी यह महत्त्वाकांक्षा है कि मैं अहिंसा-द्वारा ब्रिटिश जाति का हृदय पलट दूं और उसे भारत के प्रति किये गये अपने अन्याय का अनुभव करा दूं। मैं आपकी जाति को हानि पहुंचाना नहीं चाहता। मैं उसकी भी वैसी ही सेवा करना चाहता हूं, जैसी अपनी जाति की। मेरा विश्वास है कि मैंने सदा ही ऐसी सेवा की है। १९१९ तक आंखें बन्द करके उनकी सेवा की पर जब मेरी आंखें खुलीं और मैंने असहयोग की आवाज बुलन्द की तब भी मेरा उद्देश उनकी सेवा ही था। जिस हथियार का उपयोग मैंने अपने प्रिय-से-प्रिय रिश्तेदार पर कामयाबी के साथ किया है, वही मैंने सरकार के खिलाफ भी उठाया है। अगर यह बात सच है कि मैं भारतीयों के समान ही अंग्रेजों को भी चाहता हूं, तो यह ज्यादा देर तक छिपी न रहेगी। बरसों तक मेरे प्रेम की परीक्षा लेने के बाद मेरे कुनबेवालों ने मेरे प्रेम के दावे को कबूल किया है, वैसे ही अंग्रेज भी किसी दिन करेंगे। यदि मेरी आशाओं के अनुकूल जनता ने मेरा साथ दिया तो या तो पहले ही ब्रिटिश-जाति अपना कदम पीछे हटा लेगी, अन्यथा जनता ऐसे-ऐसे कष्ट-सहन करेगी जिन्हें देखकर पत्थर का दिल भी पिघले बिना नहीं रह सकता।

"अविनय-अवज्ञा की योजना उपर्युक्त बुराइयों के मुकाबले के लिए है। ब्रिटिश-सम्बन्ध-विच्छेद भी हम इन्हीं बुराइयों के कारण करना चाहते हैं। इनके दूर हो जाने पर हमारा मार्ग सुगम हो जायगा। उस समय मित्रतापूर्ण समझौते का द्वार खुल जायगा। यदि ब्रिटेन के भारतीय व्यापार में से लोभ का मैल निकल जाय, तो आपको हमारी स्वाधीनता स्वीकार कर लेने में कुछ भी मुश्किल नहीं होगी। मैं आपसे आदरपूर्वक अनुरोध करता हूँ कि इन बुराइयों को तुरन्त दूर करने का मार्ग सुगम बनाइए और इस प्रकार वास्तविक परिषद् के लिए अनुकूलता पैदा कीजिए। यह परिषद् बराबरी के लोगों की होगी, जिनका हेतु एक ही होगा। वह यह कि स्वेच्छा-पूर्वक मित्रता का सम्बन्ध रखकर मानव-जाति की भलाई का उद्योग किया जाय और उभय-पक्ष के लाभ को ध्यान में रखकर पारस्परिक सहायता एव व्यापार की शर्तें तय की जायें। दुर्भाग्यवश इस देश में साम्प्रदायिक झगड़े हैं अवश्य, किन्तु आपने उनपर जरूरत से ज्यादा जोर दिया है। यद्यपि किसी भी शासन-सम्बन्धी योजना में इस समस्या पर विचार करना महत्वपूर्ण बात है, परन्तु इससे भी बड़ी-बड़ी अन्य समस्यायें हैं जो कौमी झगड़ों से परे हैं और जिनके कारण सब जातियों को समान-रूप से हानि उठानी पड़ती है। अस्तु, यदि इन बुराइयों को दूर करने का उपाय आप नहीं कर सकेंगे और मेरे पत्र का आपके हृदय पर असर नहीं होगा, तो इस मास की ११ तारीख को मैं आश्रम से उपलब्ध साथी लेकर नमक-कानून तोड़ने के लिए चल पड़ूंगा। गरीबों की दृष्टि से मैं इस कानून को सबसे अधिक अन्यायपूर्ण समझता हूँ। स्वाधीनता का आन्दोलन मूलत गरीब-से-गरीब की भलाई के लिए है। इसलिए इस लड़ाई की शुरुआत भी इसी अन्याय के विरोध से होगी। आश्चर्य तो इस बात पर है कि हम इतने दीर्घकाल तक नमक के इस निर्दय एकाधिकार को सहन करते रहे। मैं जानता हूँ कि आप मुझे गिरफ्तार करके मेरे प्रयत्न को विफल कर सकते हैं। उस दशा में, मुझे आशा है कि, मेरे पीछे हजारों आदमी नियमित रूप में यह काम सम्हालने को तैयार होंगे और नमक-कानून जैसे घृणित कानून को, जो कभी बनाना ही नहीं चाहिए था, तोड़ने के कारण जो सजायें दी जायेंगी उन्हें वे खुशी-खुशी बर्दाश्त करेंगे।

"मेरा वस चले तो मैं आपको अनावश्यक ही क्या जरा-सी कठिनाई में भी नहीं डालना चाहूँ। यदि आपको मेरे पत्र में कुछ सार दिखाई दे और मेरे साथ बातचीत करना चाहें और इस हेतु से आप इस पत्र को छपने से रोकना पसन्द करें तो इसके पहुँचते ही आप मुझे तार कर दीजिए, मैं खुशी से रुक जाऊँगा। परन्तु

इतनी कृपा अवश्य कीजिए कि यदि आप इस पत्र के सार को भी अंगीकार करने को तैयार न हो तो मुझे अपने इरादे से रोकने का प्रयत्न न करे।

"इस पत्र का हेतु कोई धमकी देना नही है। यह तो सत्याग्रही का साधारण और पवित्र कर्तव्य मात्र है। इसीलिए मैं इसे भेज भी खास तौर पर एक ऐसे युवक अंग्रेज-मित्र के हाथ रहा हूँ जो भारतीय पक्ष का हिमायती है, जिसका अहिंसा पर पूर्ण विश्वास है और जिसे शायद विधाता ने इसी काम के लिए मेरे पास भेजा है।"

इस चिट्ठी को रेजिनाल्ड रेनाल्ड नामक अंग्रेज युवक दिल्ली ले गये। यह भाई कुछ समय तक आश्रम में रह चुके थे। गांधीजी के इस पत्र को जनता और अखबारो ने अन्तिम चेतावनी का नाम दिया था। लॉर्ड अर्विन का उत्तर भी तुरन्त और साफ-साफ मिला। वाइसराय साहब ने खेद प्रकट किया कि गांधीजी ऐसा काम करनेवाले हैं जिससे निश्चित रूप से कानून और सार्वजनिक शांति भंग होगी। गांधीजी का प्रत्युत्तर भी उनके योग्य ही था। वह सच्चे सत्याग्रही के एकमात्र कवच, विनय और साहस की भावना से कूट-कूटकर भरा था। उन्होंने लिखा, "मैंने दस्तबस्ता रोटी का सवाल किया था और मिला पत्थर।[1] अंग्रेज जाति सिर्फ शक्ति का ही लोहा मानती है। इसलिए मुझे वाइसराय साहब के उत्तर पर कोई आश्चर्य नही है। हमारे राष्ट्र के भाग्य में तो जेलखाने की शान्ति ही एकमात्र शान्ति है। सारा भारत ही एक विशाल कारागृह है। मैं इस अंग्रेजी कानून को मानने से इन्कार करता हूँ और इस जबर्दस्ती की शान्ति की मनहूस एकरसता को भंग करना अपना पवित्र कर्तव्य समझता हूँ। इस शान्ति से राष्ट्र का गला रुँधा हुआ था। अब उसके हृदय का चीत्कार प्रकट होना चाहिए।"

इस प्रकार गांधीजी का कूच अनिवार्य हो गया था। सब तैयारियां पहले से ही हो चुकी थी। लम्बी-चौडी तैयारी की तो जरूरत भी न थी। उनके ७९ साथी आश्रमवासियो और विद्यापीठ के छात्रो मे से चुने हुए लोग थे। ये सैनिक दो सौ मील लम्बी पैदल यात्रा के कष्टो को सहन करने के लिए फौलादी अनुशासन में सधे हुए थे। दाण्डी समुद्र-तट पर एक गाव है। गांधीजी को वहीं पहुँचना था। उन्होंने मार्ग के ग्रामवासियो को मना कर दिया था कि यात्रियो को बढ़िया भोजन न दें। इधर गांधीजी शुद्ध नैतिक ढंग की ये तैयारियां कर रहे थे, उधर वल्लभभाई अपने

---

[1] रहम की तुझसे तवक्को थी, सितमगर निकला।
मोम समझे थे तेरे दिल को, सो पत्थर निकला॥

'गुरु' के पहले ही आनेवाली तपस्या और सकटो के लिए तैयार होने की प्रेरणा करने के लिए गावो में पहुँच चुके थे। सरकार ने प्रथम प्रहार करने में विलम्ब नही किया। जब वल्लभभाई इस प्रकार गाधीजी के आगे-आगे चल रहे थे, सरकार ने समझा, 'यह तो १९०० वर्ष पहले ईसामसीह का दूत जॉन बैपटिस्ट है।' उसने तुरन्त मार्च के प्रथम सप्ताह में वल्लभभाई को रास गाव में गिरफ्तार कर लिया और उन्हें चार मास की सादी सजा दे दी। इस घटना के साथ-साथ गुजरात का बच्चा-बच्चा सरकार के खिलाफ खडा हो गया। साबरमती के रेतीले तट पर ७५ हजार स्त्री-पुरुषो ने एकत्र होकर यह निश्चय किया —

"हम अहमदाबाद के नागरिक सकल्प करते हैं कि जिस रास्ते वल्लभभाई गये हैं उसी रास्ते हम जायँगे और ऐसा करते हुए स्वाधीनता को प्राप्त करके छोडेंगे। देश को आजाद किये बिना न हम चैन लेंगे, न सरकार को लेने देंगे। हम शपथपूर्वक घोषणा करते है कि भारतवर्ष का उद्धार सत्य और अहिंसा से ही होगा।"

गाधीजी ने कहा, 'जो यह प्रतिज्ञा लेना चाहें, अपने हाथ ऊँचे कर दें।' सारे जन-समूह ने हाथ उठा दिये। वल्लभभाई ने गुजरात में अपने भाषणो से जीवन फूक दिया। उन्होने कहा, "तुम्हारी आखो के सामने तुम्हारे प्यारे पशु कुर्क होगे। अरे! क्या विवाह-उत्सव मना रहे हो? इतनी बलवती सरकार से जूझनेवाले को ये रग-रेलिया शोभा दे सकती है। कल ही से ऐसी नौबत आ सकती है कि अपने-अपने घरो के ताले लगाकर तुम्हे दिन-भर खेतो मे रहना और साझ पडे लौटना पडे। तुमने यश कमाया है, परन्तु उसकी पात्रता सिद्ध करने के लिए अभी बहुत-कुछ करना बाकी है। पासा पड चुका है। अब पीछे हटने की गुजाइश नही रही। गाधीजी ने सामूहिक सविनय-अवज्ञा के प्रथम प्रयोग में तुम्हारे ताल्लुके को ही चुना है। देखना, उनकी लाज रखना।

मै जानता हूँ, तुममें से कुछ लोगो को जमीने जब्त होने का डर है। पर जब्ती से क्या होगा? क्या अग्रेज तुम्हारी जमीनें सिर पर उठाकर विलायत ले जायेंगे? विश्वास रक्खो, तुम्हारी जमीनें जब्त हो जायँगी उस दिन सारा गुजरात तुम्हारी पीठ पर आकर खडा हो जायगा।

"अपने गाव का ऐसा सगठन करो कि दूसरे तुम्हारा अनुकरण करें। अब गाव-गाव छावनिया बन जानी चाहिएँ। अनुशासन और सगठन से आधी लडाई तो जीती ही समझो। सरकार तो हर गाव मे एक-एक पटेल और एक-एक तलाटी रखती है। गाव के प्रत्येक वयस्क स्त्री-पुरुष को हमारे स्वयसेवक बन जाना चाहिए।

दाण्डी-कूच

गांधीजी अपने ७९ साथियो को लेकर १२ मार्च १९३० को दाण्डी की कूच पर निकल पडे। यह एक ऐतिहासिक भव्य-दृश्य था और प्राचीनकाल की राम एव पाण्डवो के वन-गमन की घटनाओ की स्मृति ताजा करता था। यह विद्रोहियो की कूच थी। इधर कूच जारी थी, उधर ग्राम-कर्मचारियो के धडाधड त्याग-पत्र आ रहे थे। ३०० ने नौकरी छोड दी। अहमदाबाद की खानगी बातचीत में गांधीजी ने कहा था, "मैं शुरुआत करूँ तबतक ठहरना। जब मैं कूच पर निकलूँगा तो विचार अपने-आप फैल जायेंगे। फिर आप लोगो को भी मालूम हो जायगा कि क्या करना चाहिए।" यह बात एक तरह से दिमागी अटकल लगाने के विरुद्ध चेतावनी के रूप में कही गई थी। यह विरोध की योजना थी ही ऐसी कि उस समय इसके पूरे-पूरे स्वरूप की कल्पना इसके योग्यने-योग्य अनुगामी भी नही कर सकते थे। शायद गांधीजी को भी भावी की पूरी कल्पना नही थी। ऐसा लगता है मानो उनपर आन्तरिक ज्योति की एक किरण पडती थी और उनीके प्रकाश में वह अपना व्यवहार निश्चित करते थे। सन्त पुरुषो के जीवन में बुद्धि या तर्क के बजाय ये ही दो चीजें मार्ग-दर्शक होती हैं। कूच आरम्भ होते ही जनता ने उनके उपदेशो की भावना और आन्दोलन की योजना को समझ लिया। वह उनके झण्डे के नीचे आ खडी हुई। विचार फैल गया और अलग-अलग रूप में प्रकट होने लगा। लोगो ने शीघ्र अनुभव कर लिया कि असहयोग और अहिंसा अभावात्मक नही बल्कि प्रतिकार की योजना है। इनकी युद्ध-नीति अलग है और वह है सत्य। अहिंसा प्रतिकार है। ज्योही विचारो और भावनाओ को छुट्टी मिली, लोगो की क्रिया-शक्ति के बन्द भी खुल गये। नगर तो डरते रहे, पर गाव पीछे हो लिये। सीधे-सादे लोगों का गांधीजी के अचूक निर्णय पर विश्वास था। उनका नमक-सत्याग्रह किसी सुरक्षित भण्डार या अनन्त महासागर की लूट का धावा नही था। यह तो अंग्रेजो की सत्ता के खिलाफ ३३ करोड भारतीयों के विद्रोह का परिचायक-मात्र था। अंग्रेजो के बनाये हुए कानून-कायदो का आधार न तो प्रजा की सम्मति पर है और न नीति अथवा मनुष्यता के विशुद्ध सिद्धान्तो पर।

भावी आदेश

यह सही है कि पहला वार गोला-बारूद या अन्य विस्फोटक पदार्थों के शोर-गुल के साथ नही किया गया। यहा तो नमक जैसी सादी चीज से काम लिया गया। फिर भी जीवन की प्रारम्भिक आवश्यकता के इस पदार्थ से जो वेग उत्पन्न हुआ वह

आश्चर्यजनक था। संसार पर भी इस सीधे-सादे और हास्यास्पद-से आन्दोलन का असर अद्भुत-सा हुआ। सभ्य संसार पर तो इसका जितना गहरा और जल्दी असर हुआ वह वर्णन नही किया जा सकता। गाधीजी की कूच ने यह विचार प्रसारित कर दिया कि ब्रिटिश-सरकार के विरोध मे भारत ने रक्त-रहित विद्रोह का झण्डा फहरा दिया है और यदि विधाता की यही इच्छा है कि असत्य पर सत्य की, अधकार पर प्रकाश की और मृत्यु पर अमरता की विजय होनी चाहिए तो भारतवर्ष की भी जीत होकर रहेगी।

कूच के बीच मे ही २१ मार्च १९३० को अहमदाबाद मे महासमिति की बैठक हुई। इसमें कार्य-समिति के पूर्व-कथित प्रस्ताव का समर्थन और नमक कानून पर ही शक्ति केन्द्रित रखने का अनुरोध किया गया। साथ ही यह चेतावनी दी गई कि गाधीजी के दाण्डी पहुँचकर नमक-कानून तोडने से पहले देश मे और कही सविनय-अवज्ञा शुरू न की जाय। सरदार वल्लभभाई और श्री सेनगुप्त की गिरफ्तारियो पर और सरकारी नौकरिया छोडनेवाले ग्राम-कर्मचारियो को बधाई दी गई। सत्याग्रहियो के लिए एक ही तरह की प्रतिज्ञा निश्चित करना वाञ्छनीय समझा गया और गाधीजी की अनुमति से यह प्रतिज्ञा-पत्र बनाया गया —

"१—राष्ट्रीय महासभा ने भारतीय स्वाधीनता के लिए सविनय-अवज्ञा का जो आन्दोलन खडा किया है उसमे मैं शरीक होना चाहता हूँ।

"२—मै काग्रेस के शान्त एव उचित उपायो से भारत के लिए पूर्ण-स्वराज्य की प्राप्ति के ध्येय को स्वीकार करता हूँ।

"३—मै जेल जाने को तैयार और राजी हूँ और इस आन्दोलन में और भी जो कष्ट और सजायें मुझे दी जायेंगी उन्हे मै सहर्ष सहन करूँगा।

"४—जेल जाने की हालत में मै काग्रेस-कोष से अपने परिवार के निर्वाह के लिए कोई आर्थिक सहायता नही मागूगा।

"५—मैं आन्दोलन के सचालको की आज्ञाओ का निर्विवाद रूप से पालन करूँगा।"

गाधीजी के गिरफ्तार होने पर जनता क्या करे और कैसा व्यवहार रक्खे, इस विषय में गाधीजी अपनी सूचनायें सदा से देते आये हैं। कूच के आरम्भ से पहले २७ फरवरी को गाधीजी ने 'मेरे गिरफ्तार होने पर' यह लेख लिखा। उसमें कहा —

"यह तो समझ ही लेना चाहिए कि सविनय-अवज्ञा आरम्भ होने पर मेरी

गिरफ्तारी निश्चित है। अत ऐसा होने पर क्या किया जाय, यह सोच लेना जरूरी है।

"मेरी गिरफ्तारी पर मूक और निष्क्रिय अहिंसा की आवश्यकता नही। आवश्यकता है अत्यन्त सक्रिय अहिंसा को कार्य-रूप देने की। पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति के लिए अहिंसा में धार्मिक विश्वास रखने वाला एक-एक स्त्री-पुरुष इस गुलामी में अब नही रहेगा। या तो मर मिटेगा या कारावास में बन्द रहेगा। इसलिए मेरे उत्तराधिकारी अथवा कांग्रेस के आदेशानुसार सविनय-अवज्ञा करना सबका कर्तव्य होगा। मैं स्वीकार करता हूँ कि अभी तो मुझे सारे भारत के लिए अपना कोई उत्तराधिकारी नजर नही आता। परन्तु मुझे अपने साथियो और अपने ध्येय में भी इतना विश्वास अवश्य है कि उन्हें मेरा उत्तराधिकारी परिस्थिति स्वय दे देगी। हा, यह अनिवार्य शर्त सभी के ध्यान मे रहनी चाहिए कि उस व्यक्ति को निर्धारित ध्येय की प्राप्ति के लिए अहिंसा की शक्ति में अचल विश्वास होना चाहिए। ऐसा न होगा तो ऐन मौके पर उसे अहिंसात्मक उपाय नही सूझ सकेगा।

"जब शुरुआत भलीभाति और वस्तुत हो चुकेगी तब मुझे आशा है कि देश के कोने-कोने से सहयोग मिलेगा। आन्दोलन की सफलता के प्रत्येक इच्छुक का धर्म होगा कि वह इसे अहिंसात्मक और नियन्त्रित बनाये रक्खे। हरेक से आशा है कि वह अपने सरदार की आज्ञा बिना अपने स्थान से न हटेगा। ससार-भर के सामूहिक आन्दोलनो मे नेता अकल्पित रूप में निकल पडे है। फिर हमारा आन्दोलन भी इस नियम का अपवाद क्यो होगा?"

इसी समय के आस-पास पण्डित मोतीलाल नेहरू ने आनन्द भवन का शाही दान दिया। उस वर्ष कांग्रेस के अध्यक्ष प० जवाहरलाल नेहरू थे। उन्होंने देश के प्रतिनिधि के रूप मे इस भेंट को स्वीकार किया।

जिस समय गाधीजी की कूच जारी थी, भारत बडा अधीर होकर उसको देख रहा था। प्रमाद को दूर करना प्राय जितना कठिन है उतना ही व्याकुलता पर अकुश रखना कठिन होता है। परन्तु अनुशासन सगठन का प्राण होता है। इस विकट अवसर पर भारतवर्ष ने अनुशासन का परिचय दिया। गाधीजी द्वारा आरम्भ किये गये इस आन्दोलन को सख्या, धन और प्रभाव का बल मिलता ही गया। गाधीजी ने सूत्र-रूप से विचार दिया था। उनके शिष्योने भाष्यकार बनकर उसे जनता को समझाया। अनेक कार्यकर्त्ता राष्ट्र-दूत बनकर उसका प्रचार करने दूर-दूर निकल पडे। गुरु एक, चेले अनेक और प्रचारक असख्य होते है। इस प्रकार यह नवीन धर्म

देश के कोने-कोने और घर-घर में फैल गया। गाधीजी की कूच के समय जो सरकार अविचलित दिखाई देती थी, एक ही सप्ताह में उसके होश-हवाश गुम हो गये। गाधीजी के महा-प्रस्थान से पहले ही मार्च के प्रथम सप्ताह में वह वल्लभभाई को गिरफ्तार करने और उन्हें चार मास की सजा देने की दो गैर-कानूनी कार्रवाइया कर चुकी थी। कूच के बाद उसने यह आज्ञा दी कि लगोटी और दण्डधारी गाधी की पैदल यात्रा का सिनेमा-चित्र न दिखाया जाय। बम्बई, युक्त-प्रान्त, पजाब और मदरास आदि सभी प्रान्तो ने ऐसी ही आज्ञाये निकाल दी। पुलिस को मामूली काम से एक तरह छुट्टी-सी दे दी गई। सारा ध्यान असहयोगियो पर लगा दिया गया।

इस सारी प्रसव-पीडा में पूर्ण-स्वराज्य का जन्म हो रहा था। यह क्या कम सन्तोष की बात थी? इसमें किसी बाहरी मदद की जरूरत भी न पडी। कष्ट तो हुआ ही, परन्तु इससे भारत-माता पहले से अधिक शुद्ध, बलवती और गौरवान्वित होकर प्रकट हो रही थी।

प्रत्येक युग और प्रत्येक देश में चमत्कार होते आये है। भारत को भी अपना चमत्कार दिखाना ही था। इसीको देखने, और अपने ही युग और अपनी ही मातृभूमि में देखने के लिए, १२ मार्च १९३० से पहले ही से साबरमती-आश्रम में हजारो नर-नारी गाधीजी के चारो ओर एकत्र हुए थे। जहातक चलने का सामर्थ्य था वहा तक ये लोग गाधीजी के साथ-साथ गये। स्वाधीनता-पथ के इन यात्रियो के साथ कई भारतीय और विदेशी सवाददाता, चित्रकार और आस-पास के सैकडो लोग तथा भिन्न-भिन्न प्रान्तो से आये हुए प्रमुख व्यक्ति भी गये। गाधीजी को जाननेवालो को मालूम है कि वह कितना तेज चलते है। एक सवाददाता ने इस यात्रा का वर्णन इस प्रकार किया है —

"१२ मार्च को सुबह होते ही गाधीजी सविनय-अवज्ञा की मुहिम पर चल पडे। उनके साथ चुने हुए ७९ स्वयसेवक थे। इन लोगो को दो सौ मील की दूरी पर, समुद्र-तट पर बसे, दाण्डी नामक गाव जाना था और वहा पहुँचकर नमक बनाना था।"

'बॉम्बे क्रानिकल' के शब्दो में "इस महान् राष्ट्रीय घटना से पहले, उसके साथ-साथ और बाद में जो दृश्य देखने में आये, वे इतने उत्साहपूर्ण, शानदार और जीवन फूकनेवाले थे कि वर्णन नही किया जा सकता। इस महान् अवसर पर मनुष्यो के हृदयो में देश-प्रेम की जितनी प्रबल धारा बह रही थी उतनी पहले कभी नही

वही थी। यह एक महान् आन्दोलन का महान् प्रारम्भ था, और निश्चय ही भारत की राष्ट्रीय स्वतत्रता के इतिहास में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान रहेगा।"

यात्रा में

गाधीजी सहारे के लिए हाथ में लम्बी लकडी लिए हुए चलते थे। उनकी सारी सेना बिलकुल करीने से पीछे-पीछे चलती थी। सेना-नायक का कदम फुर्ती से उठता था और सभीको प्रेरणा देता था। असलाली गाव १० मील दूर था, सारे रास्ते इस सेना को दोनो ओर खडी हुई भारी भीड के बीच में होकर गुजरना पडा। लोग घण्टो पहले से भारत के महान् सेनापति के दर्शनो की उत्सुकता में खडे थे। इस अवसर पर अहमदाबाद में जितना बडा जुलस निकला, उतना पहले कभी निकला हुआ याद नही पडता। शायद बच्चो और अपगो के सिवाय नगर का प्रत्येक निवासी इस जुलूस मे शामिल था। इसकी लम्बाई दो मील से कम न थी। जिन्हें बाजार में खडे होने को जगह न मिली, वे छतो और झरोखो, दीवारो और दरख्तो पर, जहा-कही जगह मिली, पहुँच गये थे। सारे नगर में उत्सव-सा दिखाई देता था। रास्ते-भर 'गाधीजी की जय' के गगनभेदी घोष होते रहे।

कूच में ही गाधीजी ने घोषित कर दिया था "कि स्वराज्य नही मिला तो या तो रास्ते में मर जाऊँगा या आश्रम के बाहर रहूँगा। नमक-कर न उठा सका तो आश्रम लौटने का भी इरादा नही है।" गाधीजी की गिरफ्तारी होने ही वाली थी। श्री अब्बास तय्यबजी उनके उत्तराधिकारी मुकर्रर हुए। आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय ने कहा, "महात्मा गाधी की ऐतिहासिक कूच की उपमा हजरत मूसा और उनके यहूदी साथियो के देश-त्याग से ही दी जा सकती है। जबतक यह महापुरुष मजिलें-मकसूद पर नही पहुँच जायगा, पीछे फिरकर नही देखेगा।"

गाधीजी ने कहा, "अग्रेजी राज्य ने भारत का नैतिक, भौतिक, सास्कृतिक और आध्यात्मिक सभी तरह नाश कर दिया है। मैं इस राज्य को अभिशाप समझता हूँ और इसे नष्ट करने का प्रण कर चुका हूँ।

"मैंने स्वय 'गॉड सेव दि किंग' के गीत गाये है। दूसरो से भी गवाये है। मुझे 'भिक्षादेहि' की राजनीति मे विश्वास था। पर वह सब व्यर्थ हुआ। मैं जान गया कि इस सरकार को सीधा करने का यह उपाय नही है। अब तो राजद्रोह ही मेरा धर्म हो गया है। पर हमारी लडाई अहिंसा की लडाई है। हम किसीको मारना नही चाहते, किन्तु इस सत्यानाशी शासन को खतम कर देना हमारा परम-कर्तव्य है।"

जम्बूसर नामक स्थान पर भाषण देते हुए गाधीजी ने पुलिस के थानेदारो के सामाजिक वहिष्कार की निन्दा की और कहा, "सरकारी कर्मचारियो को भूखो मारना धर्म नही है। शत्रु को साप काट ले तो उसकी जान बचाने के लिए तो उसका जहर चूस लेने में मै भी सकोच नही करूँगा।"

१४ फरवरी १६३० को कार्य-समिति ने नमक-सत्याग्रह के विषय में जो प्रस्ताव पास किया था २१ मार्च को महा-समिति ने अहमदाबाद की बैठक में उसका इस प्रकार समर्थन किया —

"यह समिति कार्य-समिति के १४ फरवरीवाले उस प्रस्ताव का समर्थन करती है जिसमे सविनय-अवज्ञा का प्रारम्भ और सचालन करने का महात्मा गाधी को अधिकार दिया गया था। साथ ही यह समिति गाधीजी, उनके साथियो एव देश को १२ मार्च को शुरू किये गये कूच पर बधाई देती है। समिति को आशा है कि देशभर गाधीजी का इस काम में इस तरह साथ देगा जिससे पूर्ण-स्वराज्य का आन्दोलन शीघ्र सफल हो जाय।

"महा-समिति प्रान्तीय समितियो को अधिकार देती है कि वे जिस प्रकार उचित समझें उसी प्रकार सविनय-अवज्ञा जारी कर दें, अलबत्ता समय-समय पर कार्य-समिति की आज्ञाओ का पालन करना प्रान्तीय समितियो के लिए आवश्यक होगा। किन्तु समिति को आशा है कि प्रान्त यथा-सभव नमक-कानून तोडने पर ही जोर लगावेंगे। समिति को विश्वास है कि सरकारी हस्तक्षेप की परवा न करके भी पूरी तैयारी तो जारी रक्खी जायगी, परन्तु जबतक गाधीजी दाण्डी पहुँचकर नमक-कानून का भग न कर दें और दूसरो को भी अनुमति न दें दें तबतक अन्यत्र सविनय-अवज्ञा आरम्भ न की जायगी। हा, यदि गाधीजी पहले ही पकड लिये जायँ तो प्रान्तो को सविनय-अवज्ञा आरम्भ करने की पूरी आजादी होगी।"

तीर्थ यात्रा

गाधीजी को कूच में २४ दिन लगे। रास्ते भर वह इस बात पर जोर देते रहे कि यह तीर्थयात्रा है। इसमें शरीर को कायम रखने मात्र के लिए खाने में ही पुण्य है, स्वादिष्ट भोजन करने में नही है। वह बराबर आत्म-निरीक्षण कराते रहे। सूरत मे गाधीजी ने कहा —

"आज ही प्रात कालीन प्रार्थना के समय मै साथियो मे कह रहा था कि जिस जिले में हमें सविनय-अवज्ञा करनी है उसमें हम पहुँच गये है। अत हमें आत्म-शुद्धि

और समर्पण-बुद्धि का और भी प्रयत्न करना चाहिए। यह जिला अधिक संगठित है और यहा कार्यकर्त्ताओ में घनिष्ठ मित्र भी अधिक है, इसलिए हमारी खातिर-तवाजो भी अधिक होने की संभावना है। देखना उनके आग्रह को न मानना। हम देवता नही हैं, निर्बल प्राणी है, आसानी से प्रलोभनो के शिकार हो जाते हैं। हमसे अनेक भूलें हुई हैं। कई तो आज ही प्रकट हुईं। जिस समय मै यात्रियो की भूलो पर चिन्ता-मग्न था उसी समय एक दोषी ने स्वयं आकर अपराध कबूल किया। मैंने समझ लिया कि मैंने चेतावनी देने में उतावली नही की है। स्थानीय कार्यकर्त्ताओ ने हमारे लिए मोटर भरकर सूरत से दूध मंगवाया था और अन्य अनुचित खर्च किया था। अतः मैंने तीव्र शब्दो में उनकी भर्त्सना की। परन्तु इससे मेरा दुःख शान्त नही हुआ। उलटा ज्यो-ज्यो मै उस भूल पर विचार करता हूँ त्यो-त्यो दुःख बढ़ता ही है।

"मै विरोध तभी कर सकता हूँ जब मेरा रहन-सहन जनता की औसत-आय से कुछ तो साम्य रखता हो। हम यह कूच परमेश्वर के नाम पर कर रहे हैं। हम अपने कार्य में नगे, भूखे और बेकार लोगो की भलाई की दुहाई देते हैं। यदि हम देशवासियो की औसत-आय अर्थात् ७ पैसे रोज से पचास गुना खर्च अपने पर करा रहे है तो हमें वाइसराय के वेतन की टीका करने का कोई अधिकार नही है। मैंने कार्यकर्त्ताओ से खर्च का हिसाब और अन्य विगत मागी है। कोई आश्चर्य नही, यदि इसमें प्रत्येक ७ पैसे का पचास गुना खर्च अपने ऊपर कर रहा हो। और होगा भी क्या, जब वे कही-न-कही से मेरे लिए बढ़िया-से-बढ़िया सन्तरे और अंगूर लायेंगे, १ दर्जन सन्तरो के स्थान पर १० दर्जन पहुँचायेंगे और आधा सेर दूध की जरूरत होगी तो डेढ सेर ला धरेंगे? आपका जी दुखाने के भय का बहाना लेकर आपके परोसे हुए व्यंजन यदि हम खा लेंगे, तो भी वही परिणाम होगा। आप अमरूद और अंगूर लाकर देते हैं और हम उन्हें उड़ा जाते है। क्यो? इसलिए कि धनाढ्य किसान ने भेजे हैं! और फिर यह तो सोचिए कि किसी कृपालु मित्र ने मुझे फाउण्टेन-पेन दे दिया और मैंने बिना आत्म-पीडा अनुभव किये बढ़िया चिकने कागज पर उसीसे वाइसराय साहब को खत लिख डाला? क्या यह मुझे और आपको शोभा दे सकता है? क्या इस प्रकार लिखे हुए पत्र का कुछ भी असर हो सकता है?

"इस प्रकार के जीवन से तो अखा भगत की यह कहावत चरितार्थ होती है कि चोरी का माल खाना कच्चा पारा निगलना है। गरीब देश में बढ़िया भोजन करना चोरी करके खाना नही तो क्या है? चोरी का माल खाकर यह लड़ाई कभी नही जीती जा सकती। मैंने यह कूच हैसियत से ज्यादा खर्च करने के लिए शुरू भी नही

की थी। हमें तो आशा है कि हमारी पुकार पर हजारो स्वयसेवक हमारा साथ देंगे। उनपर बेशुमार खर्च करके रखना हमारे लिए असभव होगा।"

नमक-कानून टूटा

५ अप्रैल को प्रात काल गाधीजी दाण्डी पहुँचे। श्रीमती सरोजिनीदेवी भी उनसे मिलने आई थी। प्रात.काल की प्रार्थना के थोडी देर बाद गाधीजी और उनके साथी समुद्र-तट से नमक बीनकर नमक-कानून तोडने निकले। नमक-कानून तोडते ही गाधीजी ने यह वक्तव्य प्रकाशित किया —

"नमक-कानून विधिवत् भग हो गया है। अब जो कोई सजा भुगतने को तैयार हो वह, जहा चाहे और जब सुविधा देखे, नमक बना सकता है। मेरी सलाह यह है कि सर्वत्र कार्यकर्ता नमक बनावें, जहा उन्हें शुद्ध नमक तैयार करना आता हो वहा उसे काम में भी लावें और ग्रामवासियो को भी सिखा दें, परन्तु उन्हें यह अवश्य जता दें कि नमक बनाने में सजा होने की जोखिम है। या यो कहो कि गाववालो को पूरी तरह समझा दिया जाय कि नमक-कर का भार किन-किन पर कितना पडता है, और इसके कानून को किस प्रकार तोडा जाय जिससे नमक-कर उठ जाय।

"नमक-कर के खिलाफ यह लडाई राष्ट्रीय सप्ताह भर, अर्थात् १३ अप्रैल तक, जारी रहनी चाहिए। जो इस पवित्र कार्य में शरीक न हो सकें उन्हें विदेशी वस्त्र-बहिष्कार और खद्दर-प्रचार के लिए व्यक्तिश काम करना चाहिए। उन्हें अधिक-से-अधिक खादी बनवाने का भी प्रयत्न करना चाहिए। इस काम के और मदिरा-निषेध के बारे में मै भारतीय महिलाओ के लिए अलग सन्देश तैयार कर रहा हूँ। मेरा विश्वास दिन-दिन दृढ होता जा रहा है कि स्वाधीनता की प्राप्ति में स्त्रिया पुरुषो से अधिक सहायक हो सकती हैं। मुझे लगता है कि अहिंसा का अर्थ वे पुरुषो से अच्छा समझ सकती हैं। यह इसलिए नही कि वे अबला है—पुरुष अहकार-वश उन्हें ऐसा ही समझते है।—बल्कि सच्चे साहस और आत्म-त्याग की भावना उनमें पुरुषो से कही अधिक है।"

स्त्रियो के विषय में गाधीजी ने नवसारी में कहा —

"स्त्रियो को पुरुषो के साथ नमक की कढाइयो की रक्षा नही करनी चाहिए। मैं सरकार पर इतना विश्वास अब भी रख सकता हूँ कि वह हमारी बहनो से लडाई मोल नही लेगी। इसकी उत्तेजना देना हमारे लिए भी अनुचित होगा। जबतक सरकार की कृपा पुरुषो तक ही सीमित रहती है तबतक पुरुषो को ही लडना चाहिए, जब

सरकार सीमोल्लघन करे तब भले ही स्त्रिया जी खोलकर लडें। कोई यह न कहे कि 'चूकि हम जानते थे कि स्त्रिया कितनी भी आगे बढकर कानून भग करें उनपर कोई हाथ न डालेगा, इसीलिए पुरुषो ने स्त्रियो की आड ली।' मैंने स्त्रियो के सामने जो कार्यक्रम रक्खा है उसमे उनके लिए बहुत काम है। वे जितना सामर्थ्य हो, साहस दिखावें और जोखिम उठावें।"

६ अप्रैल से नमक-सत्याग्रह की छुट्टी क्या मिली, देश में इस छोर से उस छोर तक आगसी लग गई। सारे बडे-बडे शहरो मे लाखो की उपस्थिति में विराट् सभायें हुईं। कराची, पूना, पटना, पेशावर, कलकत्ता, मदरास और शोलापुर की घटनाओ ने नया अनुभव कराया और दिखा दिया कि इस सभ्य सरकार का एकमात्र आधार हिंसा है। पेशावर में सेना की गोलियो से कई आदमी मारे गये। मदरास में भी गोली चली।

कराची की दुर्घटना का उल्लेख करते हुए गाधीजी ने लिखा —

"बहादुर युवक दत्तात्रेय, कहते हैं, सत्याग्रह को जानता भी न था। पहलवान था, इसलिए सिर्फ शान्ति कायम रखने के लिए गया था। गोली लगकर मारा गया। १८ साल का नौजवान मेघराज रेवाचन्द्र गोली का शिकार हुआ। इस प्रकार जय-रामदास सहित ७ मनुष्य गोली से घायल हुए।"

२३ अप्रैल को बगाल-आर्डिनेन्स फिर से जारी कर दिया गया। २७ अप्रैल को वाइसराय साहब ने भी कुछ सशोधन करके १९१० के प्रेस-एक्ट को आर्डिनेन्स-रूप में फिर से जीवित कर दिया। गाधीजी का 'यग इडिया' अब साइक्लोस्टाइल पर निकलने लगा था। एक वक्तव्य में उन्होने कहा —

"हमें अनुभव होता हो या न होता हो, कुछ दिन से हम पर एक प्रकार से फौजी शासन हो रहा है। फौजी शासन आखिर है क्या। यही कि सैनिक अफसर की मर्जी ही कानून बन जाती है। फिलहाल वाइसराय वैसा अफसर है और वह जहा चाहे साधारण कानून को बालाय-ताक रखकर विशेष आज्ञायें लाद देता है और जनता बेचारी मे उनके विरोध करने का दम नही होता। पर मै आशा करता हूँ, वे दिन जाते रहे कि अग्रेज शासकों के फरमानो के आगे हम चुपचाप सिर झुका दें।

"मुझे उम्मीद है कि जनता इस आर्डिनेन्स से भयभीत न होगी। और अगर लोकमत के सच्चे प्रतिनिधि होंगे तो अखबारवाले भी इससे नही डरेंगे। थोरो का यह उपदेश हमें हृदयगम कर लेना चाहिए कि अत्याचारी शासन में ईमानदार आदमी का धनवान रहना कठिन होता है। अत जब हम चीं-चपड किये बिना अपने शरीर

ही अधिकारियो के हवाले कर देते हैं तो हमें उसी भाति अपनी सम्पत्ति भी उनके सुपुर्द कर देने में क्यो हिचकिचाहट होनी चाहिए? इससे हमारी आत्मा की तो रक्षा होगी।

"इस कारण मै सम्पादको और प्रकाशको से अनुरोध करना चाहता हूँ कि वे जमानत देने से इन्कार कर दें और सरकार न माने तो या तो वे प्रकाशन बन्द कर दें, या सरकार जो-कुछ जब्त करना चाहे कर लेने दें। जब स्वतन्त्रता-देवी हमारा द्वार खटखटा रही है और उसे रिझाने को हजारो ने घोर यातनायें सहन की है, तो देखना, अखबारवालो को कोई यह न कह सके कि मौका पडने पर वे पूरे नही उतरे। सरकार टाइप और मशीनरी जब्त कर सकती है, परन्तु कलम और जबान को कौन छीन सकता है? और असल चीज तो राष्ट्र की विचार-शक्ति है; वह तो किसी के दबाये नही दब सकती।"

थोडे दिन बाद गाधीजी ने अपने 'नवजीवन-प्रेस' के व्यवस्थापक को कह दिया कि सरकार जमानत मागे तो न दी जाय और प्रेस को जब्त होने दिया जाय। 'नवजीवन' गया और उसके साथ-साथ नवजीवन-प्रेस-द्वारा प्रकाशित अन्य पत्र भी जाते रहे। देश के अधिकाश पत्रकारो ने जमानतें दाखिल कर दी।

अब गाधीजी ने जनता को गावो में ताडी के सारे पेड काट डालने का आदेश दिया। शुरुआत तो उन्होंने अपने ही हाथो से की। ४ मई को सूरत में स्त्रियो की सभा में वह बोले—"भविष्य में तुम्हें तकली के बिना सभाओ मे न आना चाहिए। तकली पर तुम बारीक-से-बारीक सूत कात सकती हो। विदेशी कपडा पहले-पहल सूरत के बन्दर पर उतरा था। सूरत की बहनो को ही इसका प्रायश्चित्त करना है।" यही पर उन्होने जातीय पचायतो मे अपनी मदिरा-त्याग की प्रतिज्ञा पालन करने का अनुरोध किया। किन्तु नवसारी में सरकारी कर्मचारियो के सामाजिक बहिष्कार के विरुद्ध उन्हें जनता को चेतावनी देनी पडी। खेडा जिला गुजरात का रणागण बन गया था। गाधीजी ने 'नवजीवन' में लिखा—

"खेडा जिला-निवासियो को सावधान होकर बहिष्कार को मर्यादा के भीतर रखना चाहिए। उदाहरणार्थ, मैंने सकेत कर दिया है कि ग्राम-कर्मचारियों का बहिष्कार उनके काम तक ही सीमित रहना चाहिए। उनकी आज्ञा न मानी जाय, परन्तु उनका खाना-पीना बन्द न होना चाहिए। उन्हें घरो मे नही निकालना चाहिए। यदि हममे इतना न हो सके तो बहिष्कार छोड देना चाहिए।"

धारासना पर धावा

इस समय गाधीजी ने वाइसराय साहब के लिए अपना दूसरा पत्र तैयार और सूरत जिले के धारासना और छरसाडा के नमक के कारखानो पर धावा का इरादा जाहिर किया। उन्होने वाइसराय को लिखा —

"ईश्वर ने चाहा तो धारासना पहुँचकर नमक के कारखाने पर अधिकार का मेरा इरादा है। मेरे साथी भी मेरे साथ रवाना होगे। जनता को यह बताया ग कि धारासना व्यक्तिगत सम्पत्ति है। यह महज धोखाधडी है। धारासना पर सरका उतना ही वास्तविक नियत्रण है जितना वाइसराय साहब की कोठी पर है। अधिका की स्वीकृति के बिना चुटकीभर नमक भी कोई वहा से नही ले जा सकता।

"इस धावे को—रोकने के तीन उपाय है—

(१) नमक-कर उठा देना।

(२) मुझे और मेरे साथियो को गिरफ्तार कर लेना। परन्तु जैसी आशा है, यदि एक के बाद दूसरे गिरफ्तार होने के लिए आते रहेंगे तो यह उपाय का न होगा।

(३) खालिस गुण्डापन। परन्तु एक का सिर फूटने पर दूसरा सिर फुड को तैयार रहेगा तो यह वार भी खाली जायगा।

"यह निश्चय बिना हिचक के नही कर लिया गया। मुझे आशा थी सत्याग्रहियो के साथ सरकार सभ्य तरीके से लडेगी। यदि उनपर साधारण कानून प्रयोग करके सरकार सन्तोष कर लेती तो मैं कही क्या सकता था? इनके बज जहा प्रसिद्ध नेताओ के साथ सरकार ने थोडा-बहुत जाब्ता बरता भी है, वहा साधा सैनिको पर पाशविक ही नही निर्लज्ज प्रहार भी किये गये है। ये घटनायें इक्की-दुक होती तो उपेक्षा भी कर ली जाती। परन्तु मेरे पास बगाल, बिहार, उत्क संयुक्तप्रान्त, दिल्ली और बम्बई से जो संवाद पहुँचे हैं उनसे गुजरात के अनुभव समर्थन होता है। गुजरात-सम्बन्धी सामग्री तो मेरे पास ढेरो है। करांची, पेशा और मदरास के गोली-काण्ड भी अकारण एव अनावश्यक प्रतीत होते है। हड्डि चूर-चूर करके और अण्डकोष दबा-दबाकर स्वयंसेवको से वह नमक छीनने का प्रय किया गया है जो सरकार के लिए निकम्मा था। हा, स्वयंसेवको के लिए अलबत्ते बेश-कीमती था। कहा जाता है कि मथुरा में नायब मजिस्ट्रेट ने १० वर्ष के बाल हाथ में से राष्ट्रीय झण्डा छीन लिया। यह कार्य कानून के विरुद्ध था परन्तु जनता ने झण्डा वापस मागा तो उसे निर्दय प्रहार करके खदेड दिया गया। अभियो

स्वय अपना अपराध समझते थे तभी तो अन्त में झण्डा वापस दे दिया गया। बगाल में नमक के सम्बन्ध में मुकदमे और प्रहार तो कम ही हुए दीखते हैं, परन्तु स्वयसेवको से झण्डा छीनने के काम में अकल्पनीय निर्दयता का परिचय दिया गया बताते है। समाचार है कि चावल के खेत जला दिये गये और खाद्य-पदार्थ जबरदस्ती लूट लिये गये। कर्मचारियो के हाथ शाक-भाजी न बेचने के अपराध पर गुजरात मे एक सब्जी की मण्डी ही नष्ट कर दी गई। ये कृत्य जन-समूहो की आखो के सामने हुए हैं। काग्रेस की आज्ञा न होती तो क्या ये लोग बदला लिये बिना छोडते ? कृपया इन वृत्तान्तो पर विश्वास कीजिए। ये मुझे उन लोगो से मिले है जिन्होने सत्य का व्रत ले रक्खा है बारडोली की भाति बडे-बडे कर्मचारियो-द्वारा किया गया प्रतिवाद भी झूठा सिद्ध हुआ है। मुझे खेद है, इन दिनो भी कर्मचारी झूटी बातें प्रकाशित करने से बाज नही रहे। गुजरात के कलक्टरो के दफ्तर से जो सरकारी विज्ञप्तिया निकली हैं उनके कुछ नमूने ये है —

१—'वयस्क लोग प्रतिवर्ष २॥ सेर नमक खाते हैं इसलिए प्रति व्यक्ति तीन आना कर देते है। सरकार एकाधिकार हटा ल तो लोगो को अधिक मूल्य देना पडेगा और एकाधिकार के हटाने से सरकार को जो हानि होगी वह भी पूरी करनी पडेगी। समुद्र-तट से बटोरा हुआ नमक खाने के काम का नही होता, इसीलिए सरकार उसे नष्ट कर देती है।'

२—'गाधीजी कहते हैं कि इस देश में हाथ-कताई का उद्योग सरकार ने नष्ट कर दिया। परन्तु सब लोग जानते हैं कि यह बात सच नही है। देश भर में कोई गाव ऐसा नही है जहा आज भी रुई हाथ से न काती जाती हो। इतना ही नही, प्रत्येक प्रान्त में सरकार कातनेवालो को बढिया तरीके बताती है और कम कीमत पर अच्छे औजार देकर उनकी सहायता करती है।'

३—'सरकार ने जितना ऋण लिया है उसके पाच में से चार रुपये प्रजा की भलाई के कामो में लगाये हैं।'

"मैंने ये तीन तरह के बयान तीन अलग-अलग हस्त-पत्रको में से लिये है। मै यह कहने का साहस करता हूँ कि इनमें से एक-एक बयान झूठे साबित किये जा सकते हैं। प्रत्येक वयस्क उपयुक्त मात्रा से कम-से-कम तिगुना नमक काम में लेता है और इसलिए निश्चय ही ९ आने प्रति वर्ष तो कर के देता ही है। और यह कर लिया भी जाता है स्त्री, पुरुष, बच्चे, पालतू पशु, छोटे-बडे और अच्छे-बीमार सबसे।

"यह कहना एक दुष्टतापूर्ण असत्य है कि हर गाव में एक-एक चर्खा चलता है और सरकार चर्खा-आन्दोलन को किसी भी रूप में प्रोत्साहन देती है। सरकारी ऋण के पाच में से चार हिस्से सार्वजनिक हित के लिए खर्च होने की झूठी बात का उत्तर तो अर्थशास्त्री लोग अधिक अच्छा दे सकते है। परन्तु ये नमूने तो उन बातो के है जो सरकार के सम्बन्ध मे जनता के सामने रोज आती है। उस दिन एक वीर गुजराती कवि को झूठी सरकारी शहादत पर सजा दे दी गई। कवि बेचारा कहता ही रहा कि मै तो उस समय दूसरे स्थान पर सुख की नीद ले रहा था।

"अब सरकार की निष्क्रियता की बानगी देखिए। शराब के व्यापारियो ने धरना देनेवालो को पीटा और नियम-विरुद्ध शराब बेची। सरकारी आदमियो तक ने कबूल किया कि स्वयसेवक शान्त थे। फिर भी कर्मचारियो ने न तो मारपीट पर ध्यान दिया और न शराब की अनियमित बिक्री पर। मार-पीट के बारे में तो सबको मालूम होते हुए भी कर्मचारी यह बहाना कर सकते है कि किसीने शिकायत नही की।

"और अब देश की छाती पर एक नया आर्डिनेन्स और लाद दिया है। इसकी कोई मिसाल नही मिलती। भगतसिंह वगैरा के मुकदमे में कानून के द्वारा देर होती, उससे बचने के लिए साधारण जाब्ते को ताक में रखने का आपको अच्छा अवसर मिल गया। इन कृत्यो को फौजी-शासन कहा जाय तो आश्चर्य क्यो होना चाहिए? और अभी तो आन्दोलन का पाचवा सप्ताह ही है।

"ऐसी दशा में, कुछ समय से भय-प्रदर्शन का बोलबाला शुरू हुआ है। उसका आतक देश पर छा जाय उससे पहले ही अधिक साहस का काम, अधिक कठोर कार्रवाई कर डालना चाहता हूँ, जिससे आपका क्रोध जल्दी ही भडक उठे और वह अधिक साफ रास्ते पर चल निकले। मैंने जो बातें बयान की हैं उनका सम्भव है आपको इल्म न हो। शायद आपको उनपर अब भी भरोसा न हो। मेरा धर्म तो आपका ध्यान दिलाना मात्र है।

"कुछ भी हो, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मै आपसे सत्ता के लाल पजे को पूरी तरह आजमा लेने का अनुरोध करूँ। ऐसा न करना मेरे लिए कायरता की बात होगी। जो लोग आज कष्ट-सहन कर रहे है, जिनकी मिल्कियत बरबाद हो रही है, उन्हें यह कदापि न अनुभव होना चाहिए कि मैंने उनकी सहायता से इस लडाई को छेड तो दिया पर कार्यक्रम को उस हद तक पूरा नही किया जिस हद तक वह किया

जा सकता था। क्योंकि एक तो इस लडाई की बदौलत सरकार का असली रूप प्रकट हुआ है और दूसरे इसके छेडने में मेरा ही मुख्य हाथ रहा है।

"सत्याग्रह-शास्त्र के अनुसार सत्ताधारी जितना अधिक दमन और कानून-भग करेंगे, सत्याग्रही उतने ही अधिक कष्टो को आमन्त्रण देंगे। स्वेच्छा-पूर्वक सहन किया जाय तो जितना अधिक कष्ट-सहन उतनी ही निश्चित सफलता।

"मै जानता हूँ कि मेरे प्रतिपादित उपायो में कितनी विपत्तिया निहित हैं। परन्तु अब देश मुझे समझने में भूल करनेवाला नही दीखता। मै जो सोचता और मानता हूँ वही करता हूँ। मैं भारत में गत १५ वर्ष से और भारत से बाहर और भी २० वर्ष पहले से कहता आया हूँ कि हिंसा पर शुद्ध अहिंसा की ही विजय हो सकती है। मैंने यह भी कहा है कि हिंसा के एक-एक कार्य शब्द और विचार से भी अहिंसात्मक कार्य की प्रगति में बाधा पडती है। बार-बार ऐसी चेतावनिया देने पर भी लोग हिंसा कर बैठें तो मै क्या करूँ? मेरे शिर पर उस दशा में उतना ही दायित्व होगा जितना प्रत्येक मनुष्य का दूसरे के कार्यों के लिए अनिवार्य रूप से हुआ करता है। इसके अलावा और मेरी जिम्मेवारी नहीं हो सकती। दायित्व की बात छोड भी दी जाय तो भी मै अपना काम किसी भी कारणवश मुल्तवी नही रख सकता। अन्यथा अहिंसा मे वह शक्ति ही कहा रहे, जो ससार के सन्तो ने वर्णन की है और जो मेरे दीर्घकालीन अनुभव ने सिद्ध की है?

"हा, मै आगे की कारंवाई सहर्ष स्थगित रख सकता हूँ। आप नमक-कर उठा दीजिए। इसकी निन्दा आपके कई विख्यात देश-वासियो ने बुरी तरह की है, और अब तो आपने देख लिया होगा कि सविनय-अवज्ञा के रूप में इस देश ने भी सर्वत्र इसपर रोप प्रकट कर दिया है। आप सविनय-अवज्ञा को भरपेट कोसिए। परन्तु क्या आप कानून-भग से हिंसामय विद्रोह को अच्छा समझते हैं? आपने कहा है कि सविनय-अवज्ञा का परिणाम हिंसा हुए बिना नही रहेगा। ऐसा हुआ तो इतिहास यही निर्णय देगा कि ब्रिटिश-सरकार अहिंसा को नही समझी और इसलिए उसकी सुनवाई भी नही की, फल यह हुआ कि मनुष्य-स्वभाव सरकार की प्रिय और परिचित वस्तु हिंसा पर उतर आने को विवश हुआ। परन्तु मुझे आशा है कि सरकारी उत्तेजना के बावजूद परमात्मा भारत-वासियो को हिंसा के प्रलोभन से दूर रहने की बुद्धिमत्ता और शक्ति को प्रदान करेगा।

"अत आप नमक-कर उठा न सकें और नमक बनाने की मनाई दूर न करा

सकें तो मुझे अनिच्छा होते हुए भी इस पत्र के आरम्भ में वर्णित कार्रवाई करनी पड़ेगी।"

गांधीजी की गिरफ्तारी

५ तारीख की रात को १ बजकर १० मिनट पर गाधीजी को चुपके से गिरफ्तार करके मोटर-लारी में विठा दिया गया। साथ में पुलिसवाले थे। बम्बई के पास बोरीविली तक रेलगाडी में और वहा से यरवडा-जेल तक मोटर में पहुँचा दिया गया। 'लन्दन टैलीग्राफ' नामक अखवार के सवाददाता अशमीद वार्टीलेट ने इस प्रसग पर लिखा था :—

"जव हम गाडी की प्रतीक्षा कर रहे थे उस समय हमें वातावरण में नाटक का-सा चमत्कार प्रतीत होता था। हमें लगा, इस दृश्य के प्रत्यक्षद्रष्टा हमी है। कौन जाने यह घटना आगे चलकर ऐतिहासिक वन जाय? एक ईश्वर-दूत की गिरफ्तारी कोई छोटी बात है? सच्चे-झूठे की भगवान जाने, परन्तु इसमें कोई शक नही कि गाधी आज करोडो भारतीयों की दृष्टि में महात्मा और दिव्य-पुरुष है। कौन कह सकता है कि सौ वर्ष वाद तीस करोड भारतीय उसे अवतार मानकर नही पूजेंगे? इन विचारो को हम रोक न सके और इस ईश्वर-दूत को हिरासत में लेने के लिए उषा के प्रकाश में रेल की पटरी पर खडा रहना हमें अच्छा नही लगा।"

हा, गिरफ्तार होने से पहले गाधीजी ने दाण्डी में अपना अन्तिम सन्देश लिखवा दिया था। वह यह था —

" ••सम्प्रति भारत का स्वाभिमान और सर्वस्व एक मुट्ठी नमक में निहित है। मुट्ठी टूट भले ही जाय, पर खुलनी हरगिज न चाहिए।

"मेरी गिरफ्तारी के वाद जनता या मेरे साथियो को घवराना न चाहिए। इस आन्दोलन का सचालक मै नही हूँ, परमात्मा है। वह सवके हृदय में निवास करता है। हममें श्रद्धा होगी तो वह अवश्य रास्ता दिखावेगा। हमारा मार्ग निश्चित है। गाव-गाव को नमक वीनने या वनाने को निकल पडना चाहिए। स्त्रियो को शराब अफीम और विदेशी कपडे की दूकानो पर धरना देना चाहिए। घर-घर में आवाल-वृद्ध सवको तकली पर कातना शुरू कर देना चाहिए और रोज सूत के ढेर लग जाने चाहिएँ। विदेशी वस्त्रो की होलिया की जायें। हिन्दू किसीको अछूत न मानें। हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई सव हृदय से गले मिलें। वडी जातिया छोटी जातियो को देने के वाद वचे हुए भाग से सन्तोष करें। विद्यार्थी सरकारी मदरसे छोड दें

और सरकारी नौकर उन पटेलों और तलाटियों की भांति नौकरियां छोड़कर जनता की सेवा में जुट जायें। इस प्रकार आसानी से हमें पूर्ण स्वराज्य मिल जायगा।"

गांधीजी की गिरफ्तारी पर देश के इस छोर से उस छोर तक सहानुभूति की लहर अपने-आप फैल गई। गिरफ्तारी का समाचार पहुँचना था कि बम्बई, कलकत्ता और अनेक स्थानों पर सम्पूर्ण और स्वेच्छापूर्वक हड़ताल हो गई। गिरफ्तारी के दूसरे दिन की हड़ताल और भी व्यापक थी। बम्बई में विराट् जुलूस निकला। शाम को इतनी विशाल सभा हुई कि कई मंचों पर से भाषण देने पड़े। ८० में से ४० के लगभग मिलें बन्द रहीं, कारण ५० हजार मजदूर विरोध-स्वरूप निकल आये थे। जी० आई० पी० और बी० बी० सी० आई० के कारखानों के मजदूर भी काम छोड़कर हड़ताल में शरीक हो गये थे। गिरफ्तारी पर अपनी नाराजी जाहिर करने के लिए कपड़े के व्यापारियों ने ६ दिन की हड़ताल का निश्चय किया। गांधीजी पूना में नजरबन्द किये गये थे। वहां भी पूरी हड़ताल हुई। समय-समय पर सरकारी पदों और पदवियों के छोड़ने की घोषणा होने लगी। देश ने प्रायः सर्वत्र महात्माजी के उपदेशों का आश्चर्यजनक रूप में पालन किया। एक-दो स्थानों पर झगड़ा भी हो गया। शोलापुर में ६ पुलिस-चौकियां जला दी गईं, जिसके फल-स्वरूप पुलिस ने गोली चलाई, जिसमें २५ व्यक्ति मरे और लगभग १००० घायल हुए। कलकत्ते में शहर की हड़तालें तो शान्तिपूर्ण रहीं, परन्तु हवड़ा और पचतल्ला में भीड़ को तितर-बितर करने के लिए पुलिस ने गोली चला दी। १४४ वीं धारा के अनुसार ५ से अधिक मनुष्यों के एकत्र होने की मनाही कर दी गई।

परन्तु गांधीजी की गिरफ्तारी का असर तो विश्व-व्यापी हुआ। पनामा के भारतीय व्यापारियों ने २४ घंटे की हड़ताल मनाई। सुमात्रा के पूर्वीय समुद्र-तटवासी हिन्दुस्तानियों ने भी ऐसा ही किया और वाइसराय साहब एवं कांग्रेस को तार भेजकर गांधीजी की गिरफ्तारी पर खेद प्रकट किया। फ्रांस के पत्र गांधीजी और उनकी बातों से भरे थे। बहिष्कार आन्दोलन का परिणाम जर्मनी पर भी हुआ। वहां के कपड़े के व्यापारियों को उनके भारतीय आढ़तियों ने माल भेजने की मनाही करदी। रूटर ने यह समाचार भेजा कि सैक्सनी की सस्ती छींट के कारखानों को खास तौर पर हानि हो रही है। नैरोबी के भारतीयों ने भी हड़ताल रक्खी।

इसी बीच में अमरीका के भिन्न-भिन्न दलों के १०२ प्रभावशाली पादरियों ने तार-द्वारा रैम्जे मैकडानल्ड साहब की सेवा में आवेदन-पत्र भेजा और उनसे अनुरोध किया कि गांधीजी और भारतवासियों के साथ शान्तिपूर्ण समझौता किया

जाय। इसपर हस्ताक्षर न्यूयॉर्क के डॉक्टर जॉन हेनीज होम्स ने करवाये थे। सन्देश में प्रधानमंत्री से अपील की गई थी कि भारत, ब्रिटेन और जगत का हित इसी में है कि इस संघर्ष को बचाया जाय और समस्त मानव-जाति की भयंकर विपत्ति से रक्षा की जाय।

कार्य-समिति के प्रस्ताव

महात्मा जी के स्थान पर श्री अब्बास तैयबजी नमक-सत्याग्रह के नायक हुए थे। वह भी १२ अप्रैल को गिरफ्तार कर लिये गये। गिरफ्तारियों, लाठी-प्रहारों और दमन का दौर-दौरा जारी रहा। एक के बाद दूसरा स्वयंसेवक-दल नमक के गोदामों पर धावा करता रहा। पुलिस उन्हें लाठियों से मारती रही। बहुतों को सख्त चोटें आईं।

गांधीजी की गिरफ्तारी के बाद कार्य-समिति की बैठक प्रयाग में हुई और उसने कानून-भंग का क्षेत्र और भी विस्तृत कर दिया। नीचे लिखे प्रस्ताव स्वीकृत हुए ––

"१ कराडी तक महात्मा गांधी के साथ जानेवाले स्वयंसेवकों को कार्य-समिति बधाई देती है और आशा करती है कि नये-नये दल धावे करते रहेंगे। समिति निश्चय करती है कि अबके नमक के धावों के लिए धारासना अखिल-भारतीय केन्द्र माना जाय।

"२. गांधीजी ने इस महान् आन्दोलन का संचालन करके देश को जो मार्ग दिखाया है उसकी कार्य-समिति प्रशंसा करती है, सविनय कानून-भंग में अपना शाश्वत विश्वास प्रकट करती है और महात्माजी के कारावास-काल में लड़ाई को दुगुने उत्साह से चलाने का निश्चय करती है।

"३ समिति की राय में अब समय आ गया है कि समस्त राष्ट्र ध्येय की प्राप्ति के लिए प्राणों की बाजी लगा कर कोशिश करे। अत समिति विद्यार्थियों, वकीलों, व्यवसायियों, मजदूरों, किसानों, सरकारी नौकरों और समस्त भारतीयों को आदेश देती है कि वे इस स्वातंत्र्य-संग्राम की सफलता के लिए अधिक-से-अधिक कष्ट उठाकर भी सहायता दें।

"४ समिति की राय में देश का हित इसीमें है कि विदेशी वस्त्र-बहिष्कार समस्त देश में अविलम्ब पूरा हो जाय और इसके लिए मौजूदा माल की बिक्री रोकने, पहले के दिये हुए आर्डर रद्द कराने और नये आर्डर न भिजवाने के लिए [illegible]

किये जायें। समिति समस्त काग्रेस-कमिटियो को आदेश देती है कि वे विदेशी वस्त्र-बहिष्कार का तीव्र प्रचार करे और विदेशी कपडे की दुकानो पर पिकेटिंग बिठा दें।

"५ समिति पण्डित मदनमोहन मालवीय-द्वारा किये गये बहिष्कार-आन्दोलन की सहायता के प्रयत्नो की प्रशसा करती है, किन्तु उसे खेद है कि वह ऐसा कोई समझौता मजूर नही कर सकती जिससे मौजूदा माल बेचने दिया जा सके और समय-विशेष के लिए विदेशी कपडा न मगाने के व्यापारियो के वचन से सन्तोष किया जा सके। समिति सभी काग्रेस-समितियो को ऐसे किसी समझौते में शामिल होने से मना करती है।

"६ समिति निश्चय करती है कि बढती हुई माग पूरी करने के लिए हाथ-कते हाथ-बुने कपडे की पैदावार बढाई जाय। रुपये से बेचने के साथ-साथ सूत लेकर खद्दर देने वाली सस्थायें खडी की जायें और सामान्यत हाथ-कताई को प्रोत्साहन दिया जाय। समिति प्रत्येक देशवासी से अपील करती है कि वह रोज थोडी-बहुत देर अवश्य काते।

"७ समिति की राय में समय आ पहुँचा है कि कुछ प्रान्तो मे खास-खास महसूल देना बन्द करके करबन्दी का आन्दोलन भी शुरू किया जाय और गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, आन्ध्र, तामिल नाड और पजाब जैसे रैयतवारी प्रान्तो में जमीन का लगान रोका जाय और बगाल, बिहार और उडीसा आदि में चौकीदारी-कर न दिया जाय। समिति इन प्रान्तो को आज्ञा देती है कि वे प्रान्तीय समितियो-द्वारा चुने हुए क्षेत्रो में जमीन का लगान और चौकीदारी-कर न देने का आन्दोलन सगठित करें।

"८ प्रान्तीय समितियो को आदेश दिया जाता है कि वे गैर-कानूनी नमक बनाने का काम जारी रक्खे और उसका विस्तार करें और जहा सरकार गिरफ्तारियो से या अन्य प्रकार से बाधा दे वहा नमक-कानून तोडने का काम और भी जोश के साथ किया जाय। समिति निश्चय करती है कि नमक-कानून के प्रति देश की नापसन्दगी प्रदर्शित करने के लिए काग्रेस-सस्थायें हर रविवार को इस कानून के सामूहिक उल्लघन का आयोजन करें।

"९ स्थानापन्न अध्यक्ष महोदय ने मध्य-प्रान्त में जगलात कानून तोडने की जो अनुमति दी है, समिति उसका समर्थन करती है और निश्चय करती है कि अन्य प्रान्तो में भी जहा ऐसा कानून हो वहा प्रान्तीय समितियो की स्वीकृति से उसका भग किया जा सकता है।

"१० समिति स्थानापन्न अध्यक्ष महोदय को अधिकार देती है कि स्वदेशी मिलो के कपडे की कीमत में अनुचित वृद्धि और नकली खद्दर की बनवाई को रोकने एव विदेशी वस्त्र बहिष्कार की पूर्त्ति के लिए वे भारतीय मिल-मालिको से समझौते की बातचीत करें।

"११ समिति जनता से अनुरोध करती है कि अंग्रेजी माल का बहिष्कार जल्दी-से-जल्दी पूरा होने के लिए वह प्रबल प्रयत्न करे।

"१२ समिति जनता से प्रबल अनुरोध करती है कि अंग्रेजी बैंको, बीमा-कम्पिनियो, जहाजो और ऐसी अन्य सस्थाओ का भी बहिष्कार करे।

"१३ समिति एकबार पुन सम्पूर्ण मदिरा-निषेध के लिए घोर प्रचार-कार्य की आवश्यकता पर जोर देती है और शराब और ताडी की दुकानो पर पिकेटिंग करने का प्रान्तीय समितियो से अनुरोध करती है।

"१४ समिति को कही-कही भीड-द्वारा हिंसा हो जाने पर दुःख है और वह इस हिंसा की अत्यत कठोर निन्दा करती है। समिति अहिंसा के पूर्ण पालन की आवश्यकता पर आग्रह रखने की इच्छा प्रकट करती है।

"१५ समिति प्रेस-आर्डिनेन्स की तीव्र निन्दा करती है और जिन अखबारो ने उसके आगे सिर नही झुकाया उसकी प्रशसा करती है। जिन भारतीय पत्रो ने अभीतक प्रकाशन वन्द नही किया है या वन्द करके फिर निकलने लगे है उनके अब वन्द किये जाने का अनुरोध करती है। जो भारतीय अथवा गोरे पत्र अब भी प्रकाशन वन्द न करे उनका बहिष्कार करने के लिए यह समिति जनता से अपील करती है।"

श्रीमती सरोजिनीदेवी कार्य-समिति की बैठक में प्रयाग गई हुई थीं। श्री तैयवजी की गिरफ्तारी के समाचार सुनकर वह जल्दी-से धारासना लौट आई और धावे का सचालन करने का गाधीजी को दिया हुआ अपना वचन पूरा किया। वह और उनका स्वयसेवक-दल जाब्ते से गिरफ्तार तो १६ तारीख को कर लिये गये, किन्तु बाद में पुलिस के घेरे से निकालकर उन्हें रिहा कर दिया गया। उसके बाद स्वयसेवको के दल नमक के गोदामो पर टूट पडे। उन्हे मार-मार कर हटा दिया गया। उसी दिन शाम को पुलिस ने २२० स्वयसेवको को गैर-कानूनी सस्था के सदस्य करार देकर गिरफ्तार कर लिया और धारासना की अस्थायी जेल में नजरवन्द कर दिया।

१९ ता० को प्रात काल ही वडाला के नमक के कारखाने पर स्वयसेवक बड़ी

सख्या में एकत्र हो गये। पुलिस की तत्परता के कारण धावा न हो सका। उस दिन पुलिस तमचे लेकर आई थी। उसने ४०० सत्याग्रहियो को पकड लिया।

× × × ×

वहिष्कार-आन्दोलन का क्या असर हो रहा था, इसपर 'फ्री-प्रेस' के सवाददाता ने यह लिखा था —

"आक्रमण का जोर कपडे पर ही विशेष होने के कारण इस आन्दोलन की सफलता भी इसी दिशा में सबसे अधिक नजर आती है। परन्तु यह भय इतना नही है कि अन्त में भारतीय बाजार हाथ से जाता रहेगा। बल्कि भय इस बात का अधिक है कि मौजूदा सौदे पूरे नही होंगे या रद कर दिये जायँगे। मौजूदा सौदे रद करने की वृत्ति बढती जाती है। 'डेली मेल' का मैंचेस्टर-स्थित सवाददाता लिखता है, 'भारतवर्ष के ताजा समाचारो से ऐसा लगता है कि लकाशायर का भारतीय व्यापार बिलकुल बन्द हो जायगा। पहले ही कताई-बुनाई के कारखाने अनिश्चित काल के लिये बन्द होते जा रहे हैं और हजारो मजदूर बेकारो की सख्या बढा रहे हैं।'

नमक के धावे और भी होते रहे। उनका वर्णन 'गाधी दी मैन एण्ड हिज मिशन' (अर्थात् 'गाधी उसका व्यक्तित्व और जीवन-ध्येय') नामक पुस्तक में १३३ वें पृष्ठ से आगे यो किया गया है —

"इस बीच में कार्य-समिति की लगातार कई बैठको ने कार्यक्रम को जारी रखने का निश्चय किया। धावे भी जारी रहेंगे। २१ मई को धारासना पर सामूहिक धावा हुआ। इसमें सारे गुजरात से आये हुए २५०० स्वयसेवको ने भाग लिया। इमाम साहब उनके नायक बने। यह ६२ वर्ष के वृद्ध पुरुष गाधीजी के दक्षिण अफ्रीका से साथी थे। धावा तडके ही शुरू हो गया। जिधर से स्वयसेवक नमक के ढेरो पर हमला करते उधर ही से पुलिस उन्हें लाठिया मार-मारकर खदेड देती।

"हजारो मनुष्यो ने यह दृश्य देखा। दो घण्टे तक द्वन्द-युद्ध चलता रहा। फिर श्री इमाम साहब, प्यारेलाल और मणिलाल गाधी आदि नेता पकड लिये गये और बाद में श्रीमती सरोजिनीदेवी भी गिरफ्तार हो गईं। उस दिन कुल मिलाकर २९० स्वयसेवक घायल हुए। इन चोटो से श्री भाईलालभाई डायाभाई नामक स्वयसेवक तो चल ही बसा। इसके बाद पुलिस ने सेना की सहायता से धारासना और डँटडी के सब रास्ते बन्द करके इनका सम्बन्ध बाहर से काट दिया। डँटडी से सब स्वयसेवको को पुलिस न जाने कहा ले गई और फिर उन्हें छोड दिया।"

३ जून को डँटडी की छावनी से २०० स्वयसेवको के दो दल धारासना के

नमक-भण्डार पर आक्रमण करने निकले। दोनो को पुलिस ने रास्ते में ही रोक लिया और जब भीड वर्जित सीमा में घुसी तो उसपर लाठिया चला दी। घायलो को छावनी के अस्पताल में पहुंचा दिया गया।

वड़ाला के धावे

वडाला के नमक के कारखाने पर कई धावे हुए। २२ ता० को १८८ स्वयसेवक पकडे गये और वर्ली भेज दिये गये। २५ ता० को १०० स्वयसेवको के साथ २००० दर्शको की भीड भी गई। पुलिस ने लाठी-प्रहार करके १७ को घायल किया और ११५ को गिरफ्तार। धावा दो घण्टे तक रहा। तीसरे पहर फिर हुआ। इसमें १८ घायल हुए। प्रसिद्ध उडाके श्री० कवाडी भी इनमे शामिल थे। २६ ता० को ६५ स्वयसेवक मैदान में गये और ४३ गिरफ्तार हुए। बाकी भीड के साथ नमक लेकर भाग गये। उस समय एक सरकारी विज्ञप्ति में कहा गया कि अबतक जो गडबडें हुई हैं वे अधिकतर दर्शको ने की है और इनमे सैनिको-का-सा अनुशासन नही है, अत जनता को धावो के समय वडाला से दूर रहना चाहिए। किन्तु सबसे चमत्कारी धावा तो १ जून को हुआ। युद्ध-समिति उसके लिए बडे परिश्रम से तैयारिया कर रही थी। उस दिन सुबह १५००० सैनिको और असैनिको ने वडाला के विशाल सामूहिक धावे में भाग लिया।

पोर्ट-ट्रस्ट के रेल्वे चौराहे पर एक के बाद दूसरा दल पहुँचता और वहीं पुलिस उन्हें और भीड को रोक लेती। थोडी देर मे धावा करनेवाले स्त्री और बच्चे तक पुलिस का घेरा तोड कर कीचड पार करके कढाइयो पर पहुँच जाते। लगभग १५० कांग्रेसी सैनिको के मामूली चोटें आई। पुलिस ने धावा करनेवालो को खदेड दिया। यह सब खुद होम-मेम्बर साहब की देख-रेख मे हुआ।

३ जून को वर्ली की अस्थायी जेल मे बडा उपद्रव हो गया। स्थिति को सम्हालने के लिए पुलिस को दो बार प्रहार करने पडे और सेना बुलानी पडी। उस दिन वडाला के ४ हजार अभियुक्तो से पुलिस की भिडन्त हो गई। लगभग ९० घायल हुए। २५ को सख्त चोटे आई। किन्तु जिस प्रकार धावा करनेवालो के साथ पुलिस ने बरताव किया उस पर जनता मे बडा रोष फैला। दर्शक लोग उस निर्दय दृश्य को देखकर चकित रह गये। बम्बई की अदालत सफीफा के भूतपूर्व न्यायाधीश श्री हुसेन, श्री के० नटराजन और भारत-सेवक-समिति के अध्यक्ष श्री देवधर धारासना का धावा देखने खुद गये थे। उन्होने अपने वक्तव्य में कहा —

"हमने अपनी आखो देखा कि सत्याग्रहियो को नमक की सीमा के बाहर भगा देने के बाद भी यूरोपियन सवार हाथो में लाठिया लिये हुए अपने घोडे सरपट दौडाते और जहा सत्याग्रही धावे के लिए पहुँच गये थे वहा से गाव तक लोगो को मारते रहे। गाव के रास्तो पर भी खूब तेजी से घोडे दौडाकर स्त्री-पुरुष और बच्चों को तितर-बितर किया। ग्रामवासी दौड-दौड कर गलियो और घरो में छिप गये। सयोगवश कोई न भाग सका तो उसपर लाठिया पडी।"

'न्यू फ्रीमेन' के सवाददाता वेब मिलर साहब ने धारासना के इस घृणित दृश्य पर इस प्रकार प्रकाश डाला —

"मै २२ देशो मे १८ वर्ष से सवाददाता का काम कर रहा हूँ। इस अर्से में मैने असख्य उपद्रव, मारपीट और विद्रोह देखे है, किन्तु धारासना-के-से पीडाजनक दृश्य मेरे देखने में कभी नही आये। कभी-कभी तो ये इतने दु खद हो जाते थे कि क्षणभर के लिए आख फेर लेनी पडती थी। स्वयसेवको का अनुशासन अद्भुत चीज थी। मालूम होता था, इन लोगो ने गाधीजी के अहिंसा-धर्म को घोलकर पी लिया है।"

स्लोकोम्ब साहब की गवाही

लन्दन के 'डेली हेरल्ड-पत्र के प्रतिनिधि जार्ज स्लोकोम्ब साहब भी नमक के कुछ धावो के प्रत्यक्षदर्शी थे। वह २० मई को गाधीजी से यरवडा-जेल में मिले। उन्होंने अपने पत्र को जो खरीता भेजा वह इतना असाधारण था कि कामन-सभा की नीद हराम हो गई और अनुदार-दल के पत्रो की चिढ और क्रोध का पार न रहा। इस खरीते में स्लोकोम्ब साहब ने बतलाया कि अब भी समझौते की सम्भावना है और यदि नीचे लिखी शर्तें मान ली जायें तो गाधीजी कानून-भग स्थगित करने और गोलमेज-परिषद् के साथ सहयोग करने की काग्रेस से सिफारिश करने को तैयार हैं —

(१) गोलमेज-परिषद् को ऐसा विधान बनाने का अधिकार भी दिया जाय जिससे भारतवर्ष को स्वाधीनता का सार मिल जाय।

(२) नमक-कर उठा देने और शराब और विदेशी वस्त्र की मनाई करने के सम्बन्ध में गाधीजी को सन्तोष दिलाया जाय।

(३) कानून-भग बन्द होने के साथ-साथ राजनैतिक कैदी छोड दिये जायें।

(४) वाइसराय साहब के नाम गाधीजी ने अपने पत्र में जो सात बातें और लिखी थी उनकी चर्चा बाद पर छोड़ दी जाय।

स्लोकोम्ब साहब ने सरकार से पूछा कि वह गांधीजी से सम्मानपूर्वक संधि करने को तैयार है या नहीं ? उन्होने कहा, "समझौते की बात चीत अब भी हो सकती है। गांधीजी से दो बार मिलने के बाद मुझे यकीन हो गया है कि मेल करने से ही मेल होगा और एक पक्ष की हिंसा दूसरे को झुकने पर मजबूर नही कर सकती। गांधीजी जेल मे क्या बन्द है भारत की आत्मा बन्द है, यह स्पष्ट स्वीकार कर लेने से अब भी असीम हानि टाली जा सकती है।"

दमन का दौर-दौरा

परन्तु एक-एक बात को कहा तक गिनावें ? घटनाओ का क्या पार था ? लॉर्ड अर्विन ने अपनी सत्ता का पेच कसना शुरू कर दिया। आरम्भ में तो उन्होने गांधीजी को गिरफ्तार नही करने दिया। परन्तु गांधीजी की कूच का रोग तो सारे राष्ट्र को लग गया। सर्वत्र कूच के नक्कारे बजने लगे। उनकी पुकार पर हजारो महिलायें मैदान में निकल आईं। उनके कारण सरकार बडे चक्कर में पड गई। उन्होने आते ही शराब और विदेशी कपडे की दुकानो पर धरना देने का काम अपने हाथ में ले लिया और जबतक शौर्य पर स्वेच्छाचार ने विजय प्राप्त न की तबतक पुलिस भी उनके आगे कुछ न कर सकी। ऐसी स्थिति में गांधीजी को खुला छोडा जाय ? न जाने वह कहा से देश की छिपी हुई शक्ति को ढूढकर निकाल लाते। उनके हाथ में जादू की लकडी थी। उसे जरा घुमाया कि धन-जन का ढेर लग जाता था। अत उन्हे गिरफ्तार तो करना था, पर समय पाकर। कारण गांधी पर हाथ डालना सारे राष्ट्र-रूप भिड के छत्ते को छेडना था। १४ अप्रैल को जवाहरलालजी को पकड कर सजा दे दी गई। जवाहर क्या बन्दी हुआ, कांग्रेस बन्दी हो गई। सारा देश एक विशाल जेलखाना बन गया। धरना, करबन्दी और सामाजिक बहिष्कार सबकी रोक के लिए आर्डिनेन्स निकल गये। राष्ट्रीय झडे पर अनेक मुठ-भेडें हुईं। सजायें दिन-दिन कठोर होने लगी। कैद के साथ-साथ जुर्माने किये जाने लगे। लाठी-प्रहार भी आ पहुँचे। लोगो को विश्वास ही नही होता था कि लाठियो और सब शस्त्रास्त्र से सुसज्जित करके पुलिस को जो कवायद-परेड सिखाई जा रही है वह सत्याग्रहियो के सिर पर आजमाई जायगी। यह कोरी धमकी या आशका नही निकली। लाठी-प्रहार तो भयकर सत्य के रूप मे प्रगट हुआ। सभा-भग की आज्ञा तो होती थी देश के साधारण कानून के अनुसार, और उसपर अमल होता था लाठी के निर्दय प्रहारो से। नमक-कानून के साथ-साथ ताजिरात-हिन्द की धारायें मिलाकर लम्बी-से-लम्बी सजायें दी जाने

लगी। फरवरी १९३० के मध्य में एक सरकारी आज्ञा निकली। उसमें राजनैतिक कैदियों का वर्गीकरण किया गया। हा, उनमें 'राजनैतिक' शब्द सावधानी के साथ नही आने दिया गया। दिल्लगी तो यह है कि दस वर्ष पहले मे सरकार अपनी 'इडिया' नामक सालाना पुस्तक में —अलबत्ते अवतरण-चिन्ह देकर—यह शब्द बराबर प्रयोग करती आ रही थी! यह सरकारी आज्ञा परिशिष्ट ४ में दी गई है।

'ए' वर्ग तो नाममात्र को ही था। 'बी' क्लास भी बडी कजूसी से दिया जाता था। विपुल सम्पत्ति के स्वामी और ऊँचे रहन-सहन के अभ्यासी सरकार की शर्तों के अनुसार भी उच्च वर्ग के हकदार थे। पर उन्हे भी 'सी' क्लास मे डाल दिया जाता था और काम भी उन्हें जेलो मे पत्थर तोडने, घानी पेलने और पानी निकालने का दिया जाता था। सत्याग्रहियो के साथ किये गये व्यवहार ने इस सरकारी आज्ञा की शीघ्र कलई खोल दी। वह तो जनता की आखो मे धूल झोकने मात्र का प्रयत्न था। परन्तु स्वयसेवक इस व्यवहार की शिकायत करनेवाले थोडे ही थे। वे तो पतिगो की भाति आन्दोलन में पडते ही रहे। बहुतो को सरकार पकडती न थी, उनपर सिर्फ लाठी का वार होता था। सौभाग्य से कोई जेल में पहुँच जाते, तो वहा भी कई बार दूसरा लाठी-प्रहार उनको तैयार मिलता था। आन्दोलन के आरम्भकाल की बात है। एक बार कलकत्ते के सार्वजनिक उद्यान में उपस्थित लोग तो ताले में बन्द करके बुरी तरह पीटे गये। फाटको पर आड लगाकर पहरे बिठा दिये गये थे। पाशविक व्यवहार की शुरुआत तो सयुक्तप्रान्त और बगाल से हुई। किन्तु थोडे ही दिन मे दक्षिण-भारत में भी यही हाल होने लगा, आन्दोलन के उत्तरार्द्ध-काल में वहा दमन की अमानुषता का पार नही रहा।

वहा भी आरम्भ मे तो गिरफ्तारियो और भारी जुर्मानो की नीति आजमाई गई, परन्तु थोडे ही दिन बाद मारपीट आ पहुँची। बाजार मे सौदा खरीदते हुए खद्दर या गाधी-टोपी-धारी मनुष्य पीट दिये जाते थे। मलाबार की फौजी पुलिस को आन्ध्र के ब्रह्मपुर से एलोर तक कोकनडा और राजमहेन्द्री होकर सिर्फ इसलिए घुमाया गया कि रास्ते-चलते खद्दर-धारियो की मरम्मत करने का आनन्द लूटा जाय। ये करतूतें आखिर एलोर के विरोध से बन्द हुई। वहा पुलिस ने गोली चलाई, दो-तीन आदमी मरे और पाच-छ घायल हुए।

दमन के भिन्न-भिन्न रूपो का दिग्दर्शन करा सकना वस्तुत कठिन है। वह जन्मा तो था कानून-भग की नाक में नाथ डालने, किन्तु वह हो गया 'अनेक रूप-रूपाय'! इसलिए हमें १९३० और १९३१ के इतिहास की थोडी-सी प्रमुख

घटनाओं का उल्लेख करके ही सन्तोष करना पड़ेगा। बीच-बीच में समझौते के जो प्रयत्न हुए उनका जिक्र तो पीछे ही किया जायगा। बम्बई शीघ्र ही लड़ाई का मुख्य केन्द्र बन गया। विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार पर सारा जोर आ पड़ा। इसमें मिल-मालिकों का स्वार्थ साफ था। सौभाग्य से पण्डित मोतीलाल नेहरू उस समय जेल के बाहर थे। वह बम्बई गये और बम्बई तथा अहमदाबाद के मिलवालों से उन्होंने समझौते की बातचीत की। अहमदाबाद वालों से निपटना आसान था, पर बम्बई के मिलों में यूरोपियनों का हिस्सा भी था। उनसे काग्रेस की मुहर लगवाने की शर्त (परिशिष्ट ५ देखिए) कबूल कराना बड़ा मुश्किल काम था। परन्तु मोतीलालजी ने असम्भव को सम्भव कर दिखाया। बात यह थी कि वायुमण्डल ही उस समय बहिष्कार की भावना से परिपूर्ण था। जनता के हृदय में वह व्याप्त हो चुकी थी। विदेशी कपड़े की सैकड़ों गाठें बन्दर पर पड़ी थीं। व्यापारी उन्हें उठवाते न थे। उन्होंने एकत्र होकर निश्चय कर लिया था कि वह माल नहीं लेंगे। इस कारण देश में कपड़े की तगी होने लगी थी।

कार्य-समिति-द्वारा प्रोत्साहन

२७ जून आ पहुंची। उस दिन प्रयाग में कार्य-समिति की बैठक हुई और उसने यह निश्चय किये —

"१ बहुत-से शहरों और गावों में विदेशी वस्त्र-बहिष्कार की जो प्रगति हुई है उसे देखकर समिति को सन्तोष है। समिति व्यापारियों की देशभक्ति की भावना की भी प्रशसा करती है, जिससे प्रेरित होकर उन्होंने न केवल विदेशी कपड़ा बेचना बन्द कर दिया है प्रत्युत् पहले के आर्डर रद्द कर दिये और नये आर्डर भेजना भी छोड़ दिया है और इस प्रकार तमाम विदेशी कपड़े की आयात में भारी कमी कर दी है। जिन स्थानों के व्यापारियों ने अभी तक विदेशी कपड़ा बेचना बन्द नहीं किया है उनसे यह समिति तुरन्त बन्द कर देने का अनुरोध करती है। इतने पर भी यदि वे बिक्री बन्द न करें तो समिति सम्बन्धित काग्रेस-सस्थाओं को आदेश देती है कि उनकी दूकानों पर सख्त पिकेटिंग लगा दिया जाय। समिति को आशा है कि १५ जुलाई १९३० तक देशभर में विदेशी कपड़े की बिक्री बिलकुल बन्द हो जायगी। समिति प्रान्तीय-समितियों से उस दिन पूरा विवरण भेजने का अनुरोध करती है।

"२ समिति समस्त काग्रेस-सस्थाओं और देशभर से अनुरोध करती है कि ब्रिटिश माल के सम्पूर्ण बहिष्कार का पहले से भी अधिक जोरदार प्रयत्न करें और इसके

लिए हिन्दुस्तान मे न बननेवाली चीजो को ब्रिटेन के सिवा अन्य विदेशो से खरीदा जाय।

"३ समिति जनता से अनुरोध करती है कि जिन सरकारी नौकरो और दूसरे लोगो ने राष्ट्रीय-आन्दोलन का गला घोटने के लिए जनता पर अमानुष अत्याचार करने में सीधा भाग लिया है उन सबका सगठित और कठोर रूप मे सामाजिक बहिष्कार किया जाय।

"४ कार्य-समिति देश का ध्यान काग्रेस के १९२२ वाले गया के और १९२९ वाले लाहौर के उन निश्चय की ओर आकर्षित करती है जिसमें विदेशी-शासन-द्वारा भारत पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप मे लादे गये ऋण-भार को अस्वीकार कर दिया गया था और केवल उतना ऋण स्वीकार करना तय किया गया था जितना स्वतन्त्र न्यायालय (ट्रिब्यूनल) द्वारा जाच होकर उचित ठहरा दिया जाय। अत समिति जनता को सलाह देती है कि नई पूजी लगाने या पुरानी का रूपान्तर करने के लिए भी भारत-सरकार के नये पुर्जे (बाड) न खरीदे जायें और न लिये जायें।

"५ चूकि बृटिश-सरकार ने प्रबल लोकमत की पर्वाह न करके मनमाने तौर पर रुपये का कानूनी भाव उसकी असली कीमत से तिगुना मुकर्रर कर दिया है और चूकि रुपये का भाव और भी गिर जाने की शीघ्र सम्भावना है, अत कार्य-समिति भारतवासियो को सलाह देती है कि सरकार से जो-कुछ लेना हो उसके बदले में यथासम्भव सोना लिया जाय, रुपये या नोट न लिये जायें। समिति की यह भी सलाह है कि लोग जल्दी-से-जल्दी अपने रुपयो और नोटो के बदले में सोना लेलें और निर्यात-माल की कीमत सुवर्ण के रूप में लेने का आग्रह करे।

"६ इस समिति की राय मे अब समय आ पहुँचा है कि भारत के कॉलिजो के विद्यार्थी राष्ट्रीय स्वतत्रता के सग्राम मे पूर्ण भाग लें। समिति सब प्रान्तीय समितियो को आदेश देती है कि वे अपने-अपने अधिकार-क्षेत्रो में इन विद्यार्थियो से काग्रेस की सेवा में लग जाने का अनुरोध करें और आवश्यकता हो तो उनकी पढाई बिलकुल छुटवा दें। समिति को विश्वास है कि समस्त विद्यार्थी इस अनुरोध का अनुकूल उत्तर तत्परता से देंगे।

"७ चूकि सरकार ने अपनी दमन-नीति के अनुसार अनेक प्रान्तीय और जिला-समितियो तथा सम्बद्ध सस्थाओ को गैर-कानूनी करार दे दिया और सम्भव है शेप समितियो और सस्थाओ के लिए भी भविष्य में ऐसी ही कार्रवाई करे, अत यह समिति इन समस्त समितियो और सस्थाओ को आदेश देती है कि सरकार की घोषणा

की पर्वाह न करके वे पहले की भांति काम करती रहें और कांग्रेस-कार्यक्रम को जारी रक्खें।

"८ इस समिति ने अपनी ७ जून की बैठक में पांचवां प्रस्ताव सेना और पुलिस के कर्तव्य के सम्बन्ध में पास किया था। युक्तप्रान्त की सरकार ने एक घोषणा-द्वारा इस प्रस्ताव की प्रतियां जब्त कर ली हैं। इस घोषणा पर समिति को आश्चर्य है। उसकी राय में जनता पर दिल दहलाने वाले अत्याचार करने के लिए फौज और पुलिस को अस्त्र बनाना ऐसी कार्रवाई है कि समिति न्याय-पूर्वक इससे भी कड़ा निश्चय कर सकती थी, परन्तु फिलहाल समिति ने जिस रूप में निश्चय किया उसीको काफी समझती है क्योंकि उसमें उस विषय पर वर्तमान कानून का ठीक-ठीक उल्लेख मात्र किया गया है। यह समिति समस्त कांग्रेस-संस्थाओं से अनुरोध करती है कि सरकारी घोषणा की पर्वाह न करके उक्त निश्चय को अधिक-से-अधिक प्रकाशन दिया जाय।

"९ चूंकि समिति की पिछली बैठक के बाद भी सरकार ने अपने नृशंस दमन-चक्र को आंख बन्द करके जारी रक्खा है और सत्याग्रह-आन्दोलन का गला घोटने की गरज से अपने नौकरों और गुर्गों को अधिकाधिक निर्दयता और पशुता के कृत्य करने दिये हैं, अतः समिति सरकार के जुल्मों का इस बहादुरी के साथ मुकाबला करने पर जनता को बधाई देती है और सरकार को फिर सचेत करती है कि चाहे सरकार की ओर से कितनी भी यातनायें बरसाई जायें भारतवासियों ने स्वतन्त्रता की लड़ाई को आखिरी दम तक जारी रखने का निश्चय कर लिया है।

"१०. समिति भारतीय महिलाओं को इस बात पर बधाई देती है और उनकी प्रशंसा करती है कि वे राष्ट्रीय आन्दोलन में दिन-दूने रात-चौगुने उत्साह से भाग ले रही हैं और प्रहारों, दुर्व्यवहारों और सजाओं को वीरतापूर्वक सहन कर रही है।"

विलायती कपड़े का बहिष्कार दिन-दिन जोरदार और कारगर होता जा रहा था। खद्दर से किसी भांति कपड़े की मांग पूरी होती दीखती न थी। इसके बाद मिल के सूत का हाथ से बुना हुआ कपड़ा ही देश-भक्त नागरिकों के लिए ग्राह्य हो सकता था। इसी कारण राष्ट्रीय कार्य में सहायक और बाधक होनेवाले कारखानों में भेद करना पड़ा। तदनुसार उन्हें सनद देने की प्रथा-द्वारा कांग्रेस के नियन्त्रण में लाया गया। मिलों से जो शर्तें करवाई गईं उनमें से मुख्य ये थीं कि वे अपनी मशीनरी ब्रिटिश कम्पनियों से नहीं खरीदेंगी, अपने आदमियों को राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने से न रोकेंगी और कांग्रेस की दी हुई रिआयत का बेजा फायदा उठाकर अपने माल की

कीमत न बढायेंगी और ग्राहको को हानि न पहुँचायेगी। मिलो ने धडाधड इस प्रतिज्ञा पर हस्ताक्षर कर दिये। इनी-गिनी मिलो ने प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर नही किये। उन्हें भी थोडे दिन बाद पता लग गया कि उस समय कांग्रेस कितनी बलवती सस्था थी।

ब्रेल्सफोर्ड साहब का बयान

यहा पहुँचकर महासमिति गैरकानूनी ठहरा दी गई। पण्डित मोतीलाल नेहरू को ३० जून १९३० के दिन गिरफ्तार करके ६ महीने की सजा दे दी गई। दमन-पुराण में इतनी वृद्धि और हुई कि बहिष्कार-आन्दोलन की तीव्रता के साथ-साथ दमन-चक्र की कठोरता भी बढती गई। बम्बई के स्वयसेवक-सगठन में कोई कसर बाकी न थी। स्त्रिया आती ही गईं और जब ये कोमलागिया केसरिया साडी पहन-पहन कर अत्यन्त विनम्रता के साथ धरना देती थी, तो लोगो के हृदय बात की बात में पिघल जाते थे। कोई दूकानदार अपने माल पर मुहर न लगवाता तो उसीकी पत्नी धरना देने आ बैठती। अन्यत्र की तरह बम्बई में भी सार्वजनिक सभायें वर्जित करार दे दी गईं। पर इन आज्ञाओ को मानता कौन था? ब्रेल्सफोर्ड साहब ने आन्दोलन के समय इस देश की यात्रा की थी और जनता के साथ जो पाशविक व्यवहार किया जाता था, उसे अपनी आखो देखा था। १२ जनवरी १९३१ के 'मैंचेस्टर गार्जियन' में उन्होने अपना अनुभव इन शब्दो में प्रकट किया—

"पुलिस के खिलाफ जिम्मेवार भारतीय नेताओ को जगह-जगह इतनी शिकायतें हैं कि उन की जाच करना बडी टेढी खीर है। इसी तरह की बहुत सी बातें मुझे प्रत्यक्षदर्शी अग्रेजो और घायलो की मरहमपट्टी करनेवाले हिन्दुस्तानी डाक्टरो ने सुनाईं। मैंने भी दो सभायें देखी। उन्हें नही रोका गया था। भाषण राजद्रोहात्मक थे, पर किये गये थे शातिपूर्वक। हिंसा की बराबर निन्दा की गई। भीड खूब थी। लोग जमीन पर बैठे तकलिया चलाते हुए भाषण सुन रहे थे। स्त्रियो की सख्या भी खूब थी। सभी का व्यवहार विनम्र और शान्त था। अगर इन सभाओ को रोका न जाता तो कोई उपद्रव न होता और जनता सुनते-सुनते थोडे दिन में ऊबकर अपने-आप घर बैठ जाती। पर हुआ यह कि खासकर बम्बई में मारपीट कर तितर-बितर करने की नीति से सारे शहर का रोष उमड आया, लाठी-प्रहार सहन करना सम्मान का प्रश्न बन गया और शहादत के जोश में सैकडो स्वयसेवक मार खाने को निकल आये। उन्होने नियमबद्धता और शान्त साहस का परिचय दिया। यूरोपियन लोगो ने भी मुझे बार-

था। पुलिस का यह दस्तूर था कि बन्दूक और लाठियो से सुसज्जित होकर विद्रोही गाव को घेर लेना और जो ग्रामीण सामने आ गया बिना देखे-भाले उसे लाठी या बन्दूको के ठोसे से मारना। इन आक्रमणो के शिकार हुए ४५ व्यक्तियो ने मेरे रूबरू बयान दिये है। दो के सिवाय सबके घाव और चोटें मैंने देखी हैं। एक लडकी ने तो शर्म के मारे अपनी चोटें नही दिखाईं। कइयो के घाव गभीर भी थे। कई आदमियो के मेरे पास बयान हैं। वे लगान देनेवालो में से थे। लेकिन उनसे तो पडोसियो के बदले में मारपीट कर लगान वसूल किया गया था। एक गाव में काग्रेस के विज्ञापन और राष्ट्रीय झण्डे फाड-फाडकर वृक्षो और घरो पर से उतार दिये गये। साथ ही ८ किसानो को भी पीट दिया गया। इसलिए कि उनके घर इन राष्ट्र-चिन्हो के नजदीक थे। दो आदमियो को गाधी-टोपी पहने रहने पर पीट दिया गया। एक जगह एक आदमी पर लाठी-वर्षा होती रही। उसके १२ लाठिया लगी। जब उससे सात बार पुलिस की सलामी कराली गई तब पिण्ड छोडा। बहुधा पुलिस यह विनोद किया करती, 'स्वराज्य चाहिए? तो यह लो!' और कहकर लाठी बरसा देती।

"आप कह सकते है, यह तो एक पक्ष की शहादत है। किन्तु मैंने अपनी ओर से भरसक सावधानी से काम लिया है। अपने सारे प्रमाण मैंने उच्च कर्मचारियो को दिखाये। एक 'नमूने' के गाव में कमिश्नर मेरे साथ गये, उन्होने किसानो की चोटे देखी और उनसे पूछ-ताछ की। गभीर विचार के बाद उनकी क्या सम्मति होगी, इसका अन्दाज लगाने का मुझे हक नही है, परन्तु मौके पर तो ९ में से केवल १ ही घटना पर सन्देह प्रकट किया। यह अपवाद उस लज्जाशील लडकी का था। मै दो स्थानीय हिन्दुस्तानी अफसरो से भी मिला और उनके रग-ढग देखे। इनमें से एक ने मेरे सामने ही जान-बूझकर पशुतापूर्ण व्यवहार किया। उसने बोरसद में जेरतजवीज कैदियो को रखने के लिए जो पिंजडा बनाया था वह भी मैंने देखा। अजायबघर के जानवरो के लिए जैसे खुले बाडे बनाये जाते हैं यह भी वैसा ही था। इसके लोहे के सीखचे लगे हुए थे। इसकी लम्बाई-चौडाई ३० वर्ग फीट के करीब थी। इसमें १८ राजनैतिक कैदी दिन-रात बन्द रहते थे। एक कैदी को तो इसमें डेढ महीना बीत चुका था। उन्हे न पुस्तकें दी गई थी, न कोई काम ही दिया गया था। यह खचाखच भरा रहता था। कैदियो को दिन में एक बार बाहर निकाला जाता था, और वह भी केवल पौन घण्टे के लिए शौच स्नानादि के निमित्त। उनमें से एक ने मुझसे कहा, 'हमें जेल में पीटा गया था।' क्या मै उनकी बात न मानता? इस जेल में और मारपीट मे क्या अन्तर था? दोनो ही मध्यकालीन बर्बरता के परिचायक थे।"

गोली-काण्ड का विवरण

देश में जो गोली-काण्ड हुए उनके विषय में असेम्बली में श्री एस० सी० मित्र के प्रश्न का उत्तर देते हुए होम मेम्बर हेग साहब ने गोली-काण्डो-सम्बन्धी अंको की नीचे लिखी तालिका पेश की (देखिए लेजिस्लेटिव असेम्बली की बहस, पृष्ठ २३७, सोमवार १४ जुलाई १९३०--जिल्द ४, अंक ६) —

जनता के हताहत

प्रान्त	तारीख	मरे	घायल	विविध
मदरास शहर .	२७ अप्रैल	२	६	१ पीछेसे मर गया
कराची	१६ „	१	६	१ „ „
कलकत्ता	१ „	७	५६	१ „ „
„	१५ „	—	३	
२४ परगना	२४ „	१	३	
चटगाव	१८,१६,२० अप्रैल	१०	२	दोनो पीछे से मर गये
पेशावर	२३ „	३०	३३	
चटगाव	२४ „	१	—	
मदरास	३० मई	—	२	
शोलापुर .	८ „	१२	२८	
वडाला	२४ „	—	१	
भिण्डी बाजार बम्बई	२६,२७ मई	५	६७	
हवडा	६ „	—	५	
चटगाव	७ „	४	६	३ पीछे से मर गये
मैमनसिंह .	१४ „	१	३० से ४० के बीच	
प्रतापदिगी (मेदिनीपुर) .	३१ „	२	२	
लखनऊ	२६ „	१	४२	२ पीछे से मर गये
कलू (झेलम-पंजाब)	१८ „	—	१	
रंगून .	अन्तिम सप्ताह	५	३७	
सीमा-प्रान्त	„	१७	३७	
दिल्ली .	६ मई	४	४०	

१२ मई को ८॥ बजे सायकाल शोलापुर के जिला-मजिस्ट्रेट ने परिस्थिति सैनिक अधिकारियो के सुपुर्द कर दी।

१५ मई को शोलापुर का फौजी-शासन-सम्बन्धी आर्डिनेन्स निकाल दिया गया। ८ मई को शोलापुर में १२ मारे गये और २८ घायल हुए। ६ अलग-अलग मौको पर गोली चली।

गाधीजी की गिरफ्तारी के बाद शोलापुर में एक खेद-जनक घटना हो गई। स्वयसेवक रास्तो पर व्यवस्था रख और आवागमन का नियमन कर रहे थे। ऐसा कई दिन तक होता रहा। पुलिस वस्तुत बेकार हो गई। अधिकारियो को यह कब पसन्द आता? इस प्रकार की परिस्थिति में पुलिस एव स्वयसेवको में सघर्ष के अवसर आने सम्भव थे ही। आखिर भिडन्त हो ही गई और चार-पाच पुलिसवाले मार दिये गये। १९१९ में पजाब में जैसा फौजी कानून जारी किया गया था शोलापुर में भी वैसा ही हुआ। इसके साथ-साथ जो भय-सामग्री आती है वह भी आई। एक बडे सेठ और तीन अन्य व्यक्तियो को फासी पर लटका दिया। कई आदमियो को फौजी कानून के अनुसार लम्बी-लम्बी सजायें दे दी गई। जुलाई-अगस्त की समझौते की बात-चीत में, जोकि अन्त में असफल रही, इन्ही कैदियो के छुटकारे का प्रश्न झगडे का विषय बन गया था। पर इसका जिक्र तो आगे किया जायगा।

पेशावर-काण्ड

२३ अप्रैल १९३० को पेशावर में जो घटनायें हुईं उनका भी सार यहा दे देना ठीक होगा। भारत के अन्य भागो की भाति सीमा-प्रान्त में भी कानून-भग का आन्दोलन चल रहा था। पेशावर शहर में काग्रेस की ओर से घोषणा की गई कि २३ अप्रैल से शराब की दुकानो पर पहरा लगेगा। परन्तु शकून अच्छे नही हुये। २२ अप्रैल को महासमिति का प्रतिनिधि-मण्डल पेशावर पहुँचनेवाला था। इसका उद्देश सीमा-प्रान्त के विशेष कानूनो के अमल की जाच करना था। मण्डल अटक में ही रोक दिया गया और प्रान्त में उसे घुसने नही दिया गया। इस समाचार पर पेशावर में जुलूस निकला और शाही बाग में विराट् सभा हुई। दूसरे दिन तडके ही ९ नेताओ को गिरफ्तार कर लिया गया। ९ बजे दो नेता और पकड लिये गये। परन्तु जिस मोटर-लारी में पुलिस उन्हें थाने पर ले जा रही थी वह बिगड गई। नेताओ ने थाने पर आ जाने का आश्वासन दिया और वे छोड दिये गये। तदनुसार जनता उक्त नेताओ का जुलूस बनाकर काबुली दरवाजे के थाने पर ले गई। पर थाना बन्द था। इतने में एक पुलिस-

अफसर घोडे पर आ पहुँचा। उसके आते ही जनता नारे लगाने और राष्ट्रीय गीत गाने लगी। अफसर चला गया और अकस्मात् दो-तीन सशस्त्र मोटरे आ पहुँची और भीड के भीतर घुस गईं। इसी समय एक अग्रेज मोटर-साइकिल से तेजी से आ रहा था, उसकी मोटर-साइकिल सशस्त्र मोटर से टकरा गई और चूर-चूर हो गई। मोटर में से किसीने गोली चलाई और सयोग से मोटर में आग भी लग गई। डिप्टी-कमिश्नर अपनी सशस्त्र मोटर में से उतरा और थाने मे जाते हुए जीने पर गिर पडा। वह बेहोश हो गया, किन्तु जल्दी ही होश में आ गया। उसके बाद सशस्त्र मोटरो में से गोलिया चलने लगी। लोगो ने मृत शरीरो को वहा से हटाने का प्रयत्न किया। फौजी दस्ते और मोटरे भी हटा ली गईं। दूसरी बार फिर गोलिया चलाई गईं और वे करीब ३ घण्टे तक चलती रही। दुर्घटनाओ के सम्बन्ध में सरकार-द्वारा प्रकाशित वक्तव्य में मृतको की सख्या ३० और घायलो की सख्या ३३ दी गई है, किन्तु लोग इन सख्याओ को करीब-करीब ७ से १० गुना तक बतलाते थे। सायकाल फौज काग्रेस-दफ्तर में आई और काग्रेस के बिल्लो और राष्ट्रीय झण्डे को उठा ले गई। २५ तारीख को फौज और सामान्यत वहा रहनेवाली पुलिस दोनो हटा ली गई। २८ तारीख को पुलिस ने फिर आकर काग्रेस और खिलाफत के स्वयसेवको से, जो शहर के दरवाजो पर पहरा दे रहे थे, सब शहर का चार्ज ले लिया। ४ मई को शहर पर फौज ने कब्जा कर लिया।

३१ मई १९३० को सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन के जमाने मे गगासिंह केम्बोज नाम के एक सज्जन, जो कि एक फौजी डेरी में सरकारी नौकर हैं, अपने बाल-बच्चो के साथ पेशावर में एक तागे में काबुली-दर्वाजे से गुजर रहे थे। उन पर के० ओ० वाई० एल० आई० के अग्रेजी लैन्स जमादार ने गोली चलाई, जिससे बीबी हरपाल कौर नाम की एक ६½ साल की उनकी लडकी और काका बचीतरसिंह नाम का १६ मास का उनका लडका ये दो बच्चे मारे गये और तागे से ऐसे गिर गये जैसे चिडिया के बच्चे उसके घोसले से गिर जाते है। उन बच्चो की मा श्रीमती तेजकौर बाह और छाती में सख्त घायल हुईं। उनका स्तन तो बिलकुल उड ही गया था। उन बच्चो के मृत-शरीरो का जुलूस डिप्टी-कमिश्नर की आज्ञा से निकाला गया और उसमे हजारो लोगो ने भाग लिया। किन्तु डिप्टी-कमिश्नर की आज्ञा लेने पर भी फौज ने अर्थिया उठानेवालो और जूलूसवालो पर तितर-बितर होने की कोई सूचना दिये बिना ही केवल दो गज के फासले से गोलिया चलाई। अर्थियो के पहले उठानेवाले मारे जाते तो अर्थिया जमीन पर गिर जाती और उन्हें फिर नये लोग आकर उठा लेते। ऐसा बार-बार हुआ। इस

प्रकार असेम्बली में दिये सरकारी उत्तर के अनुसार भी १७ बार गोलियां चलाने पर जुलूस के ९ आदमी मारे गये और १८ घायल हुए थे।

जुलाई १९३० में सरकार ने एक और वक्तव्य निकाला था, जिसमें दिखलाया गया था कि ११ नं० प्रेस-आर्डिनेन्स के अनुसार २ लाख ४० हजार रुपये की जमानतें १३१ अखबारों से उस समय तक मांगी जा चुकी थीं। इनमें से ९ पत्रों ने जमानतें नहीं दीं, अतः उनका प्रकाशन बन्द हो गया।

बम्बई में लाठी-चार्ज

१ अगस्त १९३० को बम्बई में लोकमान्य तिलक की बरसी मनाई गई थी और श्रीमती हंसा मेहता के नेतृत्व में, जो उस समय नगर-कांग्रेस की डिक्टेटर थीं, एक जुलूस निकाला गया था। कांग्रेस-कार्य-समिति की बैठक नगर में लगातार तीन दिन से हो रही थी। वह उस समय वहां गैर-कानूनी घोषित नहीं हुई थी, क्योंकि सरकार उस हुक्म को एक प्रान्त से दूसरे में धीरे-धीरे जारी कर रही थी। कार्य-समिति के कुछ सदस्य सायंकाल के जुलूस में शामिल हो गये थे और जिस समय वे आगे बढ़े चले जा रहे थे उस समय उन्हें जुलूस निकालने की निषेधाज्ञा का दफा १४४ का नोटिस मिला। उस समय तक जुलूस में हजारों आदमी हो गये थे। जिस समय वह हुक्म मिला उस समय सड़क पर एक विशाल जन-समुदाय बैठा था और सारी रात पानी बरसते रहने के बाद भी एक इंच हटना नहीं चाहता था। लोग सचमुच पानी के पोखरों में ही बैठे थे। यह आशा की जा रही थी कि जुलूस को आधी रात के बाद आगे बढ़ने दिया जायगा, जैसा कि एक बार पहले हुआ था। किन्तु वह न हुआ। चीफ प्रेसिडेन्सी मजिस्ट्रेट ने इस स्थिति की सूचना पूना-स्थित होम-मेम्बर को दी। मि० हॉटसन ने उत्तर दिया कि जबतक मैं न आजाऊं तबतक कुछ भी नहीं करना चाहिए। वह सुबह होते-होते वहां पहुंचे और भीड़ को विक्टोरिया-टर्मिनस की इमारत की गैलरी की एक छत से देखने लगे। कुछ चुने हुए आदमी सुबह गिरफ्तार कर लिये गये और उनके साथ कोई सौ महिलायें भी, और तब भीड़ को तितर-बितर करने के लिए लाठी-प्रहार का हुक्म हुआ। कार्य-समिति के जो मेम्बर उस समय थे और गिरफ्तार हुए वे पं० मदनमोहन मालवीय, श्री वल्लभभाई पटेल, जयरामदास दौलतराम, और श्रीमती कमला नेहरू थे। श्रीमती मणिबहन (वल्लभभाई की सुपुत्री) जुलूस में थी, इसलिए वह भी गिरफ्तार करली गईं। कोई सौ अन्य महिलायें भी गिरफ्तार की गई थीं। उनमें डिक्टेटर श्रीमती हंसा मेहता भी थीं।

पुलिस ने गैर-कानूनी जमायत वनानेवालो को सजा देने का एक नया ढग शुरू किया था। वह धरना देनेवालो को भिन्न-भिन्न स्थानो से इकट्ठा करके लारी में रखकर शहर से बहुत दूर ले जाती और उन्हे वहा छोड आती। वे लोग बिना पैसे तकलीफ पाते हुए, जैसे होता वैसे, अपने स्थानो पर आते। बम्बई में व्यापारियो की दूकानो में विदेशी कपडे का धरना और मुहरबन्दी दोनो कार्य इतनी तीव्रता से हुए कि एक बार छिपे-छिपे विदेशी कपडा ले जानेवाली लारी को रोकने के लिए उसके सामने बाबू गणू नामक लडका खडा हो गया। घटना कालवादेवी रोड की है। हुआ यह कि मोटर लडके के ऊपर होकर निकल गई और लडका मर गया। इसके बाद बम्बई में हर मास इस वीर बालक की यादगार में बाबू गणू-दिवस मनाया जाता था। काग्रेस वहा जिन पवित्र-दिवसों को मानती थी उनमें से एक यह दिवस भी था।

विभिन्न प्रान्तों में दमन

जब वल्लभभाई पटेल अपनी ४ मास की पहली सजा काटकर बाहर आये तो पण्डित मोतीलाल नेहरू ने उन्हें काग्रेस का स्थानापन्न अध्यक्ष नियुक्त किया। उन्होंने बम्बई और गुजरात में कार्य को सगठित करना शुरू किया और आन्दोलन को और भी तीव्र कर दिया। उनके व्याख्यानो में कार्यकर्त्ताओ के लिए एक नई ध्वनि और एक नया उत्साह मिला। १३ जुलाई को वह उस आर्डिनेन्स पर भाषण दे रहे थे जिसके अनुसार देश के सारे काग्रेस-सगठन गैर-कानूनी घोषित कर दिये गये थे और काग्रेस का दफ्तर जब्त कर लिया गया था। वल्लभभाई ने अपने भाषण में कहा था कि आज से भारतवर्ष का हरेक घर काग्रेस का दफ्तर और हरेक व्यक्ति काग्रेस-सस्था होना चाहिए। लॉर्ड अर्विन ने असेम्बली में जो प्रतिगामी भाषण दिया था, और जिसमें सविनय-अवज्ञा पर उन्होने अपना महादण्ड उठाया था, उसका वल्लभभाई ने मुहतोड जवाब दिया था।

गुजरात में, बारडोली और बोरसद ताल्लुको में जिस तरह करबन्दी-आन्दोलन सफलता-पूर्वक चलाया गया था, वह सारे आन्दोलन की मानो नाक थी। उसे दबाने के लिए अधिकारियो ने ऐसे-ऐसे जुल्म किये थे कि उनसे तग आकर ८० हजार आदमी अग्रेजी सीमा से निकल-निकलकर अपने पडोस के बडौदा राज्यस्थ गावो में चले गये थे।

खुद श्री वल्लभभाई पटेल की मा, जिनकी उम्र ८० वर्ष से ऊपर है जब अपना खाना पका रही थी, उनके पकाने के बर्तन को पुलिस ने नीचे गिरा दिया था।

[illegible] में [illegible] और [illegible] दिये गये थे। बेचारे देहातियों को [illegible] और शारीरिक कष्ट दिये गये वे इन सब से अलग थे। किन्तु फिर भी उनका [illegible] आत्मसंयम था। पर इससे भी आश्चर्यजनक थी अहिंसा में उनकी दृढ़ता—व्यवहार में भी और भावना में भी।

इस लम्बी दास्तां को संक्षिप्त करने के लिए केवल यह कह देना जरूरी है कि सत्याग्रह-संग्राम में भारत के प्रत्येक प्रान्त और भाग ने अपने-अपने हिस्से का कष्ट सहन किया।

भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न प्रकार का आन्दोलन और दमन चल रहा था जिसका कारण था भिन्न-भिन्न परिस्थिति, सरकारी अफसरों का स्वभाव, पट्टे की शर्तें आदि। इस अर्थ में दक्षिण भारत पर बहुत ही बुरी बीती। वहां लाठी-प्रहार, भारी-भारी जुर्मानों और लम्बी-लम्बी सजाओं की शुरुआत आन्दोलन के बढ़ने पर नहीं, बल्कि पहले ही से हो गई थी। बंगाल-प्रान्त ने देशभर में सब प्रान्तों से अधिक कैदी दिये। अंग्रेजी कपड़े का बहिष्कार बंगाल और बिहार-उड़ीसा में सबसे अधिक हुआ। गत सितम्बर १९२९ के मुकाबले में नवम्बर १९३० में अंग्रेजी कपड़े का व्यापार ९५% गिर गया था। स्वतन्त्रता के युद्ध में गुजरात की कारगुजारियां अनुपम थीं, यह हम पहले कह ही चुके हैं। आम करबन्दी का आन्दोलन तो केवल संयुक्त-प्रान्त में ही शुरू किया गया था। वहां अक्तूबर १९३० में जमींदारों और काश्तकारों दोनों को ही लगान और मालगुजारी रोक देने के लिए कहा गया था। पंजाब भी किसी से पीछे न रहा। अहिंसा-धर्म को हृदय से स्वीकार करके सीमाप्रान्त की जितनी राजनैतिक जीत हुई उतनी ही नैतिक विजय भी हुई। बिहार में चौकीदारी-टैक्स देना काफी हिस्से में बन्द कर दिया गया था। इसके लिए उस प्रान्त ने पूरे-पूरे कष्ट सहे। वहां के लोगों को सजा देने के लिए वहां अतिरिक्त-पुलिस रख दी गई और छोटी-छोटी रकमों के लिए उनकी बड़ी-बड़ी जायदादें जब्त कर ली गईं। मध्यप्रान्त में जंगल सत्याग्रह शुरू किया गया। उसमें सफलता मिली। लोगों ने भारी-भारी जुर्मानों और पुलिस की ज्यादतियों के होने पर भी उसे जारी रखा। तीन लाख ताड़ और खजूर के पेड़ काट डाले गये थे। सिर्सी ताल्लुके के १३० पटेलों में से ९६ ने, सिद्दापुर ताल्लुके के २५ ने और अकोला ताल्लुके के ६३ पटेलों में से ४३ ने त्याग-पत्र दे दिये थे। ये सभी ताल्लुके उत्तर कनाड़ा में हैं।

अंकोला में करबन्दी-आन्दोलन का हेतु शुरू से ही राजनैतिक था, किन्तु सिर्सी और सिद्दापुर में वह आर्थिक कारणों से शुरू हुआ था। किसानों की तबाही भी कारण

थी। केरल में, जो कि प्रान्तो मे सबसे छोटा है, सविनय-अवज्ञा आन्दोलन का झण्डा अन्त तक फहराता रहा। दूसरे सिरे पर आसाम प्रान्त ने, जिसमें कछार और सिलहट भी शामिल है, राष्ट्रीय महासभा की आवाज का शानदार जवाब दिया।

अन्य कुछ प्रान्तो मे जो मुख्य-मुख्य घटनायें हुईं उनमें से कुछ की ओर भी ध्यान दें। कुछ बाते तो सभी प्रान्तो में समान ही थी, जैसे काग्रेस-दफ्तरो का बन्द कर दिया जाना, काग्रेस के कागजो, किताबो, हिसाबो और झडो का ले जाया जाना, लाठी-प्रहार और सार्वजनिक सभाओ का बलपूर्वक भग कर देना, सभी जगहो पर दफा १४४ का लगा दिया जाना, १०८ दफा मे व्यक्तियो को नोटिस देना, घरो पर पुलिस का छापे मारना, तलाशिया लेना, प्रेसो को कब्जे में कर लेना और प्रेसो तथा पत्रो से जमानतें माग लेना। किन्तु जो चीज घटनाओ को देखनेवाले पर सबसे अधिक प्रभाव डालती थी वह यह थी कि देश का शासन विदेशी वस्त्र और शराब की दुकानो के हित को दृष्टि में रखकर हो रहा था। बगाल में मिदनापुर ही खासकर एक ऐसा स्थान था जहा दमन जोरो का हुआ। बगाल और आन्ध्र दोनो में काग्रेस-स्वयसेवको को और उनको जो पीटे गये थे और असहाय पडे हुए थे, स्थान, खाना या पानी देने के कारण मकान-मालिको को सजायें हुई थी। बगाल में, उदाहरण के लिए खेरसाई में, जरा-सा मौका मिलते ही गोली चला देने की आज्ञायें दे दी गई थी। उस गाव में एक घर के पास बहुत भीड इकट्ठी हो गई थी, क्योकि वहा कुछ जायदाद कुर्क की जा रही थी। उस समय भीड पर गोली चलाने की आज्ञा दे दी गई, जिसके परिणाम-स्वरूप एक आदमी मरा और कई घायल हुए। चेचना में लौटती हुई भीड पर गोली चला दी गई, जिससे ६ मनुष्य मर गये और १८ घायल हो गये। जून १९३० में कण्टाई में नमक बनाया जा रहा था। उसे देखने के लिए इकट्ठी हुई भीड़ पर गोली चला दी गई, जिसने २५ मनुष्य घायल हो गये। खेरसाई में एक मनुष्य की गिरफ्तारी के समय इकट्ठी हुई भीड जब चेतावनी देने पर न हटी तो वहा गोली चलाई गई, जिससे ११ आदमी मारे गये। २२ जून को कलकत्ते में पुलिस ने देशबन्धु दास का मृत्यु-दिवस मनाने का निषेध कर दिया था, फिर भी लोगो ने जुलूस निकाला। पुलिस ने जुलूस पर निर्दयतापूर्वक लाठी-प्रहार किया। उस समय घायलो को घोडो के खुरो-द्वारा कुचले जाने मे बचाने के लिए स्त्रिया घरो में से निकल-निकल कर सामने आ खडी हुई थी।

पुलिस ने कालेज की इमारतो में घुसकर दरजो में बैठे हुए विद्यार्थियो को पीटा। बरीसाल मे एक दिन के लाठी-प्रहार मे ५०० मनुष्य घायल हुए थे। तामलुक में, कहा जाता है कि, पुलिस ने सत्याग्रहियो और उनसे सहानुभूति रखनेवाले लोगो

की जायदाद में आग लगा दी थी। इसी प्रकार कई जगहो से भद्दे हमलो की खबरें आई थी। गोपीनाथपुर में काग्रेस-स्वयसेवक निर्दयतापूर्वक पीटे गये थे। उनमें से एक मुसलमान लडका था। इस घटना से गाववाले अत्यन्त क्षुब्ध हुए। उन्होने पुलिस-वालो को पकड लिया और उन्हे कुछ समय तक स्थानीय स्कूल मे बन्द रखने के बाद स्कूल में आग लगा दी। दो काग्रेस-स्वयसेवको ने स्कूल के किवाड तोड डाले और अपने जीवन को खतरे में डालकर आग की लपटो से उन्हे बचाया। ३१ दिसम्बर को लाहौर में स्वाधीनता का प्रस्ताव पास हुआ था। ३१ दिसम्बर १९३० को उसके वार्षिकोत्सव के जुलूस में जाते हुए सुभाष बाबू को बुरी तरह पीटा गया। वह उससे कुछ दिन पूर्व ही राजद्रोह के अपराध में एक वर्ष की सजा भुगतकर जेल से छूटे थे। लाहौर में अधिकारी इतने उत्तेजित हो गये थे कि उन्होने असहयोग-वृक्ष के चित्र को भी जब्त कर लिया था। लुधियाना में एक परदेवाली मुसलमान महिला पिकेटिंग करती हुई गिरफ्तार हुई थी। जो विदेशी वस्त्र बेचते थे उनके घरो पर स्यापा (पजाबी रोदन) किया जाता था। रावलपिंडी मे खराब खाना खाने से इन्कार करने के लिए कैदियो पर अभियोग चलाये गये थे। माण्टगुमरी में एक भूख-हडताली ला० लाखीराम कई दिनो के उपवास के बाद मर गये। टमटम मे एक महिला के साथ बडा बुरा सलूक किया गया था। सीनेट-हाल में पजाब-गवर्नर पर जो गोली चली उससे पुलिस को चाहे जिसकी तलाशी लेने का अवसर मिल गया। बिहार में आन्दोलन ने शान्तिपूर्वक प्रगति की थी। समस्तीपुर सब-डिवीजन मे शाहपुर-पटोरिया नाम का एक छोटासा बाजार है। जवाहर-सप्ताह मनाने के चार दिन बाद एक पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट की अधीनता में १२५ पुलिसवालो ने उसे घेर लिया। वे ४६ व्यक्तियो को गिरफ्तार करके ले गये और गाव से बाहर गये हुए कुछ आदमियो की सम्पत्ति १२ बैलगाडियो में भरकर साथ लेते गये। दूसरे जिलो से भी ऐसी ही खबरे मिली थी। मुगेर और भागलपुर में आन्दोलन जोरो पर था। शराब की दुकानो पर धरना देने से सरकार को ४० लाख का नुकसान हुआ था। मोतीहारी मे फुलवारिया के धान के खेतो मे होकर फौजी पुलिस और गोरखे फसल को कुचलते हुए ले जाये गये थे और अनेक देहातियो को गिरफ्तार करके लोगो में भय का सचार किया गया था। चम्पारन, सारन, मुजफ्फरपुर, मुगेर, पटना और शाहबाद जिलो में चौकीदारी-कर बन्द कराया गया था। मध्यप्रान्त मे शराब के नीलाम की बोली ६०% कम बोली गई थी। अमरावती में गढवाल-दिवस मनाने के समय लाठी-प्रहार हुआ। आन्ध्र मे पुलिस की सबसे बुरी करतूत यह थी कि उसने ८० व्यक्तियो की एक मित्र-मण्डली को, जो

२१ दिसम्बर १९३० को पेंढ्ढापुर में मनोरञ्जन के लिए इकट्ठी हुई थी, खूब पीटा। उनमें से कितने ही लोगो को सख्त चोटें आईं। दो-तीन बहनें भी घायल हुई थी। उसके परिणाम-स्वरूप पुलिस पर दीवानी अभियोग चलाया गया, जिसका फैसला अभीतक नही हुआ। केरल में ताडी की बिक्री ७०% कम हो गई थी। तामिलनाड में ताडी की बिक्री बन्द हो जाने से कितनी जगहो पर गोलिया चलाई गईं और लाठी-प्रहार हुए। दिल्ली में एक रायसाहब शराब के व्यापारी थे। उन्होंने ८० महिलाओ और १०० पुरुष-स्वयसेवको की गिरफ्तारी के लिए जिम्मेवार होने का सौभाग्य प्राप्त किया था। अजमेर में एक दिन में लगभग १५० गिरफ्तारिया हुईं। जेल में 'ए' क्लास के कैदियो तक को पीटा गया।

किसानों की हिजरत

गुजरात में किसानो की हिजरत एक ऐतिहासिक घटना है, जिसका वर्णन मि० ब्रेल्सफोर्ड ने इस प्रकार किया है —

" और तब उनकी वह हिजरत आरम्भ हुई जो इतिहास की विचित्रतम हिजरतो में है। इन देहातियो ने आश्चर्यजनक एकता के साथ एक-एक करके पहले अपना सारा सामान अपनी-अपनी गाडियो में जमाया और फिर वे उन्हें बडौदा की सीमा में हाक ले गये। दृढ-जाति-सगठन के कारण ऐसी एकता हिन्दुस्तानियो में ही हो सकती है। उनमें से कुछ ने अपनी कीमती फलसो को ले जाना असम्भव देख जला दिया। मैंने उनके एक पडाव को देखा है। उन्होंने चटाइयो की दीवारें और टाट पर ताडके पत्ते बिछाकर छतें बनाली और कामचलाऊ घर बना लिये हैं। वर्षा समाप्त हो गई है। इसलिए अब उन्हें मई मास तक अधिक कष्ट न उठाना पडेगा। किन्तु वे अपने प्यारे पशुओ-सहित एक जगह इकट्ठे पडे हुए है, और उनका सामान जिसमें चावल रखने के उनके बडे-बडे मिट्टी के बर्तन, बिछौने और दूधबिलौने, सन्दूक, पीतर के चमकते हुए बर्तन थे, चुना हुआ था। उनका हल भी एक ओर रक्खा हुआ था, दूसरी ओर उनके देवताओ का चित्र था, और सर्वत्र इधर-उधर इस पडाव के मानो अध्यक्ष देवता महात्मा गाधी के भी चित्र थे। मैंने उनमें से एक बडे दल से पूछा कि आप लोगो ने अपने-अपने घर क्यो छोड दिये है ? स्त्रियो ने बहुत जल्दी सीधे-सादे उत्तर दिये, 'क्योंकि महात्माजी जेल में हैं'। पुरुषो को अपने आर्थिक कष्ट का ज्ञान था। उन्होंने कहा, 'खेती में इतना पैदा नही होता और लगान बेजा हैं'। एक दो ने कहा, 'स्वराज्य लेने के लिए'।

"मैंने सूरत की कांग्रेस के सभापति के साथ उन परित्यक्त गावो में भ्रमण करते हुए दो दिन व्यतीत किये, जो मुझे सदा याद रहेंगे। घरो की कतार-की-कतार खाली पडी थी। उनपर कपडा सिले हुए ताले लगे थे। खिडकिया खुली पडी थी। जिनमें से देखा जा सकता था कि ये घर बिलकुल खाली है। गलिया प्रकाश की नीरव झीलें थी, कही भी कोई हलचल दिखाई नही दी।

"चूकि मैंने खुद उनके कुछ तौर-तरीके देखे थे, इसलिए इस बात पर विश्वास करना कठिन न था। इन परित्यक्त गावो में से एकसे जब हमारी मोटर रवाना होने लगी तो सगीन चढी हुई राइफल वाले पुलिसमैन ने हमें ठहर जाने का हुक्म दिया। उसने कहा कि 'आप पुलिस की लिखित आज्ञा लेकर ही गाव से जा सकते है', किन्तु जब उसने मेरी यूरोपियन पोशाक देखी तो वह तुरन्त डर गया। टूटी-फूटी अंग्रेजी में सिटपिटाते हुए बोला, 'हुजूर!' किन्तु मजे की बात तो यह थी कि उसकी वर्दी पर नम्बर का कही पता भी न था। जब मैंने उससे उसका नम्बर पूछा तो उसने मुझे विश्वास दिलाया कि हम सब लोग गुप्त नम्बर रखते है। वह सिपाही उस दल का आदमी था जो उस विशेष कार्य के लिए तैयार किया गया था, और जो आयर्लैण्ड के 'ब्लैक एन्ड टान्स' दल से मिलता-जुलता है। इस दल के सगठन-कर्त्ता यह बात न जानते होंगे कि उनकी वर्दियो पर उनके नम्बर नही रहते हैं।

इस दु खभरी कहानी को समाप्त करते हुए हमें पेशावर और वहा के पठानो के विषय में कुछ अन्तिम शब्द और कहने हैं। ये मनुष्य, जिनका नाम निर्दयता और हिंसा के लिए प्रसिद्ध है, मेमनो के समान सीधे-सादे और अहिंसा की प्रतिमूर्ति बन गये। खान अब्दुलगफ्फारखा ने अपने 'खुदाई खिदमतगारो' का ऐसे सुनियत्रित और सच्चे ढग से सगठन किया था कि भारतवर्ष का जो हिस्सा इस दिशा मे अत्यन्त भयजनक था वह अहिंसात्मक असहयोग-आन्दोलन के प्रयोग के लिए बहुत ही सुरक्षित केन्द्र बन गया था। सीमा-प्रान्त में की गई निर्दयताओ को बिलकुल अन्धकार में रक्खा गया था और श्री विट्ठलभाई पटेल की रिपोर्ट सरकार ने जब्त करली थी, किन्तु कुछ मिसालें तो इतनी मशहूर हैं कि उनसे इन्कार नही किया जा सकता। उनमें से कुछ का वर्णन हो ही चुका है।

एक महत्त्वपूर्ण घटना जो सीमाप्रान्त मे हुई थी, वह यहा उल्लेखनीय है। उस प्रान्त में जो दमन हुआ उस सिलसिले मे गढवाली सिपाहियो को, एक सभा में बैठे हुए लोगों पर, गोली चलाने की आज्ञा दी गई। उन्होंने शान्त और नि शस्त्र भीड पर गोली चलाने के लिए ले जानेवाली मोटर पर चढने से इन्कार कर दिया। इसी कारण इन

सिपाहियो पर फौजी अदालत मे मुकदमा चलाया गया और इन्हें १० से लगाकर १४ साल तक की लम्बी-लम्बी सजाये दी गई। मार्च १९३१ की कांग्रेस और सरकार के बीच की अन्तिम बातचीत मे इन सिपाहियो के छुटकारे का प्रश्न मुख्य विवादास्पद विषय था।

यहा हमे यह याद रखना चाहिए कि ये सिपाही गाधी-अर्विन समझौते में नही छोडे गये थे, किन्तु कुछ साल बाद इनकी सजायें घटा दी गई। कुछ लोग कुछ जत्थो में छूट गये और कुछ अभीतक जेल में हैं।

इस रोमाञ्चकारी दुःख-कथा को हम २१ जनवरी १९३१ के दिन एक उत्सव मनाने के समय बोरसद मे दिखाई हुई महिलाओ की वीरता के एक वर्णन के साथ समाप्त करेंगे। पुलिस प्रदर्शन को रोकने का निश्चय कर चुकी थी। स्त्रियो ने जुलूसवालो को पानी पिलाने के लिए भिन्न-भिन्न स्थानो पर पानी के बडे-बडे बर्तन रख छोडे थे। पुलिस ने पहले इन बर्तनो को ही तोडा। फिर स्त्रियो को बलपूर्वक तितर-बितर कर दिया। यह भी कहा जाता है कि जब स्त्रिया गिर गई तो पुलिसवाले उनके सीनो को बूटो से कुचलते हुए चले गये! पुलिस के गुण्डेपन का कदाचित् यह अन्तिम कार्य था, क्योकि २६ जनवरी को समझौते की बातचीत चलाने योग्य वातावरण उत्पन्न करने के लिए गाधीजी और उनके २६ साथियो को बिना शर्त छोड देने की विज्ञप्ति प्रकाशित हुई थी।

सुलह के असफल प्रयत्न

हम अपने पाठको को जून, जुलाई, और अगस्त महीनो की ओर फिर वापस ले जाना चाहते है। २० जून १९३० को पण्डित मोतीलाल जी से, जबकि वह बाहर ही थे, 'डेली हेरल्ड' के सवाददाता मि० स्लोकोम्ब ने मुलाकात की। मि० स्लोकोम्ब ने बम्बई में पण्डितजी से 'कांग्रेस किन शर्तों पर गोलमेज-परिषद् में शामिल हो सकती है?' इस विषय पर बातचीत की थी। उसके थोडे दिन बाद मि० स्लोकोम्ब की सोची हुई शर्तों पर एक सभा में, जिसमे पण्डितजी, श्री जयकर और मि० स्लोकोम्ब खुद मौजूद थे, विचार हुआ और वे स्वीकार हुई। मि० स्लोकोम्ब ने सर सप्रू को भी एक पत्र लिखा था, उसके परिणाम-स्वरूप सर सप्रू और श्री जयकर उन शर्तों के आधार पर वाइसराय से बातचीत करने के लिए सम्बन्ध हुए। पण्डित मोतीलालजी समझौते की तजवीजें लेकर कांग्रेस के सभापति प० जवाहरलाल नेहरू और गांधीजी के पास जाने को राजी हो गये। शर्त यह थी कि ब्रिटिश-सरकार और भारत-सरकार दोनो

निजी तौर पर यह आश्वासन देने को राजी हो जायें कि, चाहे गोलमेज-परिषद् की कुछ भी सिफारिशे हो और चाहे पार्लमेण्ट हमारे प्रति कुछ भी रुख रक्खे, वे स्वय भारतवर्ष की पूर्ण उत्तरदायी-शासन की माग का समर्थन करेंगी। शासन-परिवर्तन की खास-खास तर्मीमो और शर्तों की, जिन्हे गोलमेज-परिषद् रक्खे, उसमें गुजाइश रहे। इस आधार पर मध्यस्थो ने वाइसराय से लिखा-पढी की और गाधीजी, मोतीलालजी और जवाहरलालजी से जेल मे मिलने की इजाजत मागी। यह १३ जुलाई की बात है। तबतक मोतीलालजी को जेल हो चुकी थी। वाइसराय ने अपने उत्तर में भारतवासियो को दिये जानेवाले स्वराज्य के प्रकार को और भी नरम कर दिया। उन्होने वादा किया कि 'हम भारतवासियो को उनके गृह-प्रबन्ध का उतना अश दिलाने में सहायता देगे जितना कि उन विषयो के प्रबन्ध से मेल खाता हुआ दिखाया जायगा, जिनमे जिम्मेवारी लेने की स्थिति में वे नही हैं।' इन दो कागजो को लेकर श्री सप्रू और जयकर ने यरवडा-जेल में २३ और २४ जुलाई को गाधीजी से मुलाकात की, जिसमे गाधीजी ने उन्हे नैनी-जेल (इलाहाबाद) में प० मोतीलाल और जवाहरलाल नेहरू को देने के लिए एक नोट और पत्र दिया। गाधीजी चाहते थे कि गोलमेज-परिषद् के वाद-विवाद को सरक्षणो-सम्बन्धी विचार तक ही सीमित रक्खा जाय। सक्रमण-काल के सिलसिले में स्वाधीनता का प्रश्न विचार-क्षेत्र से निकाल न देना चाहिए। गोलमेज-परिषद् की रचना सतोष-जनक होनी चाहिए। सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन के रोक लेने की दशा में भी तबतक विदेशी वस्त्र और शराब का धरना जारी रहना चाहिए जबतक कि सरकार स्वय शराब और विदेशी वस्त्र का निषेध कानूनन न करदे और नमक का बनाया जाना बिना किसी भी तरह की सजा के जारी रखना चाहिए।

इसके बाद उन्होने राजनैतिक बन्दियो के छुटकारे का, जायदादो, जुर्मानो और जमानतो के वापस करने का, जिन अफसरो ने अपने पदो से त्यागपत्र दे दिये थे उनकी पुनर्नियुक्ति का और आर्डिनेन्सो को वापस लेने का जिक्र किया था। उन्होने सन्देश-वाहको को सावधान किया था कि मै एक कैदी हूँ इसलिए मुझे राजनैतिक गति-विधियो पर राय देने का कोई हक नही है। ये मसविदे मेरे अपने है। मै स्वराज्य की हरेक योजना को अपनी ११ शर्तों से कसने का हक अपने लिए सुरक्षित रखता हूँ। प० मोतीलाल और जवाहरलाल नेहरू को गाधीजी ने जो पत्र लिखा था उसमे उन्होने समझौते का ठीक समय आ पहुँचा है या नही, इसपर सन्देह प्रकट किया था। इन कागजो के साथ सन्देश-वाहको ने २७ और २८ जुलाई को प० मोतीलाल और जवाहर-लाल नेहरू से मुलाकात की। खूब बहस भी हुई। मोतीलालजी और जवाहरलाल जी

ने २८ जुलाई १६३० के पत्र में अपनी यह राय प्रकट की कि जबतक मुख्य-मुख्य विषयो पर एक समझौता न हो जाय तबतक किसी भी परिषद् में हमें कोई भी चीज न मिल सकेगी।

जवाहरलालजी ने एक पृथक् नोट में लिखा था कि मुझे या मेरे पिताजी को वैधानिक विषय-सम्बन्धी गाधीजी के विचार जँचते नही है, क्योकि वे काग्रेस की प्रतिज्ञाओ और स्थिति के योग्य नही है, और न उनसे वर्तमान समय की माग की ही पूर्ति होती है। ३१ जुलाई तथा १ और २ अगस्त को श्री जयकर गाधीजी से मिले, तब गाधीजी ने उनसे साफ-साफ कहा कि मुझे ऐसी कोई भी शासन-विधान सम्बन्धी योजना स्वीकार न होगी जिसमें चाहे जब साम्राज्य से पृथक होने की इजाजत न हो और जिससे भारतवर्ष को मेरी ग्यारह बातो के अनुसार कार्य करने का अधिकार और शक्ति न मिले। मै अग्रेजो के जो दावे है और भूतकाल में उन्हें जो रिआयतें दी गई है उनकी जाच के लिए एक स्वतत्र कमिटी चाहूँगा। गाधीजी चाहते थे कि वाइसराय को मेरी इस स्थिति से आगाह कर दिया जाय, ताकि वह पीछे यह न कह सकें कि मेरे इन विचारो को वह पहले न जानते थे। उसके थोडे दिन बाद ही दोनो नेहरू और डा० सैयद महमूद यरवडा-जेल में ले जाये गये, ताकि उन्हें गाधीजी से तथा उनके दूसरे मित्रो से, जो यरवडा जेल में थे, मिलने का अवसर मिल सके।

इस प्रकार वहा १४ अगस्त को एक सम्मेलन हुआ, जिसमें एक तरफ मध्यस्थ थे जयकर-सप्रू और दूसरी तरफ गाधीजी, दोनो नेहरू, वल्लभभाई पटेल, डा० सैयद महमूद, श्री जयरामदास दौलतराम और श्रीमती नायडू। इस सम्मेलन का परिणाम १५ अगस्त के एक पत्र में लिखा गया था जिसमें हस्ताक्षर-कर्ताओ ने, जिनमें सब उपस्थित काग्रेसी थे, समझौते की शर्तो को, जिनका अभी जिक्र किया जा चुका है, दोहराया था। उसमें उन्होने भारतवर्ष के पृथक् होने के हक को और अग्रेजो के दावो और उनकी रिआयतो की जाच के लिए एक कमिटी की नियुक्ति की माग को भी शामिल कर दिया था। बातचीत को समाप्त करते समय गाधीजी, श्रीमती सरोजिनी, वल्लभभाई पटेल और श्री जयरामदास दौलतराम ने सन्देश-वाहको को शान्ति-स्थापना के लिए उठाई हुई तकलीफो के लिए धन्यवाद दिया। उन्होने उन्हे सुनाया कि "अब जिनके हाथ में काग्रेस-सस्थायें है वे हम किसीसे मिलने-जुलने की सुविधा स्वभावत पा सकेंगे। जब सरकार भी शान्ति-स्थापना के लिए उतनी ही इच्छुक है तो उस हालत में उन्हें हम तक पहुँचने में कोई कठिनाई नही होनी चाहिए।"

वाइसराय ने २८ अगस्त को एक पत्र लिखा था, जिसमें उन्होने बतलाया कि

कि मै तो प्रान्तीय सरकारो से राजनैतिक बन्दियो को बडी सख्या मे छोडने की प्रेरणा कर सकता हूँ, किन्तु मामलो पर उनके प्रकारो और योग्यता के अनुसार विचार वही करेगी। दोनो नेहरुओ ने, जो नैनी-जेल में वापस ले आये गये थे, ३१ तारीख को गाधीजी को लिखा कि वाइसराय मुख्य प्रारम्भिक बातो पर विचार करना भी गैर-मुमकिन खयाल करते हैं। कुछ समय तक और भी पत्र-व्यवहार हुआ, किन्तु अन्त में हुआ यह कि शान्ति की बात-चीत असफल हो गई। (देखिये परिशिष्ट ६)

सप्रू-जयकर की समझौते की बात-चीत के असफल हो जाने से भारतवर्ष के हितैषियो को निराशा नही हुई। उसके बाद मि० हौरेस जी० अलैक्जैण्डर के, जो सैली ओक कॉलेज मे अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो के अध्यापक थे, उत्साह-पूर्ण प्रयत्न शुरू हुए। वह वाइसराय से और जेल में गाधीजी से मिले। गाधीजी की साफ मागो से वह प्रभावित हुए। उनमें कोई शब्दाडम्बर न था, केवल हिन्दुस्तान की गरीबी की सीधी-सादी समस्यायो का मुकाबला भर करने का प्रयत्न किया गया था। इस समय तक लॉर्ड अर्विन ने एक दर्जन के करीब आर्डिनेन्स निकाल दिये थे, जिनमे गैर-कानूनी उत्तेजन (Unlawful Instigation) आर्डिनेन्स, प्रेस-आर्डिनेन्स और गैर-कानूनी सस्था (Unlawful Association) आर्डिनेन्स भी शामिल थे। लॉर्ड अर्विन ईमानदारी के साथ एकदम 'दुहरी नीति' का अनुसरण कर रहे थे। वह आर्डिनेन्सो की बहुत आवश्यकता भी बताते जा रहे थे और भारतीय राष्ट्रीयता की थोडी कद्र भी कर रहे थे। उन्होने कलकत्ते की यूरोपियन असोसियेशन से कहा था—"यद्यपि हम जोरदार शब्दो में सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन की निन्दा कर सकते है, किन्तु यदि हम भारतवासियो के मस्तिष्क में आज जो राष्ट्रीयता की आग धधक रही है उसके सच्चे और शक्तिपूर्ण अर्थ को ठीक-ठीक न समझेंगे तो हम बडी भारी गलती करेगे।"

गोलमेज-परिषद् शुरू

१२ नवम्बर १९३० को गोलमेज-परिषद् शुरू हुई। अपर-हाउस की शाही गैलरी मे बडी शान के साथ उसका उद्घाटन हुआ था। कुल ८६ प्रतिनिधि थे जिनमे १६ रियासतो से गये थे, ५७ ब्रिटिश भारत से और बाकी १३ इग्लैण्डके भिन्न-भिन्न दलो के मुखिया थे। गोलमेज-परिषद् बीच-बीच में सेण्ट जेम्स महल में भी हुई। शुरू के भाषणो में प्राय सभीने औपनिवेशिक स्वराज्य की चर्चा की। पटियाला, बीकानेर, अलवर और भूपाल के नरेश-प्रतिनिधि सघ-राज्य के पक्ष में थे। शास्त्रीजी

जो भारतवर्ष की स्वाधीनता के पक्ष में बहुत अच्छा बोले, पहले तो संघ-शासन के पक्ष में कुछ झिझकते हुए बोले, किन्तु पीछे उसी के पक्ष में दृढ़ हो गए। प्रधान-मंत्री ने शासन-विधान की सफलता के लिए जरूरी दो मुख्य शर्तें रक्खीं। पहली यह कि शासन-विधान पर अमल किया जाय और दूसरी यह कि उसका विकास होता रहे। उन्होंने इस पिछली बात की खूबिया दिखलाईं। उन्होंने कहा कि जो शासन-व्यवस्था विकासशील होगी उसे अगली पीढ़ी पवित्र विरासत समझेगी। उनके बाद भिन्न-भिन्न उपसमितिया बनाई गईं जिन्होंने रक्षा के अधिकार, सीमा, अल्प-सख्यको, ब्रह्मा, सरकारी नौकरियो और प्रान्तीय तथा संघ-शासन के ढाचो के बाबत बाकायदा रिपोर्टें दी। परिषद् अधिवेशन को जल्दी समाप्त करना चाहती थी, इस लिए १९ जनवरी को खुला अधिवेशन हुआ और उसमें यह निश्चय हुआ कि रिपोर्टों और नोटो में भारतवर्ष का विधान बनाने के लिए अत्यन्त मूल्यवान सामग्री मिलती है यह भी निश्चय हुआ कि आगे कार्य जारी रक्खा जाय।

प्रधानमंत्री ने यह भी साफ कर दिया था कि संघ-शासन के आधार पर जो व्यवस्थापक-सभा बने, जिसमें रियासतें और प्रान्तो दोनों का प्रतिनिधित्व हो, उसमें सरकार व्यवस्थापक-सभा के प्रति कार्यकारिणी की जवाबदेही के सिद्धान्त को स्वीकार करने को तैयार होगी। केवल बाह्यरक्षा और वैदेशिक मामलो के विषय सुरक्षित रक्खे जायँगे। राज्य की शान्ति और आर्थिक स्थिति की मजबूती के लिए गवर्नर-जनरल की जो खास जिम्मेवारिया हैं उन्हें पूरा करने के लिए गवर्नर-जनरल को विशेष अधिकार दे दिये जायँगे। दूसरे भिन्न-भिन्न विषयो की शर्तें भी बतलाई गई थी। उसके बाद प्रधानमंत्री ने भारतवर्ष के भावी शासन-विधान के सम्बन्ध में ब्रिटिश-सरकार की नीति और उसके इरादो की घोषणा की थी —

"ब्रिटिश-सरकार का विचार यह है कि भारतवर्ष के शासन की जिम्मेवारी प्रान्तीय और केन्द्रीय व्यवस्थापक-सभाओ पर रक्खी जाय। संक्रमण-काल में खास-खास जिम्मेवारियो का ध्यान रखने की गारटी देने के लिए और दूसरी खास-खास स्थितियो का मुकाबला करने के लिए उसमें आवश्यक गुजाइश रख ली जाय। अपनी राजनैतिक स्वाधीनता की और अधिकारो की रक्षा के लिए अल्पसख्यकों को जितनी गारटी आवश्यक है वह भी उसमें हो।

"संक्रमण-काल की आवश्यकतायें पूरी करने के लिए जो कानूनी नियम रक्खे जायँगे उनमें यह ध्यान रखना ब्रिटिश-सरकार का प्रथम कर्तव्य होगा कि सुरक्षित अधिकार इस प्रकार के हो और उन्हें इस प्रकार से काम में लाया जाय कि

उनसे नये शासन-विधान-द्वारा भारतवर्ष को अपने निजी शासन की पूरी जिम्मेवारी तक बढने में कोई बाधा न आवे।"

प्रधानमत्री ने यह भी कहा था कि "यदि इस बीच मे वाइसराय की अपील का जवाब उन लोगो की ओर से भी मिलेगा, जो इस समय सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन में लगे हुए है, तो उनकी सेवायें स्वीकार करने की कार्रवाई भी की जायगी।"

पहली गोलमेज-परिषद् की, जिसका कि काग्रेस से कोई सम्बन्ध न था, कार्रवाई जल्दी से सक्षेप में देने का कारण प्रधानमत्री की घोषणा से उद्धृत उक्त वाक्य से मालूम हो जाता है। उस परिषद् को समाप्त हुए अभी एक सप्ताह भी न हुआ था कि भारतवर्ष की स्थिति मे एक महत्वपूर्ण परिवर्तन हो गया, जिसके परिणामस्वरूप गाधीजी और उनके १९ साथियो को जेल से विना शर्त रिहा कर दिया गया। पीछे ७ आदमियो की रिहाई से यह सख्या और भी बढ गई। उस समय वाइसराय ने जो वक्तव्य प्रकाशित कराया था वह भाषा और भाव दोनो में ही सुन्दर था। हम उसे ज्यो-का-त्यो नीचे देते है। किन्तु उसे देने से पूर्व हम काग्रेस-कार्य-समिति-द्वारा पास किये हुए एक विशेष प्रस्ताव को यहा देना आवश्यक समझते हैं, जिसपर 'रिआयती' (Privileged) लिखा हुआ था।

'रिआयती' प्रस्ताव

यह 'रिआयती' प्रस्ताव काग्रेस-कार्यकारिणी ने २१ जनवरी १९३१ को शाम के ४ बजे स्वराज्य-भवन इलाहाबाद मे स्वीकार किया था —

"अ० भा० राष्ट्रीय महासभा की यह कार्य-समिति उस 'गोलमेज-परिषद्' की कार्रवाइयो को स्वीकार करने को तैयार नही है जो ब्रिटिश-पार्लमेण्ट के खास-खास सदस्यो, भारतीय नरेशो और ब्रिटिश-सरकार द्वारा अपने समर्थको मे से चुने हुए उन व्यक्तियो ने मिलकर की थी, जो भारतवासियो के किसी भी वर्ग के चुने हुए प्रतिनिधि नही थे। इस कार्य-समिति की राय मे ब्रिटिश सरकार ने भारतीय प्रतिनिधियो से सलाह लेने का प्रदर्शन करने के लिए जिन तरीको का इस्तेमाल किया है, उनसे उसने स्वय अपने-आपको निन्दनीय ठहराया है। वास्तव में बात तो यह है कि वह भारतवासियो के महात्मा गाधी और जवाहरलाल नेहरू जैसे वास्तविक नेताओ को जेलो में बन्द करके, आर्डिनेन्सो और सजाओ-द्वारा और सविनय-अवज्ञा-द्वारा (जिसे यह कार्य-समिति सभी कुचली हुई जातियो के हाथो में कानूनी हथियार मानती है) अपने देश की स्वाधीनता प्राप्त करने के देशभक्ति-पूर्ण प्रयत्न में लगे हुए

हजारो शान्त, शस्त्र-हीन और मुकाबला न करने वाले लोगो पर लाठी-प्रहार करके और गोलिया चलाकर, इस देश की सच्ची आवाज को रोकती रही है।

"इस कार्य-समिति ने १९ जनवरी १९३१ को मन्त्रि-मण्डल की ओर से इग्लैण्ड के प्रधान-मन्त्री मि० रैम्जे मैकडानल्ट-द्वारा घोषित ब्रिटिश-सरकार की नीति पर खूब विचार कर लिया है। इस समिति की राय में वह इतनी अस्पष्ट और सामान्य है कि उससे काग्रेस की नीति में परिवर्तन नही किया जा सकता।

"यह समिति लाहौर-काग्रेस में स्वीकृत पूर्ण स्वाधीनता के प्रस्ताव पर दृढ है और यरवडा जेल से १५ अगस्त १९३० को लिखे हुए पत्र में म० गाधी, प० मोतीलाल नेहरू, प० जवाहरलाल नेहरू तथा अन्य लोगो ने जो विचार प्रकट किया है उसका समर्थन करती है। उक्त पत्र पर हस्ताक्षर करनेवालो की जो स्थिति है, प्रधानमन्त्री-द्वारा की हुई नीति की घोषणा में उसके लायक उत्तर इस समिति को दिखाई नही देता। समिति का विचार है कि ऐसे उत्तर के अभाव में और हजारो स्त्री-पुरुषो के जेल में होते हुए, जिनमें कि काग्रेस-कार्य-समिति के असली सदस्य और महा-समिति के अधिकाश-सदस्य भी है, तथा जबकि सरकारी दमन का पूरा जोर है, नीति की कोई भी सामान्य घोषणा राष्ट्रीय सघर्ष का कोई सन्तोषप्रद अन्त करने में असमर्थ है। उससे सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन का अन्त हर्गिज नही हो सकता। इसलिए समिति आन्दोलन को पहले दी हुई हिदायतो के अनुसार पूर्ण शक्ति से चलाये जाने की सलाह देश को देती है और विश्वास करती है कि उसने अबतक जिस उच्च तेज का परिचय दिया है वह उसे कायम रक्खेगी।

"समिति देश के पुरुषो, स्त्रियो और बच्चो की उस हिम्मत और मजबूती की इस अवसर पर कद्र करती है जिसके साथ उन्होने सरकार के जुल्मो का मुकाबला किया है, और वह भी उस सरकार के जुल्मो का जो कि ७५ हजार के करीब निर्दोष स्त्री-पुरुषो को जेलो में ठूसने की, कितने ही आम और पाशविक लाठी-प्रहारो की, भिन्न-भिन्न प्रकार की यातनाओ की जो जेलो में तथा बाहर लोगो को दी गई, गोली चलाने की जिससे कि सैकडो ही मनुष्य अपग हो गये और मर गये, सम्पत्ति लूटने की, घरो को जलाने की, कितने ही देहाती हिस्सो में सशस्त्र पुलिसवालो, सवारो और गोरे सिपाहियो की, लाइनो को घुमाने की, लोगो के सार्वजनिक व्याख्यान देने, जुलूस निकालने और सभा करने के हको को छीनने की और काग्रेस तथा उससे सम्बन्धित अन्य सस्थाओ को गैर-कानूनी घोषित करने की, उनकी चल-सम्पत्ति को जब्त करने की और उनके घरो तथा दफ्तरो पर कब्जा करने की जिम्मेवार है।

"समिति देश से अपील करती है कि वह, २६ जनवरी को स्वाधीनता-दिवस, प्रकाशित किये हुए कार्यक्रम के अनुसार, मनावे और यह सिद्ध कर दे कि वह निर्भय और आशापूर्ण होकर स्वाधीनता की लडाई जारी रखने का दृढ-निश्चय कर चुका है।"

सवाल यह था कि आया यह प्रस्ताव प्रकाशित किया जाय या नही ? इसपर मतभेद था। अन्त में यह तय हुआ कि इसे अगले दिन तक प्रकाशित न किया जाय। किन्तु दूसरे दिन अचानक एक ऐसी घटना हो गई जिससे उसे प्रकाशित न करने का निश्चय ही ठीक सिद्ध हुआ। लन्दन से डॉ० सप्रू और शास्त्रीजी का एक तार मिला, जिसमे उन्होने कार्य-समिति से उनके आने से पहले उनकी बातें बिना सुने प्रधानमत्री के भाषण पर कोई निर्णय न करने की प्रार्थना की थी। वह तभी गोलमेज-परिषद् के बाद भारतवर्ष को लौटनेवाले थे। उस तार के अनुसार प्रस्ताव प्रकाशित नही किया गया, किन्तु जैसा कि ऐसे प्राय सभी मामलो मे हुआ करता है, इसकी सूचना इसके पास होने के कुछ देर बाद ही सीधी सरकार के पास पहुँच गई थी।

गवर्नर-जनरल का वक्तव्य

२५ जनवरी १९३१ को गवर्नर-जनरल ने यह वक्तव्य निकाला —

"१९ जनवरी को प्रधानमत्री ने जो वक्तव्य दिया था उसपर विचार करने का अवसर देने की गरज से मेरी सरकार ने प्रान्तीय सरकारो की राय से यह ठीक समझा है कि काग्रेस की कार्य-समिति के सदस्यो को आपस में और उन लोगो के साथ जो १ जनवरी १९३० से समिति के सदस्य के तौर पर काम करते रहे हैं, बातचीत करने की पूरी-पूरी छूट दी जाय।

"इस निर्णय के अनुसार इस उद्देश से और इस गरज से कि वे जो सभाये करें उनके लिए कानूनन कोई रुकावट न हो, समिति को गैर-कानूनी घोषित करनेवाला ऐलान प्रान्तीय सरकारो-द्वारा वापस ले लिया जायगा और गाधीजी तथा अन्य लोगो को, जो इस समय समिति के सदस्य है या जो १ जनवरी १९३० मे सदस्य के तौर पर काम करते रहे है, छोडने की कार्रवाई की जायगी।

"मेरी सरकार इन रिहाइयो पर कोई शर्त नही लगायेगी, क्योकि हम अनुभव करते है कि शान्तिपूर्ण स्थिति वापस लाने की अधिक-से-अधिक आशा इसीमे है कि सम्बन्धित लोग बिना शर्त आजाद होकर बातचीत करें। हमने यह कार्रवाई ऐसी शान्तिपूर्ण स्थिति उत्पन्न करने की हार्दिक इच्छा से की है कि जिसमें प्रधानमत्री

[पाँचवाँ भाग : १९३१]

: १ :

गांधी-अर्विन-समझौता—१९३१

गांधीजी का सन्देश

कांग्रेस-कार्य-समिति के सदस्यों की रिहाई २६ जनवरी की आधीरात से मे पहले होनेवाली थी और इस बात की हिदायत निकाल दी गई थी कि उनकी पत्नियां यदि जेल मे हो तो उन्हें भी रिहा कर दिया जाय। चूंकि जो लोग बीच-बीच में किसीके बजाय (कार्य-समिति के) सदस्य बने थे उनकी रिहाई की भी हिदायत थी, इसलिए इस प्रकार रिहा होनेवालो की कुल सख्या २६ पर पहुँच गई। गाधीजी जैसे ही जेल से छूटे, उन्होंने भारतीय जनता के नाम एक सन्देश निकाला, जो उनके स्वभाव के ही अनुरूप था। क्योंकि जैसे पराजय से वह दुखी नही होते उसी प्रकार सफलता में वह फूल भी नही उठते। उन्होंने कहा —

"जेल से मैं अपनी कोई राय बनाकर नही निकला हूँ। न तो किसीके प्रति मुझे कोई शत्रुता है और न किसी बात का तास्सुब। मैं तो हरेक दृष्टि-कोण से सारी परिस्थिति का अध्ययन करने और सर तेजबहादुर सप्रू तथा दूसरे मित्रो से, जब वे लौटकर आयेंगे, प्रधानमत्री के वक्तव्य पर विचार करने के लिए तैयार हूँ। लन्दन से कुछ प्रतिनिधियो ने तार भेजकर मुझसे ऐसा करने का आग्रह किया है, इसीलिए मैं यह बात कह रहा हूँ।"

समझौते के लिए उनकी क्या शर्तें होंगी, यह पत्र-प्रतिनिधियो की मुलाकात में उन्होंने इगित किया, लेकिन इस बात की घोषणा अविलम्ब की, कि "पिकेटिंग का अधिकार नही छोडा जा सकता, न लाखो भूखो-मरते लोगो-द्वारा नमक बनाने के अधिकार को ही हम छोड सकते हैं।" उन्होंने कहा, "यह ठीक है कि ज्यादातर आर्डिनेन्स नमक बनाने और विदेशी कपडे व शराब के बहिष्कार को रोकने के लिए ही बने हैं, लेकिन ये बातें तो ऐसी हैं जो वर्तमान कुशासन के प्रतिरोधस्वरूप नही बल्कि परिणाम प्राप्त करने के लिए जारी की गई है।" उन्होंने कहा कि मैं शान्ति

के लिए तरस रहा हूँ, बशर्ते कि इज्जत के साथ ऐसा हो सके, लेकिन चाहे और सब मेरा साथ छोड दें और मै बिलकुल अकेला रह जाऊँ तो भी ऐसी किसी सुलह मे मै साझीदार न होऊँगा जिसमे पूर्वोक्त तीन बातो का सन्तोषजनक हल न हो।

"इसलिए गोलमेज-परिषद्-रूपी पेड का निर्णय मुझे उसके फल से ही करना चाहिए।"

गाधीजी, छूटते ही, प० मोतीलाल नेहरू से मिलने के लिए इलाहाबाद चल दिये, जहाकि वह बीमार पडे हुए थे। कार्य-समिति के सब सदस्यो को भी वही बुलाया गया। वही स्वराज्य-भवन में, ३१ जनवरी और १ फरवरी १९३१ को, कार्य-समिति की बैठक हुई, जिसमें निम्न प्रस्ताव पास हुआ —

"कार्य-समिति ने श्री शास्त्री, सप्रू और जयकर के इच्छानुसार २१–१–३१ को पास किया हुआ अपना प्रस्ताव प्रकाशित नही किया था, इससे सर्वसाधारण में यह खयाल फैल गया है कि सविनय अवज्ञा-आन्दोलन स्थगित कर दिया गया है। इसलिए समिति के इस निश्चय की ताईद करना आवश्यक है कि जबतक स्पष्ट रूप से आन्दोलन को बन्द करने की हिदायत न निकाली जाय तबतक आन्दोलन बराबर जारी रहेगा। यह सभा लोगो को इस बात का स्मरण कराती है कि विदेशी कपडे और शराब तथा अन्य नशीली चीजो की दूकानो पर धरना देना अपने-आप में सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन का कोई अग नही है, बल्कि जबतक वह बिलकुल शान्ति-पूर्ण रहे और जबतक सर्वसाधारण के कार्य में उससे कोई रुकावट न पडती हो तबतक वह नागरिको के साधारण अधिकार के अन्तर्गत ही है।

"यह समिति विदेशी कपडे के, जिसमें विदेशी सूत से बना हुआ कपडा भी शामिल है, व्यापारियो और काग्रेस-कार्यकर्ताओ को स्मरण कराती है कि चूकि सर्व-साधारण की भलाई के लिए विदेशी कपडे का बहिष्कार बहुत जरूरी है, इसलिए यह राष्ट्रीय हलचल का एक आवश्यक अग है और उस वक्त तक ऐसा ही बना रहेगा जबतक कि राष्ट्र को तमाम विदेशी कपडा और विदेशी सूत हिन्दुस्तान से बहिष्कृत कर देने की शक्ति प्राप्त न हो जाय, फिर ऐसा चाहे विदेशी कपडे पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाकर किया जाय या प्रतिबन्धक-तटकर लगाकर।

"विदेशी कपडे का बहिष्कार करने की काग्रेस की अपील पर ध्यान देकर, विदेशी कपडे और सूत के व्यापारियो ने इस दिशा में जो कार्य किया है, उसकी यह समिति प्रशसा करती है, लेकिन इसके साथ ही वह उन्हें यह स्मरण करा देना चाहती है कि कोई भी काग्रेस-सस्था उन्हें इस बात का आश्वासन नही दे सकती कि हिन्दुस्तान में जो ऐसा माल बचा हुआ है उसको वह कही और खपा देगी।"

प० मोतीलाल नेहरू का स्वर्गवास

कार्य-समिति के असली और ऐवजी सदस्य ३ फरवरी तक इलाहाबाद ही रहे। पण्डित मोतीलाल की हालत दिन-ब-दिन खराब होती जाती थी और यह आवश्यक समझा गया कि उन्हे 'एक्सरे-परीक्षा' के लिए लखनऊ ले जाया जाय। तबतक करीब-करीब सभी लोग थोडे दिनो के लिए वहा से चले गये, पर गाधीजी-सहित कुछ लोग वही रहे। गाधीजी तो मोतीलालजी के साथ लखनऊ भी गये, जहा मौत से बडी कशमकश के बाद इन अन्तिम शब्दो के साथ मोतीलालजी सदा के लिए हमसे विदा हो गये—"हिन्दुस्तान की किस्मत का फैसला स्वराज्य-भवन मे ही कीजिए। मेरी मौजूदगी में ही फैसला कर लो। मेरी मातृ-भूमि के भाग्य-निर्णय के आखिरी सम्मान-पूर्ण समझौते में मुझे भी साझीदार होने दो। अगर मुझे मरना ही है, तो स्वतन्त्र-भारत की गोद में ही मुझे मरने दो। मुझे अपनी आखिरी नींद गुलाम देश में नही बल्कि आजाद देश में ही लेने दो।" इस प्रकार पण्डितजी की महान् आत्मा हमसे जुदा हो गई। निस्सन्देह वह एक शाही तबीयत के आदमी थे—न केवल बौद्धिक दृष्टि से बल्कि धन, सस्कृति और स्वभाव सभी दृष्टियो से। जब कि उनकी दूरन्देशी और तत्काल-बुद्धि से राष्ट्र को अपने सामने उपस्थित पेचीदा समस्यायो को स्पष्ट रूप से सुलझाने में बडी मदद मिलती उस समय उनका हमारे बीच से उठ जाना राष्ट्र की ऐसी भारी क्षति थी कि वस्तुत जिसकी पूर्ति नही हो सकती, क्योंकि वह न केवल बडे दूरन्देश ही थे, बल्कि हमारे सामने छाई हुई राजनैतिक समस्याओ की तफसीलो मे उतरकर जल्द और सही निर्णय पर पहुँचने में भी एक ही थे।

हालांकि उनका रहन-सहन बहुत अमीरी था, मगर गाधीजी से प्रभावित होकर उन्होंने भी जीवन को शुद्ध और पवित्र बनाने की आवश्यकता महसूस की; और इसके लिए स्वेच्छा-पूर्वक गरीबी और कष्ट-सहन को अपनाया। यह भी नही कि उन्होने अपने धन का अकेले ही उपभोग किया हो। वह धनिकवर्ग के उन थोडे-से व्यक्तियो में से हैं जिन्होने राष्ट्र को भी अपने धन का भागीदार बनाया है। काग्रेस को उन्होने आनन्द-भवन की जो भेंट दी वह उनकी देशभक्ति और उदारता के अनुकूल ही थी। लेकिन दरअसल इसे ही हम राष्ट्र के प्रति उनकी सबसे बडी भेंट नही कह सकते, उनकी सबसे बडी भेंट तो उनकी वह विरासत है जो अपने पुत्र के रूप में उन्होने राष्ट्र को प्रदान की है। ऐसे पिता बहुत कम मिलेंगे जो अपने पुत्रो को जज, मिनिस्टर, राजदूत या एजेण्ट-जनरल के बडे-बडे ओहदो पर न देखना चाहें,

लेकिन मोतीलालजी ने दूसरा ही रास्ता पकडा। मोतीलालजी अब नही रहे, लेकिन उनकी स्पिरिट, अब भी काग्रेस के ऊपर मँडरा रही है और विचार-विनिमय एव निर्णय के समय मार्ग-प्रदर्शन करती रहती है।

राजनैतिक परिस्थिति में इस समय जो बात वस्तुत शोकजनक थी, और जिसके लिए गाधीजी खास तौर पर चिन्तित थे, वह तो यह थी कि इग्लैण्ड मे खूब चिल्ला-चिल्लाकर हिन्दुस्तान को स्वतन्त्रता देने की जो बात कही जा रही थी उसके कारण हिन्दुस्तान के अधिकारियो के रुख में कोई परिवर्तन नजर नही आ रहा था। "चारो ओर दमन-चक्र अपने भयंकर रूप में जारी है," 'न्यूज क्रानिकल' को दिये हुए अपने तार में गाधीजी ने लिखा, "निर्दोष व्यक्तियों पर अकारण मारपीट अभीतक जारी है। इज्जतदार आदमियो की चल और अचल सम्पत्ति, विना किसी प्रत्यक्ष कारण के, सरसरी तौर पर वरायनाम कानूनी कार्रवाई करके जब्त कर ली जाती है। स्त्रियो के एक जुलूस को भग करने में बल-प्रयोग किया गया। उन्हें जूतो की ठोकरें मारी गई और बाल पकडकर घसीटा गया। ऐसा दमन जारी रहा तो काग्रेस के लिए सरकार से सहयोग करना सम्भव न होगा, चाहे दूसरी कठिनाइया हल ही क्यो न हो जायें।

वाइसराय से मुलाकात

खानगी तौर पर इस बात की हिदायतें जारी की गई कि आन्दोलन तो जरूर जारी रहे, पर कोई नया आन्दोलन या ऐसी बात शुरू न की जाय जिससे परिस्थिति कोई नया रूप धारण कर ले। ठीक इसी समय गोलमेज-परिषद् में, गये हुए प्रतिनिधि लौट कर हिन्दुस्तान आये और आते ही, ८ फरवरी १९३१ को उन्होंने कांग्रेस से निम्न प्रकार अपील की :—

"(गोलमेज-परिषद् की) योजना अभी तो खाली एक खाका है, तफसील की बातें तो, जिनमें से कुछ बहुत सार की और महत्त्वपूर्ण है, अभी तय होनी है। हमारी यह दिली ख्वाहिश है कि अब काग्रेस तथा अन्य दलो के नेता आगे बढकर इस योजना की पूर्ति के लिए अपना रचनात्मक सहयोग प्रदान करें। हमें आशा है कि वातावरण को ऐसा शान्त कर दिया जायगा जिसमें इन आवश्यक विषयों पर भलीभाति विचार किया जा सके और राजनैतिक कैदियों की रिहाई हो सके।"

लेकिन इसके बाद भी सजायें दी जाती रही और फरवरी १९३१ में कानपुर शहर में पिकेटिंग के अपराध में १३८ गिरफ्तारिया हुई ? साथ ही जेलो में भी—

क्या खाना-कपडा और क्या दवा-दारू—कैदियो के साथ वैसा ही खराब व्यवहार होता रहा जैसा पहले होता था, और उन्हें पहले की ही तरह सजा भी दी जाती रही। १३ फरवरी को इलाहाबाद में कार्य-समिति की बाजाब्ता बैठक हुई। इस समय तक डॉ० सप्रू और शास्त्रीजी हिन्दुस्तान आ गये थे। गाधीजी व कार्य-समिति से मिलने के लिए वे दौडे हुए इलाहाबाद गये। कार्य-समिति के साथ उनकी लम्बी बहस हुई, जिसमें कार्य-समिति के सदस्यो ने उनसे कडी-से-कडी जिरह की। यहा तक कि कभी-कभी तो कार्य-समिति के सदस्य उनके प्रति मृदुता तक न रख पाते थे, क्योकि शास्त्रीजी इंग्लैण्ड में कुछ ऐसी बात कह गये थे कि जिससे सर्वसाधारण में उत्तेजना ही नही फैल रही थी, बल्कि उनके प्रति रोप भी छा रहा था। खैर, जो हो। गाधीजी ने लॉर्ड अर्विन को एक पत्र लिखा, जिसमें देश मे पुलिस-द्वारा की जा रही ज्यादतियो, खास-कर २१ जनवरी को बोरसद में स्त्रियो पर किये जानेवाले हमले की ओर उनका ध्यान आकर्षित करते हुए उनसे पुलिस के कारनामो की जाच कराने के लिए कहा। लेकिन इस माग को ठुकरा दिया गया और ऐसा मालूम होने लगा मानो सुलह-शान्ति की सारी बात-चीत का खात्मा हो गया। मगर यह महसूस किया गया कि अगर काग्रेस और सरकार को मिलना है तो इसके लिए दो में से किसी एक को ही पहले आगे बढाना पडेगा। सरकार अपनी तरफ से कार्य-समिति के सदस्यो को बिना किसी शर्त के रिहा कर चुकी थी। तब कार्य-समिति या गाधीजी अपनी ओर से वाइसराय को मुलाकात के लिए क्यो न लिखें, बजाय इसके कि बाजाब्ता पत्र-व्यवहार की बाट देखते रहें? सत्याग्रही को शान्ति के लिए ऐसे उपाय ग्रहण करने में कोई हिचकिचाहट नही होती। अतएव गाधीजी ने लॉर्ड अर्विन को मुलाकात के लिए एक सक्षिप्त पत्र लिखा, जिसमें उनसे बहैसियत एक मनुष्य बात-चीत करने की इच्छा प्रकट की। यह पत्र १४ तारीख को भेजा गया और १६ तारीख के बडे सबेरे तार-द्वारा इसका जवाब आ गया। १६ तारीख को ही गाधीजी दिल्ली के लिए रवाना हो गये, और पुरानी कार्य-समिति के अन्य सदस्य भी शीघ्र ही दिल्ली पहुँच गये। कार्य-समिति ने एक प्रस्ताव-द्वारा गाधीजी को काग्रेस की ओर से सुलह-सम्बन्धी सब अधिकार दे दिये थे। गाधीजी ने १७ फरवरी को वाइसराय से पहली बार मुलाकात की और कोई चार घण्टे तक वाइसराय से उनकी बातें होती रही। तीन दिन तक लगातार यह बात-चीत चलती रही।

इस बात-चीत के दौरान मे गाधीजी ने पुलिस-द्वारा की गई ज्यादतियो की जाच और पिकेटिंग के अधिकार पर जोर दिया। इनके अलावा वे शर्तें थी जोकि

सुलह के समय आम तौर पर हुआ करती है, जैसे कैदियो की आम रिहाई, विशेष कानूनो (ऑर्डिनेन्सो) को रद करना, जब्त की हुई सम्पत्ति को लौटाना और उन सब कर्मचारियो को जिन्हे इस्तीफा देना पडा है या नौकरी से हटा दिया गया है फिर से बहाल करना। ये सब बातें, खासकर पिकेटिंग का अधिकार और पुलिस की जाच के विषय, ऐसी विवादास्पद थी कि जिनपर तुरन्त कोई समझौता होने की सम्भावना नही थी। १६ फरवरी को वाइसराय-भवन से जो सरकारी विज्ञप्ति प्रकाशित हुई उसमे कहा गया कि बात-चीत के दौरान में कई ऐसी बाते सामने उठी है जिनके बारे में विचार किया जा रहा है। यह बहुत सम्भव है कि उसके आगे बात-चीत होने मे कई दिन लग जायँ।

पहले दिन बडे उत्साह के साथ गाधीजी डॉ० अन्सारी के मकान पर लौटे जहा कि वह स-दलबल ठहरे हुए थे। पहले दिन की बातचीत से एक प्रकार की निश्चित आशा बँधती थी। दूसरे दिन यह स्पष्ट हो गया कि गाधीजी की स्थिति को वाइसराय समझते तो है, लेकिन उसके अनुसार करने को तैयार न थे। चूकि इग्लैण्ड के निर्णय की प्रतीक्षा थी, इसलिए बातचीत कुछ समय के लिए रुकने की सम्भावना पैदा हो गई, और स्वय वाइसराय ने गाधीजी को दुबारा शनिवार २१ तारीख को बुलाने के लिए कहा। लेकिन गुरुवार १६ तारीख को एकाएक बुलावा आ पहुँचा। इधर सरकार और काग्रेस के बीच चलनेवाली बातचीत के दौरान में उठनेवाले विविध विषयो के विचारार्थ १२ व्यक्तियों का एक छोटा सम्मेलन करने का विचार किया गया, जिनकी सख्या बाद में बढकर २० हो गई। वाइसराय लन्दन से इस विषय में तार आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। इसलिए इस सम्मेलन को २४ ता० तक ठहरना पडा।

बहुत प्रतीक्षा के बाद आखिर २६ ता० को वाइसराय का बुलावा आ ही पहुँचा। २७ ता० को गाधीजी वाइसराय के पास गये और साढे-तीन घण्टे तक बहुत खुलकर, साफ-साफ और मित्रता-पूर्वक बातचीत हुई। बातचीत में कठोर शब्द एक भी नही कहा गया, और वाइसराय इस बात के लिए उत्सुक थे कि गाधीजी बातचीत तोड न दें।

२८ ता० को, वाइसराय की इच्छानुसार गाधीजी ने पिकेटिंग के बारे में उन्हें अपना मन्तव्य भेजा और वाइसराय ने प्रस्तावित समझौते के बारे में अपने कुछ विचार गाधीजी को लिख भेजे। समझौते के सिलसिले में उठी हरेक बात पर वाइसराय ने गाधीजी के निश्चित विचार जानने चाहे और उनके लिए, जैसा कि

पहले तय हो चुका था, १ मार्च के दिन दोपहर के २॥ बजे उन्हें वाइसराय-भवन में मिलने के लिए बुलाया। १ मार्च के रोज हालत एकदम निराशाजनक मालूम पड़ने लगी। ऐसा प्रतीत होने लगा कि फिर से लड़ाई छेड़े बिना कोई चारा नहीं है। कार्य-समिति के हरेक सदस्य के मुंह से यही एक आवाज सुनाई पड़ती थी कि "समझौते की बातचीत बन्द कर दो।" कोई एक भी सदस्य इसका अपवाद न था। तुरन्त ही चारों तरफ यह बात फैल गई। चारों तरफ हलचल मच गई और हर जगह परेशानी नजर आने लगी।

निश्चित समय पर गांधीजी वाइसराय से मिले और सायंकाल ६ बजे वाइसराय-भवन से वापस आ गये। इतने थोड़े समय में उनके लौट आने से एकदम निराशा छा गई, लेकिन शीघ्र ही समझौते की फिर से आशा बंधने लगी। १ मार्च के तीसरे पहर जब गांधीजी वाइसराय से मिले तो वाइसराय का रुख बिलकुल दोस्ताना था। होम-सेक्रेटरी मि० इमर्सन भी बड़ी अच्छी तरह पेश आये। वाइसराय ने गांधीजी से कहा कि मि० इमर्सन के सलाह-मशविरे से वह पिकेटिंग के बारे में कोई हल सोचें।

आशाजनक परिस्थिति

इसके बाद वातावरण बिलकुल बदल गया। आपस में मित्रता के आसार नजर आने लगे। इतने समय के बाद अब सम्भवत हम यह कह सकते हैं कि अधिकारों की भावना के ऊपर कर्त्तव्य-भाव ने विजय न पाई होती तो शायद समझौता बिलकुल ही न हुआ होता। पिकेटिंग के बारे में बहस-तलब एक बात यह थी कि वह सारे "विदेशी माल के खिलाफ की जाय या ब्रिटिश माल के?" दूसरी बात उसके लिए ग्रहण किये जानेवाले साधनों के बारे में थी। यह स्पष्ट है कि ब्रिटिश-माल का बहिष्कार प्रारम्भ में कांग्रेस-कार्यक्रम का अंग नहीं था बल्कि बाद के सालों में, खासकर लड़ाई के दिनों में, उसमें शामिल किया गया, इसलिए यह निश्चित है कि उसी लड़ाई के लिए और राजनैतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए दबाव डालने को राजनैतिक शस्त्र मानकर ही ग्रहण किया गया था। अतएव विदेशी माल की पिकेटिंग का ही विचार किया गया। इस प्रकार, जैसा कि आगे हम देखेंगे, समझौते की एतद्विषयक भाषा बिलकुल स्पष्ट कर दी गई। वाइसराय ने बहिष्कार शब्द के प्रयोग पर आपत्ति की। उनके खयाल में पिकेटिंग और बहिष्कार ऐसी चीजें हैं जो एक-दूसरे के रूप में परिवर्तित हो सकती हैं। और अस्थायी सन्धि के समय विदेशी माल और ब्रिटिश-माल में फर्क तो किया ही जाना

चाहिए। इस सम्बन्धी सामान्य वाद-विवाद के बाद लॉर्ड अर्विन ने गांधीजी और मि० इमर्सन से आपस में मिलकर कोई हल निकालने के लिए कहा और वह निकाल भी लिया गया।

इसके बाद ताजीरी पुलिस के बारे में बातचीत हुई और वह सन्तोषजनक रही। यह तय रहा कि इसके बाद जुर्माने वसूल नहीं किये जायँगे लेकिन अभीतक जो रकम वसूल हो चुकी है वह नहीं लौटाई जायगी। कैदियों के रिहाई के बारे में वाइसराय ने उदारता और सहानुभूति के साथ विचार करने का वादा किया। पहली मार्च की रात को जेल-सम्बन्धी और दंगा, शरारत व चोरी के जुर्मों पर विचार हुआ। प्रसगवश यहा यह भी बता देना आवश्यक है कि शाम को भोजन के बाद गांधीजी फिर से वाइसराय-भवन गये थे और बातचीत पुन जारी हुई थी। गांधीजी ने नजरबन्दो का भी प्रश्न उठाया और वाइसराय ने निश्चित रूप से यह आश्वासन दिया कि सामूहिक रूप में नही पर वैयक्तिक रूप मे वह उनके मामलो की तहकीकात अवश्य करेंगे। जब्त सम्पत्ति के बारे मे तय हुआ कि उसमें से जो बिक चुकी है वह नही लौटाई जा सकती। गांधीजी से कहा गया कि इसके लिए वह प्रान्तीय सरकारो से मिलें, क्योंकि भारत-सरकार प्रान्तीय-सरकारों से सीधी बातचीत चलाने के लिए तैयार नहीं है। मगर जब्त जमीनो के बारे मे बम्बई-सरकार के नाम एक सिफारिशी चिट्ठी गांधीजी को देने का वाइसराय ने वादा किया।

गांधीजी ने इस बात-चीत का जो बयान किया उसे सुनकर श्री वल्लभभाई पटेल ने गुजरात के उन दो डिप्टी-कलेक्टरो का मामला भी इसमें शामिल करने के लिए कहा जिन्होने लडाई के समय पद-त्याग किया था। नमक के बारे में तो स्थिति अच्छी ही रही। जिन जगहों पर नमक अपने-आप तैयार होता है वहा से आजादी के साथ नमक लेने देने का वाइसराय ने आश्वासन दिया। यह एक ऐसी सुविधा थी जो गांधीजी के लिए बडी सन्तोष-जनक हुई। पुलिस की ज्यादतियो के प्रश्न पर दोनो ही अड गये। गांधीजी ने इस सम्बन्ध में अपनेको कार्य-समिति पर ही छोड दिया। उन्होंने कहा, जो कुछ वह मुझे आदेश देगी मैं तो बाखुशी उसीका पालन करूँगा। "अगर आप बात-चीत तोडना चाहें", उन्होंने कहा, "तो मै बातचीत तोडने के लिए ही वाइसराय के पास जाऊँगा।" वाइसराय से बातचीत करके वह रात के १ बजे वापस आये और रात के २। बजे तक कार्य-समिति के सदस्यो व अन्य मित्रो के सामने भाषण दिया। वाइसराय और मि० इमर्सन दोनो ही अच्छी तरह पेश आये थे। पिकेटिंग के बारे में उसी रात एक हल निकल आया, लेकिन उसपर और विचार करने के लिए ३ मार्च

का दिन तय हुआ, क्योंकि २ मार्च को सोमवार पड़ता था, जो गांधीजी का मौन-दिवस था।

समझौते की जो आशा बँध रही थी, ३ मार्च को उसमें एक और बड़ी कठिनाई उत्पन्न हो गई। बारडोली के किसानों की जमीन लौटाने के मामले पर पहले भी विचार हुआ था, अब फिर उस मामले को उठाया गया। इस बारे में जो भी हल सोचा जाय, वह ऐसा होना लाजिमी था जिसे वल्लभभाई मान लें। अतएव दिन की बातचीत में गांधीजी ने वाइसराय से कहा कि मैं कोई ऐसा हल सोचकर कि जो वल्लभभाई को मान्य हो, रात को फिर आऊँगा, इसलिए फिलहाल इस विषय की चर्चा बन्द कर देना चाहिए। इधर, वस्तुस्थिति यह थी कि, वाइसराय की भी अपनी कठिनाइयाँ थीं। यह समझा जाता है कि जब बारडोली में करबन्दी-आन्दोलन अपने पूरे जोर पर था तब उन्होंने बम्बई-सरकार को एक पत्र लिखा था, जिसमें लिखा था कि चाहे कुछ हो, मैं किसानों की जब्त जमीनें लौटाने के लिए कभी नहीं कहूँगा। इसलिए यह स्वाभाविक ही था कि अब उससे बिलकुल उल्टी बात लिखने के लिए वह तैयार नहीं थे। उन्होंने चाहा कि गांधीजी सर पुरुषोत्तमदास और सर इब्राहीम रहीमतुल्ला से इसके लिए बीच में पड़ने को कहें, और आशा प्रकट की कि सब ठीक हो जायगा। गांधीजी ने चाहा कि वाइसराय स्वयं ऐसा करें। आखिरकार वाइसराय बम्बई-सरकार के नाम ऐसा पत्र लिखने को तैयार हुए कि जमीनें प्राप्त कराने के मामले में पूर्वोक्त दोनों महानुभावों की मदद ली जाय। और असलियत तो यह है कि इस बातचीत के दौरान में बम्बई-सरकार के रेवेन्यू-मेम्बर भी दिल्ली पहुँचे थे जो, यह स्पष्ट है, इस सम्बन्धी बातचीत के लिए ही बुलाये गये थे। श्री सप्रू, जयकर और साथ ही शास्त्रीजी ने, जब कोई कठिनाई उत्पन्न हुई तो उसे सुलझाने के लिए, बड़ा काम किया।

आरजी सुलह

इसपर लम्बी बहस हुई और ३ तारीख के सायकाल एक बार फिर ऐसा मालूम पड़ने लगा कि बस अब समझौते की बातचीत भंग हुई। लेकिन फिर उपर्युक्त नोट में उल्लिखित हल निकाला गया और उसके साथ धारा (स) में यह वाक्य भी जोड़ा गया कि 'जहाँतक सरकार से सम्बन्ध है'—जो कि सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास और सर इब्राहीम रहीमतुल्ला जैसे लोगों के बीच में पड़कर सम्भव हो तो किसानों को जमीनें वापस दिलाने की गुंजाइश रखने की गर्ज से किया गया।

३ तारीख की रात के २॥ बजे (अर्थात् ४ मार्च १९३१ के बड़े सवेरे) गांधीजी

वाइसराय-भवन से वापस लौटे। सब लोग उनकी प्रतीक्षा मे जाग रहे थे। गाधीजी बडे उत्साह में थे। मामूल के मुताबिक गाधीजी ने उस रात की सब घटनायें कार्य-समिति के सदस्यो को सुनाईं। कार्य-समिति के सदस्यो में शाम तक भी पिकेटिंग के सम्बन्ध में सोचे गये हल पर खूब गरमागरम वादविवाद हुआ था, क्योकि पहले-पहल उसका जो मसविदा बनाया गया उसमें मुसलमान दूकानदारो के यहा पिकेटिंग न करने की धारा रक्खी गई थी। सरकार उसे रखना चाहती थी, लेकिन अन्त में उसे छोड ही दिया गया। समझौते की हरेक मद में थोडी-बहुत खामी थी। कैदियो की रिहाई में सिर्फ सत्याग्रही कैदियो का उल्लेख था। नजरबन्दो के मामलो पर सिर्फ यह कहा गया कि तफसील में उनपर विचार किया जायगा। शोलापुर के और गढवाली कैदियो का तो उसमें जिक्र ही नही था। पिकेटिंग-सम्बन्धी धारा के कारण विशेषत ब्रिटिश माल पर ही धरना नही दिया जा सकता था। जब्तशुदा या बेच दी जानेवाली जमीनो की वापसी स्वय ही एक समस्या बन गई थी, क्योकि १७ (स) धारा उसमें मौजूद थी, जो काग्रेस के लिए एक विकट समस्या थी।

आखिरी बैठक में आखिरकार गाधीजी ने स्वय ही विधान-सम्बन्धी एक अत्यन्त आवश्यक विषय को तँय कर लिया, अलबत्ता यह शर्त रक्खी गई कि यदि कार्य-समिति उसे मजूर कर लें। गाधीजी उस योजना पर आगे विचार चलाने के लिए तैयार हो गये, जिसपर "भारत में वैध-शासन स्थापित करने की दृष्टि से गोलमेज-परिषद् में विचार हुआ था और जिस योजना का सघ-शासन तो अनिवार्य अग था ही, पर साथ ही भारतीय उत्तरदायित्व और भारत के हित की दृष्टि से रक्षा (सेना), वैदेशिक मामले, अल्पसख्यक जातियो की स्थिति, भारत की आर्थिक साख और जिम्मेवारियो की अदायगी जैसे विषयों पर प्रतिबन्ध या सरक्षण भी जिसके मुख्य भाग थे।" इस प्रकार गाधीजी और वाइसराय-द्वारा बनाया हुआ यह आरजी समझौता फिर कार्य-समिति के सामने आया। अब यह उसके ऊपर था कि वह चाहे तो उसे मजूर करे और चाहे तो रद कर दे। वल्लभभाई समझौते के जमीनो-सम्बन्धी अश से सहमत नही थे। जवाहरलालजी को विधान-सम्बन्धी अश नापसन्द था। कैदियो वाली बात पर तो किसीको भी सन्तोष न था। लेकिन अगर हरेक मुद्दा ऐसा होता कि उसपर हरेक को सन्तोष हो जाता तो फिर वह समझौता ही कहा रहता, वह तो काग्रेस की जीत ही न होती ! जब काग्रेस समझौता या राजीनामा कर रही थी तब ऐसा नही हो सकता कि उसी-उसकी बात रहे। अलबत्ता कार्य-समिति चाहे तो प्रस्तावित समझौते के किसी मुद्दे को या सारे समझौते को ही रद्द कर सकती थी। गाधीजी ने अलग-अलग

कार्य-समिति के हरेक सदस्य से पूछा कि क्या कैदियो के प्रश्न पर, पिकेटिंग के मामले पर, जमीनो के सवाल पर, अन्य किसी वात पर या हरेक वात पर, या आप कहें तो समूचे समझौते पर, मै सुलह की वातचीत तोड दू ?

इस प्रकार १५ दिन तक सरकार और काग्रेस के वीच खूब गहरा वाद-विवाद होन के वाद यह समझौता वनकर तैयार हुआ। गाधीजी और लॉर्ड अर्विन में जो श्रेष्ठतम गुण थे उनमें से कुछ का इस वातचीत के दौरान में पूरा प्रयोग हुआ। उसीके परिणाम-स्वरूप (५ मार्च १९३१ को), यह समझौता हुआ जो ज्यो-का-त्यो नीचे दिया जाता है —

सरकारी विज्ञप्ति

"सर्व-साधारण की जानकारी के लिए कौंसिल-सहित गवर्नर-जनरल का निम्न वक्तव्य प्रकाशित किया जाता है —

(१) वाइसराय और गाधीजी के बीच जो वात-चीत हुई उसके परिणाम-स्वरूप, यह व्यवस्था की गई है कि सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन वन्द हो, और सम्राट् सरकार की सहमति से भारत-सरकार तथा प्रान्तीय सरकारें भी अपनी तरफ से कुछ कार्रवाई करें।

(२) विधानसबधी प्रश्न पर, सम्राट्-सरकार की अनुमति से, यह तय हुआ है कि हिन्दुस्तान के वैध-शासन की उसी योजना पर आगे विचार किया जायगा जिसपर गोलमेज-परिषद् मे पहले विचार हो चुका है। वहा जो योजना वनी थी, सघ-शासन उसका एक अनिवार्य अग है, इसी प्रकार भारतीय-उत्तरदायित्व और भारत के हित की दृष्टि से रक्षा (सेना), वैदेशिक मामले, अल्पसख्यक जातियो की स्थिति, भारत की आर्थिक साख और जिम्मेदारियो की अदायगी जैसे विषयो के प्रतिवन्ध या सरक्षण भी उसके आवश्यक भाग है।

(३) १९ जनवरी १९३१ के अपने वक्तव्य में प्रधान-मन्त्री ने जो घोषणा की है उसके अनुसार, ऐसी कार्रवाई की जायगी जिससे शासन-सुधारो की योजना पर आगे जो विचार हो उसमें काग्रेस के प्रतिनिधि भी भाग ले सकें।

(४) यह समझौता उन्ही वातो के सम्वन्ध में है, जिनका सविनय अवज्ञा-आन्दोलन से सीधा सम्वन्ध है।

(५) सविनय अवज्ञा अमली रूप में वन्द कर दी जायगी और (उसके वदले में) सरकार अपनी तरफ से कुछ कार्रवाई करेगी। सविनय अवज्ञा-आन्दोलन

को अमली तौर पर बन्द करने का मतलब हैं उन सब हलचलो को बन्द कर देना, जोकि किसी भी तरह उसको बल पहुँचानेवाली हो—खासकर नीचे लिखी हुई बातें—

१ किसी भी कानून की धाराओ का सगठित भग।

२ लगान और अन्य करो की बन्दी का आन्दोलन।

३ सविनय अवज्ञा-आन्दोलन का समर्थन करनेवाली खबरो के परचे प्रकाशित करना।

४ मुल्की और फौजी (सरकारी) नौकरियो को या गाव के अधिकारियो को सरकार के खिलाफ अथवा नौकरी छोडने के लिए आमादा करना।

(६) जहा तक विदेशी कपडो के बहिष्कार का सम्बन्ध है, दो प्रश्न उठते हैं—एक तो बहिष्कार का रूप और दूसरा बहिष्कार करने के तरीके। इस विषय में सरकार की नीति यह है—भारत की माली हालत को तरक्की देने के लिए आर्थिक और व्यावसायिक उन्नति के हितार्थ जारी किये गये आन्दोलन के अग-रूप भारतीय कला-कौशल को प्रोत्साहन देने मे सरकार कीं सहमति है और इसके लिए किये जानेवाले प्रचार, शान्ति से समझाने-बूझाने व विज्ञापनबाजी के उन उपायो में रुकावट डालने का उसका कोई इरादा नही है जो किसीकी वैयक्तिक-स्वतन्त्रता में बाधा उपस्थित न करें और जो कानून व शान्ति की रक्षा के प्रतिकूल न हो। लेकिन विदेशी माल का बहिष्कार (सिवा कपडे के, जिसमे सब विदेशी कपडे शामिल हैं) सविनय अवज्ञा-आन्दोलन के दिनो में—सम्पूर्णत नहीं तो भी प्रधानत —ब्रिटिश माल के विरुद्ध ही लागू किया गया हैं और वह भी निश्चित-रूप से राजनैतिक उद्देश की सिद्धि के लिए दबाव डालने की गरज से।

यह मानी हुई बात है कि इस तरह का और इस उद्देश से किया जानेवाला बहिष्कार ब्रिटिश-भारत, देशी राज्य, सम्राट् की सरकार और इग्लैण्ड के विभिन्न राजनैतिक दलो के प्रतिनिधियो के बीच होनेवाली स्पष्ट और मित्रता-पूर्ण बातचीत में काग्रेस के प्रतिनिधियो की शिरकत के, जो कि इस समझौते का प्रयोजन है, अनुकूल न होगा। इसलिए यह बात तय पाई है कि सविनय अवज्ञा-आन्दोलन बन्द करने में ब्रिटिश माल के बहिष्कार को राजनैतिक-शस्त्र के तौर पर काम में लाना निश्चित रूप से बन्द कर देना भी शामिल है, और इसलिए आन्दोलन के समय में जिन्होने ब्रिटिश माल की खरीद-फरोख्त बन्द कर दी थी वे यदि अपना निश्चय बदलना चाहें तो अबाध-रूप से उन्हें ऐसा करने दिया जायगा।

(७) विदेशी माल के स्थान पर भारतीय माल का व्यवहार करने और

शराब आदि नशीली चीजों के व्यवहार को रोकने के लिए काम में लाये जानेवाले उपायों के सम्बन्ध में तय हुआ है कि ऐसे उपाय काम में नहीं लाये जायेंगे जिनसे कानून की मर्यादा का भंग होता हो। पिकेटिंग उग्र न होगा और उसमें जबरदस्ती, धमकी, रुकावट डालने, विरोधी प्रदर्शन करने, सर्वसाधारण के कार्य में खलल डालने या ऐसे किसी उपाय को ग्रहण नहीं किया जायगा जो साधारण कानून के अनुसार जुर्म हों। यदि कहीं इन उपायों से काम लिया गया तो वहां की पिकेटिंग तुरन्त मौकूफ कर दी जायगी।

(८) गांधीजी ने पुलिस के आचरण की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित किया है और इस सम्बन्ध में कुछ स्पष्ट अभियोग भी पेश किये हैं, जिनकी सार्वजनिक जांच कराई जाने की उन्होंने इच्छा प्रकट की है। लेकिन मौजूदा परिस्थिति में सरकार को ऐसा करने में बड़ी कठिनाई दिखाई पड़ती है और उसको ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसा किया गया तो उसका लाजिमी नतीजा यह होगा कि एक-दूसरे पर अभियोग-प्रति-अभियोग लगाये जाने लगेंगे, जिससे पुन: शान्ति स्थापित होने में बाधा पड़ेगी। इन बातों का खयाल करके, गांधीजी इस बात पर आग्रह न करने के लिए राजी हो गये हैं।

(९) सविनय अवज्ञा-आन्दोलन के बन्द किये जाने पर सरकार जो-कुछ करेगी वह इस प्रकार है—

(१०) सविनय अवज्ञा-आन्दोलन के सिलसिले में जो विशेष कानून (आर्डिनेन्स) जारी किये गये है वे वापस ले लिये जायेंगे।

आर्डिनेन्स नं० १ (१९३१), जो कि आतंकवादी-आन्दोलन के सम्बन्ध में है, इस धारा के कार्य-क्षेत्र में नहीं आता है।

(११) १९०८ के क्रिमिनल-लॉ-अमेण्डमेण्ट-एक्ट के मातहत संस्थाओं को गैर-कानूनी करार देने के हुक्म वापस ले लिये जायेंगे, बशर्ते कि वे सविनय अवज्ञा-आन्दोलन के सिलसिले में जारी किये गये हों।

बर्मा की सरकार ने हाल में क्रिमिनल-लॉ-अमेण्टमेण्ट-एक्ट के मातहत जो हुक्म जारी किया है वह इस धारा के कार्य-क्षेत्र में नहीं आता।

(१२) १. जो मुकदमे चल रहे हैं उन्हें वापस ले लिया जायगा, यदि वे सविनय अवज्ञा-आन्दोलन के सिलसिले में चलाये गये होंगे और ऐसे अपराधों से सम्बन्धित होंगे जिनमें हिंसा सिर्फ नाम के लिए होगी या ऐसी हिंसा को प्रोत्साहन देने की बात हो।

२ यही सिद्धान्त जाब्ता-फौजदारी की जमानती धाराओ के मातहत चलनेवाले मुकदमो पर लागू होगा।

३ किसी प्रान्तीय सरकार ने वकालत करनेवालो के खिलाफ सविनय अवज्ञा-आन्दोलन के सिलसिले में 'लीगल प्रैक्टिशनर्स एक्ट' के अनुसार मुकदमा चलाया होगा या इसके लिए हाईकोर्ट से दरख्वास्त की होगी तो वह सम्बन्धित अदालत में मुकदमा लौटाने की इजाजत देने के लिए दरख्वास्त देगी, बशर्ते कि सम्बन्धित व्यक्ति का कथित आचरण हिंसात्मक या हिंसा को उत्तेजन देनेवाला न हो।

४ सैनिको या पुलिसवालो पर चलनेवाले हुक्म-उदूली के मुकदमे, अगर कोई हो, इस धारा के कार्य-क्षेत्र में नही आयेंगे।

(१३) १. वे कैदी छोडे जायेंगे, जो सविनय अवज्ञा-आन्दोलन के सिलसिले में ऐसे अपराधो के लिए कैद भोग रहे होगे जिनमें नाम-मात्र की हिंसा को छोडकर और किसी प्रकार की हिंसा या हिंसा के लिए उत्तेजना का समावेश न हो।

२. पूर्वोक्त १ क्षेत्र मे आनेवाले किसी कैदी को यदि साथ में जेल का कोई ऐसा अपराध करने के लिए भी सजा हुई होगी कि जिसमें नाम-मात्र की हिंसा को छोडकर और किसी प्रकार हिंसा या अहिंसा के लिए उत्तेजना का समावेश न हो तो वह सजा भी रद कर दी जायगी, या यदि इस अपराध-सम्बन्धी कोई मुकदमा चल रहा होगा तो वह वापस ले लिया जायगा।

३ सेना या पुलिस के जिन आदमियो को हुक्म-उदूली के अपराध में सजा हुई है—जैसा कि बहुत कम हुआ है—वे इस माफी के क्षेत्र में नही आयेंगे।

(१४) जुर्माने जो वसूल नही हुए है, माफ कर दिये जायेंगे। इसी प्रकार जाब्ता-फौजदारी की जमानती धाराओ के मातहत निकले हुए जमानत-जब्ती के हुक्म के बावजूद जो जमानत वसूल नही हुई होगी उन्हें भी माफ कर दिया जायगा।

जुर्माने या जमानतो की जो रकमें वसूल हो चुकी है, चाहे वे किसी भी कानून के मुताबिक हो, उन्हें वापस नही किया जयागा।

(१५) सविनय अवज्ञा-आन्दोलन के सिलसिले मे किसी खास स्थान के बाशिन्दो के खर्चे पर जो अतिरिक्त-पुलिस तैनात की गई होगी उसे प्रान्तिक सरकारो के निश्चय पर उठा लिया जायगा। इसके लिए वसूल की गई रकम, असली खर्च से जायद हो तो भी, लौटायी नही जायगी, लेकिन जो रकम वसूल नही हुई है वह माफ कर दी जायगी।

(१६) -(अ) वह चल-सम्पत्ति जो गैर-कानूनी नही है और जो सविनय

अवज्ञा-आन्दोलन के सिलसिले मे आर्डिनेन्सो या फौजदारी-कानून की धाराओ के मातहत अधिकृत की गई है, यदि अभीतक सरकार के कब्जे में होगी तो लौटा दी जायगी।

(ब) लगान या अन्य करो की वसूली के सिलसिले में जो चल-सम्पत्ति जब्त की गई है वह लौटा दी जायगी, जबतक कि जिले के कलक्टर के पास यह विश्वास करने का कारण न हो कि बकैयादार अपने जिम्मे निकलती हुई रकम को उचित अवधि के भीतर-भीतर चुका देने से जानबूझ कर हीला-हवाला करेगा। यह निर्णय करने में कि उचित अवधि क्या है, उन मामलो का खास खयाल रक्खा जायगा जिनमें देनदार लोग रकम अदा करने के लिए राजी होगे पर सचमुच उन्हें उसके लिए समय की आवश्यकता होगी, और जरूरत हो तो उनका लगान भी लगान-व्यवस्था के सामान्य सिद्धान्तो के अनुसार मुल्तवी कर दिया जायगा।

(स) नुकसान की भरपाई नही की जायगी।

(द) जो चल-सम्पत्ति बेच दी गई होगी या सरकार-द्वारा अतिम रूप से जिसका भुगतान कर दिया गया होगा, उसके लिए हरजाना नही दिया जायगा और न उसकी बिक्री से प्राप्त रकम ही लौटाई जायगी, सिवा उस सूरत के कि जब बिक्री से प्राप्त होनेवाली रकम उस रकम से ज्यादा हो जिसकी वसूली के लिए सम्पत्ति बेची गई हो।

(इ) सम्पत्ति की जब्ती या उसपर सरकारी कब्जा कानून के अनुसार नही हुआ है, इस बिना पर कानूनी कारवाई करने की हरेक व्यक्ति को छूट रहेगी।

(१७) (अ) जिस अचल-सम्पत्ति पर १९३० के नवें आर्डिनेन्स के मातहत कब्जा किया गया है उसे आर्डिनेन्स के अनुसार लौटा दिया जायगा।

(ब) जो जमीन तथा अन्य अचल-सम्पत्ति लगान या अन्य करो की वसूली के सिलसिले में जब्त या अधिकृत की गई है और सरकार के कब्जे मे है वह लौटा दी जायगी, बशर्ते कि जिले के कलक्टर के पास यह विश्वास करने का कारण न हो कि देनदार अपने जिम्मे निकलती रकम को उचित अवधि के भीतर-भीतर चुका देने से जान-बूझकर हीला-हवाला करेगा। यह निर्णय करने में कि उचित अवधि क्या है, उन मामलो का खयाल रक्खा जायगा जिनमें देनदार लोग रकम अदा करने के लिए रजामन्द होगे पर सचमुच उन्हे उसके लिए समय की आवश्यकता होगी, और जरूरत हो तो उनका लगान भी लगान-व्यवस्था के सामान्य-सिद्धान्तो के अनुसार मुल्तवी कर दिया जायगा।

(स) जहा अचल-सम्पत्ति बेच दी गई होगी, जहातक सरकार से सम्बन्ध है, वह सौदा अन्तिम समझा जायगा।

नोट—गाधीजी ने सरकार को बताया है कि जैसी कि उन्हें खबर मिली है और जैसा कि उनका विश्वास है, इस तरह होनेवाली बिक्री में कुछ अवश्य ऐसी हैं जो गैर-कानूनी तरीके से और अन्यायपूर्ण हुई हैं। लेकिन सरकार के पास इस सम्बन्धी जो जानकारी है उसे देखते हुए वह इस धारणा को मजूर नही कर सकती।

(द) सम्पत्ति की जब्ती या उसपर सरकारी कब्जा कानून के अनुसार नही हुआ है, इस बिना पर कानूनी कार्रवाई करने की हरेक व्यक्ति को छूट रहेगी।

(१८) सरकार का विश्वास है कि ऐसे मामले बहुत कम हुए है जिनमें वसूली कानून की धाराओ के अनुसार नही की गई है। ऐसे मामलो के लिए, अगर कोई हो, प्रान्तिक सरकारें जिला-अफसरो के नाम हिदायते जारी करेंगी कि स्पष्ट रूप से इस तरह की जो शिकायत सामने आये उसकी वे तुरन्त जाच करें और अगर यह साबित हो जाय कि गैर-कानूनीपन हुआ है तो अविलम्ब उसको रफा-दफा करें।'

(१९) जिन लोगो ने सरकारी नौकरियो से इस्तीफा दिया है उनके रिक्त-स्थानो की जहा स्थायी-रूप से पूर्ति हो चुकी होगी वहा सरकार पुराने (इस्तीफा देनेवाले) व्यक्ति को पुन नियुक्त नहीं कर सकेगी। इस्तीफा देनेवाले अन्य लोगो के मामलो पर उनके गुण-दोष की दृष्टि से प्रान्तिक सरकारें विचार करेंगी, जो फिर से नियुक्ति की दरख्वास्त करनेवाले सरकारी कर्मचारियो व ग्रामीण अधिकारियो की पुन नियुक्ति के बारे में उदार-नीति से काम लेगी।

(२०) नमक-व्यवस्था-सम्बन्धी मौजूदा कानून के भग को गवारा करने के लिए सरकार तैयार नही है, न देश की वर्तमान आर्थिक परिस्थिति को देखते हुए नमक-कानून में ही कोई खास तबदीली की जा सकती है।

परन्तु जो लोग ज्यादा गरीब हैं उनके सहायतार्थ, इस सम्बन्ध में लागू होनेवाली धाराओ को वह (सरकार) इस तरह विस्तृत कर देने को तैयार है, जैसा कि अभी भी कई जगह हो रहा है, जिससे जिन स्थानो में नमक बनाया या इकट्ठा किया जा सकता है उनके आसपास के इलाको के गावो के बाशिन्दे वहा से नमक ले सकेंगे, लेकिन यह सिर्फ उनके अपने उपयोग के ही लिए होगा, बेचने या बाहर के लोगो के साथ व्यापार करने के लिए नही।

(२१) यदि कांग्रेस इस समझौते की बातो पर पूरी तरह अमल न कर सकी तो, उस हालत में, सरकार वह सब कार्रवाई करेगी जो, उसके परिणाम-स्वरूप, सर्व-

साधारण तथा व्यक्तियों के संरक्षण एवं कानून और व्यवस्था के उपयुक्त परिपालन के लिए आवश्यक होगी।"

भगतसिंह आदि को फांसी

समझौते की बातचीत के दौरान में, सरदार भगतसिंह और उनके साथी राजगुरु व सुखदेव की फांसी की सजा को, जो कि मि० सॉण्डर्स की हत्या के कारण लाहौर-षड्यन्त्र केस में उन्हें दी गई थी, और किसी सजा के रूप में तबदील कर देने के बारे में गांधीजी व वाइसराय के बीच बार-बार लम्बी बातें हुई। क्योंकि, उन्हें जो फांसी की सजा दी जानेवाली थी, उससे देश में बहुत हलचल मच रही थी। स्वयं कांग्रेसवाले भी इस बात के लिए बहुत उत्सुक थे कि इस समय जो सद्भाव चारों ओर दिखाई पड़ रहा है उसका लाभ उठाकर उनकी फांसी की सजा बदलवा दी जाय। लेकिन वाइसराय ने इस बारे में स्पष्ट रूप से कुछ नहीं कहा, हमेशा एक मर्यादा रखकर इस बारे में उन्होंने बात की। उन्होंने गांधीजी से सिर्फ यही कहा कि मैं पंजाब-सरकार को इस बारे में लिखूंगा। इसके अलावा और कोई वादा उन्होंने नहीं किया। यह ठीक है कि स्वयं उन्हीं को सजा रद करने का अधिकार था—लेकिन वह अधिकार राज-नैतिक कारणों के लिए अमल में लाने के लिए नहीं था, हालांकि दूसरी ओर राजनैतिक कारण ही पंजाब-सरकार के इस बात को मानने के मार्ग में बाधक हो रहे थे।

दरअसल वे बाधक थे भी। चाहे जो हो, लॉर्ड अर्विन इस बारे में कुछ करने में असमर्थ थे, अलबत्ता कराची में कांग्रेस-अधिवेशन हो लेने तक फांसी रुकवा देने का उन्होंने जिम्मा लिया। मार्च के अन्तिम-सप्ताह में कराची में कांग्रेस होनेवाली थी। लेकिन स्वयं गांधीजी ने ही निश्चित रूप से वाइसराय से कहा—अगर इन नौजवानों को फांसी पर लटकाना ही है, तो कांग्रेस-अधिवेशन के बाद ऐसा किया जाय, इसके बजाय उससे पहले ही ऐसा करना ठीक होगा। इससे देश को यह साफ पता चल जायगा कि वस्तुतः उसकी क्या स्थिति है और लोगों के दिलों में झूठी आशायें नहीं बंधेंगी। कांग्रेस में गांधी-अर्विन-समझौता अपने गुणों के ही कारण पास या रद होगा—यह जानते-बूझते हुए कि तीन नौजवानों को फांसी दे दी गई है। अस्तु, ५ मार्च १९३१ को समझौते पर हस्ताक्षर हुए और उसके बाद ही मि० इमर्सन ने गांधीजी को एक सुन्दर पत्र लिखा, जिसमें पिछले दस महीनों की सरकारी कार्रवाइयों के लिए अपने को जिम्मेवार बताते हुए यह भी लिखा कि स्वराज्य-प्राप्त भारत में नौकरी करने

में मुझे बडी प्रसन्नता होगी। लॉर्ड अर्विन ने गाघीजी को एक सुन्दर पत्र लिखकर आशा प्रकट की कि शीघ्र ही इग्लैण्ड में वह उन्हें देखेगे।

युगान्तरकारी वक्तव्य

समझौते से निवटते ही गाघीजी ने, ५ मार्च की शाम को अमरीकन, अग्रेज व भारतीय पत्रकारो और प्रेसमैनो के एक समूह के सामने एक युगान्तरकारी वक्तव्य दिया। पूरा वक्तव्य लिखाने में गाधीजी को पूरा डेढ घण्टा लगा। वक्तव्य गाधीजी ने मुह-जवानी ही लिखाया था और उसमें कही भी एक-वार भी रद्दो-वदल नही किया। इस वक्तव्य में उन्होने लॉर्ड अर्विन की उचित प्रगसा की और पुलिस, सिविल-सर्विस व क्रान्तिकारियो से उपयुक्त अपील की। हम इस वक्तव्य को यहा उद्धृत करते है, क्योंकि भारतीय-स्वराज्य के इतिहास में इसे सदा स्थायी-साहित्य का स्थान मिलेगा—

"सवसे पहले मै यह वात कह देना चाहता हूँ कि वाइसराय के अपार धीरज व उतने ही अपार परिश्रम व अचूक शिष्टाचार के विना यह समझौता, जैसा भी वह है, होना असभव था। मुझे इस वात का पता है कि मैंने उनके सामने कई वार झुझला पडने के कारण, चाहे अनजान में ही, उपस्थित किये होगे। मैंने उनके धीरज को भी छुडाया होगा। लेकिन ऐसे किसी समय की मुझे याद नही आती जबकि वह झुझलाते दिखाई दिये हो या उन्होने धीरज छोड दिया हो। यह भी कह दू कि इस वहुत ही नाजुक वातचीत के दौरान में उन्होने शुरू मे आखीर तक खुलकर वातचीत की। मेरा विश्वास है कि यदि समझौता सम्भव हो सके तो उमे करने पर वह तुले हुए थे। मुझे यह वात स्वीकार करनी पडेगी कि मैंने इस वातचीत में डरते हुए और कापते हुए भाग लिया। मेरे अन्दर अविश्वास भी था, लेकिन उन्होने फौरन ही मेरे सन्देहो का निराकरण करके मुझे निश्चिन्त कर दिया।

"इस प्रकार के समझौते के वारे मे यह कहना कि विजयी-दल कौन सा है, न तो सम्भव ही है और न वुद्धिमत्तापूर्ण ही।

"यदि किसी की विजय है तो, मुझे कहना चाहिए, दोनो की है। कांग्रेस ने विजय की होड कभी नही लगाई थी।

"वात यह है कि कांग्रेस को एक निश्चित उद्देश तक पहुँचना है और उस उद्देश तक पहुँचे विना विजय का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। इसलिए मै अपने सब देशवासियो से और अपनी सब वहनो से आग्रह करूँगा कि वे फूलकर कुप्पा हो जाने के वजाय—यदि समझौते में फूलकर कुप्पा हो जाने की कोई ऐसी वात है—परमात्मा से आगे सिर

झुकावें और उससे प्रार्थना करें कि उन्हें वह इस समय उनका ध्येय उनसे जिस मार्ग का अनुसरण करने का तकाजा करता है उसपर चलने की शक्ति व बुद्धि प्रदान करे, चाहे वह मार्ग कष्ट-सहन का हो और चाहे वह धैर्य-पूर्वक सधि-वार्ता या विचार विनिमय करने का हो।

"इसलिए मै विश्वास करता हूँ कि कष्ट-सहन से पूर्ण इस सग्राम मे गत बारह महीनो में जिन लाखो लोगो ने भाग लिया है वे विचार-विनिमय और निर्माण के इस काल मे भी वही खुशनुदी, वही एकता, वही कोशिश और वही समझदारी दिखलायेंगे जो उन्होंने इतनी अधिक मात्रा मे इस युग में, जिसे मै भारत के आधुनिक इतिहास का वीरतापूर्ण युग कहूँगा, दिखलाई है।

"लेकिन, मुझे मालूम है, जहा ऐसे स्त्री-पुरुष होगे जो इस समझौते के कारण फूलकर कुप्पा हो जायेंगे, वहा ऐसे लोग भी हैं जो बहुत निराश होगे और जो बहुत निराश है।

"वीरता से कष्ट सहना तो उनके लिए इतना स्वाभाविक है जैसे मानो सास लेना। वे तो मानो इसीमे सबसे ज्यादा खुश है, असह्य कष्टो को भी सह लेगे। लेकिन जब उनके कष्टो का अन्त होता है तो उन्हे ऐसा मालूम पडता है कि हमारा काम बन्द हो गया है और हमारा लक्ष्य आखो से ओझल हो गया। उनसे मै केवल यही कहूँगा कि धैर्य रक्खो, देखो, प्रार्थना करो, और आशा रक्खो।

"कष्ट-सहन की भी एक हद होती है। कष्ट सहन में बुद्धिमानी और मूर्खता दोनो सम्भव है, और जब कष्ट-सहन की हद आ जाती है तो उसे और बढाना बुद्धिमानी नही बल्कि परले सिरे की बेवकूफी है।

"जब आपका विरोधी आपकी इच्छानुसार ही आपसे बातचीत करने की आपके लिए आसानी पैदा करदे, तो कष्ट सहते रहना बेवकूफी है। यदि रास्ता वास्तव में खुल जाय तो हरेक का यह कर्तव्य है कि वह उससे फायदा उठावे। मेरी यह नम्र सम्मति है कि इस समझौते ने वास्तव में रास्ता खोल दिया है। इस प्रकार के समझौते का स्थायी होना तो स्वाभाविक ही है। यह जो सधि हुई है वह कई बातो के पूरा होने पर निर्भर है। इस लिखित समझौते का बडा भारी अग तो 'समझौते की शर्तों' से घिर गया है। यह स्वाभाविक ही था। काग्रेस गोलमेज-परिषद् में भाग ले सके इसके पहले कई बातो का पूरा हो जाना आवश्यक है। इनका उल्लेख होना अत्यन्त आवश्यक था। लेकिन काग्रेस का ध्येय पुरानी भूलो का सुधार कराना नही है, यद्यपि यह भी है महत्वपूर्ण, उसका ध्येय तो पूर्ण-स्वराज्य है, जिसको अग्रेजी में अनुवाद करके 'पूर्ण-

स्वाधीनता' कहा जाता है। अन्य राष्ट्रो की भाति भारत का यह जन्मसिद्ध अधिकार है और भारत इससे कम पर सन्तुष्ट नही हो सकता। समझौते भर में हमें वह मनमोहक शब्द कही नही दिखाई देता। जिस धारा में यह शब्द छिपा हुआ है वह द्विअर्थक है।

"सघ-शासन (फेडरेशन) मृगतृष्णा भी हो सकता है, या एक ऐसे सजीव राष्ट्र का रूप धारण कर सकता है जिसके दोनो हाथ इस प्रकार कार्य करते हो कि उससे उसका सारा शरीर मजबूत बन जाय।

"इसी प्रकार 'उत्तरदायित्व' जो दूसरा पाया है, वह या तो विलकुल छाया के समान नि सार हो या बडा ऊँचा, विशाल व न झुकनेवाले बरगद के पेड के सदृश हो सकता है। भारत के हित में सरक्षण भी विलकुल धोखे से भरे और इसलिए ऐसे रस्सो के समान हो सकते है जिनसे देश चारो ओर से जकडा जा सके, या वे ऐसी चहारदीवारी के समान हो सकते हैं जो एक छोटे व मुलायम पौधे की रक्षा करने के लिए उसके चारो ओर लगा दी जाती है।

"एक दल इन तीन पायो का एक मतलब निकाल सकता है और दूसरा दल दूसरा। इस धारा के अनुसार दोनो दल अपनी-अपनी दिशा में काम कर सकते है। काग्रेस ने परिषद् की कार्रवाई में भाग लेने की जो रजामन्दी दिखाई है वह इसी कारण कि वह सघ-शासन, उत्तरदायित्व, सरक्षण, प्रतिबन्ध अथवा उन्हें जिन नामो से भी पुकारा जाता हो उनको ऐसा रूप देना चाहती है कि उससे देश की वास्तविक राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक एव नैतिक उन्नति हो।

"यदि परिषद् ने काग्रेस की स्थिति को ठीक-ठीक समझकर मान लिया तो, मेरा दावा है, इसका परिणाम 'पूर्ण-स्वाधीनता' होगा। लेकिन मैं जानता हूँ कि यह मार्ग बहुत कठिन और थका देनेवाला है। मार्ग में बहुत-सी चट्टानें हैं और बहुत-से गड्ढे है। लेकिन यदि काग्रेस-वादी इस नये काम को विश्वास व उत्साह के साथ करेंगे तो मुझे इसके परिणाम के बारे में कोई भी सन्देह नहीं रह सकता। अत यह उन्हींके हाथ में है कि वे इस नये अवसर का, जो उन्हें मिला है, अच्छे-से-अच्छा उपयोग करे या वे आत्म-विश्वास व उत्साह के न होने के कारण अवसर ही खो दे।

"मै जानता हूँ कि इस कार्य में काग्रेस को दूसरे दलो की सहायता लेनी होगी–भारत के नरेशो की और स्वय अग्रेजो की भी। इस अवसर पर मुझे भिन्न-भिन्न दलो से अपील करने की जरूरत नहीं। मुझे इस बात में सन्देह नहीं कि अपने देश की वास्तविक स्वतत्रता की उन्हें भी उतनी ही आकांक्षा है जितनी कि कांग्रेसवालो को।

"लेकिन नरेशो का सवाल दूसरा है। उनका सघ-शासन के विचार को मान

लेना मेरे लिए निश्चित रूप से आश्चर्यजनक था। यदि वे सघ-शासित, भारत में बराबरी के साझीदार बनना चाहते है, तो मै इस बात को कह देना चाहता हूँ कि उन्हें उसी ओर बढना होगा जिस ओर बढने की ब्रिटिश-भारत इतने वर्षों से कोशिश कर रहा है।

"पूर्ण एकतन्त्री शासन, चाहे वह कितना ही अच्छा क्यो न हो, व विशुद्ध लोकसत्ता ये दो ऐसी चीजें हैं जिनका मिश्रण अवश्य ही फट पडेगा। इसलिए, मेरी राय में, उनके लिए आवश्यक है कि वे तने न रहें, अडे न रहें, और अपने भावी साझीदार-द्वारा या उसकी ओर से की गई अपील को वेसब्री में न सुनें। यदि वे इस प्रकार की अपील को न सुनेंगे तो वे काग्रेस की स्थिति को वहुत असह्य, खराव और वास्तव में बहुत विषम बना देंगे। काग्रेस भारत की सारी जनता की प्रतिनिधि है या उसका प्रतिनिधित्व करने का दावा करती है। ब्रिटिश-भारत या देशी-रियासतो में बसनेवालों में वह कोई भेद-भाव नही करती।

"काग्रेस ने बडी बुद्धिमानी से और बडी रोक-थाम के साथ रियासतों के मामलो व उसके कारोबार में दखल देने से अपने-आपको रोका है। ऐसा उसने इस खातिर किया है कि रियासतो की भावनाओ को अनावश्यक चोट न पहुँचे, और इस वजह से भी कि जब कोई उपयुक्त अवसर आवे तो यह कैद, जो उसने अपने-आप लगा रक्खी है, रियासतो पर अपना असर डालने में काम आवे। मेरा विचार है कि वह अवसर अब आ गया है। क्या मैं इस बात की आशा करूँ कि हमारे बडे नरेश रियासती प्रजा की ओर से की गई काग्रेस की अपील पर कान बन्द न कर लेंगे ?

"अग्रेजो से भी मैं एक ऐसी अपील करना चाहता हूँ। यदि भारत को परिषदो व विचार-विमर्श के जरियो से ही अपने निश्चित उद्देश को प्राप्त करना है तो अग्रेजो की सद्भावना व सक्रिय सहायता की बडी आवश्यकता होगी। मुझे यह बात कहनी पडेगी कि लदन में पहली परिषद् में जिन-जिन बातो को उन्होने मान लिया है वह तो उसका आधा भी नही है जिस ध्येय तक कि भारत पहुँचना चाहता है। यदि वे वास्तव मे सच्ची मदद करना चाहते हैं तो उन्हें भारत को भी उसी स्वतन्त्रता की मस्ती का अनुभव करा देना पडेगा, जिसको वे स्वय मरते दम तक नही छोड सकते। उन्हें इस बात के लिए तैयार होना पडेगा कि वे भारत को गलतिया करने के लिए छोड दें। यदि गलती करने की, यहा तक कि पाप तक करने की, स्वतन्त्रता न हुई तो ऐसी स्वतत्रता किस काम की ? यदि परम-पिता परमात्मा ने अपने छोटे-से-छोटे जीव को गलती करने की स्वतन्त्रता दी है, तो मेरी समझ में नही आता कि वे कैसे मनुष्य-जीव होगे

जो, चाहे वे कितने ही अनुभवी और योग्य क्यो न हो, दूसरी जाति के मनुष्यो के इस अमूल्य अधिकार को छीनने में खुशी मना सकते है ?

"खैर, कुछ भी हो, काग्रेस को परिषद् में आमन्त्रित करने से यह तात्पर्य खूब अच्छी तरह निकल आता है कि अयोग्यता के अलावा किसी और कारण-वश उसे पूर्ण-से-पूर्ण स्वाधीनता पर जोर देने से नही रोका जा सकता। काग्रेस भारत को उस बीमार बालक की भाति नही मानती जिसे देख-भाल, सेवा-सुश्रूषा व अन्य सहारो की जरूरत हो।

"अमरीकन-राजतन्त्र व ससार के अन्य राष्ट्रो की जनता से भी मै एक अपील करना चाहता हूँ। मुझे मालूम है कि इस युद्ध ने, जिसका आधार सत्य व अहिंसा है—लेकिन जिनसे हम उसके उपासक कभी-कभी कुछ भटक जाते हैं—उनके मन पर बडा असर डाला है और उनमे उत्सुकता पैदा की है। उत्सुकता ही नही, वे इससे भी आगे बढे है। उन्होने, और खासकर अमरीका ने, सहानुभूति के द्वारा हमारी प्रत्यक्ष मदद भी की है। काग्रेस की ओर से और अपनी ओर से मै कहता हूँ कि इस सहानुभूति के लिए हम उनके बहुत आभारी है। मुझे आशा है कि काग्रेस अब जिस मुश्किल काम में पडनेवाली है उसमें हमें न केवल उनकी यह वर्तमान सहानुभूति ही प्राप्त रहेगी बल्कि वह दिन-प्रति-दिन बढती भी जायगी। मै बड़ी नम्रता से यह कहने की हिम्मत करता हूँ कि यदि सत्य व अहिंसा के द्वारा भारत अपने ध्येय तक पहुँच गया तो जिस विश्व-शान्ति के लिए ससार के सब राष्ट्र तडप रहे है उसके हित में बडा भारी काम कर दिखायगा और इन राष्ट्रो ने उसे जी खोलकर जो सहायता दी है उसका कुछ थोडा-सा बदला भी चुक जायगा।

"मेरी आखिरी अपील पुलिस व सिविल-सर्विस अर्थात् सरकारी अधिकारियो से है। समझौते में एक वाक्य है, जिसमें जाहिर किया गया है कि मैंने पुलिस की कुछ ज्यादतियो की जाच की माग की थी। इस जाच की माग को छोड देने का कारण भी समझौते में दिया गया है। महकमा पुलिस-द्वारा शासन की जो मशीन चलती रहती है उसका सिविल-सर्विस एक अभिन्न अग है। यदि वे वास्तव में यह महसूस करते है कि भारत शीघ्र ही अपने घर का मालिक बननेवाला है और उन्हें वफादारी व ईमानदारी से भारत के सेवको की तरह काम करना है, तो उन्हें यह शोभा देता है कि वे अभी से लोगो को अनुभव करा दें कि सिविल-सर्विस व पुलिस उनके सेवक है—अवश्य ही सम्मान-योग्य व बुद्धिमान सेवक, लेकिन हर हालत में सेवक ही न कि मालिक।

"मुझे अपने उन हजारो तो नही लेकिन सैकडो साथी-बन्दियो के बारे में भी एक शब्द कहना है, जिनके लिए मेरे पास तार-पर-तार चले आ रहे है लेकिन जो गत १२ महीनो में जेल भेजे गये सत्याग्रही कैदियो के छूट जाने पर भी जेलो में पडे रहेंगे। व्यक्तिगत रूप से तो उन लोगो के भी, जो हिंसा करने के दोषी है, जेल भेजे जाने की प्रणाली पर मेरा विश्वास नही है। मैं जानता हूँ कि वे लोग जिन्होने राजनैतिक उद्देशो से प्रेरित होकर हिंसा की है, यदि बुद्धिमानी का नही तो कम-से-कम देश के लिए प्रेम व आत्म-त्याग करने का उतना दावा तो कर ही सकते है जितना कि मैं। इसलिए अपनी या अपने साथी-सत्याग्रहियो की रिहाई के बजाय यदि मैं न्यायपूर्वक उनकी रिहाई करा सकता तो सचमुच ही कराता।

'मेरा विश्वास है कि वे लोग महसूस करेंगे कि मैं न्याय-पूर्वक उनकी रिहाई के लिए नही कह सकता था। लेकिन इसका यह मतलब नही कि मुझे या कार्य-समिति के सदस्यो को उनका खयाल ही नही है।

"काग्रेस ने जान-बूझकर, चाहे अस्थायी तौर पर ही सही, सहयोग का मार्ग ग्रहण किया है। यदि काग्रेसवादी ईमानदारी से समझौते की उन शर्तों का जो उन पर लागू होती है पूरी-पूरी तरह से पालन करें तो काग्रेस का गौरव बहुत बढ जायगा और सरकार पर इस बात का सिक्का बैठ जायगा कि जहा काग्रेस ने, मेरी राय में, अवज्ञा-आन्दोलन चलाने की योग्यता सिद्ध कर दी है वहा उसमें शान्ति बनाये रखने की भी क्षमता है।

"और यदि जनता काग्रेस को यह शक्ति और गौरव प्रदान कर दे तो मैं विश्वास दिलाता हूँ कि वह समय दूर नही है जब कि इन कैदियो में से, मय नजरबन्दो व मेरठ-षड्यन्त्र के कैदियो व सब अन्यो के, एक-एक छूट जायगा।

"इस बात में सन्देह नही कि भारत में एक ऐसा छोटा किन्तु कर्मण्य दल विद्यमान है जो भारत की स्वतन्त्रता हिंसात्मक कार्यो-द्वारा प्राप्त करना चाहता है। मैं इस दल से अपील करता हूँ, जैसा कि मैं पहले भी कर चुका हूँ, कि वह अपनी प्रवृत्तियो को बन्द करे। यदि उसे अभी इसमें विश्वास नही तो कम-से-कम उपयोगिता की दृष्टि से ही उसे ऐसा करना चाहिए। अनुमान है कि वे इस बात को तो महसूस कर ही चुके होंगे कि अहिंसा में कितनी जबरदस्त शक्ति है। वे इस बात से नही मुकरेंगे कि यह चमत्कारिक सामूहिक-जागृति अहिंसा के अगम्य लेकिन अचूक असर के कारण ही हुई है। मैं चाहता हूँ कि वे धीरज धरें और काग्रेस को, या वे चाहें तो मुझे, सत्य व अहिंसा की योजना का प्रयोग करने का अवसर दें। दाण्डी-यात्रा को तो अभी पूरा एक साल भी

नही हुआ। तीस करोड व्यक्तियो के जीवन में एक वर्ष का समय तो काल-चक्र के एक क्षण के समान है। क्यो न वे अपने अमूल्य जीवन को मातृभूमि की सेवा के लिए, जिसका बुलावा शीघ्र ही सबो को दिया जायगा, सुरक्षित रक्खें और कांग्रेस को इस बात का अवसर दें कि वह अन्य सब राजनैतिक कैदियो की भी रिहाई करा सके और सम्भवत उन लोगो को भी फासी के तख्ते से बचा सके जिन्हें हत्या के अभियोग में फासी की सजा मिली है ?

"लेकिन मैं किसी को झूठा दिलासा नही देना चाहता। खुद मेरी और कांग्रेस की जो आकाक्षायें है उनका मैं सार्वजनिक तौर पर केवल उल्लेख ही कर सकता हूँ। प्रयत्न करना हमारे हाथ में है, परिणाम सदा परमात्मा के हाथ में है।

"एक व्यक्तिगत बात और। मेरा खयाल है कि सम्मानप्रद समझौता करने के प्रयत्न में मैंने अपनी सारी शक्ति लगा दी है। मैंने लॉर्ड अर्विन को अपना वचन दे दिया है कि मैं समझौते की शर्तों का, जहातक उनका कांग्रेस से सम्बन्ध है, पालन कराने में जी-जान से जुट जाऊँगा। मैंने समझौते का प्रयत्न इसलिए नहीं किया कि पहला अवसर मिलते ही मैं उसके टुकडे-टुकडे कर डालू बल्कि इसलिए कि अभी जो अस्थायी है उसे बिलकुल पक्का करने में कोई भी कसर न छोडू और इसे उस ध्येय तक पहुँचाने वाला पेशवा समझू जिसे प्राप्त करने के लिए कांग्रेस कायम है।

"सबसे अन्त में मैं उन सब लोगो को धन्यवाद देता हूँ जो समझौते को सम्भव बनाने में निरन्तर प्रयत्न करते रहे है।"

कांग्रेस की हिदायतें

लॉर्ड अर्विन ने भी गाधीजी की उसी प्रकार प्रशसा की, जिस प्रकार कि स्वय गाधीजी ने लॉर्ड अर्विन की की थी। अपने को दिये गये एक प्रीति-भोज में आपने महात्माजी की ईमानदारी, नेकनीयती व उच्चतम देशभक्ति की मुक्तकठ से प्रशंसा करते हुए कहा कि 'उनके साथ कार्य करना बडी खुशी और खुश-किस्मती की बात है। महात्मा गाधी अपनी ओर से इस बात की भरसक कोशिश कर रहे है कि वे अपने देशवासियो को तसल्ली करा सकें और शान्ति के योग्य वातावरण स्थापित कर सकें। इधर मैं इस बात की पूरी कोशिश करूँगा कि भारत और इग्लैण्ड के बीच में शान्तिपूर्ण समझौता हो सके।'

चूकि अब लडाई खतम हो गई थी, कांग्रेस-कमिटियो व संस्थाओ पर से रोक उठा ली गई और वे फिर से जीवित हो गईं। कांग्रेस-सस्था उस जानवर की भांति है

जो एक मौसम में तो मुर्दे की भांति पड़ा रहता है और मौसम के बदलते ही उसमें विशाल शक्ति आ जाती है। जैसे ही समझौते पर हस्ताक्षर हुए कि महासमिति के प्रधानमंत्री ने कांग्रेस के आगामी अधिवेशन मे भाग लेनेवाले प्रतिनिधियो के चुनाव के बारे में अपनी सूचनायें कांग्रेसवादियो के पास भेजी। कार्य-समिति ने यह निर्णय किया कि प्रत्येक जिले से दो प्रकार प्रतिनिधि चुने जायें। आधे प्रतिनिधियो का चुनाव तो वे व्यक्ति करें जिन्हें आन्दोलन में सजा मिल चुकी हो, और शेष आधो का चुनाव साधारण नियमो के अनुसार हो। इस सम्बन्ध में विस्तार-सहित कई हिदायतें जारी की गईं। जेल हो आनेवालो का चुनाव एक सभा बुलाकर करना था। गाल के प्रतिनिधियो के चुनाव के निर्णायक श्री अणे नियत किये गये थे। उसी दिन कांग्रेसवादियो को यह भी हिदायत दी गई कि वे सविनय अवज्ञा व करबन्दी-आन्दोलनो को और ब्रिटिश-माल के बहिष्कार को बन्द कर दें। लेकिन नशीली चीजो, सब विदेशी कपड़ो व शराब की दुकानो के बहिष्कार की इजाजत दे दी गई और उन्हें जारी रखने की भी हिदायत कर दी गई। साथ ही यह भी कहा गया कि पिकेटिंग शान्तिमय होना चाहिए, लेकिन उसमें दबाव न रहना चाहिए, विरोधी प्रदर्शन न होना चाहिए, जनता के मार्ग में रुकावट नही डाली जानी चाहिए और देश के साधारण कानून के अन्तर्गत कोई अपराध नही किया जाना चाहिए। गैर-कानूनी समाचार-पत्रो के प्रकाशन बन्द करने का आदेश भी हुआ। वास्तव में समझौते की हरेक मद के सम्बन्ध में हिदायतें जारी की गईं और स्वयं गांधीजी ने उन आदेशो के साथ वे शर्तें जोड़ दी जो शराब व विदेशी कपड़े की दुकानो पर पिकेटिंग करते समय स्वयंसेवको को माननी चाहिएँ। वे इस प्रकार थी —

(१) दुकानदार या खरीददार के साथ अशिष्ट व्यवहार नही किया जा सकता।

(२) स्वयंसेवक दुकानो अथवा गाड़ी, मोटर आदि के सामने लेट नही सकते।

(३) 'हाय-हाय' जैसी आवाजें नही लगानी चाहिएँ।

(४) किसी का पुतला बनाकर गाड़ना या जलाना नही चाहिए।

(५) यदि बहिष्कार किया भी जाय, तो किसी दुकानदार या खरीददार की खाने-पीने की तथा अन्य सामग्री नही रोकी जा सकती। लेकिन उनके घर भोजन के लिए न जाना चाहिए और न उनकी कोई सेवा ग्रहण करनी चाहिए।

(६) उपवास तथा भूख-हड़ताल किसी हालत मे भी न होने चाहिएँ।

प्रतिज्ञा तोड़ने पर ही उपवास किया जा सकता है, और सो भी तब, जबकि दोनो ओर के आदमी एक-दूसरे का आदर व प्रेम करते हो।

करांची-कांग्रेस

कार्य-समिति ने सरदार वल्लभभाई पटेल को कराची-काग्रेस के सभापति-पद के लिए चुन लिया, क्योकि करीब एक साल तक काग्रेस की जो असाधारण परिस्थिति रही थी उसके कारण साधारण प्रणाली-द्वारा सभापति का चुनाव होना सम्भव न था।

कराची-काग्रेस के लिए आवश्यक प्रबन्ध करना कोई आसान काम न था, क्योकि यद्यपि १ मार्च के आसपास कार्य-समिति के सदस्यो के छूटने पर ही अधिवेशन का होना निश्चित-सा दिखाई देने लगा था, लेकिन अस्थायी-सन्धि के भाग्य ने कराची-काग्रेस के प्रबन्धको की स्थिति बडी असमजस में डाल दी। एक सुभीता अवश्य था—और वह यह कि अब केवल गुलाबी जाडे रह गये थे। लाहौर में कागेस ने यह निश्चय किया था कि उसका अधिवेशन दिसम्बर मे न होकर फरवरी या मार्च में हुआ करे। यह एक इत्तफाक की बात है कि काग्रेस इस वर्ष अपना वार्षिक अधिवेशन मार्च के महीने में कर सकी, क्योकि अस्थायी-सधि अभी हाल ही हो चुकी थी। अधिवेशन के मार्च में करने से पडाल की भी कोई जरूरत नही रही, क्योकि काग्रेस अब खुले मैदान में हो सकती थी। केवल एक सभा-मञ्च और व्यासपीठ की जरूरत थी और जमीन के चारो ओर एक घेरा डालने की।

कराची-अधिवेशन के प्रवन्ध की सफलता का बहुत अधिक श्रेय कराची की म्युनिसिपैलिटी को था जिसने श्री जमशेद मेहता की अध्यक्षता व सचालकत्व में कार्य किया। काग्रेस के खुले अधिवेशन के प्रारम्भ होने के पहले ही २५ मार्च को खुले मैदान में एक मीटिंग की गई, जिसमें चार-आने की प्रवेश-फीस देनेवाले गाधीजी को देख और उनका भाषण सुन सकते थे। इस प्रकार १०,०००) इकट्ठा हुआ। यह वही मीटिंग थी जिसमें गाधीजी ने यह वाक्य कहा था, जो अब प्रसिद्धि पा गया है, "गाधी भले ही मर जाय लेकिन गाधीवाद सदा जीवित रहेगा।"

सरदार वल्लभभाई पटेल ने अधिवेशन का सभापतित्व किया। आपने अपने छोटे-से अभिभाषण मे सभापति चुने जाने पर कहा कि यह गौरव एक किसान को नहीं किन्तु गुजरात को, जिसने स्वतन्त्रता के युद्ध में एक बडा भाग लिया था, प्रदान किया गया है।

काले फूल

कराची-कांग्रेस जो एक सर्वव्यापी आनन्दमयी छटा के साथ होने जा रही थी, वास्तव में विषाद और सताप की घनघोर घटा से घिरकर हुई। कांग्रेस के अधिवेशन के प्रारम्भ होने से पूर्व ही भारत के तीन नौजवान भगतसिंह, राजगुरु व सुखदेव फासी के तख्ते पर चढाये जा चुके थे। इन तीनो युवको की आत्मायें उस समय कांग्रेस-नगर पर मडराती हुई लोगो को शोक-सन्ताप में डुबो रही थी। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि यह वह समय था जबकि भगतसिंह का नाम भी भारत-भर में उतना ही जाना जाता था और उतना ही लोकप्रिय था जितना कि गाधीजी का। अधिकाधिक प्रयत्न करने पर भी गाधीजी इन तीन युवको की फासी की सजा रद नही करा सके थे। लेकिन जो लोग इन तीनो युवको की जान बचाने के गाधीजी के प्रयत्नो की अभीतक प्रशसा कर रहे थे, अब इस बात पर बेतहाशा नाराज होने लगे कि इन तीनो शहीदो के सम्बन्ध में पास किये जानेवाले प्रस्ताव की भाषा क्या हो। पण्डित मोतीलाल नेहरू, मौलाना मुहम्मदअली, मौलवी मजहरुलहक, श्री रेवाशकर झवेरी, शाह मुहम्मद जुबैर व गुरुनन्था मुदालियर की मृत्यु पर शोक प्रकाशित करने के पश्चात् सबसे पहले जिस प्रस्ताव पर विचार हुआ वह भगतसिंह के सम्बन्ध में ही था। इस प्रस्ताव में बहस व मतभेद की केवल यही बात थी कि भगतसिंह व उसके साथियो की वीरता और आत्म-त्याग की प्रशसा करते हुए ये शब्द कि 'प्रत्येक प्रकार की राजनैतिक हिंसा से अपने-आपको अलिप्त रखते हुए और उसका विरोध करते हुए' भी प्रस्ताव में जोडे जायें या नही? हम वह प्रस्ताव नीचे देते हैं —

"प्रत्येक प्रकार की राजनैतिक हिंसा से अपने-आपको अलिप्त रखते हुए और उसका विरोध करते हुए यह कांग्रेस स्वर्गवासी सरदार भगतसिंह तथा उनके साथी श्री सुखदेव और श्री राजगुरु की वीरता और आत्म-त्याग की प्रशसा करती है तथा उनके जीवन-नाश पर उनके दु खित परिवारो के साथ स्वय भी शोक का अनुभव करती है। कांग्रेस की राय में ये तीनो फासिया अनियन्त्रित प्रतिहिंसा का कार्य है तथा प्राण-दण्ड रद करने के लिए की हुई सारे राष्ट्र की माग का पद-दलन है। कांग्रेस की यह भी राय है कि सरकार ने दो राष्ट्रो मे प्रेम स्थापित करने का, जिसकी इस समय निश्चय ही बहुत जरूरत थी, और उस दल को, जिसने हताश हो कर राजनैतिक हिंसा के मार्ग का अवलम्बन किया है, शान्ति के उपाय से जीतने का अत्युत्तम अवसर खो दिया है।"

काग्रेस ने अहिंसा के अपने सिद्धान्त को दृष्टि में रखते हुए वचन का जो यह वाक्य रक्खा था उनके सिवाय काग्रेस और कुछ नही कर सक्ती थी, लेकिन इस वाक्य से युवको का वह दल जो गाधीवाद में विश्वास नहीं करता था, अप्रसन्न था और उसकी ओर से उक्त वाक्याश को निकाल देने के सशोधन पेश किये गये। स्वयसेवको के सम्मेलन ने तो उक्त प्रस्ताव को उसमें से वह वाक्य निकालकर पास कर दिया। यह वाक्य वाद में प्रान्तीय-सम्मेलनो में खूब विवाद का कारण वन गया था। जब कराची मे इस प्रस्ताव पर विचार हो रहा था तो हाते के वाहर उन कुछ युवक-मित्रो-द्वारा दगा व हो-हुल्लड किया गया जिन्होने एक दिन पूर्व प्रात काल स्टेशन पर, जवकि गाधीजी सरदार वल्लभभाई पटेल के साथ कराची से १२ मील दूर ट्रेन से उतरे थे, काले झडो का प्रदर्शन किया था। गांधीजी ने अपने सहज-स्वभाव से उन युवको के दल का स्वागत किया और वडे अदव से उनके हाथो से काले फूल ले लिये। यह दल आया तो था उनपर हमला करने के लिए, लेकिन रह गया उनकी 'रक्षा' के लिए। वह गाधीजी व उनके दल के साथ स्टेशन से कुछ दूर तक गया।

दूसरा प्रस्ताव जिसपर काग्रेस ने विचार किया, वह वन्दियो की रिहाई के वारे में था। उस समय तक यह स्पष्ट हो चुका था कि वन्दियो की रिहाई के सम्वन्ध में सरकार केवल कजूनो-जैसी नीति ही नही वरत रही है वल्कि उन वादो से भी मुकर रही है और उन शर्तों को भी तोड रही है जो उसने समझौते के सिलसिले में की थी। इसलिए काग्रेस ने अपना यह दृढ मत प्रकट किया कि 'यदि सरकार और काग्रेस के समझौते का उद्देश्य ग्रेट ब्रिटेन और भारत में सद्भाव वढाना है और यदि यह समझौता ग्रेट ब्रिटेन की शासनाधिकार छोड़ने की इच्छा को वास्तविक्ता में प्रकट करता है तो सरकार को चाहिए कि वह सब राजनैतिक वन्दियों, नजरवन्दो तथा विचाराधीन वन्दियो को, जो समझौते की शर्तों में नही भी आते हैं, रिहा कर दे और उन सब राजनैतिक प्रतिवन्धो को हटा ले जो सरकार ने भारतीयो पर चाहे वे भारत में हो या विदेशो में, उनके राजनैतिक विचारो या कार्यों के कारण लगा रक्खी हैं।'

काग्रेस ने सरकार को यह भी याद दिलाया कि 'यदि वह इस प्रस्ताव के अनुकूल कार्य करेगी तो जनता का वह रोष जो हाल की फासियो के कारण उत्पन्न हो गया है, कुछ कम हो जायगा।'

गणेशजी का बलिदान

भगतसिंह आदि की फासियो के अलावा एक और कारण भी था जिसने कराची-काग्रेस मे उदासी के वादल छा दिये। जव इधर काग्रेस का अधिवेशन हो रहा था कानपुर में जोरो का हिन्दू-मुस्लिम दगा शुरु हो गया और श्री गणेशशकर विद्यार्थी शान्ति व सद्भाव स्थापित करने और मुसलमानो को हिन्दुओ के रोप से वचाने के प्रयत्न में मारे गये। इस घटना ने काग्रेस व देश को उसी प्रकार अपार शोकसागर में डुवो दिया जिस प्रकार कि सन् १९२६ में गोहाटी-काग्रेस के अवसर पर स्वामी श्रद्धानन्द की हत्या ने किया था। कानपुर के दगो के वारे में एक शब्द कहना अनुपयुक्त न होगा। कानपुर कोई ऐसी जगह नही है जो साम्प्रदायिक कलहो के लिए वदनाम रही हो। १९०७ में एक इक्की-दुक्की मार-पीट हुई थी और फिर १९२८ व २९ में। कानपुर मे अधिकतर हिन्दू ही रहते है जो कुल आवादी के ⅘ है। मुसलमान व अन्य जातिया मिलाकर कुल ⅕ होते है। भगतसिंह व उनके साथियो को लाहौर मे २३ मार्च को फासी दी गई थी। देशभर में हडताले की गई जिनमें वम्वई, कराची, लाहौर, कलकत्ता, मदरास, व दिल्ली की हडतालें शान्तिपूर्वक समाप्त हो गई। कानपुर में हडताल पूरी नही हुई, तीनो शहीदो के चित्रो व काले झण्डो-सहित एक वडा भारी मातमी जुलूस निकाला गया। हिन्दुओ ने तो अपनी दुकानें वन्द कर दी, लेकिन मुसलमानो ने नही की। कुछ काल पहले जव मौ० मुहम्मदअली मरे थे उस समय हिन्दुओ ने भी मुसलमानो की हडताल में भाग नही लिया था। वस, अधिक कहने की जरूरत नही—चिंगारी भी मौजूद थी और वारूद का ढेर भी मौजूद था। २४ मार्च को हिन्दुओ की दुकानो का लूटना प्रारम्भ हो गया। २३ मार्च की रात को ही लगभग ५० व्यक्ति घायल कर दिये गये थे। २५ मार्च को अग्नि-काण्ड प्रारम्भ हो गये। दुकानो और मन्दिरो मे आग लगा दी गई। और वे जल-जलकर खाक हो गये। पुलिस ने कोई सहायता नही दी। लूट-मार, मार-काट, अग्निकाण्ड व हुल्लडवाजी का वाजार गरम हो गया। लगभग ५०० परिवार अपने घर छोड-छोडकर आसपास के गावो मे जा वसे। डाक्टर रामचन्द्र का वडा वुरा हाल हुआ। उनके परिवार के सव व्यक्ति, मय उनकी स्त्री व वूढे माता-पिता के, दगे में मारे गये और उनकी लाशे नालियो में ठूस दी गई। सरकारी अनुमान के अनुसार १६६ व्यक्ति मरे और ४८० घायल हुए। काग्रेस ने वावू पुरुषोत्तमदास टण्डन व अन्य कुछ मित्रो को शीघ्र ही कानपुर घटना-स्थल पर भेजा, लेकिन शान्ति के वातावरण को वापस लाना सहल न था। श्री गणेशशकर विद्यार्थी

२५ ता० से लापता थे। उनकी लाश का पता २६ ता० को जाकर लगा। उन्होंने उस दिन कई मुसलमान परिवारो को बचाया था। पता चलता है कि उन्हें फँसाकर किसी एक स्थान पर ले जाया गया था जहा वह बिना किसी सकोच के चले गये और फिर एक सच्चे सत्याग्रही की भाति क्रुद्ध भीड के सामने उन्होंने अपना सिर झुका दिया। यदि उनका लहू एकता स्थापित कर सकता और उन लोगो की प्यास बुझ सकती तो बखूबी उनके कत्ल का स्वागत किया जा सकता था। कांग्रेस ने इस शोकभरी घटना पर निम्न प्रस्ताव पास किया —

"इस उपद्रव में युक्तप्रान्तीय कांग्रेस कमिटी के अध्यक्ष श्री गणेशशंकर विद्यार्थी की मृत्यु हो जाने से कांग्रेस को अत्यन्त दुःख हुआ है। विद्यार्थीजी अत्यन्त स्वार्थत्यागी देश-सेवको में से थे और साम्प्रदायिक राग-द्वेष से सर्वथा मुक्त होने के कारण सभी दलो और सम्प्रदायो के प्रेम-भाजन हो गये थे। उनके कुटुम्बियो के साथ समवेदना प्रकट करते हुए कांग्रेस इस बात पर अभिमान प्रकट करती है कि प्रथम श्रेणी के एक राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता ने खतरे में पडे हुए लोगो के उद्धार तथा घोर उपद्रव और उन्मत्त उत्तेजना के समय शान्ति-स्थापना के प्रयत्न में अपने को बलिदान कर दिया।

"कांग्रेस सब लोगो से अनुरोध करती है कि इस बलिदान का उपयोग शान्ति की स्थापना तथा पुष्टि के लिए करें, प्रतिहिंसा का भाव जगाने के लिए नहीं। इस उद्देश से कांग्रेस एक कमिटी बना रही है जो वैमनस्य के कारणो की जाच करेगी और मेल कराने तथा आस-पास के स्थानो व जिलो में इस जहर को न फैलने देने के लिए जो-कुछ आवश्यक होगा करेगी।"

कांग्रेस ने डॉक्टर भगवानदास की अध्यक्षता में ६ सदस्यो की एक कमिटी नियुक्त की। कमिटी ने किस प्रकार गवाहियां लीं, कानपुर का दौरा किया, आदि बातो में विस्तार से जाने की आवश्यकता नहीं। यहा इतना ही कहना काफी है कि कमिटी ने एक मोटी रिपोर्ट तैयार करके कार्य-समिति के सामने पेश की, जो बहुत दिनों बाद छापी गई, लेकिन सरकार ने उसका वितरण रोक दिया।

अस्थायी संधि का प्रस्ताव

इसके पश्चात् अस्थायी सन्धिवाला प्रस्ताव आता है जो एक [illegible] चीज है। इसमें कांग्रेस का दृष्टि-कोण स्पष्ट करने के साथ-साथ कांग्रेस की और [illegible] आप भी स्पष्ट [illegible] दी गई जो गांधी-इर्विन-समझौते में स्पष्ट, [illegible]

समझी गई थी। समझौते में प्रयोग किये गये 'सरक्षण' (Reservations) शब्द की जगह 'घटा-वढी' (Adjustments) शब्द रक्खा गया और 'भारत के हित में 'सरक्षण' शब्दो की जगह 'घटा-वढी, जो प्रत्यक्ष रूप से भारत के हित में हो' शब्दो को रक्खा गया। गाधी-अर्विन-समझौते के कारण जो वात कम कर दी गई मानी जाने लगी थी, वह कराची के प्रस्ताव के इन शब्दो से फिर जुड गई—अर्थात् अपने देश की सेना, परराष्ट्र, राष्ट्रीय आय-व्यय तथा आर्थिक नीति के सम्वन्ध में अधिकार प्राप्त हो जायें। इस एक वाक्य में काग्रेस का ध्येय दिया हुआ है। इसके वाद काग्रेस ने उन सव व्यक्तियो को, खासकर महिलाओ को, वधाई दी जिन्होंने गत सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन में महान् कष्ट उठाये थे। काग्रेस ने निश्चय किया कि वह ऐसा कोई शासन-विधान स्वीकार न करेगी, जिसमे मताधिकार के सम्वन्ध मे स्त्रियो व पुरुषो में भेद किया गया हो। अन्य प्रस्ताव तो इतने साफ हैं कि उनपर कुछ कहने की आवश्यकता नही। उनका सम्वन्ध रचनात्मक कार्यक्रम से है और वे नीचे दिये जाते है —

"भारत-सरकार और काग्रेस-कार्य-समिति के वीच जो अस्थायी-सन्धि हुई है उसपर विचार करके काग्रेस उसका समर्थन करती है और यह स्पष्ट कह देना चाहती है कि काग्रेस का पूर्ण-स्वराज्य प्राप्त करने का उद्देश ज्यो-का-त्यो वना हुआ है। यदि ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधियो के किसी सम्मेलन में काग्रेस के प्रतिनिधियो के जाने के मार्ग में दूसरे प्रकार की रुकावटें न रह जायें (और काग्रेस के प्रतिनिधि उस सम्मेलन में शरीक हो), तो काग्रेस के प्रतिनिधि अपने उसी उद्देश की पूर्ति के लिए प्रयत्न करेंगे—खासकर इसलिए कि अपने देश को सेना, परराष्ट्र, राष्ट्रीय आय-व्यय तथा आर्थिक नीति के सम्वन्ध में अधिकार प्राप्त हो जायें, भारतवर्ष की ब्रिटिश-सरकार ने जो लेन-देन किये है उनकी जाच होकर इस वात का निपटारा हो जाय कि भारत और इग्लैण्ड इन दोनो मे से कोई भी जव चाहे तव एक-दूसरे से अलग हो जाय। काग्रेस के प्रतिनिधियो को इस वात की स्वतन्त्रता रहेगी कि इसमें ऐसी घटा-वढी करें जो भारतवर्ष के हित के लिए प्रत्यक्ष रूप से आवश्यक सिद्ध हो।

"महात्मा गाधी को काग्रेस गोलमेज-परिषद् के लिए अपना प्रतिनिधि नियुक्त करती है और उनके अतिरिक्त जिन्हें काग्रेस-कार्य-समिति नियुक्त करेगी वे भी महात्माजी के नेतृत्व मे सम्मेलन में काग्रेस का प्रतिनिधित्व करेंगे।"

खद्दर और वहिष्कार—"पिछिले दस वर्षो के भीतर सैकडो गावो में काम करने से जो अनुभव प्राप्त हुआ है उससे यह वात अत्यन्त स्पष्ट हो गई है कि साधारण

जनता की गरीबी दिन-दिन बढ़ती जाने का एक कारण यह भी है कि फुरसत के समय के लिए लोगो के पास कोई सहायक-धन्धा न होने से उनको लाचार होकर बेकार रहना पड़ता है, और केवल चर्खा ही ऐसी चीज है जो इस अभाव को व्यापक रूप में पूरा कर सकती है। यह भी देखने में आया है कि चरखा और फलत खद्दर को भी छोड देने के बाद लोग विदेशी या देशी मिल का कपडा खरीदते हैं जिससे गावो का पैसा दो तरह से छीना जाता है—उनकी कमाई भी कम हो जाती है और कपड़े के लिए पास से पैसा भी देना पडता है। इस दुहरे धन-शोषण को रोकने का एकमात्र उपाय यही है कि विदेशी कपडे और सूत का बहिष्कार किया जाय और उनकी जगह खद्दर का उपयोग किया जाय। देशी मिलें केवल आवश्यकतानुसार खद्दर की कमी की पूर्ति करें। अत यह काग्रेस सर्व-साधारण से अनुरोध करती है कि विलायती कपड़ा खरीदने से परहेज करें और विलायती कपडे तथा सूत का रोजगार करने के उस व्यवसाय को छोड दें जिससे करोडो ग्रामवासी जनता की भारी हानि हो रही है।

"और यह काग्रेस सम्पूर्ण काग्रेस-कमिटियो और उनसे सम्बन्ध रखनेवाली दूसरी सस्थाओ को आदेश करती है कि खादी के लिए जोर-शोर से प्रचार शुरू करके 'विदेशी बहिष्कार को और जोरदार बनावें।

"काग्रेस रियासतो से अनुरोध करती है कि वे इस रचनात्मक-उद्योग मे शामिल हो और विलायती कपडे तथा सूत को अपनी सीमा के अन्दर न घुसने दें।

"काग्रेस देशी मिलो के मालिको से अनुरोध करती है कि वे नीचे लिखे कार्य करके इस महान् रचनात्मक तथा आर्थिक-उद्योग को सहायता पहुँचावें —

(१) खुद हाथकते सूत का व्यवहार करके ग्रामवासियो के सहायक-धन्धे चरखे को अपनी नैतिक पुष्टि दें।

(२) ऐसा कपड़ा बनाना बन्द कर दें जो किसी प्रकार खद्दर से प्रतियोगिता कर सकता हो और इस विषय में चरखा-सघ की कोशिशो में उसका साथ दें।

(३) अपने माल का दाम जहातक हो सके कम-से-कम रक्खें।

(४) अपने माल में विलायती सूत, रेशम या नकली रेशम का व्यवहार न करें।

(५) दूकानदारो के पास जो विलायती माल पड़ा हुआ है उसको ले लें और उसके बदले में स्वदेशी माल देकर उन्हें अपने व्यवसाय को स्वदेशी बना लेने में सहायता दें और उनसे लिये हुए विलायती कपडे को फिर विदेश भेजने का प्रबन्ध करें।

मूलक और महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय-संस्थायें गैर-कानूनी हैं, ताकि वहा की अवस्था पुन स्वाभाविक हो जाय और वर्मा के भविष्य पर उसके अधिवासी शान्त वातावरण में बिना रोक-टोक के विचार कर सकें और अन्त में वर्मा के अधिवासियो की इच्छा की विजय हो।"

मौलिक अधिकार का प्रस्ताव

यहा यह कह देना बाकी है कि 'मौलिक अधिकारो व आर्थिक व्यवस्था' वाला प्रस्ताव कार्य-समिति के सामने कुछ यकायक तौर पर पेश हुआ था। यह एक अनुभव से जानी गई बात है कि देश में जैसा वातावरण रहता है उसीके अनुसार काग्रेस मे प्रस्ताव पेश होते है। मौलिक अधिकारो का प्रश्न सबसे पहले श्री चक्रवर्ती विजयराघवाचार्य ने पंजाब के ठिरठिराते हुए जाड़े में आधी रात को अमृतसर-काग्रेस मे उठाया था। जब दूसरे साल नागपुर में काग्रेस-अधिवेशन के वह स्वयं सभापति बने तो इस प्रश्न को और महत्त्व मिल गया। कराची में युवक-वर्ग तथा प्रौढ़-वर्ग में इस प्रश्न पर कुछ मतभेद-सा था। ऐसे आदमी मौजूद थे जो इस बात पर सन्देह करते हुए नही चूकते थे कि क्या अब काग्रेस 'औपनिवेशिक-स्वराज्य', ब्रिटिश-साम्राज्य-वाद व काली नौकरशाही की लहर में फिर नहीं बही जा रही है और मजदूरो व किसानो की समस्या व समाजवादी विचार हवा में उड़ रहे है? इस विषय पर देश को आश्वासन दिलाने की जरूरत थी। गांधीजी हर विषय पर विचार करने के लिए तैयार थे, यदि वह सत्य व अहिंसा पर अवलम्बित हो, और फिर यह तो गांववालो और गरीब लोगो का विषय था। ऐसी हालत में समाजवादी आदर्श, आर्थिक-परिवर्तन व मौलिक अधिकारो के प्रश्न से हिचकने की उन्हें क्या जरूरत थी?

यह भी सोचा गया कि इतने महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर फुरसत के साथ विचार होना चाहिए था और कार्य-समिति व महासमिति के सदस्यों-द्वारा उसका अध्ययन-मनन होना चाहिए। यह सलाह मान ली गई और इसीलिए महासमिति को अधिकार दिया गया कि प्रस्ताव के सिद्धान्तो व उसकी नीति को आघात पहुँचाये बिना उसमें रद्दो-बदल करे। बम्बई में, अगस्त १९३१ में, महासमिति ने मूल-प्रस्ताव में कुछ परिवर्तन किये। उसके बाद उसे जो रूप प्राप्त हुआ उसीमें उस प्रस्ताव को हम नीचे देते हैं —

"इस काग्रेस की राय है कि कांग्रेस जिस प्रकार के 'स्वराज्य' की कल्पना करती है उसका जनता के लिए क्या अर्थ होगा—इसे वह ठीक-ठीक जान जाय, इसलिए

यह आवश्यक है कि कांग्रेस अपनी स्थिति इस प्र
से समझ सके। साधारण जनता की तबाही का अ
है कि राजनैतिक स्वतन्त्रता में लाखो भूखो मरनेवा
भी निहित हो। इसलिए यह कांग्रेस घोषित क
होनेवाले किसी भी शासन-विधान में नीचे लिखी
या स्वराज्य-सरकार को इस बात का अधिकार है
कर सके :—

मौलिक अधिकार और कर्त्तव्य—१
प्रत्येक विषय मे, जोकि कानून और सदाचार के
प्रकट करने, स्वतन्त्र संस्थायें और संघ बनाने औ
पूर्वक एकत्र होने का अधिकार है।

(२) भारत के प्रत्येक नागरिक को, अ
सार्वजनिक शान्ति और सदाचार में बाधक न
आचरण की स्वतन्त्रता है।

(९) सरकार सब धर्मों के प्रति तटस्थ रहेगी।

(१०) बालिग उमर के तमाम मनुष्यो को मताधिकार होगा।

(११) राज्य मुफ्त और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था करेगा।

(१२) सरकार किसी को खिताब न देगी।

(१३) मौत की सजा उठा दी जायगी।

(१४) भारत का प्रत्येक नागरिक भारत-भर में भ्रमण करने, उसके किसी भाग में ठहरने या बसने, जायदाद खरीदने और कोई भी व्यापार या धधा करने मे स्वतन्त्र होगा और कानूनी कार्रवाई और रक्षा के विषय में, भारत के सब भागो में, उसके साथ समानता का व्यवहार होगा।

श्रमिक—२ (अ) आर्थिक जीवन के सगठन में न्याय के सिद्धान्त अवश्य सन्निहित होने चाहिएँ कि जिससे जीवन-निर्वाह का एक उपयुक्त स्टैण्डर्ड प्राप्त हो जाय।

(ब) सरकार कारखानो के मजदूरो के स्वार्थो की रक्षा करेगी और उपयुक्त कानून-द्वारा एव अन्य उपायो से उनके जीवन-निर्वाह के लिए पर्याप्त मजदूरी, काम के लिए आरोग्यप्रद परस्थिति, मजदूरी के घण्टो की मर्यादा, मालिको और मजदूरो के बीच के झगडो के निपटारे के लिए उपयुक्त साधन और बुढापा बीमारी तथा बेकारी के आर्थिक परिणामो के विरुद्ध रक्षा का उपाय करेगी।

३ दासत्व या लगभग दासत्व-जैसी दशा से मजदूर मुक्त होगे।

४ मजदूर-स्त्रियो की रक्षा और प्रसूति-काल के लिए पर्याप्त-छुट्टी का विशेष प्रबन्ध होगा।

५ स्कूल में जा सकने योग्य आयु के लडके खानो और कारखानों में नौकर न रक्खे जायँगे।

६ किसान और मजदूरो को अपने हितो की रक्षा के लिए सघ बनाने के अधिकार होगे।

कर और व्यय—७ जमीन की मालगुजारी और लगान का तरीका बदला जायगा और छोटे किसानो को वर्तमान कृषि-कर और मालगुजारी में तुरन्त और यदि आराजी मे लाभ न होता हो तो आवश्यक समय तक के लिए छूट देकर या उसमे मुक्त करके कृषको के बोझ का न्याययुक्त निपटारा किया जायगा, और इसी उद्देश से लगान-अदायगी की उक्त मुक्ति और भूमि-कर की कमी से छोटी जमीनो

के मालिकों को होनेवाली हानि की पूर्ति एक निश्चित तादाद से अधिक की भूमि की मूल आय पर क्रमशः बढ़नेवाला कर लगाकर की जायगी।

८ एक न्यूनतम निश्चित रकम के अलावा की जायदाद पर क्रमागत विरासत कर लिया जायगा।

९ फौजी खर्च में बहुत अधिक कमी की जायगी, जिससे कि वर्त्तमान व्यय से वह कम-से-कम आधा रह जायगा।

१० मुल्की विभाग के व्यय और वेतन में बहुत कमी की जायगी। खास तौर पर नियुक्त किये गये विशेषज्ञ अथवा ऐसे ही व्यक्ति के सिवा राज्य के किसी भी नौकर को, एक निश्चित रकम के सिवा, जोकि आमतौर पर ५००) मासिक से अधिक न होनी चाहिए, अधिक वेतन न दिया जायगा।

११ हिन्दुस्तान में बने हुए नमक पर कोई कर नहीं लिया जायगा।

आर्थिक और सामाजिक कार्यक्रम—१२ राज्य देशी कपडे की रक्षा करेगा, और इसके लिए ब्रिटिश वस्त्र और सूत को देश में न आने देने की नीति और आवश्यक अन्य उपायों का अवलम्बन करेगा। राज्य अन्य देशी धन्धों की भी, जब कभी आवश्यक होगा, विदेशी प्रतियोगिता से रक्षा करेगा।

१३ औषधियों के काम के सिवा, नशीले पेय और पदार्थ सर्वथा बन्द कर दिये जायँगे।

१४ हुडावन और विनिमय का नियन्त्रण राष्ट्र-हित के लिए होगा।

१५ मुख्य उद्योगों और विभागों, खनिज साधनों, रेलवे, जल-मार्गों, जहाजरानी और सार्वजनिक आवागमन के अन्य साधनों पर राज्य अपना अधिकार और नियन्त्रण रक्खेगा।

१६ कृषकों के ऋण से उद्धार के उपाय और प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से लिये जानेवाले ऊँचे दर के ब्याज पर सरकार का नियन्त्रण होगा।

१७ नियमित सेना के सिवा, राष्ट्र-रक्षा का साधन संगठित करने के लिए राज्य नागरिकों की सैनिक शिक्षा की व्यवस्था करेगा।"

कुछ और भी प्रस्ताव पास किये गये थे। एक प्रस्ताव में साम्प्रदायिक दंगों की निन्दा करते हुए दंगों की बर्बरता के शिकार परिवारों से सहानुभूति प्रकट की गई थी। मद्य-निषेध को जारी रखने की दूसरे प्रस्ताव में अपील की गई थी। भारत-सरकार की सीमा संबंधी नीति की निन्दा एक प्रस्ताव द्वारा करके अन्य प्रस्ताव द्वारा यह घोषणा की गई थी कि कांग्रेस की सम्मति में सीमा प्रान्त को भी अन्य प्रान्तों

के समान शासन-अधिकार मिलने चाहिये। एक प्रस्ताव अफ्रीकाप्रवासी भारतीयो के बारे में था।

गांधीजी—एकमात्र प्रतिनिधि

गाधी-अर्विन समझौते की सफलता व इससे भी अधिक कराची के प्रस्तावो की सफलता गाधीजी व काग्रेस के भारी बोझो को और भी अधिक बोझीला बनाती गई। कराची-काग्रेस में एक-दो महत्त्वपूर्ण प्रश्न ऐसे रह गये थे जिन्हें वह नही निवटा सकी थी और जिन्हें उसने कार्य-समिति व महा-समिति के लिए छोड दिया था। सिक्खो ने राष्ट्रीय झण्डे व उसमें उनके लिए समाविष्ट किये जानेवाले रग के प्रश्न को उठाया। यह प्रश्न पहले लाहौर में भी उठाया जा चुका था, कराची में इसे और भी अधिक महत्त्व मिला। चूकि काग्रेस का अधिवेशन ऐसी तफसील पर विस्तार-सहित विचार नही कर सकता था, उसे काग्रेस की कार्य-समिति के सुपुर्द किया गया। नई कार्य-समिति ने, जिसकी बैठकें १ व २ अप्रैल को हरचन्द्रराय-नगर में हुई, इस आपत्ति की जाच कराने के लिए कि राष्ट्रीय-झण्डे के रग साम्प्रदायिक आधार पर निर्धारित किये गये है अथवा नही, और यह सिफारिश करने के लिए कि काग्रेस कौनसा झण्डा स्वीकृत करे, एक कमिटी नियुक्त करने का निश्चय किया। कमिटी को गवाहिया लेने का अधिकार दिया गया और जुलाई १९३१ से पहले उसकी रिपोर्ट मागी गई। दूसरा विषय जिसपर कराची में काग्रेसी क्षुब्ध हो रहे थे, वह जोरो से फैली व उडती हुई यह खबर थी कि स्वर्गीय सरदार भगतसिंह और श्री राजगुरु व सुखदेव की लाशो को चीर-फाड डाला गया था, उन्हें ठीक तरह नही जलाया गया और उनके साथ अन्य अपमानजनक व्यवहार किया गया। इन अभियोगो की फौरन जाच करने के लिए और ३० अप्रैल से पहले-पहले अपनी रिपोर्ट कार्य-समिति को पेश करने के लिए कार्य-समिति ने एक कमिटी नियुक्त की। यहा हम यह कह देना चाहते है कि यह कमिटी खास तौर पर भगतसिंह के पिता के आग्रह पर नियुक्त की गई थी, लेकिन न तो उन्होने इस सम्बन्ध में कोई शहादत पेश की और न खुद कमिटी के सामने पेश हुए और न कमिटी को और किसी प्रकार की सहायता कर सके। इसलिए कमिटी कुछ भी न कर सकी। हम यह बता चुके है कि काग्रेस ने किस प्रकार जल्दी में 'मौलिक अधिकार व आर्थिक व्यवस्था' वाला प्रस्ताव पास किया था। इसलिए प्रान्तीय काग्रेस-कमिटियो तथा अन्य सस्थाओ व व्यक्तियो से उक्त प्रस्ताव पर सम्मतिया प्राप्त करने और ३१ मई तक अपनी रिपोर्ट पेश करने के लिए कार्य-समिति ने एक कमिटी

नियुक्त की, जिससे कि प्रस्ताव को अधिक पूर्ण और विस्तृत बनाया जा सके और उसमे आवश्यक परिवर्तन व संशोधन किये जा सके। हम देख चुके हैं कि कांग्रेस वर्षों से इस बात पर जोर देती आई है कि ब्रिटेन ने भारत में जो खर्चे किये हैं व उसके लिए जो कर्जे लिये है उनकी एक निष्पक्ष पंच-द्वारा जाच हो। इस विषय पर जो वाद-विवाद व द्वन्द्व होना लाजिमी था उसके लिए अपने तीर-तरकस तैयार रखना जरूरी ही था। इसलिए ईस्ट-इण्डिया-कम्पनी व ब्रिटिश-सरकार-द्वारा भारत में किये गये आर्थिक खर्चों व भारत के राष्ट्रीय कर्जे की छान-बीन करने के लिए और इस बात की रिपोर्ट पेश करने के लिए कि भविष्य मे भारत कितना आर्थिक बोझा सहे, कार्य-समिति ने एक कमिटी नियुक्त की। कमिटी से प्रार्थना की गई कि मई के अन्त तक वह अपनी रिपोर्ट पेश करे। एक कमिटी और भी नियुक्त की गई—वास्तव मे यह केवल कमिटी नही थी बल्कि एक शिष्ट-मण्डल था—जिसके गाधीजी, वल्लभभाई व सेठ जमनालाल बजाज सदस्य थे। यह शिष्ट-मण्डल इसलिए नियुक्त किया गया था कि वह साम्प्रदायिक समस्या को निबटाने के लिए मुसलमान नेताओ से मिले। कांग्रेस के तीसरे प्रस्ताव के अनुसार जिन राजबन्दियो की रिहाई चाही गई थी उनके बारे में सब प्रान्तो से सामग्री एकत्र करने के लिए श्रीनरीमैन को नियुक्त किया गया। अपनी बैठक समाप्त करने से पूर्व सबसे अन्त में कार्य-समिति ने जिस प्रश्न को निबटाया वह था गोलमेज-परिषद् को भेजे जाने-वाले कांग्रेसी शिष्ट-मण्डल का। कार्य-समिति के कई सदस्यो की राय थी कि शिष्ट-मण्डल केवल एक व्यक्ति का न हो किन्तु लगभग १५ सदस्यो का हो। सरकार तो २० सदस्यो तक के लिए खुशी से राजी थी। उसकी दृष्टि से तो एक सदस्य के बजाय १५ या २० सदस्यो का होना ही अधिक लाभदायक था। जब कार्य-समिति में विवाद चला तो यह बात साफ कर दी गई कि गाधीजी लन्दन शासन-विधान की तफसीलें तय करने के लिए नही बल्कि सन्धि की मूल बातें तय करने के लिए जा रहे हैं। जब यह बात साफ करदी गई तो मतभेद दूर हो गया और सदस्यो की यह सर्वसम्मत राय बन गई कि भारत का प्रतिनिधित्व केवल गाधीजी को करना चाहिए। यह निर्णय केवल सर्वसम्मत ही नही था बल्कि इसमें किसी कोई उज्र भी न था, क्योंकि भारत का प्रतिनिधित्व कई व्यक्तियो के बजाय एक व्यक्ति करे, यह ज्यादा अच्छा था। यह कांग्रेस के लिए एक महान् नैतिक लाभ भी था, क्योंकि जैसे युद्ध-सचालन में उसने एकता का परिचय दिया वैसे ही सन्धि की शर्तें तय करने में यह उसके नेतृत्व की एकता का परिचायक था। कांग्रेस का नेतृत्व एक ऐसे व्यक्ति द्वारा होना ही, जिसका निज का

कोई स्वार्थ न हो और जिसे मनुष्य-जाति की प्रसन्नता, उसके सद्भाव व उसकी शान्ति के अलावा और कोई भौतिक इच्छा न हो, नैतिक-क्षेत्र में स्वय एक ऐसा लाभ था जिसका ठीक मूल्य आकना कठिन है। इस तरह भारत का एक अर्ध-नग्न फकीर न केवल वाइसराय-भवन (दिल्ली) की सीढिया चढता-उतरता था बल्कि ठेठ सेंट जेम्स पैलेस-भवन में भी बराबरी के नाते सन्धि-चर्चा करने बैठा था। ब्रिटेन की प्रतिष्ठा को इससे क्या कम धक्का पहुँचा होगा ?

: २ :

समझौते का भंग

समझौता और उसके बाद

संघर्ष व संग्राम का समय खतम हो गया था। जिन कांग्रेस-कमिटियो की कल तक कोई हस्ती न थी, वे उन वृक्षो की तरह सब स्थानों पर फिर अपनी बहार पर आ गई, जो पहले मुरझाये और सूखे हुए दीखते हैं लेकिन वसन्त में फिर हरे-भरे हो जाते हैं। एक बार फिर कांग्रेसी-झण्डा कांग्रेस के दफ्तरो व कांग्रेसियो के घरों पर लहराने लगा। कांग्रेस के अधिकारी एक बार फिर पुलिस से एक-एक कागज और कपडे को वापस लेने का दावा करने लगे, जो पहले जब्त कर लिये थे और उनसे ले लिये गये थे। एक बार फिर स्वयसेवक-गण बिल्ले, तमगे और पेटी लगाये अपनी अर्ध-सैनिक या राष्ट्रीय पोशाक में झण्डे हाथ में लिये माला पहने राष्ट्रीय गीत गाते हुए जुलूस निकालने लगे, एक क्षण पूर्व जिनका निकालना निषिद्ध था।

सबसे बढकर कांग्रेस के लोग, छोटी-छोटी बालिकायें और बालक, वयस्क स्त्री-पुरुष शराब और विदेशी कपडे की दूकानो पर पिकेटिंग लगाकर लोगो को शराब न पीने और विदेशी कपडे से तन न ढकने की शिक्षा देने लगे। और ये सब बातें उसी सिपाही की आख के सामने होने लगी जो कल इन लोगो पर भेडिये की तरह टूटता था, लेकिन आज वह कुछ कर न सकता था। पुलिस के निम्न कर्मचारी इतने आत्म-समर्पण से सन्तुष्ट नही थे। मजिस्ट्रेटो की भी कृपा-दृष्टि इसपर न थी। सिविलियन भी यह अनुभव कर रहे थे कि उनकी पगडी गिर गई है और नौकरशाही सरकार यह समझ रही थी कि उसने तो सब कुछ खो दिया है। कानून और अमन के ठेकेदार बननेवाले निराशा और पराजय का अनुभव कर रहे थे। कैदी रोज छोडे जा रहे थे, उन्हें मालायें पहनाई जाती थी, उनके जुलूस निकाले जाते थे। वे भाषण देते थे। उनके भाषणो में सदा ही विवेक नही बर्ता जाता था, और न शायद नम्रता ही रहती थी। अब उनके व्याख्यानो में विजय की ध्वनि और ललकार की भावना होती थी। कांग्रेस का लोहा मानने की नौबत आ गई थी। कांग्रेस के पदाधिकारी एक स्थान पर एक कैदी की रिहाई की माग करते थे तो दूसरी जगह जायदाद वापसी की माग करते थे और तीसरी जगह

किसी सरकारी नौकर को फिर बहाल करने पर जोर देते थे। १८ अप्रैल को लॉर्ड अर्विन ने भारत से प्रस्थान किया और गाधीजी ने बम्बई में उन्हे विदाई दी। वाइसराय-भवन के व्यक्ति बदल गये। नये वाइसराय पुरानी दोस्तियो और वायदो से नावाकिफ थे। लॉर्ड अर्विन ने यदि शोलापुर के कैदियो को छोडने की प्रतिज्ञा कर ली थी, तो क्या? यदि उन्होने नजरबन्दो के मामले पर एक-एक करके गौर करने का वायदा कर लिया था, तो क्या? यदि वाइसराय ने गुजरात के उन दो डिप्टी-कलक्टरो की पेंशनें व प्राविडेन्ट-फन्ड, जिन्होने गुजरात में इस्तीफा दे दिया था, वापस जारी करने की प्रतिज्ञा कर ली थी, तो उससे क्या? यदि लॉर्ड अर्विन ने वारडोली की बेची गई जायदाद को वापस करने के लिए प्रान्तीय सरकार को लिखने का वचन दे दिया था, तो उससे नई सरकार को क्या? यदि लॉर्ड अर्विन ने यह वायदा कर लिया था कि मेरठ-षड्यन्त्र के अभियुक्तो की सजा में वह समय भी शामिल कर लिया जायगा, जो मुकदमे के दौरान में वे भुगत रहे है, तो उससे क्या?

अधिकारियों की कुचेष्टाये

लॉर्ड अर्विन भारत से १८ अप्रैल को विदा हुए। इससे पहले दिन १७ अप्रैल को लॉर्ड विलिंगडन ने चार्ज लिया था। वाइसराय आते है और चले जाते है, लेकिन सेक्रेटेरियट वही रहता है। जिलो पर शासन करनेवाले सिविलियन ही दरअसल वाइसराय होते है। २ नवम्बर १९२९ के दिल्लीवाले वक्तव्य पर हस्ताक्षर करने-वालो ने जब यह लिखा था कि शासन-प्रवन्ध की स्पिरिट उसी दिन से बदल जानी चाहिए, तब उनके दिल में भारत-सरकार के प्रजातन्त्रीकरण का और सिविलियन कलक्टरो के निरकुश शासन से मुक्त हो जाने का भाव था। परन्तु यह स्पिरिट एक वर्ष के सग्राम के बाद भी न बदली और न गाधी-अर्विन-समझौते पर हस्ताक्षर हो जाने के बाद ही बदली। देश के हाकिमो ने समझौते को अपनी हतक-इज्जत समझा। सभी जगह वस्तुत एक विद्रोह उठ खडा हुआ। रोजमर्रा कांग्रेस के दफ्तरो में यह शिकायतें आने लगी कि समझौते की शर्तों का ठीक पालन नही होता। अपनी ओर से कांग्रेस अपने पर लगाई शर्तों के पालन के लिए चिन्तित थी। वे शर्तें मुख्यत पिकेटिंग और बहिष्कार-प्रचार में ब्रिटिश माल को शामिल न करने की थी। यदि कहीं इन शर्तों के पालन में शिथिलता आती थी, तो सरकार के कर्मचारी कांग्रेसियो की चौकी पर थे। कांग्रेसी लोग इधर-उधर और किसी अन्य स्थान पर होनेवाले लाठी-प्रहार की, जो अब भी जारी था, उपेक्षा करते जाते थे। गुन्तूर में समझौते पर हस्ताक्षर होने के बाद भी

पुलिम इसमे बाज न आई। पूर्वी गोदावरी मे बादपल्ली मे बहुत दुखद गोली-काण्ड हुआ था, जिसमें चार आदमी मर गये और कई घायल हो गये। यह गोली-काण्ड महज इसलिए हुआ था कि लोगो ने एक मोटर पर गाधीजी का चित्र रक्खा था और पुलिस इसपर ऐतराज करती थी। स्थिति शीघ्र ही खेदजनक और असमर्थनीय गोली-काण्ड में बदल गई। लाठिया और गोलिया चला देना पुलिस का स्वभाव ही हो गया था। वे इसके बिना रही नही सकते थे। पर ऐसी ज्यादतिया आम बात हो गई हो सो नहीं; लेकिन जो थोडी-बहुत ऐसी घटनायें हुईं, वे भी ऐसी स्थितियो मे हुईं जिनका पुलिस के पास कोई जवाब नही हो सकता।

जब काग्रेस ने अस्थायी सधि की, तब वह इस उम्मीद में थी कि भारत के विभिन्न सम्प्रदायो में भी एक समझौता हो जायगा और सरकार भी इस दिशा में हमारी मददगार होगी। लेकिन ये सब उम्मीदें नाकामयाब हुईं। गाधीजी यह अच्छी तरह जानते थे कि यहा हिन्दू-मुस्लिम-समझौता हुए बिना लन्दन जाने की बनिस्बत भारत में ही रहना अधिक उपयुक्त है। फिर भी, कार्य-समिति ९, १० और ११ जून १९३१ को बैठी और, गाधीजी की इच्छा न होते हुए भी, मुसलमान मित्रो के आग्रह से उसने ऐसा प्रस्ताव पास कर दिया —

"समिति की यह सम्मति है कि दुर्भाग्य से यदि इन प्रयत्नो में सफलता न मिले तो भी काग्रेस के रुख के सम्बन्ध में किसी तरह की गलतफहमी फैलने की सम्भावना से बचने के लिए महात्मा गाधी गोलमेज-परिषद् में काग्रेस की ओर से प्रतिनिधित्व करें, यदि वहा काग्रेस के प्रतिनिधित्व की आवश्यकता हो।"

कार्य-समिति को यह उम्मीद थी कि यदि भारत में नही तो इग्लैण्ड में अवश्य समझौता हो जायगा।

अस्थायी सन्धि की शर्तों के पालन के विषय की ओर लौटने से पहले कार्य-समिति की जून मास की बैठक की कार्रवाई का आशय दे देना ठीक होगा। मौलिक-अधिकार-उप-समिति और सार्वजनिक ऋण-समिति की रिपोर्ट आने की मियाद बढा दी गई। मिल के सूत से बने कपडे के व्यापारियो तथा ऐसे करघो को प्रमाण-पत्र देने की प्रथा को, जो पिछले दिनो बहुत बढ गई थी, बन्द कर दिया गया। कुछ काग्रेस-सस्थायें विदेशी कपडे के वर्तमान स्टाक को बेचने की इजाजत दे रही थी। इनको बुरा बताया गया। श्रीनरीमैन से कहा गया कि एक सूची उन कैदियो की तैयार करें जोकि अस्थायी सन्धि की शर्तो के अन्दर नही आते हैं, और उसे गाधीजी को पेश करें। कपडो के सिवा अन्य वस्तुओ को प्रमाणपत्र देने के लिए एक स्वदेशी बोर्ड बनाया जाने

को था। चुनाव के कुछ झगडो (बगाल और दिल्ली) पर भी ध्यान दिया गया। १८८५ से अबतक के काग्रेस के प्रस्तावो का हिन्दी-अनुवाद करने के लिए २५०) रु० स्वीकृत किये गये।

गांधीजी की चेतावनी

अब हम अस्थायी सन्धि और उसकी शर्तो के पालन की कहानी पर आते हैं। काग्रेस की नीति बिलकुल रक्षणात्मक थी। गाधीजी ने सारे देश के काग्रेसियो को आप होकर झगडा न शुरू करने की पर साथ ही राष्ट्रीय आत्म-सम्मान पर चोट भी न सहने की सख्त चेतावनी दी थी। गाधीजी पस्त-हिम्मती के भारी शैतान को दूर रखना चाहते थे। वह भय और असहायता पर हावी होने का सदा आग्रह करते रहे। उनकी नसीहतो का आशय इस प्रकार है —

"यदि वे समझौते का सम्मान-पूर्वक पालन असम्भव कर देते है, यदि वे चीजें जो स्वीकृत कर ली गई हैं देने से इन्कार कर दिया जाता है, तो यह इस बात की स्पष्टतम चेतावनी है कि हम भी रक्षणात्मक उपाय करने के अधिकारी है। जैसे वे मदरास में कहते हैं—तुम ५ पिकेटरो से अधिक नही खडा कर सकते। मै पहले कह चुका हूँ—इस समय मान लो, लेकिन इसके बाद हम नही मानेंगे, हम प्रत्येक प्रवेश-द्वार पर पाच पिकेटर नियुक्त करेंगे। लेकिन तुम्हें यह निश्चित रूप से समझ लेना चाहिए कि यह नौ दिन का तमाशा होगा, या तो वे लौट जायेंगे या फिर आगे बढेंगे। हम कोई नई स्थिति अपने-आप पैदा नही करते, लेकिन हमे अपनी रक्षा करनी ही चाहिए। उदाहरण के तौर पर झण्डाभिवादन रोक दिया जाता है तो हम इसे सहन नही कर सकते और हमें इसपर जरूर अड़े रहना चाहिए। यदि एक जुलूस रोक दिया जाता है, तो हमें उसके लिए लाइसेन्स की प्रार्थना करनी चाहिए, और यदि वह नही दिया जाता, तो हमें जुलूस न निकालने की आज्ञा का उल्लघन करना चाहिए। लेकिन जहा मासिक झण्डाभिवादन और सार्वजनिक सभा का मामला हो, हमें प्रतीक्षा—इजाजत की प्रतीक्षा न करनी चाहिए और न इसके लिए दरख्वास्त ही देनी चाहिए। हमें असहायता और उससे उत्पन्न होनेवाली पस्त-हिम्मती को दूर करना चाहिए।

"करबन्दी-आन्दोलन के बारे में, तुम इसकी इजाजत दे सकते हो, लेकिन इसे अपने कार्यक्रम में शामिल नही कर सकते। वे इसे खुद अपने हाथ में लेंगे और अपने मित्रो को भी इस आन्दोलन में ले आवेंगे। जब ऐसा होगा, तब आर्थिक प्रश्न

बन जायगा, और जब यह आर्थिक प्रश्न बन जाय, जनता इस आन्दोलन की ओर खिंच जायगी।"

जगह-जगह सन्धि-भंग

सरकार की ओर से बहुत सहानुभूति दिखाई गई और लॉर्ड विलिंगडन ने मीठे शब्दो की भी कमी न रक्खी। ऐसा कोई कारण न था कि उनके वचनो की सच्चाई पर सन्देह किया जाता। लेकिन यह जानने में अधिक समय न लगा कि वाइसराय की हवाई बातो से जो ऊँची आशायें की गई थी, वे सब झूठी है। जुलाई के पहले सप्ताह में गाधीजी के दिल में यह सन्देह उत्पन्न हो गया था कि क्या यह सब टूट और गिर तो नही रहा है?

युक्तप्रात सुलतानपुर में ६० आदमियो पर दफा १०७ ताजिरात हिन्द में मुकदमा चलाया गया था। भवन शाहपुर में ताल्लुकेदार ने किसानो को राष्ट्रीय झण्डा हटा लेने का हुक्म दिया और उनके इन्कार करने पर उन्हे हवालात में बिठा दिया। एक जिला-काग्रेस-कमिटी के सब प्रमुख सदस्यो पर १४४ दफा की रू से नोटिस दे दिये गये। मथुरा मे एक थानेदार ने सार्वजनिक सभा को जबरदस्ती भग कर दिया। लखनऊ की एक खबर थी कि उन दिनो ७०० मुकदमे चल रहे थे। देश-भर मे जिन अध्यापको व अन्य सरकारी नौकरो को अलग कर दिया गया था, या जिन्होने स्वय इस्तीफा दे दिया था, उन्होने चाहा कि वे फिर नियुक्त हो, लेकिन कई मामलो में कोई सुनवाई न हुई। कॉलेजो में दाखिले की इजाजत मागनेवाले विद्यार्थियो से यह वचन लिया गया कि वे भविष्य में किसी आन्दोलन मे भाग न लेगे। बिचारी मे लारी-भरे पुलिस-सिपाहियो ने काग्रेसी कार्यकर्त्ताओ के घरो पर छापा मारा, स्त्रियो का अपमान किया और राष्ट्रीय झण्डो को जला दिया। बाराबकी में जिला-मजिस्ट्रेट ने पुलिस-इसपेक्टरो को १४४ धारावाले कोरे आर्डर अपने दस्तखत करके दे दिये। डिप्टी कमिश्नर ने गाधी-टोपियो को उतरवा दिया और लोगो को गाधी-टोपी न पहनने व काग्रेस में न जाने की चेतावनी दी गई। युक्तप्रान्त के विविध जिलो मे यही कहानी दोहराई गई। कुछ ताल्लुकेदारो ने अपने क्रूरतापूर्ण उपायो के द्वारा सरकार को सहयोग का आश्वासन दिया। सशस्त्र पुलिस गाववालो को भयभीत करने लगी। एक जागीर के प्रबन्धकर्त्ता जिलेदार व उसके आदमी ने एक शख्स को पीट-पीट कर मार दिया। किसानो को 'मुर्गा' बनाने (मुर्गा बनाकर खडा करने) की प्रथा आम बात हो गई। हिसार (पजाब) के चौताला में और नौशेरा से ताजीरी पुलिस नही हटाई गई।

एक पेंशनयाफ्ता फौजी सिपाही की पेंशन जब्त कर ली गई। तरुतन में शान्त जुलूस पर लाठी बरसाई गई। छावनियो में राजनैतिक सभायें बन्द कर दी गईं।

बम्बई—अहमदावाद, अकलेश्वर और रत्नागिरि जिलो में गैर-लाइसेन्स-शुदा शराब की दूकानो पर और गैर-लाइसेन्स-शुदा घण्टो में शान्तिमय पिकेटिंग की आज्ञा नही दी गई। कैदी भी नही छोडे गये। वलसाड में पाच आदमियो से इसलिए जुरमाना मागा गया कि सत्याग्रह-सग्राम के दिनो में उन्होने स्वयसेवक-कैम्प के लिए अपनी जमीन दे दी थी। जवतक जुरमाना वसूल न हुआ, जमीनें नही दी गईं। अस्थायी सन्धि के वहुत दिनो वाद मूल से एक साल्ट-कलक्टर ने एक नाव बेच दी थी, वह भी वापस नही की गई और न मालिक को कोई मुआवजा दिया गया। नवजीवन-प्रेस नही दिया गया। कर्नाटक में पश्चिमी जमीनें तवतक वापस नही की गईं, जवतक यह वचन नही ले लिया कि आगे वे आन्दोलन में भाग न लेंगे। कई पटेल और तलाटी फिर वहाल नही किये गये। दो डिप्टी-कमिश्नरो को, जिन्होने इस्तीफा दे दिया था, पेन्शन नही दी गई, यद्यपि लॉर्ड अर्विन वचन दे चुके थे। दो डाक्टरो व एक सुपरवाइजर को वहाल नही किया गया। आठ लडकियो तथा ११ वालको को सदा के लिए सरकारी स्कूलो से 'रस्टिकेट' कर दिया। इसी तरह अकोला में चार विद्यार्थी निकाल दिये गये। सिरसी व दिसापुर ताल्लुको में किसानो पर सख्तिया और ज्यादतिया शुरू की थी—उनकी केवल कृषि-सम्वन्धी कुछ शिकायते दूर की गईं।

बगाल मे वकीलो व बैरिस्टरो से 'आयन्दा ऐसा न करने का' वचन लेने मे एक नई परिस्थिति उत्पन्न हो गई। नवें आर्डिनेन्स के मातहत एक जब्त आश्रम वापस नही लौटाया गया। गोहाटी में विद्यार्थियो से ५०)-५०) की जमानतें मागी गईं। जोरहट में सुपरिन्टेण्डेण्ट वार्टली की आज्ञा से १६ जून को प्रभात-फेरी करनेवाले लडको को पीटा गया।

दिल्ली—विद्यार्थियो से आगे के लिए वायदे लिये गये।

अजमेर-मेरवाडा—कई अध्यापको को सहायता-प्राप्त स्कूलो मे जगह न देने का हुक्म निकाला गया।

मदरास—१३ जुलाई को एक सरकारी विज्ञप्ति प्रकाशित हुई और अफसरो को भेजी गई कि अस्थायी सधि के शान्तिमय पिकेटिंग में 'स्लिकारी साल' पर पिकेटिंग शामिल नही है। तजोर के वकीलो पर शराब की दूकानो की पिकेटिंग न करने के लिए १४४ दफा की रु से नोटिस तामील किये गये। पिकेटिंग करते हुए स्वयसेवको को ताडी की दूकान मे १०० गज के अन्दर खडा रहने की आज्ञा न थी। उनपर बनावटी

अभियोग लगाये गये। अनेक स्थानो पर उन्हें पीटा गया और झण्डा व छाता रखने से भी रोका गया। लोगो को यह चेतावनी दी गई कि उन्हें (स्वयसेवको को) पानी न दिया जाय। एलोर में कपडे की दुकानो पर पिकेटरो की सख्या एक या दो तक सीमित कर दी गई। कोमलपट्टी मे जहा पिकेटरो की सख्या ५ तक सीमित की गई थीं, उनपर मई मे मुकदमा चलाया गया। कोयम्बटूर मे उनकी सख्या ६ तक बाध दी। गुन्तूर में आख के एक ऑनरेरी असिस्टैण्ट सर्जन को कहा गया कि तुम तबतक बहाल नही किये जाओगे, जबतक सरकार-विरोधी आन्दोलन के लिए क्षमा न माग लो। आन्दोलन में भाग लेने के कारण जो बन्दूके और उनके लाइसेन्स जब्त किये गये थे, उनमें से बहुत-से नही लौटाये गये। बहुत-से कैदी नही छोडे गये, हालाकि वे एक ही गवाही के कारण अन्य ऐसे कैदियो के साथ गिरफ्तार किये गये थे जो छोड दिये गये। शोलापुर के मार्शल-लॉ कैदियो की रिहाई की निश्चित प्रतिज्ञा लॉर्ड अर्विन कर गये थे, लेकिन फिर भी वे न छोडे गये।

परन्तु बारडोली मे सरकार ने अस्थायी सधि का जो स्पष्ट भग किया, उसके सामने ये सब बातें भी फीकी पड जाती हैं। पाठको को यह याद होगा कि इस ताल्लुके मे लगानबन्दी का आन्दोलन था। नई मालगुजारी २२ लाख रुपये देनी थी, जिसमे से २१ लाख रुपये दे दिये गये। हम नीचे गाधीजी की शिकायत और सरकार के जवाब मे से कुछ उद्धरण देते है—

शिकायत और जवाब

शिकायत—"बारडोली में नये साल की मालगुजारी २२ लाख रुपये में से २१ लाख रुपये दे दिये गये हैं। यह दावा किया जाता है कि इस अदायगी के जिम्मेवार काग्रेसी-कार्यकर्ता हैं। यह सब जानते हैं कि जब उन्होने मालगुजारी इकट्ठी करनी शुरू की, तब उन्होने किसानो को कहा कि उन्हे पूरी मालगुजारी—इस साल की और पिछली—चुकानी है। अधिकाश किसानो ने यह जाहिर किया है कि वे नई मालगुजारी भी मुश्किल से चुका सकते है। अधिकारियो ने पहले तो सकोच किया और कुछ समय तक तो अधूरा लगान लेने से स्पष्ट इन्कार कर दिया, पर उसके बाद हिचकिचाते हुए अदायगी मजूर कर ली और नये लगान के हिसाब मे रसीदें दे दी। अब जो लगान देने में असमर्थता प्रकट करते है, उनसे नया या पिछला लगान मागना कार्यकर्त्ताओ और लोगो के साथ विश्वास-घात है। जहातक बकाया का ताल्लुक है, हमे यह कहना है कि यदि मुल्तवी बकाया पदार्थों के दाम कम हो जाने के कारण मुल्तवी कर दिया

गया है, तो फिर गैर-मुल्तवी बकाया को स्थगित कर देने के तो और भी जबरदस्त कारण है, क्योंकि सत्याग्रही किसानो को पदार्थों के मूल्य में कमी के सिवा प्रवास (खेत छोडकर दूसरे इलाको में जाने) की वजह से भी सख्त नुकसान पहुँचा है। इस नुकसान का अन्दाजा लगाकर अधिकारियो के पास भेज भी दिया गया है। फिर कांग्रेसी-कार्यकर्त्ताओ ने तो यहा तक कह दिया है कि जिस मामले मे सन्देह हो ,उसकी अधिकारी फिर जाच कर सकते है। परन्तु इस बात को वे जरूर बुरा समझते है कि किसानों को दबाया जाय, जुरमाना किया जाय और पुलिस जाकर लोगो के घरो को घेर ले।"

प्रान्तीय सरकार का उत्तर—"(बम्बई) हम यह नही मानते कि देने में असमर्थता प्रकट करनेवालो से नया या पिछला लगान मागना कार्यकर्त्ताओ और जनता के साथ विश्वास-घात है। असमर्थता सिद्ध होनी चाहिए, केवल कहने से काम नही चलता। गैर-मुल्तवी बकाया के साथ भी मुल्तवी बकाया का-सा व्यवहार होना चाहिए, इस दलील में भी कोई जोर नही है। सरकार तभी बकाया मजूर करती है, जबकि फसल, जिसपर लगान देना हो, पूरी या अधूरी खराब हो गई हो और किसान हमेशा की तरह अपना देना न दे सकते हो। बारडोली में बकाया इसलिए नही रहा कि फसल खराब हो गई, बल्कि इसलिए कि किसानो ने सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन के सिलसिले में अपना लगान देनें से इन्कार कर दिया। किसी किस्म के नुकसान के कारण कोई खास व्यक्ति लगान चुका सकता है या नही, इसकी जाच प्रत्येक मामले में पृथक्-पथक् होनी चाहिए। बारडोली में लगान-वसूली के सिलसिले मे केवल एक जायदाद जब्त की गई है। कलक्टर ने उनका पूरा खयाल रक्खा है, जो रिआयत के अधिकारी थे। यह इसीसे स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने १८,०००) रुपये के लगभग वसूली स्थगित कर दी है और १९००) रु० तक की छूट भी स्वीकृत कर ली है। लगान-वसूली के लिए पुलिस का भी प्रत्यक्ष इस्तेमाल नही किया गया। केवल ऐसे कुछ गावो में वे पुलिस को ले गये, जहा उसकी सहायता के बिना वसूली के उद्देश से जाने में वे उपद्रव की आशका से डरते थे। मामलतदार या गाँव के मुख्य लगान-अफसर की रक्षा करना, जब्ती के सिलसिले में घर पर पहरा बिठाना, और कुछ मामलो में अपराधी को बुलाने के लिए गाव के निम्न कर्मचारियो के साथ जाना—यही काम सिपाहियो के जिम्मे थे।"

जब गाधीजी जुलाई के मध्य में शिमला गये, उन्होने ये सब शिकायतें भारत-सरकार तक पहुँचाई। अगले दस दिनो में स्थिति में जो परिवर्तन हुआ, उसकी कोई

उम्मीद न थी। गाधीजी ने बारडोली से इस विषय पर अपने विचार सीधे सूरत के कलक्टर को लिखे और उसकी एक प्रति बम्बई-सरकार को भी भेज दी। बम्बई-गवर्नर का जवाब भी असन्तोष-जनक था। शिमला के अधिकारियो ने भी बम्बई-सरकार का समर्थन किया।

जांच का प्रस्ताव

तब गाधीजी ने पच नियुक्त करने का प्रश्न उठाया। इस सिलसिले में जो पत्र-व्यवहार हुआ, वह नीचे दिया जाता है —

१ भारत-सरकार के होम-सेक्रेटरी इमर्सन साहब को बोरसद से लिखे गये गाधीजी के १४ जून, १९३१ के पत्र का उद्धरण —

"प्रान्तीय सरकारो के समझौते के पालन करने या न करने में आप शायद हस्तक्षेप करने में समर्थ न होगे। यह भी सम्भव है कि आप जितना मैं चाहता हूँ उतना हस्तक्षेप न करें। इसलिए शायद इसका समय आ गया है कि समझौते के स्पष्टीकरण से सम्बन्ध रखनेवाले प्रश्नो को तथा उन सब प्रश्नो को, कि आया समझौते की शर्तो का पालन हो रहा है या नही, तय करने के लिए स्थायी पच नियुक्त किये जायें।"

२ भारत-सरकार के होम सेक्रेटरी इमर्सन साहब को बोरसद से लिखे गये गाधीजी के २० जून, १९३१ के पत्र की नकल —

"आपका १६ जून का पत्र मिला और साथ ही पिकेटिंग के सम्बन्ध में मदरास-सरकार से प्राप्त विवरण का एक उद्धरण भी ? यदि रिपोर्ट सच है, तो बहुत बुरी बात है। लेकिन पूर्ण विश्वसनीय प्रत्यक्षदर्शी कार्यकर्त्ताओ से मदरास के जो दैनिक समाचार मुझे मिलते है, वे मुझे आपको प्राप्त होनेवाली रिपोर्ट पर विश्वास नही करने देते। लेकिन मै जानता हूँ कि इससे कोई लाभ नही होगा। जहातक काग्रेस का सम्बन्ध है, मैं समझौते का पूर्ण पालन चाहता हूँ। इसलिए मैं एक बात पेश करता हूँ। क्या आप प्रान्तीय सरकारो को किसी भी पक्ष के आरोपो की सरसरी जाच करने के लिए एक जाच-समिति—एक प्रतिनिधि सरकार की ओर से और एक काग्रेस की ओर से—नियुक्त करने की सलाह देंगे ? और यदि कही यह पाया जाय कि शान्तिमय पिकेटिंग का नियम तोडा गया है, तो वहा पिकेटिंग बिलकुल मौकूफ कर दिया जाय, और दूसरी तरफ सरकार यह वचन दे कि यदि कभी यह मालूम हो कि शान्तिमय पिकेटिंग करते हुए ही स्वयसेवक पकड लिये गये है, तो मुकदमा उसी समय वापस ले लिया जायगा। यदि आपको मेरी यह सलाह पसन्द न हो तो, आप कोई और

अधिक अच्छा और स्वीकार करने योग्य परामर्श देंगे। तब-तक मैं आपके पत्र में लगाये गये विशेष आरोपो की जाच करता हूँ।"

३ गाधीजी को लिखे गये भारत-सरकार के होम-सेक्रेटरी इमर्सन साहब के ता० ४ जुलाई १९३१ के पत्र की नकल—

"१४ जून के पत्र में आपने यह सलाह दी है कि समझौते के अर्थ-सबधी प्रश्नो को तय करने के लिए शायद स्थायी पच नियुक्त करने का समय आगया है। फिर २० जून के पत्र में आपने यह सलाह दी है कि भारत-सरकार प्रान्तीय-सरकारो को किसी भी पक्ष के आरोपो की जाच करने के लिए एक जाच-समिति—जिसमें प्रान्तीय सरकार का एक प्रतिनिधि और एक काग्रेस का प्रतिनिधि हो—नियुक्त करने की सलाह दे और यदि कही यह पाया जाय कि शान्तिमय पिकेटिंग का नियम तोडा गया है, तो वहा पिकेटिंग बिलकुल मौकूफ कर दिया जाय तथा दूसरी तरफ सरकार यह वचन दे कि यदि कभी यह मालूम हो कि शान्तिमय पिकेटिंग करते हुए ही स्वयसेवक पकड लिये गये है, तो मुकदमा उसी समय वापस ले लिया जायगा। समझौते के बारे में उठने वाले प्रश्नो के सम्बन्ध में यह प्रस्ताव स्वीकार करके झगडे के सभावित कारणो को ही दूर करने के आपके इस परामर्श की मैं कद्र करता हूँ। पहले छोटे सवाल को ही लीजिए, क्योकि मेरा खयाल है कि यह मुख्यत उन्ही मामलो तक सीमित है, जहा तक पिकेटिंग के तरीको का सम्बन्ध है, जो साधारण कानून का उल्लघन करते हुए बताये गये है, और इसलिए पुलिस ने पिकेटरो पर मुकदमा चलाया है या वह चलाने का खयाल कर रही है। आपके परामर्श का एक परिणाम यह होगा कि कानून की शरण लेने से पूर्व सरकार का एक मनोनीत प्रतिनिधि और काग्रेस का एक मनोनीत प्रतिनिधि इस मामले की जाच करेंगे और असली कार्रवाई उसके निर्णय पर निर्भर होगी। दूसरे शब्दो मे इस खास विषय पर कानून-रक्षण का कर्तव्य पुलिस से हटकर, जिसका यह प्रधान कर्तव्य है, एक जाच-मण्डल के पास चला जायगा। इस मण्डल के सदस्य किसी भिन्न परिणाम पर पहुँच सकते है, जब कि पुलिस को तो स्वभावत कानून के अनुसार ही कार्रवाई करनी पडती है, अत न तो यह व्यावहारिक है और न समझौते की यह मशा ही थी कि इस विषय पर पुलिस के कर्तव्यो को किसी तरह रद कर दिया जाय।

"ऐसे मामलो में, कानून तोटा गया है या नही, इसका फैसला तो अदालत ही कर सकती है। और जबतक अपील में अदालत का यह फैसला कि पिकेटिंग ने साधारण कानून और इसलिए समझौते की शर्तो का भग हुआ, बदल नही जाता, तबतक अदालत का ही फैसला मानना होगा और इसलिए समझौते के फल-स्वरूप पिकेटिंग को बन्द कर

देना पड़ेगा। जाच-समिति से उत्पन्न होनेवाली कठिनाइयो में से एक कठिनाई इस उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है। समझौते से काग्रेस पर जो कर्तव्य-भार आपड़ा है, उनका सम्बन्ध अधिकाशत अमन व कानून-सम्बन्धी मामलो, व्यक्तिगत कार्य-स्वतत्रता और शासन-प्रबन्ध से है। अर्थात् समझौते का भारी उल्लघन इनमें किसी-न-किसी पर अवश्य बड़ा असर डालेगा। जहा तक कोई व्यक्ति साधारण कानून का उल्लघन करता है, वहा तक पिकेटिंग की सी ही स्थिति होती है। यदि कानून-भग आम होने लगता है और उससे अमन व कानून-सम्बन्धी नीति का प्रश्न खड़ा हो जाता है या उसका असर शासन-प्रबन्ध पर पड़ने लगता है, तो सरकार के लिए यह असभव होगा कि वह मामला जाच-समिति के पास भेज कर अपने कार्य-स्वातत्र्य पर रुकावट डाल दे। जब समझौते की अन्तिम धारा बनाई गई थी, तब इसका ख्याल भी नही किया गया था और न सरकार की आधार-भूत जिम्मेवारियो के निभाने से इसकी सगति ही बैठाई जा सकती है। मुझे तो यह प्रतीत होता है कि इस समझौते का पालन मुख्यत दोनो पक्षो के इसके प्रति सच्चे रहने पर ही निर्भर रहना चाहिए। जहातक सरकार का ताल्लुक है वहा तक वह उसकी शर्तों का कठोरता से पालन करने की इच्छुक है, और हमारी जानकारी से मालूम होता है कि प्रान्तीय सरकारो ने अपने पर डाले गये इस कर्तव्य-भार को चिन्ता के साथ निभाया है। कुछ सदेहास्पद मामलो का होना तो स्वभावत अनिवार्य है, लेकिन प्रान्तीय सरकारें उनपर बहुत ध्यानपूर्वक विचार करने को भी उद्यत है और भारत-सरकार उन मामलो को प्रान्तीय सरकारो के ध्यान में लाना जारी रखेगी, जो उसके पास पहुँचाये जावेंगे और यदि जरूरी हुआ तो वस्तुस्थिति के सम्बन्ध में अपनी दिलजमई भी कर लेगी।"

४ इमर्सन साहब को शिमला से लिखे गये गाधीजी के २१ जुलाई १९३१ के पत्र की नकल —

"वाइसराय-भवन मे आज शाम को किये गये वायदे के अनुसार मै अपनी यह प्रार्थना लेखबद्ध कर रहा हूँ कि सरकार व काग्रेस में हुए समझौते-सम्बन्धी उन प्रश्नो का निर्णय करने के लिए निष्पक्ष पच विठाये जायँ, जो समय-समय पर सरकार या काग्रेस की ओर से इसके सामने पेश किये जायँ। निम्नलिखित कुछ ऐसे मामले है, जिनपर शीघ्र विचार होना अत्यन्त आवश्यक है, यदि उनके आशय के सम्बन्ध में सरकार व काग्रेस में मतभेद रहे—

(१) क्या पिकेटिंग में शराब की दुकानो या नीलामो का पिकेटिंग शामिल है?

(२) क्या प्रान्तीय-सरकारो को पिकेटिंग के लिए दुकान से ऐसी दूरी निर्धारित करने का अधिकार है कि जिसमे पिकेटरो का उस दुकान की नजर में रहना ही असम्भव हो जाय ?

(३) क्या सरकार को पिकेटरो की ऐसी सख्या सीमित करने का अधिकार है जिससे उस दुकान के सभी रास्तो पर पिकेटिंग करना असम्भव हो जाय ?

(४) क्या शान्तिमय पिकेटिंग का उद्देश नष्ट करने के लिए सरकार को दुकानदार को लाइसेन्स-प्राप्त स्थान और समय से अतिरिक्त स्थान व समय पर शराब बेचने देने की आज्ञा देने का अधिकार है ?

(५) कुछ उदाहरणो में, १३ और १४ कलमो के अमल के सिलसिले में उनकी मशा को साफ करना, जिनमें प्रान्तीय सरकारो ने एक अर्थ किया है और कांग्रेस ने दूसरा।

(६) कलम १८ (ब) में 'लौटाना' शब्द की व्याख्या करना।

(७) सविनय अवज्ञा-आन्दोलन में भाग लेने के कारण जिनकी बन्दूकें लाइसेन्स रद करने के बाद जब्त की गई है, क्या उन्हें लौटाना समझौते के अन्तर्गत है ?

(८) नवे आर्डिनेन्स के अनुसार जब्त हुई कुछ जायदाद और कर्नाटक की 'पानीवाली जमीन' (Water Lands) की वापसी क्या इस समझौते के अन्तर्गत है और क्या सरकार को ऐसी वापसी पर कुछ शर्तें लगाने का अधिकार है ?

(९) धारा १९ में 'स्थायी' का अर्थ।

(१०) जिन विद्यार्थियो ने सविनय अवज्ञा-आन्दोलन में भाग लिया है, उन्हे दाखिल करने से पूर्व क्या शिक्षा-विभाग को उनपर शर्तें लगाने या सविनय अवज्ञा-सग्राम में लगाई गई पाबन्दियो के अनुसार उन्हे दाखिल न करने का अधिकार है ?

(११) सविनय अवज्ञा-आन्दोलन में भाग लेने के कारण क्या सरकार को किसी व्यक्ति या सस्था को दण्ड देना—पेंशन, और म्यूनिसिपैलिटियो को मदद इत्यादि बन्द करने का अधिकार है ?

"यह नही समझना चाहिए कि पच के सामने केवल यही मामले पेश होगे। यह भी सभव है कि भविष्य में ऐसे अकल्पित मामले भी खडे हो जावें, जिनके सबध मे समझौते की सीमा के अन्दर होने का दावा किया जा सके। हम यह तरीका रक्खे कि सरकार या कांग्रेस दोनो की ओर से लिखित वक्तव्य पेश हो। दोनो पक्ष के वकील उन विषयो पर अपनी-अपनी दलीलें पेश करे और बाद को पच जो निर्णय करे वह दोनो पक्षो को मान्य हो। बातचीत के सिलसिले में जैसा मैंने कहा था कि सरकार और कांग्रेस

के मतभेदो की अवस्था में प्रश्नो के निपटारे के लिए पच नियुक्त करने के सम्बन्ध में कुछ नही कहता, तब उसका यह मतलब न लिया जाय कि मैने अपनी माग वापस ले ली है। ऐसा समय आ सकता है, जब कि मतभेद इतने तीव्र हो जावें कि मुझे ऐसे प्रश्नो की भी छान-बीन करने के लिए पच पर जोर देना आवश्यक हो जाय। फिर भी मै यह उम्मीद रखता हूँ कि हम पच के पास बिना भेजे ही सब मतभेदो का निर्णय कर सकेंगे।"

५ गाधीजी के नाम इमर्सन साहब के शिमला से ३० जुलाई १९३१ के लिखे पत्र की नकल —

"आपके २१ जुलाई के पत्र के लिए धन्यवाद, जिसमें आपने (१) ५ मार्च के समझौते की व्याख्या-सबधी प्रश्नो के निर्णय के लिए एक निष्पक्ष पच का अनुरोध किया है और (२) कुछ ऐसी बातें भी लिखी है जो आप पच के सामने यदि उसकी नियुक्ति हो तो उस हालत में पेश करना चाहते हैं, जबकि उनके आशयो पर काग्रेस व सरकार में एकमत न हो सके।

"भारत-सरकार ने व्याख्या-सम्बन्धी प्रश्नो के लिए निर्णायक-मण्डल-सम्बन्धी प्रस्ताव पर खूब गौर किया है। आपके पत्र में वर्णित उन ११ प्रश्नो पर भी सरकार ने खास ध्यान दिया है, जिन्हें आप इस श्रेणी के अन्तर्गत समझते हैं। इसके साथ सरकार ने यह भी ध्यान में रक्खा है कि इन प्रश्नो पर निर्णायक-मण्डल मजूर करने का आवश्यक परिणाम होगा सरकार की खास जिम्मेवारियो और फर्जो का उलझन में पड जाना। आप भी निस्सदेह यह स्वीकार करेंगे कि सरकार के लिए किसी ऐसी व्यवस्था को मान लेना सभव नही है, जिससे हुकूमत की नियमित मशीनरी अथवा साधारण कानून मौकूफ हो जाय, या जिसमें किसी ऐसी बाहरी शक्ति को सम्मिलित किया जाय जिसे सरकार शासन-प्रबन्ध पर सीधा असर डालनेवाले मामलो के निर्णय तक पहुँचने की जिम्मेवारी दे दे, या जिस व्यवस्था का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष परिणाम एक खास तरीके का अख्तियार किया जाना हो, जिससे काग्रेस के सदस्य तो लाभ उठा सकें लेकिन जनता के दूसरे (गैर-काग्रेसी) लोग पृथक् रहें और जो अदालत की अधिकार-सीमा में प्रवेश करे। ५ मार्च के समझौते में इस तरह की किसी बात की कोई गुजाइश नही है।

"ऊपर बताये उसूलो के सिलसिले में अब मै आपके पत्र में वर्णित कुछ प्रश्नो की छानबीन करता हूँ। पहले तीन प्रश्न पिकेटिंग से सम्बन्ध रखते हैं और सामान्य स्वरूप के है। पिकेटिंग के कुछ खास मामलो में क्या कार्रवाई की जाय, यह उसके

व घरो से निर्वासित किसानो की दुर्दशा से युक्त-प्रान्त के नेताओ को—प० मदनमोहन मालवीय को भी—चिन्ता उत्पन्न हो गई थी। गाधीजी ने युक्त-प्रान्त के गवर्नर सर माल्कम हेली को एक तार भेजा। लेकिन उसका जवाब बहुत निराशाजनक मिला। सभी ओर से ऐसी शिकायतें आ रही थी और परिस्थितिया इतनी दिल तोडनेवाली थी कि ११ अगस्त १९३१ को गाधीजी वाइसराय को निम्नलिखित तार भेजने पर विवश हो गये —

"बहुत दु खके साथ आपको सूचित कर रहा हूँ कि अभी हाल में बम्बई-सरकार का जो पत्र मिला है, उसने मेरा लन्दन जाना असम्भव कर दिया है। पत्र से कई कानूनी समस्यायें उपस्थित हो गई है। पत्र में हकीकत और कानून दोनो दृष्टियो से एक बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न उठाया गया है और लिखा है कि सरकार ही हर प्रकार से दोनो बातो में अन्तिम निर्णय करेगी। इसका साफ अभिप्राय यह है कि जिन मामलो में सरकार और शिकायत करनेवाले दो दल हो, उनमें भी सरकार ही अभियोग लगाये और वही फैसला करे। काग्रेस के लिए यह स्वीकार करना असम्भव है। बम्बई-सरकार के पत्र, सर माल्कम हेली के तार और युक्त-प्रान्त, सीमा-प्रान्त तथा अन्य प्रान्तो में होनेवाले अत्याचारो की रिपोर्ट पर जब मै ध्यान देता हूँ तो मुझे यही प्रतीत होता है कि मै लन्दन को रवाना न होऊँ। जैसा मैने वादा किया था कि कोई भी अन्तिम निर्णय करने के पहले मै आपको लिखूगा, मैं ऊपर लिखी हुई सब बातें आपके सामने रख रहा हूँ। अन्तिम घोषणा करने से पहले मै आपके उत्तर की प्रतीक्षा करूँगा।"

वाइसराय का उत्तर—१३ अगस्त १९३१

"आपने जो कारण बताये हैं, यदि उन्हीके आधार पर काग्रेस उस अवस्था को स्वीकार नही करती, जो गोलमेज-परिषद् में उसका प्रतिनिधित्व रखने के लिए की गई थी, तो मुझे खेद है। मैं इन कारणो को उचित नही मान सकता। मैं ऐसा सोचे बिना नही रह सकता कि सरकार की नीति तथा उसके आधार-भूत बातो को गलत समझने के कारण ही यह अन्देशा पैदा हुआ है। मेरा खयाल था कि युक्त-प्रान्त के सम्बन्ध में आपका सन्देह सर माल्कम हेली के ९ अगस्त के तार से और गुजरात के सम्बन्ध में सर अर्नेस्ट हॉटसन के प्राइवेट-सेक्रेटरी के १० अगस्त के पत्र पैरा ४ से दूर हो गया होगा। मैं आपका ध्यान अपने ३१ जुलाई के पत्र की ओर आकर्षित करता हूँ, जिसमें मैंने आपको यह पूर्ण विश्वास दिलाया है कि समझौते-सम्बन्धी हरेक मामले में मैं खुद दिलचस्पी रखता हूँ। और मैंने आशा की थी कि आप इन विस्तार की बातो से उत्पन्न विवादो के

कारण अपनेको भारत की उस सेवा से वंचित नहीं करेंगे, जो आप उस महत्त्वपूर्ण वाद-विवाद में भाग लेकर कर सकते हैं, जो आपके और मेरे समय के भी आगे के लिए देश के भाग्य का निपटारा कर देनेवाला है। यदि आपका निश्चय अन्तिम है तो मैं फौरन ही प्रधान-मन्त्री को आपके लन्दन न जाने की सूचना दे दूगा।"

गांधीजी का अन्तिम इन्कार—१३ अगस्त १९३१

"आपके आश्वासन के तार के लिए धन्यवाद ! आपके आश्वासन को मुझे वर्तमान घटनाओ को दृष्टि में रखते हुए देखना चाहिए। यदि आप उन घटनाओ पर विचार करने पर समझौते की शर्तों के बाहर कोई बात नहीं पाते, तो इससे प्रतीत होता है कि हमारे और आपके समझौते-सम्बन्धी दृष्टिकोण में सैद्धान्तिक मतभेद है। वर्तमान परिस्थिति में मुझे खेद के साथ सूचित करना पड़ता है कि मेरे लिए अपने पूर्व-निश्चय पर मुहर लगा देने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है। मै केवल यही कह सकता हूँ कि मैंने लन्दन जाने का हर प्रकार से प्रयत्न किया पर असफल रहा। कृपया आप प्रधान-मत्री को इसकी सूचना दे दें। मै समझता हूँ यह पत्र-व्यवहार और तार प्रकाशित करने में आपको आपत्ति न होगी।"

वाइसराय का उत्तर—१४ अगस्त १९३१

"आपके निश्चय की सूचना मैंने प्रधान-मन्त्री को दे दी है। मैं आज सध्या-समय ४ बजे सारा पत्र-व्यवहार प्रकाशित कर रहा हूँ। आप भी ऐसा कर सकते हैं।"

यद्यपि जून के महीने से यह अन्देशा किया जा रहा था कि कांग्रेस के गोलमेज-परिषद् में भाग लेने के रास्ते मे दिक्कतें आवेंगी, लेकिन फिर भी हरेक शख्स अन्तिम क्षण तक यह उम्मीद कर रहा था कि किसी तरह परिस्थिति अपने-आप सुलझ जायगी। यह कहना गलत न होगा कि लोग जहा आशा न थी वहा भी आशा लगा रहे थे। लेकिन कांग्रेस सधि-चर्चा के बीच-बीच में टूटते जाने पर चुपचाप नहीं बैठ सकती थी। खुद समझौते पर पूरा अमल करते हुए भी कांग्रेस को प्रत्येक किस्म की सम्भावना के लिए पूरी तैयारी करनी थी। इस तरह जबकि गांधीजी वाइसराय और बम्बई व युक्तप्रान्त की सरकारो से पत्र-व्यवहार करने में लगे हुए थे, कांग्रेस की कार्य-समिति बदस्तूर अपना कार्य करने में सलग्न थी। हम भी पाठकों को उसी ओर ले जाते है।

कार्य-समिति की बैठक

कार्य-समिति की एक बैठक २० जुलाई को हुई। उसने 'ब्रिटेन व भारत के लेन-देन' पर तैयार की हुई रिपोर्ट को छापने की स्वीकृति दे दी। मौलिक-अधिकार-समिति ने अपनी बैठकें मछलीपट्टम में करके रिपोर्ट तैयार की थी। कार्य-समिति ने इस रिपोर्ट को महा-समिति के सामने पेश करने का निश्चय किया। हिन्दुस्तानी-सेवादल का कांग्रेस से सम्बन्ध के बारे में कई गलत-फहमियां फैली हुई थी, इसलिए दल को कांग्रेस का केन्द्रीय स्वयसेवक-संगठन मान लिया गया और यह निश्चय किया गया कि इसका नियन्त्रण कार्य-समिति प्रत्यक्षरूप से स्वय करेगी या वह करेगा, जिसे वह अपनी ओर से नियुक्त करे। इसके काम भी बता दिये गये। प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटियो को यह अधिकार और आदेश दिया गया कि वे भी बाकायदा स्वयसेवक-दल बनावें। इस दल के सदस्यो के लिए कांग्रेस का सदस्य होना और केन्द्रीय स्वयसेवक-दल के नियन्त्रण को मानना जरूरी रक्खा गया। सेवादल जिसकी अ० भा० परिषद् कोकनडा में हुई थी और जो शुरू से ही डाक्टर हार्डीकर के नेतृत्व और संचालन में शानदार काम कर रहा था, कांग्रेस से सम्बद्ध कर लिया गया और सेवादल ने भी स्वराज्य-प्राप्ति के लिए शान्तिमय और उचित उपायो से कांग्रेस के ध्येय की प्रतिज्ञा स्वीकार की।

साम्प्रदायिक प्रश्न पर नई योजना

इसके बाद कांग्रेस का एक बहुत बडा काम आता है, यह था साम्प्रदायिक प्रश्न पर समझौते की एक योजना, जिसे हम विस्तार से नीचे देते हैं। इस सिलसिले मे कार्य-समिति ने निम्न-लिखित वक्तव्य प्रकाशित किया—

"चाहे इसमे कांग्रेस को कितनी भी असफलता क्यो न हुई हो, उसने शुरू से ही विशुद्ध राष्ट्रीयता को अपना आदर्श माना है और वह साम्प्रदायिक भेदभावो को हटाने में सदा प्रयत्नशील रही है। कांग्रेस के लाहौर-अधिवेशन मे पास किया हुआ निम्नलिखित प्रस्ताव उसकी राष्ट्रीयता की चरमसीमा है—

'चूंकि नेहरू-रिपोर्ट खतम हो चुकी है, साम्प्रदायिक प्रश्नो के बारे में कांग्रेस की नीति की घोषणा करना आवश्यक है। कांग्रेस का विश्वास है कि स्वतन्त्र भारत में साम्प्रदायिक प्रश्नो का हल सिर्फ विशुद्ध राष्ट्रीय ढंग से ही किया जा सकता है। लेकिन चूंकि खासकर सिक्खोने और साधारणतया मुसलमानो तथा दूसरी अल्प-संख्यक जातियो ने नेहरू-रिपोर्ट में प्रस्तावित साम्प्रदायिक प्रश्नो के हल के प्रति असतोष

जाहिर किया है, यह कांग्रेस सिक्खो, मुसलमानो और दूसरी अल्पसख्यक जातियो को विश्वास दिलाती है कि भावी शासन-विधान मे साम्प्रदायिक समस्या का ऐसा कोई हल कांग्रेस को मजूर न होगा, जिसमे सम्बन्धित दलो को पूरा सतोष न होता हो।

"इसी कारण साम्प्रदायिक प्रश्न का साम्प्रदायिक हल पेश करने की जिम्मेवारी से कांग्रेस मुक्त हो गई है। लेकिन राष्ट्र के इतिहास के इस नाजुक मौके पर यह महसूस करती है कि कार्य-समिति को देश की स्वीकृति के लिए एक ऐसा हल सुझाना चाहिए जो देखने में साम्प्रदायिक होते हुए भी राष्ट्रीयता के अधिक-से-अधिक निकट हो और आम तौर पर सब सम्बन्धित जातियो को मजूर हो। इसलिए पूरी-पूरी और आजादी के साथ बहस के बाद कार्य-समिति ने सर्वसम्मति से नीचे लिखी योजना पास की है—

"१ (क) शासन-विधान की मौलिक अधिकार से सम्बन्धित धारा में जातियो को यह आश्वासन भी दिया जाय कि उनकी सस्कृति, भाषा, धर्मग्रन्थ, शिक्षा, पेशा और धार्मिक व्यवहार तथा धर्मादा की रक्षा की जायगी।

(ख) विधान में खास धारायें रखकर जातियो के निजी कानूनो की रक्षा की जायगी।

(ग) विभिन्न प्रान्तो में अल्पसख्यक जातियो के राजनैतिक तथा अन्य अधिकारो की रक्षा करना सघ-सरकार के जिम्मे होगा और ये काम उसके अधिकार-क्षेत्र की सीमा में होगे।

२ तमाम बालिग स्त्री-पुरुष मताधिकार के अधिकारी होगे।

नोट—कराची-कांग्रेस के प्रस्ताव-द्वारा कार्य-समिति बालिग-मताधिकार के लिए बध चुकी है, अत वह किसी दूसरे प्रकार के मताधिकार को मजूर नही कर सकती। लेकिन कुछ स्थानो में जो गलतफहमी फैली हुई है, उसे ध्यान में रखते हुए समिति यह स्पष्ट कर देना चाहती है कि किसी भी हालत में मताधिकार एक-समान होगा और इतना व्यापक होगा कि चुनाव की सूची में प्रत्येक जाति की आबादी का अनुपात उसमें स्पष्ट दिखाई पडे।

३ (क) भारत के भावी शासन-विधान में प्रतिनिधित्व का आधार सम्मिलित निर्वाचन होगा।

(ख) सिन्ध के हिन्दुओ, आसाम के मुसलमानो और पश्चिमोत्तर-सीमाप्रान्त तथा पजाब के सिक्खो और किसी भी ऐसे प्रान्त के हिन्दू और मुसलमानो

के लिए, जहा उनकी सख्या आवादी के २५ फी सदी से भी कम हो, सघीय और प्रान्तीय धारा-सभाओ में आवादी के आधार पर स्थान सुरक्षित रक्खे जायँगे और उनके अलावा अधिक स्थानो के लिए भी उम्मीदवार के रूप में खडे होने का अधिकार होगा।

४ पदो पर नियुक्तिया निष्पक्ष सर्विस-कमीशनो के द्वारा होगी। नौकरियो के लिए आवश्यक न्यूनतम योग्यता का भी निर्णय ये कमीशन करेंगे और कार्य के सुचारु-रूप से चलने का तथा नौकरियो के लिए तमाम जातियो को समान अवसर मिले इस सिद्धान्त का और वे वहुत-कुछ योग उसमें दे सकें इस बात का वे पूरा खयाल रक्खेंगे।

५ सघीय और प्रान्तीय मन्त्रि-मण्डल के निर्माण मे अल्पसख्यक जातियो के हित एक निश्चित प्रथा के अनुसार मान्य होगे।

६ पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त और वलूचिस्तान में उसी प्रकार की शासन-व्यवस्था होगी, जैसी अन्य प्रान्तो में है।

७ सिन्ध को अलग प्रान्त वना दिया जायगा, वशर्ते कि सिन्ध के लोग पृथक् प्रान्त का आर्थिक भार सहन करने को तैयार हो।

८ देश का भावी शासन-विधान सघीय होगा। अवशिष्ट अधिकार सघ की इकाइयो के पास रहेंगे, वशर्ते कि और छानवीन करने पर यह भारत के आत्यन्तिक हित के विरुद्ध सावित न हो।

"कार्य-समिति ने उक्त योजना को विशुद्ध साम्प्रदायिकता और विशुद्ध राष्ट्रीयता के आधार पर किये गये प्रस्तावो के वीच समझौते के रूप में स्वीकार किया है। इसलिए जहा एक ओर कार्य-समिति यह आशा रखती है कि सारा राष्ट्र इस योजना का समर्थन करेगा, वहा दूसरी ओर उग्र विचार के लोगो को, जो इसे स्वीकार नही करते, यह विश्वास दिलाती है कि समिति दूसरी किसी ऐसी योजना को विना हिचक के स्वीकार करेगी, जो सव सम्वन्धित दलो को मजूर हो, जैसे कि वह लाहौर के प्रस्ताव से वधी हुई है।"

विदेशी कपडे और सूत के वहिष्कार की नीचे लिखी प्रतिज्ञा की रूपरेखा भी कार्य-समिति में तैयार की गई और यह निश्चय किया गया कि विदेशी कपडे व सूत के वहिष्कार के सिलसिले में की गई कोई भी ऐसी प्रतिज्ञा, जो इससे मेल न खाती हो, रद मानी जायगी —

"हम प्रतिज्ञा करते है कि तवतक हम निम्नलिखित शर्तों का पालन करते रहेंगे, जवतक कि काग्रेस की कार्य-समिति किसी प्रस्ताव-द्वारा और कुछ करने को नही कहती —

१ हम रुई, ऊन या रेशम से कता हुआ कोई विदेशी सूत या उससे बुना हुआ कपडा न खरीदने और न बेचने का वादा करते है।

२ हम किसी ऐसी मिल का सूत या कपडा भी न खरीदने और न बेचने का वादा करते है, जिसने काग्रेस की शर्तो को न माना हो।

३ हम अपने पास मौजूद कपास, ऊन या रेशम से बने हुए विदेशी सूत या उससे बने कपडे को भारत में न बेचने का वचन देते है।"

इसके बाद यह फैसला किया गया कि अस्पृश्यता-निवारिणी समिति को, जो गत वर्ष सविनय अवज्ञा के सग्राम में लुप्त हो गई थी, पुनर्जीवित किया जाय। श्री जमनालाल बजाज को इस उद्देश-पूर्ति के लिए यथायोग्य काम करने को कहा गया। इस समिति को अन्य सदस्य शामिल करने का तथा अन्य आवश्यक अधिकार भी दिये गये।

मिल-समिति (Textile Mills Exemption Committee) की तथा मजदूरो की हालत के सवाल पर कार्य-समिति ने यह निर्णय किया कि जहा सभव और आवश्यक प्रतीत हो, उक्त समिति आपसी तजवीजो के द्वारा ऐसी मिलो मे जिन्होने काग्रेस की घोषणा पर हस्ताक्षर कर दिये हो, मजदूरो को दण्ड दिये जाने या निकाले जाने को रोकने और मजदूरो की स्थिति को अधिक अच्छी करने की कोशिश करे।

महासमिति की बैठक ६, ७ और ८ अगस्त १६३१ को फिर हुई और उसने बहुत महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पास किये। पहला प्रस्ताव बम्बई के स्थानापन्न गवर्नर की हत्या के प्रयत्न और बगाल में जज गार्लिक की हत्या के सम्बन्ध में था। इन आक्रमणो पर खेद और निन्दा प्रकट करते हुए गवर्नर के जीवन पर आक्रमण के प्रयत्न को उस स्थिति में तो बहुत बुरा बताया, जबकि फर्ग्यूसन कालेज ने सम्मानित अतिथि के तौर पर उन्हें निमन्त्रित किया था।

राष्ट्रीय-झण्डा-समिति की रिपोर्ट पर विचार हुआ और यह निश्चय किया गया कि "राष्ट्रीय झण्डा तीन रग का और पहले की तरह लम्बाई-चौडाई में समानान्तर होगा। लेकिन उसके रग क्रमश ऊपर से नीचे केसरिया, सफेद और हरा होगे। सफेद पट्टे के केन्द्र मे गहरे नीले रग का चरखा होगा। रग गुणो के न कि जातियो के सूचक है। केसरिया रग साहस और बलिदान का, सफेद रग शान्ति और सत्य का, हरा रग श्रद्धा तथा वीरता का एव चर्खा जनता की आशा का प्रतिनिधि होगा। झडे की लम्बाई-चौडाई का अनुपात ३ २ होगा।" ३० अगस्त रविवार को नया राष्ट्रीय

झडा फहराने का निश्चय किया गया। इसीके अनुसार फिर आगे प्रति मास हर रविवार को झडा फहराया जाने लगा। मौलिक-अधिकार-समिति की रिपोर्ट पर विचार हुआ और ऊपर लिखे अधिकार व कर्त्तव्य स्वीकृत हुए। मौलिक अधिकारवाला प्रस्ताव, जैसा अन्तिम रूप में था, इस बैठक में पास कर दिया गया।

अफगान जिरगा

उन्ही दिनो बम्बई में कार्य-समिति ने सरदार भगतसिंह के दाह-सस्कार के प्रश्न पर विचार किया और इस परिणाम पर पहुँची, जैसा कि हम पहले भी जिक्र कर चुके है, कि जो भीषण अभियोग लगाये गये हैं उनका कोई आधार नही है। सीमा-प्रान्तीय काग्रेस-कमिटी, अफगान जिरगा व खुदाई खिदमतगारो के सम्बन्ध में निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण निश्चय किया गया —

सीमाप्रान्त की काग्रेस-कमिटी के प्रतिनिधियो से परामर्श करने के बाद समिति ने सीमा-प्रान्तीय काग्रेस-कमिटी के पुन सगठन तथा उसमें अफगान जिरगे को सम्मिलित करने का निश्चय किया। यह भी निश्चय किया गया कि खुदाई खिदमतगार भी काग्रेस-स्वयसेवक-सगठन के एक अग हो जाने चाहिएँ।

कार्य-समिति की प्रार्थना पर सीमाप्रान्तीय नेता खान अब्दुलगफ्फारखा ने उस प्रान्त में काग्रेस-आन्दोलन के सचालन का भार अपने कधो पर ले लिया है।"

कार्य-समिति की निराशा

कार्य-समिति ने इस आशय का प्रस्ताव भी पास किया कि वह अनिच्छा-पूर्वक इस परिणाम पर पहुँची है कि समझौते की शर्तो और राष्ट्रीय हितो को देखते हुए काग्रेस गोलमेज-परिषद् में न भाग ले सकती है और न उसे लेना ही चाहिए। लेकिन समिति ने यह भी घोषणा की कि दिल्ली-समझौता अब भी कायम है, जैसा कि निम्नलिखित प्रस्ताव से मालूम होगा —

"कार्य-समिति ने १३ अगस्त को गोलमेज-परिषद् में काग्रेस के भाग न लेने के बारे में प्रस्ताव पास किया था। उसे मद्दे-नजर रखते हुए यह समिति स्पष्ट कर देना चाहती है कि उस प्रस्ताव को दिल्ली-समझौते का समाप्ति-कारक न समझा जाय। इसलिए समिति सब काग्रेस-सस्थाओ व काग्रेसियो को तबतक समझौते की काग्रेस पर लागू होनेवाली शर्तो पर अमल करने की सलाह देती है, जबतक कि कोई दूसरी हिदायत न दी जाय।"

असाधारण परिस्थिति उत्पन्न होने की अवस्थाओं के लिए जब कार्य-समिति न बुलाई जा सके, राष्ट्रपति को विशेष अधिकार भी दे दिये गये, कि "इस प्रस्ताव-द्वारा कार्य-समिति की ओर से उसके नाम पर राष्ट्रपति को काम करने का अधिकार दिया जाता है।"

मणि-भवन (बम्बई) में सारे दिन आशाओं व उम्मीदों से भरी ये अफवाहें गरम हो रही थी कि सर तेजबहादुर सप्रू और श्री जयकर के आखिरी समय किये गये शान्ति के प्रयत्नों के कारण गांधीजी का लन्दन जाना सम्भव हो जायगा। लेकिन सूर्यास्त के वक्त बड़े-बड़े नेता मणि-भवन से बाहर निकले और अत्यन्त उत्सुक व प्रतीक्षा में खड़े हुए प्रेस-प्रतिनिधियों को बताने लगे कि आखिरी समय की गई सन्धि-चर्चाओं के सफल होने और गांधीजी के अपने निश्चय को बदलने की कोई सम्भावना नहीं है। फिर भी कुछ आशावादी अबतक यह आशा लगाये बैठे थे कि अन्त में कोई-न-कोई सूरत निकल ही जायगी। लेकिन जब गांधीजी रात के ८।। बजे मणि-भवन छोड़कर बम्बई-सेण्ट्रल स्टेशन पर गुजरात-मेल के एक तीसरे दर्जे के डिब्बे में सवार हो गये, तब सब सन्देह बिलकुल खतम हो गये।

सर प्रभाशंकर पट्टनी ने दोपहर को आध घण्टे तक गांधीजी से मुलाकात की। असोशियेटेड प्रेस के भेंट करने पर सर प्रभाशंकर पट्टनी ने (जिन्होंने 'एस० एस० मुलतान' जहाज से अपनी यात्रा स्थगित कर दी थी) इससे अधिक कुछ भी बताने में अनिच्छा प्रकट की कि अनेक कारणों से उन्होंने अपनी यात्रा स्थगित कर दी है।

इस तरह गोलमेज-परिषद् के अभिनय में पहला दृश्य समाप्त हुआ। १५ अगस्त को डॉ० सप्रू, श्री जयकर और श्री रंगास्वामी आयंगर गांधीजी से दो-एक बार मिलकर बम्बई से रवाना हो गये। इस विषय पर प्रकाशित हुए पत्र-व्यवहार के अध्ययन से सरकारी अधिकारियों की मनोवृत्ति का अच्छा परिचय मिल जाता है। सेक्रेटेरियट ने समझौते को समुद्र में फेंक दिया था।

न जाने के कारण

इसमें सन्देह नहीं कि समझौते के उल्लंघन, गांधीजी के गोलमेज-परिषद् में उपस्थित होने से इन्कार करने और १३ अगस्त को वाइसराय को तार-द्वारा अपने निश्चय से (जिसका समर्थन कार्य-समिति ने भी किया) सूचित करने का, एक कारण थे। वस्तुतः यह इमर्सन सा० का ३० जुलाई का पत्र था, जो पहले आ चुका है, जिसने स्थिति को निर्णीत-रूप दे दिया था। बम्बई के गवर्नर का १० अगस्त का पत्र भी कम

निर्णायक न था। मर माल्कम हेली का तार भी, यद्यपि उसमें सौम्य शिष्ट और सयत-भापा का प्रयोग था, यह निश्चय करने मे कम कारण न था। लेकिन इनमें सबसे बडा कारण था वारडोली मे लगान-वमूली के लिए दमनकारी उपायो का अवलम्बन। २२ लाख रुपये में से २१ लाख दिया जा चुका था। काग्रेस का मन्तव्य था कि अब लगान न चुकानेवाले आपत्ति मे ग्रस्त हैं और समय चाहते है। पिछले सालो का वकाया करीव दो लाख रुपया लेना था, जिसका अधिकाश भाग गुजरात के दुर्भिक्ष के कारण मरकार ने मुल्तवी भी कर दिया था। सरकार ने पुलिस-द्वारा धमकिया देना व पुलिस के 'जुल्म' के जोर पर उस साल का तथा पिछले सालो का वकाया वसूल करना शुरू किया। सरकार का कहना था कि काग्रेस कौन होती है जिसके कहने पर सरकारी मालगुजारी दी जाय या रोकी जाय? सरकार ने अपने पत्र-व्यवहार में यह स्पष्ट लिख दिया था कि ममझौते का न तो ऐसा आशय ही है और न सरकार इसे सहन ही कर मकती है। काग्रेस यह साबित करने को तैयार थी कि लोगो को भयभीत करने और कुछ मामलो में तो अतिरिक्त मालगुजारी वसूल करने के लिए अनुचित प्रभाव डालने के लिए पुलिस का इस्तेमाल किया गया है। और फिर इस प्रकार एकत्र की हुई अतिरिक्त-मालगुजारी एक लाख रुपया भी नही होती थी। सरकार का कहना था कि लगान की वमूली मे अन्तिम निर्णय काग्रेस का नही बल्कि सरकार और उसके कर्मचारियो का होना चाहिए। ब्रिटिश-शान्ति और ब्रिटिश-शासन अभी वहा कायम है। मरकार इसे जताना और साबित करना चाहती थी। सरकार को मालगुजारी की इतनी परवाह न थी, जितनी अपने रोब की—उसी रोब की जिसकी इतनी तारीफ माण्टेगु साहब ने की थी—चिन्ता थी।

एक दूसरा और महत्त्वपूर्ण कारण भी था, जिससे गाधीजी इग्लैण्ड नही जाना चाहते थे। भारत-सरकार ने डॉक्टर असारी को गोलमेज-परिषद् का प्रतिनिधि मनोनीत नही किया था। स्वभावत काग्रेस उन्हें ले जाना चाहती थी। काग्रेसी होने के अलावा वह भारत की एक बडी पार्टी—राष्ट्रीय मुस्लिम दल—का प्रतिनिधित्व करते थे। सभी मुसलमान उन्नति-विरोधी नही है। उनमें भी एक ऐसा साफ गिरोह था, जो दिल से राष्ट्रीय था और पूर्ण स्वराज्य—मुकम्मिल आजादी के लिए उत्सुक था। लेकिन इस रहस्य को सभी जानते है कि लॉर्ड अर्विन ने गाधीजी के कहने से पण्डित मदनमोहन मालवीय, श्रीमती सरोजिनी नायडू और डाक्टर असारी को मनोनीत करने का वचन लॉर्ड अर्विन ने दिया था, जब कि पहले दो व्यक्ति मनोनीत कर लिये गये और डॉक्टर असारी छोड दिये गये। यह बात नही थी कि लॉर्ड विलिंगडन जानते

ही न थे कि लॉर्ड अर्विन ने क्या वचन दिया था। लेकिन गोलमेज-परिषद् में यह प्रदर्शन भी ब्रिटिश-हितो के लिए अच्छा था कि मुस्लिम-भारत स्वराज्य के विरुद्ध है। लॉर्ड अर्विन के वचन का पालन करने की माग के उत्तर में लॉर्ड विलिंगडन ने यह दलील दी कि मुसलमान प्रतिनिधि डॉक्टर असारी के प्रतिनिधित्व के विरुद्ध है। वे तो उनके विरुद्ध होते ही। यदि वे विरोध न करते, तो वह मुसलमान प्रतिनिधि न होते; बल्कि भारत के प्रतिनिधि होते। देश में डॉक्टर अमारी की स्थिति असाधारण थी, उनके अनुयायी भी बहुत थे, उनके विचार भी राष्ट्रीय थे। वह साम्प्रदायिकता के प्रबल और निर्भीक विरोधी थे। ऐसे डॉक्टर अनारी के चुनाव को वे मुसलमान प्रतिनिधि, कैसे सहन करते? कांग्रेस ने साम्प्रदायिक प्रश्न पर एक हल तैयार कर लिया था जिसका समर्थन गोलमेज-परिषद् में एक हिन्दू और एक मुसलमान प्रतिनिधि करते। सरकार यह जानती थी और साफ तौर पर मुसलमान अग को काटकर कांग्रेस को बेकार बना देना चाहती थी। इन परिस्थितियो में कांग्रेस के लिए राष्ट्रीय-सम्मान की रक्षा करते हुए केवल एक ही मार्ग खुला था। गाधीजी ने उसे ही पकडा और गोलमेज-परिषद् के लिए लन्दन जाने से इन्कार कर दिया।

आशा के पहले

एक बार फिर लड़ाई की तैयारिया होने लगीं। १५ अगस्त को लडाई की हवा की ही सब जगह चर्चा थी। इसमें सन्देह नहीं कि लॉर्ड विलिंगडन का रुख पूर्ण शिष्टता का था। उन्होंने गाधीजी से कहा कि आप मामले को तोड़ें नहीं। जब कभी कोई दिक्कत हो, मुझसे मिल लें। लेकिन गांधीजी जब कोई बात पेश करते थे तो उसका कोई असर न होता था। सारा देश एक निराशा में डूबा हुआ था। पण्डित मदनमोहन मालवीय और श्रीमती सरोजिनी नायडू ने 'मुल्तान' जहाज से अपनी यात्रा स्थगित कर दी थी, जिसमें श्री सप्रू, जयकर और आयंगर रवाना हुए थे। गाधी-जी ने अपनी स्थिति निम्नलिखित सरल शब्दो में रख दी —

"यदि सरकार और कांग्रेस में कोई समझौता हुआ था और यदि उसके आशय के बारे में कोई विवाद उठ खडा हुआ या किसी पक्ष की ओर से उसका उल्लंघन किया गया, तो मेरी सम्मति में सब समझौतों के साथ लागू होनेवाले नियम इस समझौते पर भी लागू होने चाहिएँ। इस समझौते पर तो वे और भी ज्यादा इसलिए लागू होने चाहिए, क्योंकि यह समझौता एक महान् सरकार और सारे देश के प्रतिनिधित्व का दावा करनेवाली महान् संस्था के बीच हुआ है। यह बात नहीं है कि इस समझौते

पर कानून से अमल नही कराया जा सकता, पर इसीलिए सरकार पर यह दोहरी जिम्मेवारी आ जाती है कि समझौता करनेवाले दो समुदाय जिन प्रश्नो पर एक नही हो सकते उन्हे एक निष्पक्ष न्यायालय के सामने पेश करे। काग्रेस की एक बहुत सरल और स्वाभाविक इस सलाह को सरकार ने ठुकरा देने लायक समझा है कि झगडे के ऐसे मामले निष्पक्ष न्यायालय को सौप देने चाहिएँ।"

गाधीजी ने शान्ति के लिए कभी दरवाजा बन्द नही किया। वह तो कहते थे कि ज्यो ही रास्ता साफ हुआ, यदि प्रान्तीय सरकारें समझौते की शर्तों की पूर्ति करती रहें, मैं लन्दन की ओर दौड पडूँगा। जो बात प्रत्येक राजनैतिक विचारक के दिमाग में घूम रही थी, उसे उन्होने खुले तौर पर कह दिया—"यहा के बडे सिविलियन नही चाहते कि मैं परिषद् में जा सकू। और यदि वे चाहते भी है, तो ऐसी परिस्थितियो में, जिन्हें काग्रेस-जैसी कोई राष्ट्रीय-सस्था बरदाश्त नही कर सकती।" देश के सिविलियन बडे जोरो से यह बात फैला रहे थे कि काग्रेस के रूप मे गाधीजी एक मुकाबले की सरकार कायम करना चाहते हैं और ऐसी विध्वसक सस्था कभी गवारा नही की जा सकती। गाधीजी ने बम्बई से अहमदाबाद के लिए रवाना होते समय लॉर्ड विलिंगडन को एक निजी पत्र लिखा कि अपने नेतृत्व में मुकाबले की सरकार खडी करने का मेरा इरादा कभी नही रहा और न मैंने कभी पच नियत करने पर जिद की, हा, उसके इस अधिकार का दावा मैंने अवश्य किया है। मैं तो केवल न्याय चाहता हूँ। पूरा पत्र इस तरह है —

"इतनी शीघ्रता से घटनायें घटित होती रही हैं कि मैं आपके ३१ जुलाई के कृपापत्र का उत्तर भी न दे सका। इस पत्र-व्यवहार में जो सच्चाई की भावना भरी हुई है उसका मैं कायल हूँ। पर पिछली घटनाओ ने उसे भूतकाल का इतिहास बना दिया है और जैसा कि मैंने १३ अगस्त के तार मे कहा है कि ये समस्त परिस्थितिया बतलाती हैं कि आपके और हमारे दृष्टिकोण मे ही मौलिक अन्तर है।

"मैं तो आपको यह विश्वास दिला सकता हूँ कि मैंने बहुत गौर के साथ विचार करने के बाद ही यह निश्चय किया है कि मेरा जो यहा पर उत्तरदायित्व है उसे तथा आप के निश्चय को देखते हुए मुझे गोलमेज-परिषद् में उपस्थित नही होना चाहिए। मुझे यह सुनकर अत्यन्त दु ख हुआ कि आपको यह सुझाया गया है कि मैंने पच की स्थापना पर अधिक जोर दिया और मै अपनेको प्रतिद्वद्वी सरकार का मुखिया बनाना चाहता हूँ। और आपका निर्णय तो इन्ही सुझाई बातो के आधार पर बना है। हा, यह तो सच है कि पच के सम्बन्ध में मैंने अधिकार के रूप में इसकी माग की थी, पर यदि आपको

मेरी बातचीत याद होगी, तो आप जान लेंगे कि मैंने कभी इसपर जोर नहीं दिया। इसके विपरीत मैंने आपसे यह भी कह दिया था कि यदि मुझे न्याय मिल जाय—जिसका मैं अधिकारी भी हूँ—तो मुझे सन्तोष हो जायगा। आप इससे सहमत होंगे कि पत्र की स्थापना पर जोर देना बिलकुल दूसरी बात है।

"प्रतिद्वन्द्वी सरकार के सम्बन्ध में मुझे खयाल है कि मैंने आपका भ्रम उसी समय दूर कर दिया था जब आपके विनोदपूर्ण उद्गार के उत्तर में मैंने कहा था कि मैं अपनेको जिला-अफसर नहीं समझता और मैंने तथा मेरे साथियों ने स्वेच्छा से जो पटेल या गांव के मुखिया का जो कार्य किया है, वह भी जिला-अधिकारियों की जानकारी में और अनुमति से। इसलिए यदि उपर्युक्त दो गलत बातों ने आपके विचारों पर असर डाला हो तो मुझे खेद होगा।

"इस पत्र के लिखने का मेरा अभिप्राय यह दरयाफ्त करना है कि क्या आप अब दिल्ली-समझौते को खतम समझते हैं या गोलमेज-परिषद् में कांग्रेस के भाग न लेने पर उसे कायम मानते हैं? कांग्रेस-कार्य-समिति ने आज प्रातःकाल निम्नलिखित निश्चय किया है—'१३ अगस्तवाले कार्य-समिति के गोलमेज-परिषद् में भाग न लेने के प्रस्ताव को दृष्टि में रखते हुए समिति यह स्पष्ट कर देना चाहती है कि इस प्रस्ताव से दिल्ली-समझौते का अन्त नहीं समझना चाहिए। अतः सभी कांग्रेसियों और कांग्रेस-संस्थाओं को सलाह देती है कि जबतक और कोई आदेश न दिया जाय, दिल्ली समझौते की कांग्रेस पर लागू होनेवाली शर्तों का पालन किया जाय।'

"इससे आप देखेंगे कि कार्य-समिति इस समय सरकार को परेशान नहीं करना चाहती और वह सच्चाई से दिल्ली-समझौते का पालन करना चाहती है। लेकिन यह सब प्रान्तीय सरकारों की परस्पर सम्बन्ध रखने की मनोवृत्ति पर निर्भर है।

"जैसा कि पत्रों में तथा बातचीत में भी पहले मैं आपको बतला चुका हूँ, प्रान्तीय सरकार की यह पारस्परिकता की वृत्ति दिन-दिन कम-ही-कम दिखाई पड़ी है। कार्य-समिति के दफ्तर में बराबर सरकार के ऐसे कार्यों की इत्तलायें आ रही हैं जिनका एक ही अर्थ हो सकता है कि सरकार कार्यकर्ताओं और कांग्रेस-आन्दोलन को कुचलना चाहती है।'

गांधीजी ने अपना पत्र इस प्रार्थना के साथ समाप्त किया कि इसका उत्तर जल्दी मिले और यदि दिल्ली-समझौते का पालन मंजूर है, तो मैं कहूँगा कि जो शिकायतें आपके सामने पेश की गई हैं उनपर शीघ्र ही विचार किया जाय, क्योंकि मेरे साथी कार्यकर्त्ता इसपर जोर दे रहे हैं कि यदि शिकायतें दूर नहीं होंगी तो [illegible]

आत्म-रक्षा के लिए हमे भी रक्षात्मक उपाय हाथ मे लेने की आज्ञा दी जाय। गाधीजी को इसकी कोई चिन्ता न थी कि सरकार काग्रेस को अपने और जनता के बीच मध्यस्थ स्वीकार नही करती। वह सरकार को परेशानी में डालने या उसे अपमानित करना नही चाहते थे। लेकिन दरअसल स्थिति यह थी कि सरकार सिविल-सर्विसवालो के निश्चित विरोध के कारण अस्थायी सधि को तोड रही थी, न कि काग्रेस। गाधीजी आवश्यक और अनावश्यक का भेद जानते थे। उन्हें यह विश्वास हो गया था कि सिविल-सर्विस के कर्मचारी भारत के पूरी स्वतन्त्रता के अधिकार को स्वीकार करने को उद्यत नही थे। "इसलिए", गाधीजी कहते थे, "जबतक इस सर्विस के सब कर्मचारियो के खयालात न बदल जायँ, पूर्ण स्वाधीनता के लिए काग्रेस के सधि-चर्चा करने की कोई सूरत नही है। काग्रेस को अभी और कष्ट-सहन व बलिदान मे से गुजरना होगा, चाहे इस तरीके का कितना ही अधिक मूल्य क्यो न चुकाना पडे। इसलिए मैं तो अपने लिए बारडोली को ही खरी कसौटी मानता हूँ। सिविलियनो की नब्ज देखने के लिए ही इसकी योजना की गई थी। इस दृष्टि से देखने पर यह कोई छोटी बात न थी।"

आशा हुई

गाधीजी ने शिमला से प्राप्त १४ अगस्त के तार से अधिकार पाकर सरकार के विरुद्ध आरोप-सूची को प्रकाशित कर दिया था। कुछ लोगो ने समझा कि गाधीजी ने इसे प्रकाशित कर सरकार को चुनौती दी है। डॉ० सप्रू और श्री जयकर ने 'मुलतान' जहाज से इसी आशय का बेतार का तार दिया और उसमे बताया कि आरोप-सूची के प्रकाशन ने वाइसराय व भारत-मत्री के साथ सधि-चर्चा मे उन्हें परेशानी मे डाल दिया है। गाधीजी तो यहा तक तैयार थे कि काग्रेस के विरुद्ध लगाये गये आरोपो की इकतरफा जाच किसी निष्पक्ष पच-द्वारा करा ली जाय। गाधीजी के पत्र का वाइसराय ने जो जवाब दिया, वह भी सन्तोष-जनक न था। वाइसराय ने गत पाच मास की काग्रेस की कार्रवाइयो का निर्देश करते हुए लिखा था कि वे दिल्ली-समझौते के भाव और अर्थों के प्रतिकूल थी और शान्ति-स्थापन के लिए, विशेषत युक्त-प्रान्त व सीमा-प्रान्त मे, बाधक थी। वाइसराय ने उसमे यह भी लिखा था कि गोलमेज-परिषद् में काग्रेस का सम्मिलित न होना समझौते के प्रधान उद्देश को असफल करना है, लेकिन सरकार विशेष उपायो को तबतक काम में न लायेगी जबतक कि वह ऐसा करने को बाध्य न हो जाय। गाधीजी ने समझौता-पालन की वाइसराय की इच्छा का हृदय से स्वागत किया और सब काग्रेसियो को हिदायत दी कि वे सावधानी से समझौते

का पालन करें। उन्होंने इस विषय पर वाइसराय से बातचीत करने के लिए तार-द्वारा मुलाकात की अनुमति भी मागी। मुलाकात की अनुमति मिल गई। इसपर गाधीजी, श्री वल्लभभाई पटेल, जवाहरलालजी और गाधीजी के एकाकी मित्र सर प्रभाशकर पट्टनी वाइसराय से मिले। वाइसराय ने कार्यकारिणी की बैठक की। आखिर बहुत-सी बाधाओ के बाद मामले किसी तरह सुलझाये गये और गाधीजी शिमला से स्पेशल ट्रेन-द्वारा उस गाडी को पकडने के लिए रवाना हुए, जो उन्हें २९ अगस्त को रवाना होनेवाले जहाज पर सवार करा सके।

इस तरह गाधीजी और भारत-सरकार के प्रतिनिधियो की बातचीत के परिणाम-स्वरूप यह फैसला हुआ कि काग्रेस की ओर से गाधीजी गोलमेज-परिषद् में भाग लें और इसके अनुसार वह बम्बई से २९ अगस्त को जहाज पर रवाना हो गये।

भारत-सरकार ने एक सरकारी विज्ञप्ति में यह समझौता प्रकाशित कर दिया। इसके साथ ही गाधीजी का भारत-सरकार के होम-सेक्रेटरी मि० इमर्सन के साथ जो पत्र-व्यवहार हुआ था, वह भी प्रकाशित कर दिया। क्योकि पत्र भी समझौते के मूल-भूत अग थे। सरकार की विज्ञप्ति और वे पत्र नीचे दिये जाते है :—

सरकारी विज्ञप्ति

"१ वाइसराय महोदय और गाधीजी की बातचीत के परिणाम-स्वरूप गोलमेज-परिषद् में गाधीजी काग्रेस का प्रतिनिधित्व करेंगे।

२ ५ मार्च १९३१ का समझौता चालू है। यदि यह साबित हो गया कि कुछ मामलो में उसका उल्लघन किया गया है, तो भारत-सरकार व प्रान्तीय-सरकारें उन मामलो में समझौते की खास धाराओ का पालन करावेंगी और यदि उस सम्बन्ध में उनके सामने कोई बात रक्खी जायगी तो उसपर भी अच्छी तरह विचार करेंगी। समझौते के अनुसार काग्रेस भी अपनी जिम्मेवारी को पूरा करेगी।

३ सूरत-जिले में लगान-वसूली के बारे में विचारणीय बात यह है कि क्या बारडोली-ताल्लुका और बालोड महाल के जिन गावो में पुलिस-पार्टी के साथ माल-अफसर जुलाई १९३१ में गये थे, उनमे लगान देनेवालो की आर्थिक स्थिति को देखते हुए उनसे पुलिस-द्वारा जबरदस्ती करके बारडोली-ताल्लुके के अन्य गावो की अपेक्षा अधिक लगान मागा गया था या उनकी अपेक्षा उनसे अधिक वसूल किया गया? बम्बई-सरकार से परामर्श करने के बाद और उससे पूर्ण सहमत होते हुए, भारत-सरकार

ने यह निश्चय किया है कि इस प्रश्न की जाच की जायगी। जाच का क्षेत्र यह होगा कि —

विचाराधीन गावो में पुलिस-द्वारा जबरदस्ती और दमन करके खातेदारो को उन गावो की अपेक्षा जहा ५ मार्च १९३१ के बाद पुलिस की सहायता के बिना वसूली हुई है, बारडोली के दूसरे गावो मे जो अदाज रक्खा गया था उससे अधिक लगान देने के लिए बाधित किया गया, इस आरोप की जाच करना, और यदि कही ऐसा हुआ है, तो ठीक रकम का निर्धारण करना। इन बातो के अन्तर्गत उठनेवाले किसी भी विवाद पर गवाहिया दी जा सकती है।

बम्बई-सरकार ने जाच करने के लिए नासिक के कलक्टर मि० आर० सी० गॉर्डन को नियुक्त किया है।

४ काग्रेस-द्वारा उठाये गये अन्य प्रश्नो के बारे में भारत-सरकार व प्रान्तीय-सरकारें जाच की आज्ञा देने को तैयार नही है।

५ यदि समझौते के क्षेत्र से बाहर काग्रेस किसी मामले में नई शिकायतें करे, तो उन शिकायतो पर साधारण शासन-प्रबन्ध के कार्यक्रम और रिवाज के अनुसार सरकार विचार करेगी और यदि जाच का कोई सवाल उठे तो, जाच करनी है या नही, और यदि जाच करनी है तो किस तरह से, इन सब बातो का फैसला प्रान्तीय-सरकारें प्रचलित कार्यक्रम और रिवाज के अनुसार करेंगी।"

पत्र-व्यवहार

इमर्सन सा० के नाम गाधीजी का पत्र—शिमला २७ अगस्त १९३१

"आपके इसी तारीख के पत्र और एक नया मसविदा भेजने के लिए धन्यवाद। सर कावसजी ने भी आपके बताये सशोधन भेजने की कृपा की है। मेरे सहकारियो ने व मैंने सशोधित मसविदे पर खूब गौर किया है। नीचे लिखे स्पष्टीकरण के साथ हम आपके सशोधित मसविदे को स्वीकृत करने के लिए तैयार है—

चौथे पैरेग्राफ मे सरकार ने जो स्थिति अख्तियार की है, उसे काग्रेस की ओर से स्वीकार करना मेरे लिए असम्भव है। क्योंकि हम यह अनुभव करते हैं कि जहा काग्रेस की सम्मति में समझौते के व्यवहार में पैदा हुई शिकायत दूर नही की जाती वहा जाच करना जरूरी हो जाता है। क्योकि सविनय अवज्ञा-आन्दोलन उसी समय के लिए स्थगित किया गया है, जबतक दिल्ली का समझौता जारी है। लेकिन यदि भारत-सरकार व अन्य प्रान्तीय सरकारें जाच कराने के लिए उद्यत नही है, तो मेरे

सहकारी व मैं इस धारा के रहने देने पर कोई ऐतराज नही करेंगे। इसका परिणाम यह होगा कि काग्रेस अबसे उठाये गये अन्य मामलो के बारे मे जाच के लिए जोर नही देगी, लेकिन यदि कोई शिकायत इतनी तीव्रता से अनुभव की जा रही हो कि जाच के अभाव में उसे दूर करने के लिए सत्याग्रह के रूप मे किसी उपाय को ग्रहण करना आवश्यक हो जाय, तो काग्रेस सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन के स्थगित रहते हुए भी उसे करने के लिए स्वतन्त्र होगी।

मै सरकार को यह आश्वासन दिलाने की जरूरत नही समझता कि काग्रेस का निरन्तर प्रयत्न यह रहेगा कि सीधे वार से बचें और विचार-विनिमय, समझाना-बुझाना आदि उपायो से शिकायत दूर कराये। काग्रेस की स्थिति का उल्लेख यहा इसलिए आवश्यक हो गया है कि भविष्य में कोई सभावित गलतफहमी या काग्रेस पर समझौता-उल्लघन का आरोप न हो सके। वर्तमान बातचीत के सफल होने की हालत मे मेरा खयाल है कि यह विज्ञप्ति, यह पत्र और आपका उत्तर एकसाथ प्रकाशित कर दिये जायेंगे।"

इमर्सन सा० का उत्तर—२७ अगस्त १९३१

"आज की तारीख के पत्र के लिए धन्यवाद, जिसमे आपने अपने पत्र में लिखे स्पष्टीकरण के साथ विज्ञप्ति के मसविदे को स्वीकार कर लिया है। कौंसिल-सहित गवर्नर-जनरल ने इस बात को ध्यान मे ले लिया है कि अब आगे से उठाये गये मामलो मे जाच पर जोर देने का इरादा काग्रेस का नही है। लेकिन जहा आप यह आश्वासन देते है कि काग्रेस हमेशा सीधे वार से बचने और आपसी बातचीत, समझाना-बुझाना आदि तरीको से ही अपनी शिकायत दूर कराने का सतत प्रयत्न करेगी, वहा आप भविष्य मे यदि काग्रेस कोई कार्रवाई करने का निश्चय करे तो उसकी स्थिति भी स्पष्ट कर देना चाहते है। मुझे यह कहना है कि कौसिल-सहित गवर्नर-जनरल आपके साथ इस आशा मे सम्मिलित होते है कि सीधे वार के लिए कोई मौका नही आयेगा। जहा-तक सरकार के सामान्य रुख की बात है, मै वाइसराय के १९ अगस्त को लिखे हुए पत्र का निर्देश करता हूँ। सरकारी विज्ञप्ति, आपका आज की तारीख का पत्र और यह उत्तर सरकार एकसाथ प्रकाशित कर देगी।"

इससे पाठक जान गये होंगे कि बारडोली की जाच का निश्चय हो गया तथा अन्य ऐसी विद्यमान शिकायतो के बारे में, जिनकी सरकार कोई सुनाई न करे, दिल्ली-समझौते के जारी रहते हुए भी काग्रेस ने रक्षणात्मक प्रहार करने के अपने अधिकार

को वहाल रक्खा। आगे पैदा होनेवाली दिक्कतो का कोई निश्चित हल नही सोचा गया, उनकी जाच हो भी सकती थी और नही भी। जहा जाच न हो और दिक्कत भी दूर न की जाय, वहा यदि काग्रेस चाहे तो जनता के अधिकारो की रक्षा के लिए कोई सीधा वार भी कर सकती थी। साथ ही काग्रेस-सस्थाओ और काग्रेसियो को यह ध्यान मे रखना था कि दिल्ली-समझौता जारी है और राष्ट्रपति को सूचित किये बिना वे अपनी ओर से समझौते का कोई भी उल्लघन न करेंगे। जहा सरकार या उसके अधिकारियो के प्रति कोई शिकायत हो, शान्ति के साथ समझा-बुझाकर उसे दूर करने की हर तरह कोशिश की जाय। जहा इस प्रकार की कोशिशो मे सफलता न मिले, वहा राष्ट्रपति को उसकी सूचना दी जाय और उनसे सलाह मागी जाय।

गाधीजी ने जिस आरोप-सूची में सरकार के विरुद्ध कुछ मौजूदा शिकायतो का उल्लेख किया था और सरकार ने जिसका जवाब दिया था, उन मामलो से सम्बन्ध रखनेवाली सब काग्रेस-कमिटियो से कहा गया कि वे सरकार के उत्तर पर अच्छी तरह विचार करें और अपना उत्तर महासमिति के पास अहमदाबाद भेजें। समझौते के और जो उल्लघन हो या और कोई नई शिकायत पेश हो, तो वह भी जल्दी ही राष्ट्रपति के पास भेजी जाय।

लन्दन को रवाना

गाधीजी लन्दन को चल पडे, लेकिन असाधारण आशावादी होते हुए भी उन्हें सफलता की उम्मीद न थी। फिर भी उन्होने उम्मीद की थी कि प्रान्तीय सरकारें, सिविल-सर्विसवाले और अग्रेज व्यापारिक कम्पनिया काग्रेस की उद्देश-पूर्ति में सहायक होगे। कार्य-समिति ने ११ सितम्बर १९३१ को अहमदाबाद मे गाधीजी व राष्ट्रपति के शिमला मे सरकार के साथ किये गये नये समझौते में पडने की कारंवाई का समर्थन किया। कार्य-समिति ने इस बैठक मे एक और महत्त्वपूर्ण निर्णय किया। सभी उद्योग-धन्धो से और विशेषकर कपडे के कारखानो से कोयले की उन भारतीय खानो का कोयला बर्तने की सिफारिश की गई, जो इस आशय की प्रतिज्ञा करें कि वे जनता की भावनाओ से सहानुभूति रक्खेंगी, पूजी व डाइरेक्टरों मे ७५ फी सदी भारतीयता होगी, मैनेजिंग एजेण्ट के कारोबार में विदेशी स्वार्थ न होगे, अपने दाम और माल की जात का ठीक इन्तजाम रखकर स्वदेशी के प्रचार में सहायता देंगी, उसके अधिकारी राष्ट्रीय-आन्दोलन के विरोधी प्रचार में न लगेंगे, विशेष कारणो के बिना केवल भारतीय ही नियुक्त किये जायेंगे, बीमा, बैंकिंग और जहाजी काम-काज भारतीय

कम्पनियो में ही करेंगी और इसी तरह आय-व्यय-परीक्षक, सॉलिसिटर, जहाजी एजेण्ट तथा ठेकेदार सब भारतीय ही रक्खे जायगे, यथा सभव भारत में बनी चीजें ही व्यापार के लिए खरीदी जायगी, प्रवन्ध-कर्त्ता लोग स्वदेशी कपडा ही पहनेंगे, खानो के मजदूरो को सन्तोष-जनक मजदूरी दी जायगी और उनके काम व रहन-सहन की दशा भी ठीक की जायगी तथा खानो के परीक्षित बैलेन्सशीट प्रति वर्ष काग्रेस को भेजे जायँगे।

अक्तूबर व नवम्बर मे भारत और इगलैण्ड में होनेवाली सनसनीखेज घटनाओ की ओर बढने से पहले हमें गाधीजी और उनकी यात्रा का हाल भी जान लेना चाहिए। गाधीजी के साथ श्री महादेव देसाई, देवदास गाधी, प्यॉरेलाल और श्रीमती मीराबहन थे। श्रीमती सरोजिनी नायडू भी उनके साथ थी। जो सामान अपने साथ ले जाने की उन्हे अनुमति मिली थी, उसका वर्णन करने की कोई आवश्यकता न थी। सूचना का समय थोडा होने और यात्रा के अनिश्चित होने के कारण वह काफी थोडा था, लेकिन गाधीजी की सतर्क व कठोर दृष्टि ने उसे और भी थोडा कर दिया। अदन मे उनका हार्दिक स्वागत हुआ, जहा अरबो व भारतीयो ने कुछ दिक्कत के बाद उन्हें एकसाथ अभिनन्दन-पत्र तथा ३२८ गिन्नी की थैली दी।

जहाज पर भी गाधीजी उसी तरह अपनी प्रार्थना, अपना चरखा और बालको के साथ अपना मनोरजन आदि साधारण जीवन व्यतीत करते रहे, जैसे आश्रम में करते थे। गाधीजी को श्रीमती जगलूलपाशा और वफ्दपार्टी के अध्यक्ष नहसपाशा ने बधाई भेजी। पहले का सदेश तो स्वभावत हृदयस्पर्शी था, और दूसरे का हार्दिक-उत्साह इस उद्धरण से ज्ञात हो जायगा—

"अपनी स्वतन्त्रता और स्वाधीनता के लिए लडते हुए मिश्र के नाम पर मै उसी स्वाधीनता के लिए लडनेवाले भारत के सर्व-प्रधान नेता का स्वागत करता हूँ। मेरी हार्दिक कामना है कि आपकी यह यात्रा सकुशल समाप्त हो और आप प्रसन्नता-पूर्वक लौटें। मै ईश्वर से भी प्रार्थना करता हूँ कि आप जब वहा से लौटकर स्वदेश जाने लगेंगे, तब मुझे आपसे मिलने की खुशी हासिल होगी। ईश्वर आपको चिरायु करे और आपके प्रयत्नो में आपको व्यापक तथा स्थायी विजय दे।"

मिस्री शिष्ट-मण्डल को पोर्टसईद पर गाधीजी से मिलने की आज्ञा नही दी गई, लेकिन कैरो पर भारतीयो के शिष्ट-मण्डल को उनसे मिलने दिया गया। बहुत दिक्कत के बाद नहसपाशा का एक प्रतिनिधि गाधीजी से मिल सका।

जब गाधीजी मार्सेलीज पहुँचे, श्री रोम्या रोला की बहन मैडलीन रोला उनका

उत्साह-पूर्वक स्वागत करने के लिए प्रतीक्षा कर रही थी। रोम्या रोला अस्वस्थ होने के कारण स्वय उपस्थित न हो सके थे। मैडलीन रोला के साथ मोशियर प्रिवे व उनकी सुपत्नी भी थी। मो० प्रिवे स्विजरलैण्ड के एक अध्यापक है, जिन्हें भारत-सरकार ने पीछे १९३२--३३ के आन्दोलन मे मामूली तथा सदिग्ध अध्यापक कहकर प्रसिद्ध कर दिया था। कितने ही फ्रासीसी विद्यार्थियो ने भी गाधीजी का अभिनन्दन किया। गाधीजी लन्दन के ईस्ट-एण्डवाले सार्वजनिक गृहो तथा गरीवो के मैले घरो के वीच मिस म्यूरियल लिस्टर के यहा किंग्स्ले-हाल में ठहरे। लन्दन में उन्हें ठहरने के लिए बहुतसे निमत्रण मिले और इससे भी ज्यादा निमत्रण गावो में उन्हे सप्ताह का अन्तिम भाग शान्ति से विताने के लिए मिले। एक मित्र ने एक दिन यूस्टन-रोड पर स्थित मित्रसभा-भवन (Friends' Meeting House) में दिये गाधीजी के भाषण व किंगसले-हाल से न्यूयार्क को ब्रॉडकास्ट-द्वारा भेजे गये सदेश की रिपोर्ट 'टाइम्स' में पढकर ५० पौण्ड का चेक ही भेज दिया था।

परिषद् में

गाधीजी ने लन्दन में वेस्ट-एण्ड की अपेक्षा ईस्ट-एण्ड को, ब्रिटिश सरकार के आतिथ्य की अपेक्षा मिस म्यूरियल लिस्टर के आतिथ्य को, और धनी लोगो की सगति की अपेक्षा दरिद्रो की सगति को, अधिक पसन्द किया था। 'चचा गाधी'--हिन्दुस्तानी चप्पल के सिवा नगे पैर, कमीज भी नदारद, सिर्फ चादर ओढे हुए--ईस्ट-एण्ड के बालको मे इतने प्रिय हो गये थे कि वे प्रति दिन प्रात काल आकर उनको घेर लेते थे। गाधीजी और उनकी शाम की प्रार्थनायें, लकाशायर के मजदूरो के एक समान अतिथि के रूप में गाधीजी, गाधीजी और उनकी ब्रिटिश-सम्राट् से अपनी मामूली पोशाक में भेंट--ये सब ऐसी बातें है जिनका काग्रेस के इतिहास से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नही है, लेकिन जो भारतीयो के लिए बहुत दिलचस्पी की है, जो जीवन को अविभाज्य मानते है कि जीवन विभिन्न विभागो में--जैसा कि आजकल समझने की प्रथा चल पडी है--नही बाटा जा सकता है।

गोलमेज-परिषद् में गाधीजी एक ऐसे व्यक्ति थे जिनकी ओर हमारा ध्यान गये विना नही रह सकता। फेडरल स्ट्रक्चर कमिटी में दिये गये उनके भाषण को लन्दन में दिये गये उनके अन्य भाषणो की उत्तम भूमिका कह सकते है। उन्होंने काग्रेस, उसका इतिहास, उसकी रचना, उसके साधन, उसके उद्देश्य आदि सबका सक्षिप्त परिचय नपे-तुले शब्दो में दिया। कोई बात छूटने न पाई। उनके इसी परिचय को हमने वस्तुत

इस पुस्तक की भूमिका बनाया है। उन्होने कांग्रेस के जन्मकालीन सहायक और पालन-पोषणकर्त्ता मि० ए० ओ० ह्यूम के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। उन्होने कांग्रेस व सरकार तथा कांग्रेस तथा अन्य दलो के आधार-भूत भेदो का निर्देश किया। उन्होने कराची का प्रस्ताव पढकर उसकी व्याख्या की। उन्होने यह भी बताया कि प्रधान-मंत्री का वक्तव्य केन्द्रीय उत्तरदायित्व, सघ तथा भारतीय हितो की दृष्टि से सरक्षण, इन तीन किरणो से चित्रित भारतीय ध्येय से बहुत कम है। उन्होने वर्तमान समय की सबसे बडी आवश्यकता पर भी—जो केवल राजनैतिक विधान नही है, परन्तु दो समान राष्ट्रो की भागीदारी की योजना है—विचार प्रकट किये। उन्होने 'ब्रिटिश प्रजाजन' की अपनी पहली स्थिति और 'बागी' की आधुनिक स्थिति मे, साम्राज्य के और राष्ट्र-समूह (कामनवेल्थ) के आदर्शो मे कितना भेद है, यह बताया। उन्होने किसी दूकान की व्यवस्था बदलने के समय का उदाहरण दिया और उस समय दूकान के लेन-देन आदि का हिसाब समझने-समझाने के तरीके का जिक्र किया और अन्त मे उन्होने यह आश्वासन दिया कि हम इग्लैण्ड के घरेलू सकट में दस्तन्दाजी करनेवाले नही हैं। लेकिन यह तभी सम्भव है जब कि इग्लैण्ड भारत को शक्ति-बल से नही, बल्कि प्रेम-रूपी डोरी से बाधा हुआ रक्खे। ऐसा भारत इग्लैण्ड के एक साल के बजट को ही नही, कई सालो के बजट को ठीक करने में सहायक सिद्ध होगा।

अल्पसख्यक-समिति में भाषण देते हुए गाधीजी ने कई खरी बाते पेश की। उन्होने असदिग्ध भाषा में यह कहते हुए स्थिति को बिलकुल साफ कर दिया कि विभिन्न जातियो को अपने पूरे बल के साथ अपनी-अपनी माग पर जोर देने के लिए उत्साहित किया गया है। उन्होने यह भी कहा कि यही प्रश्न आधार-रूप नही है, हमारे समाने मुख्य प्रश्न तो शासन-विधान का निर्माण है। उन्होने पूछा कि क्या प्रतिनिधियो को अपने घरो से ६००० मील केवल साम्प्रदायिक प्रश्न हल करने के लिए ही बुलाया गया है? हमें लन्दन मे इसलिए निमन्त्रित किया गया है कि हमें जाने से पहले यह सतोष हो जाय कि भारत की स्वतन्त्रता के लिए हम सम्मान-युक्त व असली ढाचा तैयार कर चुके है और अब उसपर केवल पार्लमेण्ट की स्वीकृति लेनी रह गई है। उन्होने सर ह्यूबर्ट कार की अल्पसख्यक जातियो की योजना की चुटकी लेते हुए कहा कि सर ह्यूबर्ट कार तथा उनके साथियो को इससे जो सतोष हुआ है वह मै उनसे न छीनूगा, लेकिन मेरे विचार में उन्होने जो-कुछ किया है वह मुर्दे की चीर-फाड जैसा ही है। सरकार की यह योजना उत्तरदायित्व-पूर्ण शासन अर्थात् स्वराज्य-प्राप्ति के लिए नही किन्तु नौकरशाही की सत्ता में भाग लेने के लिए ही बनाई गई है। "मैं इनकी

सफलता चाहता हूँ", उन्होंने कहा—"लेकिन कांग्रेस उसमें बिलकुल अलग रहेगी। किसी ऐसे प्रस्ताव या योजना पर, जिससे कि खुली हवा में पैदा होनेवाला आजादी और उत्तरदायी शासन का वृक्ष कभी पनप न सकेगा, अपनी सहमति प्रकट करने की अपेक्षा कांग्रेस चाहे कितने वर्ष जंगल में भटकना स्वीकार कर लेगी।" अन्त में उन्होंने उस कठिन प्रतिज्ञा के साथ अपना भाषण समाप्त किया, जिसपर कुछ समय बाद उन्होंने अपने जीवन की बाजी लगा दी थी। उन्होंने कहा—"अस्पृश्य कहे जाने-वालों के प्रति एक शब्द और। अन्य अल्पसंख्यक जातियों के दावों को मैं समझ सकता हूँ, लेकिन अछूतों की ओर से पेश किया गया दावा तो मेरे लिए सबसे अधिक निर्दय घाव है। उसका अर्थ यह हुआ कि अस्पृश्यता का कलंक निरंतर रहेगा। . हम नहीं चाहते कि अस्पृश्यों का एक पृथक् जाति के रूप में वर्गीकरण किया जाय। सिक्ख सदैव के लिए सिक्ख, मुसलमान हमेशा के लिए मुसलमान और ईसाई हमेशा के लिए ईसाई रह सकते हैं। लेकिन क्या अछूत भी सदा के लिए अछूत रहेंगे? अस्पृश्यता जीवित रहे, इसकी अपेक्षा मैं यह अधिक अच्छा समझूँगा कि हिन्दू-धर्म ही डूब जाय। जो लोग अछूतों के राजनैतिक अधिकारों की बात करते हैं वे भारत को नहीं जानते, और हिन्दू-समाज का निर्माण किस प्रकार हुआ है, यह भी नहीं जानते। इस-लिए मैं अपनी पूरी शक्ति से यह कहता हूँ कि इस बात का विरोध करनेवाला यदि सिर्फ मैं ही अकेला होऊँ तो भी, अपने प्राणों की बाजी लगा कर भी, मैं इसका विरोध करूँगा।"

गांधीजी प्रधान-मन्त्री को पंच बनाने के विरोध नहीं थे, बशर्ते कि उनका निर्णय केवल मुसलमानों और सिक्खों तक सीमित हो। अन्य जातियों के पृथक् प्रति-निधित्व से वह सहमत न थे। प्रधान-मन्त्री ने इस विषय पर एक सीधा-सादा सवाल किया—"क्या आप, आपमें से प्रत्येक—कमिटी का प्रत्येक सदस्य—साम्प्रदायिक समस्या का हल निकालने और उसमें अपनेको बाधित मानने के लिए मेरे पास प्रार्थना-पत्र भेजेंगे? मेरा खयाल है कि यह बहुत अच्छा प्रस्ताव है।" पाठक यह न भूले होंगे कि प्रधान-मन्त्री का यह निर्णय जब अगस्त १९३२ में प्रकाशित हुआ था, तब यह सवाल भी हुआ था कि क्या व्हाइट-पेपर के अन्य प्रस्तावों के साथ यह भी सरकार का प्रस्ताव है, या यह प्रधान-मन्त्री का निर्णय (Award) है? गोलमेज-परिषद् के सब सदस्यों ने इस किस्म के प्रार्थना-पत्र पर हस्ताक्षर नहीं किये थे, इसलिए पंच की हैसियत से निर्णय दिया ही नहीं जा सकता था और इसलिए यह निश्चय भी एक प्रस्ताव-मात्र था और इसे ब्रह्मवाक्य नहीं माना जा सकता।

गांधीजी का रुख

१८ नवम्बर १९३१ तक मंत्रि-मण्डल गोलमेज-परिषद् से ऊब चुका था। इस दिन लॉर्ड सैंकी ने प्रधान-मंत्री का यह इरादा सुनाकर सबको चकित कर दिया कि भाषणो के बाद कमिटी को विसर्जन कर दिया जाय और आगामी सप्ताह खुली बैठक की जाय। विरोधी-दल की ओर से बोलते हुए मि० बेन ने इसका यह कहकर विरोध किया कि सरकार परिषद् की हत्या कर रही है। सर सेम्युअल होर ने कहा कि हमे वस्तुस्थिति का ध्यान रखना चाहिए और यह अनुभव करना चाहिए कि इन परिस्थितियो में यह मामला यही बन्द कर भावी कार्य-विधि के सिलसिले में प्रधान-मन्त्री के वक्तव्य की प्रतीक्षा करना अधिक श्रेयस्कर है। सेना के सवाल पर बहस हुई और गाधीजी ने इस विषय पर भी कुछ और स्पष्ट बातें कही। लेकिन उससे पहले उन्होने यह भी कहा कि जरूरत हुई तो मैं इग्लैण्ड में अधिक समय तक ठहरने का भी विचार रखता हूँ, क्योकि मै तो लन्दन आया ही इसलिए हूँ कि सम्मान-युक्त समझौते का प्रत्येक सम्भव उपाय खोजने का प्रयत्न करूँ। उन्होने जोर के साथ यह कहा कि काग्रेस उत्तरदायी-शासन से आनेवाली सब प्रकार की जिम्मेवारियो को—रक्षा का पूर्ण अधिकार और वैदेशिक मामले तक—आवश्यक हेर-फेर और व्यवस्था के साथ अपने कन्धो पर उठाने के योग्य है। उन्होने इसका भी निर्देश किया कि भारत की सेना वस्तुत देश पर अधिकार जमाये रखने के लिए है। उसके सैनिक चाहे किसी जाति के हो, मेरे लिए सब विदेशी है, क्योकि मैं उनसे बोल नही सकता, वे खुले तौर पर मेरे पास आ नही सकते, और उन्हें यह सिखाया जाता है कि वे काग्रेसियो को अपना देश-भाई न समझें। "इन सैनिको और हमारे बीच एक पूरी दीवार खडी कर दी गई है।" "अग्रेजी सेना वहा पर अग्रेजो के स्वार्थो की रक्षा के लिए, विदेशियो के हमलो को रोकने के व आन्तरिक विद्रोह के दमन के लिए रक्खी गई है।" वस्तुत. केवल अग्रेजी फौज के ही नही, सम्पूर्ण सेना (भारतीय सेना) रखने के भी यही हेतु है। लेकिन अग्रेजी फौज के हिन्दुस्तान में रखने का उद्देश इन विभिन्न भारतीय सैनिको में सन्तुलन रखना है। सम्पूर्ण सेना पर पूरा-पूरा भारतीय अधिकार होना चाहिए। लेकिन मैं यह भी जानता हूँ कि वह सेना मेरा आदेश नही मानेगी, न प्रधान-सेनापति और न सिक्ख या राजपूत ही मेरी आज्ञा मानेंगे, "किन्तु फिर भी मै आशा करता हूँ कि ब्रिटिश-जनता की सद्भावना से मै अपने आदेश और आज्ञा का पालन उनसे करा सकूगा। अग्रेजी फौजो को भी यह कहा जा सकेगा कि अब तुम यहा अग्रेजो के स्वार्थो की रक्षा के लिए नहीं, लेकिन भारत को विदेशी आक्रमण से बचाने के लिए हो।" यह

मव मेरा स्वप्न है। मैं जानता हूँ कि मैं ब्रिटिश-राजनीतिज्ञो या जनता से इस स्वप्न को पूर्ण न करा सकूगा, लेकिन जबतक मेरा यह स्वप्न पूरा न होगा, फौज पर अधिकार न पा सका तो जिन्दगी-भर इसके पूर्ण होने की प्रतीक्षा करूँगा। भारत अपनी रक्षा करना जानता है। मुसलमान, गुरखे, सिक्ख और राजपूत हिन्दुस्तान की हिफाजत कर सकते है। राजपूत तो ग्रीस की एक छोटी-सी थर्मापोली नही, हजारो थर्मा-पोलियो के जन्मदाता कहे जाते हैं।

सच बात तो यह है कि किसी दिन गाधीजी अग्रेजो और उनकी कर्तव्य-बुद्धि पर विश्वास करते थे। उन्होने कहा—"हमें अग्रेजो के हृदय मे भारत के प्रति उस प्रेम-भाव का सचार कर देना चाहिए, जिससे भारत अपने पैरो पर खडा हो सके। यदि अग्रेज लोगो का यह खयाल है कि ऐसा होने के लिए अभी एक सदी दरकार है, तो उन सदी-भर काग्रेस बयाबान मे भटकती रहेगी, उसे भयकर अग्नि-परीक्षा में होकर गुजरना होगा, आपदाओ के तूफान और गलतफहमियो के बवण्डर का मुकावला करना होगा, और यदि परमात्मा की इच्छा हुई तो गोलियो की बौछार भी सहनी पडेगी।" सरक्षणो पर बोलते हुए उन्होने कहा कि "यद्यपि उनके भारत के हित मे होने की बात लिखी गई है, फिर भी मै लॉर्ड अर्विन के इस कथन की पुष्टि करना चाहता हूँ कि 'गाधी ने भी यह मान लिया है कि सरक्षण भारत और इग्लैण्ड दोनो के हितो की रक्षा के लिए हो।' मैं फिर कहता हूँ कि मैं एक भी ऐसे सरक्षण की कल्पना नही करता, जो केवल भारत के हित मे होगा। कोई भी ऐसा सरक्षण नही है, जो साथ-साथ ब्रिटिश स्वार्थों की भी रक्षा न करे, बशर्ते कि हम साझेदारी—इच्छित और सर्वथा बराबरी के दर्जे की साझेदारी—की कल्पना करें।" गोलमेज-परिषद् के खुले अधिवेशन में बोलते हुए उन्होने उपस्थित लोगो के सामने यह स्पष्ट कर दिया कि मैं इस भ्रम में नही हूँ कि आजादी बहस-मुबाहसे एव सन्धि-चर्चा से मिल सकती है। लेकिन मैं यह जरूर कहूँगा कि जब यह घोषणा हो चुकी है कि परिषदो या कमिटियो मे फैसले की कसौटी बहुमत नही रक्खी जायगी, तब परिषद् के सयोजक ऐसी कमिटियो की एक के बाद दूसरी रिपोर्ट पर 'बहुमत की सम्मति' कैसे लिखते है और मतभेद रखनेवाले 'एक' के नाम तक का उल्लेख नही करते? वह 'एक' कौन है? क्या यहा उपस्थित दलो मे से काग्रेस भी एक दल है? मै पहले भी यह दावा कर चुका हूँ कि काग्रेस ८५ फी सदी जनता की प्रतिनिधि है। अब मैं यह दावा करता हूँ कि अपनी सेवा के अधिकार से काग्रेस राजाओ, जमीदारो और शिक्षित-वर्ग की भी प्रतिनिधि है। अन्य सब प्रतिनिधि खास-खास वर्गों के प्रतिनिधि होकर आये है,

कांग्रेस ही एकमात्र ऐसी सस्था है जो साम्प्रदायिकता से दूर है। इसका मच सबके लिए—जाति, वर्ण और धर्म के भेदभाव-खयाल किये बिना—एकसा खुला है। इसका ध्येय बहुत ऊँचा है, इसलिए यह सम्भव है कि कुछ लोग इसके पास न आते हो, लेकिन कांग्रेस उन्नतिशील सस्था है, दूर-दूर गावो में इसका प्रचार हो रहा है। फिर भी इसे अनेक दलो में से एक दल माना गया है। लेकिन यह भी याद कर लेना चाहिए कि यही एकमात्र ऐसी सस्था है, जिससे किया फैसला कारआदम हो सकता है। क्योंकि यह साम्प्रदायिक पक्षपात से ऊपर उठी हुई सस्था है। कुछ लोग अनुभव कर रहे थे कि कांग्रेस मुकाबले की सरकार चलाने की कोशिश कर रही है। अच्छा। यदि कांग्रेस हत्यारे के छुरे, जहरीले प्याले, गोलियो और भालो के मार्ग को छोडकर अहिंसा-पूर्वक मुकाबले की सरकार चला सकती है, तो इसमें बुरा ही क्या है? यह ठीक है कि कलकत्ता-कारपोरेशन पर एक लाञ्छन लगाया गया था, परन्तु यह मानना पडेगा कि ज्योही उस बात के सम्बन्ध मे मेयर का ध्यान आकर्षित किया गया, उन्होने अपनी भूल स्वीकार कर ली और उस सम्बन्ध में यथोचित परिमार्जन भी किया था। कांग्रेस हिंसा नहीं, अहिंसा को मानती है, इसलिए सविनय अवज्ञा-आन्दोलन जारी किया गया। इसे भी तो सरकार ने बरदाश्त नही किया। परन्तु उसका मुकाबला भी नही किया जा सकता था—स्वय जनरल स्मट्स भी नही कर सके। १९०८ में जो भारतीयो को देने से इन्कार किया जाता था, १९१४ में वही दे देना पडा। बोरसद व बारडोली मे सत्याग्रह सफल हुआ है। लॉर्ड चेम्सफोर्ड भी इसे स्वीकार कर चुके है। इग्लैण्ड में प्रोफेसर गिलबर्ट मरे जैसे कुछ आदमी भी है, जो मुझे कहते है कि आप यह खयाल न करें कि जब भारतीयो को कष्ट-सहन करना पडता है तब अग्रेज लोग दु खी नही होते। लॉर्ड अर्विन ने आर्डिनेन्सो के द्वारा देश को खूब तपाया है, लेकिन उन्हें सफलता नही मिली। "समय रहते हुए, मे चाहता हूँ, आप समझें कि कांग्रेस का ध्येय क्या है। स्वतन्त्रता इसका ध्येय है, चाहे फिर आप इसको कोई भी नाम दें।" दिक्कत तो यही है कि यहा कोई एक मत नही और न परिषद् ने शब्दो और भावो की निश्चित व्याख्या कर रक्खी है। जब शब्द विभिन्न लोगो के लिए विभिन्न अर्थो मे प्रयुक्त होने लगते है तब किसी एक बात पर आकर टिकना असम्भव हो जाता है। एक मित्र ने वेस्टमिनिस्टर के विधान की ओर ध्यान खीचते हुए मुझसे पूछा कि क्या मैंने उपनिवेश शब्द की परिभाषा पर गौर किया है? हा, मैंने किया है। उपनिवेश गिना दिये है, लेकिन उस शब्द की परिभाषा नही की गई। भारत के सम्बन्ध में तो वे १९२६ की निम्नलिखित आशय की परिभाषा को भी स्वीकार नही करना चाहते—

"उपनिवेश वे स्वतन्त्र देश है, जो ब्रिटिश-साम्राज्य के अन्तर्गत हो, उनका दर्जा एक समान हो, घरेलू व वाहरी किसी भी पहलू से वे एक-दूसरे के आधीन न हो, यद्यपि सम्राट् के प्रति एक-समान राजभक्ति के सूत्र से परस्पर बधे हो और स्वतत्रता-पूर्वक ब्रिटिश-राष्ट्र-समूह (कामनवेल्थ) के सदस्यो में सम्मिलित हुए हो।"

मिश्र इनमें नही है। भारत भी उसकी परिधि मे न था। अत गाधीजी को चिन्ता न थी। वह तो पूर्ण-स्वतन्त्रता चाहते थे। एक अग्रेज राजनीतिज्ञ ने उनसे कहा था कि आपकी पूर्ण स्वतत्रता का अर्थ क्या है—क्या इग्लैण्ड से साझेदारी ? हा, दोनो के पारस्परिक हितो के लिए साझेदारी। गाधीजी तो केवल मित्रता चाहते थे। ३५ करोड जनता के राष्ट्र को हत्यारे के छुरो, जहरीले प्यालो, तलवारो, भालो या गोलियो की आवश्यकता नही है। उसे तो अपने सकल्प की जरूरत है, 'नही' कहने की शक्ति की आवश्यकता है। और वह आज 'नही' कहना सीख रहा है। सरक्षणो का जिक्र करते हुए गाधीजी ने कहा कि "मुझे तीन विशेषज्ञो ने बताया है कि जहा देश की ८० फी-सदी आय इस तरह गिरवी रख दी गई है, जिसके कि वापस आने की कोई सभावना नही, वहा किन्ही उत्तरदायी मन्त्रियो के लिए शासन-तत्र चलाना असम्भव है। मैं भारत के अनुचित कानूनी हितो की रक्षा नही चाहता। अकेले भारत के लिए लाभप्रद और ब्रिटिश हितो के लिए हानिकारक सरक्षण भी मै नही चाहता। जैसे सर सेम्युअल होर और मै सरक्षणो पर सहमत नही हो सकते, वैसे ही श्री जयकर और मै भी इस पर सहमत नही हुए। भारत अनेक समस्याओ को—प्लेग, मलेरिया, साप, बिच्छू और शेरो की समस्याओ को—पार कर गया है। वह घबरा नही जायगा। परमात्मा के नाम पर मुझ ६२ साल के दुवले-पतले आदमी को थोडा-सा तो मौका दो। मुझे और जिस सस्था का मै प्रतिनिधि हूँ उसके लिए, अपने हृदय के कोने में थोडा स्थान तो बनाओ। यद्यपि आप मुझपर विश्वास करते प्रतीत होते है, तथापि काग्रेस पर अविश्वास करते है। परन्तु एक क्षण के लिए भी आप मुझे उस महान् सस्था से भिन्न न समझिए जिसमें कि मै तो समुद्र की एक बूद के समान हूँ। मैं काग्रेस से बहुत छोटा हूँ। और यदि आप मुझपर विश्वास कर मुझे कोई जगह दें, तो मै आपको आमन्त्रित करता हूँ कि आप काग्रेस पर भी विश्वास कीजिए, अन्यथा मुझपर आपका जो विश्वास है वह किसी काम का नही, क्योकि काग्रेस से जो अधिकार मुझे मिला है उसके सिवा मेरे पास कोई अधिकार नही। यदि आप काग्रेस की प्रतिष्ठा के अनुकूल काम करेंगे, तो आप आतकवाद को नमस्कार कर लेगें। तव आपको उसे दवाने के लिए अपने आतकवाद की कोई जरूरत न रहेगी। आज तो आपको अपने व्यवस्थित और सगठित

आतंकवाद के द्वारा वहा पर विद्यमान आतंकवाद से लड़ना है; क्योंकि आप वास्तविकता से अथवा ईश्वरी संकेत से अपरिचित हैं। क्या आप उस संकेत को नहीं देखते, जो ये क्रान्तिकारी अपने रक्त से लिख रहे हैं? क्या आप यह नहीं देखेंगे कि हम आज गेहूँ की बनी हुई रोटी नहीं बल्कि आजादी की रोटी चाहते हैं, और जबतक रोटी नही मिल जाती, ऐसे हजारो लोग मौजूद हैं, जो इस बात के लिए प्रतिज्ञा बद्ध हैं कि उस वक्त तक न तो खुद शान्ति लेंगे और न देश को ही चैन से बैठने देंगे?"

बारडोली की जांच

जब १ दिसम्बर को परिषद् विसर्जित हुई, तो गाधीजी ने सभापति को धन्यवाद देने का प्रस्ताव पेश करते हुए कहा कि अब हमें अलग-अलग रास्तो पर जाना होगा। और हमारे रास्ते विभिन्न दिशाओ में जाते हैं। मनुष्य-स्वभाव का गौरव तो इसमें है कि हम जीवन में आनेवाली आंधियो से टक्कर लें। "मैं नहीं जानता कि मेरा रास्ता किस दिशा में होगा, लेकिन इसकी मुझे चिन्ता नही है। यदि मुझे आपने बिलकुल विभिन्न दिशा में भी जाना पडे, तो भी आप मेरे हार्दिक धन्यवाद के अधिकारी तो है ही।" इन भावीसूचक शब्दो के साथ गाधीजी गोलमेज-परिषद् से विदा हुए। उस समय स्थिति यह थी कि जिन शर्तो पर कांग्रेस गोलमेज-परिषद् में सम्मिलित हुई थी, उनमे से एक—घोर-दमन रोक दिया जायगा—पूरी तरह टूट चुकी थी। गाधीजी बंगाल व युक्तप्रान्त की बढ़ती हुई बुरी स्थिति से बहुत चिन्तित हुए, क्योंकि उनका खयाल था कि भारत में दमन-नीति को जारी रखना लन्दन में प्रदर्शित सहयोग और भारत को स्वतन्त्रता देने की इच्छा से बिलकुल मेल नही खाता।

जब गाधीजी गोलमेज-परिषद् के लिए रवाना हुए थे, तब यह आश्वासन दिया गया था कि बारडोली में लगान-वसूली के सिलसिले में पुलिस की ज्यादतियो के आरोपो की जाच होगी। मि० गॉर्डन को सूरत जिले के मालगुजारी-कानून के अनुसार अधिकार देकर जांच के लिए खास अफसर नियत किया गया। जांच ५ अक्तूबर १९३१ को शुरू हुई। श्री भूलाभाई देसाई और सरदार वल्लभभाई पटेल उपस्थित थे। दोनो पक्ष इसपर सहमत हो गये कि किसानो को अपनी शक्ति के अनुसार अधिक-से-अधिक लगान देना चाहिए और यदि किसान उन सत्याग्रहियो में से नही हैं, जिन्हें बहुत नुकसान उठाना पड़ा है, तो उन्हें कर्ज लेकर भी लगान देना चाहिए। श्री देसाई ने बहुत से पत्र, तार व लेख सुनाये। उनमें बारडोली का एक तार यह भी था कि रायम गांव पर कलक्टर ने पुलिस के १५ सिपाहियो के साथ धावा बोला। टिम्बर्वा, राजपुरा, लाम्बा,

माणकपुर, वलोडगढ, अलगोबा और जामणिया पर भी धावा बोला गया। जाच एक अरसे तक चलती रही। भारत-सरकार व बम्बई-सरकार ने ५ मार्च से २८ अगस्त तक जितनी आज्ञायें प्रचारित की थी, काग्रेस ने उन्हें पेश करने के लिए कहा, क्योंकि उनसे समझौते में निर्दिष्ट स्टैण्डर्ड के प्रश्न पर काफी प्रकाश पड सकता था। मि० गॉर्डन यह वात समझ न सके कि सरकार को काग्रेस की बात सिद्ध करने के लिए गवाह के रूप में क्यो बुलाया जाय ? उन्होने कहा कि "यह अनुमान करना चाहिए कि काग्रेस ने अभियोग लगाने से पूर्व वह सब मसाला एकत्र कर लिया होगा, जिसके आधार पर उसने अभियोग लगाया, और उस मामले को पेश करना तथा अपने मामले को पुष्ट करना काग्रेस का फर्ज है। काग्रेस सरकार के किसी खास हुक्म की ओर निर्देश करना चाहे, तो और बात है।" तब काग्रेस ने अभिलषित कागजो को मागने के कारण बताये और यह भी बताया कि किस किस्म के कागज विरोधी-पक्ष के अधिकार में है। मि० गॉर्डन ने १२ नवम्बर १९३१ को यह हुक्म दिया कि "विचाराधीन प्रश्न के सिलसिले में *अनिश्चित और अयुक्ति-युक्त मागो से सहमत होना असम्भव है।"* श्री देसाई ने इस हुक्म पर ऐतराज उठाते हुए कहा कि इसमें यह मान लिया गया है कि मानो अपनी गवाही की खामी को पूरा करने के लिए काग्रेस ने सरकारी कागजो को इतनी देर बाद पेश करने की माँग की है। महत्वपूर्ण वास्तविक घटनाओ के सत्यासत्य के निर्णय के लिए की गई जाच मे विरोधी-पक्ष जिस भावना से सहयोग करना चाहता है, उसका ज्ञान भी मि० गॉर्डन के इस हुक्म से हो जायगा। 'सार्वजनिक-हित' करने की उनकी इच्छा भी इस निर्णय से मालूम हो जायगी। उस स्पिरिट का खयाल करते हुए मैं जिन परिणामो पर दु ख-पूर्वक पहुँचा हूँ, वे और भी पुष्ट हो गये है। वल्लभभाई पटेल ने किसानो के नाम एक वक्तव्य प्रकाशित करते हुए लिखा कि "जाच का रुख विरोधी और इकतरफा दीखता है। लेकिन मै उस वक्त तक न हटूगा, जबतक कि हमारे प्रतिनिधि वकील को यह यकीन न हो जाय कि आगे कार्रवाई करना निरुपयोगी है।" दरअसल सरकार के हाथ मे मौजूद कागजो को पेश करने से इन्कार कर देने का अर्थ सरकारी गवाहो पर से जिरह की एक उपयोगी कैद को हटा देना था और यह भी महसूस किया गया कि इस तरह अधकचरी जाँच निरुपयोगी से भी अधिक बुरी है। इस कारण सरदार वल्लभभाई पटेल ने जाँच से हाथ खीच लिया और १३ नवम्बर १९३१ को गांधीजी को लन्दन निम्नलिखित तार भेजा —

"जिन ग्यारह गावो की इजाजत दी गई थी, उनमे से सात गावो के ६२ खातेदारो और ७१ गवाहो की गवाहिया ली गई है। जाच के क्षेत्र में नही आते, यह

कहकर पाच गावो की जाच करने की इजाजत ही नही मिली। सरकार के पहले गवाह मामलतदार की आशिक जिरह में महत्त्वपूर्ण इकबाल के बाद जाच-अफसर ने यह फैसला किया है कि जाच-विषयक प्रश्नो से सम्बन्ध रखनेवाले सरकारी कागजो को पेश कराने या उनके देखने का हमें अधिकार नही है। जाच का रुख स्पष्टत विरोधी और इकतरफा है। श्री भूलाभाई की सहमति से आज जाच से अलग हो गया हू।"

युक्तप्रान्त में विकट स्थिति

युक्तप्रान्त में विकट परिस्थिति उत्पन्न हो रही थी। यह भी कहा जा सकता है कि उसने भविष्य के कई सालो की भारतीय राजनीति की दिशा निश्चित कर दी। युक्तप्रान्त में किसानो की—अधिकाशत ताल्लुकेदारो व जमीदारो के अधीनस्थ किसानो की—आर्थिक दशा बहुत खराब हो रही थी। उनकी विपत्ति बढ रही थी। लगान-वसूली के तरीको में नरमी का नाम-निशान न था।

दिल्ली-समझौते के बाद के महीनो में युक्तप्रान्त के किसानो की हालत निरन्तर खराब होती गई। दाम बहुत गिर जाने पर भी लगान में छूट काफी न होने से बहुत बडी आपत्ति आ गई। बेदखलियो तथा दबाव की ज्यादती से यह आपत्ति और भी अधिक गभीर हो गई। अनेक ग्रामीण क्षेत्रों में तो किसानो पर आतक का राज्य छा गया और उनके साथ क्रूरता-पर-क्रूरता होने लगी। जिन जिलो में किसानो के साथ सख्तिया की गईं, उन्हें देखने तथा किसानो की स्थिति और विपत्तियो पर अपनी रिपोर्ट देने के लिए युक्तप्रान्तीय काग्रेस-कमिटी ने कई-जाच-कमिटिया बिठाईं। ली गई गवाहियो से समर्थित इन रिपोर्टो पर विशेष प्रान्तीय कृषक-जाच कमिटी ने विचार किया। पन्त-कमिटी के नाम से मशहूर, इस विशेष कमिटी की रिपोर्ट सितम्बर १९३१ मे प्रकाशित की गई।

इस अरसे में दु खी और त्रस्त किसानो के दु ख दूर करने के लिए गाधीजी व युक्तप्रान्तीय-काग्रेस-कमिटी के प्रयत्न जारी रहे। अगस्त १९३१ में भारत-सरकार व गाधीजी की शिमला की मुलाकात में युक्तप्रान्त के किसानो के आर्थिक सकट पर विशेष-रूप से विचार हुआ और गाधीजी ने इसका भी निर्देश कर दिया कि यदि किसानो के दु ख दूर न हो सकें, तो उन्हें सत्याग्रह करने का अधिकार होगा। २७ अगस्त १९३१ को गाधीजी ने भारत-सरकार के होम-सेक्रेटरी मि० इमर्सन को जो पत्र लिखा और जो शिमला-समझौते का एक अभिन्न भाग बन गया था उसमें यह स्पष्ट लिखा था, "यदि कोई शिकायत इतनी तीव्रता से अनुभव की जा रही हो कि जाच न

होने पर उसे दूर करने के लिए सत्याग्रह के रूप में कोई उपाय ग्रहण करना आवश्यक हो जाय, तो कांग्रेस सविनय-अवज्ञा के स्थगित रहते हुए भी ऐसा कदम उठाने में स्वतन्त्र होगी।" २७ अगस्त को गांधीजी के लिखे मि० इमर्सन के जवाब में कांग्रेस की स्थिति-सम्बन्धी इस वक्तव्य का उल्लेख किया गया है। कांग्रेस के अध्यक्ष सरदार वल्लभभाई पटेल ने भी युक्तप्रान्तीय किसान-संकट के बारे में भारत-सरकार को कई बार लिखा था।

इस तरह यह स्पष्ट है कि युक्त-प्रान्त में कांग्रेस ने किसान-समस्या का हल निकालने के लिए सरकार के साथ सहयोग करने का प्रत्येक प्रयत्न, जो उसके वस में था, किया। शिमला-समझौते के बाद फिर बार-बार पत्र लिखे गये, लेकिन बेदखल व अन्य किसानों का कोई दुःख दूर न हुआ और वसूली की साधारण मियाद के बाद भी बहुत समय तक अत्याचार व शारीरिक यातना दे-देकर जबरदस्ती वसूलिया जारी रहीं। पिछली फसल की कठिनाइयों और बेदखलियों का कोई सन्तोषजनक हल निकले, इससे पहले नये फसली साल १३३९ के प्रारम्भ के साथ एक नई स्थिति उत्पन्न हो गई, जबकि नई वसूली का सवाल भी आ खड़ा हुआ। भारी आफतों से निरन्तर संघर्ष के कारण किसान पहले ही जीर्ण-शीर्ण हो गये थे, अब उन्हें इस नई आफत का सामना करना पड़ा। प्रान्तीय सरकार ने लगान में जिस छूट की घोषणा की, वह बिलकुल नाकाफी थी। बेदखल किसानों की बकाया या स्थानीय विपत्तियों के लिए कोई व्यवस्था नहीं की गई। इन सबके ऊपर कई जिलों में सरकार ने यह घोषणा कर दी कि यदि मांगा हुआ पूरा लगान एक मास के अन्दर न दे दिया गया, तो जो छूट मिली है वह भी वापस ले ली जायगी। घोषणा में आगे यह बताया गया था कि मांगा हुआ पूरा लगान चुका देने के बाद ही किसान कोई ऐतराज उठा सकते हैं। इन घोषणाओं ने विकट स्थिति उत्पन्न कर दी। यह स्मरण रखना चाहिए कि छूट नियत करते हुए न तो कांग्रेस से सलाह ली गई थी और न किसानों के अन्य प्रतिनिधियों से।

सरकारी घोषणाओं के प्रकाशित होने के बाद जल्दी ही इलाहाबाद-जिला-कांग्रेस-कमिटी ने इस प्रश्न को उठाया और बताया कि किसानों के लिए मांगी गई रकम को चुकाना सम्भव नहीं है। और भी अधिकांश जिले इसी या इससे भी बुरी हालत में थे। प्रान्तीय-सरकार से फिर मिला गया और उसे बताया गया कि छूट, बेदखली, बकाया तथा स्थानीय विपत्तियों के सम्बन्ध में किसानों के साथ कैसा दुर्व्यवहार किया जा रहा है। युक्तप्रान्त के अधिकांश जिलों के लिए उदाहरण-रूप इलाहाबाद-जिले के मामले पर विचार करने के लिए एक तरफ कुछ स्थानीय

अधिकारियो और बन्दोवस्त-कमिश्नर तथा दूसरी तरफ काग्रेस के प्रतिनिधियो के बीच एक सम्मेलन की योजना की गई। वह सम्मेलन असफल सिद्ध हुआ, क्योकि सरकार की ओर से यह कहा गया कि वह इस प्रश्न के महत्त्वपूर्ण अगो पर बहस करने के लिए तैयार नही है। वह केवल उन्ही नियमो के प्रयोग पर बहस कर सकती है, जो उसने (सरकार ने) निर्धारित किये है। इस तरह समस्या के मूल प्रश्न पर कोई विचार ही नही हुआ।

पिछले महीनो मे युक्तप्रान्तीय-काग्रेस-कमिटी की ओर से प्रान्तीय-सरकार के ऐसे प्रतिनिधियो के साथ सम्मेलन करने के बार-बार प्रयत्न किये गये, जो समस्या के सभी पहलुओ पर विचार कर सकने में समर्थ हो। युक्त-प्रान्तीय काग्रेस-कमिटी ने सरकार से सन्धि-चर्चा के लिए सब अधिकार देकर एक विशेष समिति भी नियुक्त कर दी। पर इन प्रयत्नो में भी कोई सफलता न हुई।

पत्र-व्यवहार के सिलसिले में काग्रेस की ओर से यह स्पष्ट कर दिया गया था कि वह किसी भी किस्म का हल, चाहे किसी तरह से निश्चित किया गया हो, स्वीकार करने को तैयार है, बशर्ते कि उससे किसानो को काफी राहत मिलती हो। जब वसूली का समय आया, किसान बार-बार पूछने लगे कि हमें क्या करना चाहिए ? युक्त-प्रान्तीय काग्रेस-कमिटी ऐसा कोई कदम उठाना नही चाहती थी, जिससे समझौते तक पहुँचने की बातचीत ही टूट जाय। लेकिन उसी समय किसानो के लगातार सलाह मागने पर वह चुप भी न रह सकती थी और न यही सलाह दे सकती थी कि वे मागी हुई रकम दे दें, क्योकि उसे विश्वास था कि यह रकम बहुत अनुचित है और उन किसानो को तबाह कर देगी, जिनकी वह प्रतिनिधि है। तब काग्रेस ने महा-समिति के अध्यक्ष से आज्ञा लेने के बाद किसानो को यह सलाह दी कि वे लगान और मालगुजारी का चुकाना सन्धि-चर्चा के समय तक के लिए मुल्तवी कर दें। फिर भी काग्रेस ने यह स्पष्ट कर दिया कि वह सन्धि-चर्चा के लिए इच्छुक और उद्यत है और ज्योही किसानो की शिकायत दूर हुई वह अपनी सलाह को वापस ले लेगी। काग्रेस ने सरकार को यह भी सुझाया कि यदि वह सन्धि-चर्चा के समय तक वसूली स्थगित कर दे, तो वह (काग्रेस) भी लगान मुल्तवी करने की अपनी सलाह वापस ले लेगी। सरकार चाहती थी कि पहले काग्रेस अपनी सलाह वापस ले। उसने काग्रेस का परामर्श नही माना। अब युक्त-प्रान्त की काग्रेस-कमिटी के पास सिवा इसके कोई चारा न था कि लगान मुल्तवी करने की अपनी सलाह को दोहराये। स्थिति यहातक पहुँच जाने पर भी काग्रेस बराबर यह कहती रही कि वह सन्धि-चर्चा के लिए प्रत्येक प्रकार का रास्ता ढूढने और ज्योंही

किसानो को काफी छूट मिलती नजर आवे या वसूली स्थगित कर दी जाय, लगान मुल्तवी करने की अपनी सलाह को वापस लेने के लिए हमेशा तैयार है। सरकार का दृष्टिकोण यह था कि वह केवल उसी स्थिति में जनता के प्रतिनिधियो से बातचीत कर सकती है, जबकि यह सलाह, जिसे वह लगानबन्दी-आन्दोलन कहती थी, वापस ले ली जाय। लेकिन सरकार ने अपने लिए खुद दूसरी नीति अख्तियार की। उसने सैकडो काग्रेसी कार्यकर्त्ताओ को जेल में डाल दिया। ये गिरफ्तारिया इतनी तडाक-फडाक हुई कि सभी प्रमुख और सच्चे कार्यकर्त्ता जेलो में पहुँच गये। इन गिरफ्तारियो का अन्त गाधीजी के इग्लैण्ड से भारत पहुँचने के पाच दिन पहले सर्वं श्री जवाहरलाल, पुरुषोत्तमदास टण्डन और शेरवानी साहब की गिरफ्तारियो के साथ हुआ। दरअसल प० जवाहरलाल और श्री शेरवानी को अपने स्थान न छोडने का नोटिस दिया गया था। इस पाबन्दी के बाद जल्दी ही गाधीजी के बम्बई पहुँचने से पहले होनेवाली कार्य-समिति की बैठक में जवाहरलाल जी शामिल हुए। सम्भवत उनके लिए इस आज्ञा का पालन करना मुमकिन न था। क्योकि जगह-जगह जोर की बुलाहट होती थी। और वहा जाना पडता था और अनेक महत्त्वपूर्ण बैठको में खुद भी उपस्थित रहने की आवश्यकता थी। अत जब उन्होने इस आज्ञा का उल्लघन किया, वह गिरफ्तार कर लिये गये। इसी तरह श्री शेरवानी भी गिरफ्तार हो गये। दोनो को सजा दे दी गई।

बंगाल में अत्याचार

सघर्ष का तीसरा केन्द्र बगाल था। अस्थायी सधि के समय वहा अत्याचारो के अनेक दृश्य देखने में आये। शायद इनका उद्देश्य था चटगाव जिले में हुए उत्पातो का बदला लेना। चटगाव शहर और जिले मे ३१ अगस्त और पिछले तीन दिनो में हुई घटनाओ की जाच करने के लिए एक गैर-सरकारी जाच-कमिटी नियुक्त की गई। कुछ गैर-सरकारी यूरोपियन और गुण्डे बडे हथौडे और लोहे की सलाखें लेकर रात को एक प्रेस मे घुस आये और उन्होनो मशीनो को तोड दिया तथा प्रेस-मैनेजर व अन्य कर्मचारियो को भी मारा-पीटा। दिल्ली में २७, २८ और २६ नवम्बर को कार्य-समिति ने इस घटना की रिपोर्ट पर विचार किया और "आतकवाद की नीति का अनुसरण करते हुए कुछ गैर-सरकारी यूरोपियनो व गुण्डो के साथ निरपराध जनता की बेइज्जती करने व उसे भीषण क्षति पहुँचाने के लिए स्थानीय पुलिस व मजिस्ट्रेटो की तीव्र निन्दा की। समिति ने इसपर सतोष प्रकट किया कि जिन गुण्डो को साम्प्रदायिक दगा कराने के लिए ही तजवीज किया गया था और जिनके प्रयत्न इस घटना को साम्प्रदायिक

रग देने के इरादे से थे, उनके जान-बूझ कर किये गये प्रयत्नो के बावजूद वहा कोई साम्प्रदायिक दगा नहीं हुआ। समिति की सम्मति में बगाल-सरकार को कम-से-कम इतना तो करना चाहिए कि जिनकी क्षति हुई है उन्हें मुआवजा दे और इन दुर्घटनाओ के लिए जिनकी जिम्मेवारी साबित हो उन्हें दण्ड दे।"

जेलो से वाहर लोगो के साथ जब इस प्रकार आयर्लैण्ड-के-से दमन के तौर-तरीके काम मे लाये जा रहे थे, जेलो और नजरवन्दो के कैम्पो में उनके साथ और भी अधिक कठोर व्यवहार किया जा रहा था। हिजली के नजरवन्द-कैम्प में जो दुःखान्त नाटक खेला गया, उसके फल-स्वरूप २ नजरवन्द मर गये और २० घायल हो गये। कार्य-समिति ने "सरकार-द्वारा नियुक्त जाच-कमीशन की रिपोर्ट की प्रतीक्षा करते हुए भी यह अनुभव किया कि विना कोई मुकदमा चलाये सरकार ने जिन निहत्यो को राष्ट्र के तीव्र विरोध करने पर भी नजरवन्द कर दिया है, उनके जीवन और हित-सावना की रक्षा की वह जिम्मेवार है। इस प्राथमिक कर्तव्य के प्रति घोर उपेक्षा के अपराधियो को अवश्य सजा देनी चाहिए।"

इसी बैठक में युक्तप्रान्त की स्थिति पर भी विचार हुआ। इलाहाबाद काग्रेस-कमिटी ने युक्तप्रान्त की सरकार की वर्तमान किसान-नीति के विरुद्ध और खासकर उस स्थिति में लगान और मालगुजारी की अत्याचारपूर्ण वसूली के विरुद्ध, जबकि किसान तीव्र आर्थिक सकट के कारण देने में असमर्थ थे, सत्याग्रह करने की अनुमति मागी थी। कार्य-समिति ने यह सम्मति प्रकट की कि अनुमति देने से पूर्व इस पर युक्तप्रान्तीय काग्रेस-कमिटी विचार करले। समिति ने इलाहाबाद-काग्रेस-कमिटी का पत्र प्रान्तीय काग्रेस-कमिटी से पास भेज दिया और यदि उसकी सम्मति में २७ अगस्त के शिमला-समझौते के अनुसार किसानो को रक्षणात्मक सत्याग्रह करने का अधिकार हो, तो समिति ने राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया कि वह इस पर विचार कर जैसा आवश्यक समझें निर्णय दें।

प्रसगवश हम यहा यह भी कह दें कि इसी बैठक में कार्य-समिति ने नमक पर अतिरिक्त कर लगाने के प्रस्ताव का इस आधार पर विरोध किया था कि दिल्ली-समझौते को खयाल में रखते हुए यह भारत-सरकार का विश्वासघात है। मुद्रा और विनिमय की नीति के सम्बन्ध में भी इस समिति ने एक प्रस्ताव पास किया था। पाठको को स्मरण रहे कि २१ सितम्बर को सोने की मात्रा कम रह जाने के कारण बैंक ऑफ़ इग्लैण्ड ने तीन दिन की छुट्टी कर दी थी और इग्लैण्ड ने स्वर्णमान छोड दिया था। प्रश्न यह था कि क्या भारत के रुपये को पौण्ड स्टर्लिंग की दुम के साथ बाधा जाय, या

सोने के बाजार में उसे अपने-आप अपना मूल्य निर्धारण करने दें? पहला रास्ता, जिसे भारत-सरकार ने स्वीकार किया, समिति की सम्मति मे केवल इग्लैण्ड के स्वार्थों को पूर्ण करता था। क्योंकि इसका मतलब था भारत मे आयात के लिए ब्रिटिश माल को परोक्ष रूप में तरजीह देना और भारत का सोना बाहर भेजने को उत्तेजन देना।

सीमाप्रान्त मे आग

भारत के उत्तरी-द्वार में सरकार ने चौथी अग्नि प्रज्वलित कर रक्खी थी। भारत के इतिहास और इन पृष्ठो में खुदाई खिदमतगारो ने एक प्रसिद्धि प्राप्त कर ली है। वे सीमान्त के उन बहादुर लोगो में से है, जो अनुशासन व सगठन के साथ असहयोग के लिए तैयार किये गये थे। खान अब्दुलगफ्फारखा के नेतृत्व और प्रेरणा में काम करनेवाले ऐसे आदमी एक लाख से ऊपर थे। अगस्त के महीने तक इन खुदाई खिदमतगारो का काग्रेस से सम्बन्ध नही था। अस्थायी सधि के समय से ही गाधीजी सीमाप्रान्त जाने और उस सगठन का अध्ययन करने की अनुमति प्राप्ति करने का प्रयत्न कर रहे थे, जिसने इतना चमत्कारी कार्य कर दिखाया था। लॉर्ड अर्विन से उन्होने इजाजत मागी, लेकिन उन्होने कहा—अभी नही। सारे साल-भर उन्हे यही जवाब मिलता रहा और इसलिए उन्होने सीमाप्रान्त में श्री देवदास गाधी को भेजा। उन्होंने एक आश्चर्यकारक रिपोर्ट पेश की। उसपर कार्य-समिति ने विचार किया तथा खुदाई-खिदमतगारो को काग्रेस-सगठन का अग बनाकर एक महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पादन किया। इसके बाद यह सगठन सब प्रकार के सन्देहो से ऊपर हो जाना चाहिए था, लेकिन सरकार ऊपर से अर्ध-सैनिक दीखनेवाले सगठन को—चाहे वह काग्रेस के स्वयसेवको का सगठन ही क्यो न हो—रहने देना नही चाहती थी। बैण्ड और बिगुल, सिर से पैर तक लाल पोशाक और एक ऐसे ऊँचे व्यक्तित्व में श्रद्धा और विश्वास—जो अपने चरित्र, मनुष्यता, बलिदान व सेवा से 'सीमान्त-गाधी' का पद पा चुका था और बहुत जल्दी सब आखो का एक लक्ष्य, एक केन्द्र हो रहा था—ये सब बातें उस सगठन को अर्ध-सैनिक सिद्ध करने के लिए काफी थी। कौन जानता है कि उसके विनम्र और सत्याग्रही चेहरे के पीछे सीमाप्रान्त पर एक 'बफर-स्टेट' (लडने वाले दो राज्यो के बीच का तटस्थ-राज्य) बनाने, अमीर से सधि करने, सीमाप्रान्त के जिरगो को दोस्त बनाने तथा भारत पर आक्रमण करने की तजवीज न छिपी हो? लाल पोशाक में एक लाख सेना—सब पठान, उनपर विश्वास नही किया जा सकता! सरकार को एक बहाना भी मिल गया कि खान अब्दुलगफ्फारखा सरकार से सहयोग नही करते,

क्योंकि वह सीमा-प्रान्तीय चीफ-कमिश्नर के दरबार में सम्मिलित नही हुए। वह पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रचार करते हैं। बस, निरपराध खानसाहब और उनके भक्त तथा उन्ही की तरह निरपराध भाई डॉ० खानसाहब गाधीजी के भारत पहुँचने से कुछ ही दिन पहले जेल में डाल दिये गये।

इस तरह जब गाधीजी भारत पहुँचे, ये सब बखेडे उत्पन्न हो चुके थे। गुजरात में ज्यादतियो की जाच, जिसका गाधीजी को वचन दिया गया था और जिस वचन पर ही वह लन्दन जाने को तैयार हुए थे, १३ नवम्बर को अधूरी ही खतम हो चुकी थी। यहा यह ध्यान रखना चाहिए कि तेजतर्रार और एकदम भडक जानेवाले वल्लभभाई पटेल नही थे जो उकताकर जाच से अलग हो गये थे, लेकिन गभीर और धैर्यशील भूलाभाई देसाई थे जो बहुत विचार के बाद जाच को निरर्थक समझकर अलग हुए थे। युक्तप्रान्त में सरकार के प्रभाव व दस्तन्दाजी के कारण जमीदारो ने किसानों को जो थोडी छूट दी थी, वह बिलकुल नाकाफी और असन्तोषप्रद थी और सरकार भी तबतक लोक-प्रतिनिधियो से मिलने को तैयार न थी, जबतक वे मुह में तिनका न रख लें और लगान स्थगित करने की आज्ञा वापस न ले लें। इस प्रकार उत्पन्न हुई परिस्थिति में प० जवाहरलाल और शेरवानी साहब गाधीजी के लौटने के ५ दिन पहले गिरफ्तार कर लिये गये, जैसाकि ऊपर लिखा जा चुका है। यद्यपि यह खबर बेतार के तार से जिस जहाज पर गाधीजी आ रहे थे उसपर भी भेज दी गई, तथापि उनतक यह खबर नही पहुँचने दी गई। सीमाप्रान्त से खान अब्दुलगफ्फारखा, उनके भाई और पुत्र शाही कैदी बनाकर नजरबन्द कर दिये गये। बगाल की स्थिति किसी एक या इक्की-दुक्की घटना से बनी हुई नही थी, हालाकि चटगाव और हिजली की घटनायें उसका कारण थी। वह अर्से से एक बहता हुआ घाव बन गई है और पता नही कबतक यह घाव इसी तरह गहरा बना और बहता रहेगा।

गाधीजी जब २८ दिसम्बर को बम्बई उतरे तब परिस्थिति इस प्रकार बन चुकी थी।

[छठा भाग : १९३२-१९३५]

: १ :

वयावान की ओर

गांधीजी बम्बई में

देश के सभी प्रान्तों के प्रतिनिधि जनता के उस त्राता का स्वागत करने के लिए बम्बई में एकत्र हुए थे। नुगी-दफ्तर के एक भवन में विधिवत् स्वागत किया गया। फिर एक जुलूस निकला—वह जुलूस जिसके लिए बादशाह भी अपने मुल्क में तरसें। पर राजनैतिक नेता और महात्वाकाक्षी राजपुरुषों का तो गुण-ग्राहक जनता ऐसे ही जुलूसों-द्वारा स्वागत किया करती है। गाधीजी का स्वागत देशवासियों ने किस उन्माद से किया होगा, पाठक स्वय कल्पना कर सकते हैं। वे किसी ऐसे साहसी का स्वागत नहीं कर रहे थे, जो किसी बादशाहत की स्थापना करने जा रहा हो। न वे किसी ऐसे राजपुरुष का आदर करने जा रहे थे जो किसी कजूस बादशाह के हाथों से जनता के लिए कोई रिआयतें छीनने गया हो। लड़ाई के मैदान में वताई बहादुरी के लिए किसी वीर योद्धा का सन्मान करने भी वे जमा नहीं हुए थे। बल्कि वे तो इकट्ठे हुए थे एक सन्त और सत्याग्रही का स्वागत करने के लिए, जो ससार को छोड़ देने पर भी ससारी की भाति ही ससार में रहता था और जिसने अपने स्वार्थ को तिलाजलि दे दी थी। उस दिन बम्बई के तमाम पुरुष सड़कों पर इकट्ठे हो रहे थे और स्त्रिया आस्मान से बातें करनेवाली बम्बई की ऊँची अट्टालिकाओं पर। हिन्दुस्तान में आते ही गाधीजी ने सबसे पहले बम्बई की जनता को अपना भाषण सुनाया। आजाद मैदान में सचमुच उस दिन जबरदस्त भीड़ इकट्ठी हुई थी, और गाधीजी ने उसके सामने गम्भीर आवाज में यह कहते हुए अपने हृदय को खोलकर रख दिया कि मैं शान्ति के लिए अपने बस-भर कोशिश करूँगा और अपनी तरफ से कोई बात उठा न रक्खूगा। इस भाषण में भी उन्होंने अपनी वह भयकर प्रतिज्ञा दोहराई और कहा कि "हिन्दू-जाति से अछूतों को जुदा करनेवाले किसी भी प्रयत्न को मैं बरदाश्त नहीं करूँगा, बल्कि मौका पड़ने पर उसके विरोध में मैं अपनी जान तक लडा दूगा।" सच तो यह है कि न तो इस मौके

पर और न अल्पसख्यक जातियो की कमिटी की बैठक में ही किसीको यह खयाल आया कि गाधीजी इस मुद्दे पर आमरण उपवास की घोपणा कर देंगे। या तो इस वात की तरफ किसीका घ्यान ही नही गया या सुननेवालो और पढनेवालो के दिल पर इसका असर एक सामान्य भापालकार की अपेक्षा अधिक नही पडा। पर हरेक आदमी जानता है कि गाधीजी कभी अत्युक्ति-पूर्ण वात नही करते और न कभी कोई वात गैर-जिम्मेवारी के साथ कहते है। उनकी 'हा' केवल 'हा' है और 'ना' निरी 'ना'। उनकी वात ज्यो-की-त्यो होती है। उसके दो मानी नहीं निकाले जा सकते।

तीन दिन तक गाधीजी जुदा-जुदा प्रान्तो मे आये प्रतिनिधियो से मिलते रहे और उनकी दु ख-कथायें सुनते रहे। वह क्या कर सकते थे ? सुभाप वावू वगाल मे अपने चार साथियो को लेकर आये थे। हालाकि उन चारो ने गाधीजी से अलग-अलग वातचीत की, पर चारो ने वगाल-आर्डिनेन्सो के कारण किये गये दमन का वर्णन वही सुनाया। युक्तप्रान्त और सीमाप्रान्त में भी आर्डिनेन्स जारी कर दिये गये थे। आरजी सुलह के दिनो में राज का गाडा इन आर्डिनेन्सो से ही हाका जा रहा था। गाधीजी मजाक में कहा करते थे कि यह तो लॉर्ड विलिंगडन का दिया नये साल का तोहफा है। पर वह एक सत्याग्रही की भाति शान्ति के लिए अपनी पूरी कोशिश किये वगैर ही देश को नई मुसीवतो मे डालनेवाले पुरुप न थे। सुवह से लेकर शाम तक गाधीजी का सारा समय तमाम प्रान्तो से आये हुए शिष्ट-मण्डलो से मिलने में ही वीतता था, जो सरकारी अफसरो-द्वारा हर प्रान्त में किये गये अत्याचारो की कथायें सुनाते थे। देश में भयकर मन्दी और घोर सकट था। फिर भी कर्नाटक को इतने लम्बे समय तक युद्ध में लगे रहने पर भी कोई रिआयत नही दी गई। आन्ध्र में लगान वढाया जानेवाला था, और मदरास के गवर्नर ने तो यहां तक धमकी दे रक्खी थी कि अगर लोग लगान रोकने की वात करेंगे तो आर्डिनेन्स जारी कर दिये जायेंगे। इस तरह की दु ख-गाथायें गाधीजी को सुनाई जा रही थी। उन्हें भी अपने दुखडो की कहानी लोगो को सुनानी थी, जो उनपर लन्दन में वीते थे। वह गोलमेज-परिपद् में जाना ही नहीं चाहते थे। जो वातें इस परिपद् में होने वाली थी उनकी छाया जुलाई और अगस्त में ही नजर आने लग गई थी। पर काग्रेस की कार्य-समिति ने इस वात पर जोर दिया कि उन्हें जाना ही चाहिए। समझौते का भग होने पर भी वाद में उन्हे परिपद् में जाने से इन्कार करने का मौका मिल गया था। पर मजदूर-सरकार चाहती थी कि उन्हें किसी प्रकार जहाज पर चढा के लन्दन रवाना कर ही दिया जाय।

सवसे पहली वात जो उन्होंने अपने साथियो से कही वह यही थी कि किसी

चीज की कल्पना की अपेक्षा उसका प्रत्यक्ष अनुभव एक दूसरी ही चीज है। वह नरम-दल के नेताओ की मनोदशा से परिचित थे, पर वह उस नजारे के लिए तैयार न थे जो उन्होने लन्दन मे देखा। मुसलमानो के स्वभाव को भी वह जानते थे और उनकी प्रतिगामी-मनोवृत्ति से भी नावाकिफ नही थे। पर गोलमेज-परिषद् में राष्ट्र-शरीर की जो चीरा-फाडी हुई और जिस तरह टुकडे-टुकडे किये गये उसके लिए वह हर्गिज तैयार न थे। उन्होने इस बात का भी निश्चय कर लिया कि आइन्दा काग्रेस किसी प्रकार की भी साम्प्रदायिकता का समर्थन नही करेगी। उसका धर्म शुद्ध और विशुद्ध राष्ट्र-धर्म होगा। उन्होने यह भी कहा कि अगर यह देश साम्प्रदायिक प्रश्न के साथ इसी तरह पहले की भाति खिलवाड करता रहेगा तो इसके लिए कोई आशा नही है। अपने मुसलमान और सिक्ख मित्रो से उन्होने यह आश्वासन चाहा कि अगर भारत के लिए कोई ऐसा विधान बने जिसमे किसी प्रकार की साम्प्रदायिकता की बू न हो और जो विशुद्ध राष्ट्रीयता के आधार पर बनाया जाय तो उसे वे स्वीकार कर लेंगे। इन सारे विचारो और अनुभवो के कारण उनके चित्त को बडा क्लेश हो रहा था, पर उपस्थित परिस्थिति का उन्होने बडी शान्ति और स्थिर-चित्तता से सामना किया, जैसा कि वह हमेशा किया करते है। अपने ऊपर तथा अपने देश-भाइयो पर भी उन्हें खूब विश्वास था। देश ने उनपर विश्वास किया और उन्होने उसको बराबर निभाया। अब आज उन्हें अपने सामने एक जबरदस्त खाई नजर आ रही थी। सवाल यह था कि इसपर पुल बनाया जा सकता है या इसे जिन्दा और मरे हुए आदमियो से पाटकर पार करना होगा? जब वह अपने काम मे भिडे, उनके हृदय में ये विचार उमड रहे थे—यह मनोमन्थन चल रहा था। कार्य-समिति उनके साथ थी। पर उन चौदह सदस्यो वाली कार्य-समिति की ही नही, उन्हें तो सारे देश की हिम्मत थी। कार्य-समिति के आदेशानुसार उन्होने लॉर्ड विलिंगडन को एक तार दिया और उसका जवाब भी आया। जवाब लम्बा और तफसीलवार था। उसमें धमकी भी थी। गाधीजी ने फिर तार दिया। मगर कोई नतीजा न निकला।

वाइसराय से तार-व्यवहार

वाइसराय से गाधीजी का जो तार-व्यवहार हुआ वह निम्न प्रकार है—

(१) वाइसराय को गांधीजी का तार (२९ दिसम्बर १९३१)

"कल जहाज से उतरने पर मुझे मालूम हुआ कि सीमाप्रान्त और युक्तप्रान्त

में आर्डिनेन्स जारी कर दिये गये है। सीमाप्रान्त में गोलिया चलाई गई है। मेरे अनमोल साथी गिरफ्तार कर लिये गये है। और सबसे बढकर बगाल का आर्डिनेन्स मेरी राह देख रहा है। मै इसके लिए तैयार न था। मेरी समझ मे नही आता कि आया मै इनसे यह समझू कि हमारी पारस्परिक मित्रता का खात्मा हो चुका, या आप अब भी मुझसे यह उम्मीद करते हैं कि मै आपसे मिलू और इस परिस्थिति में मै काग्रेस को क्या सलाह दू इस विषय में आपसे परामर्श और रहनुमाई चाहूँ? जवाब तार से देने की कृपा करेंगे।"

(२) गांधीजी के नाम वाइसराय के प्राइवेट सेक्रेटरी का तार (३१ दिसम्बर १९३१)

"वाइसराय महोदय चाहते हैं कि मै आपको आपके तार के लिए धन्यवाद दू, जिसमें आपने बगाल, युक्तप्रान्त और सीमाप्रान्त के आर्डिनेन्सो का जिक्र किया है। बगाल की बात तो यह है कि अपने अफसरो और नागरिको की कायरता-पूर्ण हत्यायें रोकने के लिए सरकार के लिए यह जरूरी हो गया और है कि वह तमाम उपाय काम में लावे।

वाइसराय महोदय की इच्छा है कि मै आपसे यह कहूँ कि वह तथा उनकी सरकार चाहते हैं कि उनका देश के तामाम राजनैतिक दलो तथा जनता के सभी हिस्सो से मित्रता-पूर्ण सम्बन्ध रहे। खास तौर पर शासन-सम्बन्धी सुधारो के मामलो मे, जिन्हें कि वह बिना किसी देरी के जारी करना चाहते है, वह सबका सहयोग चाहते हैं। पर यह सहयोग पारस्परिक हो। युक्तप्रान्त और सीमाप्रान्त में काग्रेस जिस तरह की हलचलें चला रही है, सरकार उनका उस मित्रता-युक्त सहयोग के साथ मेल नही देख रही है जो हिन्दुस्तान के भले के लिए जरूरी है।

युक्तप्रान्त के बारे में तो आप जरूर जानते ही हैं कि जहा एक ओर प्रान्तीय सरकार वर्तमान परिस्थिति में हर तरह की रिआयत देने के बारे में उपायो की योजना कर रही थी, तहा उधर प्रान्तीय काग्रेस-कमिटी ने लगानबन्दी का आन्दोलन शुरू करने की आज्ञा जारी कर दी। उस प्रान्त में आजकल यह आन्दोलन जोरो पर है। काग्रेस के इस कार्य से, अगर यह बेरोक इसी तरह जारी रहा तो, जरूर ही देश में भारी पैमाने पर अव्यवस्था, वर्ग-विद्वेष तथा जातीय-विद्वेष फैल जायगा, इसीलिए सरकार को आवश्यक उपायो का अवलम्बन करने पर मजबूर होना पडा।

पश्चिमोत्तर-सीमाप्रान्त में अब्दुलगफ्फारखा तथा उनकी मातहत संस्थायें लगातार ऐसी हलचलो में भाग लेते रहे है जो सरकार के खिलाफ हैं और जिनमें

जातीय-विद्वेष बढता है। अबतक वहा के चीफ-कमिश्नर ने उनके सहयोग के लिए जितनी बार भी कोशिश की उसका उन्होने कोई खयाल नही किया और प्रधानमत्री की घोषणा को अस्वीकार कर वह यह एलान कर रहे है कि वह तो पूरी आजादी चाहने-वालो में है। अब्दुलगफ्फारखा ने ऐसे बहुत-से भाषण दिये है जिनसे जनता को क्रान्ति के लिए उभारने के सिवा और कोई मानी नही निकल सकते। उनके अनुयायियो ने भी सीमान्त जातियो मे उपद्रव खडे करने की कोशिशें की है। उस प्रान्त के चीफ-कमिश्नर ने वाइसराय की सरकार की इजाजत से हद दर्जे की सहन-शीलता दिखाई है और आखिर तक इस बात की कोशिश की है कि जैसी कि सम्राट् की सरकार की मन्शा है, सीमान्त-प्रदेश मे बिना देरी के सुधार जारी करे और उसमें अब्दुलगफ्फारखा की सहायता प्राप्त करें। सरकार ने तबतक कोई खास कार्रवाई नही की जबतक कि अब्दुलगफ्फारखा तथा उनके साथियो की हलचलें और खास तौर पर सरकार से जल्दी-से-जल्दी लडाई शुरू करने की उनकी तैयारियो ने प्रान्त की तथा सीमान्त जातियो के प्रदेश में शान्ति को खतरे में नही डाल दिया। अब ठहरे रहना असम्भव था। वाइसराय महोदय को यह मालूम हुआ है कि पिछले अगस्त मे सीमाप्रान्त में काग्रेस-आन्दोलन का मार्ग-दर्शन करने का काम अब्दुलगफ्फारखा के सुपुर्द कर दिया गया है। उनके द्वारा सगठित किये गये स्वयसेवक-दलो को भी महासमिति ने काग्रेस के अधीन मान लिया है। वाइसराय महोदय की इच्छा है कि मैं आपसे यह साफ कह दू कि देश म शान्ति और व्यवस्था की रक्षा करने की जिम्मेवारी उनके सिर पर है और इसलिए वह उन आदमियो या सस्थाओ से कोई सरोकार नही रख सकते जो ऊपर बताये कामो और हलचलो के लिए जिम्मेदार है। खुद आप तो गोलमेज परिषद् के काम से बाहर गये हुए थे और आपने गोलमेज-परिषद् मे जो रुख अख्तियार किया था उसे देखते हुए वाइसराय महोदय यह विश्वास नही करना चाहते कि खुद आपका इसमे कोई हाथ रहा हो या आप इसमें जिम्मेवार हो या इधर सीमा-प्रान्त में और युक्त-प्रान्त में काग्रेस ने जो जो आन्दोलन जारी कर रक्खे हैं उन्हें आप पसन्द भी करते हो। अगर यह ठीक हो तब तो वह आप से कह सकते है, और गोलमेज-परिषद् मे जिस सहयोग की भावना से सब काम हुआ था उसी भावना की रक्षा करने के लिए आप किस प्रकार अपने प्रभाव का उपयोग कर सकते हैं, इस विषय में वाइसराय महोदय अपने विचार आपके सामने रख सकते हैं। पर एक बात वह साफ कर देना चाहते हैं। सम्राट् की सरकार की पूरी इजाजत से जो आर्डिनेन्स बगाल, युक्तप्रान्त और पश्चिमोत्तर सीमा-प्रान्त में जारी करना जरूरी समझा गया है, उनके बारे में किसी प्रकार की बहस करने के लिए वह

तैयार नही है। जिस उद्देश से, अर्थात् कानून और व्यवस्था की रक्षा जो सुशासन के लिए जरूरी चीजें है, ये आर्डिनेन्स जारी किये है, वह जबतक पूर्ण नही हो जाता, तबतक हर हालत में वे जारी रहने ही चाहिएँ। आपका जवाब मिल जाने पर वाइसराय महोदय इन तारो को प्रकाशित कर देना चाहते है।"

(३) वाइसराय के प्राइवेट सेक्रेटरी के नाम गांधीजी का तार (१ जनवरी १९३२)

"मेरे २९ दिसम्बर के तार के जवाब में, वाइसराय महोदय का, जो तार आया उसके लिए उन्हें धन्यवाद। उसे पढकर दु ख हुआ। मैंने अत्यन्त मित्र-भाव से जो प्रस्ताव रक्खा था, उसे जिस तरह वाइसराय महोदय ने अस्वीकार किया वह उनके जैसे उच्च पदाधिकारी को शोभा नही देता। मैंने एक ऐसे आदमी की हैसियत से उनका दरवाजा खटखटाया था, जिसको कुछ प्रश्नो पर प्रकाश की जरूरत थी। मै कुछ अत्यत गम्भीर और असाधारण मामलो मे, जिनका कि उल्लेख मैंने किया था, सरकार का पक्ष समझना चाहता था। मेरे सद्भाव का स्वागत करने के बजाय, वाइसराय महोदय ने उसे अस्वीकार किया और मुझसे चाहा कि मै अपने अनमोल साथियो के कार्यों का पहले ही से खण्डन करूँ। फिर ऐसे अपमानजनक आचरण का अपराधी बनकर मै मिलना चाहूँ तो उस समय भी मुझसे कहा जाता है कि राष्ट्र के लिए इतना भारी महत्त्व रखनेवाली इन बातो पर उनसे बातचीत तक नहीं कर सकता।

मेरा तो खयाल है कि इन आर्डिनेन्सो और कानूनो के रहते हुए, जिनका कि अगर दृढ़ता के साथ प्रतिकार नही किया गया तो देश का भारी पतन होगा, यह विधान-सम्बन्धी बात न-कुछ-सी हो जाती है। मै आशा करता हूँ कि कोई भी स्वाभिमानी भारतीय एक सदेहास्पद विधान-सम्बन्धी सुधार को हासिल करने के लिए राष्ट्रीय भावना की हत्या करने का खतरा अपने सिर पर नही उठावेगा। क्योंकि तब तो इन विधानो को अमल में लाने जितना प्राण ही राष्ट्र में नही रह जायगा।

अब सीमा-प्रान्त की बात लीजिए। आपके तार में जो बातें है उनको देखते हुए यह साफ नजर आता है कि प्रान्त के लोकप्रिय नेताओ को गिरफ्तार करने, अनिरिक्त कानून जारी करने, जिसने कि लोगो की जानो-माल की रक्षा का कोई ठिकाना नहीं रह गया, और अपने विश्वासपात्र नेताओ की गिरफ्तारी पर प्रदर्शन करनेवाले निहत्थे लोगो पर गोलिया चलाने का कोई सबल कारण नहीं था। अगर खानसाहब अब्दुल-गफ्फारखां ने पूरी आजादी का दावा किया तो वह स्वाभाविक ही था। स्वय कांग्रेस ने

सन् १९२९ में, लाहौर में, यही दावा किया था और उसे कोई सजा नही दी गई। मैंने भी लन्दन में ब्रिटिश-सरकार के सामने इस दावे को जोर के साथ पेश किया था। इसके अलावा वाइसराय महोदय को मै यह भी याद दिला दू कि काग्रेस ने मुझे जो आज्ञा दी थी उसमे भी यह दवा था और सरकार इस बात को जानती थी, फिर भी लन्दन की परिषद् में मुझे काग्रेस के प्रतिनिधि की हैसियत से निमन्त्रित किया गया था। फिर मेरी समझ में नही आता कि महज एक दरबार में हाजिर रहने से इन्कार कर देना ऐसा कौन अपराध हो गया, जिससे वह एकाएक गिरफ्तार होने के पात्र समझे गये ? अगर खानसाहब जातीय-विद्वेष की आग को बढा रहे थे, तो सचमुच दु:खदाई बात है। पर मेरे पास तो उनके ऐसे वचन है जो इस आरोप के खिलाफ पडते हैं। फिर भी थोडी देर के लिए मान लें कि उन्होने जातीय-विद्वेष की आग भडकाई, तो उस हालत में उनकी खुली जाच होनी चाहिए, जिससे कि इस आरोप के प्रतिवाद का उन्हें मौका मिलता।

युक्तप्रान्त के बारे में वाइसराय महोदय को मिली हुई खबर गलत है। क्योकि काग्रेस ने वहा पर लगान-बन्दी की आज्ञा ही जारी नही की, बल्कि सरकार और काग्रेस के प्रतिनिधियो के बीच इस सम्बन्ध की बातचीत चल रही थी कि लगान वसूल करने का समय आ गया और लगान तलब किया जाने लगा, इसलिए काग्रेसवालो को लोगो से यह कहना पडा कि जबतक सरकार से इस सम्बन्ध में जो बातचीत चल रही है उसका कोई नतीजा नही निकल जाता तबतक वे अपने लगानो को रोक रक्खें। श्री शेरवानी ने तो यह भी कहा था कि अगर इस बातचीत का नतीजा निकलने तक सरकारी अफसर लगान-वसूली मुल्तवी रक्खें, तो वह भी जनता को दी गई सलाह वापस लेने को तैयार हैं। मै तो यह कहूँगा कि यह ऐसी बात नही थी जिसको यो ही उडा दिया जाय, जैसा कि वाइसराय महोदय ने अपने तार में किया है। युक्त-प्रान्त की यह शिकायत बहुत अर्से से चली आ रही है और उसमें ऐसे लाखो किसानो के हित का सवाल है जिनकी माली हालत बहुत ही खराब है। कोई भी सरकार, जिसे अपने द्वारा शासित जनता के कल्याण की परवाह है, काग्रेस-जैसी सस्था-द्वारा दिये गये स्वेच्छा-पूर्वक सहयोग का स्वागत ही करती, जिसका कि जनता पर बहुत भारी प्रभाव है और जिसकी एकमात्र महत्त्वाकाक्षा ईमानदारी के साथ जनता की सेवा करना है। और मुझे यह भी कहने दीजिए कि जिस प्रजा ने अपने ऊपर डाले गये असहनीय आर्थिक बोझे को दूर करने के लिए और तमाम उपायो को आजमा लिया है, और उन्हें निष्फल पाया हो, तो उसका यह सनातन और स्वाभाविक हक है कि वह अपने लगान को मौका पडने पर

रोक लें। आपके तार में जो यह बात है कि कांग्रेस किसी भी रूप में जरा भी अव्यवस्था फैलाना चाहती है, उसका मैं प्रतिवाद करता हूँ।

बगाल के विषय में, जहा तक हत्याओ की निन्दा से सम्बन्ध है, कांग्रेस सरकार के साथ है। और ऐसे जुर्मों को बिलकुल रोक देने के लिए जिन उपायो का अवलम्बन जरूरी समझा जाय, कांग्रेस उनमे भी हृदय से सहयोग देना पसन्द करेगी। परन्तु जहा कांग्रेस आतंकवाद की सम्पूर्ण निन्दा करती है, वहा किसी भी हालत मे सरकारी आतंकवाद का साथ नही दे सकती, जैसा कि बगाल-आर्डिनेन्स और उसके सिलसिले में किये गये दूसरे कार्यों से प्रकट होता है। बल्कि कांग्रेस तो अपनी अहिंसा की मर्यादा के अन्दर रहते हुए सरकारी आतंकवाद के ऐसे कार्यों का प्रतिकार भी करेगी। आपके तार मे लिखा है कि सहयोग दोनो तरफ से हो। मै इस प्रस्ताव को हृदय से मानता हूँ। पर तार में लिखी दूसरी बातें तो मुझे इसी नतीजे पर बरबस ले जाती हैं कि वाइसराय महोदय कांग्रेस से तो सहयोग चाहते हैं पर उसके बदले में सरकार की तरफ से कोई सहयोग देना नही चाहते। आपने जो इन बातो पर बातचीत करने से ही इन्कार कर दिया, इसका मैं दूसरा अर्थ लगा ही नही सकता। क्योकि जैसा कि मैंने बताने की कोशिश की है, इन महत्त्वपूर्ण प्रश्नो के कम-से-कम दो पहलू तो हैं ही। लोकपक्ष, जैसा मैं समझता हूँ, मैंने पेश किया है, परन्तु किसी भी पक्ष में अपनी राय कायम करने से पहले मैं दूसरे अर्थात् सरकारी पक्ष को समझ लेना चाहता था और उसके बाद कांग्रेस को अपनी सलाह देने की इच्छा थी।

तार के आखिरी पैराग्राफ का जवाब यह है कि अपने साथियो के, चाहे सीमा-प्रान्त के हो या युक्त-प्रान्त के, कार्यों की नैतिक जिम्मेवारी से मैं अपने-आपको बरी नही समझता। पर मै यह कबूल करता हूँ कि मेरे साथियो के कार्यों की और हलचलो की तफसीलवार जानकारी मुझे नही है, क्योकि मैं भारत में नही था। और चूकि कांग्रेस की कार्य-समिति को अपनी राय देकर मार्ग-प्रदर्शन करना मेरे लिए जरूरी था, मैंने निष्पक्ष भाव से और बहुत सद्भाव के साथ वाइसराय महोदय से मिलना और मार्ग-दर्शन चाहा। मैं वाइसराय महोदय से अपनी यह राय नही छिपा सकता कि उन्होंने जो जवाब भेजने की कृपा की है वह मेरे सद्भाव और मित्रता-पूर्ण प्रस्ताव का पर्याप्त उत्तर नही है। अगर अब भी वाइसराय महोदय चाहें तो मै उनसे कहूँगा कि वह अपने निर्णय पर पुनर्विचार करें और हमारी बातचीत पर, उसके विषय-क्षेत्र पर, बगैर कोई शर्तें लगाये मुझसे मिलना स्वीकार करें। अपनी तरफ से मैं यह वचन दे सकता हूँ कि वह जो भी बातें मेरे सामने रक्खेंगे उनपर मैं निष्पक्ष होकर विचार करूँगा। बगैर किसी

हिचकिचाहट के और खुशी के साथ मैं उन-उन प्रान्तो मे जाऊँगा और अधिकारियो की सहायता से प्रश्न के दोनों पहलुओ का अध्ययन करूँगा, और अगर पूरे अध्ययन के बाद मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि लोग गलती पर हैं और कार्य-समिति तथा मैं भी गुमराह हो गये हैं, और सरकार का ही पक्ष ठीक है, तो इस बात को स्वीकार करने में और तदनुसार कांग्रेस को रास्ता बताने मे मुझे कोई हिचकिचाहट न होगी। सरकार के साथ सहयोग करने की मेरी इच्छा और खुशी के साथ ही वाइसराय महोदय के सामने मैं अपनी मर्यादा भी रख दूं। अहिंसा मेरा पहला आचार-धर्म है। मेरा विश्वास है कि सविनय-अवज्ञा जनता का केवल जन्म-सिद्ध अधिकार ही नही है--और खासकर उस हालत मे जब अपने शासन में उसका कोई हाथ न हो--बल्कि वह हत्या और सशस्त्र बगावत का सफलता-पूर्वक स्थान भी ले सकती है। इसलिए मैं कभी आचार-धर्म को अलग नहीं रख सकता। उसके पालन के लिए, और कुछ ऐसी खबरें मिली हैं जिनका अभीतक कोई खण्डन नही हुआ है, बल्कि भारत-सरकार की हलचलें जिनका समर्थन करती हैं और शायद जिनके परिणाम-स्वरूप जनता का मार्ग-दर्शन करने का मुझे आगे कोई मौका न मिले, कार्य-समिति ने मेरी सलाह से सविनय-अवज्ञा-सम्बन्धी एक तात्कालिक प्रस्ताव स्वीकार किया है, उसकी नकल मैं भेजता हूँ। अगर वाइसराय महोदय समझें कि मुझसे मिलने में कुछ उपयोगिता है तो हमारी बातचीत खतम होने तक, इस आशा से कि आगे चलकर, यह रद कर दिया जायगा, यह प्रस्ताव मुल्तवी रहेगा। मैं मानता हूँ कि हमारे बीच का यह तार-व्यवहार सचमुच इतना महत्त्वपूर्ण है जिसके प्रकाशन में जरा भी देरी न होनी चाहिए। इसलिए मैं अपना तार, आपका जवाब, यह प्रत्युत्तर और कार्य-समिति का प्रस्ताव सब प्रकाशन के लिए भेज रहा हूँ।"

कार्य-समिति का प्रस्ताव

"कार्य-समिति ने महात्मा गाधी की यूरोप-यात्रा का हाल सुना और बंगाल, युक्तप्रान्त तथा सीमाप्रान्त में जारी किये गये असाधारण आर्डिनेन्सो के कारण देश में पैदा हुई परिस्थिति पर विचार किया। साथ ही सरकारी अधिकारियो-द्वारा जो खान अब्दुलगफ्फारखा, शेरवानी साहब, प० जवाहरलाल नेहरू तथा दूसरे अनेक लोगो की गिरफ्तारियो, और सीमा-प्रान्त में जो निर्दोष लोगो पर गोलिया चलाई गई और जिनकी वजह से कितने ही लोग जान से मारे गये तथा घायल हुए, इन सबके कारण पैदा हुई परिस्थिति पर भी विचार किया। कार्य-समिति ने

महात्मा गांधी के तार के जवाब में वाइसराय-द्वारा भेजे गये तार को भी देख लिया।

कार्य-समिति का यह मत है कि ये तमाम घटनायें और दूसरे प्रान्तो में घटी हुई अन्य छोटी-मोटी घटनाये तथा वाइसराय साहब का तार ये सब सरकार के साथ कांग्रेस का सहयोग तबतक के लिए बिलकुल असम्भव बना रहे है जबतक कि सरकार की नीति में कोई आमूल परिवर्तन नही हो जाता। ये कार्य और वाइसराय का तार स्पष्ट-रूप से प्रकट करते हैं कि नौकरशाही हिन्दुस्तान की जनता के हाथो में यहा की हुकूमत सौंपना नही चाहती बल्कि उनके द्वारा वह उलटे राष्ट्र की तेजस्विता को मिटा देना चाहती है। उनसे यह भी प्रकट होता है कि सरकार एक ओर जहा कांग्रेस से सहयोग की उम्मीद करती है, वहा दूसरी ओर वह उसपर विश्वास भी नही करना चाहती।

बंगाल में हाल ही मे आतकवादी घटनायें हुई है, उनकी निन्दा करने में कांग्रेस किसीसे पीछे नही है। पर साथ ही वह सरकार के द्वारा किये गये आतकवाद की निन्दा भी उतने ही जोर के साथ करती है। सरकार की यह हिंसा हाल ही जारी किये गये आर्डिनेन्सो और कानूनो से प्रकट है। हाल ही कुमिल्ला में दो लड़कियो-द्वारा जो हत्या हुई है उससे राष्ट्र को नीचे देखना पड़ा है, ऐसी कांग्रेस की राय है। ये कार्य ऐसे समय खास तौर पर और भी हानि-कारक है, जब कि देश कांग्रेस के जरिये, जोकि उसकी सबसे बडी प्रतिनिधि सस्था है, स्वराज्य-प्राप्ति के लिए अहिंसा से काम लेने को वचन-बद्ध हो चुकी है। पर कांग्रेस की कार्य-समिति कोई कारण नही देखती कि महज इतनी-सी बात पर, सिर्फ कुछ लोगो के अपराध पर, बगाल-आर्डिनेन्स जैसे अतिरिक्त कानून जारी करके तमाम लोगो को दण्डित किया जाय। इसका असली इलाज तो है इन अपराधो के प्रेरक कारणो का ही, जो कि प्रकट है, इलाज करना।

यदि बगाल-आर्डिनेन्स के अस्तित्व का कोई कारण नही है, तो युक्त-प्रान्त और सीमा-प्रान्त के आर्डिनेन्सो के लिए तो उससे भी कम कारण है।

कार्य-समिति की राय है कि युक्तप्रान्त में किसानो को छूट दिलाने के लिए कांग्रेस-द्वारा अवलम्बित उपाय उचित है और उचित प्रमाणित किये जा सकते हैं। कार्य-समिति का यह निश्चित मत है कि गम्भीर आर्थिक सकटो से पीडित लोग, जैसा कि स्वीकार किया जा चुका है कि युक्तप्रान्त के किसान पीडित है, यदि अन्य वैध साधनो से राहत पाने में असफल हो, जैसे कि वे युक्तप्रान्त में असफल हुए है, तो उन सबका यह निर्विवाद अधिकार है कि वे लगान देना बन्द कर दें। महात्मा गांधी से बातचीत

करने और कार्य-समिति की बैठक में सम्मिलित होने के लिए बम्बई आते हुए युक्त-प्रान्त की प्रान्तीय समिति के सभापति श्री शेरवानी तथा महासभा के प्रधान-मंत्री प० जवाहरलाल नेहरू को गिरफ्तार करके तो सरकार अपने आर्डिनेन्स-द्वारा कल्पित सीमा से भी आगे बढ गई है, क्योकि इन सज्जनो के बम्बई में युक्तप्रान्त के करबन्दी के आन्दोलन में भाग लेने का तो किसी प्रकार कोई प्रश्न था ही नही।

सीमा-प्रान्त के सम्बन्ध में स्वय सरकार की बताई बातो से भी न तो आर्डिनेन्स जारी करने और न खान अब्दुलगफ्फारखा और उनके साथियो को गिरफ्तार करने तथा बिना मुकदमा चलाये जेल में रखने का कोई आधार दिखाई देता है। कार्य-समिति इस प्रान्त में निरपराध और नि शस्त्र लोगो पर की गई गोला-बारी को निष्ठुर और अमानुष समझती है और वहा की जनता को उसके साहस और सहन-शक्ति के लिए, बधाई देती है। कार्य-समिति को जरा भी सन्देह नही है कि यदि सीमाप्रान्त की जनता भारी-से-भारी उत्तेजन दिये जाने पर भी अपनी अहिंसा-वृत्ति को कायम रख सकेगी तो उसके रक्त और उसके कष्ट भारत की स्वतन्त्रता के कार्य को प्रगति पर पहुँचावेंगे।

कार्य-समिति भारत-सरकार से माग करती है कि जिन बातो के कारण ये आर्डिनेन्स पास करने पडे हैं, और सामान्य अदालतो और व्यवस्यातत्र को एक ओर रख देने की और इन आर्डिनेन्सो के अन्तर्गत और बाहर जो कार्रवाइया हुईं, उनके औचित्य के सम्बन्ध में एक खुली और निष्पक्ष जाच करावे। यदि उचित जाच-समिति नियत की जाय, और कार्यसिमिति को गवाह पेश करने की सब सुविधायें दी जायें, तो वह इस समिति के सामने गवाह पेश करके सहायता देने के लिए तैयार रहेगी।

गोलमेज-परिषद् में प्रधानमन्त्री-द्वारा की गई घोषणा और उसपर पार्लमेण्ट की कामन-सभा तथा लॉर्ड-सभा में हुए वाद-विवाद पर कार्य-समिति ने विचार किया, और वह उसे महासभा के दावे की दृष्टि से सर्वथा असन्तोषजनक और अपूर्ण मानती है, और अपना यह मत प्रकट करती है कि पूर्ण स्वाधीनता से, जिसमें राष्ट्र के हित के लिए आवश्यक सिद्ध होनेवाले सरक्षणो के साथ सेना, वैदेशिक सम्बन्ध तथा आर्थिक मामलो पर पूर्ण अधिकार सम्मिलित है, जरा भी कम को काग्रेस सन्तोष-जनक नही मान सकती।

कार्य-समिति देखती है कि गोलमेज-परिषद् में महासभा को राष्ट्र की एकमात्र प्रतिनिधि-सस्था मानने और उसके किसी जाति, धर्म अथवा रग-भेद बिना समस्त राष्ट्र की ओर से बोलने के अधिकार को स्वीकार करने के लिए ब्रिटिश-सरकार तैयार

न थी। साथ ही यह समिति इस बात को दु:ख के साथ स्वीकार करती है कि उक्त परिषद् में साम्प्रदायिक एकता प्राप्त न की जा सकी।

इसलिए कार्य-समिति राष्ट्र को आवाहन करती है कि काग्रेस वास्तव में सम्पूर्ण राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करने की अधिकारिणी है, यह दिखा देने के लिए तथा देश में ऐसा वातावरण उत्पन्न करने के लिए वह अविराम प्रयत्न करे, जिससे कि शुद्ध राष्ट्रीयता के आधार पर रचित विधान राष्ट्र की अगभूत विविध जातियो को स्वीकार्य हो सके।

इस बीच यदि वाइसराय अपने तार पर पुनर्विचार करें, आर्डिनेन्सो तथा हाल के कृत्यो के सम्बन्ध में काफी राहत दी जाय, और भावी विचारो और परामर्श में काग्रेस के लिए अपनी पूर्ण-स्वतन्त्रता का दावा पेश करने की आजादी रहे, और ऐसी स्वतन्त्रता मिलने तक देश का शासन लोक-प्रतिनिधियो की सलाह से चलाया जाय, तो कार्य-समिति सरकार को सहयोग देने के लिए तैयार है।

पूर्वोक्त पैरा में दी गई शर्तों के आधार पर यदि सरकार की ओर से कोई सन्तोषजनक उत्तर न मिले, तो कार्य-समिति इसे सरकार की ओर से दिल्ली के समझौते के रद किये जाने की सूचना समझेगी। सन्तोषजनक उत्तर न मिलने की दशा में कार्य-समिति राष्ट्र को निम्नलिखित शर्तों पर फिर सविनय-अवज्ञा, जिसमें लगान-बन्दी भी सम्मिलित है, आरम्भ करने के लिए आवाहन करती है—

(१) कोई भी प्रान्त, जिला, तहसील अथवा गाव तबतक सत्याग्रह आरम्भ करने के लिए बाध्य नही है, जबतक कि वहा के लोग सग्राम का अहिंसक रूप, उसके सब फलितार्थों-सहित, न समझ लें और कष्ट-सहन तथा जान-माल तक गवाने के लिए तैयार न हो।

(२) यह समझकर कि यह सग्राम आततायी से बदला लेने अथवा उसपर आघात करने के लिए नही वरन् अपने कष्ट-सहन और आत्मशुद्धि-द्वारा हृदय-परिवर्तन के लिए है, भयकर-से-भयकर उत्तेजना मिलने पर भी मन, वचन और कर्म से अहिंसा का पालन अवश्य होना चाहिए।

(३) सरकारी अधिकारियो, पुलिस अथवा राष्ट्र-विरोधियो को हानि पहुँचाने की दृष्टि से किसी भी दशा में सामाजिक बहिष्कार नही किया जाना चाहिए। अहिंसा-वृत्ति के यह सर्वथा विरुद्ध है।

(४) यह बात ध्यान मे रखना चाहिए कि अहिंसात्मक सग्राम में आर्थिक सहायता की अपेक्षा नही हुआ करती, इसलिए उसमें वेतन पर रक्खे गये स्वयसेवक

न होने चाहिएँ, किन्तु केवल उनके निर्वाह-मात्र के और जहा सम्भव हो वहा सग्राम में जेल जानेवाले अथवा मारे गये गरीब स्त्री-पुरुषो के आश्रितो के गुजारे-लायक खर्च दिया जा सकता है।

(५) सब स्थिति में, ब्रिटिश अथवा अन्य देश के, सब प्रकार के विदेशी वस्त्र का बहिष्कार आवश्यक है।

(६) सब काग्रेसवादी स्त्री-पुरुषो से, देशी मिलो तक का कपडा न पहनकर, हाथ की कती-बुनी खादी के ही व्यवहार की अपेक्षा की जाती है।

(७) शराब और विदेशी वस्त्रो की दूकानो पर मुख्यत स्त्रियो को ही जोरो से, किन्तु सदैव अहिंसा का पालन करते हुए, पिकेटिंग करना चाहिए।

(८) गैर-कानूनी नमक बनाने और बटोरने का काम फिर जारी करना चाहिए।

(९) यदि जुलूस और प्रदर्शनो की व्यवस्था की जाय, तो उनमें केवल वही लोग शरीक हो, जो अपनी-अपनी जगहो से जरा भी हिले बिना लाठी-प्रहार और गोलिया सहन कर सकें।

(१०) अहिंसात्मक सग्राम में भी उत्पीडक-द्वारा तैयार माल का बहिष्कार करना सर्वथा विहित है, क्योकि अत्याचार के शिकार व्यक्तियो का यह कभी धर्म नही है कि वे आततायी के साथ व्यापारिक सम्बन्ध बढावें अथवा कायम रक्खें। इसलिए ब्रिटिश माल और ब्रिटिश कम्पनियो का बहिष्कार पुन आरम्भ किया जाय और जोरो से चलाया जाय।

(११) जहा-जहा सम्भव और उचित समझा जाय, अनैतिक कानूनो और जनता को हानि पहुँचानेवाली आज्ञाओ का सविनय भग किया जाय।

(१२) आर्डिनेन्सो के अन्तर्गत जारी हुई प्रत्येक अनुचित आज्ञाओ का सविनय भग किया।"

(४) गाधीजी के दूसरे तार के उत्तर में, २ जनवरी की शाम को, वाइसराय के प्राइवेट-सेक्रेटरी ने नीचे लिखा तार भेजा—

"वाइसराय ने मुझे आपके १ जनवरी के तार की स्वीकृति भेजने के लिए कहा है, जिसपर उन्होने तथा उनकी सरकार ने विचार कर लिया है। उन्हें इस बात का अत्यन्त खेद है कि आपकी सलाह से काग्रेस-कार्य-समिति ने ऐसा प्रस्ताव पास किया है, जिसमें यदि आपके तार और उक्त प्रस्ताव में बताई गई शर्तें पूरी न की गई तो सविनय अवज्ञा के पुन. पूरी तौर पर जारी कर दिये जाने की बात है।

प्रधान-मन्त्री के वक्तव्य के अनुसार वैध शासन-सुधार की नीति को शीघ्र आरम्भ करने की सम्राट्-सरकार तथा भारत-सरकार की घोषित इच्छा के होते हुए हम इस व्यवहार को विशेष खेदजनक समझते है।

अपने उत्तरदायित्व का खयाल रखनेवाली कोई भी सरकार किसी भी राजनैतिक संस्था की गैर-कानूनी कार्रवाई की धमकी-युक्त शर्तों को स्वीकार नही कर सकती, न भारत-सरकार आपके तार में गर्भित इस स्थिति को ही स्वीकार कर सकती है कि, दिल्ली के समझौते पर पूरी सावधानी और पूरे ध्यान से विचार करने और अन्य सब सम्भव उपायो के समाप्त हो जाने के बाद, सरकार ने जिन उपायो का अवलम्बन किया है उनके औचित्य का आधार आपके निर्णय पर होना चाहिए।

वाइसराय महोदय और उनकी सरकार इस बात पर मुश्किल से ही विश्वास कर सकते है, कि आप अथवा कार्य-समिति समझती है कि सविनय-अवज्ञा के पुनरारम्भ की धमकी पर वाइसराय महोदय किसी लाभ की आशा से आपको मुलाकात के लिए बुला सकते है।

कांग्रेस ने जिन उपायो के अवलम्बन का इरादा जाहिर किया है, उसके सब परिणामो के लिए हम आपको और कांग्रेस को उत्तरदायी समझेंगे और उनको दबाने के लिए सरकार सब आवश्यक अस्त्रो का अवलम्बन करेगी।"

(५) वाइसराय के उक्त तार के उत्तर में गांधीजी ने, ३ जनवरी १९३२ को निम्न तार भेजा—

"आपके तार के लिए धन्यवाद। मै आपके और आपकी सरकार के निर्णय के प्रति हार्दिक खेद प्रकट किये बिना नही रह सकता। प्रामाणिक मत-प्रदर्शन को धमकी समझ लेना अवश्य ही भूल है। क्या मै सरकार को याद दिलाऊँ कि सत्याग्रह के जारी रहते हुए ही दिल्ली की सन्धि-चर्चा आरम्भ हुई और चलती रही थी, और जिस समय समझौता हुआ उस समय सत्याग्रह बन्द नही कर दिया गया था वरन् स्थगित किया गया था? मेरे लन्दन जाने के पहले, गत सितम्बर में, शिमला में इस बात पर दुबारा जोर दिया गया था और आपने तथा आपकी सरकार ने इसे स्वीकार किया था। यद्यपि मैने उस समय यह बात स्पष्ट कर दी थी, कि सम्भव है कुछ हालतो में कांग्रेस को सत्याग्रह जारी करना पड़े, तो भी सरकार ने बातचीत बन्द न की थी। सरकार ने उस समय बताया था कि सत्याग्रह के साथ कानून-भंग के लिए सजा भी लगी रहती है, इस बात से यही सिद्ध होता था कि सत्याग्रहियो ने यह सौदा किस लिए किया है, किन्तु इससे मेरी दलील पर कुछ असर नही होता।

यदि सरकार इस रवैये के विरुद्ध थी, तो उसके लिए यह खुला था कि वह मुझे लन्दन न भेजती। किन्तु इसके विपरीत मेरी विदाई पर आपने शुभकामना प्रदर्शित की थी।

न यही कहना न्याय्य और सही है कि मैने कभी इस बात का दावा किया है कि सरकार की कोई भी नीति मेरे निर्णय पर निर्भर रहनी चाहिए।

लेकिन मै यह बात अवश्य कहना चाहता हूँ कि कोई भी लोकप्रिय वैध-सरकार अपने उन कृत्यो और आर्डिनेन्सो के सम्बन्ध में, जिन्हें कि लोकमत पसन्द नही करता, सार्वजनिक सस्थाओ और उनके प्रतिनिधियो की सूचनाओ का सदैव स्वागत करती, उनपर सहानुभूति-पूर्वक विचार करती तथा अपने पास की सब सूचनाओ अथवा जानकारी से उनकी सहायता करती।

मै यह दावा करता हूँ कि मेरे सन्देश का मैने पिछले पैरे मे जो अर्थ बताया है उसके सिवा और कोई अर्थ नही है। समय ही बतलायेगा कि किसने सच्ची स्थिति ग्रहण की थी। इस बीच मै सरकार को विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि काग्रेस की ओर से सग्राम को सर्वदा द्वेष-रहित तथा सर्वथा अहिंसापूर्ण तरीके से चलाने का पूरा प्रयत्न किया जायगा।

आपको मुझे यह याद दिलाने की कोई आवश्यकता न थी कि अपने कार्यो के लिए काग्रेस और उसका एक विनम्र प्रतिनिधि, मै, जिम्मेवार होगे।"

बेन्थल का गश्ती-पत्र

सुविधा के लिहाज से हमने इन सब तारो को एक-साथ दे दिया है, वैसे ये सब है छ दिन की घटनायें। ३० दिसम्बर को मि० बेन्थल गाधीजी से मिले और काफी देर तक बातचीत की। यह गोलमेज-परिषद् में हिन्दुस्तान के व्यापारिक प्रतिनिधि के रूप में शरीक हुए थे। और इसमें तो कोई सन्देह ही नही कि व्यापारी-समुदाय के लिए गाधीजी की हलचल भयोत्पादक थी और बाद की घटनाओ एव अनुभवो ने यह सिद्ध कर दिया कि राष्ट्र के हाथो में बहिष्कार एक बडा हथियार है। इन मि० बेन्थल तथा इनके राज-भक्त साथियो ने ऐसी भाषा में अपने विचार प्रकट किये जिनकी तीक्ष्णता, इतने समय के बाद भी, बिलकुल कम नही हुई है। इन लोगो ने जो 'गुप्त' गश्ती-पत्र प्रचारित किया, उसके कुछ उद्धरण नीचे दिये जाते है —

"अगर सम्भव हो तो कोई समझौता करने के इरादे के साथ हम लन्दन गये थे, लेकिन इसके साथ ही इस बात के लिए भी हम दृढ-निश्चय थे कि आर्थिक और

व्यापारिक सरक्षणो के बारे में (यूरोपियन) असोशिएटेड चैम्बर्स ऑफ कॉमर्स ने जो नीति निश्चित की है और यूरोपियन-असोसिएशन ने जो सामान्य-नीति तय की है उसके किसी मूलभूत अश को नही छोडेंगे। यह हम अच्छी तरह जानते थे, और परिषद् के समय भी हमेशा हमारे दिमाग में यह बात रही है, कि जो सरक्षण पेश किये जा चुके है उनकी काट-छाट करने का काग्रेस, हिन्दू-सभा और (भारतीय) फेडरेटेड चैम्बर्स ऑफ कॉमर्स की सम्मिलित शक्ति के साथ प्रयत्न किया जायगा ।

"इस पिछले अधिवेशन के परिणामो पर अगर आप नजर डालें तो, आप देखेंगे कि गाधीजी और (भारतीय) फेडरेटेड चैम्बर्स एक भी ऐसी बात नही बतला सकते जो गोलमेज-परिषद् में उनके जाने के फल-स्वरूप ब्रिटिश-सरकार की ओर से बतौर रिआयत उनके साथ की गई हो। वह तो खाली हाथ ही हिन्दुस्तान लौटे हैं।

"एक और भी घटना ऐसी हुई है जो उनके लिए अच्छी साबित नही हुई। साम्प्रदायिक-समस्या को हल करने का उन्होने जिम्मा लिया, लेकिन सारी दुनिया के सामने उन्हें असफल होना पडा ।

"मुसलमानो का दल बहुत ठोस और मजबूत रहा। यहा तक कि राष्ट्रीय मुसलमान कहे जानेवाले अलीइमाम भी उससे बाहर नही गये। शुरू से आखीर तक बडी होशियारी के साथ मुसलमानो ने खेल खेला। हमारा समर्थन करने का उन्होंने वादा किया था, जिसे उन्होने पूरी तरह निभाया। बदले में उन्होंने हमसे कहा कि आर्थिक दृष्टि से बगाल में उनकी जो बुरी हालत है उसपर हम ध्यान दें। उनकी 'ज्यादा लल्लो-चप्पो करने की तो जरूरत नही', पर अग्रेजी फर्मों में हमें उनको जगह देने का प्रयत्न करना चाहिए, जिससे वे अपनी माली हालत और अपनी जाति की सामान्य स्थिति को ठीक कर सकें।

"ब्रिटिश-राष्ट्र और हिन्दुस्तान में रहनेवाले अग्रेजो की, कुल मिलाकर, एक ही नीति है, और वह यह कि सोच-समझकर हम एक राष्ट्रीय नीति निश्चित करें और फिर उसपर जमे रहें। लेकिन (पार्लमेण्ट के) आम चुनाव के बाद सरकारी नरम-दल ने (गोलमेज) परिषद् को असफल करने और उसका तथा काग्रेस का विरोध करने का निश्चय कर लिया। मुसलमान लोग, जो कि केन्द्र में उत्तरदायित्व नही चाहते इस बात से खुश हुए। सरकार ने तो निश्चित-रूप से अपनी नीति बदल ली और केन्द्रीय सुधारों के आश्वासन के साथ प्रान्तीय-स्वराज्य पर ही मामला टालने की कोशिश की। हमें यह भी निश्चय हो गया था कि काग्रेस के साथ लडाई अनिवार्य है, सब इसे महसूस किया और कहा कि जितनी जल्दी यह शुरू हो जाय उतना ही अच्छा है।

लेकिन इसके साथ ही हमने यह भी सोच लिया कि इसमें पूरी सफलता तभी मिल सकती है जबकि जितने हो सकें उन सब मित्रो को अपने पक्ष में कर लें। मुसलमान तो हमारे साथ थे ही, जैसा कि अल्पसख्यक-समझौते और मुसलमानो के प्रति सरकार के सामान्य रुख से स्पष्ट था। यही हाल राजाओ और दूसरी अल्पसख्यक जातियो का था।

"हमें यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि सर सप्रू, जयकर, पैटरो आदि के समान सर्व-साधारण हिन्दुओ को अपनी ओर मिलाया जाय। अगर हम उन्हे काग्रेस के खिलाफ खडा न कर सकें तो कम-से-कम ऐसा तो कर ही सकते है कि जिससे वे काग्रेस का साथ भी न दें। और यह कोई मुश्किल बात भी नही है, इसके लिए उन्हें सिर्फ यही विश्वास कराने की आवश्यकता है कि सघ-योजना को नही छोडा जायगा, जिसे कि मोटे तौर पर अग्रेज भी स्वीकार कर चुके थे। अस्तु, इसीके अनुसार हमने काम किया। हमने सरकार से आग्रह किया कि वह प्रान्तीय और केन्द्रीय-विधानो को एक-साथ उपस्थित करे, जिसे ये लोग सरकार की ईमानदारी और सद्भाव का ठोस नमूना समझेगे और इनका सन्तोष हो जायगा। जहातक प्रान्तीय-स्वराज्य का सम्बन्ध है, वह हिन्दुस्तान पर जबरदस्ती नही लादा जा सकता, क्योकि अकेले मुसलमान उसे नही चला सकते। काग्रेसी प्रान्तो और दृढ भारत-सरकार का मुकाबला बडी भारी राजनैतिक कठिनाइया उत्पन्न करेगा, क्योकि हरेक प्रान्त एक-एक कलकत्ता-कारपोरेशन बन जायगा। अत (इस स्थिति को बचाने के लिए) हमने अजीब नये-नये साथी जोडे। फलत बजाय इसके कि परिषद् व वाद-विवाद बीच में ही भग हो जाते और राजनैतिक विचारो के १०० फी सदी हिन्दू हमारे विरोधी बनते, परिषद् में आये ९९ फी सदी व्यक्तियो के, जिनमें मालवीयजी जैसे लोग भी शामिल हैं, सहयोग के आश्वासन के साथ वे समाप्त हुए, अलबत्ता गाधीजी स्टैण्डिग कमिटी में शामिल होने के लिए रजामन्द नही हुए ।

"मुसलमान तो अग्रेजो के पक्के दोस्त ही हो गये हैं। अपनी परिस्थिति से उन्हें पूरा सन्तोष है और वे हमारे साथ काम करने के लिए तैयार हैं।

"लेकिन यह हरगिज न समझ लेना चाहिए कि जब हम यह कहते है कि सुधारो का होना जरूरी है तो हम हरेक प्रान्त में जन-तन्त्रीय सुधारो का ही प्रतिपादन करते हैं। हम जो-कुछ कहते हैं उसका अर्थ शासन-पद्धति मे ऐसे हेर-फेर करना भर है, जिससे कि उसकी सुचारुता बढ जाय।"

मजदूर सरकार ने अपनी घोषणा में भारत को जो-कुछ देने का वचन दिया था उसके उद्देश को नष्ट करने की टोरी (कजरवेटिव) सरकार और उसके साथियो

ने कैसी चेष्टा की, यह इन उद्धरणो से भलीभाति मालूम हो जाता है, लेकिन यह विश्वास करना गलत होगा कि उन्नति-विरोधी मुसलमानो के, जोकि अपने थोडे-से स्वार्थों के लिए[1] अपने देश को बेचने के लिए तैयार थे, और हिन्दुस्तानियो को हमेशा गुलाम बनाये रखने के इच्छुक उन्नति-विरोधी ब्रिटिशो के बीच जो समझौता हुआ, वह एकाएक ही हो गया। उसकी नीव तो गोलमेज-परिषद् के दूसरे अधिवेशन से कही पहले हिन्दुस्तान और इग्लैण्ड दोनो जगह रक्खी जा चुकी थी। सच तो यह है कि जब गाधीजी और लॉर्ड अर्विन के बीच समझौता हुआ तो उसके बाद ही भारत में उन सब उन्नति-विरोधी लोगो ने, जो समझौते को पसन्द नही करते थे, शीघ्रता के साथ अपनी शक्तियो को सगठित किया और भारतीय राष्ट्रवादियो को शिकस्त देने के लिए अपना सम्मिलित गुट बना लिया था। इस षड्यत्र की आशिक रचना तो शिमला में ही हुई थी, जोकि भारत-सरकार का सदर-मुकाम है।

गांधीजी पकड़े गये

मि० इमर्सन और लॉर्ड विलिगडन ने जो चुनौती दी थी उसे कार्य-समिति ने स्वीकार कर लिया। इसके बाद कार्य-समिति के सदस्य अपने-अपने स्थानो को लौट गये। लेकिन उन्होने अपनेको ऐसी परिस्थिति में पाया कि कुछ कर नही सकते थे। वस्तुत सरकार ने वही से लडाई को फिर से ग्रहण किया जहा पर कि ४ मार्च १९३१ को उसे छोडा गया था। अस्थायी-सधि के दर्मियान उसने हजारो लाठिया और एकत्र करली थी। सच तो यह है कि अस्थायी-सधि का अवसर सरकार के लिए नये सिरे से लड़ाई लडने की तैयारी करने का समय था, जिसका कि अस्थायी-सधि के दर्मियान प्राय किसी भी महीने नही तो गाधीजी की वापसी पर तो टूटना निश्चित ही था। तीन आर्डिनेन्स तो जारी कर ही दिये गये थे, और कई जब भी जरूरत हो तुरन्त जारी कर-देने के लिए वाइसराय की जेब में रक्खे हुए थे। ४ जनवरी १९३२ को सरकारी प्रहार शुरू हो गया। काग्रेस की तथा उससे सम्बन्धित हरेक सस्था को गैर-कानूनी करार दे दिया गया और काग्रेसी लोग, कानून या आर्डिनेन्सो के, जोकि गैर-कानूनी

---

[1] गोलमेज-परिषद् के समय की गई सेवाओ के पुरस्कार-स्वरूप अपनेको भारत के किसी प्रदेश का राजा बनाने की सर आगाखा की माग से, जिसका कि हाल ही में असेम्बली में रहस्योद्घाटन हुआ, इस सौदे का नग्न-स्वरूप बडे वीभत्स रूप में सामने आया है।

कानून कहलाने लगे थे, खिलाफ कोई प्रत्यक्ष कार्य करें या नही, उन्हें गिरफ्तार कर-कर के जेलो में भेजा जाने लगा। काग्रेस को सब-कुछ नये सिरे से शुरू करना पडा। सरकारी लाठी-प्रहार पहले आन्दोलन (१६३०) के समय शुरू में नही बल्कि बाद में जारी हुआ था, लेकिन १६३२ में सत्याग्रहियो को सबसे पहले उसीका मुकाबला करना पडा। चारो तरफ यह बात फैल रही थी कि लॉर्ड विलिगडन सारे उत्पात को छ सप्ताह मे ही खतम कर देने की आशा रखते है। लेकिन छ सप्ताह का समय इतना कम था और सत्याग्रह ऐसी लम्बी लडाई है कि उनकी आशा पूर्ण नही हुई।

गाधीजी गुजरात के उन ताल्लुको मे जाने का इरादा कर रहे थे, जिन्हे १६३० की लडाई में बहुत कष्ट उठाना पडा था। लेकिन पेश्तर इसके कि वह वहा जायें, उन्हें और उनके विश्वस्त सहायक वल्लभभाई को ४ जनवरी १६३२ के बड़े सवेरे गिरफ्तार करके शाही कैदी बना दिया गया। खानसाहब और जवाहरलालजी पहले ही गिरफ्तार हो चुके थे। अब जो भारतीय-राजनीतिज्ञ बाकी बचे थे उन्हीको लडाई का सचालन करना पडा। हजारो की तादाद में सत्याग्रही मैदान में आये। १६२१ में उनकी सख्या तीस हजार थी, जो एक बडी तादाद मानी गई थी। १६३०–३१ मे, दस महीनो के थोडे-से समय में ही, नब्बे हजार स्त्री-पुरुष और बच्चे दोषी करार देकर जेलो में ठूस दिये गये। यह कोई नही जानता कि मार कितनो पर पडी, लेकिन जितनो को कैद की सजा हुई थी पिटनेवालो की सख्या उनसे ३ या ४ गुनी ज्यादा तो होगी ही। लोगो को या तो पीटते-पीटते किसी काम के लायक ही न रहने दिया गया, या छिपने और घर दबोचने की नीति से उन्हें थका दिया गया। जेलो में कैदियो की पिटाई फिर शुरू हो गई। काग्रेस के दफ्तर की जो गुप्त या खानगी बातें थी उनका रहस्योद्घाटन करने के लिए कहा गया। "तुम्हारे (काग्रेस के) कागज-पत्र, रजिस्टर और चन्दे व स्वयसेवको की फेहरिस्तें कहा है?" यह सरकार की माग थी। नौजवानो को तरह-तरह तग किया गया, न कहने-योग्य बातें (अपशब्द) उन्हे कही गईं, और अकथनीय सजाओ के आयोजन करके उनको अमली रूप दिया गया। हाईकोर्ट के एक एडवोकेट को सताने के लिए एक-एक करके उसके बाल उखाडे गये, और यह सिर्फ इसलिए कि उसने पुलिस को अपना नाम और पता नही बताया था!

आर्डिनेन्सों का राज

जैसे-जैसे परिस्थिति बदलती गई, उसके अनुसार, नये-नये आर्डिनेन्स निकलते गये। हालाकि वे एकसाथ नही बल्कि भिन्न-भिन्न समय जारी हुए, मगर उनपर एकसाथ

विचार करना ही ठीक होगा। इनमें से एक आर्डिनेन्स का जिक्र तो पहले ही हो चुका है, जो कि उस समय बगाल में जारी किया गया था जब कि गांधीजी अभी लन्दन ही में थे। कहा यह गया था कि यह बगाल में आतकवादी-आन्दोलन का प्रसार रोकने और उसके सम्बन्ध में चलनेवाले मुकदमो को जल्दी निपटाने के लिए है। प्रान्तीय-सरकार से अधिकार-प्राप्त किसी भी सरकारी अफसर को इससे यह सत्ता प्राप्त हो गई कि जिस किसी भी व्यक्ति पर कोई भी सन्देह हो उससे उसका परिचय और हलचल मालूम करे और उसकी बताई हुई बातें ठीक है या नही इसकी तहकीकात करने के लिए उसे गिरफ्तार करके एक दिन के लिए हिरासत में ले ले। ऐसी गिरफ्तारी के लिए जिस किसी भी साधन की आवश्यकता हो, उसको वह अमल में ला सकता था। प्रान्तीय-सरकार को यह अधिकार मिला कि अगर जरूरत हो तो वह किसी भी मकान या इमारत को, मय उसके सामान के, उसके मालिक या उसमें रहनेवाले से खाली कराके चाहे जितने समय के लिए अपने कब्जे में करले, और चाहे तो उसका मुआवजा दे और चाहे तो न भी दे। इसी प्रकार जिला-मजिस्ट्रेट किसी भी चीज या सामान के मालिक या इस्तेमाल करनेवाले से, मुआवजे के साथ या विना मुआवजे के ही, उसका सामान ले सकता था। वह किसी जगह या इमारत को, जिसमें रेलवे इत्यादि भी शामिल है, सरकारी कब्जे में ले सकता था अथवा वहा जाने पर बन्दिश लगा सकता था। यातायात पर बन्दिश लगाने और सवारियो के मालिक या रखनेवालो को उन्हें सरकार के सुपुर्द करने का भी वह हुक्म दे सकता था। शस्त्रास्त्र की बिक्री बन्द करने या नियन्त्रित करने और उन्हें अपने कब्जे में कर लेने का उसे अधिकार था। किसी भी जमीदार या अध्यापक अथवा और किसी व्यक्ति से वह कानून और व्यवस्था की स्थापना के काम में मदद करने के लिए कह सकता था। तलाशी के वारट निकाल सकता था। प्रान्तीय-सरकार किसी खास इलाके के निवासियो पर सामूहिक जुर्माना कर सकती थी, किसी खास व्यक्ति या श्रेणी को किसी भी लेने-पावने से मुक्त कर सकती थी, और किसी भी व्यक्ति के हिस्से का बकाया जुर्माना सरकारी मालगुजारी के बतौर वसूल किय जा सकता था। जरा भी अवज्ञा होने पर ६ महीने कैद या जुर्माने अथवा दोनो की सजा मिल सकती थी। प्रान्तिक सरकार को यह अधिकार दे दिया गया था कि फरार लोगो से पत्र-व्यवहार रोकने के लिए और उनकी हलचलो की जानकारी रखने तथा उनकी हलचलो की बातें मालूम करने के लिए, सम्राट् के प्रजाजनो के जान-माल पर होनेवाले आक्रमणो से रक्षा करने, सम्राट् की फौज व पुलिस को सुरक्षित रखने तथा कैदियो को जेल में निर्बाध रूप से रखने की दृष्टि से नियमोपनियम बनाये। आर्डिनेन्स

के मातहत कैसी भी कार्रवाई क्यो न करें, फौजदारी-अदालत में उसका विरोध नही किया जा सकता था। जिन मुकदमो को सरकार विशेष अदालत-द्वारा निपटाना चाहे उनकी तहकीकात के लिए फौजदारी मामलो के नये अर्थात् स्पेशल-ट्रिब्यूनल या स्पेशल-मजिस्ट्रेट बनाने को कहा गया। स्पेशल-ट्रिब्युनलो के लिए नियमोपनियम भी विशेष तौर पर ही बनाये गये। विशेष-न्यायालयो को अधिकार दिया गया कि चन्द परिस्थितियो में वे अभियुक्त की अनुपस्थिति में भी मामला चला सकते हैं।

युक्त-प्रान्तीय इमर्जेन्सी-आर्डिनेन्स १४ दिसम्बर १९३१ को जारी हुआ। इसके द्वारा प्रान्तीय-सरकार को अधिकार दिया गया कि वह सरकार, स्थानीय अधिकारी या जमीदार को दी जानेवाली किसी रकम को (बकाया रकम को) सरकारी पावना करार देकर उसे बकाया मालगुजारी के रूप में वसूल करे। प्रान्तीय-सरकार जिस किसी व्यक्ति के लिए यह समझे कि वह सार्वजनिक सुरक्षा के विरुद्ध काम कर रहा है उसे किसी खास इलाके में ही रहने, किसी खास इलाके में से हट जाने या किसी खास तरीके पर रहने का हुक्म दे सकती थी। एक महीने तक उसका वह हुक्म कायम रहता। किसी खास जमीन या इमारत के मालिक को सारी जमीन या इमारत, मय फर्नीचर तथा दूसरे सामान के, मुआवजे के साथ या बगैर मुआवजे ही, सरकार के सुपुर्द करने का प्रान्तीय-सरकार हुक्म दे सकती थी। जिला-मजिस्ट्रेट चाहे जिस इमारत या स्थान का प्रवेश निषिद्ध या मर्यादित कर सकता था और किसी भी आदमी को यह हुक्म दे सकता था कि उसके पास कोई सवारी या यातायात के जो भी साधन हो उनके बारे में जब जैसा हुक्म मिले तब वैसा ही किया जाय। सरकार से अधिकार-प्राप्त कोई भी अफसर किसी भी जमीदार, स्थानीय अधिकारी या अध्यापक को कानून और शान्ति कायम रखने के काम में मदद करने के लिए तलब कर सकता था। जिस किसी व्यक्ति पर यह शक हो कि वह सरकारी लेने को न अदा करने की प्रेरणा कर रहा है उसे दो साल की कैद, जुर्माने या दोनो सजायें दी जा सकती थी। जो कोई व्यक्ति किसी सरकारी नौकर को अपने फर्जों को भली-भाति अदा न करने अथवा किसी व्यक्ति को पुलिस या सेना में भर्ती होने से रोकने की चेष्टा करे उसे एक साल कैद या जुर्माने की सजा दी जा सकती थी। किसी खास हलके के निवासियो पर प्रान्तीय-सरकार सामूहिक जुर्माना कर सकती थी, और उसकी वसूली उसी तरह हो सकती थी जैसे कि मालगुजारी वसूल की जाती है। किसी जब्त साहित्य के अश दोहरानेवाले को ६ महीने कैद या जुर्माने की सजा दी जा सकती थी। १६ साल तक के व्यक्तियो पर होनेवाला जुर्माना उनके मा-बाप या सरक्षक से वसूल किया जा सकता था और उनके

वसूल न हो सकने की दशा में उन्हें उसी प्रकार कैद की सजा दी जा सकती थी, मानो स्वय उन्होने वह अपराध किया है। ऐसे हुक्म के खिलाफ दीवानी अदालत में कानूनी कारंवाई भी नही की जा सकती थी।

सीमाप्रान्त-सम्बन्धी तीन आर्डिनेन्स २४ दिसम्बर १९३१ को जारी किये गये। उनमें से एक तो युक्तप्रान्त-सम्बन्धी आर्डिनेन्स की ही तरह था और सरकारी लेने की वसूली के लिए निकाला गया था। बाकी दो में से एक का नाम सीमाप्रान्तीय 'इमर्जेन्सी पावर्स आर्डिनेन्स' था और दूसरे का 'अनलॉफुल असोसियेशन आर्डिनेन्स'। इनमें से पहले के मातहत कोई भी अधिकार-प्राप्त व्यक्ति किसी भी सन्दिग्ध-व्यक्ति को विना कारण गिरफ्तार करके एक दिन के लिए हिरासत में रख सकता था और प्रान्तीय सरकार-द्वारा वह मियाद दो महीने तक बढाई जा सकती थी। प्रान्तीय-सरकार किसी व्यक्ति को एक महीने के लिए किसी खास तरीके से रहने का हुक्म दे सकती थी। ऐसे हुक्म पर अमल न कर सकने की हालत में दो साल तक कैद की सजा दी जा सकती थी। किसी भी निजी इमारत को प्रान्तीय-सरकार अपने कब्जे में ले सकती थी। जिला-मजिस्ट्रेट किसी भी इमारत और किसी सडक या जल-मार्ग के यातायात को निषिद्ध, नियन्त्रित या मर्यादित कर सकता था। प्रान्तीय-सरकार किसी भी माल की खपत व बिक्री को नियन्त्रित करने के लिए उसे तैयार करनेवालों व व्यापारियो को उस माल की खरीद-फरोख्त के नकशे पेश करने या अपना सारा माल या उसका अंश सरकार को सौंप देने के लिए कह सकती थी। जिला-मजिस्ट्रेट सवारी या यातायात के अन्य सब साधनो के तफ्सीलवार ब्योरे पेश करने या उन्हे (सवारी आदि को) ही सरकार के सुपुर्द करने का हुक्म दे सकता था। शस्त्रास्त्र और गोला-बारूद की बिक्री को जिला-मजिस्ट्रेट नियन्त्रित कर सकता था। प्रान्तीय-सरकार चाहे जिसको स्पेशल पुलिस-अफसर मुकर्रर कर सकती थी, अथवा किसी भी जमींदार, अध्यापक या स्थानीय अधिकारी को कानून और व्यवस्था के रक्षार्थ मदद करने का हुक्म दे सकती थी। लोकोपयोगी कार्य (Utility Service) के संचालकों को उस सस्था या मण्डल के द्वारा अपने इच्छानुसार कोई भी काम कराने के लिए प्रान्तीय-सरकार कह सकती थी, और अगर वह उसके अनुसार न कर सकता तो उस सस्था का अधिकार वह अपने हाथ मे ले सकती थी। जिला-मजिस्ट्रेट डाक, तार, टेलीफोन और वायर-लेस (बेतार के तार) को नियन्त्रित करके उनके द्वारा जानेवाली चीजो या चिट्ठी-पत्रियो को रोक सकता था, किसी भी रेलगाडी या नौका में जगह ले सकता था, किसी खास व्यक्ति या माल को किसी भी मुकाम पर ले जाने की मनाही कर सकता था,

रेलगाडी में से किसी भी यात्री को उतरवा सकता था, किसी भी गाडी को किसी खास मकाम पर रोककर पुलिस व सेना के विशेष तौर पर ले जाये जाने की व्यवस्था कर सकता था। किसी भी सार्वजनिक सभा में, फिर वह चाहे निजी स्थान में ही हो और उसमें प्रवेश टिकटो-द्वारा ही क्यो न हो, पुलिस-अफसर को भेज सकता था। तलाशियो के लिए खास अधिकार दिये गये थे। कोई भी व्यक्ति जो किसी सरकारी नौकर को अपने काम की उपेक्षा करने या किसी को पुलिस या सेना में भर्ती होने से रोकने या ऐसी कोई अफवाह या चर्चा फैलाने की चेष्टा करे कि जिससे सरकारी नौकरो के प्रति घृणा या अपमान का भाव उत्पन्न होता हो, या सर्व-साधारण में भय-सचार होता हो, उसे एक साल कैद या जुर्माने की अथवा दोनो सजायें दी जा सकती थी। प्रान्तीय-सरकार किसी हल्के के निवासियो पर सामूहिक जुर्माना कर सकती थी, जो उसी तरह वसूल होता जैसे कि मालगुजारी होती है। जो कोई व्यक्ति किसी गुप्त (सरकारी) दस्तावेज की बातो को दोहराये उसे ६ महीने कैद या जुर्माने की सजा हो सकती थी। १६ साल तक के नवयुवको पर हुआ जुर्माना उनके अभिभावक या सरक्षक से वसूल किया जा सकता था, और वसूल न होने की दशा में उन्हें कैद की सजा दी जा सकती थी। स्पेशल जजो व मजिस्ट्रेटो के साथ स्पेशल और सरसरी अदालतें बनाई गई और उनके कार्य-क्षेत्र की व्याख्या करके मुकदमो व अपीलो के लिए खास तौर की कार्य-प्रणाली तैयार की गई।

अन्य आर्डिनेन्सो के मातहत प्रान्तीय-सरकार किसी स्थान को गैर-कानूनी करार दे सकती थी और मजिस्ट्रेट उस स्थान को सरकारी कब्जे में लेकर जो भी व्यक्ति वहा हो उसे निकाल सकता था। मजिस्ट्रेट चल-सम्पत्ति पर भी कब्जा कर सकता था और प्रान्तीय-सरकार उसे जब्त करार दे सकती थी। निषिद्ध (गैर-कानूनी) करार दिये गये स्थान पर जाने या वहा रहनेवाला कोई भी व्यक्ति फौजदारी अपराध का मुजरिम होता था। प्रान्तीय-सरकार गैर-कानूनी करार दी गई सस्था का रुपया-पैसा आदि सामान जब्त कर सकती थी और किसी भी ऐसे व्यक्ति पर, जिसके पास किसी गैर-कानूनी सस्था का रुपया होने का शुबहा हो, उस रुपये को सरकारी हुक्म के बगैर खर्च न करने की पाबन्दी लगा सकती थी। ऐसे व्यक्तियो के बहीखातो की जाच-पड़ताल करने या ऐसी रकम के मूल व इस्तेमाल का पता लगाने का भी प्रान्तीय-सरकार हुक्म दे सकती थी।

४ जनवरी को चार नये आर्डिनेन्स और जारी हुए—(१) इमर्जेन्सी पावर्स आर्डिनेन्स, (२) अनलॉफुल इस्टिगेशन आर्डिनेन्स, (३) अनलॉफुल असोसियेशन आर्डिनेन्स, और (४) प्रिवेन्शन ऑफ मॉलेस्टेशन एण्ड बायकाट आर्डिनेन्स। इनमें

से पहले आर्डिनेन्स के मातहत तो लोगो को गिरफ्तार करने, बन्द रखने या उनकी हलचलो को नियन्त्रित करने, इमारतो को माग लेने, इमारतो या रेलवे को वर्जित-स्थान करार देने, यातायात को नियन्त्रित करने, सर्व-साधारण के व्यवहार की किसी चीज को अपने कब्जे मे करने या उसकी खपत व बिक्री पर नियन्त्रण करने, यातायात के साधनो पर नियन्त्रण करने, शस्त्रास्त्र की बिक्री पर नियन्त्रण करने, स्पेशल पुलिस-अफसर नियुक्त करने, जमीदारो व अध्यापको आदि को कानून और व्यवस्था कायम रखने मे मदद करने के लिए बाध्य करने, सार्वजनिक उपयोग के कामो पर नियन्त्रण करने, डाक, तार या हवाई जहाज से जानेवाली चीजो व चिट्ठी-पत्रियों को रोकने और बीच में गायब कर लेने, रेलो और नौकाओ में जगह हासिल करने तथा उनके यातायात पर नियन्त्रण करने, सभाओं मे पुलिस-अफसरो को भेजने इत्यादि के वैसे ही अधिकार लिये गये थे जैसो का विस्तार के साथ ऊपर वर्णन किया जा चुका है। इसी प्रकार जैसा कि सीमाप्रान्तीय रेग्यूलेशन में रक्खा गया है, विशेष अदालतो, उनमें खास तौर की कार्रवाई, नये-नये जुर्म और उनके लिए खास तौर की सजाओं का भी विधान किया गया। इण्डियन प्रेस इमर्जेन्सी एक्ट को, आर्डिनेन्स की एक विशेष धाराके द्वारा, और कडा कर दिया गया था।

'अनलॉफुल इस्टिगेशन आर्डिनेन्स' के मातहत सरकार किसी पावने को इश्तिहारी पावना घोषित कर सकती थी और जो भी कोई व्यक्ति उसकी अदायगी मे बाधक होता उसे ६ महीने कैद और उसके साथ जुर्माने की भी सजा दी जा सकती थी। जिसको ऐसा पावना मिलना हो वह आदमी कलक्टर से यह कह सकता था कि इसे बतौर मालगुजारी वसूल किया जाय और कलक्टर उसे मालगुजारी के बकाया के रूप में वसूल करवा सकता था।

'अनलॉफुल असोसियेशन आर्डिनेन्स' के मातहत, जैसा कि पश्चिमोत्तर सीमा-प्रान्तीय आर्डिनेन्स के सिलसिले में ऊपर बताया जा चुका है, प्रान्तीय-सरकार गैरकानूनी करार दी गई सस्था की इमारत और उसकी चल-सम्पत्ति व रुपये-पैसे को, अपने कब्जे में कर सकती थी। ऐसे रुपये पैसे को प्रान्तीय-सरकार जब्त भी कर सकती थी। जिस किसीके पास ऐसा रुपया-पैसा हो उसे उस सम्बन्धी हिसाब-किताब की जांच कराने और सरकार की स्वीकृति बगैर उसको खर्च न करने का हुक्म दे सकती थी। ऐसी हरेक सस्था को गैरकानूनी घोषित किया जा सकता था, जो कौंसिल-सहित गवर्नरजनरल की राय मे कानून और व्यवस्था के अमल में बाधक होती हो तथा सार्वजनिक शान्ति के लिए खतरनाक हो।

'प्रिवेन्शन् ऑफ मॉलेस्टेशन एण्ड बायकाट आर्डिनेन्स' के मातहत उन सबको ६ महीने कैद या जुर्माने की सजा हो सकती थी जो किसी दूसरे व्यक्ति को तग करते और उसका बहिष्कार करते या उसे तग करने और उसका बहिष्कार कराने मे सहायक होते, कोई आदमी दूसरे को सताने या तग करने का अपराधी उस हालत मे माना जाता था जबकि वह उसके या उससे सम्बन्ध रखनेवाले अन्य किसी व्यक्ति के कार्य मे रुकावट डालता या उसके विरुद्ध हिंसा का व्यवहार करता या उसे किसी प्रकार की कोई धमकी देता या उसके मकान के आस-पास घूमता रहता या उसके माल-मते में खलल डालता या किसी व्यक्ति को उसके यहा न जाने और उससे सम्बन्ध न रखने के लिए अथवा ऐसा कोई काम करने के लिए बाध्य करता कि जिससे उसका नुकसान हो। बहिष्कार की परिभाषा यह की गई थी कि किसी व्यक्ति या उससे सम्बन्ध रखनेवाले के साथ व्यापार का या और कोई सम्बन्ध न रखना, उन्हें कोई माल न देना, जमीन या मकान न देना, सामाजिक सेवाये (अर्थात् नाई, भगी, धोबी आदि के काम) बन्द कर देना, इनमे से कोई या सब बातें मामूली रूप में न करना, या उनके साथ व्यापारिक या काम-काज का सम्बन्ध बन्द कर देना। किसी आदमी को चिढाने की गरज से उसका स्यापा करना, या उसका पुतला या मुर्दा बनाकर निकालना, ऐसा अपराध घोषित किया गया जिसके लिए ६ महीने कैद या कैद और जुर्माने दोनो की सजाये हो सकती थीं।

इस प्रकार इन आर्डिनेन्सो के द्वारा सरकार ने बहुत विस्तृत अधिकार अपने हाथ में ले लिये, जो अमली तौर पर सारे देश मे लागू कर दिये गये थे।

आर्डिनेन्स-कानून

जब आर्डिनेन्सो की अवधि समाप्त हुई तो उन्हें अगली अवधि के लिए नये सिरे से एक इकट्ठे आर्डिनेन्स के रूप मे जारी किया और नवम्बर १९३२ में बाकायदा कानून का रूप दे दिया गया। भारत-मत्री सर सेम्युअल होर ने तो बहुत पहले, २६ मार्च १९३२ को ही, कामन-सभा में यह बात स्वीकार कर ली थी कि "आर्डिनेन्स बहुत व्यापक, तीव्र और कठोर हैं। भारतीय जीवन की लगभग हरेक बात उनकी चपेट में आ जाती है। उन्हें इतने व्यापक और तीव्र इसलिए बनाया गया है कि सरकार को हर तरह की जो जानकारी उपलब्ध है उसपर से सचमुच उसका यह विश्वास है कि सरकार की जड-मूल पर ही कुठाराघात होने का खतरा उपस्थित है, इसलिए यदि हिन्दुस्तान को अराजकता से बचाना हो तो ये आर्डिनेन्स आवश्यक हैं।"

यह स्मरण रहे कि प्रेस-कानून (१९३१ का २३ वा एक्ट), जो अस्थायी-सन्धि

के समय बना था, ६ अक्तूबर १६३१ को समाप्त हो गया। १६३२ के क्रिमिनल-लॉ-अमेण्डमेण्ट-बिल में उसे (प्रेस-लॉ को) स्थायी रूप से कानून का रूप मिल गया। प्रेस-कानून की धारायें करीब-करीब १६१० के एक्ट जैसी ही थी। भारत-सरकार के आर्डिनेन्सो, बिलो या कानूनो के अलावा, नवम्बर १६३२ में बम्बई-सरकार ने एक प्रान्तीय आर्डिनेन्स-बिल पेश किया, जिसमें करबन्दी-आन्दोलन के मुकाबले की भी काफी गुजाइश रक्खी गई थी। सच तो यह है कि ये सब आर्डिनेन्स और दमनकारी अस्त्र तैयार करने का विचार तो अस्थायी-सन्धि के साल (१६३१ में) ही हो रहा था। वस्तुस्थिति तो यह है कि १५ अक्तूबर १६३१ को पूना के अंग्रेजो ने भारत-सरकार के गृह-विभाग के मंत्री को मान-पत्र प्रदान किया और इसके बाद, १६३१ में ही, यूरोपियन-असोसियेशन की बम्बई-शाखा के मंत्री ने उन्हें एक पत्र भेजा। उन्होने सरकार को सुझाया था कि यदि सविनय अवज्ञा-आन्दोलन फिर से शुरू हो तो उसे तुरन्त और दृढता के साथ कुचल देना चाहिए— और यह सब उस समय जबकि लन्दन में गोलमेज-परिषद् हो रही थी, जिसका प्रत्यक्ष उद्देश्य कांग्रेसियो को सन्तुष्ट करना था। उन्होने खास तौर से यह सुझाया कि कांग्रेसी झण्डे की मनाही कर दी जाय, इसी प्रकार स्वयं-सेवको की कवायद-परेड भी रोक दी जाय, जिन लोगो ने सविनय-अवज्ञा में भाग लिया था उन सबपर पाबन्दियां लगा दी जायें, उनके साथ वैसा ही व्यवहार हो जैसा लड़ाई के समय शत्रु-देश की प्रजा के साथ होता है और उन्हें नजरबन्द कर दिया जाय, कांग्रेस-कोष के मूल का पता लगाया जाय और उसको वहीं एक विशेष आर्डिनेन्स के द्वारा खत्म कर दिया जाय, जिन मिलो ने कांग्रेस की शर्तें मान ली हो उन्हें कहा जाय कि अगर वे उन्हें रद न कर देंगे तो रेलगाडियो-द्वारा उनका माल ले जाना बन्द कर दिया जायगा, और राजनैतिक परिस्थिति व बहिष्कार से किसीको अधिक लाभ न उठने देना चाहिए।

१६३२-३३ की घटनायें भी प्राय. १६३०-३१ की ही तरह रही, अलबत्ता लड़ाई इस बार और भी जोरदार एवं निश्चयात्मक थी। दमन और भी अन्धाधुन्धी के साथ चला और लोगो को पहले से भी कही ज्यादा कष्ट-सहन करना पड़ा।

कार्य-समिति की तत्परता

सरकारी आक्रमण ४ जनवरी के बड़े सवेरे म० गांधी और राष्ट्रपति सरदार वल्लभभाई पटेल की गिरफ्तारी के साथ आरम्भ हुआ। १६३२ के उपर्युक्त आर्डिनेन्स उसी दिन सवेरे जारी हुए और कई प्रान्तो पर लागू कर दिये गये। पश्चात् कुछ

ही दिनो मे, अमली तौर पर, सारे देश मे लागू हो गये। अनेक प्रान्तीय और मातहत काग्रेस-कमिटियो, आश्रमो, राष्ट्रीय स्कूलो तथा अन्य राष्ट्रीय सस्थाओ को गैरकानूनी करार दे दिया गया और उनकी इमारतो, फर्नीचर, रुपये-पैसे तथा अन्य चल-सम्पत्ति को सरकारी कब्जे में ले लिया गया। देश के खास-खास काग्रेसियो में से अधिकाश को एकदम जेलो मे ठूस दिया गया। इस प्रकार देखते-ही-देखते काग्रेस के पास न तो नेता रहे, न रुपया-पैसा, न निवास-स्थान। लेकिन इस आकस्मिक और दृढ झपट्टे के बावजूद जो काग्रेसी बच रहे थे वे भी साधन-हीन नही हो गये थे। जो जहा था वही उसने काम शुरु कर दिया। कार्य-समिति ने तय कर लिया कि १९३० की तरह इस बार खाली होनेवाले स्थानो की पूर्ति न की जाय और सरदार वल्लभभाई पटेल ने, अपनी खुद की गिरफ्तारी का खयाल करके, अपने बाद क्रमश कार्य करनेवाले व्यक्तियो की एक सूची बनाई। कार्य-समिति ने अपने सारे अधिकार अध्यक्ष के सुपुर्द कर दिये और अध्यक्ष ने उन्हे अपने उत्तराधिकारियो को सौंप दिया, जो क्रमश अपने उत्तराधिकारियो को नामजद करके वे अधिकार दे सकते थे। प्रान्तो मे भी, जहा कही सम्भव हुआ, काग्रेस-सगठन की सारी सत्ता एक ही व्यक्ति को दे दी गई। इसी प्रकार जिलो, थानो, ताल्लुको और गावो तक की काग्रेस-कमिटियो में भी हुआ। यही व्यक्ति आम तौर पर डिक्टेटर या सर्वेसर्वा के रूप में प्रसिद्ध हुए। एक बडी कठिनाई सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन के सचालको के सामने यह थी कि अवज्ञा अर्थात् आज्ञा-भग के लिए किन कानूनो को चुना जाय? यह तो स्पष्ट ही है कि हरेक या चाहे जिस कानून का भग नही किया जा सकता। काग्रेस की इस कठिनाई को व्यापक आर्डिनेन्सो ने हल कर दिया। अस्तु, भिन्न-भिन्न प्रान्तो मे भिन्न-भिन्न विपय चुने गये, जब कि कुछ विपयो का समय-समय पर कार्यवाहक-राष्ट्रपति की ओर से आदेश मिलता रहा। शराब और विदेशी कपडे की दुकानो तथा ब्रिटिश माल की पिकेटिंग सब प्रान्तो में समान-रूप से लागू हुई। लगानबन्दी युक्तप्रान्त मे काफी बडी हदतक और बगाल में आशिक रूप से एक महत्त्व का विपय रहा। बिहार व बगाल के कुछ स्थानो में चौकीदारी-टैक्स देना बन्द कर दिया गया। मध्यप्रान्त व बरार, कर्नाटक, युक्तप्रान्त, मदरास प्रेसीडेन्सी तथा बिहार के कुछ स्थानो में जगलात के कानूनो का भग किया गया। गैरकानूनी नमक बनाने, एकत्र करने और बेचने के रूप मे नमक-कानून का भग तो अनेक स्थानो में किया गया। सभाओ और जुलूसो की तो जरूर ही मनाही की गई, लेकिन निपेधाज्ञाओ के होते हुए भी सभाये हुईं और जुलूस भी निकाले गये। लडाई की शुरुआत मे खास-खास दिनो का मनाया जाना बहुत लोकप्रिय रहा, जोकि बाद में

विशेष उत्सव के दिन ही बन गये। ये किन्ही खास घटनाओ या व्यक्तियो अथवा कार्यों को लेकर मनाये जाते थे, जैसे गाधी-दिवस, मोतीलाल-दिवस, सीमाप्रान्तीय-दिवस, शहीद-दिवस, झण्डा-दिवस इत्यादि। जैसा कि अभी कह चुके है, काग्रेस के दफ्तरो व आश्रमो को सरकार ने अपने कब्जे में कर लिया था। अत अनेक स्थानो में उन्हें सरकारी कब्जे से वापस अपने हाथ में लेने का प्रयत्न किया गया, जिसका प्रयोजन उस आर्डिनेन्स का भग करना था जिसके अनुसार इन स्थानो मे जाना निषिद्ध और गैरकानूनी करार दे दिया गया था। ये प्रयत्न 'धावों' के नाम से मशहूर है। आर्डिनेन्सो के कारण कोई प्रेस काग्रेस का काम नही कर सकता था। इस अभाव की पूर्ति के लिए बेजाब्ता हस्त-पत्रक, परचे, संवाद-पत्र, रिपोर्टें आदि निकाले गये, जो या तो टाइप किये हुए होते थे या साइक्लोस्टाइल अथवा डुप्लीकेटर से निकले हुए और कभी-कभी छपे हुए भी—लेकिन, जैसा कि कानूनन होना चाहिए, उनपर प्रेस या मुद्रक का नाम नहीं होता था। और कभी-कभी ऐसे नाम दे दिये जाते थे जिनका अस्तित्व ही कहीं नहीं होता था। यह मार्के की बात है कि पुलिस के सतर्क रहने पर भी ये सवाद-पत्र और हस्तपत्रक नियमित रूप से प्रकाशित होकर, जो-कुछ हो रहा था उसकी, सारे देश को खबरें पहुँचाते रहे। डाक और तार विभाग के दरवाजे काग्रेस के लिए बन्द हो गये थे, इसलिए काग्रेस ने अपनी डाक को खुद ही पहुँचाने की व्यवस्था की—और वह प्रान्त के एक स्थान से दूसरे स्थान तक ही नही बल्कि महासमिति के कार्यालय से विभिन्न प्रान्तो तक को। कभी-कभी यह डाक ले जानेवाले स्वयसेवक पकडे भी गये और तब स्वभावत- उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया, या कोई कार्रवाई की गई। १९३० के आन्दोलन के उत्तरार्द्ध में वस्तुत यह प्रथा प्रारम्भ हुई थी और १९३२ में जाकर यह लगभग पूर्णता को पहुँच गई। और तो और पर महासमिति या प्रान्तीय कमिटियो के दफ्तरो का भी सरकार पता नही लगा सकी, जहा से न केवल हस्तपत्रक ही निकलते थे बल्कि आन्दोलन चलाने के सम्बन्ध में हिदायतें भी जारी होती रहती थीं, और जब कभी ऐसा काम करनेवाले किसी दफ्तर या व्यक्ति का पता लगाकर काम में रुकावट डाली गई कि तुरन्त ही उसकी जगह दूसरा तैयार हो गया और काम चलाने लगा। दूसरी बात जिससे कि लोगो मे बडा उत्साह पैदा हुआ और जिससे पुलिस को भी कम परेशानी नही उठानी पडी, काग्रेस के अधिवेशन का किया जाना था, जिसके बाद प्रान्तो व जिलो की परिषदो के रूप में देशभर मे काग्रेसी सम्मेलनो की लडी लग गई। कई जगह स्वयसेवको ने, जजीर खीचकर चलती रेलगाडियो को रोकने के रूप में, रेलो के नियमित काम-काज में खलल डालने की कोशिश की। एक बार तो रेलो को

नुकसान पहुँचाने की दृष्टि से बहुत बडी तादाद में बिना टिकट रेल में जाने का भी प्रयत्न किया गया, लेकिन जिम्मेवार हलको से इस चेष्टा को प्रोत्साहन नही मिला इसलिए बाद में यह बन्द कर दी गई।

हा, बहिष्कार ने बहुत जोर पकडा। इसके एक-एक अग को चुनकर उसपर शक्तिया केन्द्रित की गईं। कई स्थानो मे विदेशी कपडे, ब्रिटिश दवाइयो, ब्रिटिश बैंको, बीमा-कम्पनियो, विदेशी शक्कर, मिट्टी का तेल और आम तौर पर ब्रिटिश माल के बहिष्कार का जोरदार आन्दोलन करने के लिए अलग-अलग सप्ताह भी निश्चित किये गये।

सरकार का दमन चक्र

यह तो खयाल ही नही करना चाहिए कि नेताओ को गिरफ्तार कर लेने के बाद सरकार खामोश या नरम पड गई। आर्डिनेन्सो मे उल्लिखित सब अधिकारो का उसने उपयोग किया। यहा तक कि दमन के कुछ ऐसे तरीके भी अख्तियार किये गये जिनकी उन आर्डिनेन्सो तक में इजाजत नही थी, जो अपनी भयकरता के लिए बदनाम हैं। यह कहने की तो जरूरत ही नही कि गिरफ्तारिया बहुत बडी तादाद मे हुईं, लेकिन वे की गईं चुन-चुन कर। सजा पानेवालो की कुल सख्या एक लाख से कम न होगी। यह बात शीघ्र ही स्पष्ट हो गई कि कैम्प तथा अस्थायी जेलो के बनाये जाने पर भी जेल जानेवाले सब सत्याग्रहियो को कैद में रखने की जगह नही थी। इसलिए कैदियो का चुनाव करना जरूरी हो गया और साधारणत उन्हीको जेलो मे भेजा गया जिनके लिए यह समझा गया कि उनमें सगठन का कुछ माद्दा है या काग्रेस-क्षेत्र में उनका विशेष महत्त्व है। जेलो में उन सबकी व्यवस्था करना भी कुछ आसान न था। अत. ९५ फीसदी से ज्यादा व्यक्तियो को 'सी' क्लास में रक्खा गया। 'बी' क्लास मे बहुत कम लोग रक्खे गये। और 'ए' क्लास तो कई स्थानो मे बराय-नाम ही रहा, बाकी जगह भी बहुत कम को ही वह मिला। ऐसी दशा में इसमे आश्चर्य की कोई बात नही कि जो स्त्री-पुरुष अपने देश को स्वतन्त्र करने की श्रेष्ठ भावना से प्रेरित होकर ही जेलो में गये थे, उनके लिए खास तौर पर कतार में खडे होने, बैठने या हाथ उठाने जैसी अपमानपूर्ण बातें सहन करना सम्भव नही था। इन कारणो से जेल-अधिकारियो के साथ अक्सर उनका सघर्ष हो जाता था, जिसके फल-स्वरूप भिन्न-भिन्न प्रकार की ऐसी सजाये उन्हें दी जाती रही जिनकी जेल के नियमो में स्वीकृति थी, और बहुत बार पिटाई व दूसरे ऐसे जुल्म भी किये गये जो जेल की चहार-दीवारी के भीतर किसीको

पता लगाने के भय से मुक्त हो कर आसानी से किये जा सकते हैं। एक खास तरह की अपमानप्रद स्थिति में बैठने से इन्कार करने पर मार-पीट और हमला करने के अत्याचार का एक मामला तो अदालत में भी पहुँचा, जिसके परिणाम-स्वरूप नासिक-जेल के जेलर, उसके सहायक तथा कई अन्य व्यक्तियो को सजा भी हुई, परन्तु सत्याग्रही कैदियो के लाठी से पीटे जाने की घटनायें तो अक्सर ही होती रही। अस्थायी जेलो में रहना तो बिलकुल ही नाकाबिल बर्दाश्त था; क्योकि उनमें टीन के जो छप्पर पडे हुए थे उनसे न तो मई-जून की गर्मी का बचाव होता था, न दिसम्बर-जनवरी की ठण्ड का ही बचाव होता था। इससे वहा तन्दुरुस्ती अच्छी रह नहीं सकती थी। इसमें शक नही कि कुछ जेलें ऐसी भी थी जहा का व्यवहार किसी हदतक बर्दाश्त किया जा सकता था, लेकिन वह तो नियम नही बल्कि किसी कदर अपवाद-स्वरूप ही था। हालत तो कुछ स्थायी जेलो की भी कोई बहुत अच्छी न थी। अनेक जेलो में, खासकर कैम्प-जेलो मे, कैदियो का स्वास्थ्य बहुत बिगड़ रहा था। पेचिश का तो सभी समय जोर था, वर्षा और ठण्ड के साथ निमोनिया व फेफड़े की नाजुक बीमारियो ने भी बहुतो को आ दबोचा। फलत अनेक तो जेलो मे ही मर गये। जेलो में जिन जेल-कर्मचारियो से कैदियो का साबका पडता उनके शील-स्वभाव पर ही बहुत-कुछ जेलो में उनके साथ होनेवाला बर्ताव निर्भर था, और वे, कुछ खास अपवादो को छोड़कर, आम तौर पर न तो विवेकशील थे और न उनमें कोई लिहाज-मुलाहिजा ही था।

लाठी मार-मारकर लोगो की भीड और जुलूसो को भग करने का तरीका तो पुलिस ने शुरुआत में ही अख्त्यार कर लिया था। किसी भी प्रान्त में मुश्किल से ही कोई खास जगह ऐसी रही होगी जहा आन्दोलन में जीवन के चिन्ह दिखाई दिये हो और फिर भी लाठी-प्रहार न हुआ हो। चोट खानेवालो की सख्या भी कुछ कम न थी। अनेक स्थानो मे तो लोगो के गहरी चोटें लगी। लोगो को यह आदत थी कि जहा सत्याग्रहियो का कोई जुलूस निकल रहा हो, कोई सभा हो रही हो, या वे किसी धावे पर जा रहे हो, अथवा कही धरना दे रहे हो, तो वे यह जानने के लिए जुट जाते थे कि देखें क्या होता है, लेकिन जब लाठी-प्रहार होता तो इस बात का कोई भेद-भाव नही किया जाता था कि इनमें कौन तो कानून-भग के लिए एकत्र हुए हैं और कौन सिर्फ तमाशबीन हैं। यह आम चर्चा थी कि अनेक स्थानो में तो इतने जोरो-जुल्म हुए कि जिनका बयान नही किया जा सकता। और तो और पर स्त्रियो, लडको और छोटे-छोटे बच्चो तक को नही बख्शा गया। आखिर एक नया उपाय सरकार के हाथ लगा। जेलो व मार-पिटाई की सख्तियो के लिए तो सत्याग्रही तैयार ही थे, और अनेक तो

गोली खाकर मर जाने को भी तैयार थे—लेकिन, सरकार ने सोचा, अगर इनकी सम्पत्ति पर आक्रमण किया जाय तो इनमें से बहुत-से उसे बरदाश्त न कर सकेंगे। अतएव सजा देते वक्त उनपर भारी-भारी जुर्माने किये गये। कभी-कभी तो जुर्मानो की रकम दस हजार या इससे भी अधिक तक चली जाती थी। जहा मालगुजारी, लगान या अन्य करो का देना बन्द किया गया वहा तो ऐसी बकाया रकमो और करो की तथा जुर्मानो की वसूली के लिए न केवल उन्ही लोगो की मिल्कियत पर धावा बोला गया जिनसे कि उन्हें वसूल करना वाजिब था, बल्कि साथ मे सयुक्त-परिवारो की और कभी-कभी तो नाते-रिश्तेदारो की मिल्कियत भी कुर्क करके बेच डाली गई। कुर्की और बिक्री तक ही बात रहती तो भी गनीमत थी, लेकिन यहा तो कुर्की के बाद बडी-बडी कीमत की मिल्कियतो को बिलकुल कौडी के ही मोल बेच डाला गया। और कुर्की व बिक्री की कानूनी कार्रवाई से भी बढकर जो दु खदायी बात हुई वह तो है कानून से बाहर जाकर गैर-कानूनी तरीको से सताया जाना और नुकसान पहुँचाना, जिसे हृदय-हीन लूट और बरबादी ही कह सकते है। न केवल फर्नीचर, बर्तन-भाण्डे, गहने, मवेशी और खडी फसल जैसी चल-सम्पत्ति ही कुर्क करके बेच या कभी-कभी नष्ट करदी गई, बल्कि जमीन और घर-बार भी नही छोडा गया। गुजरात, युक्त-प्रान्त और कर्नाटक मे बहुत लोग ऐसे है जो आज भी जमीनो से हाथ धोये बैठे हैं, हालाकि उनका कष्ट-सहन बिलकुल स्वेच्छा-पूर्ण था; क्योकि जिस रकम को चुकाने से उन्होने इन्कार किया, अगर अपने को और अपने माल-असबाब को बचाना ही उनका उद्देश होता तो किसी-न-किसी तरह उसे वह चुका ही देते। सच तो यह है कि ये आफतें उनपर लादी ही गई थी। क्योकि अगर बकाया की वसूली ही प्रयोजन होता तो उन्हें इस तरह नष्ट न किया जाता। गुजरात के किसानो ने, और जिन्होने लगान-माल-गुजारी न देने के आन्दोलन में भाग लिया उन्हें, ऐसे कष्ट-सहन की अग्नि में से गुजरना पडा जिसका वर्णन नही हो सकता, फिर भी वे हिम्मत न हारे। अनेक स्थानो में अतिरिक्त ताजीरी-पुलिस तैनात की गई और उसका खर्च वहा के निवासियो से वसूल किया गया। बिहार-प्रान्त के कुल चार-पाच स्थानो में, जहा ऐसी अतिरिक्त पुलिस तैनात की गई थी, कम-से-कम ४ लाख ७० हजार रुपया वहा के निवासियो से ताजीरी करके रूप में वसूल किया गाय। मिदनापुर जिले (बगाल) के कुछ हिस्सो में ताजीरी फौज की तैनाती से ऐसा सर्वनाश और आतक फैला कि जिले के दो थानो में रहनेवाले हिन्दुओ मे से अधिकाश तो सचमुच ही अपने घर-बार छोडकर आस-पास के स्थानो में चले गये। उन्हें इतने अवर्णनीय कष्टो का सामना करना पडा कि उनकी

स्त्रियो की मृत्यु तक हो गई। अनेक स्थानो में सामूहिक जुर्माने भी किये गये, जिनकी वसूली वहा रहनेवाले लोगो से की गई। देश के कई स्थानो मे गोली-बार भी हुए, जिनमें अनेक व्यक्ति मरे और मरनेवालो से भी ज्यादा घायल हुए। इस मे सीमाप्रान्त का नम्बर सबसे आगे रहा।

इस विषय की तफसील मे उतरकर इस वर्णन को भारभूत करना अनावश्यक है। सब स्थानो या व्यक्तियो के नामो का उल्लेख करने से कोई फायदा नही। सरकार व उसके कर्मचारियो ने जो कानूनी, गैर-कानूनी तथा कानून-बाह्य उपाय ग्रहण किये और उनके परिणाम-स्वरूप सर्वसाधारण को जो कष्ट-सहन करना पडा, उन सब का पर्याप्त वर्णन करने का अगर हम थोडा भी प्रयत्न करे तो उसीका एक बडा पोथा तैयार हो जायगा। यह आन्दोलन तो देशव्यापी था और हरेक प्रान्त ने इसमें अपनी पूरी शक्ति लगाने की एक-दूसरे से प्रतिस्पर्धा की थी। यह बात भी नहीं कि अकेले ब्रिटिश-भारत तक ही यह महदूद रहा हो। (बघेलखण्ड-जैसी कुछ-रियासतो ने भी इसमें अपनी शक्ति लगाई) और अनेक रियासतो के कार्यकर्त्ताओ ने भी लडाई में भाग लेकर तकलीफे उठाई।

जिन आश्रमो और काग्रेस-कार्यालयो को सरकार ने अपने कब्जे मे ले लिया था उन्हे नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया, यहा तक कि कही-कही तो उनमें आग भी लगा दी गई।

अखबारो को बडी कठिनाई का सामना करना पडा। बहुत-से अखबारो से जमानते मागी गई, बहुतो की जमानतें जप्त की गई, और बहुत-से अखबारो को जमानत जमा न कर सकने या प्रेस जब्त हो जाने अथवा सरकारी प्रहार के भय से अपना प्रकाशन ही बन्द कर देना पडा।

इस आतक और सर्वनाश के बीच भी एक बात बिल्कुल स्पष्ट थी। वह यह कि लोगो ने किसी गम्भीर हिंसात्मक कार्य का अवलम्बन नहीं लिया। अहिंसा की शिक्षा उनमे जड पकड चुकी थी, जिसके कारण महीनो तक आन्दोलन जारी रहा, जब कि सरकार ने तो चन्द हफ्तो मे ही उसे खतम कर देने की आशा की थी। यह कहें तो भी अतिशयोक्ति न होगी कि आन्दोलन को कुचलने के लिए कानून के अन्तर्गत जिन साधनो तथा आर्डिनेन्सो का सहारा लिया गया, जो कि समस्त कानून और सभ्य-शासन के मूलभूत सिद्धान्तों के ही प्रतिकूल थे, उन्हें अगर न अपनाया गया होता तो आन्दोलन को दबाने मे सरकार को और भी कठिनाई होती। इधर काग्रेसवादो को भी, उनके लिए आवागमन के सब खुले साधन बन्द कर दिये जाने के कारण, [illegible] गुप्त उपायों

की ओर झुकना पड़ा। लेकिन इसमें भी साधारण, खुफिया और विशेष सब तरह की पुलिस के विस्तृत जाल से बचकर काम करने की शक्ति में उन्होंने अपनेको पूरा पटु साबित किया। कांग्रेस-कार्यालयों के बने रहने और हस्तपत्रकों के नियमित प्रकाशन-द्वारा जनता व कांग्रेसियों को नये-नये कार्यक्रमों की हिदायतें पहुँचाते रहने का उल्लेख हम कर ही चुके हैं। सत्याग्रह के लिए यद्यपि बहुत बड़ी रकम की जरूरत नहीं, लेकिन इतने विस्तृत पैमाने पर होनेवाली लड़ाई के लिए तो वह भी चाहिए ही। यह सौभाग्य की बात है कि धनाभाव के कारण काम में रुकावट पड़ने का मौका कभी उपस्थित नहीं हुआ। धन तो कहीं-न-कहीं से आता ही रहा। गुमनाम दानियों तक ने सहायता दी—और, कभी-कभी तो यह भी नहीं देखा कि किसे वह दान दे रहे हैं। यह मार्के की बात है कि ऐसी परिस्थिति में भी, जबकि सारा दफ्तर लोगों की जेबों में ही रहता था, हिसाब-किताब बड़ी कड़ाई के साथ रक्खा गया और प्राप्त-सहायता का उपयोग सावधानी के साथ लड़ाई के लिए ही किया गया।

दिल्ली-अधिवेशन

इस वर्णन को खतम करने से पहले कांग्रेस के दिल्ली-अधिवेशन का भी वर्णन कर देना चाहिए जो कि १९३२ के अप्रैल महीने में दिल्ली में हुआ था। वह पुलिस की बड़ी भारी सतर्कता के बावजूद किया गया था, जिसने कि दिल्ली के रास्ते में ही बहुत से प्रतिनिधियों का पता लगाकर उन्हें गिरफ्तार भी कर लिया था।

चांदनीचौक के घंटाघर पर यह अधिवेशन हुआ और पुलिस की सतर्कता के बावजूद लगभग ५०० प्रतिनिधि जैसे-तैसे सभा-स्थान पर जा पहुँचे थे। पुलिस इस सन्देह में कि अधिवेशन के जगह का जो ऐलान किया गया है वह सिर्फ चाल है, प्रतिनिधियों को नई दिल्ली में कहीं तलाश करती रही और कुछ पुलिस एक जगह अकालियों के जुलूस से निबटती रही। पेश्तर इसके कि वह घण्टाघर पर आये, काफी तादाद में प्रतिनिधि एकत्र हुए और उन्होंने कार्रवाई भी शुरू कर दी। अहमदाबाद के सेठ रणछोड़दास अमृतलाल, कहते हैं, उसके सभापति थे। उसमें कांग्रेस की सालाना रिपोर्ट पेश हुई और चार प्रस्ताव स्वीकृत हुए। पहले प्रस्ताव में इस बात की ताईद की गई कि पूर्ण स्वाधीनता ही कांग्रेस का लक्ष्य है, दूसरे में सविनय-अवज्ञा के फिर से जारी होने का हार्दिक समर्थन किया गया, तीसरे में गांधीजी के आवाहन पर राष्ट्र ने जो सुन्दर जवाब दिया उसके लिए उसे बधाई दी गई और महात्माजी के नेतृत्व में पूर्ण विश्वास प्रदर्शित किया गया, तथा चौथे में अहिंसा में अपने विश्वास की फिर से

पुष्टि करते हुए कांग्रेस को, खासकर सीमाप्रान्त के वहादुर पठानो को, अधिकारियो की ओर से अधिक-से-अधिक उत्तेजना की करतूतें की जाने पर भी अंसिहात्मक रहने पर बधाई दी गई।

पं० मदनमोहन मालवीय दिल्ली-अधिवेशन के मनोनीत सभापति थे, लेकिन वह तो रास्ते में ही गिरफ्तार कर लिये गये थे। वैसे इन तमाम समय कांग्रेसियो में उल्लेख-योग्य वही एकमात्र ऐसे नेता थे जो जेल से वाहर थे। अपनी वृद्धावस्था एव गिरे हुए स्वास्थ्य के वावजूद, गोलमेज-परिषद् से लौटने के वाद वह कभी शान्ति से नही वैठे और अधिकारियो की ज्यादतियो का पर्दा-फाश करनेवाले वक्तव्य-पर-वक्तव्य निकालकर अपने अथक उत्साह एव अद्भुत शक्ति से कांग्रेस-कार्यकर्ताओं को प्रोत्साहन प्रदान करते रहे। जब भी कभी कोई सन्देह या कठिनाई का प्रसग उपस्थित होता, कांग्रेस-कार्यकर्ता उन्हीकी ओर मुखातिव होते थे, और उन्होने कभी भी उन्हें निराश नही होने दिया।

•

: २ :

संग्राम फिर स्थगित

गांधीजी का आमरण उपवास

पाठको को याद होगा कि दूसरी-गोलमेज-परिषद् में गाधीजी ने अपना यह निश्चय सुनाया था कि अस्पृश्यों को यदि हिन्दू-जाति से अलग करने की चेष्टा की गई तो मैं उस चेष्टा का अपने प्राणो की वाजी लगाकर भी मुकावला करूँगा। अब गाधीजी के उस भीषण व्रत की परीक्षा का अवसर आ पहुँचा था। मताधिकार और निर्वाचन की सीटो का निर्णय करने के लिए, लोथियन-कमिटी, १७ जनवरी को भारत में आ पहुँची थी। समय वीतता चला जा रहा था, रिपोर्ट तैयार हो जायगी। सरकार झटपट काम खतम करने में दक्ष है ही, और हम लोग इसी तरह जवानी जमा-खर्च करते रहेंगे। इसलिए बहुत सोचने-समझने के वाद, गाधीजी ने भारत-मत्री सर सेम्युअल होर को ११ मार्च को पत्र लिखा, जिसमे उन्होंने यह निश्चय प्रकट किया कि यदि सरकार ने अस्पृश्यो या दलित-जातियो के लिए पृथक् निर्वाचन रक्खा तो मैं आमरण उपवास करूँगा। सर सेम्युअल होर ने अपना उत्तर १३ अप्रेल १६३२ को भेजा। यह उत्तर वही पुरानी पत्थर की लकीर का उदाहरण था, लोथियन-कमिटी की प्रतीक्षा की जा रही है, हा, उचित समय पर गाधीजी के विचारो पर भी ध्यान दिया जायगा। १७ अगस्त को मि० मैकडानल्ड का निश्चय, जिसे मूल से 'निर्णय' के नाम से पुकारा जाता है, सुनाया गया। (देखो परिशिष्ट ७) दलित-जातियो को पृथक् निर्वाचन का अधिकार तो मिला ही, साथ ही आम निर्वाचन में भी उम्मीदवारी करने और दुहरे वोट हासिल करने का भी अधिकार दिया गया। दोनो हाथो से उदारता-पूर्वक दान दिया गया था। १८ अगस्त को गाधीजी ने अपना निश्चय किया और उस निश्चय से प्रधान-मत्री को सूचित कर दिया। उन्होंने यह भी कहा कि व्रत यानी उपवास २० सितम्बर (१६३२) को तीसरे पहर से शुरू होगा। मि० मैकडानल्ड ने आराम के साथ ८ सितम्वर को उत्तर दिया और १२ सितम्वर को सारा पत्र-व्यवहार प्रकाशित कर दिया। प्रधान-मत्री ने गाधीजी को दलित-जातियो के प्रति शत्रुता के भाव रखनेवाला व्यक्ति बताना उचित समझा। व्रत २० सितम्वर १६३२ को आरम्भ

और उन्हे अपनी जन-सख्या से अधिक प्रतिनिधित्व प्राप्त हो गया। दस वर्ष बाद जनमत स्थिर करने के प्रश्न पर अन्तिम समय फिर विवाद उठ खडा हुआ, पर गाधीजी ने अवधि घटाकर ५ वर्ष कर दी, क्योकि दस साल के लिए स्थगित करने से कही जनता यह न समझे कि डॉ० अम्बेडकर सवर्ण-जातियो की नेक-नीयती की आजमाइश करना नही चाहते, बल्कि विरुद्ध जनमत देने के लिए दलित-जातियो को तैयार करने के लिए अवकाश चाहते हैं। गाधीजी ने अन्त में उत्तर दिया—"मेरा जीवन या पाच वर्ष"। अन्त में यह निश्चय किया गया कि इस प्रश्न को भविष्य में आपस के समझौते के द्वारा तय किया जाय। इसका नुस्खा श्री राजगोपालाचार्य ने सोच निकाला और गाधीजी ने कहा—"क्या खूब!" २६ तारीख को, ठीक जिस समय ब्रिटिश-मन्त्रि-मण्डल-द्वारा समझौते के स्वीकृत होने की खबर मिली, श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने गाधीजी से भेंट की। २६ तारीख की सुबह को इगलैण्ड और भारत में एक-साथ घोषणा की गई कि पूना का समझौता स्वीकार कर लिया गया। मि० हेग ने बडी कौंसिल में वक्तव्य दिया, जिसमें निम्नलिखित बातें कही गईं—

(१) प्रधान-मन्त्री के उस निश्चय के स्थान पर, जिसके द्वारा दलित-जातियो को प्रान्तीय कौसिलो मे पृथक् निर्वाचन का अधिकार दिया गया था, पार्लमेण्ट से सिफारिश करने के लिए उस व्यवस्था को स्वीकार किया जाता है जो यरवडा-समझौते के मातहत स्थिर हुई है।

(२) यरवडा-समझौते के द्वारा प्रान्तीय-कौंसिलो में दलित-जातियों को जितनी जगहे देना निश्चित हुआ है, उन्हें स्वीकार किया जाता है।

(३) यरवडा के समझौते मे दलित-जातियो के हित की गारण्टी के सम्बन्ध में जो-कुछ कहा गया है वह सवर्ण हिन्दुओ-द्वारा दलित-जातियो को दिये गये निश्चित वचन के रूप में स्वीकार किया जाता है।

(४) बडी कौंसिल के लिए दलित-जातियो के प्रतिनिधियों को चुनने की प्रणाली और मताधिकार की सीमा के सम्बन्ध में यह कहना है कि अभी सरकार यरवडा-समझौते की शर्तों को निश्चित रूप में मान्य नही कर सकती, क्योकि अभी बडी कौंसिल के प्रतिनिधित्व और मताधिकार का प्रश्न विचाराधीन है, पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि सरकार समझौते के विरुद्ध नहीं है।

(५) बडी कौंसिल में आम निर्वाचन के लिए खुली जगहो में से १८ जगहें दलित-जातियो के लिए सुरक्षित रक्खी जायें, इस बात को सरकार दलित-जातियो और अन्य हिन्दुओ के पारस्परिक समझौते के रूप में स्वीकार करती है।

गाधीजी को यह व्यवस्था स्वीकार करने में कुछ पशोपेश हुआ। वह चाहते थे कि दलित-जातियो के नेता भी सन्तुष्ट हो जायँ। उन्हे अपने भौतिक प्राण बचाने की चिन्ता न थी, बल्कि उन लाखो प्राणियो के नैतिक प्राण बचाने की चिन्ता थी, जिनके लिए वह उपवास कर रहे थे। परन्तु अन्त मे प० हृदयनाथ कुजरू और चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य ने गाधीजी का सन्तोष करा दिया। इसपर गाधीजी ने २६ तारीख को शाम के सवा पाच बजे उपवास छोडने का निश्चय किया। भजन और धार्मिक श्लोक-पाठ के वाद उन्होने पारणा की। यह ठीक था कि गाधीजी के प्राण बच गये, परन्तु जिस श्वास में वह अपना उपवास भग करने को राजी हुए उसीमें उन्होने यह भी कह दिया कि यदि उचित समय के भीतर अस्पृश्यता-निवारण-सम्बन्धी सुधार नेकनीयती के साथ पूरा न किया गया तो मुझे निश्चय ही नये सिरे से उपवास करना पडेगा। गाधीजी ने कहा—"स्वतत्रता का सन्देश हरेक हरिजन के घर मे पहुँचना चाहिए और यह तभी हो सकता है जब सुधार हरेक गाव मे किया जाय"। जनता ने उपवास की उपयोगिता या औचित्य के सम्बन्ध में सन्देह प्रकट किया था। गाधीजी को इस सम्बन्ध में कुछ कहना था। इसलिए उन्होने १५ और २० सितम्बर को वक्तव्य दिये। उन्होने अपनी स्थिति इस प्रकार स्पष्ट की —

"ज्ञान और तप के लिए उपवास करने की प्रथा सनातन काल से चली आती है। ईसाई-धर्म मे और इस्लाम मे इसका साधारणतया पालन किया जाता है, और हिन्दू-धर्म तो आत्म-शुद्धि और तपस्या के लिए किये गये उपवासो के उदाहरणो से भरा पडा है। मैंने आत्म-शुद्धि करने की बडी चेष्टा की है और उसका फल यह हुआ है कि मुझे 'अन्तर्नाद' ठीक-ठीक और साफ-साफ सुनने की कुछ क्षमता प्राप्त हो गई है। मैंने यह प्रायश्चित्त उस अन्तर्नाद की आज्ञा के अनुसार आरम्भ किया है।" यदि लोग यह कहें कि उपवास तो दूसरो को धमकाना है, तो गाधीजी का उत्तर है कि "प्रेम विवश करता है, धमकाता नही है," ठीक जिस प्रकार सत्य और न्याय विवश करते हैं। मै अपने उपवास को न्याय के पलडे में रखना चाहता हूँ। ऊपर से देखनेवालो को मेरा यह कार्य बच्चो का सा खेल प्रतीत हो सकता है, पर मुझे ऐसा प्रतीत नही होता। यदि मेरे पास कुछ और होता तो इस अभिशाप को मिटाने के लिए मै उसे भी झोक देता। पर मेरे पास प्राणो से अधिक और कुछ हई नही।" "यह आगामी उपवास उनके विरुद्ध है जिनकी मुझमें आस्था है। चाहे वे भारतीय हो चाहे विदेशी। यह उपवास उनके विरुद्ध नही है जिनकी मुझमें आस्था नही।" इस प्रकार उन्होने यह बता दिया कि यह उपवास न अग्रेज अफसरो के विरुद्ध है, न भारत में उनके विरोधियों—चाहे

वे हिन्दू हो या मुसलमान—के विरुद्ध है, बल्कि उन असख्य भारतीयो के विरुद्ध है जिनका विश्वास है कि वह न्यायपूर्ण बात के लिए किया गया है। गाधीजी ने कहा—"इस उपवास का प्रधान उद्देश तो हिन्दू अन्त करण में ठीक-ठीक धार्मिक कार्य-शीलता उत्पन्न करना है।"

बम्बई का प्रस्ताव

प्रधान-मन्त्री-द्वारा पैक्ट स्वीकार होने और गाधीजी के उपवास छोडने के बाद ही परिषद् ने बम्बई में सभा की। एक प्रस्ताव पास किया, जिसके द्वारा प्रतिज्ञा की गई कि हिन्दू अस्पृश्यता का निवारण करेंगे। जो सस्था बाद को हरिजन-सेवक-सघ के रूप में विकसित हो गई उसकी स्थापना इसी प्रस्ताव के फल-स्वरूप हुई। इसके सभापति सेठ घनश्यामदास बिडला और मन्त्री भारत-सेवक-समिति के श्री अमृतलाल ठक्कर हुए।

यहा हम वह प्रस्ताव देते हैं, जो २५ सितम्बर १९३२ को बम्बई की सभा ने सर्व-सम्मति से पास किया था। इस सभा के सभापति पण्डित मदनमोहन मालवीय थे।

"यह परिषद् निश्चय करती है कि अब भविष्य मे हिन्दू जाति में किसीको जन्म से अस्पृश्य न समझा जायगा और जिन्हें अबतक अस्पृश्य समझा जाता रहा है उन्हें अन्य हिन्दुओ की भाति ही कुओ, पाठशालाओ, सडको और अन्य सार्वजनिक सस्थाओ का उपयोग करने का अधिकार रहेगा। मौका मिलते ही इस अधिकार को कानूनी स्वरूप दे दिया जायगा और यदि इस प्रकार का रूप उसे स्वराज्य-पार्लमेण्ट स्थापित होने से पहले तक प्राप्त न हुआ तो स्वराज्य-पार्लमेण्ट का पहला कानून इस सम्बन्ध में होगा।

"यह भी निश्चित किया जाता है कि सारे हिन्दू नेताओ का यह कर्तव्य होगा कि पुराने रिवाजो के कारण अस्पृश्य कहलानेवाले हिन्दुओ पर मन्दिर-प्रवेश आदि के सम्बन्ध में जो सामाजिक बधन लगा दिया गया है उसे वे सारे वैध और शान्तिपूर्ण उपायो के द्वारा दूर कराने की चेष्टा करें।"

ऐसे पवित्र तप का स्वभावत ही पूरा परिणाम निकला। अस्पृश्यता-निवारण के लिए सारा देश तैयार हो गया। खतरा इसी बात का था कि कहीं युवक जल्दबाजी से काम न लें। इसलिए गाधीजी को लगाम खींचनी पडी। अस्पृश्यो या हरिजनो—जैसा कि अब वे कहलाने लगे थे—के लिए मन्दिर-प्रवेश का अधिकार प्राप्त कराने के निमित्त देश में कई व्यक्तियो ने सत्याग्रह किया। जिस प्रकार

असहयोग-आन्दोलन के जमाने में लोग झटपट सत्याग्रह आरम्भ कर देना चाहते थे, उसी प्रकार हरिजन-आन्दोलन के अवसर पर भी उत्साही युवक परिस्थिति पर, या सत्याग्रह जैसा कठोर तप करने के अपने सामर्थ्य पर, विना विचार किये ही झटपट सत्याग्रह आरम्भ कर देना चाहते थे। गाधीजी के नियत्रण और प्रभाव ने १९२१–२२ में अनेक वार परिस्थितियो को वचाया था, वही प्रभाव अव फिर काम कर रहा था। हरिजन-आन्दोलन मे रस लेने के गाधीजी के आवाहन का धन और जन दोनो रूप में ऐसा पर्याप्त उत्तर मिला कि हालत में हर घण्टे और हर मिनट अन्तर पडता दिखाई दिया। भोपाल के नवाव ने इस हिन्दू-धार्मिक आन्दोलन के लिए ५०००) दिये। फादर विन्स्लो ने अपने अन्य सहधर्मियो के हस्ताक्षर के साथ एक अपील छपवाकर ईसाइयो के लिए पृथक् निर्वाचन की व्यवस्था को धिक्कारा। उधर मौलाना शौकतअली गाधीजी की रिहाई का आग्रह कर रहे थे और इस वात पर जोर दे रहे थे कि हिन्दू-मुस्लिम-समस्या का भी निपटारा हो जाय। इस प्रकार वातावरण में एकता की भावना और एकता की पुकार छाई हुई थी, और यदि सरकार अकस्मात् २९ सितम्वर को अपनी नीति में परिवर्त्तन करके गाधीजी से मुलाकात आदि करने की वे सुविधायें जो उन्हें उपवास के समय दी गई थी, न छीन लेती तो साम्प्रदायिक समझौता अवश्य हो जाता। श्री जयकर उनसे भेंट करना चाहते थे, पर उन्हें इजाजत न मिली। श्रीमती सरोजिनी देवी को स्त्रियो की जेल में वापस भेज दिया गया। श्रीमती कस्तूरवा गाधी को गाधीजी के पास से हटा दिया गया। मुलाकातें वन्द कर दी गई। गाधीजी अव वैसे ही कैदी हो गये जैसे १२ सितम्वर से पहले थे। परन्तु सरकार की एक वात की तारीफ करनी पडेगी कि श्रीमती कस्तूरवा को समय के पहले छोड दिया गया और उन्हें दूसरे दिन से गाधीजी के पास रहने दिया गया। गाधीजी ने इस प्रकार हरिजन-कार्य करने की सुविधाओ से वचित होने पर विरोध प्रदर्शित किया, क्योकि सरकार की यह कारंवाई पूना-पैक्ट की शर्तो ही के विरुद्ध थी।

लम्वे-लम्वे पत्र-व्यवहार के वाद अन्त में सरकार ने गाधीजी को अपना अस्पृश्यता-निवारण-कार्य जारी रखने की अनुमति दे दी। हाल ही मुलाकातियो के, पत्र-व्यवहार के और समाचारपत्रो में लेख छपाने के सम्वन्ध मे जो रुकावट डाल दी गई थी, उसे भी हटा लिया गया, और ७ नवम्वर को होम-मेम्वर मि० हेग ने वडी कौंसिल मे निम्नलिखित वक्तव्य दिया —

"हाल ही में गाधीजी ने यह कहा था कि उन्होने अस्पृश्यता-निवारण के सम्वन्ध में जो कार्यक्रम निश्चय किया है, उसे पूरा करने के लिए मुलाकातो के, पत्र-व्यवहार

के और केवल इस विषय से सम्बन्ध रखनेवाली अन्य बातो के सम्बन्ध में उन्हें अधिक सुविधा मिलनी चाहिए। सरकार गाधीजी की अस्पृश्यता-निवारण-सम्बन्धी चेष्टाओं में बाधा नही डालना चाहती, क्योंकि गाधीजी ने बताया है कि अस्पृश्यता-निवारण एक नैतिक और धार्मिक सुधार है, जिसका सत्याग्रह-आन्दोलन से कोई सम्बन्ध नहीं है। अतएव सरकार ने अस्पृश्यता-निवारण से सम्बन्ध रखनेवाली मुलाकातो के तथा पत्र-व्यवहार और लेख-प्रकाशन के सम्बन्ध में रुकावट हटा ली है, पर जिन मुलाकातो का सम्बन्ध विशेष रूप से राजनैतिक बातो से है, उनके प्रति सरकार की स्थिति पहले ही जैसी है, जैसा कि वाइसराय के प्राइवेट-सेक्रेटरी-द्वारा मौलाना शौकतअली को दिये गये उत्तर से प्रकट है।" (पूना-पैक्ट और तत्सम्बन्धी सरकार से हुआ पत्र-व्यवहार परिशिष्ट ८ में देखिए।)

गुरुवयूर-सत्याग्रह

इस प्रथम महान् व्रत के और पूना-पैक्ट के विषय का अन्त करने से पहले हम इस विषय से सम्बन्ध रखनेवाली एक घटना की ओर चर्चा करना चाहते है, जिसकी ओर जनता का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित हुआ। श्री केलप्पन मलाबार में खास तौर से हरिजन-उत्थान-सम्बन्धी कार्य कर रहे थे। उनकी अन्तरात्मा ने उन्हें आमरण उपवास करने को प्रेरित किया। उन्होंने इस उपवास का सकल्प गाधीजी के महान् व्रत के लगभग साथ-ही-साथ किया। श्री केलप्पन का उद्देश था कि गुरुवयूर-मन्दिर के ट्रस्टियो को अस्पृश्यो के लिए मन्दिर-प्रवेश की अनुमति देने को राजी किया जाय। गाधीजी ने इस मामले की सारी बातो का अध्ययन करने के बाद स्थिर किया कि ट्रस्टियो को काफी नोटिस नही दिया गया। उन्हें बताया गया कि सफलता प्राप्त हुई रक्खी है—पर गाधीजी ने कहा कि तात्कालिक सफलता प्राप्त होने-न-होने का प्रश्न नहीं है, प्रश्न है कार्य के नैतिक औचित्य का।

इसलिए गाधीजी ने श्री केलप्पन को तार दिया कि उपवास स्थगित करदो और ट्रस्टियो को पहले नोटिस देने के बाद ही फिर उचित अवसर पर उपवास करना ठीक होगा। साथ ही उन्होंने यह भी आश्वासन दिया कि यदि आवश्यक हुआ तो मैं भी श्री केलप्पन के साथ उपवास करूँगा। उसके बाद श्री केलप्पन ने भी उपवास करना त्याग दिया।

यहा गाधीजी के उस उपवास का भी जिक्र कर देना अनुचित न होगा जोकि २ दिसम्बर १९३२ को उन्होंने श्री अप्पासाहेब पटवर्धन की महानुभूति में शुरू किया

था। श्री पटवर्धन ने जेल में भगी का काम मागा था, लेकिन अधिकारियो ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया। गाधीजी ने इस बारे मे बम्बई-सरकार को लिखा, लेकिन उसका भी कोई असर न हुआ। इसपर श्री पटवर्धन ने अपना खाना क्रमश कम करते हुए मृत्यु तक पहुँचानेवाला उपवास आरम्भ किया। अस्थायी-सन्धि के समय गाधीजी ने अप्पासाहब पटवर्धन से कहा था कि अगर तुम्हारी माग स्वीकृत न हुई तो मैं भी तुम्हारे साथ उपवास करूँगा, अत उनकी सहानुभूति में गाधीजी ने भी उपवास शुरू कर दिया। लेकिन दो ही दिनो में अधिकारियो ने यह आश्वासन दे दिया कि अगर उपवास छोड दिया जाय तो वे उनकी माग पर विचार करेंगे। उसके फलस्वरूप उपवास तोड़ दिया गया। और एक सप्ताह के अन्दर ही भारत-मत्री ने जेल के नियमो में ऐसा सशोधन कर दिया कि जिससे सवर्ण हिन्दुओ को भगी का काम देने की रुकावट उठ गई। इस प्रकार यह सत्याग्रह सफल हुआ।

गिरफ्तारियाँ

हमने १६३२ के सत्याग्रह-आन्दोलन की प्रगति का वर्णन कर ही दिया है। हमने पूना-पैक्ट का भी जिक्र कर दिया है। जनता ने गाधीजी के अस्पृश्यता-निवारण के आवाहन का जो उत्तर दिया उससे सत्याग्रह-आन्दोलन की प्रगति को निस्सन्देह क्षति पहुँची।

इतने पर भी काग्रेस का कार्यक्रम चलाया जाता रहा। सत्याग्रह-आन्दोलन के शिथिल होने का एक कारण और भी था। जैसी परिस्थिति थी, और जैसा कि बयान किया जा चुका है, सत्याग्रह-आन्दोलन केवल लुक-छिपकर ही चलाया जा सकता था। और यह तरीका सत्याग्रह के सिद्धान्तो से असगत और विरुद्ध ही नही बल्कि विपरीत भी है। पूना मे गाधीजी के उपवास के सिलसिले में मित्रो के एकत्र होने से उस अवसर पर उन प्रमुख काग्रेसी नेताओ मे, जो रिहा हो चुके थे, विचार-विनिमय करने का खासा मौका मिल गया। उसीके फल-स्वरूप दो गश्ती-पत्र निकाले गये। एक मे यह स्पष्ट किया गया कि काग्रेसवादियो का मुख्य काम सत्याग्रह-आन्दोलन जारी रखना है, और अस्पृश्यता-निवारण का काम राष्ट्रीय विचारवाले गैर-काग्रेसियो को और उन लोगो को दिया गया है जो किसी-न-किसी कारणवश जेल जाना नही चाहते। दूसरे पत्र में उस लुका-छिपी की नीति का, जो सत्याग्रह-आन्दोलन में आ चुकी थी, अन्त करने पर जोर दिया गया था।

सरकार ने अपना आक्रमण ४ जनवरी १६३२ को आरम्भ किया था।

इसलिए बाबू राजेन्द्रप्रसाद ने, जो चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य के बाद स्थानापन्न-सभापति हुए थे, सारी प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटियो को हिदायतें भेज दी कि १९३३ के इस दिन एक खास वक्तव्य पढा जाय। यह वक्तव्य भी, जिसमें सक्षेप में आन्दोलन की प्रगति और उन सारी समस्याओ का पर्यालोचन दिया गया था जो उस समय जनता के दिमाग मे सबसे ऊपरी थी, जगह-जगह भेज दिया गया। जगह-जगह सभायें हुई, जिनमें यह वक्तव्य गिरफ्तारियो के और लाठी-वर्षा के बीच में पढा गया। ६ जनवरी १९३३ को कांग्रेस-सभापति भी गिरफ्तार हो गये और उनका स्थान श्री अणे ने ग्रहण किया।

जब १९३२ की जनवरी में युद्ध आरम्भ हुआ तो सरदार वल्लभभाई पटेल कांग्रेस के सभापति थे। कार्य-समिति ने यह निश्चय किया कि १९३० के विपरीत इस बार कार्य-समिति के रिक्त स्थान पूरे न किये जायें। सरदार वल्लभभाई ने उन सज्जनो की सूची तैयार की जो उनके बाद एक-एक करके उनका स्थान ग्रहण करेंगे। जनवरी १९३२ और जुलाई १९३३ के बीच में, जब कांग्रेस-सस्था का अस्तित्व लोप हो गया था, बाबू राजेन्द्रप्रसाद, डॉ० अन्सारी, सरदार शार्दूलसिंह कवीश्वर, श्री गगाधरराव देशपाण्डे, डॉ० किचलू, चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य और बाबू राजेन्द्रप्रसाद ने सभापति का भार ग्रहण किया। इस बीच मे जिन-जिन सज्जनो ने मत्री का काम किया और जिन-जिनपर अनेक कठिनाइयो के मध्य में कार्य चलाने का भार आकर पडा उनमें श्री जयप्रकाशनारायण, लालजी मेहरोत्रा, गिरधारी कृपलानी, आनन्द चौधरी, और आचार्य जुगलकिशोर का नाम उल्लेखनीय है।

१९३३ की घटनायें तो सक्षेप में ही बताई जा सकती है। कलकत्ते का अधिवेशन सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण रहा।

कलकत्ता-कांग्रेस

अप्रैल १९३२ के दिल्ली के अधिवेशन की भाति कलकत्ता का अधिवेशन भी निषेधाज्ञा के होते हुए करना पडा। यद्यपि इसका आयोजन उस समय किया गया था जब सत्याग्रह-आन्दोलन शिथिल पड गया था, फिर भी जो उत्साह और प्रतिरोध की भावना यहा दिखाई पडी वह दिल्ली में भी दिखाई न पडी थी। कुछ प्रान्तो ने तो अपने पूरे प्रतिनिधि भेजे। कुल मिलाकर कोई २२०० प्रतिनिधि सारे प्रान्तो से चुने गये। इस बात से कि प० मदनमोहन मालवीय ने अधिवेशन का सभापतित्व स्वीकार कर लिया है, राष्ट्र का उत्साह और भी बढ गया। श्रीमती मोतीलाल नेहरू ने

वृद्धावस्था और दुर्बलता का ध्यान न करके अधिवेशन मे भाग लेने का जो निश्चय किया उससे आनेवाले प्रतिनिधियो को बड़ी स्फूर्ति मिली। अधिवेशन कलकत्ते में ३१ मार्च को बडे सनसनीपूर्ण वातावरण में हुआ। डॉ० प्रफुल्ल घोष स्वागत-समिति के अध्यक्ष थे। सरकार ने अधिवेशन न होने देने के लिए कुछ उठा न रक्खा। पण्डित मदनमोहन मालवीय को कलकत्ते नही पहुँचने दिया गया। उन्हें बीच ही में आसनसोल स्टेशन पर गिरफ्तार कर लिया गया। उनके साथ ही श्रीमती मोतीलाल नेहरू, डॉ० सैयद-महमूद और अन्य सारे व्यक्ति, जो सभापति के साथ थे गिरफ्तार कर लिये गये और सबको आसनसोल की जेल में ले जाया गया। कांग्रेस के कार्य-वाहक-सभापति श्री अणे भी कलकत्ता जाते हुए गिरफ्तार कर लिये गये और उन्हें जेल में भेज दिया गया। कलकत्ते में स्वागत-समिति के सदस्यो को गिरफ्तार कर लिया गया और कई कांग्रेस-नेताओ पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। श्रीमती नेली सेनगुप्त और डॉ० मुहम्मद आलम इनमें प्रमुख थे। लगभग १००० प्रतिनिधि रवाना होने से पहले ही, या कलकत्ते के मार्ग मे, गिरफ्तार कर लिये गये। बाकी प्रतिनिधि नगर में पहुँचने मे सफल हुए। निषेधाज्ञा होते हुए भी लगभग ११०० प्रतिनिधि अधिवेशन के लिए नियत स्थान पर एकत्र हो गये। शीघ्र ही उनपर पुलिस आ टूटी और कांग्रेस-वादियो के शान्ति-पूर्ण समुदाय पर लाठियां बरसने लगी। बहुत-से प्रतिनिधि बुरी तरह घायल हुए और श्रीमती नेली सेनगुप्त और अन्य प्रमुख कांग्रेसवादी गिरफ्तार किये गये। पुलिस ने अधिवेशन को बल-प्रयोग-द्वारा होने से रोकने की चेष्टा की, परन्तु असफल रही, क्योंकि लाठियो की वर्षा होते रहने पर भी प्रतिनिधियो का भीतरी समूह अपनी-अपनी जगहो पर जमा रहा, और वे सातो प्रस्ताव, जिन्हें पास करने के लिए पेश किया जानेवाला था, पढकर सुनाये गये और पास हुए। कलकत्ता-अधिवेशन के सिलसिले में गिरफ्तार हुए अधिकांश व्यक्तियो को कांग्रेस समाप्त होते ही छोड दिया गया। अन्य व्यक्तियो पर मुकदमा चलाया गया और सजाये दी गईं। श्रीमती सेनगुप्त को भी छ मास का दण्ड मिला। जेल से रिहा होते ही पण्डित मदनमोहन मालवीय सीधे कलकत्ता पहुँचे और शीघ्र ही देश के सामने इस बात का कि पुलिस ने किस अमानुषिकता के साथ कांग्रेस भंग करने की चेष्टा की थी, प्रमाण पेश किया। उन्होने सरकार को जांच करने की चुनौती दी, पर यह चुनौती कभी स्वीकार न की गई। नीचे हम ३१ मार्च १९३३ को हुए कलकत्ता-अधिवेशन के प्रस्ताव देते है —

१ स्वाधीनता का लक्ष्य—यह कांग्रेस उस प्रस्ताव को दोहराती है जो

लाहौर में १६२६ में पास किया गया था और जिसके द्वारा पूर्ण स्वाधीनता को अपना लक्ष्य घोषित किया गया था।

२. सत्याग्रह वैध-अस्त्र है—यह कांग्रेस सत्याग्रह को जनता के अधिकारों की रक्षा करने, राष्ट्रीय मर्यादा को कायम रखने और राष्ट्रीय लक्ष्य की प्राप्ति के लिए पूर्ण वैध उपाय समझती है।

३. सत्याग्रह कार्यक्रम का पालन—यह कांग्रेस कार्य-समिति के १ जनवरी १६३२ के निश्चय की पुष्टि करती है। पिछले १५ महीनो में जो-कुछ हुआ है उसका ध्यानपूर्वक निरीक्षण करने के बाद कांग्रेस का यह दृढ निश्चय है कि देश इस समय जिस परिस्थिति में है, उसको देखते हुए सत्याग्रह-आन्दोलन को दृढ और व्यापक बनाया जाय, और इसलिए यह कांग्रेस जनता को आवाहन करती है कि इस आन्दोलनको कार्य-समिति के उपर्युक्त प्रस्ताव के अनुरूप अधिक शक्ति के साथ चलाया जाय।

४. बहिष्कार—यह कांग्रेस जनता की सारी श्रेणियो और वर्गो को आवाहन करती है कि वे विदेशी कपडा बिलकुल त्याग दें, खद्दर का व्यवहार करें और अंग्रेजी माल का बहिष्कार करें।

५. व्हाइट-पेपर—इस कांग्रेस की सम्मति है कि जबतक ब्रिटिश-सरकार ऐसे निर्दयता-पूर्ण दमन-कार्य में लगी हुई है, जिसके द्वारा देश के परम-विश्वसनीय नेता और उनके हजारो अनुयायी जेलो में पडे हैं या नजरबन्द हैं, बोलने और एकत्र होने के अधिकारों का हनन हो रहा है, समाचार-पत्रों की स्वाधीनता पर कडा प्रतिबन्ध लग रहा है, और साधारण नागरिक-व्यवस्था के स्थान पर मार्शल-लॉ का दौर-दौरा है, और जिसका आरम्भ जान-बूझकर महात्मा गाधी के विलायत से लौटने पर, राष्ट्रीय-भावना को कुचलने के लिए किया गया था, तबतक उसके द्वारा तैयार की गई किसी भी शासन-व्यवस्था पर भारतीय जनता न विचार कर सकती है, न उसे स्वीकार कर सकती है।

कांग्रेस का विश्वास है कि हाल ही में प्रकाशित हुए व्हाइट-पेपर की योजना से जनता धोखे में न पडेगी, क्योंकि वह भारत के हितो की विरोधिनी है और इस देश में विदेशी प्रभुत्व स्थायी बनाने के लिए तैयार की गई है।

६. गांधीजी का उपवास—यह कांग्रेस देश को, २० सितम्बर को गांधीजी के उपवास की सकुशल समाप्ति पर, बधाई देती है और आशा करती है कि अस्पृश्यता शीघ्र ही अतीत की वस्तु हो जायगी।

७ मौलिक अधिकार—इस कांग्रेस की सम्मति है कि जनता को यह समझाने

के लिए कि 'स्वराज्य' उनके लिए क्या महत्त्व रखता है, इस सम्बन्ध में कांग्रेस की स्थिति को साफ कर दिया जाय, और ऐसे रूप में साफ किया जाय कि उसे जन-साधारण समझ सकें। इस लक्ष्य को सामने रखकर यह कांग्रेस अपने १९३१ के कराची-अधिवेशन के मौलिक अधिकारो सम्बन्धी प्रस्ताव न० १४ को दुहराती है।

गांधीजी का उपवास

कलकत्ता-कांग्रेस के बाद शीघ्र ही देश मे एक घटना हुई जो बिलकुल आकस्मिक थी। हरिजन-आन्दोलन में काम करनेवाले कार्यकर्ताओ की सख्या उत्तरोत्तर बढ रही थी। इन कार्यकर्ताओ को अपना काम पवित्रता, सेवाभाव और अधिक नेकनीयती के साथ करने में सहायता देने के लिए गाधीजी ने ८ मई १९३३ को आत्म-शुद्धि के निमित्त २१ दिन का उपवास आरम्भ किया। उनके शब्दो में "यह अपनी और अपने साथियो की शुद्धि के लिए, जिससे वे हरिजन-कार्य में अधिक सतर्कता और सावधानी के साथ काम कर सकें, हृदय से की गई प्रार्थना है। इसलिए मै अपने भारतीय तथा ससार-भर के मित्रो से अनुरोध करता हूँ कि वे मेरे लिए मेरे साथ प्रार्थना करें कि मै इस अग्निपरीक्षा में सकुशल पूरा उतरूँ, और चाहे मै मरूँ या जिऊँ, मैने जिस उद्देश से उपवास किया है वह पूरा हो। मै अपने सनातनी भाइयो से अनुरोध करता हूँ कि वे प्रार्थना करे कि इस उपवास का परिणाम मेरे लिए चाहे जो कुछ हो, कम-से-कम वह सुनहरी ढकना, जिसने सत्य को ढक रक्खा है, हट जाय।" उन्होने एक पत्र-प्रतिनिधि से कहा—"किसी धार्मिक आन्दोलन की सफलता उसके आयोजको की बौद्धिक या भौतिक शक्तियो पर निर्भर नही करती, बल्कि आत्मिक शक्ति पर निर्भर करती है, और उपवास इस शक्ति की वृद्धि करने का सबसे अधिक जाना-बूझा उपाय है।"

उसी दिन सरकार ने एक विज्ञप्ति निकाली, जिसमे कहा गया कि उपवास जिस उद्देश से किया गया है उसको सामने रखकर और उसके द्वारा प्रकट होनेवाली मनोवृत्ति को ध्यान में रखते हुए, भारत-सरकार ने निश्चय किया है कि वह (गाधीजी) रिहा कर दिये जायँ। तदनुसार गाधीजी ८ मई को छोड दिये गये। रिहा होते ही गाधीजी ने एक वक्तव्य दिया, जिसके द्वारा उन्होने छ सप्ताह के लिए सत्याग्रह-आन्दोलन मौकूफ रखने की सिफारिश की।

गाधीजी ने कहा—"मै इस रिहाई से प्रसन्न नही हूँ, और, जैसा कि कल मुझसे सरदार वल्लभभाई ने कहा और ठीक ही कहा, मै इस रिहाई से लाभ उठाकर सत्याग्रह-आन्दोलन का सचालन या पथ-प्रदर्शन कैसे कर सकता हूँ?

"इसलिए यह रिहाई मुझे सत्य का अन्वेषण करने को प्रेरित करती है और सम्मानशील व्यक्ति की हैसियत से मुझपर एक बहुत बडा भार रखती है और मुझे असमजस मे डालती है। मैने आशा की थी और मै अब भी आशा करता हूँ कि मै न तो किसी बात को लेकर उत्तेजित होऊँगा, और न किसी प्रकार के वाद-विवाद में ही भाग लूगा। यदि मै अपने दिमाग में हरिजन-कार्य के अतिरिक्त और किसी बाहरी बात को जगह दूगा तो इस उपवास का उद्देश ही नष्ट हो जायगा।

"पर साथ ही, रिहाई होने पर अब मै अपनी थोडी-बहुत शक्ति सत्याग्रह-आन्दोलन का अध्ययन करने में भी लगाने को बाध्य हूँ।

"इसमें सन्देह नही कि इस समय मै केवल इतना ही कह सकता हूँ कि सत्याग्रह के सम्बन्ध में मेरे विचारो मे किसी प्रकार का अन्तर नही पडा है। असख्य सत्याग्रहियो की वीरता और आत्मत्याग के लिए मेरे पास साधुवाद के सिवा और कुछ नही है। इतना कहने के बाद मै यह कहे बिना भी नही रह सकता कि इस आन्दोलन में जिस लुका-छिपी से काम लिया गया है वह उसकी सफलता के लिए घातक है। यदि आन्दोलन को जारी रखना है, तो जो लोग इस आन्दोलन का सचालन देश के विभिन्न स्थानो में कर रहे है उनसे मेरा कहना है कि लुका-छिपी छोड दो। यदि इससे एक भी सत्याग्रही का मिलना कठिन हो जाय तो मुझे परवाह नही है।

"इसमे सन्देह नही कि जन-साधारण को आर्डिनेन्सो ने भयभीत बना दिया है, और मेरी धारणा है कि लुका-छिपी के तरीको का भी यह दब्बूपन उत्पन्न करने मे इनका हाथ है।

"सत्याग्रह-आन्दोलन उसमें भाग लेनेवाले स्त्री-पुरुषो की सख्या पर नही, उनके गुण और योग्यता पर निर्भर करता है, और यदि मै आन्दोलन का सचालन करूँ तो मै योग्यता पर जोर दूगा। यदि ऐसा हो सके तो आन्दोलन की सतह बहुत ऊँची हो जाय। किसी और रूप मे जनता को हिदायत करना असम्भव है। वास्तविक युद्ध के सम्बन्ध मे मुझे कुछ नही कहना है। ये विचार जो मैने प्रकट किये है, पिछले कई महीनो से मैने अपने भीतर बन्द कर रक्खे थे, और मैने जो-कुछ कहा है उसमें सरदार वल्लभभाई भी मुझसे सहमत है।

"मै एक बात और कहूँगा, चाहे वह मुझे रुचिकर हो या न हो—इन तीन सप्ताहो में सारे सत्याग्रही भीषण दुविधा में रहेंगे। यदि कांग्रेस के सभापति श्री माधवराव अणे बाकायदा छ सप्ताह के लिए सत्याग्रह मौकूफ रखने की घोषणा कर दें तो अधिक उत्तम हो।

"अब मैं सरकार से एक अपील करूँगा। यदि सरकार देश में वास्तविक शान्ति चाहती है और समझती है कि वास्तविक शान्ति मौजूद नही है, यदि वह समझती है कि आर्डिनेन्स का शासन सभ्य-शासन नही है, तो उसे इस आन्दोलन-बन्दी से लाभ उठाकर सारे सत्याग्रहियो को विना किसी शर्त के छोड देना चाहिए।

"यदि मै इस अग्नि-परीक्षा से बच गया तो इससे मुझे सारी अवस्था पर विचार करने का अवसर मिलेगा और मैं काग्रेसी नेताओ को और यदि मैं कहने का साहस करूँ तो, सरकार को सलाह दे सकूगा। मैं उस स्थान से बातचीत आरम्भ करना चाहूँगा जहा वह मेरे इंग्लैण्ड से वापस आने पर रह गई थी।

"यदि मेरी चेष्टाओ के फल-स्वरूप सरकार और काग्रेस मे समझौता न हो सका और सत्याग्रह-आन्दोलन फिर आरम्भ किया गया तो सरकार, यदि चाहे तो, फिर आर्डिनेन्स का शासन आरम्भ कर सकती है। यदि सरकार इच्छुक हुई तो कोई-न-कोई उपाय निकल ही आयेगा। जहा तक मेरा सम्बन्ध है, इस बात का मुझे पूरा यकीन है।

"सत्याग्रह उस समय तक नही उठाया जा सकता जबतक इतनी अधिक सख्या मे सत्याग्रही जेलो में है, और जबतक सरकार वल्लभभाई पटेल, खानसाहब अब्दुल-गफ्फारखा और पण्डित जवाहरलाल नेहरू जीवित ही समाधिस्थ है, तबतक कोई समझौता नही हो सकता।

"वास्तव मे सत्याग्रह उठाना जेल से बाहर किसी आदमी के सामर्थ्य मे नही है। यह केवल उस समय की कार्य-समिति ही कर सकती है। मेरा मतलब उस कार्य-समिति से है जो मेरी गिरफ्तारी के समय मौजूद थी। मै अब सत्याग्रह के सम्बन्ध में कुछ नही कहूँगा। शायद मैंने सम्प्रति आवश्यकता से अधिक कह दिया है, परन्तु मुझे जो-कुछ कहना था वह मैंने कहने की शक्ति रहते कह दिया।

"मै पत्र-प्रतिनिधियो से कहूँगा कि वे मुझे परेशान न करे। भविष्य में मुलाकात के लिए आनेवालो से भी मैं कहूँगा कि वे सयम से काम ले। वे मुझे अब भी जेल ही में समझें। मै कोई राजनैतिक चर्चा या अन्य किसी प्रकार की चर्चा करने में असमर्थ हूँ।

"मै शान्ति चाहता हूँ और सरकार को बता देना चाहता हूँ कि मै इस रिहाई का दुरुपयोग न करूँगा, और यदि मै इस अग्नि-परीक्षा मे से निकल आया और मुझे उस समय भी राजनैतिक वातावरण ऐसा ही अन्धकारमय दिखाई पडा तो मैं सविनय-अवज्ञा को बढाने की लुक-छिपकर या खुल्लम-खुल्ला कोई भी कार्रवाई किये बिना ही

सरकार से कहूँगा कि मुझे अपने साथियो के पास, जिन्हे मै इस समय त्याग-सा आया हूँ, यरवडा पहुँचा दिया जाय।

"सरदार वल्लभभाई के साथ रहना बडे सौभाग्य की बात हुई। मै उनकी अद्वितीय वीरता और उनके प्रज्वलित स्वदेश-प्रेम से अच्छी तरह परिचित था, पर मुझे इस प्रकार १६ महीने तक उनके साथ रहने का सौभाग्य कभी प्राप्त न हुआ था। वह मुझे जिस स्नेह के साथ ढके रहते हैं उससे मुझे अपनी प्यारी माता के स्नेह की याद आ जाती है। मैंने पहले नही जाना था कि उनमें मातृ-सुलभ गुण मौजूद हैं। मुझे कुछ हो जाता तो वह तत्काल अपना बिछौना छोड देते। वह मेरे आराम से सम्बन्ध रखनेवाली जरा-जरा-सी बातो की निगरानी रखते। उन्होने और मेरे अन्य सहयोगियो ने मानो मुझे कुछ न करने देने का षड्यन्त्र रच लिया था, और मुझे आशा है कि जब मै यह कहूँगा, कि जब कभी हमने किसी राजनैतिक समस्या की चर्चा की, तभी उन्होने सरकार की कठिनाइयो को बडे अच्छे ढग से समझा, तो सरकार मेरी बात पर विश्वास करेगी। उन्होने बारडोली और खेडा के किसानो के सम्बन्ध में जो हितचिन्तना प्रकट की, उसे मैं कभी न भूलूगा।"

गाधीजी की घोषणा के बाद ही कांग्रेस के कार्यवाहक-अध्यक्ष ने भी अपनी घोषणा प्रकाशित करके सत्याग्रह आन्दोलन छ सप्ताह के लिए मौकूफ कर दिया। सरकार ने भी उत्तर प्रकाशित कराने में विलम्ब से काम नही लिया।

६ मई को एक सरकारी विज्ञप्ति में कहा गया कि केवल सत्याग्रह के मौकूफ रखने से वे शर्तें पूरी नही होती जो कैदियो की रिहाई के लिए रक्खी गई हैं। सरकार कांग्रेस से इस मामले में सौदा करने को तैयार नही है।

भारत-मत्री के शब्दो में सरकार ने कहा था—"हमारे पास यह विश्वास करने के प्रबल कारण होने चाहिएँ कि उनकी रिहाई से सत्याग्रह दुबारा शुरू न हो जायगा। सत्याग्रह-आन्दोलन को अस्थायी रूप से बद करने से, जिससे कांग्रेसी-नेताओ के साथ समझौते की बातचीत शुरू हो जाय, वे शर्तें पूरी नहीं होती जिनके द्वारा सरकार को सतोष हो जाय कि सत्याग्रह सचमुच हमेशा के लिए त्याग दिया गया है। सत्याग्रह की वापसी के लिए कांग्रेस के साथ बातचीत करने का, इन गैरकानूनी कार्रवाइयो के सम्बन्ध में या उसके साथ समझौता करने के उद्देश से कैदियो को छोडने का कोई इरादा नही है।"

इधर शिमला से यह नकारात्मक उत्तर आया, उधर वियेना से एक वक्तव्य

आया जिसपर श्री विट्ठलभाई पटेल और श्री सुभाष वसु के हस्ताक्षर थे। उसके कुछ अश इस प्रकार है —

"सत्याग्रह वद करने की गाधीजी की ताजा कार्रवाई असफलता की स्वीकारोक्ति है।"

वक्तव्य में यह भी कहा गया कि "हमारी यह स्पष्ट सम्मति है कि गाधीजी राजनैतिक नेता की हैसियत से असफल रहे। इसलिए अब समय आ गया है कि हम नये सिद्धान्तो के ऊपर नये उपाय को लेकर काग्रेस की कायापलट करें, और इसके लिए एक नये नेता की आवश्यकता है, क्योकि गाधीजी से यह आशा करना अनुचित है कि वह ऐसे कार्य-क्रम को हाथ में लेंगे जो उनके जीवन-भर के सिद्धान्तो के साथ मेल न खाता हो।"

वक्तव्य में आगे कहा गया—"यदि काग्रेस मे स्वय ही इस प्रकार का आमूल परिवर्त्तन हो सके तो अच्छा ही है, नही तो काग्रेस के भीतर ही उग्र मतवाले लोगो की एक नई पार्टी बनानी पडेगी।"

यह पहला ही अवसर न था जब गाधीजी को इन दोनो सम्भ्रान्त व्यक्तियो की, जिन्हें युद्ध के समय बीमारी के कारण विदेश में रहना पडा था, विरुद्ध आलोचना का शिकार बनना पडा। गाधीजी जिस प्रकार अपना कष्ट सन्तोष, आस्था और धैर्य के साथ सह रहे थे, उसी प्रकार उन्होने ससार की आलोचना भी सह ली। उनकी प्रतिज्ञा पूरी हुई और २९ मई १९३३ को उन्होने अपने उपवास का अन्त किया।

इस बीच में काग्रेसवादियो में यह तय हुआ कि गाधीजी की रिहाई से जो अवसर मिला है उसका उपयोग करके देश की अवस्था पर आपस म चर्चा की जाय। सोचा गया कि इस प्रकार की बैठक तभी की जाय जब गाधीजी उसमे भाग लेने योग्य हो। इसलिए सत्याग्रह-बन्दी की अवधि को कार्य-वाहक-सभापति ने छ सप्ताह के लिए और बढा दिया।

पूना-परिषद्

१२ जुलाई १९३३ को देश की राजनैतिक अवस्था पर विचार करने के लिए पूना में काग्रेसवादियो की अनियमित बैठक हुई। श्री अणे ने भूमिका-स्वरूप भाषण के साथ इस परिषद् का श्रीगणेश किया। गाधीजी ने राजनैतिक अवस्था के सम्बन्ध में अपने विचार परिषद् के सन्मुख सक्षेप में रख दिये। इसपर आम चर्चा आरम्भ हुई और अन्त में परिषद् दूसरे दिन के लिए स्थगित कर दी गई। दूसरे दिन

की कार्रवाई का आरम्भ गाधीजी ने एक लम्बे-चौडे वक्तव्य के द्वारा किया, जिसमें उन्होंने उन प्रश्नो का उत्तर दिया, जो परिषद् के सदस्यो ने उठाये थे, और साथ ही अपनी सूचनायें भी उनके सामने रक्खी। इसके वाद परिषद् ने अपनी सिफारिशें पेश कीं। उसने सत्याग्रह को बिना किसी शर्त के वापस लेने के प्रस्ताव को रद कर दिया, पर साथ ही व्यक्तिगत सत्याग्रह के प्रस्ताव को भी अस्वीकार किया। अन्त में परिषद् ने गाधीजी को सरकार से समझौता करने के लिए वाइसराय से मिलने का अधिकार दिया। इस निश्चय के अनुसार गाधीजी ने वाइसराय को तार देकर शान्ति की सम्भावना को खोज निकालने के उद्देश से उनसे मिलने की अनुमति चाही। पर वाइसराय ने उत्तर में पूना-परिषद् की चर्चा के सम्बन्ध में समाचार-पत्रो की भ्रमात्मक रिपोर्ट का विस्तृत हवाला दिया और उन रिपोर्टों पर विश्वास करके उस समय तक मुलाकात करने से इन्कार कर दिया जबतक कांग्रेस सत्याग्रह-आन्दोलन वापस न ले ले। गाधीजी ने उत्तर दिया कि सरकार ने अपना रुख एक निजी परिषद् की गोपनीय कार्रवाई के सम्बन्ध में छपे हुए अनधिकार-पूर्ण समाचारो के आधार पर निश्चित किया है, और यदि उन्हें मुलाकात करने की इजाजत मिले तो वह यह दिखा देंगे कि कुल मिलाकर कार्रवाई सम्मानप्रद समझौता करने के पक्ष मे हुई थी। पर गाधीजी की शान्ति-स्थापना की चेष्टा का कोई उत्तर न मिला और राष्ट्र को अपना सम्मान अक्षुण्ण रखने के लिए युद्ध जारी करने को बाध्य होना पड़ा। पर सामूहिक सत्याग्रह बन्द कर दिया गया और जो लोग तैयार थे उन्हें व्यक्तिगत सत्याग्रह करने की सलाह दी गई। कार्य-वाहक-सभापति के आज्ञानुसार सारी कांग्रेस-सस्थायें और युद्ध-समितिया उठा दी गईं।

व्यक्तिगत सत्याग्रह

गाधीजी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह का आरम्भ अपने पास की मूल्यवान् से मूल्यवान् वस्तु के परित्याग से किया। इस प्रकार उन्होंने उस कष्ट में भाग लेने की चेष्टा की जिसे आन्दोलन के दौरान में हजारो ग्रामीणो ने सहा था। उन्होंने साबरमती-आश्रम तोड दिया और आश्रम के निवासियो को और सारे काम छोडकर युद्ध में भाग लेने के लिए आमन्त्रित किया। उन्होंने सारा आश्रम खाली कर दिया और उसकी जगम सम्पत्ति को कुछ सस्थाओ को सार्वजनिक उपयोग के लिए दे दिया। वह किसी दूसरे से लगान आदि न दिलाना चाहते थे, इसलिए वह जमीन, इमारत और खेती सरकार को देने को तैयार हो गये। सरकार की ओर से केवल उस पत्र की पहुँच में एक पक्ति भेजी गई।

साबरमती-आश्रम का दान

जब सरकार ने गाधीजी का दान स्वीकार नही किया तो उन्होंने आश्रम को हरिजन-आन्दोलन के अर्पण कर दिया। इस सम्बन्ध में गाधीजी का वह वक्तव्य याद आता है जो उन्होने १९३० में दाण्डी-यात्रा करने के अवसर पर दिया था। उन्होने प्रतिज्ञा की थी कि जबतक स्वराज्य न मिल जायगा, वह आश्रम को वापस न आयेंगे। उन्होने अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया और एकबार को छोडकर, जब वह अपने एक बीमार मित्र को देखने गये थे, १२ मार्च १९३० के बाद आश्रम मे फिर कदम न रक्खा। इस प्रकार आश्रम को हरिजन-सघ के अर्पण करके उन्होने पार्थिव जगत् से बाध रखने-वाली इस अन्तिम वस्तु का, जिसके प्रति सम्भव था उनके हृदय में मोह बना रहता, अत कर दिया।

१ अगस्त १९३३ को गाधीजी रास नामक गाव की, जो १९३० की फरवरी में वल्लभभाई की गिरफ्तारी के बाद से प्रसिद्धि पा चुका था, यात्रा करनेवाले थे। पर एक दिन पहले ही आधी रात के समय गाधीजी को उनके ३४ आश्रम-वासियो के साथ गिरफ्तार कर लिया गया। गाधीजी ४ अगस्त की सुबह छोड दिये गये और उन्हें यरवडा गाव की सीमा छोडकर पूना जाकर रहने का नोटिस दिया गया। इस आज्ञा की निश्चय ही अवहेलना की गई, और रिहाई के आधे घण्टे के भीतर गाधीजी फिर गिरफ्तार कर लिये गये और साल-भर की सजा दी गई।

उनकी गिरफ्तारी और सजा के बाद ही व्यक्तिगत सत्याग्रह सारे प्रान्तो में आरम्भ हो गया और पहले ही हफ्ते में सैकडो कार्यकर्ता गिरफ्तार हो गये। काग्रेस के कार्यवाहक-अध्यक्ष श्री अणे अकोला से यात्रा करते समय अपने १३ साथियो के साथ १४ अगस्त को गिरफ्तार कर लिये गये और उनके बाद उनके उत्तराधिकारी सरदार शार्दूलसिंह कवीश्वर की बारी आई। परन्तु उन्होने गिरफ्तारी से पहले आज्ञा जारी की कि कार्य-वाहक-अध्यक्ष का पद और डिक्टेटरो की नियुक्ति का सिलसिला तोड दिया जाय, जिससे युद्ध सचमुच व्यक्तिगत सत्याग्रह का रूप धारण करले। गाधीजी ने जो मार्ग दिखाया था उसपर १९३३ के अगस्त से १९३४ के मार्च तक देशभर मे काग्रेस-कार्यकर्त्ता लगातार चलते रहे और सत्याग्रहियो के अटूट ताते ने युद्ध को जारी रक्खा। जबतक प्रान्तीय केन्द्रो से पूरी सामग्री न मिले तबतक इस युद्ध का ठीक-ठीक वर्णन सारे प्रान्तो के साथ न्याय करते हुए नही किया जा सकता। आन्दोलन के अतिम युग में हरेक प्रान्त ने कितने सत्याग्रही दिये, इसका पूरा ब्यौरा मौजूद नही है। केवल इतना ही कहना काफी है कि हजारो ने आवाहन का उत्तर दिया और, जैसी परिस्थिति थी

उसको देखते हुए, हरेक प्रान्त ने स्वतन्त्रता के युद्ध के लिए जितना कुछ वह कर सकता था किया।

गांधीजी की रिहाई

सरकार ने गाधीजी को वे सुविधाये देने से इन्कार कर दिया जो मई में उनकी रिहाई से पहले दी गई थी। इसलिए अब दुवारा गिरफ्तारी के थोडे दिनो बाद ही गाधीजी को फिर अनशन आरम्भ करना पडा। सरकार अडी रही। पर गाधीजी की अवस्था बडी शीघ्रता के साथ शोचनीय होने लगी और उन्हे २० अगस्त को, अर्थात् अनशन के पाचवें दिन, पूना के सैसून अस्पताल में कैदी की हैसियत से पहुँचाया गया। पर २३ अगस्त तक सरकार को यह शक हो गया कि उनके प्राण सकट में है। इसलिए उस दिन उन्हें बिना किसी शर्त के छोड दिया गया। इस अनपेक्षित परिस्थिति ने गाधीजी को असमजस में डाल दिया। पर अपनी रिहाई की अवस्था को ध्यान में रखकर और गिरफ्तारी, अनशन व रिहाई के चूहे और बिल्ली वाले खेल को जान-बूझकर आरम्भ न करने की इच्छा से प्रेरित होकर उन्होने निश्चय किया कि उन्हें अपने-आपको रिहा न समझना चाहिए और अपनी सजा की अवधि की समाप्ति तक, अर्थात् ३ अगस्त १९३४ तक, मर्यादित आत्म-सयम से काम लेना चाहिए, और सत्याग्रह के द्वारा गिरफ्तारी को निमत्रण न देना चाहिए। परन्तु साथ ही उन्होने यह भी स्पष्ट कर दिया कि वह स्वय तो सत्याग्रह न करेंगे, पर जो लोग उनसे सलाह मागेंगे उन्हे अवश्य ठीक मार्ग दिखायेंगे और राष्ट्रीय-आन्दोलन को गलत रास्ता पकड़ने से रोकेंगे। उन्होने यह भी निश्चय किया कि इस अवधि के अधिकाश भाग को वह हरिजन-आन्दोलन की उन्नति में लगायेंगे।

जवाहरलालजी की रिहाई

इधर श्रीमती मोतीलाल नेहरू का स्वास्थ्य कुछ दिनो से बिगडता जा रहा था और इस अवसर पर उनकी अवस्था चिन्ताजनक हो गई। इसलिए युक्तप्रान्त की सरकार ने प० जवाहरलाल को उनकी अवधि से कुछ दिन पहले रिहा करने का निश्चय किया जिससे वह अपनी माता की घोर रुग्णावस्था में उनके पास रह सकें। ३० अगस्त को जवाहरलाल जी छोड दिये गये। अपनी माता के स्वास्थ्य में सुधार होते ही वह सीधे पूना पहुँचे जहा गाधीजी अपना स्वास्थ्य ठीक कर रहे थे। गाधीजी १९३१ में गोलमेज-परिषद् के लिए रवाना हुए थे तबसे इन दोनो की यह पहली भेंट थी। अत स्वभावत:

देश की अवस्था और प्रस्तुत कार्यक्रम के सम्बन्ध में भी उनमें आपसी बातचीत हुई। इस बातचीत के परिणाम-स्वरूप दोनो में पत्र-व्यवहार भी हुआ जिससे जनता के आगे मौजूद कार्यक्रम के सम्बन्ध में दोनो ने अपने-अपने दृष्टिकोण प्रकट किये। कांग्रेसवादियो तथा सर्वसाधारण की सूचना और पथ-प्रदर्शन के लिए बाद में यह पत्र-व्यवहार प्रकाशित भी कर दिया गया।

हरिजन-आन्दोलन के सम्बन्ध मे यात्रा

गाधीजी ने राजनैतिक क्षेत्र में निष्क्रिय रहने के लिए विवश होने पर उस अवधि को हरिजन-कार्य में लगाने का निश्चय किया था। इस निश्चय के अनुसार उन्होने हरिजन-आन्दोलन करने के लिए १९३३ के नवम्बर से देश में दौरा करना शुरू किया। उन्होनें दस महीनो के भीतर भारत के हरेक प्रान्त का दौरा किया, और इन दस महीनो का प्रत्येक दिन अस्पृश्यता की समस्या के अध्ययन और उस समस्या को हल करने के उपाय सोचने में बीता। इस दौरे से बहुत बडा प्रचार-कार्य हुआ। उपस्थिति समुदाय का उत्साह और सख्या १९३० के जमाने से ही टक्कर ले सकता था। गाधीजी ने अपने दौरे में अस्पृश्यता-निवारण के लिए लगभग आठ लाख रुपया एकत्र किया। व्यापारिक मन्दी के जमाने में और विशेषकर ऐसी अवस्था में, जब इससे पहले भी जनता पर आर्थिक बोझ पड चुका था, गाधीजी की अपील का उतना उदारतापूर्ण उत्तर मिलना असाधारण बात थी। यह दौरा पूर्ण सफल रहा। दो शोचनीय दुर्घटनायें भी हुईं। २५ जून १९३४ को गाधीजी बाल-बाल बच गये नही तो देश के लिए बडा भारी सकट उपस्थित हो गया होता। वह पूना म्युनिसिपैलिटी का मानपत्र ग्रहण करनेवाले थे, कि इस अवसर पर एक व्यक्ति ने, जिसका पता अभी तक नही लगा है, उनपर बम फेंका। इस असफल अपराध के अपराधी ने एक दूसरी मोटर-कार को गाधीजी की मोटरकार समझा। गाधीजी की मोटरकार अभी सभा-स्थान में न आई थी। अनुमान किया जाता है कि यह अपराधी गाधीजी के अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलन से चिढ गया था। फिर भी उसके बम ने सात निर्दोष व्यक्तियो को घायल किया। सौभाग्य से किसी को गहरी चोट न आई। दूसरी घटना १४ दिन बाद ही अजमेर में हुई। यहा किसी तेज मिजाज सुधारक ने आपेसे बाहर होकर बनारस के पडित लालनाथ का, जो हरिजन-आन्दोलन के कट्टर विरोधी थे, सिर फोड दिया। इस दूसरी घटना को लेकर गाधीजी ने ७ दिन का उपवास किया। सार्वजनिक मामलो में एक-दूसरे से मत-भेद रखनेवालो ने जिस असहिष्णुता का परिचय दिया था, यह प्रायश्चित उसीके विरुद्ध किया गया था।

गांधीजी ने हरिजनोत्थान कार्य के सम्बन्ध में सारे भारत का दौरा करने का निश्चय किया था, पर दिसम्बर का महीना उनके लिए एक कसौटी ही सिद्ध हुआ। श्री केलप्पन ने गुरुवयूर-मन्दिर के ट्रस्टियो को तीन महीने का नोटिस दिया था और अब १ जनवरी १९३४ को अन्तिम निश्चय करना जरूरी था। इस निश्चय का अर्थ केलप्पन और गांधीजी दोनो का आमरण उपवास भी हो सकता था। इसलिए यह तय किया गया कि गुरुवयूर-मन्दिर के उपासको की राय ली जाय। इस प्रयोग का जो परिणाम हुआ वह शिक्षाप्रद भी था और सफल भी। इस बीच में डॉ० सुब्बारायन ने मदरास-प्रान्त के मन्दिरो में अछूतो के प्रवेश के सम्बन्ध में बिल भी पेश कर दिया था और सरकार के निश्चय की प्रतीक्षा की जा रही थी। गुरुवयूर के मतो में ७७ प्रतिशत उपासक अछूतो के मन्दिर-प्रवेश के हक में थे। जिन लोगो ने राय देने से इन्कार कर दिया था, उन्हें निकाल कर, २०,१६३ रायें आईं जिनमें से मन्दिर-प्रवेश के पक्ष में १५,५६३ या ७७ प्रतिशत थी, मन्दिर-प्रवेश के विरुद्ध २,५७९ या १३ प्रतिशत थी, और तटस्थ २,०१६ या १० प्रतिशत थी। इन मतो में विलक्षणता यह थी कि ८,००० से भी अधिक स्त्रियो ने हरिजनो के मन्दिर-प्रवेश के पक्ष में रायें दी।

नये वर्ष का आरम्भ शुभ हुआ, क्योंकि गांधीजी का आमरण उपवास टल गया। पर सत्याग्रह के सम्बन्ध में प्रगति इतनी सतोषजनक न थी। जो कैदी जेल से छूटे वे भग्नोत्साह हो गये थे। जिन प्रान्तीय नेताओ ने पूना में वचन दिया था कि यदि सामूहिक सत्याग्रह त्याग दिया गया और व्यक्तिगत सत्याग्रह आरम्भ किया गया तो वे अपने-अपने प्रान्तो का नेतृत्व करेंगे, उनमें से कुछ को छोडकर बाकी सबने अपने वचन को भुला दिया। जो जेलो से छूटे वे दूसरी बार सजा काटने में या तो असमर्थ थे, या तैयार न थे। जो तैयार थे उन्हें सरकार पकडती न थी। सरकार ने यह तरकीब सोंच निकाली थी कि वह लाठियो की वर्षा करती, और छोटी जेलो में रखकर कैदियो के साथ बुरा व्यवहार करती। वह कैदियो को रिहा करती, फिर गिरफ्तार करती और कुछ समय बाद फिर छोड देती। यह कार्रवाई थकानेवाली थी। इससे सजा के द्वारा सत्याग्रहियो को जो विश्राम मिलता उससे वे वचित हो गये। ऐसा हो रहा था मानो बिल्ली चूहे को मुह में पकड कर झझोड दे, छोड दे और फिर पकड ले। इस प्रकार न तो वह उस चूहे को मारती ही, न छोडती ही।

बिहार-भूकम्प और जवाहरलालजी की गिरफ्तारी

१६ जनवरी को सारा भारत हकबका कर रह गया। जब सुबह के

समाचारपत्रो ने गत तीसरे पहर के बिहार के भूकम्प की अभूतपूर्व विपत्ति के समाचार घर-घर पहुँचाये तो सब लड़खड़ा कर रह गये। कुछ ही मिनटो के भीतर प्रान्त की शक्ल ऐसी बदल गई कि उसका पहचानना तक असम्भव हो गया। हजारो इमारतें धूल में मिल गईं और पृथिवी के गर्भ में समा गईं। जमीन के भीतर से रेते ने निकलकर हरीभरी खेती के प्रशस्त मैदानो को नष्ट कर दिया। ११० डिग्री के तापमान का जल १५०० फीट पृथिवी के नीचे से निकला। जहा प्राणदायी जल की नदिया बहकर पृथिवी की सिंचाई करती थी, या जहा मुस्कराती हुई खेतिया अपने वक्ष स्थल पर वे भार ग्रहण किये हुए थी जिनके द्वारा लाखो के प्राणो की रक्षा होती थी, वही रेत का मैदान छा गया। पलक मारते हजारो परिवार अनाथ और हजारो स्त्रिया विधवा हो गईं और उनके निर्दोष बच्चे गिरते हुए मकानो के बीच में दबकर मर गये। प्रकृति ने बिहार में कुछ मिनटो के भीतर जो गजब ढाया उसका वास्तविक-चित्र निष्प्राण आकडे क्या दे सकेंगे। फिर भी कुछ आकडे दिये जाते है। भूकम्प का प्रभाव ३०,००० वर्गमील की लगभग डेढ करोड जनता पर पडा। २०,००० मनुष्यो के प्राण गँवाने की बात कही जाती है। लगभग दस लाख घर नष्ट हो गये, या टूट-फूट गये। ६५,००० कुएँ और तालाब या तो निकम्मे हो गये या टूट-फूट गये। लगभग १० लाख बीघा खेती पर रेत छा गया और वह निकम्मी हो गई।

इस भयकर सकट का सामना करने के लिए बिहार और भारत दोनो पीछे न रहे। चन्दो के द्वारा लगभग एक करोड रुपया एकत्र हुआ, बिहार केन्द्रीय रिलीफ फण्ड में जून के अन्त तक २७ लाख से अधिक एकत्र हो गया। अधिकाश नेता और कार्यकर्त्ता भारत के भिन्न-भिन्न भागो से पीडितो के कष्ट-निवारण का कार्य करने को दौड पडे। बिहार-रिलीफ-कमिटी की ओर से एक रिपोर्ट प्रकाशित हुई है, जिससे पता चलता है कि कितनी अधिक हानि हुई थी और २५८ केन्द्रो में २,००० से ऊपर कार्य-कर्त्ताओ ने किस लगन के साथ काम किया था।

बिहार के विध्वस्त प्रदेश में बाहर से आये नेताओ में पण्डित जवाहरलाल भी थे। उनका आगमन समवेदना का परिचायक मात्र हो, सो बात न थी। उनका आगमन सेवा-कार्य का प्रत्यक्ष उदाहरण था। जब समाचार मिले कि गिरे हुए घरो के भीतर जीवित मनुष्य दबे पडे है, तो उन्होने स्वयसेवक का बिल्ला लगाया, कधे पर फावडा रक्खा और उस स्थान को रवाना हो गये। उनके साथ-साथ स्वयसेवक हाथो में फावडे लिये मौजूद थे। उन्होने और अन्य कार्यकर्त्ताओ ने फावडे चलाये और मिट्टी की टोकरिया अपने सिरो पर ढोईं। बिहार के भूकम्प ने गाधीजी के कार्यक्रम में भी

विघ्न डाला। बिहार और बिहार के कार्यकर्त्ताओ को इस समय भूकम्प और बाढ के द्वारा उत्पन्न हुई जटिल परिस्थिति का सामना करना पड रहा था। गाधीजी ने एक मास तक उनका पथ-प्रदर्शन किया और उन्हें परामर्श दिया। फल यह हुआ कि देशभर के प्रतिनिधियो की एक परिषद् हुई जिसमें कष्ट-निवारण-कार्य के सचालन के लिए बिहार-सेण्ट्रल-रिलीफ-कमिटी को जन्म दिया गया, जोकि एक गैर-सरकारी आयोजन था और जिसमें काग्रेस-कार्यकर्त्ताओ की प्रधानता थी। जबतक गाधीजी बिहार मे रहे, उन्होने पीडित नगरो और गावो का दौरा किया, इस महान् सकट की शिकार जनता की दयनीय दशा को स्वय देखा और नई बनी कमिटी को अपना कार्यक्रम स्थिर करने में सहायता की। उन्होने अपने दक्ष कार्यकर्त्ताओ को भी घटनास्थल पर भेजा और उनकी सेवायें बिहार के अर्पण कर दी। अब भी इस प्रान्त को ऐसी जटिल और महान् समस्याओ का सामना करना है जिसका बाहर वालो को काफी ज्ञान नही है।

अपना बिहार का दौरा समाप्त करने पर प० जवाहरलाल एक बार फिर सरकार के कैदी बने। जब वह कलकत्ता गये थे, तो उन्होने बगाल की अवस्था और मिदनापुर जिले की हलचल के सम्बन्ध में दो भाषण दिये थे। बगाल-सरकार आतकवादियो का जिक्र, उनकी खुल्लम-खुल्ला निन्दा को छोडकर, और किसी रूप में, सुनने को तैयार न थी। पण्डित जवाहरलाल ने अपने स्पष्ट भाषणो में आतकवाद की मनोवृत्ति और उसका सामना करने के लिए अधिकारियो ने जो तरीका अपनाया था उसकी चर्चा की थी। बगाल की नौकरशाही को यह सहन न हुआ। जबतक वह बिहार में मानवता के मिशन को पूरा करने में लगे रहे तबतक बगाल-सरकार के औचित्य ने उसे उनपर हाथ डालने से रोक रक्खा, पर अभी वह अपने घर कठिनता से पहुँचे होगे कि उनके लिए जेल का दरवाजा फिर खोल दिया गया। उनपर कलकत्ते के दो भाषणो के लिए मुकदमा चलाया गया और उन्हें दो वर्ष सादी कैद की सजा दी गई।

कौंसिल-प्रवेश का प्रोग्राम

जुलाई १९३३ की पूना-परिषद् के बाद मे ऐसे काग्रेसवादियो की सख्या में वृद्धि हो रही थी जिनका यह विचार हो रहा था कि आर्डिनेन्स के शासन के कारण देश में जो अवस्था उत्पन्न हो गई है उसको ध्यान में रखकर इस 'निश्चेष्टा' से उद्धार पाने के लिए कौंसिल-प्रवेश का कार्यक्रम अपनाना आवश्यक है। इस विचार ने सगठित रूप

धारण किया और इस प्रकार के विचार रखनेवाले काग्रेसी-नेताओ की एक परिषद् बुलाकर, एक नये कार्यक्रम को अपनाने की इच्छा को ठोसरूप देने का निश्चय किया गया। यह परिषद् दिल्ली में ३१ मार्च १९३३ को डॉ० अन्सारी की अध्यक्षता में हुई, जिसमें निश्चय किया गया कि जो स्वराज्य-पार्टी भग कर दी गई है उसे दुबारा जीवित किया जाय, जिससे उन काग्रेसवादियो को जो व्यक्तिगत सत्याग्रह नही कर रहे है, मत-दाताओ को अच्छी तरह सगठित करने और गाधीजी के जुलाई १९३३ वाले पूना के वक्तव्य के अनुसार काग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम को पूरा करने का अवसर दिया जाय। इस परिषद् ने यह विचार भी प्रकट किया कि पार्टी के लिए बडी कौंसिल के आगामी निर्वाचनो मे भाग लेना आवश्यक है। इस उद्देश-सिद्धि के लिए परिषद् ने निश्चित किया कि निर्वाचन दो लक्ष्यो को लेकर लडे जायँ—(१) सारे दमनकारी कानूनो को रद कराना और (२) ह्वाइट-पेपर की योजनाओ को रद कराके उनका स्थान उन राष्ट्रीय मागो को दिलाना जिनका जिक्र गाधीजी ने गोलमेज-परिषद् में किया था। परिषद् ने यह निश्चय करने के बाद गाधीजी के पास डॉ० अन्सारी, श्री भूलाभाई देसाई और डॉ० विधानचन्द्र राय का एक शिष्ट-मण्डल भेजा कि वह इन प्रस्तावो के विषय में उनसे बातचीत करे और उन्हे कार्य-रूप मे परिणत करने से पहले उनके विचार जान ले।

इस अवसर पर गाधीजी बिहार के भूकम्प-पीडित स्थानो का दौरा कर रहे थे और सयोग-वश अपना मौन-दिवस (२ अप्रैल, १९३४) सहरसा नामक एक एकान्त स्थान पर बिता रहे थे। यही पर उन्होंने दिल्ली के हाल-चाल जाने बिना ही एक वक्तव्य तैयार किया जिसे वह प्रेस में देना ही चाहते थे कि उनके पास डॉ० अन्सारी का सन्देशा आया कि कल दिल्ली-परिषद् ने एक शिष्ट-मण्डल नियुक्त किया है जो आपसे मिलने पटना आ रहा है। गाधीजी ने उस शिष्ट-मण्डल से बातचीत होने तक वह वक्तव्य रोक रखा और अत में अच्छी तरह बातचीत होने के बाद ७ तारीख को वह प्रकाशित किया गया। वक्तव्य से पहले डॉ० अन्सारी के नाम लिखा गया पत्र प्रकाशित हुआ। हम वक्तव्य और पत्र—दोनो को नीचे देते है—

गाधीजी का पत्र (५ अप्रैल १९३४)

"कुछ काग्रेसवादियो की निजी बैठक में जो प्रस्ताव निश्चित हुए थे, उनपर चर्चा करने और मेरी राय लेने के लिए आपने, भूलाभाई ने और डॉ विधान ने पटना तक आकर अच्छा ही किया। आप मुझसे कहते है कि बडी कौंसिल शीघ्र ही भग होनेवाली

है। अतएव उसके आगामी निर्वाचन में भाग लेने और स्वराज्य-पार्टी को पुनरुज्जीवित करने के इस बैठक के निश्चय का मै निस्सकोच भाव से स्वागत करता हूँ।

"वर्तमान अवस्था में कौंसिलो की उपयोगिता के सम्बन्ध मे मेरे जो-कुछ विचार है वे जाने-बूझे है। वे अब भी लगभग वैसे ही है, जैसे १९२० में थे। पर मै यह अनुभव करता हूँ कि जो काग्रेसवादी किसी कारणवश सत्याग्रह में भाग नही लेना चाहता या नही ले सकता, और जिसकी कौंसिल-प्रवेश में आस्था है, उसके लिए न केवल यह उचित ही है, बल्कि कर्त्तव्य-रूप है कि वह उनमें प्रवेश करने की चेष्टा करे, और जिस कार्य-क्रम की पूर्ति को वह देश के हितो के लिए आवश्यक समझता है उसे अमल में लाने के उद्देश से दल बनाये। अपने इन विचारो के अनुसार मै पार्टी की सहायता के लिए जो-कुछ मेरी शक्ति में है वह करने के लिए मै हमेशा तैयार हूँ।"

गाधीजी का वक्तव्य (७ अप्रैल १९३४)

"मैंने इस वक्तव्य का मसविदा अपने मौन-दिवस में सहरसा नामक स्थान पर २ अप्रैल को ईस्टर सोमवार के दिन तैयार किया था। मैंने इस मसविदे को बाबू राजेन्द्रप्रसाद को दे दिया और इसके बाद यह उपस्थित मित्रो को दिखाया जाता रहा। मूल में अब काफी परिवर्तन हो गया है और अब यह पहले की अपेक्षा सक्षिप्त भी है। परन्तु सार-रूप मे यह वैसा ही है जैसा कि सोमवार के दिन था। मुझे खेद है कि मैं इसे अपने सारे मित्रो और सहयोगियो को न दिखा सका, उनकी सलाह मिल जाने से मुझे बड़ा हर्ष होता। परन्तु मुझे अपने निश्चय के ठीक होने के सम्बन्ध में तनिक भी सन्देह नही था और मै यह भी जानता था कि मेरे कुछ मित्र शीघ्र ही सत्याग्रह करना चाहते थे, इसलिए मैं अपने मित्रो की सलाह के लिए प्रतीक्षा करके इस वक्तव्य के प्रकाशन में विलम्ब करने को तैयार नही था। मेरा निश्चय और मेरे वक्तव्य का एक-एक शब्द गहन आत्म-चिन्तन, हृदय की टटोल और ईश्वर-प्रार्थना का परिणाम है। इस निश्चय का भाव किसी व्यक्ति-विशेष पर छीटें फेंकना नही है। यह तो मेरी मर्यादाओ की और उस महान् उत्तरदायित्व के बोध की, जिसे मै इधर कई वर्षो से वहन करता आ रहा हूँ, विनम्रता-पूर्ण स्वीकारोक्ति-मात्र है।

"इस वक्तव्य की प्रेरणा सत्याग्रह-आश्रम के उन निवासियो के साथ की गई आपसी बातचीत से प्राप्त हुई, जो हाल ही में जेल से छूटे थे और जिन्हें राजेन्द्र बाबू के कहने से मैंने बिहार भेज दिया था। इस वक्तव्य का प्रधान कारण एक खबर थी, जो मुझे अपने एक बहुमूल्य साथी के सम्बन्ध में प्राप्त हुई और जिससे मेरी आखें खुल

गई। वह जेल का काम पूरा करने के इच्छुक न थे और मिले हुए काम की अपेक्षा पुस्तकें पढना अच्छा समझते थे। यह सब कुछ सत्याग्रह के नियमों के सर्वथा विरुद्ध था। इन्हें तो मै पहले से भी अधिक स्नेह की दृष्टि से देखता हूँ। पर इस वात से इनकी दुर्बलताओ से अधिक मुझे अपनी दुर्बलताओ का वोध हुआ। मित्र ने कहा कि उनकी यह धारणा थी कि मै उनकी दुर्बलता को जानता हूँ। पर मै अन्धा था। नेता में अन्धापन एक अक्षम्य अपराध है। मै फौरन जान गया कि फिलहाल मै अकेला ही सक्रिय सत्याग्रही रहूँगा।

"गत जुलाई में पूना की एक सप्ताह की निजी वातचीत के दौरान में मैने कहा था कि वैसे बहुत-से व्यक्तिगत सत्याग्रही आगे वढें तो अच्छी ही वात है, पर सत्याग्रह के सदेश को जागृत रखने के लिए एक सत्याग्रही भी काफी है। अव अच्छी तरह हृदय टटोलने के बाद मै इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि यदि सत्याग्रह को पूर्ण-स्वराज्य-प्राप्ति के साधन-स्वरूप सफल होना है, तो फिलहाल अकेले मुझे ही, वर्तमान परिस्थिति को देखते हुए, सत्याग्रह का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेना चाहिए।

"मै अनुभव करता हूँ कि जनता को सत्याग्रह का पूरा सदेश नही मिला है, क्योकि सन्देश उसतक पहुँचते-पहुँचते अशुद्ध हो जाता है। मुझे यह प्रतीत हो गया है कि आध्यात्मिक सदेश पार्थिव माध्यम के द्वारा पहुँचाने से उसकी शक्ति कम हो जाती है। आध्यात्मिक सदेश तो स्वय ही अपना प्रचार कर लेते हैं। मेरे कहने का जो तात्पर्य है, उसका जनता की प्रतिक्रिया के रूप में ज्वलन्त उदाहरण हरिजन-आन्दोलन-सम्बन्धी दौरे में अच्छी तरह मिला। जनता ने जो सुन्दर उत्तर दिया वह आत्म-प्रेरित था। स्वय कार्यकर्त्ताओ को उस असख्य जनता की, जिस तक वे पहुँचे तक न थे, उपस्थिति और उत्साह पर आश्चर्य हुआ।

"सत्याग्रह सोलह आने आध्यात्मिक अस्त्र है। इसका उपयोग पार्थिव दिखाई पडनेवाले उद्देश के लिए भी हो सकता है, और इसका उपयोग उन स्त्री-पुरुषो के द्वारा भी हो सकता है जो इसकी आध्यात्मिक महत्ता को नही समझते, वशर्ते कि उन्हें वताने-वाला जानता हो कि अस्त्र आध्यात्मिक है। शल्य-चिकित्सा के हथियारो को चलाना सभी नही जानते, पर यदि कोई निपुण आदमी उनका उपयोग वताता रहे तो बहुत-से आदमी उनका उपयोग कर सकते हैं। मैं अपने-तईं सत्याग्रह का विशेषज्ञ होने का दावा करता हूँ। मुझे उस दक्ष सर्जन की अपेक्षा जो अपने हुनर का उस्ताद है, कही अधिक सावधानी से चलना है। मै तो अभी एक विनम्र शोधक-मात्र हूँ। सत्याग्रह का विज्ञान

ही ऐसा है कि उसका विद्यार्थी अपने सामने के एक पग से अधिक नही देख सकता।

"आश्रम-निवासियो के साथ वार्त्तालाप करने के बाद मैंने अपने हृदय को टटोला और इसके बाद मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि मुझे सारे कांग्रेसवादियो को स्वराज्य-प्राप्ति के लिए सत्याग्रह करना बन्द करने की सलाह देनी चाहिए। हा, किन्ही खास शिकायतो के लिए सत्याग्रह किया जाय तो बात दूसरी है। उन्हें इस प्रकार का सत्याग्रह मेरे ऊपर छोड देना चाहिए। जबतक कोई ऐसा व्यक्ति आगे न बढे जो इस विज्ञान को मुझसे भी अधिक अच्छी तरह जानता हो और जिसपर जनता विश्वास करती हो, तबतक दूसरो को इस सत्याग्रह को मेरे जीवन-काल में केवल मेरी ही देख-रेख में आरम्भ करना चाहिए। मै यह सम्मति सत्याग्रह के प्रणेता और आरम्भ-कर्त्ता की हैसियत से देता हूँ। इसलिए आयन्दा से वे सब लोग जो मेरे प्रत्यक्ष दिये गये या अप्रत्यक्ष रूप से समझे गये परामर्श के अनुसार स्वराज्य-प्राप्ति के लिए सत्याग्रह करने को प्रेरित हुए हो, कृपा करके सत्याग्रह करने से रुकें। इस बात का मुझे पूरा विश्वास है कि भारत के स्वातन्त्र्य-युद्ध के लिए यही सबसे अच्छा मार्ग है।

"मेरा सच्चे दिल से यह विश्वास है कि मानव-जाति के पास, अपने कष्ट-निवारण के लिए, यह सबसे बडा हथियार है। सत्याग्रह के सम्बन्ध में मेरा यह दावा है कि यह हिंसा या युद्ध का पूर्ण स्थान ले सकता है। इसलिए यह 'आतंकवादी' कहलानेवाले व्यक्तियो के, और उस सरकार के जो देश को पौरुष-हीन करके 'आतंकवादियो' का बीज-नाश करना चाहती है, हृदयो तक पहुँच सकता है। परन्तु अनेक व्यक्तियो के जैसे-तैसे किये सत्याग्रह का परिणाम चाहे कितना ही बडा रहा हो, पर वह न 'आतंकवादियो' के ही हृदयो तक पहुँच सका, न शासकवर्ग के ही हृदयो तक। शुद्ध सत्याग्रह का दोनो के हृदयो तक पहुँचना अनिवार्य है। इस तथ्य की सत्यता की जाच करने के लिए सत्याग्रह एक समय में एक ही आदमी तक सीमित रहना चाहिए। यह आजमाइश पहले कभी नही की गई थी, अब करनी चाहिए।

"मैं पाठको को सावधान करना चाहता हूँ कि वे सत्याग्रह को निष्क्रिय-प्रतिरोध-मात्र न समझ लें। सत्याग्रह निष्क्रिय-प्रतिरोध की अपेक्षा कही व्यापक चीज है। सत्याग्रह सत्य की अथक खोज है, और इस खोज के द्वारा जो शक्ति प्राप्त होती है उसका उपयोग पूर्ण अहिंसात्मक साधनो के द्वारा ही हो सकता है।

"पर इससे मुक्त होने के बाद सत्याग्रही क्या करें? यदि उन्हें फिर कभी आवाहन होते ही आगे बढ़ने के लिए तैयार होना है, तो उन्हें आत्म-त्याग और स्वेच्छा-पूर्वक ग्रहण की गई दरिद्रता की कला और सुन्दरता को समझना होगा। उन्हें राष्ट्र-निर्माण के कार्य में लगना चाहिए। उन्हे स्वय हाथ से कात-बुनकर खद्दर का प्रचार करना चाहिए। उन्हें जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में एक-दूसरे के साथ निर्दोष सम्पर्क स्थापित करके लोगो के हृदयो में साम्प्रदायिक ऐक्य का बीज बो देना चाहिए। स्वय अपने उदाहरण के द्वारा अस्पृश्यता का प्रत्येक रूप मे निवारण करना चाहिए और नशेबाजो के साथ सम्पर्क स्थापित करके और अपने आचरण को पवित्र रखकर मादक-द्रव्य के त्याग का प्रसार करना चाहिए। ये सेवायें है जिनके द्वारा गरीबो की तरह निर्वाह हो सकता है। जो लोग दरिद्र आदमी की भाति न रह सकते हो, उन्हें किसी छोटे राष्ट्रीय धधे मे पड जाना चाहिए, जिससे वेतन मिल जाय। यह बात समझ लेनी चाहिए कि सत्याग्रह उन्हींके लिए है जो स्वेच्छा से कानून और अधिकार के आगे सिर झुकाना जानते हो, और झुकाते हो।

"यह कहना आवश्यक है कि इस वक्तव्य को प्रकाशित कराके किसी प्रकार मै काग्रेस के अधिकार में दस्तन्दाजी नही कर रहा हूँ। मै तो केवल उन लोगो को परामर्श-मात्र दे रहा हूँ जो सत्याग्रह के मामले में मेरा पथ-प्रदर्शन चाहते हो।"

डॉ० अन्सारी ने भी इसी अवसर पर एक वक्तव्य प्रकाशित करके यह स्पष्ट कर दिया कि गाधीजी ने अपनी हार्दिक और स्वत दी हुई सहायता के द्वारा काग्रेस में विरोध और भेद-भाव की आशका को दूर कर दिया है। अब कौसिलो के भीतर और बाहर रहकर दुहरा युद्ध किया जायगा, जिससे शिक्षित-समाज और जनता की राजनैतिक निष्क्रियता और अन्तःकुपित असतोष दूर हो जाय।

स्वराज्य पार्टी

१९३४ की २ और ३ मई को राची में एक बैठक स्वराज्य-पार्टी को शक्तिशाली और सजीव सस्था का रूप देने के मुख्य उद्देश से की गई। इसका एक हेतु यह भी था कि गाधीजी उसपर अपनी मुहर लगा दें। इस बैठक का पहला प्रस्ताव दिल्ली-परिषद् के उन प्रस्तावो का अनुमोदन था, जिनके द्वारा स्वराज्य-पार्टी को जन्म दिया गया था और ह्वाइट-पेपर अस्वीकार करने और राष्ट्रीय माग तैयार करने के निमित्त विधान-कारिणी सभा (कान्स्टिटचूएण्ट असेम्बली) बुलाने और दमनकारी

कानूनो को रद कराने के उद्देश से बडी कौंसिल के आगामी निर्वाचन में अपने उम्मीदवार खडे करने का निश्चय किया गया था। इसके वाद स्वराज्य-पार्टी की सशोधित नियमावली को अपनाया गया। इस निश्चय के अनुसार अब स्वराज्य-पार्टी अपनी आन्तरिक व्यवस्था और आय-व्यय के मामले में कांग्रेस की सलाह लेने को वाध्य न थी। किन्तु यह वात स्पष्ट रूप से तय हुई कि तमाम नीति-सम्बन्धी व्यापक प्रश्नो पर उसे कांग्रेस के वताये पथ पर चलना चाहिए।

३ मई १९३४ को राची-परिषद् ने स्वराज्य-पार्टी का जो कार्यक्रम निश्चित किया उसमें उन सारे कानूनो और विशेष विधानो को, जो राष्ट्र की समुन्नति और पूर्ण स्वराज्य-प्राप्ति के मार्ग में वाधक हो, रद कराने की वात रक्खी गई। इस कार्यक्रम के अनुसार सारे राजनैतिक कैदियो की रिहाई कराना, उन सारे कानूनो और प्रस्तावो का मुकावला करना जो देश का शोषण करनेवाले हो, ग्राम-सगठन करना, मजदूर-सम्वन्धी, मुद्रा-व्यवस्था, विनिमय, कृषि आदि के मामलो में सुधार करवाना और अन्त में कांग्रेस का रचनात्मक कार्यक्रम पूरा करना कर्तव्य माना गया।

सत्याग्रह स्थगित

इन सब विषयो पर १८ और १९ मई १९३४ को पटना में महासमिति की वैठक मे चर्चा हुई। यहा यह वात भी कह देना जरूरी है कि कांग्रेस की महासमिति ही एकमात्र ऐसी सस्था थी, जो सरकार-द्वारा गैरकानूनी करार नही दी गई थी। गाधीजी की सिफारिश के अनुसार सत्याग्रह वन्द कर दिया गया और स्वराज्य-पार्टी के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया गया —

चूकि कांग्रेस में ऐसे सदस्यो की सख्या बहुत काफी है जो देश की लक्ष्य-सिद्धि के मार्ग में कौंसिल-प्रवेश को आवश्यक समझते है, इसलिए महासमिति पण्डित मदनमोहन मालवीय और डॉ० अन्सारी को एक वोर्ड वनाने के लिए नियुक्त करती है। इस बोर्ड का नाम होगा पार्लमेण्टरी-बोर्ड, और इसके प्रधान होंगे डॉ० अन्सारी। इसमें २५ से अधिक कांग्रेस-वादी न रहेंगे।

"यह वोर्ड कांग्रेस की ओर से कौंसिलो के निर्वाचन के लिए उम्मीदवार खडा करेगा और इसे अपना काम पूरा करने, चन्दा एकत्र करने, रखने और खर्च करने का अधिकार रहेगा।

"यह बोर्ड महासमिति के शासन के अधीन रहेगा। इसे अपना विधान तैयार करने और अपना काम-काज दुरुस्त रखने के लिए नियम-उपनियम तैयार करने का

अधिकार रहेगा। यह विधान और नियम-उपनियम कार्य-समिति के सामने स्वीकृति के लिए रक्खे जायँगे, लेकिन कार्य-समिति की स्वीकृति मिल जाने की आशा पर काम मे ले लिये जायँगे। बोर्ड केवल उन्ही उम्मीदवारो को चुनेगा जो कौंसिलो में कांग्रेस की नीति का, जिसे समय-समय पर निश्चित किया जायगा, पालन करने की प्रतिज्ञा लेंगे।"

: ३ :

अवसर की खोज में

सबकी इच्छा कांग्रेस का अधिवेशन जल्दी ही कर डालने की थी, इसलिए निश्चित हुआ कि कांग्रेस का आगामी साधारण अधिवेशन बम्बई में अक्तूबर १९३४ के अन्तिम सप्ताह में हो।

महासमिति की बैठक के आगे-पीछे कांग्रेस की कार्य-समिति की बैठक भी १८, १९ और २० मई को पटना मे हुई थी। उसने सत्याग्रह की मौकूफी और कौंसिल-प्रवेश के सम्बन्ध में सिफारिशें की, जिन्हें, जैसा कि कहा जा चुका है, महासमिति ने स्वीकार कर लिया। कार्य-समिति ने, महासमिति के सत्याग्रह-बन्दी के निश्चय के अनुसार, सारे कांग्रेसवादियो को उसका पालन करने का आदेश दिया। देश-भर के कांग्रेसवादियो ने इस निश्चय का पालन किया और २० मई १९३४ को सत्याग्रह बन्द कर दिया गया। साथ ही कार्य-समिति ने जुलाई १९३३ (पूना) में कार्यवाहक-अध्यक्ष-द्वारा दिये आदेश का सशोधन करते हुए, सारे कांग्रेस-वादियो को आदेश दिया कि कांग्रेस का काम चालू करने के लिए कांग्रेस-कमिटियो का सगठन किया जाय। कार्य-समिति ने प्रमुख कांग्रेसवादियो को अपनी ओर से पूर्ण अधिकार देकर विभिन्न प्रान्तो में कांग्रेस के पुनस्सगठन के काम में मदद देने के लिए नियुक्त किया। सत्याग्रह-बन्दी के साथ ही कार्यवाहक-अध्यक्ष का पद स्वभावत ही उठा दिया गया। कांग्रेस के अध्यक्ष सरदार पटेल इस समय जेल मे थे, इसलिए उनकी अनुपस्थिति मे सेठ जमनालाल बजाज कार्य-समिति के सभापति बनाये गये, और कांग्रेस के नये अधिवेशन तक उन्हें कांग्रेस के अध्यक्ष की हैसियत से सारा काम चलाने का अधिकार दिया गया।

पटना में इन निश्चयो तक आसानी से पहुँचा गया हो सो बात नहीं। एक ओर ऐसे बहुसख्यक कांग्रेस-वादी थे जो अब भी पुराने कार्यक्रम पर अडे हुए थे और जो कौंसिल के कार्य के प्रति अपनी अरुचि छिपाने की चेष्टा न करते थे। दूसरी ओर समाजवादी-दल था जिसकी शक्ति धीरे-धीरे बढ रही थी। यह दल गांधीजी के आदर्शों को स्वीकार करने में तो कांग्रेस के साथ न था, किन्तु कौंसिल-प्रवेश के सर्वथा विरुद्ध था।

पर गाधीजी उठे, या यो कहना चाहिए कि बैठे और बोले, तो सारा विरोध बात-की-बात मे काफूर हो गया।

गाधीजी हरिजन-आन्दोलन के बारे मे उड़ीसा का भ्रमण पैदल कर रहे थे। वह पैदल चलने का नया प्रयोग कर रहे थे। वह पटना गये तो, पर उनका हृदय हरिजन-कार्य मे ही लग रहा था। इसलिए उन्हें अपने-आपको उस कार्य से चेष्टा करके अलग करना पड़ा था। इसमें सन्देह नही कि दौरा करने के इस नये तरीके ने उनके सफर का क्षेत्र बहुत कम कर दिया, और सयोगवश उसमे चन्दे की रकम मे भी कमी हुई। पर उन्हे ऐसा प्रतीत होने लगा था कि रेल और मोटर मे सफर के अर्थ ये होगे कि वह चन्दा इकट्ठा करने का यन्त्र-मात्र रह जायें। यहा तक मन्सूबा बाधा जा रहा था कि उन्हें युक्तप्रान्त का दौरा हवाई जहाज-द्वारा कराया जाय। यह सब उनकी रुचि के विपरीत था। उन्होंने पैदल चलने का नया प्रयोग आरम्भ कर दिया था और इसे जारी रखना था। पर पटना ने खलल डाल दिया। किन्तु उन्हे इसपर कोई रोष न था। अपने ८ अप्रैल १९३४ वाले वक्तव्य के द्वारा उन्होंने इस खलल को निमन्त्रण दिया था। अब उन्हें उसकी पूर्ति करनी थी। उन्हें सत्याग्रह बन्द करके तत्सम्बन्धी सारे अधिकार अपने पास रखने पड़े। उन्होंने १९३० की फरवरी में भी इसी प्रकार, कार्य-समिति के प्रस्ताव के अन्तर्गत, जिसके द्वारा उन्हें नमक-सत्याग्रह आरम्भ करने का अधिकार मिला था, सत्याग्रह आरम्भ किया था। जिस प्रकार आन्दोलन का आरम्भ हुआ था, उसी प्रकार उसका अन्त भी हो गया। गाधीजी ने एकबार फिर पटना मे महासमिति के सामने दो भाषणो में अपनी आत्मा खोलकर रख दी थी।

समाजवादी दल

मई १९३४ म भारत मे समाजवादी दल का जन्म हुआ। १७ मई १९३४ को इसका पहला अखिल-भारतीय अधिवेशन पटना में आचार्य नरेन्द्रदेव की अध्यक्षता मे हुआ। इस अधिवेशन मे कौंसिल-प्रवेश और सूती मिलो की हड़ताल के सम्बन्ध में कार्रवाई करने के बाद यह निश्चय किया गया कि काग्रेस के भीतर एक अखिल-भारतीय समाजवादी-संस्था कायम करने का समय आ गया है। एक मसविदा-कमिटी नियुक्त की गई, जिसके जिम्मे उक्त सस्था के योग्य कार्यक्रम और विधान तैयार करके बम्बई-अधिवेशन के सामने पेश करने का काम किया गया। पटना की बैठक के बाद से समाज-वादी-दल की शाखायें अनेक प्रान्तो में कायम हो गई हैं।

पटना के निश्चय के बाद ही काग्रेस के कार्य का क्षेत्र बदल गया। सत्याग्रह-

आन्दोलन बन्द हुआ और कौंसिल-प्रवेश का आर्यक्रम आरम्भ हुआ। १९३२ के आरम्भ में महासमिति को छोडकर काग्रेस की और उससे सम्वद्ध लगभग सारी सस्थाओ को गैरकानूनी करार दे दिया गया था। सरकार ने काग्रेस की सस्थाओ पर से प्रतिबन्ध उठाने की कारँवाई शीघ्र की, और १९३४ की १२ जून को अधिकाश पर से प्रतिबन्ध उठ गया। हा, सीमान्त-प्रदेश और बगाल की काग्रेस-सस्थायें और उनमे सलग्न अन्य सस्थायें—जैसे हिन्दुस्तानी सेवादल—उसी प्रकार गैरकानूनी रही। कुछ प्रान्तो में सरकार ने उन इमारतो पर अपना कब्जा बनाये रक्खा जिनका सबध, उसकी राय में, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में सत्याग्रह से था। इनमे से कुछ इमारतें तो १९३५ के मध्य तक वापस नही दी गईं। सरकार ने यह भी घोषणा की कि उसकी नीति सत्याग्रही कैदियो को शीघ्र छोडने की है, पर तो भी अनेक कैदी, विशेषकर गुजरात के कैदी, जेलो में ही रहे। कई काग्रेसवादी, यद्यपि वे अपनी सारी आयु-भर ब्रिटिश-भारत में ही रहे तो भी, ब्रिटिश-भारत में वापस नही आ सके, और अब देशी-राज्यो में एक प्रकार से नजरबन्द पडे हैं। देश के विभिन्न स्थानो में उन अनेक व्यक्तियो को जिनका सम्बन्ध सत्याग्रह से रह चुका था और जो विदेशो में अपने वैध काम-काज के सम्बन्ध में जाना चाहते थे, पासपोर्ट नही दिया गया। अस्तु।

फिर संगठन

पटना के निश्चय के बाद ही से देश-भर के काग्रेसवादियो ने काग्रेस-कमिटियो का पुनस्सगठन आरम्भ कर दिया था, और जून लगते-लगते प्रान्तो में काग्रेस-कमिटिया १९३२ के पहले की भाति काम करने लगी। तदनुसार कार्य-समिति की बैठक १२-१३ जून को वर्धा में और १७-१८ जून को बम्बई में हुई। इन बैठको में नव-सगठित काग्रेस कमिटियो के लिए एक रचनात्मक कार्यक्रम तैयार किया गया, जिसकी मुख्य-मुख्य बातें इस प्रकार हैं —

हाथ से कातकर खद्दर तैयार करना और खद्दर तैयार करनेवाले इलाके में उसका प्रसार करना, अस्पृश्यता-निवारण, साम्प्रदायिक एकता, मादक द्रव्य-सेवन के त्याग और नशीली वस्तुओ से दूर रहने का प्रचार करना, राष्ट्रीय ढग की शिक्षा की वृद्धि, छोटे-छोटे उपयोगी उद्योग-धधो की वृद्धि, ग्राम्य-जीवन का आर्थिक, शिक्षण, सामाजिक और आरोग्य-सम्बन्धी दृष्टि से पुनस्सगठन करना, व्यस्त गाववालो में उपयोगी ज्ञान का प्रसार करना, और मजदूरो का सगठन आदि ऐसे कार्य करना जो काग्रेस के उद्देशो या सामान्य नीति के विरुद्ध न हो, और जो किसी प्रकार के सत्याग्रह

का रूप भी धारण न करते हो। कार्य-समिति ने सरकार का ध्यान उसकी उस विज्ञप्ति की असगति की ओर दिलाया, जिसके अनुसार काग्रेस-सस्थाओ पर से प्रतिवध उठा लिया गया था, और कहा कि यद्यपि काग्रेस की अन्य सस्थाओ को कानूनी मान लिया गया है, पर खुदाई-खिदमतगारो पर, जो १९३१ से काग्रेस के ही अग है उसी प्रकार प्रतिबन्ध लगा हुआ हैं। सरकार ने इस असगति से तो नही पर खुदाई-खिदमतगारो और अफगान जिरगे के विरुद्ध जारी की गई निषेधाज्ञा को वापस लेने से इन्कार कर दिया।

ह्वाइट पेपर और सांप्रदायिक निर्णय

कार्य-समिति की बम्बईवाली बैठक के सामने एक और भी महत्त्वपूर्ण प्रश्न आया। वह यह था कि ह्वाइट-पेपर की योजना और साम्प्रदायिक निर्णय के सम्बन्ध में काग्रेस की क्या नीति होनी चाहिए? काग्रेस-पार्लमेण्टरी-बोर्ड ने कार्य-समिति से इस मामले में अपनी नीति स्पष्ट करने का अनुरोध किया था, इसलिए उसने इस विषय पर प्रस्ताव पास किया, जिसे सब जानते हैं। इस प्रस्ताव के पास होने के पहले सदस्यो में वाद-विवाद हुआ, जिसके दौरान में स्पष्ट हो गया कि एक ओर पण्डित मदनमोहन मालवीय और श्री अणे के दृष्टिकोण में और दूसरी ओर कार्य-समिति के दृष्टिकोण में मौलिक भेद है। पण्डित मदनमोहन मालवीय और श्री अणे ने अनुभव किया है कि यह मतभेद होते हुए वे न पार्लमेण्टरी-बोर्ड से और न कार्य-समिति से ही अपना सम्बन्ध बनाये रख सकते है, इसलिए उन्होने अपने इस्तीफे दाखिल कर दिये। पर आशा की गई कि अच्छी तरह बातचीत करने के बाद सम्भव है यह नौबत न आवे, इसलिए उनके सहयोगियो ने उन्हें इस्तीफे वापस लेने को राजी कर लिया।

ह्वाइट-पेपर के सम्बन्ध में कार्य-समिति का प्रस्ताव इस प्रकार था—

"ह्वाइट-पेपर से भारतीय लोकमत बिलकुल प्रकट नही होता और भारत के राजनैतिक-दलो ने इसकी कमोवेश निन्दा की है, और यदि यह काग्रेस को अपने लक्ष्य से पीछे नही हटाता है तो उससे कोसो दूर अवश्य है। ह्वाइट-पेपर के स्थान पर एकमात्र सन्तोषजनक वस्तु वह शासन-व्यवस्था हो सकती हैं जिसे वयस्क-मताधिकार या उससे मिलते-जुलते साधन-द्वारा निर्वाचित विधान-कारिणी सभा बनाये। हा, यदि आवश्यक हो तो महत्त्वपूर्ण अल्प-सख्यक जातियो को अपने प्रतिनिधि खास तौर से चुनकर भेजने का अधिकार रहेगा।

"ह्वाइट-पेपर खारिज होने पर साम्प्रदायिक निर्णय भी स्वत हीं खारिज

हो जायगा। अन्य बातो के साथ-ही-साथ, विधानकारिणी सभा का यह भी कर्त्तव्य होगा कि वह महत्त्वपूर्ण अल्पसख्यक जातियो के प्रतिनिधित्व का उपाय स्थिर करे और आमतौर से उनके हितो की रक्षा का प्रबन्ध करे।

"पर चूकि साम्प्रदायिक निर्णय के प्रश्न पर देश की विभिन्न जातियो में गहरा मतभेद है, इसलिए इस सम्बन्ध में काग्रेस का रुख प्रकट करना आवश्यक है। काग्रेस का दावा है कि वह भारतीय राष्ट्र की सारी जातियो की प्रतिनिधि सस्था है, इसलिए वर्तमान मतभेद के रहते हुए उस समय तक साम्प्रदायिक निर्णय को न स्वीकार कर सकती है न अस्वीकार, जबतक कि यह मतभेद मौजूद है। साथ ही यह भी आवश्यक है कि साम्प्रदायिक प्रश्न पर कांग्रेस की नीति फिर से घोषित कर दी जाय।

"साम्प्रदायिक समस्या का कोई भी हल, जबतक वह पूर्णतया राष्ट्रीय न हो, काग्रेस-द्वारा निर्धारित नहीं किया जा सकता। पर काग्रेस वचन दे चुकी है कि वह ऐसा कोई भी हल जो राष्ट्रीयता की तराजू पर पूरा न उतरता हो पर जिसपर सारे सम्बन्धित दल सहमत हो गये हो, स्वीकार कर लेगी, और इसके विपरीत उस हल को अस्वीकार कर देगी जिसपर उनमे से दलविशेष सहमत न हुआ हो।

"राष्ट्रीय तराजू पर तौलने पर साम्प्रदायिक निश्चय बिलकुल असंतोषजनक पाया गया है, और उसमें इसके अलावा अन्य दृष्टिकोण से भी घोर आपत्तिजनक बातें मौजूद हैं।

"परन्तु यह स्पष्ट है कि साम्प्रदायिक निश्चय के बुरे परिणाम को रोकने का एकमात्र मार्ग आपस में समझौता करने के उपाय खोज निकालना है, न कि इस घरेलू मामले में ब्रिटिश-सरकार या किसी और बाहरी शक्ति से अपील करना।"

सरदार पटेल रिहा

सत्याग्रह की बन्दी के कारण सरकार ने सत्याग्रहियो को गिला-गुज़ारी करते हुए धीरे-धीरे छोडना आरम्भ कर तो दिया था, पर यह स्पष्ट था कि सरदार वल्लभभाई पटेल, पण्डित जवाहरलाल और खान अब्दुलगफ्फारखा को रिहा न करने का उसने निश्चय कर लिया था। इनमें दो को, सरदार पटेल और खान अब्दुलगफ्फारखा को, जेल में अनिश्चित समय के लिए बन्द कर रक्खा था। उन्हें १९३२ की शुरूआत में ही विशेष कानून के उपयोग के द्वारा पकड लिया गया था, और सरकार जबतक चाहती उन्हें शाही कैदी की हैसियत से जेल में रख सकती थी। पर ऐसी परिस्थिति आ पडी कि सरकार को विवश होना पडा। सरदार वल्लभभाई पटेल को नाक का पुराना रोग था,

जो इधर बहुत बढ गया और जुलाई लगते-लगते रोग ने बडी भयकर अवस्था धारण कर ली। सरकार-द्वारा नियुक्त गये मेडिकल बोर्ड ने बताया कि आपरेशन होना जरूरी है और आपरेशन तभी अच्छी तरह हो सकेगा जब वह स्वतन्त्र होगे। फलत सरकार ने उन्हे १४ जुलाई १९३४ को छोड दिया।

मालवीयजी का इस्तीफा

२७ से ३० जुलाई तक बनारस में कार्य-समिति की बैठक फिर हुई, जिसके दौरान में प० मदनमोहन मालवीय और श्री अणे के साथ बातचीत फिर आरम्भ हुई। कार्य-समिति मालवीयजी और श्री अणे का सहयोग प्राप्त करने के लिए साम्प्रदायिक निर्णय को न स्वीकार और न अस्वीकार करने की मौलिक नीति को नही छोड सकती थी। इस कारण पण्डित मदनमोहन मालवीय ने कांग्रेस-पार्लमेण्टरी-बोर्ड के सभापति-पद से इस्तीफा दे दिया और श्री अणे ने पार्लमेण्टरी-बोर्ड और कार्य-समिति की सदस्यता को त्याग दिया। बगाल को भी शिकायत थी कि हरिजनो को अतिरिक्त जगहें क्यो दी गईं? इस प्रकार बगाल का रुख कार्य-समिति के साम्प्रदायिक निर्णयवाले मामले के विरुद्ध ही नही था, बल्कि पूना-पैक्ट के विरुद्ध भी था।

स्वदेशी पर प्रस्ताव

स्वदेशी के सम्बन्ध में कांग्रेस की जो नीति थी, उसपर लोगो मे सशय उत्पन्न हो रहा था। कार्य-समिति ने अपनी इसी बैठक में कांग्रेस की स्वदेशी-सम्बन्धी स्थिति को भी पुष्ट कर दिया और निम्नलिखित असन्दिग्ध शब्दो में उसकी नीति निर्धारित कर दी —

"स्वदेशी के सम्बन्ध में कांग्रेस की क्या नीति है, इस सम्बन्ध मे सशय उत्पन्न हो गया है, इसलिए इस विषय में कांग्रेस की स्थिति को असन्दिग्ध शब्दो में प्रकट करना आवश्यक है।

"सत्याग्रह के दिनो में जो हुआ सो हुआ, पर वैसे कांग्रेस-मच पर और कांग्रेस-प्रदर्शिनियो में मिल के कपडे और खद्दर के बीच में प्रतिद्वन्द्विता की गुजाइश नही है। कांग्रेस-वादियो को केवल हाथ से कते और हाथ से बुने खद्दर को ही प्रोत्साहन देना चाहिए।

"कपडे के अलावा अन्य पदार्थो के सम्बन्ध में कार्य-समिति कांग्रेस-सस्थाओ के पथ-प्रदर्शन के लिए निम्न-लिखित तजवीज को मजूर करती है—

'कार्य-समिति की सम्मति मे काग्रेस के स्वदेशी-सम्बन्धी कार्य उन्ही उपयोगी चीजो तक सीमित रहेगे जो भारत में घरेलू और अन्य धधो द्वारा तैयार की जाती हो, जिन्हे अपनी सहायता के लिए लोक-शिक्षा की आवश्यकता हो, और जो मूल्य स्थिर करने, वेतन और मजदूरो की भलाई के मामले में कांग्रेस का पथ-प्रदर्शन स्वीकार करने को तैयार हो।'

"इस योजना का यह अर्थ नही लगाना चाहिए कि देश में स्वदेशी-वस्तुओ के प्रति प्रेम और केवल स्वदेशी वस्तुओ का व्यवहार करने का भाव उत्पन्न करने की काग्रेस की अबाध नीति में किसी प्रकार का अन्तर आ गया है ? यह तजवीज तो इस बात को प्रकट करती है कि बड़े और सगठित धधो को, जिन्हें सरकारी सहायता प्राप्त है या हो सकती है, न किसी काग्रेस-सस्था की सहायता की और न काग्रेस की ओर से किसी और ही प्रयत्न की दरकार है।"

काग्रेस के पदाधिकारियो में अनुशासन की आवश्यकता के प्रश्न पर कार्य-समिति की यह राय हुई कि "सारे काग्रेसवादियो से, चाहे वे काग्रेस के कार्यक्रम और नीति में विश्वास रखते हो या न रखते हो, आशा की जाती है और सारे पदाधिकारियो और कार्यकारिणियो के सदस्यो का कर्त्तव्य हो जाता है कि उक्त कार्यक्रम और नीति पर अमल करें और कार्य-कारिणी के जो पदाधिकारी और सदस्य काग्रेस के कार्यक्रम या नीति के विरुद्ध प्रचार करेंगे या उनके विरुद्ध आचरण करेंगे, वे २४ मई १६२६ को बनाये गये महासमिति के नियमो के अनुसार काग्रेस-व्यवस्था की ३१वीं धारा के अन्तर्गत अनुशासन का भग करने के अपराधी माने जायेंगे और इसके लिए उनके खिलाफ जाब्ता कार्रवाई की जायगी।"

राष्ट्रीय दल

अपने-अपने त्यागपत्र देने के बाद मालवीयजी और श्री अणे ने १८ और १६ अगस्त को कलकत्ते में काग्रेसियो और अन्य सज्जनो की एक परिषद् की। इस परिषद् के सभापति मालवीयजी थे। इस परिषद् ने निश्चय किया कि कौंसिलो के भीतर और बाहर साम्प्रदायिक 'निर्णय' और व्हाइट-पेपर के विरुद्ध आन्दोलन करने के लिए पार्टी बनाई जाय, जिसकी ओर से इस उद्देश की पूर्ति के लिए बडी कौंसिल के उम्मीदवार खडे किये जायें। परिषद् ने वे सिद्धान्त स्थिर किये जिनके अनुरूप पार्टी के उम्मीदवार चुने जायें, और व्हाइट-पेपर और साम्प्रदायिक 'निर्णय' की निन्दा के बाद कार्य-समिति से अनुरोध किया कि वह

साम्प्रदायिक 'निर्णय' सम्बन्धी अपने प्रस्ताव के संशोधन के लिए महासमिति की बैठक बुलाये।

अब्दुलगफ्फारखां रिहा

सत्याग्रह-बन्दी के बाद भी सरकार ने दमन-नीति जारी रक्खी थी। खान अब्दुलगफ्फारखा को जेल में बन्द रखने से लोकमत बहुत रुष्ट हो गया था। सीमान्त-प्रदेश उन प्रान्तो में से था जिन्होंने १९३० के और १९३२–३४ के युद्ध में पूरा मोर्चा लिया था। युद्धप्रिय पठानो के अहिंसाव्रत की बडी परीक्षा हुई, पर उन्होंने सन्तोषपूर्वक कष्ट सहे। सीमान्त-प्रदेश के प्रतिनिधि गर्व के साथ यह दावा करते हैं कि यद्यपि उन्हे ऐसे उत्तेजन दिये गये जो उस प्रान्त की मध्यकालीन और निरकुश प्रणाली के द्वारा ही सम्भव हो सकते थे, पर उन्होंने अहिंसा का मार्ग कभी न छोडा। इसलिए देश मे यहा से वहा तक लोगो का दिल यही कहता था कि उस प्रान्त के नेता को जेल में बन्द रखना अन्यायपूर्ण है। सीमान्त-प्रदेश के प्रश्न पर गाधीजी बडे चिन्तित थे और वह यही विचार करने में लगे हुए थे कि उस प्रान्त के सम्बन्ध में सारी बातें स्वय जानने की समस्या को कैसे सुलझायें ? इसलिए जब अगस्त के अन्तिम सप्ताह में अचानक खान अब्दुलगफ्फारखा और उनके भाई डॉ० खानसाहब को छोड दिया गया तो जनता को बडी तसल्ली हुई। पर मुक्त होने पर भी उन्हें अपने प्रान्त और अपने घर जाने की इजाजत न थी। सरकार ने उन्हें छोड तो दिया, पर सीमान्त-प्रदेश में उनका प्रवेश निषिद्ध कर दिया, यद्यपि सीमान्त-प्रदेश ने भी सत्याग्रह-बन्दी के आदेश का यथावत् पालन किया था।

नये चुनावों पर कार्यसमिति

कार्य-समिति की बैठक २५ सितम्बर को वर्धा में हुई। इस अवसर पर लक्ष्य और लक्ष्य-प्राप्ति के साधनो के सम्बन्ध में काग्रेस की नीति को दोहराया गया। बात यह थी कि कुछ काग्रेसवादियो और अन्य सज्जनो को सशय होने लगा था कि पूर्ण-स्वराज्य के लक्ष्य को अब भुलाया जा रहा है। इसलिए एक प्रकार से कराची-काग्रेस की स्थिति को दोहराया गया। 'आगामी निर्वाचनों' के सम्बन्ध में कार्य-समिति ने सारी प्रान्तीय और मातहत काग्रेस-सस्थाओ को आज्ञा दी कि वे निर्वाचन-सम्बन्धी कार्य में पार्लमेण्टरी-बोर्ड को सहायता देना अपना कर्त्तव्य समझें। कार्य-समिति ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि जो दल या व्यक्ति काग्रेस की नीति

के विरुद्ध हो उसे सहायता न दी जाय, और जिसकी आत्मा गवाही न देती हो उसे छोडकर हरेक काग्रेसवादी से आशा की कि वह आगामी निर्वाचनो में काग्रेसी उम्मीदवारो की सहायता करेगा। एक दूसरे प्रस्ताव मे जजीबार के भारतीयो का और उन्हें उनके न्याय्य भू-स्वत्व से वंचित किये जाने की कार्रवाई-सम्बन्धी कष्टो का जिक्र किया गया। श्री अणे के नये दल के कारण विकट अवस्था उत्पन्न हो गई। इस दल ने एक प्रस्ताव पास करके कार्य-समिति से यह अनुरोध किया था कि महासमिति की बैठक बुलाई जाय, जिसमे कार्य-समिति के साम्प्रदायिक 'निर्णय' वाले प्रस्ताव पर विचार किया जाय। सभापति ने पण्डित मालवीय और श्री अणे को स्वय आकर अपने विचार पेश करने के लिए आमन्त्रित किया। कार्य-समिति ने महासमिति की बैठक बुलाने के प्रश्न पर कई घण्टे तक विचार किया और अन्त में इस नतीजे पर पहुँची कि चूकि कार्य-समिति को अपने निश्चय के औचित्य के सम्बन्ध में कोई सन्देह नही है, और चूकि महासमिति के नये चुनाव अभी हो रहे है, इसलिए कार्य-समिति महासमिति की बैठक बुलाने का जिम्मा नही ले सकती। बैठक मे यह भी कहा गया कि यदि महासमिति के कुछ सदस्यो को कार्य-समिति के प्रस्ताव के खिलाफ कोई शिकायत है तो महासमिति के ३० सदस्य महासमिति की बैठक करने की माग पेश कर सकते है, जिसपर कार्य-समिति को बाध्य होकर बैठक बुलानी पडेगी।

कार्य-समिति ने इस प्रश्न पर भी विचार किया कि चुनाव के उम्मीदवारो को कार्य-समिति के साम्प्रदायिक 'निर्णय' सम्बन्धी निश्चय का, अन्तःकरण के विरुद्ध होने के आधार पर, पालन न करने के लिए मुक्त कर दिया जाय, पर वह उस नतीजे पर पहुँची कि चूकि कार्य-समिति ने इस बन्धन-मुक्ति के सम्बन्ध में कोई प्रस्ताव पास नही किया है, इसलिए बन्धन-मुक्ति स्वीकार न की जाय। मालवीयजी ने श्री अणे के द्वारा एक सदेश भेजा था, जिसके उत्तर में गाधीजी ने यह तजवीज पेश की थी कि स्वयं के पारस्परिक तनाव और सघर्ष को बचाने के लिए यह अच्छा होगा कि प्रतिद्वन्द्वी उम्मीदवारो की सफलता की सम्भावना पर विचार करके उन उम्मीदवारो को हटा लिया जाय जिनके सफल होने की सम्भावना कम हो। इसपर कोई समझौता न हो सका। पर पार्लमेण्टरी-बोर्ड ने यह निश्चय किया कि जिन जगहो के लिए मालवीयजी और श्री अणे खडे हो उनके लिए उम्मीदवार खडे न किये जायें। बोर्ड ने यह भी निश्चय किया कि सिन्ध में और कलकत्ता शहर मे उम्मीदवार खडे न किये जायें।

गांधीजी के कांग्रेस से हटने की बात

इन्ही दिनो में काग्रेस के इतिहास मे एक और महत्त्वपूर्ण घटना हुई। यह चर्चा आमतौर से की जा रही थी कि गाधीजी काग्रेस त्याग देंगे। यह कोरी किम्वदन्ती ही न थी, क्योकि उनके जुलाई के मध्यवाले ७ दिन के उपवास के दौरान में जो मित्र उनसे मिलने गये, और इसके बाद बगाल व आन्ध्र से जो लोग किसी-न-किसी कार्य-वश उनके पास वर्धा पहुँचे, उनसे वह इसकी चर्चा वरावर कर रहे थे। गाधीजी ने १७ सितम्वर १९३४ को वर्धा से नीचे लिखा वक्तव्य प्रकाशित किया —

"यह अफवाह सच थी कि मैं काग्रेस से अपना स्थूल सम्बन्ध-विच्छेद करने की बात सोच रहा हूँ। वर्धा में अभी हाल मे कार्य-समिति और पार्लमेण्टरी-वोर्ड की बैठको में भाग लेने के लिए जो मित्र यहा आये थे उनसे मैने इस सम्बन्ध में विचार करने का अनुरोध किया और उनकी इस बात से बाद में सहमत हो गया कि अगर मुझे काग्रेस से अलग ही होना हो तो वह सम्बन्ध-विच्छेद काग्रेस के अधिवेशन के बाद होना ही अच्छा होगा। पण्डित गोविन्दवल्लभ पत और श्री रफीअहमद किदवाई ने मुझे एक बीच का रास्ता भी सुझाया था। आप लोगो ने यह सलाह दी थी कि मैं काग्रेस में तो बना रहूँ, पर उसके सक्रिय प्रवन्ध से अलग रहूँ। मगर सरदार वल्लभभाई पटेल और मौलाना अबुलकलाम आजाद ने इस राय का जोरो से विरोध किया। सरदार वल्लभभाई पटेल तो मेरी इस बात से सहमत है कि अब वह समय आ गया है जब मुझे काग्रेस से अलग हो जाना चाहिए। परन्तु बहुत-से लोग ऐसे भी हैं जो इस राय से सहमत नही है। प्रश्न के तमाम पहलुओ पर गहराई से विचार करने के बाद मै इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि समझदारी का मार्ग तो यही है कि अपना अन्तिम निश्चय कम-से-कम अक्तूबर मे होनेवाले काग्रेस-अधिवेशन तक स्थगित रक्खू। अन्तिम निश्चय को स्थगित कर देने की बात इस दृष्टि से पसन्द आई कि इस बीच मे मुझे अपनी इस धारणा की जाच कर लेने का मौका मिल जायगा कि काग्रेस के बहुत-से बुद्धिशाली लोग मेरे विचारो, मेरे कार्यक्रम और मेरी प्रणाली से उकता गये है और वे यह सोचते है कि काग्रेस की स्वाभाविक प्रगति मे मैं बजाय साधक के एक बाधक बनता जा रहा हूँ। वह यह भी सोचने लगे है कि काग्रेस देश की एक सर्वमान्य लोक-तन्त्रात्मक और प्रतिनिधिमूलक सस्था होने के बजाय मेरे प्रभाव मे आकर मेरे ही हाथो की कठपुतली बनती जा रही है और उसमें अब बुद्धि तथा दलील के लिए कोई स्थान बाकी नही रहा।

"अगर मुझे अपनी धारणा की सच्चाई की जाच करनी हो तो यह जरुरी है कि मै सर्व-साधारण के सामने उन वजूहात को रख दू जिनके आधार पर मेरी यह धारणा

बनी है, साथ ही अपने उन प्रस्तावो को भी रख दू, जो उन कारणो पर निर्भर करते है, ताकि काग्रेसवादी उन प्रस्तावो पर अपना वोट देकर अपनी साफ-साफ राय जाहिर कर सकें।

"इसको यथा सम्भव सक्षेप मे रखने की कोशिश करूँगा। मुझे ऐसा मालूम हो रहा है कि बहुत-से काग्रेसवालो और मेरी विचार-दृष्टि के बीच एक बढता हुआ और गहरा अन्तर मौजूद है। मुझे ऐसा ज्ञात हो रहा है कि बहुत-से बुद्धिशाली काग्रेसवाले यदि मेरे प्रति अनुपम भक्ति के बन्धन मे न पडे रहें तो प्रसन्नता के साथ उस दिशा की ओर जायँगे जो मेरी दिशा के बिलकुल विपरीत है। कोई भी नेता उस वफादारी और भक्ति की आशा नही कर सकता जो मुझे बुद्धिशाली काग्रेसवादियो-द्वारा प्राप्त हो चुकी है—वह भी ऐसी अवस्था में जब उनमें से बहुतो ने मेरे द्वारा काग्रेस के सामने रक्खी गई नीति का स्पष्ट रूप से विरोध व्यक्त किया है। मेरे लिए उनकी भक्ति तथा श्रद्धा से अब और लाभ उठाना उनपर बेजा दबाव डालना है। उनकी यह वफादारी इस बात के देखने से मेरी आख को बन्द नही कर सकती कि काग्रेस के बुद्धिशाली लोगो और मेरे बीच मौलिक मतभेद मौजूद है।

"अब मेरे उन मौलिक मतभेदो को लीजिए। चर्खा और खादी को मैंने सबसे पहला स्थान दिया है। काग्रेस के बुद्धिशाली लोगों द्वारा चर्खा कातना लुप्तप्राय हो गया है। साधारणत उन लोगो का इसमें कोई विश्वास नही रह गया है। फिर भी अगर मैं उनके विचारो को अपने साथ रख सकता, तो मैं ।) आने के बजाय नित्य चर्खा कातना काग्रेस में मताधिकार के लिए अनिवार्य कर देता। काग्रेस-विधान में खादी के सम्बन्ध में जो धारा है वह शुरू से ही निर्जीव रही है और काग्रेसवाले खुद मुझे यह चेतावनी देते रहे कि खादी की धारा के सम्बन्ध में जो पाखण्ड और टालमटोल चल रही है उसके लिए मैं ही जिम्मेवार हूँ। मुझे यह समझना चाहिए था कि यह शर्तवाली शर्त सच्चे विश्वास के कारण नही, बल्कि ज्यादातर मेरे प्रति उनकी वफादारी के ही कारण स्वीकृत की गई थी। मुझे यह बात मान लेनी चाहिए कि उन लोगो की इस दलील में काफी सच्चाई है। तथापि मेरा यह विश्वास बढता ही रहा है कि अगर भारत को अपने लाखो गरीबो के लिए पूर्ण-स्वतन्त्रता प्राप्त करनी है, और वह भी विशुद्ध अहिसा-द्वारा, तो चर्खा और खादी शिक्षितो के लिए भी वैसे ही स्वाभाविक होने चाहिएँ जैसे कि अर्द्ध-बेकारो तथा लाखो की सख्या में अधपेट रहनेवालो के लिए है, जो भगवान् के दिये हाथो को काम में नही लाते और प्राय पशुओ की तरह पृथिवी पर भार रूप हो गये है। इस प्रकार चर्खा सच्चे अर्थ में मानव-शौर्य तथा समानता का मूर्त चिह्न

है। वह खेती का एक सहायक-धन्धा है। वह राष्ट्र का दूसरा फेफड़ा है जिसे काम में न लाने से हम नष्ट हो रहे हैं। फिर भी ऐसे कांग्रेसवादी बहुत ही थोड़े हैं कि जिनको चर्खे के भारत-व्यापी सामर्थ्य में विश्वास है। कांग्रेस-विधान में से खादी की धारा को हटा देने का अर्थ यह है कि कांग्रेस और देश के करोड़ो गरीबो के बीच की कड़ी टूट गई। इस गरीब जनता का प्रतिनिधित्व करने का प्रयत्न कांग्रेस अपने जन्मकाल से ही करती आ रही है। यदि उक्त सम्बन्ध कायम रखने के लिए वह धारा बनी रहेगी तो उसका सख्ती से पालन कराना पड़ेगा। पर यह भी अशक्य होगा, यदि कांग्रेसवालो का खासा बहुमत उसमें जीवित विश्वास न रखता हो।

"इसी प्रकार पार्लमेण्टरी-बोर्ड की बात लीजिए। यद्यपि मैं असहयोग का प्रणेता हूँ, तो भी मेरा विश्वास है कि देश की मौजूदा अवस्था में जब उसके सामने किसी सामूहिक सत्याग्रह की कोई योजना नही है, कांग्रेस के नियन्त्रण में एक पार्लमेण्टरी-पार्टी बनाना किसी भी कार्यक्रम का आवश्यक अग है। यहा भी हम लोगो के बीच गहरा मत-भेद है। पटना की महासमिति की बैठक में जिस जोर से मैने इस कार्यक्रम को पेश किया था उसने हमारे बहुत-से अच्छे-अच्छे साथियो को व्यथित किया, और उसपर चलने में वे हिचकिचाये। किसी हदतक अपने मत को दूसरे ऐसे व्यक्ति के मत के आगे जो बुद्धि या अनुभव में बड़ा समझा जाता है दबा देना एक सस्था की निर्विकार उन्नति के लिए हितकर और वाञ्छनीय है। किन्तु यह तो एक भयकर अत्याचार होगा, यदि अपना मत इस प्रकार बार-बार दबाना पड़े। यद्यपि मैंने कभी यह नही चाहा था कि यह अवाञ्छनीय परिणाम उत्पन्न हो, किन्तु फिर भी मै इस बात को साधारण जनता और अपनी अन्तरात्मा से छिपा नही सकता कि वास्तव में बराबर यही दुखद स्थिति चली आ रही थी। बहुत-से मेरे मित्र मेरा विरोध करने के विषय में हताश हो गये हैं। मेरे जैसे जन्मना लोकतन्त्रवादी के लिए इस भेद का खुल जाना लज्जा की बात है। मैंने गरीब-से-गरीब मनुष्य के साथ अपनेको मिला देने और उससे अच्छी दशा में न रहने की तीव्र अभिलाषा अपने हृदय में रक्खी है, और उस सतह तक पहुँचने के लिए ईमानदारी से प्रयत्न किया हैं। और इन कारणों से अगर कोई लोकतन्त्रवादी होने का दावा कर सकता है, तो वह दावा मैं करता हूँ।

"मैंने समाजवादी-दल का स्वागत किया है, जिसमें मेरे बहुत से आदरणीय और आत्मत्यागी साथी मौजूद हैं। यह सब होते हुए भी उनका जो प्रामाणिक कार्यक्रम छपा है उसमे मेरा मौलिक मतभेद है। किन्तु मै उनके साहित्यो में प्रतिपादित सिद्धान्तो का फैलना अपने नैतिक दबाव से नही रोकना चाहता। मैं उन सिद्धान्तो को स्वतन्त्रता

के साथ प्रकट करने में हस्तक्षेप नही कर सकता, चाहे उनमें से कुछ सिद्धान्त मुझे कितने ही नापसन्द क्यो न हो। यदि उन सिद्धान्तो को काग्रेस ने स्वीकार कर लिया, जैसा कि बहुत सम्भव है, तो मै काग्रेस में नही रह सकता, काग्रेस में रहकर सक्रिय विरोध करते रहने की बात तो मेरी कल्पना ही में नही आती। यद्यपि अपने सार्वजनिक जीवन की लम्बी अवधि मे मेरा बहुत-सी सस्थाओ से सम्बन्ध रहा है, किन्तु मैने कभी अपने लिए यह सक्रिय विरोध की स्थिति स्वीकार नहीं की है।

"इसके बाद देशी रियासतो के सम्बन्ध में कुछ लोग उस नीति का समर्थन कर रहे हैं जो मेरी सलाह और मत के सर्वथा विरुद्ध है। मैंने चिन्ता के साथ घण्टो उसपर विचार किया है, किन्तु मैं अपना मत बदलने में सफल न हो सका।

"अस्पृश्यता के बारे में भी मेरी दृष्टि अधिकाश नही तो बहुत-से कांग्रेसजनो से कदाचित् भिन्न है। मेरे लिए तो यह एक गम्भीर धार्मिक और नैतिक प्रश्न है। बहुतो का विचार है कि इस प्रश्न को जिस तरह और जिस समय मैंने हाथ में लिया उससे सत्याग्रह-आन्दोलन की गति मे बाधा डालकर मैंने भारी भूल की। पर मैं अनुभव करता हूँ कि अगर मैंने दूसरा मार्ग पकड़ा होता तो मैं अपने-तई सच्चा न रहा होता।

"अन्त मे अब अहिंसा को लीजिए। १४ वर्ष के प्रयोग के बाद भी वह अबतक अधिकाश काग्रेसियो के लिए नीतिमात्र ही है, जबकि मेरे लिये वह एक मूल सिद्धान्त है। काग्रेसवाले अबतक अहिंसा को जो सिद्धान्त के रूप में स्वीकार नहीं करते इनमें उनका कोई दोष नही है। उसके प्रतिपादन और उसे कार्य में परिणत करने का मेरा दोषपूर्ण ढग ही निस्सन्देह इसके लिए जिम्मेदार है। मुझे नही लगता, कि मैने उसके दोषपूर्ण प्रतिपादन और उसे कार्य मे परिणत करने में कोई भूल की है। पर अबतक जो काग्रेसवालो के जीवन का वह अभिन्न अंग नही बन सकी इससे यही एक अनुमान निकाला जा सकता है।

"और यदि अहिंसा के सम्बन्ध में अनिश्चितता है, तो फिर सत्याग्रह के सम्बन्ध में तो वह और भी अधिक होनी चाहिए। इस सिद्धान्त के २७ वर्ष के अध्ययन और व्यवहार के बाद भी मै यह दावा नही कर सकता कि मै उसके सम्बन्ध मे सब कुछ जानता हूँ। अनुसन्धान का क्षेत्र अवश्य ही परिमित है। मनुष्य के जीवन मे सत्याग्रह करने के अवसर निरन्तर नही आते रहते। माता, पिता, शिक्षक अथवा धार्मिक या लौकिक गुरुजनो की आज्ञा स्वेच्छा से पालन करने के बाद ही ऐसा अवसर आ सकता है। इसपर आश्चर्य न होना चाहिए कि एकमात्र विशेषज्ञ होने के कारण, चाहे मैं कितना ही अपूर्ण होऊँ, मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि कुछ समय के लिए सत्याग्रह मुझतक ही

सीमित रहना चाहिए। अनेक व्यक्तियो के प्रयोग से होनेवाली भूलो और हानि को रोकने के लिए तथा एक ही व्यक्ति के द्वारा किये जानेवाले सत्याग्रह की गूढ सम्भावनाओ का पता लगाने के लिए मेरा यह निश्चय आवश्यक था। परन्तु यहा भी काग्रेसियो का दोप नही है। पर इस विपय में हाल मे स्वीकार किये गये प्रस्तावो के सम्बन्ध मे अपने साथी काग्रेसजनो से, जिन्होंने उदारतापूर्वक इन प्रस्तावो के पक्ष में अपना मत दिया, अपने विचार स्वीकार कराने मे मुझे अधिकाधिक कठिनाई मालूम हुई है।

"इन प्रस्तावो पर अपने बौद्धिक विश्वास को दवाकर मत देते समय जिस कष्ट का अनुभव उन्हें हुआ होगा उसके स्मरणमात्र से मुझे उनसे कम पीडा नही होती। जो हम सवका लक्ष्य है उसकी ओर वढने के लिए आवश्यक है कि मै और वे इस प्रकार के दवाव से मुक्त रहें। इसलिए यह भी आवश्यक है कि सवको अपनी धारणा के अनुसार निर्भीकता से कार्य करने की स्वतत्रता रहे।

"सत्याग्रह-आन्दोलन स्थगित करने के वारे में पटना से मैंने जो वक्तव्य प्रकाशित किया था उसमें मैंने लोगो का ध्यान सत्याग्रह की विफलता की ओर दिलाया था। अगर हममें पूर्ण अहिंसा का भाव होता तो वह स्वय प्रत्यक्ष हो जाता और सरकार से छिपा न रहता। निस्सन्देह सरकार के आर्डिनेन्स हमारे किसी कार्य या हमारी किसी गलती के कारण नही वने थे। वे तो चाहे जिस प्रकार हमारी हिम्मत तोडने को वनाये गये थे। पर यह कहना गलत है कि सत्याग्रही दोप से परे थे। यदि वरावर हम पूर्ण अहिंसा का पालन करते तो वह छिपी न रहती। हम आतकवादियो को भी यह नहीं दिखला सके कि हमें अहिंसा में उससे अधिक विश्वास है जितना उन्हे हिंसा मे है। वल्कि हममे से वहुतेरो ने उनमें यह भावना उत्पन्न कराई कि हमारे मन में भी उन्हीकी तरह हिंसा का भाव भरा है, अन्तर इतना ही है कि हम हिंसामय कार्यो मे विश्वास नही करते। आतकवादियों की यह दलील युक्तिसगत है कि जव दोनो के मन में हिंसा का भाव है तव हिंसा करना चाहिए या नही यह केवल मत का प्रश्न रह जाता है। यह तो मैं वार-वार कह ही चुका हूँ कि देश अहिंसा के मार्ग पर वहुत अग्रसर हुआ है, और यह भी कि वहुतेरो ने वेहद साहस और अपूर्व त्याग दिखाया है। मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि हम मन, वचन और कर्म से विशुद्ध अहिंसक नही रहे है। अव मेरा यह परम-धर्म हो गया है कि मैं सरकार और आतकवादियो दोनो को ही यह दर्पणवत् दिखला देने का उपाय ढूढ निकालू कि अहिंसा मे सही लक्ष्य को, जिसमें पूर्ण-स्वतन्त्रता भी शामिल है, प्राप्त कराने की पूर्ण सामर्थ्य है। अहिंसात्मक साधन का अर्थ है हृदय-परिवर्तन, न कि वलात्कार।

"इस प्रयोग के लिए, जिसके लिए मेरा जीवन अर्पित है, मुझे पूर्ण निस्संग और स्वतन्त्र रहने की आवश्यकता है। सविनय-अवज्ञा जिस सत्याग्रह का एक अंशमात्र, है, वह मेरे लिए जीवन का एक व्यापक नियम है। सत्य ही मेरा नारायण है। अहिंसा के द्वारा ही मै उसकी खोज कर सकता हूँ, अन्यथा नही। मेरे देश की ही नहीं, सारी दुनिया की स्वतन्त्रता सत्य के अनुसन्धान में ही संनिहित है। सत्य की इस खोज को मै न तो इस लोक के लिए स्थगित कर सकता हूँ, न परलोक के लिए। इसी अनुसन्धान के उद्देश्य से मैंने राजनैतिक क्षेत्र में प्रवेश किया है और अगर मेरी यह बात बुद्धिशाली काग्रेसियो की बुद्धि और हृदय स्वीकार नही करता कि सत्य के इसी अनुसन्धान के द्वारा पूर्ण स्वाधीनता और ऐसी बहुत-सी वस्तुयें जो सत्य का अंश हो, प्राप्त हो सकती है तो यह स्पष्ट है कि अब मै अकेला ही काम करूँ और यह दृढ विश्वास रक्खू, कि जिस बात को आज मै अपने देशवासियो को नही समझा सकता वह एक दिन आप-से-आप उनकी समझ में आजायगी या कदाचित् अपनी किसी ईश्वर-प्रेरित वाणी या कृत्य से मै लोगो को समझा सकू। ऐसे बड़े महत्त्व के विषय में यन्त्र की तरह वोट देना अथवा आधे मन से अनुमति देना उद्देश सिद्धि के लिए हानिकारक नही तो सर्वथा अपर्याप्त तो है ही।

"मैंने सामान्य लक्ष्य की बात कही है, पर मुझे अब इस बात में सन्देह होने लगा है कि आया सभी काग्रेसवादी पूर्ण-स्वाधीनता शब्द से एक ही अर्थ ग्रहण करते है। मै भारत के लिए पूर्ण-स्वाधीनता उसके मूल अंग्रेजी शब्द "कम्प्लीट इंडिपेंडेंस" के पूरे अंग्रेजी अर्थ मे ही चाहता हूँ। खुद मेरे लिये तो पूर्ण-स्वराज्य का अर्थ पूर्ण-स्वाधीनता से भी कही अधिक व्यापक है। पर पूर्ण-स्वराज्य भी अपना अर्थ स्वत व्यक्त नही करता। कोई अकेला या सयुक्त शब्द हमे ऐसा अर्थ नही दे सकता जिसे सब लोग समझ लें, इसलिए अनेक अवसरो पर मैंने स्वराज्य की अनेक व्याख्यायें की हैं। मै मानता हूँ कि वे सभी ठीक है और कदापि परस्पर विरोधी नही है। पर सबको एकसाथ मिला देने पर भी वे सर्वथा अपूर्ण रह जाती है। किन्तु इस बात को अधिक विस्तार नही देना चाहता।

"मैंने जो कहा है कि पूर्ण-स्वराज्य की परिभाषा करना असम्भव नहीं तो बहुत कठिन अवश्य है, उससे कितने ही काग्रेस-वादियो के और मेरे बीच मत-भेद की एक और बात मेरे ध्यान मे आती है। १९०८ से मै बराबर कहता आया हूँ कि साधन और साध्य समानार्थक शब्द हैं। इसलिए जहा साधन अनेक और परस्पर-विरोधी भी हैं वहा साध्य अवश्य भिन्न और साधन के प्रतिकूल होगा। साधनो पर सदा हमारा अधिकार और नियन्त्रण रहता है, पर साध्य पर कभी नही होता। पर यदि हम समान

अर्थ तथा ध्वनिवाले साधनो का उपयोग करते हो तो हमें साध्य के विश्लेषण में माथापच्ची करने की जरूरत न होगी। इस बात को सभी स्वीकार करेंगे कि बहुतेरे काग्रेसवादी (मेरे विचार से) इस स्पष्ट सत्य को स्वीकार नही करते, उनका विश्वास है कि साध्य शुद्ध हो तो साधन चाहे जैसे काम में लाये जा सकते है।

"इन सब मतभेदो ने ही काग्रेस के वर्तमान कार्यक्रम को विफल बना दिया है। कारण, जो काग्रेस-सदस्य हृदय से उसमें विश्वास किये बिना मुह से उसकी हामी भरते हैं वे स्वभावत उसे कार्य में परिणत नही कर पाते, और मेरे पास उस कार्यक्रम के सिवा दूसरा कोई कार्यक्रम है ही नही, जो इस समय देश के सामने है—अर्थात् अस्पृश्यता-निवारण, हिन्दू-मुस्लिम-एकता, सम्पूर्ण मद्य-निषेध, चर्खा और खादी तथा ग्राम्य-उद्योगो को पुनर्जीवित करने के रूप मे सौ फी सदी स्वदेशी का प्रचार और भारत के ७ लाख गावो का सगठन। यह कार्यक्रम प्रत्येक देशभक्त की देशभक्ति को तृप्त करने के लिए काफी होना चाहिए।

"मेरी अपनी इच्छा तो यह है कि भारत के किसी गाव में, विशेषत सीमा-प्रान्त के किसी गाव में, अपना डेरा जमा लू। खुदाई खिदमतगार सचमुच अहिंसावादी होगे तो अहिंसा-भाव की वृद्धि और हिन्दू-मुस्लिम-एकता की स्थापना में वे सबसे अधिक सहायक हो सकते हैं। अगर वे मन, वचन, कर्म से अहिंसाव्रती और हिन्दू-मुस्लिम-एकता के प्रेमी है तो निश्चय ही उनके द्वारा हम इन दोनो कार्यों की सिद्धि देख सकते हैं जो इस समय हमारे देश में सबसे अधिक आवश्यक वस्तु है। जिस अफगानी हौआ से हम इतना डरा करते है वह तब अतीत काल की वस्तु हो जायगा। अत मै इस दावे की स्वय परीक्षा करने का अवसर पाने के लिए उत्सुक हू कि उन्होने (खुदाई खिदमतगारो ने) अहिंसा-भाव को सम्यक् प्रकार से ग्रहण कर लिया है और हिन्दू-मुस्लिम तथा अन्य सम्प्रदायो की सच्ची आन्तरिक एकता में वे विश्वास रखते हैं। मैं स्वय उन्हें चर्खे का सन्देश भी जाकर सुनाना चाहता हूँ। मेरी अभिलाषा यही होगी कि इन तथा ऐसे अन्य प्रकारो से जो थोडी-बहुत सेवा काग्रेस की मुझसे बन सके करता रहूँ, चाहे मैं काग्रेस के अन्दर होऊँ या बाहर।

"अपने कार्यकर्त्ताओ में बढते हुए दूषण की चर्चा मैंने अन्त के लिए रख छोडी है। इसके विषय मे अपने लेखो और भाषणो में मै काफी कह चुका हूँ। पर यह सब होते हुए आज भी मेरे विचार से काग्रेस देश की सबसे अधिक शक्ति-शालिनी और प्रातिनिधिक सस्था है। उसका जीवन उच्चकोटि की अटूट सेवा और त्याग का इतिहास है। अपने जन्मकाल से ही उसने जितने तूफानो का सफलता के साथ सामना किया

उतना किसी और सस्था को नहीं करना पडा। उसके आदेश से लोगो ने इतना अधिक त्याग किया है, जिसपर देश गर्व कर सकता है। सच्चे देशभक्त और उज्ज्वल-चरित्रवाले स्त्री-पुरुषो की सबसे बडी सख्या आज कांग्रेस के अनुयायियो में है। अत यदि ऐसी सस्था से मुझे अलग होना ही पडे तो यह नही हो सकता कि ऐसा करने में मुझे दिल कचोटने का भारी कष्ट, विछोह की असहनीय पीडा न सहन करनी पडे। और मै तभी ऐसा करूँगा जब मुझे निश्चय हो जायगा कि कांग्रेस के अन्दर रहने की अपेक्षा उसके बाहर मै देश की अधिक सेवा कर सकूगा।

कुछ संशोधन

"मै चाहता हूँ कि मैंने जिन सब विषयो की चर्चा की है उनको कार्य-रूप में परिणत कराने के लिए कुछ प्रस्ताव विषय-समिति में पेश करके कांग्रेस के भाव की परीक्षा करूँ। पहला सशोधन जो मै पेश करूँगा वह यह होगा कि 'उचित और शान्तिमय' शब्दो के बदले 'सत्यतापूर्ण' और 'अहिंसात्मक'शब्द रक्खे जायँ। मैं ऐसा न करता, अगर उचित और शान्तिमय के बदले इन दो विशेषणो का सरल-भाव से मेरे प्रयोग करने पर उनके विरुद्ध तूफान न खड़ा कर दिया गया होता। अगर कांग्रेसी वस्तुत हमारे ध्येय की प्राप्ति के लिए सच्चाई और अहिंसा की आवश्यकता समझते हैं तो उन्हें इन स्पष्ट विशेषणो को स्वीकार करने मे हिचक न होनी चाहिए।

दूसरा सशोधन यह होगा कि कांग्रेस की मताधिकार-योग्यता चार आने के बदले हर महीने कम-से-कम १५ नम्बर का अच्छा बटा हुआ २००० तार (एक तार =४ फुट) सूत हर महीने देने की रक्खी जाय और वह सूत मतदाता खुद चर्खे या तक्ली पर कातकर दें। अगर किसी मेम्बर की गरीबी साबित हो तो उनको कातने के लिए काफी रुई दी जाय ताकि वह उतना सूत कातकर दे सके। इसके पक्ष और विपक्ष की दलीलें यहा दोहराने की जरूरत नही है। अगर हमको सचमुच लोकतन्त्रात्मक सस्था बनना है, और गरीब-से-गरीब मजदूर का प्रतिनिधित्व करना है, तो हमें कांग्रेस के लिए कम-से-कम परिश्रम का मताधिकार बनाना ही होगा। यह सब लोग स्वीकार करते हैं कि चर्खा चलाना कम-से-कम परिश्रम के साथ-साथ सबसे अधिक आदरणीय कार्य है। यह बालिग-मताधिकार के अत्यन्त निकट पहुँचाता है और उन सबके बूते की बात है जो अपने देश के नाम पर आध घंटे प्रतिदिन परिश्रम करना स्वीकार करते हैं। क्या पढे-लिखो और सम्पत्तिवानो से यह आशा करना बहुत है कि वे श्रम के गौरव को स्वीकार करेंगे और इस बात का खयाल न करेंगे कि उससे स्थूल लाभ कितना होता है?

क्या परिश्रम विद्याध्ययन की भाति स्वत अपना ही पारितोषिक नही है ? अगर हम लोग वास्तव मे लोकसेवक है, तो हम उनके लिए चर्खा चलाने में गौरव का अनुभव करेंगे। स्वर्गीय मौलाना मुहम्मदअली की उस बात का मै स्मरण दिलाता हूँ जो वह प्राय अनेक सभामचो से कहा करते थे, अर्थात् तलवार जिस प्रकार पाशविक शक्ति और बलात्कार का प्रतीक है उसी प्रकार चर्खा या तकली अहिंसा, सेवा तथा विनम्रता का प्रतीक है। जब चर्खा राष्ट्रीय-पताका का एक अग बना दिया गया तो अवश्य ही उसका यह अर्थ था कि प्रत्येक घर में चर्खे की आवाज गूजेगी। वास्तव में अगर काग्रेसवाले चर्खे के सन्देश में विश्वास नही करते, तो उन्हे उसे राष्ट्रीय झडे से हटा देना चाहिए। और काग्रेस के विधान से खादी की धारा निकाल देनी चाहिए। यह असह्य बात है कि खादी की शर्त का पालन करने में निर्लज्जपन से धोखा दिया जाय।

"तीसरा सशोधन जो मै पेश करना चाहता हूँ वह यह होगा कि किसी ऐसे काग्रेसी को काग्रेस के निर्वाचन मे मत देने का अधिकार न होगा जिसका कि नाम ६ महीने तक बराबर काग्रेस-रजिस्टर पर न रहा हो और जो पूरी तरह से आदतन खादी पहननेवाला न रहा हो। खादी की धारा को कार्यान्वित कराने में भारी कठिनाइयो का सामना पडा है। यह मामला आसानी से इस प्रकार तय किया जा सकता है, कि काग्रेस के सभापति के पास अपील करने का अधिकार देते हुए भिन्न-भिन्न कमिटियो के सभापतियो पर इस बात का फैसला करने का भार छोड दिया जाय कि वे यह देखें कि मतदाता आदतन खादी पहननेवाला है या नही। नियम के अर्थ में वह आदमी खादी का आदतन पहननेवाला न समझा जाय, जो वोट देने के समय प्रत्यक्ष रूप से पूर्णत खादी-वस्त्रो में न हो। किन्तु फिर भी किसी नियम से वह सन्तोषजनक फल प्राप्त नही हो सकता जिसका पालन अधिकतर लोग अपनी इच्छा से नही करते, चाहे उसके पालन कराने के लिए कितनी ही सावधानी और कडाई से काम क्यो न लिया जाय।

"अनुभव ने यह दिखला दिया है, कि केवल ६००० प्रतिनिधि होते हुए भी काग्रेस इतनी बडी हो जाती है कि भलीभाति कार्य-सचालन करना कठिन हो जाता है। व्यवहारत कभी पूरे प्रतिनिधि काग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में शरीक नही होते। और फिर जबकि काग्रेस के सदस्यो की सूचिया कहीं भी असली नही होती, तब ये ६००० प्रतिनिधि कैसे सच्चे प्रतिनिधि कहे जा सकते हैं ? इसलिए मै यह सशोधन चाहूँगा कि प्रतिनिधियो की सख्या घटाकर ऐसी कर दी जाय जो १००० से अधिक न हो, और प्रति एक हजार वोटरो के पीछे एक प्रतिनिधि से अधिक न चुना जाय।

इस प्रकार पूरे प्रतिनिधियो की सख्या का अर्थ यह हुआ कि पूरे १० लाख मतदाता हों। यह कोई ऐसी आकांक्षा नही है जो पूरी न हो। ३५ करोड की जन-सख्यावाले देश के लिए यह अधिक नहीं है। इस संशोधन के द्वारा कांग्रेस को जो वास्तविक लाभ होगा, उससे सख्या-बल की क्षति-पूर्ति अच्छी तरह हो जायगी। अधिवेशन के ऊपरी ठाट-बाट की रक्षा दर्शकों के लिए उचित प्रबन्ध कर केकी जायगी, और स्वागत-समिति को अत्यधिक संख्यक प्रतिनिधियों के रहने आदि की व्यवस्था करने में जिस व्यर्थ की परेशानी का सामना करना पड़ता है उससे छुटकारा मिल जायगा। यह बात स्वीकार करनी चाहिए, कि कांग्रेस की प्रतिष्ठा तथा उसका लोकतन्त्रात्मक रूप और उसका प्रभाव इस कारण नहीं है कि उसके वार्षिक अधिवेशन में प्रतिनिधियो और दर्शको की अत्यधिक संख्या होती है, बल्कि इस कारण है कि कांग्रेस ने देश की सतत वर्द्धमान सेवा की है। पश्चिम का लोकतंत्र अगर सर्वथा निष्फल नही हो गया है, तो अग्नि-परीक्षा से तो वह गुजर ही रहा है। क्यो न भारत लोकतंत्र के सच्चे रूप को विकसित करने का श्रेय प्राप्त करे और उसकी सफलता को प्रत्यक्ष प्रकट कर दे? भ्रष्टता तथा दंभ लोकतत्र के अनिवार्य परिणाम नहीं होने चाहिएँ, यद्यपि आज यही बात देखने में आ रही है, न बहुसंख्यक का होना ही लोकतन्त्र की सच्ची कसौटी है। थोड़े आदमियो द्वारा उन सब लोगो की आशा, महत्त्वाकांक्षा तथा भावनाओ का प्रकट करना, जिनका कि प्रतिनिधित्व करने का वे दावा करते हैं, सच्चे लोकतत्र के विपरीत नहीं है। मेरा विश्वास है कि लोकतंत्र का विकास बल-प्रयोग से नहीं हो सकता। लोकतंत्र का सच्चा भाव बाहर से नहीं, किन्तु भीतर से उत्पन्न होता है।

"मैंने यहा विधान में करने योग्य सशोधन पेश किये हैं। ऐसे और भी प्रस्ताव होंगे जो उन बातो का, जिनकी चर्चा मैंने की है, स्पष्टीकरण करेंगे। मैं अपने इस वक्तव्य को उन प्रस्तावो की चर्चा करके बढ़ाना नही चाहता।

"मुझे आशका है कि जिन संशोधनो का मैंने उल्लेख किया है वे भी बम्बई-कांग्रेस में शामिल होनेवाले कांग्रेसजनो में से अधिकतर को शायद ही पसन्द आवें। परन्तु यदि कांग्रेस की नीति का सचालन मेरे जिम्मे रहे, तो मैं इन सशोधनो को और अन्य ऐसे प्रस्तावो को, जो मेरे इस वक्तव्य के भाव के अनुकूल हों, देश के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अति आवश्यक समझता हूँ। जिस किसी संस्था की सदस्यता भी स्वेच्छा पर निर्भर करती है उसके प्रस्तावों और नीति को जबतक उसके सदस्य तन-मन से कार्यान्वित नहीं करते तबतक उसका उद्देश्य सिद्ध नहीं हो सकता और जिस नेता

का अनुसरण उसके अनुयायी शुद्ध भाव से, पूरे मन से और बुद्धिपूर्वक नही करते वह अपना कर्तव्य पूरा नही कर सकता। और जिस नेता के पास अहिंसा और सत्य के सिवा और कोई साधन नही उसके लिए तो यह बात और भी सच्ची है। इसलिए यह स्पष्ट है कि मैंने जो कार्यक्रम उपस्थित किया है उसमें समझौते की गुजाइश नही। काग्रेसजनो को चाहिए कि शान्त भाव से उसके गुण-दोष पर विचार कर लें। वे मेरा कोई लिहाज न करें और अपनी विवेकबुद्धि के अनुसार ही कार्य करें।"

बम्बई-कांग्रेस

२६ से २८ अक्तूबर (१९३४) तक बम्बई में काग्रेस का अधिवेशन हुआ। अधिवेशन के पहले से ही काग्रेस-विधान में होनेवाले क्रान्तिकारी सुधारो की चर्चा चल रही थी।

अधिवेशन के शुरू होते ही गाधीजी ने अपने सशोधनो को दो विभागो में बाट दिया, अर्थात् काग्रेस-विधान-सम्बन्धी और सत्याग्रह-सम्बन्धी। सत्याग्रह-सम्बन्धी सशोधनो को तो आपने कार्य-समिति के फैसले के लिए छोड दिया और विधान-सम्बन्धी सशोधनो के बारे में यह कह दिया कि उनका पास होना न होना ही इस बात की परख होगी कि काग्रेस उसके नये सभापति व उनके साथियो में विश्वास रखती है या नही। पर आश्चर्य की बात है कि कार्य-समिति ने उपयुक्त परिवर्तनो-सहित दोनो प्रकार के सशोधन स्वीकार कर लिये और स्वय काग्रेस ने भी उन्हें मुख्यत स्वीकार कर लिया, जिससे गाधीजी सतुष्ट हो गये। गाधीजी के मूल-मसविदे में काग्रेस ने जो-जो परिवर्तन किये उनकी तफसील देने की यहा जरूरत नही। इतना कह देना पर्याप्त है कि ध्येय-परिवर्तन के प्रस्ताव के बारे में यह निश्चय हुआ कि उसे प्रान्तीय काग्रेस-कमिटियो के पास सम्मति के लिए भेजा जाय। 'शारीरिकश्रम' की शर्त केवल उन्ही काग्रेस-सदस्यो तक सीमित रक्खी गई जो काग्रेस के किसी चुनाव में खडे हो। आदतन खादी पहनने की धारा ज्यो-की-त्यो मान ली गई। काग्रेस-प्रतिनिधियो की सख्या २००० से अधिक न होना तय हुआ, जिसमें १४८९ प्रतिनिधि ग्राम्य-क्षेत्रो के और ५११ शहर-क्षेत्रों के रक्खे गये। महासमिति के सदस्यो की सख्या आधी कर दी गई। प्रतिनिधियो का चुनाव '५०० सदस्यो पर एक प्रतिनिधि' के हिसाब से रक्खा गया, न कि १००० सदस्यो पर एक प्रतिनिधि के हिसाब से, जैसा कि गाधीजी का प्रस्ताव था। इस प्रकार गाधीजी के मूल-मसविदे का यह सिद्धान्त कि प्रतिनिधियो की सख्या ठीक काग्रेस-सदस्यो की सख्या के हिसाब से हो, काग्रेस ने स्वीकार कर लिया। इसका यह तात्पर्य हुआ कि प्रतिनिधियों

की हैसियत अब एक धूम-धडाके से होनेवाले सम्मेलन के दर्शको की-सी न रहकर राष्ट्र के प्रतिनिधियो की-सी हो गई, जिनका कर्तव्य था कि काग्रेस की कार्य-कारिणी अर्थात् महासमिति व प्रान्तीय काग्रेस-कमिटियो का चुनाव करें। गाधीजी के मसविदे का शेष भाग लगभग ज्यो-का-त्यो स्वीकार कर लिया गया।

लेकिन काग्रेस का नया विधान या पार्लमेण्टरी बोर्ड, रचनात्मक कार्यक्रम एव साम्प्रदायिक-निर्णय-सम्बन्धी पुराने प्रस्तावो की स्वीकृति मे प्रस्तावो का पास होना, अधिवेशन के मार्के के निर्णयो में से नही थे, हालाकि ये स्वय कुछ कम महत्त्व के निर्णय न थे। तथापि अधिवेशन की मुख्य घटना, यद्यपि उसकी ओर लोगो का ध्यान कुछ कम आकर्षित हुआ, अखिल-भारतीय ग्राम-उद्योग सघ की स्थापना थी, जिसके बारे में यह निश्चित हुआ कि वह गाधीजी की सलाह व देख-रेख मे काम करेगा और राजनैतिक कहलाई जानेवाली हलचलो से अलग रहेगा। खद्दर के कार्यक्रम की पूर्ति का यह युक्ति-युक्त परिणाम ही था। गाव व देश को सुसम्पन्न बनाने के लिए जिन ग्राम्य-उद्योगो की आवश्यकता होती है खद्दर तो उनका अगुवा-मात्र ही है। किसी राष्ट्र की सभ्यता का ठीक-ठीक पता-ठिकाना उसके हुनर व कारीगरी से ही होता है।

वैज्ञानिक आविष्कारो पर तो सारे ससार का एकसा अधिकार होता है। ज्ञान भी किसी एक राष्ट्र व व्यक्ति की बपौती नही, लेकिन किसी देश की हुनर व कारीगरी में तो हमें उस राष्ट्र की आत्मा ही बोलती दिखाई देती है। जिस राष्ट्र का कला-कौशल व कारीगरी नष्ट हो चुकी उस राष्ट्र का तो व्यक्तित्व ही मानो जाता रहा। वह राष्ट्र पशुओ की भाति जीता रहे यह बात दूसरी है, लेकिन उसकी सृजनात्मक-प्रतिभा तो सदा के लिए विदा ले चुकी, जिसके वापस आने की कोई सम्भावना ही नही। इसलिए जब गाधीजी ने भारत के गावो के लुप्त व लुप्तप्राय उद्योगो को पुनर्जीवन देने का बीड़ा उठाया तो मानो उन्होने भारतीय सभ्यता के पुनरुद्धार, भारत की आर्थिक समृद्धि के पुनरागमन और भारत की राष्ट्रीय शिक्षा-पद्धति की पुनर्रचना का ही बीडा उठाया।

गांधी जी अलग होगये

अब हम आखिर मे उस घटना का उल्लेख करते है जो सम्भवत बम्बई-अधिवेशन की सबसे मार्के की घटना है, अर्थात् गाधीजी का काग्रेस से अलग होना। हालाकि इस सम्बन्ध में गाधीजी ने जो निश्चित घोषणा की थी उसको पहले लोगो

ने अधिक मूल्य नही दिया था, लेकिन उन्हें शीघ्र ही पता भी चल गया कि गाधीजी जो-कुछ भी कहते हैं वह सदा ठीक ही कहते हैं और जो-कुछ भी कहते हैं उसे सदा करते है।

वास्तव मे यह खबर तो भारत की जनता तथा समाचार-पत्रो को एकदम सन्नाटे में ही डालनेवाली थी कि गाधीजी काग्रेस के मामूली सदस्य तक न रहेंगे। तिसपर भी गाधीजी ने काग्रेस के विश्वास-प्रस्ताव के साथ ही काग्रेस को छोडा है और उसमें वापस आने के लिए काग्रेस का दर्वाजा उनके लिए सदा खुला हुआ है। यह तभी हो सकता है जबकि पहले काग्रेस स्वय अपनेको इस योग्य बना ले। पहले उसे अपने मे से सब गन्दगी निकाल देनी होगी और अपनेको इस प्रकार ढालना होगा कि काग्रेस व खद्दर, शुद्धता, सच्चाई व ईमानदारी के ही परिचायक समझे जाने लगें। इसलिए काग्रेस के बुद्धिशाली लोगो को अपने नेताओ को यह जता देना होगा कि उनका उद्देश स्वार्थ नही बल्कि सेवा व त्याग के आदर्श की प्राप्ति है—ऐसा आदर्श जिस तक पहुँचने के लिए हमें प्रति दिन कम-से-कम ८ घटे मासिक के हिसाब से शारीरिक श्रम करना आवश्यक है और जिसका फल हमें काग्रेस को अर्पित करना है। इस धारा के सम्बन्ध में कुछ लोगो की यह गलत धारणा-सी बन गई है कि यह धारा काग्रेस को समाजवादियो के आक्रमण व प्रभाव से बचाने के लिए रक्खी गई है। बात ऐसी नहीं है। शारीरिक-श्रम तथा गरीब मजदूर व किसानो की सेवा के लिए काग्रेस गत १४ वर्षों से ही वचन-बद्ध है। काग्रेस का दृष्टिकोण तो वास्तव में समाजवादी ही है। यदि समाजवादी सिर्फ खद्दर व ग्राम-उद्योगो में, सत्य व अहिंसा में, तथा देश के सामने रक्खे गये उच्च-आदर्श की प्राप्ति के लिए निर्धारित दैनिक-कार्यक्रम में अपनी आस्था रखने की घोषणा कर दे तो काग्रेसियो और समाजवादियो में कोई अन्तर ही न रहे। और फिर गाधीजी से बढकर समाजवादी और कौन हो सकता है, जो सिर्फ नाम के ही समाजवादी नही बल्कि वास्तविक समाजवादी है—जिन्होने अपनी सारी धन-सम्पत्ति छोड दी और घर-बार नाते-रिश्तेदारो तक से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया ? इसलिए कहना होगा कि श्रम-मताधिकार कोई दिखावटी चीज नही बल्कि काग्रेसियो के दैनिक-जीवन में समाजवादी आदर्श को चरितार्थ करने का एक सच्चा प्रयत्न है।

गाधीजी यह महसूस करने लगे थे कि वह एक बडे बोझ के समान हैं जिससे काग्रेस दबी जा रही है, और जितना ही अधिक वह उस बोझ को कम करने का प्रयत्न करते हैं उतना ही वह बढता जाता है। यदि सविनय-अवज्ञा प्रारम्भ करें तो वह करें, बन्द करे तो वह करें, और उसका सचालन करें तो वह करें। युद्ध छोडें तो वह छोडें,

सुलह करे तो वह करे। हाल्ट करने के लिए, मार्च करने के लिए, आगे बढने के लिए, पीछे हटने के लिए अगर कांग्रेस को कोई आर्डर दे तो गांधीजी। सच तो यह है कि इतने भारी बोझ के हटने से वह वस्तु, जिसपर वह बोझ लदा हुआ था, मजबूत ही बनेगी, जैसे कि एक परिवार से पिता के हटने से पुत्र की शक्ति बढती ही है, उसके स्वयं काम करने से हिम्मत भी बढती है, उसकी जिम्मेवारी की भावना भी बढती है, उसमें आशा और उत्साह का सचार भी होता है, और ऐसी हालत में तो और भी अधिक जबकि वह वृद्ध पुरुष अपने परिवार को अथवा राष्ट्र को आवश्यकतानुसार अपनी सलाह-मशवरा देने और उसका पथ-प्रदर्शन करने को तैयार हो। गांधीजी इसके लिए तैयार है। वह इसका आश्वासन दे ही चुके हैं। उनका उद्देश तो कांग्रेस को देश में एक शक्ति बनाना है। किसी संस्था की शक्ति उसके सदस्यो की संख्या से नही बल्कि उन सदस्यो के पीछे जो नैतिक शक्ति होती है उसमे निहित रहती है, और जैसे-जैसे उसके नेताओ में जिम्मेदारी की भावना बढती जाती है वैसे-वैसे ही, अर्थात् उसी अनुपात में, वह नैतिक शक्ति भी बढती जाती है।

राजेन्द्र बाबू का भाषण

बम्बई-कांग्रेस की सफलता का श्रेय उसके सभापति बाबू राजेन्द्रप्रसाद के चातुर्य्य, कार्य-शक्ति व असाधारण दक्षता को कुछ कम नही है। कांग्रेस-अधिवेशन में पढा गया उनका अभिभाषण उन गिने-चुने नमूनेदार अभिभाषणों में से कहा जा सकता है जो राजनैतिक-स्थिति पर स्थायी प्रभाव छोड देते हैं। आपने श्वेत-पत्र (ह्वाइट-पेपर) की तफसीलवार बडी विद्वत्तापूर्ण आलोचना की। कांग्रेस-कार्यक्रम के सम्बन्ध में आपके विचार बडे लाभदायक थे।

राजेन्द्र बाबू ने अपना छोटा किन्तु भावपूर्ण भाषण इस प्रकार समाप्त किया —"भारत के स्वातन्त्र्य-युद्ध का जो लक्ष्य रहा है उसका स्वाभाविक परिणाम स्वाधीनता ही है। इसका मतलब यह नही कि हम दूसरो से सम्बन्ध-विच्छेद करके अलग पडे रहेंगे। स्वाधीनता से यह अभिप्राय तो हो ही नहीं सकता, खासकर जबकि हमें उसे अहिंसा-द्वारा प्राप्त करना है। स्वाधीनता का मतलब तो उस शोषण का अन्त करना है जो एक देश दूसरे देश का और देश का एक भाग दूसरे भाग का करता है। स्वाधीनता मे तो यह बात है कि हम पारस्परिक-लाभ के लिए दूसरे राष्ट्रों से अपनी मर्जी के अनुसार मित्रतापूर्ण व्यवहार रख सकते हैं। स्वाधीनता से किसीकी बुराई नही हो सकती, यहांतक कि हमारा शोषण करनेवालों की भी बुराई नहीं हो सकती।

हा, अगर सद्भावो के बजाय हमारे शोषक शोषण की नीति पर ही निर्भर रहें तब तो बात ही दूसरी है। इस स्वाधीनता-आन्दोलन की शक्ति अहिंसा है, जिसका सजीव व सक्रिय रूप सबका सद्भाव होना और सबके लिए सद्भाव का होना है। हम यह देख ही चुके है कि कुछ हद तक समस्त ससार का लोकमत अहिंसा को मान चुका है। लेकिन उसे अभी और भी व्यापक रूप में इसे अपनाना चाहिए। यह तभी हो सकता है जबकि ससार के राष्ट्रो की सन्देह व अविश्वास की भावनायें, जिनका जन्म भय से होता है, दूर हो जायें और उनका स्थान सुरक्षितता की भावना ले ले, जो भारत की सदिच्छा मे विश्वास उत्पन्न होने पर ही सम्भव है। फिर भारत अन्य देशो पर कोई मनसूबे नही बाध रहा है। उसे विदेशियो से अपनी रक्षा करने के लिए और आन्तरिक शान्ति तक के लिए किसी बडी सेना की आवश्यकता न होगी। आन्तरिक शान्ति तो उसके निवासियो की सदिच्छा के कारण बनी ही रहेगी, और चूकि दूसरे देशो पर उसकी कोई बुरी नीयत नही है, वह इस बात की आशा तथा माग तक कर सकेगा कि उसके प्रति भी कोई बुरी नीयत न रक्खे। और फिर उसकी रक्षा तो सारे विश्व की सदिच्छा के कारण आप ही हो जायगी। इस दृष्टि से देखते हुए तो ब्रिटेनवासियो तक को, यदि उनका उद्देश भारत को वर्तमान अस्वाभाविक हालत मे पटके रखना नही है, हमारी स्वाधीनता से डरने का कोई कारण नही। हमारा मार्ग भी स्फटिक की भाति साफ व स्वच्छ है। यह मार्ग सक्रिय, सजीव, अहिंसात्मक सामूहिक प्रतिकार का है। हम एकबार असफल हो जायें, दो बार हो जायें, लेकनि एक दिन हम अवश्य सफल होगे।

कइयो ने तो इस मार्ग पर चलकर अपना जीवन और अपना सर्वस्व तक निछावर कर दिया है। और भी ज्यादा व्यक्तियो ने अपने-आपको स्वतन्त्रता के युद्ध में कुर्बान कर दिया है। लेकिन यदि हमारे मार्ग मे कोई कठिनाइया आवें तो हमें उनमे घबराना नही चाहिए और न हमें डर से या लालच से अपने सीधे मार्ग को छोडना ही चाहिए। हमारे शस्त्र बेजोड है, ससार हमारे इस बृहद्-प्रयोग की प्रगति को बडे चाव और आशा के साथ देख रहा है। हमें अपने ध्येय पर अचल और अपने निश्चय पर अटल रहना चाहिए। सत्याग्रह सक्रिय रूप में कुछ काल के लिए पछाड खा जाय यह बात दूसरी है, लेकिन सत्याग्रह में पराजय को तो कोई स्थान ही नही है। सत्याग्रह तो स्वय ही एक भारी विजय है, जैसा कि जेम्स लॉवेल ने कहा था —

"Truth for ever on the scaffold,
Wrong for ever on the throne,

Yet that scaffold sways the future,
And behind the dim unknown
Standeth God within the shadow,
Keeping watch above his own"

"सत्य भले हो जगतीतल में दिखे लटकता सूली पर,
और दिखे अन्याय शान से डटा हुआ सिंहासन पर,
सूली का प्रिय सखा सत्य वह तो भी इन भावी का—
पथ पलटा देखा क्षण भर में, होगा पुलकित घर-घर।
सदा खड़े भगवान् रहेंगे तिमिराच्छन्न गगन में,
अपने प्यारों को बल देने जन में और विजन में॥"

अब हम उन प्रस्तावों की ओर आते हैं जो बम्बई-कांग्रेस ने २६, २७ व २८ अक्तूबर को अपने अधिवेशन में, जिसके राजेन्द्र बाबू सभापति और श्री के० एफ० नरीमैन स्वागताध्यक्ष थे, पास किये।

कांग्रेस के पहले प्रस्ताव-द्वारा उन प्रस्तावों को मंजूर किया गया जो कार्य-समिति व महासमिति ने मई १९३४ में व उसके बाद अपनी बैठकों में पास किये थे और जिनके विषय खास तौर पर पार्लमेण्टरी-बोर्ड, उसकी नीति व कार्य-क्रम, रचनात्मक कार्य-क्रम, प्रवासी भारतीयों की स्थिति, शोक-प्रस्ताव व स्वदेशी थे।

इसके पश्चात् राष्ट्र के त्याग व सविनय-अवज्ञा में राष्ट्र की आस्था विषयक एक प्रस्ताव पास हुआ, जो इस प्रकार था:—

यह कांग्रेस राष्ट्र को उसके हजारों स्त्री-पुरुष, बूढ़े और जवान, गांवों व शहरों के सत्याग्रहियों के वीरतापूर्ण त्याग व कष्ट-सहन के लिए बधाई देती है और अपने इस विश्वास को प्रकट करती है कि अहिंसात्मक असहयोग व सविनय-अवज्ञा के बिना देश में इतने मार्के की सामूहिक जागृति का होना असम्भव था। इसलिए जहां यह इस बात की आवश्यकता महसूस करती है कि सिवाय गांधीजी के औरों के लिए सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन मौकूफ कर दिया जाय, वह इस बात में भी अपना पूर्ण विश्वास प्रकट करती है कि स्वराज्य-प्राप्ति के लिए हिंसात्मक उपायों की अपेक्षा, जिनके बारे में अनुभव अच्छी तरह बता चुका है कि उनका परिणाम शासन व जनता दोनों के द्वारा आतंक-प्रयोग में ही होकर रहता है, अहिंसात्मक असहयोग और सविनय-अवज्ञा अधिक अच्छे साधन हैं।'

इसके पश्चात् एक प्रस्ताव-द्वारा पं० जवाहरलाल नेहरू की धर्मपत्नी श्रीमती

कमला नेहरू की बीमारी पर कांग्रेस की चिन्ता प्रकट की गई और इस बात की उम्मीद की गई कि पहाडी स्थान पर आने से उनका स्वास्थ्य ठीक हो जायगा।

अ० भा० ग्रामोद्योग संघ

अखिल-भारतीय ग्राम-उद्योग सघ के विषय पर खासी बहस और चहल-पहल रही और इस सम्बन्ध में निम्न लम्बा प्रस्ताव पास किया गया —

"चूकि देश-भर में काग्रेसियो के सहयोग से अथवा उनके सहयोग के बिना स्वदेशी के प्रचार का दावा करनेवाली बहुत-सी सस्थायें खुल गई हैं, जिससे लोगो के दिलो में इस बारे में बहुत भ्रम फैल गया है कि 'स्वदेशी' का स्वरूप क्या है, और चूकि अपने आरम्भ से ही काग्रेस का ध्येय सर्व-साधारण की प्रगतिशील भावनाओ के साथ रहता रहा है, और चूकि गावो का पुनस्सगठन और पुर्नानिर्माण काग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम का एक अग है, और चूकि ऐसे पुर्ननिर्माण के लिए हाथ की कताई के मुख्य धन्धे के अलावा गावो के लुप्त या लुप्तप्राय उद्योग-धन्धो का पुनरुद्धार करना अथवा उन्हें प्रोत्साहन देना जरूरी है, और चूकि हाथ की कताई के पुनस्सगठन जैसा काम तभी सम्भव है जबकि उसके लिए जुटकर शक्ति लगाई जाय और ऐसे विशेष प्रयत्न किये जायें जो काग्रेस की राजनैतिक हलचलो से पृथक् और स्वतन्त्र हो, इसलिए श्री जे० सी० कुमारप्पा को अधिकार दिया जाता है कि वह गाधीजी की सलाह और देख-रेख में काग्रेस के कार्य के एक अग के रूप में 'अखिल-भारतीय ग्राम-उद्योग-सघ' नाम की सस्था का निर्माण करें। उक्त मघ उक्त उद्योग-धन्धो के पुनरुद्धार व प्रोत्साहन के लिए और गावो की नैतिक और शारीरिक उन्नति के लिए कार्य करेगा और उसे अपना विधान बनाने, धन-सग्रह करने तथा अपने उद्देश्यो की पूर्ति के लिए आवश्यक कार्य करने का अधिकार होगा।"

इस प्रस्ताव के परिणाम-स्वरूप ही नुमाइशो तथा प्रदर्शनो के सम्बन्ध में भी एक प्रस्ताव पास किया गया, जो इस प्रकार था —

"चूकि काग्रेस के वार्षिक अधिवेशनो पर होनेवाली नुमाइशो तथा धूम-धडाके के प्रदर्शनो के प्रबन्ध-भार व व्यय से स्वागत-समिति को मुक्त करना वाञ्छनीय है और चूकि इन नुमाइशो व प्रदर्शनो के कारण छोटे स्थानो के लिए यह असम्भव हो जाता है कि वे काग्रेस को आमन्त्रित कर सकें, भविष्य में स्वागत-समिति नुमाइशो तथा धूम-धडाके के प्रदर्शनो के भार से बरी की जाती है। लेकिन चूकि नुमाइशें व धूम-धडाके के प्रदर्शन वार्षिक राष्ट्रीय सम्मेलन के आवश्यक अग है, इनके प्रबन्ध का कार्य अखिल-

भारतीय चर्खा-सघ व ग्राम-उद्योग-सघ के सुपुर्द किया जाता है। ये सस्थाये इन प्रदर्शनो का सगठन इस प्रकार करेंगी कि शिक्षा के साथ-साथ आम जनता का और खासकर गाववालो का मनोरजन भी हो। ऐसा करने में उनका एकमात्र उद्देश होगा अपनी हलचलो का दिग्दर्शन कराना और उन्हें लोक-प्रिय बनाना, और आम तौर पर ग्राम्य-जीवन की छिपी शक्तियो को प्रदर्शित करना।"

अन्य प्रस्ताव

कांग्रेस पार्लमेण्टरी-बोर्ड पर भी कांग्रेस ने एक प्रस्ताव पास किया। स्वय बोर्ड ने ही एक प्रस्ताव-द्वारा अपनी यह सम्मति प्रकट की थी कि चूकि बोर्ड का निर्माण एक असाधारण स्थिति में हुआ था, यह वाञ्छनीय है कि उसका जीवन-काल एक साल तक सीमित रहे और उसके सदस्य नामजद होने के बजाय निर्वाचित किये जाया करें और उसके बाद वह चुनाव के आधार पर बने। उसकी अवधि और शर्तें, जैसी उचित समझी जायँ, उस समय तय कर ली जायँ। बोर्ड ने अपना यह प्रस्ताव कार्य-समिति के पास सिफारिश के रूप में भेजा। कांग्रेस ने बोर्ड की सिफारिश स्वीकार करते हुए निश्चय किया कि मौजूदा पार्लमेण्टरी-बोर्ड १ मई १९३५ को भग हो जाय और महासमिति उस तारीख तक या उससे पहले २५ सदस्यो के एक नये बोर्ड का चुनाव करें। निर्वाचित बोर्ड को ५ सदस्यो को अपने में और सम्मिलित करने का अधिकार भी दिया गया। कांग्रेस ने यह भी निश्चय किया कि हर साल कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर पार्लमेण्टरी बोर्ड का नया चुनाव हुआ करे और इस बोर्ड को भी ५ अतिरिक्त सदस्यो के सम्मिलित करने का अधिकार रहे। निर्वाचित पार्लमेण्टरी बोर्ड को भी वही अधिकार दिये गये जो मौजूदा बोर्ड को थे। कांग्रेस के नये विधान पर हम पहले ही काफी विवेचन कर चुके है।

खद्दर-मताधिकार के सम्बन्ध में एक पृथक् प्रस्ताव पास किया गया, जो इस प्रकार था—

"कांग्रेस का कोई भी सदस्य किसी पद या किसी भी कांग्रेस-कमिटी के चुनाव के लिए खडा न हो सकेगा, यदि वह पूरे तौर से हाथ की कती-बुनी खादी आदतन न पहनता हो।"

बम्बई-कांग्रेस में सबसे पहली बार श्रम-मताधिकार का प्रस्ताव पास किया गया, जो इस प्रकार था—

"कोई भी व्यक्ति किसी भी कांग्रेस-कमिटी की सदस्यता के लिए उम्मीदवार

खडा होने का हकदार न होगा, यदि उसने चुनाव की नामजदगी की तारीख को समाप्त होनेवाले ६ महीनो में कांग्रेस की ओर से या कांग्रेस के लिए लगातार कोई ऐसा शारीरिक-श्रम न किया होगा जो प्रति मास मूल्य में अच्छे कते हुए १० नम्बर के ५०० गज सूत के बराबर हो, या जो प्रति मास समय में ८ घटे के बराबर हो। कार्य-समिति समय-समय पर प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटियो तथा अखिल-भारतीय ग्राम-उद्योग-सघ से सलाह लेकर यह निर्धारित करेगी कि कताई के बजाय दूसरा कौनसा श्रम स्वीकार किया जायगा।"

गाधीजी की अलहदगी ने इस बात का तकाजा किया कि गाधीजी में विश्वास का एक प्रस्ताव पास किया जाय। तत्सम्बन्धी प्रस्ताव इस प्रकार था —

"यह कांग्रेस महात्मा गाधी के नेतृत्व में अपने विश्वास को फिर प्रकट करती है। उसका यह दृढ मत है कि कांग्रेस से अलग होने के निश्चय पर उन्हें विचार करना चाहिए। लेकिन चूकि उन्हें इस बात के लिए राजी करने के सब प्रयत्न विफल हुए है, यह कांग्रेस अपनी इच्छा के विरुद्ध उनके निर्णय को मानते हुए राष्ट्र के लिए की गई उनकी बेजोड सेवाओ के प्रति धन्यवाद प्रकट करती है और उनके इस आश्वासन पर सतोष प्रकट करती है कि उनका सलाह-मशवरा और पथ-दर्शन आवश्यकतानुसार कांग्रेस को प्राप्त होता रहेगा।"

कांग्रेस के आगामी अधिवेशन के लिए युक्त-प्रान्त से निमन्त्रण मिला और वह स्वीकार किया गया।

असेम्बली का चुनाव

बम्बई का अधिवेशन खतम भी न हो पाया था कि देश असेम्बली के चुनावो में जी-जान से कूद पडा। इससे लोगो ने फिर महसूस किया कि कुछ जीवन का सचार हुआ और मानो कुछ काल के लिए उन्हें अपनी मनचाही चीज मिल गई। देश का जिला-जिला और देश की तहसील-तहसील छान डाली गई। देश-भर में प्रचार-आन्दोलन जारी कर दिया गया। कांग्रेस ने लगभग हरेक 'साधारण' क्षेत्र की जगह के लिए अपना उम्मीदवार खडा किया। राष्ट्रवादियो ने पण्डित मालवीय और श्री अणे के नेतृत्व में कांग्रेस से अलग कांग्रेस नेशनलिस्टो के नाम से खडा होने का निश्चय किया। जिस क्षेत्र के चुनाव पर देश का सबसे अधिक ध्यान गया वह था दक्षिण-भारत का व्यापार-क्षेत्र, जिसके लिए सर षण्मुखम् चेट्टी खडे हुए थे। स्मरण रहे कि सर चेट्टी को भारत-सरकार ने एक व्यापार-सन्धि की शर्तें तय करने के लिए ओटावा भेजा था।

साम्राज्य के माल को तरजीह देने के सिद्धान्त के आधार पर उन्होंने व्यापार-सन्धि की शर्तें तय कर डाली। ओटावा से लौटकर वह असेम्बली के अध्यक्ष भी चुन लिये गये थे। उनको एक प्रकार से मदरास-सरकार व भारत-सरकार का समर्थन तक प्राप्त था। मदरास-सरकार के भूतपूर्व गृह-सदस्य सर मुहम्मद उस्मान तथा चीफ मिनिस्टर बॉबिली के राजा उनके पक्ष में निकाले गये घोषणा-पत्र पर दस्तखत करनेवालों में मुख्य थे। उनके पक्ष में इंग्लैण्ड के इस रिवाज तक को पेश किया गया कि पार्लमेण्ट अर्थात् असेम्बली के अध्यक्ष के विरुद्ध किसीको चुनाव न लड़ना चाहिए। सरकारी अफसरों तक ने खुलकर चुनाव में भाग लिया। कांग्रेस सर चेट्टी के विरोधी सामी वेंकटाचलम चेट्टी की ओर थी। सामी वेंकटाचलम ने सर षण्मुखम् के ऊपर जो विजय प्राप्त की, उसकी गणना साधारण विजयों में नहीं की जा सकती। वास्तव में वह सरकार के ऊपर कांग्रेस की, धनसत्ता के ऊपर नैतिक-बल की, और ओटावा और ब्रिटेन दोनों के ऊपर भारत की विजय थी। दक्षिण-भारत में कांग्रेस ने और सब जगहों पर भी कब्जा कर लिया। मदरास-अहाते में ११ प्रादेशिक जगहें थीं, हरेक के चुनाव में कांग्रेस को ढेर-की-ढेर रायें मिलीं। बंगाल में कांग्रेस-नेशनलिस्टों ने सब 'साधारण' जगहों पर कब्जा कर लिया। युक्त-प्रान्त में भी कांग्रेस ने सब 'साधारण' जगहों पर कब्जा कर लिया, जैसा कि वह सन् १९२६ में भी नहीं कर सकी थी। युक्त-प्रान्त में कांग्रेस को मुसलमानों की भी एक जगह मिल गई। बिहार, मध्यप्रान्त, महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक व आसाम में सब जगह कांग्रेस ने बाजी मारी। केवल पंजाब में ही कांग्रेस पिछड़ गई। वहां उसे केवल एक ही जगह मिली। कुल मिलाकर कांग्रेस ने ४४ जगहों पर कब्जा कर लिया, जिनके लिए यह कहा जा सकता है कि वे शुद्ध-कांग्रेसी जगहें हैं। इन जगहों के अलावा कांग्रेस-नेशनलिस्टों की जगहें भी उसे प्राप्त हुईं। साम्प्रदायिक 'निर्णय' के प्रश्न के अलावा कांग्रेस-नेशनलिस्ट हरेक बात में कांग्रेस के साथ थे।

असेम्बली में कांग्रेस-पार्टी ने श्री तसद्दुक अहमदखां शेरवानी को असेम्बली की अध्यक्षता के लिए खड़ा किया, लेकिन वह हार गये। अपने तीन विजयी उम्मीदवार श्री अभ्यंकर, शेरवानी व शशमल को खोकर कांग्रेस को बड़ी क्षति उठानी पड़ी। देश को श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ सेवा अर्पित करके ये तीनों वीर अपने जीवनके यौवन-काल में इस संसार से कूच कर गये। श्री शशमल कांग्रेस-नेशनलिस्ट पार्टी के थे।

असेम्बली में कांग्रेस-पार्टी का कार्य

कांग्रेस-पार्टी ने फौरन असेम्बली में, जिसका अधिवेशन २१ जनवरी को शुरू

हुआ, अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया। सरकार ने अखिल भारतीय ग्राम-उद्योग सघ के बारे में जो गश्ती-पत्र निकाला था उसपर विवाद उठाने के लिए कांग्रेस ने कार्य रोक रखने का प्रस्ताव पेश किया, लेकिन वह खटाई में पड गया। श्री शरतचन्द्र वसु को नजरबन्द रखने के विरोध में पेश किया गया ऐसा ही प्रस्ताव ५४ के विरुद्ध ५८ रायो से पास हो गया। स्मरण रहे कि श्री शरतचन्द्र वसु जब नजरबन्द थे तब भी वह असेम्बली के लिए निर्विरोध चुन लिये गये। असेम्बली के सदस्य होते हुए भी असेम्बली की बैठको में भाग लेने की सरकार ने उन्हे इजाजत न दी। कांग्रेस-पार्टी का ध्यान सबसे पहले इस बात की ओर ही गया और उसने श्री भूलाभाई देसाई के योग्य नेतृत्व में अपनी मोर्चेबन्दी की। श्री देसाई के बारे मे यह कहना अत्युक्ति न होगी कि उन्होने असेम्बली को वही गौरव और वही प्रतिष्ठा प्राप्त करा दी जो पण्डित मोतीलालजी ने कराई थी। आप कुछ काल तक बम्बई के एडवोकेट-जनरल रहे थे, लेकिन आपने उन कई ऊँचे-ऊँचे सरकारी पदो तक की तनिक भी परवाह न की जो स्वभावत इस पद को प्राप्त करने वाले व्यक्ति को अक्सर मिला ही करते है। कांग्रेस ने अपना दूसरा वार ब्रिटेन व भारत मे हुए तिजारती समझौते पर किया। ५८ के विरुद्ध ६६ रायो से असेम्बली ने यह प्रस्ताव पास कर दिया कि समझौता खतम कर दिया जाय। (सरकारी) पद का दुरुपयोग करके अपने स्वार्थों के लिए जो लज्जा-जनक-से-लज्जाजनक कार्य किया जा सकता है उसका यह समझौता एक ज्वलन्त उदाहरण था, जिसे भारत-मन्त्री व ब्रिटेन के व्यापार-मण्डल के प्रधान ने आपस में किया था। समझौता तो किया था ब्रिटिश-मन्त्रि-मण्डल के दो सदस्यो ने भारत के व्यापार की लूट को बाटने के लिए, पर उसको दे दिया गया बडा ऊँचा नाम 'ब्रिटेन-भारत का व्यापारिक समझौता'। वास्तव मे यह बात थी कि नये सुधारो में व्यापारिक सरक्षणो के बारे में ज्वाइन्ट पार्लमेण्टरी-कमिटी की रिपोर्ट में जो सिफारिशें की जानेवाली थी, उनको अमल में लाने के लिए ही पहले से यह समझौता कर डाला गया था। समझौते में यह बात खुलासा तौर पर रक्खी गई कि "भारतीय-व्यवसायो को केवल इतना ही सरक्षण दिया जायगा, अधिक नही, जिससे कि बाहर से आनेवाला माल भारत में लगभग उसी कीमत पर बिक सके जिस कीमत पर उसी प्रकार का भारत का बना माल यहा बिकेगा, और जहातक सम्भव होगा ब्रिटेन के बने माल पर कम महसूल लगाया जायगा। इग्लैण्ड के तथा अन्य विदेशी माल पर जो भिन्न-भिन्न भेद-भावपूर्ण महसूल लगाये गये है या लगाये जायँगे, उन्हे इस प्रकार न बदला जायगा कि ब्रिटेन के माल को नुकसान पहुँचे। जब कभी किसी भारतीय-व्यवसाय को सरक्षण देने का

प्रश्न टैरिफ-बोर्ड के सुपुर्द किया जायगा तो भारत-सरकार उस व्यवसाय से सम्बन्ध रखनेवाले ब्रिटेन के हर व्यवसाय को यह अवसर देगी कि वह अपना पक्ष पेश कर सके और अन्य फरीको की दलीलो का जवाब दे सके।

ब्रिटेन में भारत का कच्चा लोहा तभी तक बिना चुगी के जाता रहेगा जबतक भारत में आनेवाले फौलाद और लोहे पर चुगी का कानून वर्तमान समय की भांति ही ब्रिटेन के अनुकूल रहेगा। इस विलक्षण समझौते पर १० जनवरी १९३५ को हस्ताक्षर हुए और बडी कौंसिल में इसकी चारो ओर से निन्दा की गई। खुदाई खिदमतगारो पर लगाये गये प्रतिबन्ध को हटाने के पक्ष मे ७४ और विपक्ष में ४६ रायें आईं। सरकार की कर-सम्बन्धी नीति के ऊपर भी लोकमत की ही विजय हुई। इसके बाद स्याम के चावल और २५ या ३० अन्य विषयो पर विजय प्राप्त हुई।

हमने ज्वाइन्ट पार्लमेण्टरी कमिटी की रिपोर्ट की चर्चा जान-बूझकर अन्त में करने के लिए रख छोडी थी। निर्वाचन के समय जो ह्वाइट-पेपर था उसने अब ज्वाइन्ट पार्लमेण्टरी कमिटी की रिपोर्ट का रूप धारण कर लिया था। यह रिपोर्ट पार्लमेण्ट की दोनो सभाओ-द्वारा पास की जा चुकी थी और अब यह कानून बन गया था। इस रिपोर्ट की सिफारिशो का खुलासा और उन्हे रद कराने के कारणो पर बडी कौंसिल ने जो प्रस्ताव पास किया था, और इस सम्बन्ध मे जो कार्रवाई की गई थी, उसे हम नीचे देते है।

इस रिपोर्ट की बहस के सम्बन्ध में सरकार ने बडी कौंसिल में जो ढग अख्तियार किया वह प्रान्तीय-कौंसिलो में अख्तियार किये गये ढग से भिन्न था। प्रान्तीय-कौंसिलों में सरकारी सदस्यो ने मत देने में भाग नहीं लिया, जो ठीक ही था, जिससे रिपोर्ट के सम्बन्ध में कौंसिलो का भारतीय लोकमत ही प्रकट हो सके। पर बडी कौंसिल में सरकार ने बहस में भाग लेने का, और रिपोर्ट पर विचार करने के प्रस्ताव के विरोध में पेश किये गये सशोधनो के विरुद्ध सारी प्राप्त रायें एकत्र करने का निश्चय किया। यदि सरकार इस प्रकार हस्तक्षेप न करती तो कांग्रेस ने इस योजना के आधार पर किसी प्रकार का कानून न बनाने के लिए सरकार से सिफारिश करने का जो असदिग्ध प्रस्ताव पेश किया था, वह पास हो जाता। पर बडी कौंसिल ने जिन्ना साहब के सशोधन को पास कर दिया। मत लेने के लिए इस सशोधन को दो खण्डों में बाटा गया। इनमें से पहला खण्ड साम्प्रदायिक निर्णय के सम्बन्ध में था। श्री जिन्ना के सशोधन-स्वरूप कांग्रेस-पार्टी ने तटस्थ रहने का प्रस्ताव पेश किया, जो नामंजूर हुआ। इस सशोधन के पक्ष में कांग्रेस-पार्टी की ४४ रायें आईं। अगला सशोधन नामंजूर

होने के बाद कांग्रेस-पार्टी तटस्थ रही और श्री जिन्नाह् के संशोधन का पहला अंश मुसलमानो और सरकारी सदस्यो की सम्मिलित रायो से पास हो गया।

श्री जिन्नाह् के संशोधन के दूसरे और तीसरे भागो को एकसाथ रक्खा गया और बडी कौंसिल ने उन्हे सरकारी प्रस्ताव के स्थान पर ७४ वोटो से अपनाया। सरकार के पक्ष मे ५८ वोट आये। कांग्रेस-पार्टी ने संशोधन के पक्ष में राय दी और नामजद सदस्यो ने खिलाफ राय दी।

श्री जिन्नाह् का संशोधन इस प्रकार था —

"यह कौंसिल साम्प्रदायिक 'निर्णय' को, जैसा कुछ भी है, उस समय तक के लिए स्वीकार करती है जबतक विभिन्न जातियो का आपस में समझौता तैयार न होजाय।

"प्रान्तीय-सरकारो की योजना के सम्बन्ध में इस कौंसिल की यह राय है कि वह अत्यन्त असन्तोषजनक और निराशा-पूर्ण है, क्योकि उसमे अनेक आपत्तिजनक बातें रक्खी गई हैं—जैसे खासकर दुहरी कौंसिलो का कायम करना, गवर्नर को असाधारण और विशेष अधिकार प्रदान करना, पुलिस के नियमो, गुप्तचर-विभाग और खुफिया-पुलिस-सम्बन्धी कलमें है, जिनके द्वारा कार्यकारिणी और कौंसिलो का नियन्त्रण और उत्तरदायित्व वास्तविक न रहेगा। जबतक इन आपत्तिजनक बातो को न हटाया जायगा, भारतीय लोकमत का कोई अंग सन्तुष्ट न होगा।

"अखिल-भारतीय संघ कहलानेवाली केन्द्रीय सरकार की योजना के सम्बन्ध में कौंसिल की यह स्पष्ट राय है कि यह योजना जड से ही दोषपूर्ण है और ब्रिटिश-भारत की जनता के लिए अस्वीकार्य है, इसलिए यह कौंसिल भारत-सरकार से सिफारिश करती है कि वह सम्राट् की सरकार को सलाह दे कि इस योजना के आधार पर कोई कानून न बनावे। यह कौंसिल इस बात पर जोर देती है कि यह स्थिर करने के लिए कि सिर्फ ब्रिटिश-भारत में वास्तविक और पूर्ण उत्तरदायी सरकार किस प्रकार स्थापित की जाय, तत्काल ही चेष्टा की जाय, और इस उद्देश को सामने रखकर बिना विलम्ब भारतीय लोकमत से परामर्श करके स्थिति में परिवर्त्तन करे।"

श्री जिन्नाह् के संशोधन के दूसरे और तीसरे भाग को एकसाथ सरकारी प्रस्ताव के स्थान पर एक पूर्ण योजना के रूप में पेश किया गया था। सरकार ने, लॉ-मेम्बर के द्वारा, इस संशोधन को भी ज्वाइन्ट-पार्लमेण्टरी कमिटी की रिपोर्ट को वैसा ही रद करने वाला समझा जैसा कांग्रेसपार्टी द्वारा पेश किया गया खुल्लम-खुल्ला

रद करने का प्रस्ताव था। लॉर्ड-मेम्बर ने श्री जिन्नाह के सशोधन का वर्णन करते हुए कहा —

"महोदय, मै यह कहनेवाला था कि अपने मित्र श्री देसाई के सीधे, सच्चे और खुले आक्रमण के स्थान पर अब हमारे सामने अपने माननीय मित्र मुहम्मदअली जिन्नाह साहब का अप्रत्यक्ष और कौशलपूर्ण आक्रमण मौजूद है, यद्यपि इसका उद्देश भी वही है।

"मेरे माननीय मित्र अच्छी तरह जानते है कि वैसे देखने में तो यह आधे भाग पर आक्रमण है, पर असलियत में मेरे माननीय मित्र श्री जिन्नाह के सशोधन में और कांग्रेस-नेता के सशोधन में मूलत कोई अन्तर नही है।"

जब रेलवे-बजट पर विचार हुआ तो सरकार को अनेक वार हार खानी पडी थी। अनेक सदस्यो ने विविध पहलुओ से रेलवे के प्रवन्ध में सरकारी नीति के खूब धुर्रे उडाये। विरोधी दल के नेता श्री भूलाभाई देसाई ने रेलवे-ग्रान्ट को घटाकर १) कर देने का प्रस्ताव पेश किया। उन्होने अपने भाषण के दौरान में प्रसगवश सरकार की वर्तमान नीति के धुर्रे उडाये और कहा कि यह नीति १६३० के तरीते के अनुसार वरती जा रही है। इस प्रकार नीति वरतने के कारण है (अ) राजनैतिक हलचल के समय सैनिक अधिकारियो को तुरन्त और पर्याप्त सहायता देना, (आ) भारतीय रेलवे में लगी गई विशाल पूजी की रक्षा करना, (इ) भारतमत्री-द्वारा नियुक्त किये गये उच्च पदस्थ रेलवे-अधिकारियो के पदो की रक्षा की जिम्मेवारी लेना, (ई) सैनिक और अन्य कार्यों की बिना पर भविष्य में यूरोपियनो की भर्ती की व्यवस्था, (उ) रेलवे की नौकरियो में अधगोरो के हित बनाये रखना। इस नीति को ध्यान में रखकर ही प्रस्तावित भारतीय बिल में रेलवे को गवर्नर-जनरल के विशेष उत्तरदायित्व की सूची में रक्खा गया है।

श्री देसाई का प्रस्ताव, जैसा कि उन्होने बहस के दौरान में स्पष्ट कर दिया था, 'विरोधसूचक' प्रस्ताव न था, बल्कि शासन-खर्च देने से इन्कारी थी। उनका प्रस्ताव ७५ रायो से पास हुआ। विपक्ष में केवल ४७ रायें आई। किसी स्वतन्त्र देश में शासन-खर्च देने की इन्कारी-सूचक प्रस्ताव पास होने का सरकार पर अनिवार्य प्रभाव पडता। रेलवे-बजट के सिलसिले में, अन्य विरोधात्मक प्रस्तावो में से, एक प्रस्ताव रेलवे की नौकरियो मे भारतीयो को स्थान देने के सम्बन्ध में था, जो ८१ रायो से पास हुआ, विपक्ष में ४४ रायें आईं। एक प्रस्ताव तीसरे दर्जे के मुसाफिरो के सम्बन्ध में था, एक रेलवे की नीति के सम्बन्ध में था, और एक प्रस्ताव खाद्य-पदार्थो पर रेलवे का महसूल

घटाने के और मजदूरी के सम्बन्ध में ह्विटले-कमीशन की सिफारिशो के सम्बन्ध में था।

नयी योजना पर कार्य-समिति

नई कार्य-समिति की पहली बैठक पटना मे ५, ६ और ७ दिसम्बर १९३४ को हुई। समिति ने श्री बी० एन० शशामल की मृत्यु पर शोक-प्रकाश किया। वह बड़ी कौंसिल के लिए निर्वाचन का फल प्रकट होने के दिन ही परलोक सिधारे थे। कार्य-समिति ने ज्वाइन्ट पार्लमेण्टरी कमिटी की रिपोर्ट के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये और निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया —

"चूकि काग्रेस ने पूरी तरह और ध्यानपूर्वक विचार करने के बाद यह निश्चय किया था कि ह्वाइटपेपर मे आयोजित भारत की शासन-व्यवस्था को रद कर दिया जाय और केवल विधान-कारिणी-सभा-द्वारा तैयार की गई शासन-व्यवस्था ही सन्तोष-जनक हो सकती है,

"और चूकि इस नामजूरी और विधान-कारिणी सभा की माग को देश ने बड़ी कौंसिल के आम निर्वाचन के अवसर पर स्पष्ट-रूप से पुष्ट कर दिया है,

"और चूकि ज्वाइन्ट पार्लमेण्टरी-कमिटी की रिपोर्ट के प्रस्ताव कई बातो मे ह्वाइटपेपर की तजवीजो से भी गये बीते हैं और भारत के लगभग पूरे लोकमत ने प्रतिगामी और असन्तोषजनक कहकर उनकी निन्दा की है,

"और चूकि ज्वाइन्ट पार्लमेण्टरी-कमिटी की योजना में, जो इस देश पर विदेशियो के प्रभुत्व और रक्त-शोषण को एक महँगे चोगे मे सुविधा-पूर्ण और स्थायी रूप देने के लिए तैयार की गई है, वर्तमान शासन-प्रणाली की अपेक्षा अधिक खराबी और खतरा है,

"इसलिए इस समिति की राय है कि इस योजना को रद कर दिया जाय। यद्यपि वह भलीभाति जानती है कि उसे रद कर देने का अर्थ है जबतक काग्रेस के प्रस्ताव के अनुसार विधान-कारिणी-सभा-द्वारा तैयार की गई योजना को स्थान न मिल जाय तब तक वर्तमान शासन-प्रणाली के, जो असह्नीय और अपमानकारी है, अन्दर लड़ाई जारी रखना। यह समिति बड़ी कौंसिल के सदस्यो से अनुरोध करती है कि वे इस सरकारी योजना को, जिसे सुधारो के नाम पर भारत पर लादा जा रहा है, रद कर दें। यह समिति राष्ट्र से अपील करती है कि पूर्ण स्वराज्य की राष्ट्रीय लक्ष्य-सिद्धि के लिए काग्रेस जो उपाय स्थिर करे, वह उसका समर्थन करे।

"यह कार्य-समिति जनता को, बडी कौंसिल के निर्वाचन के अवमर पर कांग्रेस के नेतृत्व के प्रति उसके विश्वास और आस्था के प्रदर्शन पर, बधाई देती है और कांग्रेस-संस्थाओ और कांग्रेस-वादियो से अनुरोध करती है कि वे अगले तीन महीनो में अपना ध्यान निम्न कार्यक्रम को पूरा करने की ओर दे —

(१) कांग्रेस के नये विधान के अनुसार कांग्रेस के सदस्य बनाना और कांग्रेस-कमिटियो का संगठन करना, (२) ग्राम-उद्योगो के निमित्त उपयोगी सामग्री एकत्र करना, और (३) जनता को उसके अधिकारो और कर्तव्यो के सम्बन्ध में और कराची-कांग्रेस के द्वारा पास किये गये आर्थिक कार्यक्रम के सम्बन्ध में जानकारी कराना।'

श्री सुभाषचन्द्र वसु की स्वतन्त्रता और गति-विधि पर, जब वह अपने पिता की मृत्यु पर थोडे समय के लिए भारत आये थे, जो अपमान और सन्ताप-जनक सरकारी बन्दिशें लगाई गई थी, उनपर कार्य-समिति ने क्षोभ प्रकट किया। समिति ने यह सम्मति प्रकट की कि कौंसिलो में गये हुए कांग्रेसी सदस्यो को सदा खद्दर पहनना चाहिए और उनसे अनुरोध किया कि वे इस नियम का पालन कडाई के साथ करें। कार्य-समिति से बगाल के राष्ट्रीय-दल ने जो आग्रह किया था कि गत-निर्वाचन के अवसर पर दिये गये बगाल के हिन्दुओ के कांग्रेस-विरोधी मत को ध्यान में रखकर साम्प्रदायिक-निर्णय के सम्बन्ध में कांग्रेस के रुख पर दुबारा विचार हो, उसके सम्बन्ध में समिति ने यह सम्मति स्थिर की कि कांग्रेस की नीति बम्बई-कांग्रेस के प्रस्ताव-द्वारा निर्धारित हुई थी, और समिति के अधिकाश सदस्यो ने उस नीति का समर्थन किया था, इसलिए उसमें कोई परिवर्तन नही किया जा सकता।

कांग्रेस का पचासवां वर्ष

अब हमें कांग्रेस से सम्बन्धित उन घटनाओ को सक्षेप में देना है जो १९३५ में घटित हुई। इस वर्ष कांग्रेस को पचास वर्ष होते है और इसी वर्ष का वर्णन इस पुस्तक का यह अन्तिम अश है।

कार्य-समिति की बैठक १६ से १८ जनवरी तक फिर हुई। इस बैठक में नागपुर के श्री अभ्यकर और गुजरात-विद्यापीठ के आचार्य गिडवानी के परलोक-वास पर शोक-प्रकाश किया गया। इन दोनो सज्जनो ने बडे कष्ट उठाये थे और देश की सेवा बडी लगन के साथ की थी। अन्य वर्षो की भाति इस वर्ष भी पूर्ण-स्वराज्य-दिवस मनाया गया और इस अवसर के लिए सारे भारत के पालनार्थ एक खास प्रस्ताव बनाया गया। वह इस प्रकार है —

"इस महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय-दिवस पर हम स्मरण करते हैं कि पूर्ण-स्वाधीनता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है, और जबतक हम उसे प्राप्त न कर लेंगे चैन से न बैठेंगे।

"इस उद्देश की सिद्धि में हम मन, वचन, कर्म से यथाशक्ति सत्य और अहिंसा का पालन करेंगे और किसी भी त्याग या कष्ट के लिए कटिबद्ध रहेंगे।

"सत्य और अहिंसा के दो आवश्यक गुणो को व्यक्त करने के लिए हम

(१) विभिन्न जातियो में हार्दिक ऐक्य की वृद्धि करेंगे और बिना जाति, वर्ण या सम्प्रदाय का भेद किये सबसे बराबरी का रिश्ता कायम करेंगे।

(२) हम स्वय भी मादक द्रव्यो के सेवन से बचेंगे और दूसरो को भी बचायेंगे।

(३) हम हाथ से कातने की कला को और अन्य ग्राम्य-उद्योगो को प्रोत्साहन देंगे और अपने व्यवहार में खद्दर और ग्राम्य-उद्योग की अन्य वस्तुयें लायेंगे और दूसरी सारी चीजो को छोड देंगे।

(४) अस्पृश्यता का निवारण करेंगे।

(५) जिस तरह होगा, लाखो भूखो मरते हुए भारतवासियो की सेवा करेंगे।

(६) अन्य राष्ट्रीय और रचनात्मक कार्यों में भाग लेंगे।"

कार्य-समिति ने यह सिफारिश की कि राष्ट्रीय-दिवस मे जहातक सम्भव हो कोई खास रचनात्मक कार्य किया जाय, और इस दिन पूर्ण-स्वराज्य के लक्ष्य की सिद्धि के लिए अपेक्षाकृत अधिक आत्म-समर्पण करने का निश्चय किया जाय। हडताले न की जायें। उसने यह भी हिदायत दी कि किसी आर्डिनेन्स या स्थानिक अधिकारी के हुक्म की अवहेलना न की जाय और न सभा में भाषण किये जायें। राष्ट्रीय झण्डा फहराया जाय और खडे होकर पूर्वोक्त प्रस्ताव पास किया जाय।

सम्राट् जार्ज के शासन की रजत-जयन्ती की ओर स्वभावत ही कार्य-समिति का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित हुआ और इस सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रस्ताव पास हुआ —

"सरकारी ऐलान प्रकाशित हुआ है कि भारत में सम्राट् की रजत-जयन्ती मनाई जायगी। इस अवसर पर जनता को कैसा रुख अख्तियार करना चाहिए, इस सम्बन्ध में कार्य-समिति पथ-प्रदर्शन करना आवश्यक समझती है।

"कांग्रेस के मन में खुद सम्राट् के प्रति तो मगल-कामना के अतिरिक्त और कुछ हो नही सकता, न है ही, पर साथ ही कांग्रेस इस बात को नही भूल सकती कि

भारत का शासन, जिसके साथ सम्राट् का स्वभावत ही अविच्छिन्न सम्बन्ध है, राष्ट्र की राजनैतिक, नैतिक, और आर्थिक उन्नति के मार्ग में बहुत बडा रोडा रहा है। अब इस शासन की चरमसीमा एक ऐसी शासन-व्यवस्था के रूप में होनेवाली है, जो यदि जारी कर दी गई तो देश का रक्त-शोषण करने में, देश में जो-कुछ धन बचा है उसे खीच ले जाने में, और देश को पहले की अपेक्षा कही अधिक राजनैतिक दासत्व की अवस्था में पटकने में सफल होगी।

"अतएव कार्य-समिति के लिए जनता को आगामी जयन्ती में भाग लेने की सलाह देना असम्भव है। पर साथ ही यह कार्य-समिति जनता-द्वारा किसी प्रकार के विरोधी-प्रदर्शन के द्वारा अंग्रेजो के या उन लोगो के दिलो को, जो जयन्ती में भाग लेना चाहते है, चोट पहुँचाने का निषेध करती है। इसलिए यह समिति जनता को, और कांग्रेसियो को, जिनमें वे कांग्रेसी भी शामिल है जो निर्वाचित सस्थाओ के सदस्य हो, सलाह देती है कि वे जयन्ती के उत्सवो में भाग न लेकर ही सन्तुष्ट हो जायँ।"

सूती मिलो के प्रश्न पर स्थिति इन शब्दो मे साफ की गई—"चूकि अधिकाश सूती-मिलो के मालिको ने कांग्रेस को दिये वचनो को तोड दिया है, इसलिए कार्य-समिति की सम्मति है कि कांग्रेस या उससे सम्बन्ध रखनेवाली सस्थाओ के लिए प्रमाण-पत्र जारी करने का सिलसिला कायम रखना सम्भव नही है। ऐसी दशा में पुराने प्रमाण-पत्र अब रद समझे जायँ।

"कार्य-समिति की यह भी राय है कि सारे कांग्रेसियो का और कांग्रेस से सहानुभूति रखनेवालो का यह कर्तव्य है कि वे केवल हाथ से कते और हाथ से बुने कपडे की ओर ही ध्यान दें और उसीकी उन्नति में सहायता करे।"

कार्य-समिति ने सशोधित-विधान की धारा १२ (ई–३) के अनुसार अनुशासन-भग-सम्बन्धी नियम पास किये।

कांग्रेस के विधान में रक्खी गई 'निवास-सम्बन्धी योग्यताओ' के वास्तविक अर्थ के सम्बन्ध में सन्देह प्रकट किया गया था। कार्य-समिति ने उसको एक प्रस्ताव-द्वारा स्पष्ट कर दिया।

इसके बाद कार्य-समिति ने बर्मा की समस्या पर, ज्वाइन्ट पार्लमेण्टरी कमिटी की सुधार-योजना की दृष्टि से, और कांग्रेस के एक केन्द्र की दृष्टि से, विचार किया, और निश्चय किया कि बर्मा-प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी पहले की भाति ही काम करती रहे।

ज्वाइन्ट पार्लमेण्टरी कमिटी की नई सुधार-योजना के अन्तर्गत वर्मा-प्रवासी भारतवासियो की स्थिति के सम्बन्ध में समिति ने सम्मति दी कि चूकि सारी योजना ही अस्वीकार्य है, इसलिए काग्रेस उसमें कोई सशोधन नही पेश कर सकती। पर इस योजना के जो अश वर्मा-प्रवासी भारतवासियो की स्थिति और दर्जे को खतरे में डालते हो, उनकी आलोचना करने में कोई रुकावट नही है।

अध्यक्ष को अधिकार दिया गया कि वह आन्ध्र के रायालसीमा के प्रदेश की बाढ-पीडित जनता के कष्ट-निवारण के लिए धन की अपील करें।

७ फरवरी १९३५ को ज्वाइन्ट पार्लमेण्टरी कमिटी की रिपोर्ट के विरुद्ध दिवस मनाया गया और इसके द्वारा एकबार फिर आदर्श और कार्य का पारस्परिक सहयोग प्रदर्शित कर दिया गया। इस सम्बन्ध में जो अपील प्रकाशित की गई उसके उत्तर में बडे-बडे नगरो में ही सभायें की गई हो सो बात नही, अनेक प्रान्तो के कोने-कोने मे सभायें की गईं। इन सारी सभाओ मे वह प्रस्ताव पास किया गया जो काग्रेस के अध्यक्ष ने बताया था।

रगून में वर्मा-प्रान्तीय-काग्रेस-कमिटी-द्वारा आयोजित प्रदर्शन भी अपने ढग का निराला था, क्योकि रिपोर्ट को रद करने की माग पेश करने मे वर्मा और भारत दोनो आपस में मिल गये थे।

सांप्रदायिक समझौते की चर्चा

अब हमें उस मेल-सम्बन्धी बातचीत की चर्चा करनी है जो १९३५ की जनवरी और फरवरी में हुई थी। एक ऐसे साम्प्रदायिक समझौते की बातचीत, जो साम्प्रदायिक 'निर्णय' का स्थान ले सके और जिसके द्वारा जातिगत वैमनस्य और कटुता दूर हो और देश सम्मिलित रूप से मुकाबला कर सके, काग्रेस के अध्यक्ष बाबू राजेन्द्रप्रसाद और मुस्लिम-लीग के सभापति श्री मुहम्मदअली जिन्नाह मे, एक महीने से भी अधिक दिनो तक चलती रही। बातचीत २३ जनवरी को आरम्भ हुई और बीच में कुछ दिनो के लिए बन्द रहकर फिर १ मार्च १९३५ तक जारी रही। पर इस बातचीत का कोई परिणाम न हुआ और देश को बडी निराशा हुई।

दमन जारी

१९३५ मे भी सरकारी रुख या नीति में कोई परिवर्तन नही हुआ। काग्रेस को शक्तिशाली शत्रु समझकर उसपर सन्देह की निगाह रखी जा रही है और अग-

जरा-सी बात पर कांग्रेस-कार्यकर्त्ताओ के विरुद्ध कार्रवाई करने के अवसर से लाभ उठाया जाता है। जिनपर आतंककारी कामो का सन्देह किया जाता है, उन्हें अब भी बिना मुकदमा चलाये जेलो में या घरो में नजरबन्द रक्खा जा रहा है और अकेले बंगाल में ही उनकी संख्या २७०० है। अनेक स्थानो पर यदा-कदा मकानो की तलाशियां होती रहती है और महासमिति के तथा बिहार आदि प्रान्तो की कांग्रेस कमिटियो के दफ्तरो पर भी निगाह पड चुकी है। खान अब्दुलगफ्फारखां को बम्बई में भाषण देने के अपराध मे दो वर्ष की सजा दी गई और डॉक्टर सत्यपाल को निर्वाचन-सम्बन्धी भाषण देने के सिलसिले में एक साल का दण्ड दिया गया।

बंगाल के नजरबन्दो की संख्या हजारो में है। उनके परिवार असहाय अवस्था में है। सरकार ने इन परिवारो से उनका निर्वाह करने में समर्थ युवको को छीन लिया है। ये युवक कई वर्षो से बिना मुकदमा चलाये नजरबन्द रक्खे गये है या निर्वासित है। २४ और २५ अप्रैल को जबलपुर में महासमिति की बैठक हुई, जिसमें उनसे सहानुभूति प्रकट की गई और नजरबन्दो के परिवारो और आश्रितो के कष्ट-निवारण के लिए चन्दा इकट्ठा करने का निश्चय किया गया। १६ मई का दिन हजारो आदमियो को बिना मुकदमा चलाये नजरबन्द रखने के विरुद्ध दिवस मनाने और चन्दा इकट्ठा करने के लिए निश्चित किया गया। कांग्रेस के अध्यक्ष ने इस सम्बन्ध में देश के नाम एक अपील प्रकाशित की। बंगाल की सरकार ने कांग्रेस की इस कार्रवाई का मुकाबला करने के लिए इंडियन प्रेस (इमर्जेन्सी पावर्स) एक्ट की धारा २ ए के अन्तर्गत आदेश जारी कर दिया कि कांग्रेस के अध्यक्ष के आज्ञानुसार देश भर में मनाये जानेवाले नजरबन्द दिवस की देश के किसी स्थान की कोई सूचना पत्रो में प्रकाशित न की जाय। बंगाल के पत्रकारो ने इसका विरोध किया और इस सम्बन्ध में एक दिन के लिए पत्र प्रकाशन बन्द रक्खा।

महासमिति ने अपनी २४ और २५ अप्रैल की जबलपुर की बैठक में कांग्रेस पार्लमेण्टरी-बोर्ड और निर्वाचन-सम्बन्धी झगडो का निपटारा करने के लिए एक समिति निर्वाचित की और हिसाब-किताब की जांच के लिए आडीटर नियुक्त किये। महासमिति ने श्री तसद्दुकअहमदखां शेरवानी की मृत्यु पर शोक प्रकट किया, बड़ी कौंसिल में कांग्रेस-पार्टी के काम पर संतोष प्रकट किया, देश का ध्यान सीमान्त-प्रदेश में कांग्रेस-संस्था के बदस्तूर गैर-कानूनी रहने, बंगाल के मिदनापुर जिले की कांग्रेस-कमिटियो के निषिद्ध रहने, और बंगाल, गुजरात व अन्य स्थानो पर खुदाई-खिदमतगार और हिन्दुस्तानी सेवादल आदि कांग्रेस से सम्बन्ध रखनेवाले दलों के गैर-कानूनी

बने रहने, और बंगाल, बम्बई, पंजाब और अन्य स्थानों में मजदूर और युवक-संघ की संस्थाओं के, केवल इस आधार पर कि उनकी प्रवृत्ति हिंसात्मक कार्यों की ओर है, कुचले जाने की ओर देश का ध्यान आकर्षित किया, और जनता से अपील की कि कांग्रेस की शक्ति में इस तरह वृद्धि करे जिससे वह देश का उद्धार करने के योग्य बन जाय।

महासमिति ने "विदेशी कानून" (Foreigners' Act) नामक पुराने कानून के दुरुपयोग का उल्लेख किया, जिसके द्वारा ब्रिटिश-भारत के कांग्रेस-वादियों को निर्वासित करके उन्हें ब्रिटिश-भारत में आकर निवास करने और कामकाज करने के कानूनी अधिकार का उपयोग करने से वंचित किया गया है।

महासमिति ने बंगाल में प्रचलित सरकारी दमन-नीति की, अनेकानेक युवकों को नजरबन्द रखने की नीति की, जिसके कारण उनके परिवार अवलम्बन-हीन हो गये हैं, और स्वयं उन परिवारों के निर्वाह का प्रबन्ध न करने की निन्दा की। महासमिति ने सम्मति प्रकट की कि बंगाल की सरकार को या तो इन नजरबन्दों को छोड़ देना चाहिए, या उनपर अच्छी तरह मुकदमा चलाना चाहिए। बंगाल की जनता और उसके नजर-बन्दों को आश्वासन दिया कि उनके कष्टों के साथ उसकी पूरी समवेदना है। समिति ने बंगाल-प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी को आज्ञा दी कि वह नजरबन्दों की पूरी सूची तैयार करे और उनके नजरबन्द रहने की अवधि और उनके परिवारों की आर्थिक अवस्था से उसे सूचित करे। नजरबन्दों के परिवारों का कष्ट-निवारण करने के उद्देश्य से कार्य-समिति की अधीनता में भारतवर्ष-भर में चन्दा एकत्र करने का निश्चय किया। फ़ीरोजाबाद के सामूहिक हिंसात्मक कार्यों के ऊपर खेद प्रकट किया, जिनके फल-स्वरूप डॉ॰ जीवाराम का पूरा परिवार, बच्चों और कई रोगियों सहित, जीवित जला दिया गया था, और नेताओं का ध्यान इस बात की ओर आकर्षित किया कि उन्माद-पूर्ण साम्प्रदायिकता के फल-स्वरूप कैसी शोकजनक घटनायें हो सकती हैं। नेताओं से अपील की कि जनता को यह सुझाने के लिए, कि एक-दूसरे के प्रति मेल और आदर के भावों के साथ शान्ति और मैत्री-पूर्वक रहना कितना आवश्यक है, प्रबल चेष्टा की जाय।

महासमिति ने यह स्पष्ट कर दिया कि अखिल भारतीय कांग्रेस के लिए देशी रियासतों की प्रजा के हित भी उतने ही प्रिय हैं, जितने ब्रिटिश-भारत की प्रजा के हित, और रियासतों की प्रजा को आश्वासन दिया कि उनके स्वतन्त्रता के युद्ध में कांग्रेस उनकी पीठ पर है।

इसी अवसर पर जबलपुर में कार्य-समिति की भी बैठक हुई, जिसमें कांग्रेस के नये विधान के अनुसार प्रतिनिधियो की सख्या निश्चित की गई और महासमिति के सदस्यो और आगामी कांग्रेस के प्रतिनिधियो के निर्वाचन के सम्बन्ध में विभिन्न कांग्रेस-कमिटियो के पालन के लिए समय-तालिका बनाई गई। कार्य-समिति में कई प्रान्तो के निर्वाचन-सम्बन्धी झगडो का निपटारा किया गया और कांग्रेस और महासमिति में बगाल के मिदनापुर जिले के प्रतिनिधित्व का प्रबन्ध किया गया, क्योकि इन दोनो स्थानो पर कांग्रेस-सस्थाओ के गैर-कानूनी होने के कारण निर्वाचन नही हो सकता था।

क्वेटा का भूकम्प

१५ जनवरी १९३४ को बिहार के भूकम्प ने देश को हिला दिया था। अभी मुश्किल से १८ महीने बीते होगे कि ३१ मई १९३५ को क्वेटा के भूकम्प ने देश-भर में शोक के बादल फैला दिये। यह शहर सैनिक-केन्द्र था, इसलिए कष्ट-निवारण का काम सरकार ने स्वय अपने हाथ में लिया। यह स्वाभाविक ही था, पर कष्ट-निवारण और सगठित सहायता के उद्देश से बाहर से आनेवालो के प्रवेश के विरुद्ध आज्ञा क्यो दी गई, यह समझ में न आया। इस स्थान पर जाने की अनुमति न कांग्रेस के सभापति को मिली, न गाधीजी को। इस परिस्थिति में केवल निषिद्ध-प्रदेश के आसपास के स्थानो पर ही सगठित सहायता की जा सकती थी। कांग्रेस के सभापति ने क्वेटा-कष्ट-निवारक-समिति का सगठन किया, जिसकी शाखायें सिंध, पजाब और सीमान्त-प्रदेश में स्थापित की गईं। यह समिति क्वेटा से भेजे हुए कष्ट-पीडितो की सहायता कर रही है। ३० जून का दिन भूकम्प-पीडितो के प्रति सहानुभूति प्रकट करने और भूकम्प में मरे हुओ के निमित्त प्रार्थना करने के लिए नियत हुआ। इस सम्बन्ध में सरकार ने जिस नीति का परिचय दिया वह उसकी अविश्वास और सन्देह की नीति की चरमसीमा थी। इस नीति ने कार्य-समिति को क्वेटा-कष्ट-निवारण के सम्बन्ध मे १ अगस्त को निम्नलिखित प्रस्ताव पास करने पर बाध्य किया —

"हाल ही में भूकम्प के कारण क्वेटा और बलूचिस्तान के अन्य स्थानो में हजारो आदमियो को जन-धन की जो क्षति उठानी पडी है, उसपर यह कार्य-समिति घोर शोक प्रकट करती है और कष्ट-पीडित और शोकाकुल व्यक्तियो के साथ समवेदना प्रकट करती है।

"यह कार्य-समिति चन्दा एकत्र करने और कष्ट-निवारण की व्यवस्था करने के लिए समिति बनाने के कांग्रेस के अध्यक्ष के कार्य की पुष्टि करती है। यह समिति

क्वेटा के भूकम्प के घायल अथवा पीड़ित होनेवालो की बड़ी विकट परिस्थिति में सहायता करनेवाले कार्यकर्त्ताओ को धन्यवाद देती है, और जनता ने चन्दे की अपील का जो उत्तर दिया है उसकी पहुँच स्वीकार करती है।

"क्वेटा के अधिकारियो ने अपने सीमित सामर्थ्य के द्वारा परिस्थिति का सामना करने की जो चेष्टा की उसकी पुष्टि करते हुए कार्य-समिति सरकारी और गैर-सरकारी प्रत्यक्षदर्शी गवाहो के वक्तव्यो के आधार पर यह सम्मति प्रकट करती है कि यदि खुदाई का काम दो दिन बाद बन्द न करा दिया जाता और जनता-द्वारा सहायता को अस्वीकार न कर दिया जाता तो बहुत-से आदमियो को गिरे हुए मकानो के नीचे से निकाला जा सकता था।

"कार्य-समिति की राय है कि जनता-द्वारा लगाये गये निम्नलिखित आरोपो के सम्बन्ध में, जिनकी पुष्टि आंशिक रूप से सरकारी अधिकारियो के वक्तव्य से होती है, जाच करने के लिए सरकार की ओर से सरकारी और गैर-सरकारी सदस्यो का एक कमीशन नियत किया जाय—

(१) जनता-द्वारा सहायता देने के समय सरकार ने जो यह वक्तव्य दिया था कि परिस्थिति का सामना करने योग्य उसके पास पर्याप्त साधन हैं, वह वस्तु-स्थिति-द्वारा ठीक प्रमाणित नही होता दिखाई देता।

(२) इस सहायता को अस्वीकार कर देने के लिए सरकार के पास कोई कारण न था।

(३) सरकार को परिस्थिति का अच्छी तरह सामना करने के लिए आस-पास के इलाको से प्राप्त सहायता एकत्र करनी चाहिए थी।

(४) जबकि भूकम्प-पीड़ित प्रदेश के प्रत्येक यूरोपियन-निवासी पर पूरा ध्यान दिया गया, भारतीय-निवासियो के सम्बन्ध में समुचित प्रबन्ध नही किया गया और बचाव, कष्ट-निवारण और बची हुई चीजो को निकालने के मामले मे भी यूरोपियनो और भारतीयो मे इसी प्रकार का भेद-भाव किया गया।"

पद-ग्रहण का प्रश्न

१९३५ के मध्य मे कांग्रेसवादियो को, विशेषकर उनको जो कौंसिल-प्रवेश पर अड़े हुए थे, एक और प्रश्न ने उद्विग्न कर रक्खा था, और वह था नये शासन-विधान के अन्तर्गत पद ग्रहण करने के सम्बन्ध मे। यह दुर्भाग्य की बात हुई कि इस अवसर पर, जबकि बिल अभी पार्लमेण्ट के सामने पेश ही था, यह प्रसग छेड़ा गया।

यह बात भी भुलाने-योग्य नही है कि कांग्रेस-वादियो के इस वर्ग ने अपना जो रुख दिखाया उसका उन लोगो ने जिनके हाथ में बिल था, पार्लमेण्ट को यह आश्वासन दिलाने में कि ऐसे आदमी मौजूद हैं जो सुधारो को अमल में लायेंगे, पूरा उपयोग किया। बम्बई-कांग्रेस का प्रस्ताव इस मामले में बिलकुल स्पष्ट था कि कांग्रेस का क्या रुख है, और आगामी-अधिवेशन तक इसके निर्णय करने का किसीको अधिकार न था। फलत जुलाई के अन्त में वर्धा में कार्य-समिति की बैठक हुई, जिसमें तय हुआ कि इसका निर्णय कांग्रेस का खुला अधिवेशन ही कर सकता है। उसमें निम्नलिखित प्रस्ताव पास हुआ —

"भावी शासन-विधान के अन्तर्गत पद ग्रहण करने या न करने के सम्बन्ध में अनेक कांग्रेस-कमिटियो के प्रस्ताव पढ़ने के बाद यह कार्य-समिति यह निश्चय प्रकट करती है कि इस प्रश्न को आगामी कांग्रेस-अधिवेशन तक के लिए स्थगित कर देना चाहिए। यह कार्य-समिति घोषणा करती है कि इस सम्बन्ध में किसी कांग्रेस-वादी का निजी विचार कांग्रेस का विचार न समझा जाना चाहिए।"

रियासतें और कांग्रेस

अभी बिल कामन-सभा के सामने ही था कि पार्लमेण्टरी-बोर्ड नेता श्री भूलाभाई देसाई ने वकील की हैसियत से देशी-नरेशो को भावी भारत-सरकार के अन्तर्गत सघ-शासन के प्रश्न पर सलाह दी और फिर मैसोर में इस विषय पर भाषण भी दिया। इन बातो को लेकर इस वर्ष के आरम्भ में देशी-राज्य-प्रजा-परिषद् में हलचल मच गई। जुलाई में देशी-रियासतो की प्रजा के प्रति कांग्रेस के रुख पर विचार करने के लिए महासमिति की बैठक की माग हुई। देशी-रियासतो की प्रजा ने अपनी माग गाधीजी के उस भाषण के आधार पर कायम कर रक्खी थी, जो उन्होने दूसरी गोलमेज-परिषद् के अवसर पर दिया था—"कांग्रेस ऐसे किसी शासन-विधान में सन्तुष्ट न होगी, जिसके द्वारा देशी-राज्यो की प्रजा को नागरिकता के अधिकार प्राप्त न हो और वे सघ व्यवस्था-मण्डल में प्रतिनिधि न भेज सकें।"

२९, ३० और ३१ जुलाई १९३५ को वर्धा में होनेवाली कार्य-समिति की बैठक में इस विषय पर प्रस्ताव पास किया गया, जिसमें निम्नलिखित निश्चित सम्मति प्रकट की गई —

"यद्यपि भारतीय रियासतो के सम्बन्ध में कांग्रेस की नीति को प्रस्तावों-द्वारा प्रकट कर दिया गया है, फिर भी रियासतो की प्रजा-द्वारा या उनकी ओर से कांग्रेस-

नीति की अधिक स्पष्ट घोषणा की माग आग्रह-पूर्वक पेश की जा रही है। इसलिए कार्य-समिति देशी-नरेशो और देशी-राज्यो की प्रजा के प्रति काग्रेस की नीति के सम्बन्ध में निम्न-लिखित वक्तव्य प्रकाशित करती है—

काग्रेस स्वीकार करती है कि भारतीय रियासतो की प्रजा को भी स्वराज्य का उतना ही अधिकार है जितना ब्रिटिश-भारत की प्रजा को है। तदनुसार काग्रेस ने देशी-राज्यो मे प्रतिनिधित्व-पूर्ण उत्तरदायी-शासन की स्थापना के पक्ष में अपनी राय प्रकट की है, और न केवल देशी-नरेशो से ही अपने-अपने राज्यो में इस प्रकार की उत्तरदायी-शासन-व्यवस्था स्थापित करने और अपनी प्रजा को व्यक्तिगत, सभा आदि करने के, भाषण देने के और लेखो-द्वारा विचार प्रकट करने के नागरिकता के अधिकार देने की अपील की है, बल्कि देशी-राज्यों की प्रजा से प्रतिज्ञा की है कि पूर्ण उत्तरदायी-शासन की प्राप्ति के लिए उचित और शान्तिपूर्ण साधनो से किये गये सघर्ष में उसकी सहानुभूति है। काग्रेस अपनी उसी घोषणा और उसी प्रतिज्ञा पर दृढ है। काग्रेस समझती है कि यह स्वय देशी-नरेशो के ही भले के लिए है, यदि वे शीघ्रातिशीघ्र अपनी रियासतो में पूर्ण उत्तरदायी-शासन-प्रणाली कायम कर दें, जिससे उनकी प्रजा को नागरिकता के पूर्ण अधिकार प्राप्त हो।

पर यह बात समझ लेनी चाहिए कि इस प्रकार का सघर्ष जारी रखने का बोझ स्वय देशी-राज्यो की प्रजा पर है। काग्रेस रियासतो पर नैतिक और मैत्री-पूर्ण प्रभाव डाल सकती है और, जहा भी हो, डालने पर बाध्य है। मौजूदा परिस्थिति में और किसी प्रकार का सामर्थ्य काग्रेस को प्राप्त नही है, यद्यपि भौगोलिक और ऐतिहासिक दृष्टि से सारे भारतवासी, चाहे वे अग्रेजो के अधीन हो चाहे देशी-राजाओ के और चाहे किसी और सत्ता के, एक है और उन्हें अलग नही किया जा सकता।

यह कहना होगा कि वाद-विवाद की गर्मागर्मी में काग्रेस के सीमित सामर्थ्य की बात भुला दी जाती है। हमारी समझ में और किसी प्रकार की नीति अगीकार करने मे दोनो का उद्देश ही विफल हो जायगा।

आगामी शासन-व्यवस्था-सम्बन्धी परिवर्तनो के विषय में सुझाया गया है कि काग्रेस भारत-शासन-विधान के उस अश में, जिसमें देशी रियासतो के और भारतीय-सघ के पारस्परिक सम्बन्ध की चर्चा की गई है, सशोधन कराने पर जोर दे। काग्रेस ने एक से अधिक बार शासन-सुधार-सम्बन्धी सारी योजना को, इस व्यापक आधार पर कि यह भारतीय-जनता की इच्छा का फल-रूप नही है, रद कर दिया है और प्रतिपादन किया है कि शासन-व्यवस्था का निर्माण विधान-कारिणी सभा के द्वारा

हो। ऐसी दशा में कांग्रेस अब इस योजना के किसी विशेष अश के संशोधन के लिए नहीं कह सकती। यदि वह ऐसा करेगी तो यह कांग्रेस-नीति में आमूल परिवर्तन करना होगा।

साथ ही रियासतो की प्रजा को यह आश्वासन देना अनावश्यक है कि भारतीय नरेशो का सहयोग प्राप्त करने के लिए कांग्रेस देशी रियासतो की प्रजा के हितो का बलिदान करने का अपराध कभी न करेगी। अपने जन्म से ही कांग्रेस सदा जनता के और उच्च-वर्ग के हितो में विरोध होने की अवस्था में जनता के हितो के लिए असन्दिग्ध रूप से लड़ती रही है।"

अन्त में यह निश्चय किया गया कि चूंकि १८८५ में कांग्रेस का पहला अधिवेशन हुआ था, इसलिए उसका पचासवा वर्ष उचित ढग से मनाया जाय। इस उद्देश से कार्य-समिति ने इस अवसर के लिए कार्यक्रम तैयार करने को एक उप-समिति नियुक्त की। वर्धा की बैठक और वर्ष की समाप्ति के बीच में जो थोडा-सा समय रहा उसमें तीन घटनाओ को छोडकर कोई विशेष बात न हुई। उनमें से एक घटना पण्डित जवाहरलाल की आकस्मिक रिहाई थी। वह अपनी धर्मपत्नी की चिन्ताजनक अवस्था के कारण ३ सितम्बर को अलमोडा-जेल से छोड दिये गये। उनको फौरन यूरोप को रवाना होना था और यदि वह अपनी सजा की मियाद खतम होने से पहले लौट आये तो, जैसा कि आज्ञा में कहा गया था, उन्हें फिर जेल वापस जाना पडेगा। दूसरी घटना गवर्नर-जनरल-द्वारा सितम्बर में क्रिमिनल-लॉ-अमेण्डमेण्ट-एक्ट पर सही होना था, यद्यपि बडी कौंसिल ने उसे स्पष्ट बहुमत-द्वारा रद कर दिया था। तीसरी महत्त्वपूर्ण या स्थान देने योग्य घटना १७ और १८ अक्तूबर १९३५ की महासमिति की बैठक थी, जो मदरास में हुई। आशका थी कि 'पद स्वीकार करने' और 'कांग्रेस और देशी-राज्यो के प्रश्न' पर दूने वेग से आक्रमण किया जायगा। यदि हम कांग्रेस-अधिवेशन के साथ हुई बैठक को छोड दें, तो मदरास में महासमिति की यह पहली बैठक थी। मदरास में देशी-राज्यो के प्रश्न पर कार्य-समिति के वक्तव्य के साथ सहमति प्रकट की गई और पद स्वीकार करने के प्रश्न पर महासमिति ने यह विचार प्रकट किया कि अभी नये शासन-विधान के अनुसार प्रान्तीय कौंसिलो का निर्वाचन आरम्भ होने में बहुत देर है, और साथ ही इधर राजनैतिक वातावरण भी अनिश्चित है, इसलिए इस विषय पर कांग्रेस के लिए कोई निश्चय करना समयानुकूल भी नहीं होगा और राजनैतिक दृष्टि से अविवेक-पूर्ण भी होगा।

मदरास की महासमिति की बैठक के सिलसिले में एक साधारण घटना का

जिक्र करना आवश्यक है। महासमिति के बगाल-प्रान्त के सदस्यो को सूचना दी गई कि उन्हे बैठक में भाग लेने की अनुमति न मिलेगी, क्योकि बगाल-प्रान्तीय-काग्रेस-कमिटी ने अपना ५००) का चन्दा पूरा अदा नही किया है। कार्य-समिति ने बगाल-प्रान्तीय-काग्रेस-कमिटी की कार्य-कारिणी को एक यह भी नोटिस दिया कि कार्य-समिति ने कलकत्ता केन्द्रीय जिला-काग्रेस-कमिटी को मानने के सम्बन्ध मे जो हिदायत दी थी उसका जान-बूझकर उल्लघन करने के लिए उसके विरुद्ध जाब्ते की कार्रवाई क्यो न की जाय, इसका वह कारण बतायें।

नया शासन विधान

अब अन्त मे हम इस बात का भी उल्लेख कर दें कि पार्लमेण्ट ने भारत-शासन-विधान पास कर दिया और २ जुलाई को उसे सम्राट् की स्वीकृति प्राप्त हो गई। इस विषय की आलोचना करके हम पुस्तक को मोटी नही बनाना चाहते। हा, हम कामन-सभा के एक सदस्य के भाषण का, जिसके बाद बहस लगभग समाप्त ही हो गई, उद्धरण देने के प्रलोभन को नही रोक सकते। ४ जून १९३५ को मेजर मिलनर ने इण्डिया-बिल पर बोलते हुए मि० चर्चिल और सर सेम्युअल होर की तुलना नाटक के नायक और उपनायक से की। उन्होने कहा—"नायक (सर सेम्युअल होर) ने शठ उप-नायक को हरा दिया है। आज (५-६-३५) वह बिना रक्त-पात किये ही उसका काम तमाम कर देगा।" इसके बाद मेजर मिलनर ने कहा—"और तब दोनो प्रति-पक्षी बाह-में-बाह डाले रगमच का द्वार छोडते दिखाई देंगे।" वास्तव मे यह नाटक १९३५ में ही नही, १९२० मे भी रचा गया था। वैसे आम तौर से यह बात ठीक है कि ब्रिटिश-पार्लमेण्ट मे एक ऐसा दल है, जो अनुदार-दल के नाम से पुकारा जाता है। पर असली बात यह है कि सारे दलो का लक्ष्य एक ही है, और वह यह कि एक ऐसा चित्र तैयार करें जो, "मैन्चेस्टर-गार्जियन' के शब्दो में, भारत को स्वराज्य प्रतीत हो और इगलैण्ड को ब्रिटिश-राज्य। इस उद्देश्य से विभिन्न दल पार्लमेण्ट की दोनो सभाओ में लडाई का स्वाग रचते हैं, उनमें से कुछ देने का ढोग दिखाते है और बाकी प्रतिरोध करने का। इनमे से पहले प्रकार का दल भारत के नरम-दलवालो को यह कहकर राजी करता है कि परिस्थिति ऐसी ही है, जो मिले ले लो, क्योकि दूसरा तो इतना भी नही देना चाहता। अधिकार-सम्पन्न दल नायक का पार्ट खेलता है, और विरोधी दल उप-नायक का। दोनो वेस्ट-मिनिस्टर की चहार-दीवारी में लडाई का स्वाग रचते है, और ज्योही वे बाडा छोडकर बाहर आते है, इस कृत्रिम-युद्ध को

बढ़िया प्रकृत रूप देने की सफलता पर एक दूसरे को बंधाई देते हैं। इन दोनो के बीच में भारत को बुद्धू बनाया जाता है।

कांग्रेस-सभापति का बढ़ता हुआ उत्तरदायित्व

इस अध्याय को समाप्त करने से पहले हम उस उत्तरदायित्व के दिन-पर-दिन बढ़ते हुए भाव का जिक्र करना आवश्यक समझते हैं जिसका परिचय काग्रेस के अध्यक्ष हर साल देते आ रहे है। श्रीमती बेसेण्ट ने सालभर तक अपने समानेत्री बने रहने की सूझ पर जोर दिया था। तबसे इस बात पर उनके उत्तराधिकारी अमल करते आ रहे हैं। दो-एक अध्यक्षो को छोडकर, जो काग्रेस की शानदार बैठक की समाप्ति के बाद ही सार्वजनिक क्षेत्र से गायब हो गये, बाकी सबने अपना कर्तव्य बडी लगन और उत्तरदायित्व के पूरे बोध के साथ पूरा किया है। इस परिपाटी के अनुरूप ही बाबू राजेन्द्रप्रसाद ने, जिनका स्वास्थ्य अच्छा नही रहता पर जिनकी कार्य-शक्ति और कष्ट-सहिष्णुता ठीक उतने ही विपरीत ढग से काम करती है, देश का दौरा कर डाला और इस प्रकार उन्होंने देश की जनता और आन्दोलन से परिचित होने के लिए एक नया मार्ग दिखाया। बिहार-भूकम्प-कष्ट-निवारण के सम्बन्ध में उन्हें बहुत काम रहता है। इसके अलावा काग्रेस के सभापति की हैसियत से उन्हें कर्तव्य-पालन करना पडता है। और फिर क्वेटा के भूकम्प के काम ने उनके कामो में और भी वृद्धि कर दी। इतने पर भी उन्होंने महाराष्ट्र, कर्नाटक, बरार, पजाब, मध्यप्रान्त के एक भाग, तामिलनाड, आध्र और केरल का दौरा कर डाला। अखिल-भारतीय चर्खा-सघ से भी उनका सम्बन्ध है, और अपरिवर्तनवादी होते हुए भी निर्वाचन-सम्बन्धी हलचल में उन्होंने अपनी दिलचस्पी कम नही होने दी हैं। गाधीजी राजनैतिक क्षेत्र से क्या गये, राजेन्द्र बाबू के कन्धो पर रक्खा बोझ और भी बढ गया-- क्योकि, यह बात छिपाई नही जा सकती कि जब तक गाधी जी मौजूद रहे काग्रेस का भार उनके सहयोगियो के लिए हलका था। इसका यह मतलब नही कि उनके सहयोगियो ने कभी अपने कर्त्तव्य की अवहेलना की हो, पर असली बात यह थी कि गाधीजी-जैसे व्यक्ति सार्वजनिक जीवन के भारी कार्यों का बोझ अपने सहयोगियो के लिए बहुत कम छोडते हैं। इस प्रकार काग्रेस की अध्यक्षता ऐसी शक्ति का आसन है जिसपर घोर चिन्ताओ और उत्तरदायित्वो का भार आ पडा है। हम एक कदम और भी आगे बढेंगे और कहेंगे कि काग्रेस देश में सरकार के मुकाबले ऐसी सस्था बन गई है जिसका अपना एक आदर्श है, जिसे सरकार के द्वारा दमन किया जाता है, जिसकी ग्रामोन्नति की योजनाओ से

सरकारी योजनाओ ने होड लगा रक्खी है, जिसके सत्य और अहिंसा के उसूलो की सरकार की ओर से, जो भौतिक बल पर निर्भर करती है, बुराई और बदनामी की जाती है।

कांग्रेस ५० वर्षों से काम करती आ रही है और इसकी सफलता की सराहना की गई है। कुछ लोग इसे असफल बताते हैं। सफल हो या असफल, सत्याग्रह एक नई शक्ति है जो कांग्रेस की राजनीति में प्रविष्ट हो गई है। अभी इसकी परीक्षा ही ली जा रही है। पर इसे इतने दिन काम करते हो गये कि जनता का ध्यान इसकी ओर काफी आकर्षित हो चुका है। इन आदर्शों में परिवर्त्तन और साधनो में सशोधन करने का श्रेय एक व्यक्ति को है, जो यद्यपि भारत में उत्पन्न हुआ था पर अपनी आयु के रचनात्मक-भाग में देश से बाहर दक्षिण-अफ्रीका में रहता था और एक अपरिचित देश में सत्य के प्रयोग कर रहा था। लोग पूछते हैं—क्या कांग्रेस असफल सिद्ध नही हुई, क्या सत्याग्रह को आका गया और वह अधूरा नही उतरा, और क्या गाधीजी की शक्ति समाप्त नही हो गई ? इन सब प्रश्नो का एक-एक करके उत्तर देने के बाद ही हम इस पुस्तक को समाप्त करेंगे।

: ४ :

उपसंहार

१

अन्तर्राष्ट्रीय संस्था

कांग्रेस ने पिछले ५० वर्षों में जो कुछ किया उसका संक्षिप्त विवेचन हम कर चुके। इस काल के दूसरे अर्धांश की चर्चा पहले अर्धांश की अपेक्षा कुछ अधिक विस्तार के साथ की गई है। इस दीर्घकाल मे, विभिन्न प्रमुख व्यक्तियो ने हमारे राष्ट्र का नेतृत्व किया है। दादाभाई नौरोजी ने तीन बार कांग्रेस का सभापतित्व किया, और कांग्रेस के शब्द-कोष में 'स्वराज्य' शब्द का प्रवेश किया। प्रथम राष्ट्रपति उमेशचन्द्र बनर्जी एक बार फिर सभापति हुए। बंगाल के शेर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी को दो बार यह सम्मान प्राप्त हुआ। यही हाल धवल-वस्त्र-धारी पं० मदनमोहन मालवीय और पं० मोतीलाल नेहरू तथा सर विलियम वेडरबर्न का हुआ। बदरुद्दीन तैयबजी, रहीमतुल्ला सयानी, नवाब सैय्यद मुहम्मद बहादुर, हसन इमाम, अबुलकलाम आजाद, हकीम अजमलखां, मौ० मुहम्मदअली और डॉ० अन्सारी—कुल ५१ में ये ८ मुसलमान सभापति हुए। दादाभाई नौरोजी और फीरोजशाह मेहता उस श्रेष्ठ जाति—पारसियो—के प्रतिनिधि-स्वरूप हुए जिसने भारत की वैदिक और इस्लामिक संस्कृति में अपनी—जरतुश्त—संस्कृति मिलाकर उसे समृद्ध किया है। उमेशचन्द्र बनर्जी, आनन्दमोहन बसु, रमेशचन्द्र दत्त, लालमोहन घोष, भूपेन्द्रनाथ बसु, सत्येन्द्रप्रसन्न सिंह, अम्बिकाचरण मुजुमदार, चित्तरञ्जन दास और सुभाषचन्द्र जैसे व्यक्ति प्रदान करने के कारण बंगाल तो इस दिशा मे सबसे आगे है। युक्तप्रान्त ने बिशन-नारायण दर, मदनमोहन मालवीय, मोतीलाल नेहरू और उनके सुपुत्र जवाहरलाल को दिया। राजेन्द्रबाबू बिहार के हैं, जहा के हसनइमाम पहले सभापतित्व कर चुके हैं। पंजाब को लाला लाजपतराय के सभापति बनने का गौरव प्राप्त है और मध्य-प्रान्त को श्री मुधोलकर के सभापतित्व का। गुजरात के गांधीजी और वल्लभभाई पटेल सभापति हुए हैं। बम्बई तो मानो इसका भण्डार ही रहा है—तैयबजी और सयानी ही नहीं, फीरोजशाह मेहता भी यहीं के थे। वाचा, गोखले और चन्दावरकर

(बम्बई के) पश्चिमी प्रान्त के थे। मदरास ने आन्ध्र के आनन्द चार्लू को और केरल-पुत्र सर शकरन नायर को दिया और अन्त में दक्षिण के पितामह विजयराघवाचार्य तथा श्रीनिवास आयगर को प्रदान किया जो दोनो तामिलनाड के है। श्रीमती बेसेण्ट और सरोजिनी नायडू ये दो स्त्रिया भी सभापति-पद को सुशोभित कर चुकी है। और श्री यूल, वेब, वेडरबर्न व हेनरी काटन के रूप में अग्रेजो ने भी अपना हिस्सा बटाया है। इस विविध सूची से जाहिर है कि काग्रेस न केवल राष्ट्रीय बल्कि सचमुच एक अन्तर्राष्ट्रीय सस्था है।

कांग्रेस की सफलता

अब प्रश्न यह है कि क्या काग्रेस असफल रही ? इस बात से शायद ही कोई इन्कार करे कि पिछले दस वर्षों मे पुरातन राजनैतिक और सास्कृतिक विचारो के क्षेत्र में नित्य नये विचारो का जन्म होता रहा है। राजनीति सच पूछिए तो मानव-कल्याण का विज्ञान ही है। उसने केवल भारत में ही नही, बल्कि सारे ससार में इतना व्यापक रूप धारण कर लिया है कि उसमे सामाजिक और आर्थिक जैसी वृहत्तर समस्याओ के अध्ययन तथा हल का भी समावेश हो गया है। और यदि हम इनमें सास्कृतिक और नैतिक विचारो को भी मिला दें तो फिर राजनीति उन्नीसवी शताब्दी के गर्हित पद पर न रह कर उस शुद्ध और नैतिक पद पर जा पहुचती है जिसे पहले १५ या १६ वर्षों में भारत ने प्राप्त किया है, और उसका श्रेय श्री मोहनदास करमचन्द गाधी जैसे विश्व-वन्द्य व्यक्ति को है जिसकी अभेद्यता का वर्णन प्रोफेसर गिलबर्ट मरे ने निम्नलिखित उचित और नपे-तुले शब्दो में किया है —

"ऐसे आदमी के साथ सावधानी से पेश आओ, जिसे न तो सासारिक वासनाओ की रत्ती-भर चिन्ता है, न आराम या प्रशसा या पद-वृद्धि की, बल्कि जो उस काम को करने का निश्चय कर लेता है जिसे वह ठीक समझता है। ऐसा आदमी भयकर और दु खदायी शत्रु है, क्योंकि उसके शरीर पर तो तुम आसानी के साथ विजय प्राप्त कर सकते हो पर उसकी आत्मा पर इससे तुम्हारा जरा भी कब्जा नही होसकता।"

ऐसे ही आचार्य के नेतृत्व में काग्रेस ने राजनीति पर सेवा-धर्म की छाप लगाने की चेष्टा की है, उच्च श्रेणियो मे अधिक व्यापक सस्कृति और अधिक ऊँची देश-भक्ति की आवश्यकता पर जोर दिया है, और ग्राम-नेतृत्व स्थापित करने के लिए उद्योग किया है। वस्तुत काग्रेस ने एक नये धर्म को जन्म दिया है। वह है राजनीति का धर्म। यदि हम अपने धर्म से च्युत न होना चाहें तो हम किसी भी मानवी प्रश्न को धर्म की

परिधि के बाहर नही मान सकते। क्योकि धर्म किसी खास सिद्धान्त या उपासना के ढंग का नाम नही है, बल्कि उच्चतर जीवन, बलिदान की भावना और आत्म-समर्पण की एक योजना है। और जब हम राजनीति-धर्म की बात कहते है तो हम वर्तमान गर्हित राजनीति को पवित्र बना देते है, सकुचित और भेद-पूर्ण राजनीति को व्यापक बना देते हैं, और प्रतिद्वद्वितापूर्ण राजनीति को सहयोग-पूर्ण बना देते हैं।

इस मनोवृत्ति से प्रेरित होकर हमने भारतीय राष्ट्रीयता के निर्माण में सत्य और औचित्य का पक्ष-समर्थन किया है। जीवन में असत्य सदा मे शीघ्र और सस्ती विजय प्राप्त करता आया है और पाखण्ड और छल ने विवेक और सत्य के ऊपर अक्सर विजय प्राप्त की है। यही क्यो, इतिहास में कानून और तर्क ने स्वय जीवन तक पर विजयें प्राप्त की है। पर ये विजयें आशिक और क्षणभगुर है और इन्होने विजेताओ को हमेशा करुणाजनक अवस्था में ला पटका है। बड़े पैमाने पर देखा जाय तो गत महायुद्ध के फल-स्वरूप जिजेता विजितो के ऊपर अपना प्रभुत्व न जमा सके। छोटे पैमाने पर देखा जाय तो भारत पर इंग्लैण्ड की 'विजय' ने इग्लैण्ड को स्थायी सुख प्रदान नही किया। विभिन्न गोलमेज-परिषदो का आयोजन करने में राजनीति-विशारदो ने जिस नीति से काम लिया उसके फल-स्वरूप वे भारत को इग्लैण्ड-रूपी प्रासाद का झोपड़ा बनाने के उद्देश्य में सफल न हो सके। दमन की प्रत्येक लहर ने स्वयं दमन करने-वालो के हितो को खतरे में डाला और जनता में प्रतिरोध की भावना उत्पन्न कर दी। यह प्रतिरोध की भावना कभी सत्याग्रह—सविनय-अवज्ञा—के रूप में प्रकट होती है, कभी उगती और उठती हुई पीढी के हाथो में अधिक कठोर और भीषण रूप धारण कर लेती है। जो यह कहते है कि असहयोग का कार्यक्रम असफल रहा वे अपनी इच्छा को निश्चित निर्णय के रूप में पेश करते है, क्योकि दूर तक दृष्टि दौडाकर देखा जाय तो प्रत्येक असफलता केवल देखने मे असफलता होती है, वास्तव में तो वह सफलता की दिशा में एक आगे का कदम ही है। और वास्तव में सफलता अनेक असफलताओ का अन्तिम पटाक्षेप है।

हम काग्रेस के कार्यक्रम को इसी कसौटी पर कसते है। काग्रेस के कार्यक्रम के दो पहलू है। उसके आक्रमणकारी पहलू को लीजिए, तो काग्रेस ने सरकार के साथ युद्ध करने में जो ढग अपनाया उसे कोई सभ्य सरकार बुरा नही कह सकती। इस युद्ध का मूलमन्त्र मन, वचन, कर्म से अहिंसाव्रत का पालन रहा है और गाधीजी को भारत का 'चीफ-कान्सटेबल' माना गया है। सरकार ने गाधीजी के सत्याग्रह को बदनाम करने की चेष्टा भले ही की हो, पर जनता के सत्य और अहिंसा-प्रेम की निन्दा

कौन कर सकता है ? यह वह युग है जिसमें राजवंश नष्ट-भ्रष्ट हो चुके हैं, सिंहासन उलट दिये गये, और प्रतिनिधि शासन-व्यवस्थाओ को भग होना पडा है। यह वह युग है जिसमें दो दलो और तीन दलोवाली पुरानी प्रणाली राजनैतिक क्षेत्र से विदा हो गई और विरोधी-दल को निर्वाचनो के द्वारा नही दबाया जाता बल्कि सचमुच उसका विनाश किया जाता है। इस युग में अहिंसा की बात कहना दिल्लगी-सा प्रतीत होगा। रक्तपात-द्वारा प्राप्त की गई विजय केवल रक्तपात-द्वारा ही स्थायी रक्खी जा सकती है और उसी के द्वारा छिन भी जाती है, और जब दो देशो के बीच में हिंसा निर्णायक का स्थान ग्रहण कर लेती है, तो फिर वह दो जातियो या दो व्यक्तियो के बीच में भी अवसर मिलते ही घुस बैठती है।

रचनात्मक पहलू

अब काग्रेस-कार्यक्रम के रचनात्मक पहलू को लीजिए। वह सरल रहा है, इतना सरल कि विश्वास न हो। हम यह बात स्वीकार करते हैं कि यह कार्यक्रम देश की उन अ-सरल श्रेणियो को पसन्द न हुआ होगा जो कस्बो और शहरो में रहती हैं, विदेशी कपडा पहनती हैं, विदेशी भाषायें बोलती हैं और विदेशी मालिक की चाकरी करती है। हमारे नगरो की मर्दुमशुमारी की जाय तो जो भेद खुलेंगे, उन्हें देखकर आश्चर्य होगा। तब यह पता चलेगा कि हर तीसरा आदमी अपनी आजीविका, अपनी समृद्धि और अपनी प्रसिद्धि के लिए विदेशी शासको की सदिच्छा पर निर्भर करता है। ये बातें तत्काल ही दिखाई नही पडती, क्योकि हम यह नही जानते कि वास्तव मे हमारे मालिक कौन है। हम तो यही जानते है कि पुलिस के सिपाही से लगाकर आबकारी के दरोगा तक और बैंक के एजेण्ट से लगाकर अग्रेज दर्जी तक, सभी हमारे मालिक है। पी० डब्लू० डी० का कर्मचारी, अमीन, मजिस्ट्रेट और बिल बनानेवाला—ये सब ब्रिटिश-एम्पायर-लिमिटेड के अवैतनिक कर्मचारी-मात्र है। इस कम्पनी का स्थानिक सचालक-मण्डल भारत-सरकार है, जिसके मातहत-दफ्तर अनेक प्रान्तो में हैं। अग्रेज सरकार सेना, पुलिस और सरकारी कर्मचारियो, अदालतो, कौंसिलो, कॉलेजो, स्थानिक सस्थाओ और उपाधिधारियो के सात परिवेष्टनो से घिरी हुई है। देश की अस्सी प्रतिशत ग्रामीण आबादी अमीनो और पटवारियो के भय से सशक रहती है, और बाकी शहरी आबादी म्युनिसिपैलिटियो, स्थानिक बोर्डों, इन्कमटैक्स-अफसरो और आबकारी-विभाग के अधिकारियो से भयभीत रहती है। इसलिए यह नितान्त आवश्यक

हो गया है कि भौतिक बल के बोध से उत्पन्न हुए भय को निकाल फेंका जाय और उसका स्थान उस आशा और साहस को दिया जाय जो वास्तविक अहिंसा-प्रेम से उत्पन्न होता है। इसलिए कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम ने ऐसे-ऐसे कार्यों का रूप धारण कर लिया है जिन्हें ऐसी तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता है जिनके द्वारा कांग्रेस-वादी जनसाधारण के सम्पर्क में आते हैं। फलतः जब हम खद्दर का जिक्र करते हैं तो हम न केवल निर्धन आदमियों के लिए सहायक-धंधा ही उत्पन्न कर देते हैं, या उनके जीवन-निर्वाह-योग्य मजदूरी की ही व्यवस्था कर देते हैं, बल्कि उन्हें अपने शरीर पर से गुलामी का चिह्न उतार फेंककर अपने भीतर आत्म-सम्मान उत्पन्न करने का अवसर देते हैं। हम गृहस्थ की पवित्रता को अक्षुण्ण रखते हैं और कारीगर को उसकी कला से प्राप्त होनेवाले उस सृजनात्मक आनन्द की अनुभूति करने का अवसर देते हैं जो सभ्यता का वास्तविक परिचायक है। जब हम लोगों से खद्दर के लिए कुछ अधिक मूल्य देने को कहते हैं, तो हम उन्हें एक राष्ट्रीय धंधे की स्वतः ही वह सहायता करने की शिक्षा देते हैं जो सरकार को प्रदान करनी चाहिए थी पर जिसे वह नहीं करती। सबसे बड़ी बात यह है कि हम अपने देशवासियों को सादगी सिखाते हैं। और रहन-सहन की सादगी के साथ ही विचारों की उच्चता, दिव्यता और आत्म-सम्मान, आत्म-निर्भयता, आत्म-बोध के भाव उत्पन्न होते हैं। हमने आर्थिक क्षेत्र में खद्दर के द्वारा जो वस्तु प्राप्त करने की चेष्टा की है वही हम नैतिक-क्षेत्र में मद्यपान-निषेध के द्वारा और सामाजिक क्षेत्र में अस्पृश्यता-निवारण के द्वारा प्राप्त करने की चेष्टा कर रहे हैं। जो सरकार अपने नागरिकों में मद्यपान-निषेध-विषयक संगठन पर आपत्ति करे, उसे यदि और कुछ नहीं तो बहुत क्षुद्र तो अवश्य कहना पड़ेगा। यह समस्या इतनी सरल है कि किसी प्रकार की चर्चा की आवश्यकता ही नहीं है। हमारे राष्ट्र में मुख्यतः दो महान् जातियां रहती हैं—हिन्दू और मुसलमान। इन दोनों जातियों के धर्म का आधार मदिरा-पान-निषेध पर अवलम्बित है। देश में मादक-द्रव्य-निवारण-सम्बन्धी आन्दोलन इसी आधार पर चलता रहा है। पर जब कभी राष्ट्र गम्भीरतापूर्वक इस नैतिक आन्दोलन को अपने राजनैतिक रंगमंच पर बैठा देता है और इस आन्दोलन के संगठन के लिए पिकेटिंग की ओर झुकता है, तो सरकार कांग्रेस पर इस प्रकार आ टूटती है जिस प्रकार भेड़ों पर भेड़िया आ टूटता है।

और, जब हम अस्पृश्यता-निवारण के रूप में इस मंच पर एक सामाजिक विषय का समावेश करते हैं, तब भी हमारी यही दशा होती है। प्रधान-मंत्री रैम्जे मैकडानल्ड ने हरिजनों के लिए पृथक् निर्वाचन की व्यवस्था करके 'उन्हें अलग-अलग कर दिया,

जिन्हें भगवान् ने एकत्र किया था।' जब भारत के महान् नेता ने आमरण अनशन किया तब कहीं जाकर उस गर्हित व्यवस्था में सशोधन हो सका और हिन्दू-जाति में व्यापक एकता स्थापित हुई।

देश को जिस समस्या का सामना करना है वह बडी ही जटिल है। सरकार ऐसी है जो फूट डालकर शासन करने पर तुली हुई है। नगर और देहात गावो के विरुद्ध संगठित है, उच्च श्रेणियो के हित जनसाधारण के हितो से टक्कर खाते हैं, जन्म-सिद्ध सुधारो के विरुद्ध अपवित्र विरोध सगठित है, खद्दर पर प्रतिबन्ध लगा हुआ है, साम्प्र-दायिक समता कायम करने के मार्ग मे रुकावटें मौजूद है, और नैतिक आचरण ऊँचा करने की चेष्टा का प्रतिरोध किया जा रहा है। इन सब बातो के द्वारा यह अच्छी तरह स्पष्ट हो गया है कि स्वराज्य यदि प्राप्त होना है तो केवल अग्रेजी शिक्षा के दीवानो, शिक्षितो के पेशे अपनानेवाले व्यक्तियो और व्यापार और उद्योग-धन्धो के नेताओ के द्वारा ही प्राप्त न होगा। हमें अपना अन्दाज और कीमत लगाने की दृष्टि मे परिवर्तन करना होगा। इसके लिए गावो में रहनेवाली जनता मे आत्म-चेतनता का विकास करना पडेगा और उनका विश्वास प्राप्त करना होगा। और यह विश्वास पत्रो में लेख देने या एक-आध व्याख्यान झाड देने से प्राप्त न होगा बल्कि उनकी नित्य सेवा करने से प्राप्त होगा। जहा यह विश्वास प्राप्त हुआ कि बस काग्रेस-द्वारा आयोजित राष्ट्रोद्धार का कार्यक्रम चलने लग जायगा। उसके फलस्वरूप स्वराज्य पके हुए सेब की भाति तत्काल ही चाहे न टपक पडे तो भी यह शीघ्र ही स्पष्ट हो जायगा कि जनता की सेवा के लिए किया गया प्रत्येक कार्य मानो स्वराज्य की नीव मे अच्छी तरह और सचमुच रक्खा गया एक पत्थर है, और समाज की सामाजिक-आर्थिक रचना में से निकली यह एक-एक कमी स्वराज्य के प्रासाद की एक-एक मजिल ऊँची करने के सम-तुल्य होगी। यह तरीका निस्सन्देह धीमा है, पर परिणाम निश्चित और स्थायी होगा। इस प्रकार काग्रेस ने गावो में अपना सन्देश ले जाकर ग्राम-नेतृत्व कायम कर दिया है।

२

कांग्रेस की नवीन नीति

काग्रेस के कार्यक्रम को पूरा करने के लिए जिस नवीन कार्य-विधि को अपनाया गया है, अब हमें उसके सम्बन्ध में कुछ कहना है। अभी इस प्रणाली का विकास हो ही रहा है, इसलिए किसी आन्दोलन का उसकी अपूर्ण और अनिश्चित दशा में अध्ययन

करना किसी भी व्यक्ति के लिए कठिन है—और खासकर उस व्यक्ति के लिए तो यह और भी कठिन है जो स्वयं उसकी शक्ति में असीम विश्वास रखता है और इसलिए अपने विरोधियो के उपहास का पात्र और शत्रुओ की घृणा का भाजन बन गया है। सभी महान् आन्दोलनो को इन अवस्थाओ में से होकर गुजरना पडा है। जान-बूझकर हो या अविवेक के कारण हो, पर सभी महान् आन्दोलनो को शुरुआत में कृत्रिम आन्दोलनो के समान समझा जाता रहा है, जिस प्रकार कि हीरे को कारबन समझा जाता है, जिसके साथ उसकी समता रहती है। सत्याग्रह को भी निष्क्रिय-प्रतिरोध समझा जाता है, पर सत्याग्रह निष्क्रिय-प्रतिरोध से उतना ही भिन्न है, जितनी हीरे की चमक रसायनशाला के उस काले पदार्थ से भिन्न है। नही, निष्क्रिय-प्रतिरोध और सत्याग्रह परस्पर-विरुद्ध गुण प्रकट करते है। यद्यपि सत्याग्रह का आरम्भ उसके जन्म-दाता ने जान-बूझकर निष्क्रिय-प्रतिरोध के रूप में नही किया था, पर गाधीजी के आन्दोलन में कूद पडने से पहले भी इसी प्रकार एक आन्दोलन हो चुका था, इसलिए जनता ने इस आन्दोलन को भी निष्क्रिय-प्रतिरोध-मात्र समझा।

हाल की राजनैतिक घटनाओ ने अब अन्त में एक ऐसे आन्दोलन को जन्म दे दिया है जिसने समय-समय पर भिन्न-भिन्न नामो के साथ भिन्न-भिन्न रूप धारण किया है। निष्क्रिय-प्रतिरोध के रूप में इस आन्दोलन में कटुता और अभिमान भरा हुआ था। इस कटुता और गर्व में शायद घृणा और हिंसा का चिह्न भी दिखाई देता था। असहयोग के रूप में यह आन्दोलन उस कुढी हुई जनता का आन्दोलन था जो अपने शासक से क्रुद्ध थी, और यद्यपि घायल करने को इच्छुक थी, पर आक्रमण करने को तैयार न थी। जब इसने सविनय-अवज्ञा का रूप धारण किया तो इसे विशेषण पर विशेष्य के समान ही जोर देने में समय लगा। 'सविनय' वाली बात को शुरू में बहुत कम समझा गया, पर धीरे-धीरे लोग इसको समझने लगे और इस प्रकार इस 'सविनय'-सम्बन्धी विचार का दूसरा कदम सत्याग्रह पर जा पहुँचा। कुछ ही दिनो बाद हमने देखा कि सत्याग्रह का आधार प्रेम और अहिंसा है। अहिंसा केवल अभावात्मक शक्ति न रही, बल्कि एक प्रबल शक्ति हो गई और उसने उस प्रेम का रूप धारण कर लिया 'जो दूसरो को तो नही जलाता, पर स्वय जलकर भस्म हो जाता है।' १९२२ की फरवरी में बारडोली में गाधीजी ने पैर पीछे हटाया, और यदि हम उपरोक्त परि-भाषा और आदर्श की दृष्टि से बारडोली के निश्चय को देखें तो पता लगेगा कि एक चौरी-चौरा, युक्त-प्रान्त के एक गोरखपुर नामक जिले को ही नहीं सारे देश को सजा देने के लिए पर्याप्त है। हम यह भी जान लेंगे कि सत्याग्रह भौतिक-शक्ति मात्र

न होकर ऐसी नैतिक और आध्यात्मिक शक्ति है जो अपनी मागो को पूरी कराये बिना नहीं मानती और जो बडी क्रियाशील, अग्रसर और तेजस्विनी है। लोगो को स्थिति का यह नयापन समझने में काफी अरसा लगा कि यदि सरकार-द्वारा किया गया जलियांवाला-बाग-हत्याकाण्ड सत्याग्रह जैसे देश-व्यापी आन्दोलन उत्पन्न कर सकता है, तो जनता-द्वारा किया गया चौरी-चौरा-हत्याकाण्ड इस सत्याग्रह को रोक भी सकता है। वास्तव में सत्याग्रह मनुष्य को अबतक ज्ञात सारे सद्गुणो का समुदाय है, क्योंकि सत्य इन सद्गुणों का मुख्य स्रोत है और अहिंसा या प्रेम उसका सरक्षक-आच्छादन है। इस प्रकार देश बिल्कुल ही नये दृष्टि-बिन्दुओ के ससार में जा कूदा जिसमें घृणा और कुत्सा, भय और कायरता, क्रोध और प्रतिहिंसा का स्थान प्रेम, साहस, धैर्य, आत्म-पीडन और आत्म-शुद्धि ने ले लिया था, जिसमे सम्पदा सेवा के आगे सिर झुकाती है, और जिसमें शत्रु पर विजय प्राप्त नही की जाती, बल्कि उसके विचार और भाव को अपने अनुकूल बनाया जाता है।

हमें शिक्षा दी जाती है कि भय-केन्द्र स्वय हमी हैं और भय हमारे आस-पास घूमता रहता है। यदि हम एकबार भय और स्वार्थपरता को छोड दें तो हम स्वय मृत्यु का आलिंगन करने को तैयार हो जायें। हरेक सत्याग्रही सत्य की खोज करनेवाला है, इसलिए उसे मनुष्य का, सरकार का, समाज का, दरिद्रता का और मृत्यु का भय छोड देना चाहिए। असहयोग उद्देश-सिद्धि के निमित्त आत्म-नियत्रण है, साधना है, इसलिए यह आत्म-त्याग की दीक्षा देने का साधन बन गया है। इस साधन का उपयोग उस विनम्रता की भावना के साथ, जिससे साहस प्राप्त होता है, करना होगा, न कि गर्व की भावना के साथ, जिससे भय उत्पन्न होता है। इस प्रकार आन्दोलन के कर्ता ने आजकल की गर्हित राजनीति को एक ही छलाग मे दिव्य और आध्यात्मिक बना दिया।

हमें आन्दोलन के इन फलितार्थों पर जरा और भी अच्छी तरह विचार करना होगा। इसके द्वारा भारतीय समाज की भित्ति समझने में बडी आसानी होगी। वह भित्ति, जिसे एक सरल सूत्र 'अहिंसा परमो धर्म ' में और एक सीधी-सादी प्रार्थना 'लोका समस्ता सुखिनो भवन्तु' में व्यक्त किया गया है, एक ऐसी प्रबल शक्ति है जो न केवल अपने-आपको मिटा देने की क्षमता ही रखती है बल्कि हरेक को बाइबल के प्रसिद्ध उपदेश के अनुसार उनसे भी प्रेम करने को कहती है जो घृणा करते हो। 'जो तुम्हारे साथ भलाई करे, तुम उसके साथ भलाई करो', एक व्यवहारु सिद्धान्त है। जो व्यक्ति प्रेम करता हो और दयालु-हृदय हो उसके प्रति अहिंसा का आचरण करना केवल

पाशविक या नारकीय प्रवृत्तिवाला व्यक्ति न होने का दावा करता हूं। सत्याग्रह वशिष्ठ या जनक को पराजित करने के लिए नही बनाया गया है। जब लोग निराशा से विह्वल होकर पूछते है कि अग्रेजो के पाशविक बल का मुकाबला अहिंसा कैसे कर सकेगी, तो हम पूछते हैं कि यदि हमारे प्रतिपक्षी पाशविक न होगें तो क्या सत्याग्रह करना व्यर्थ और युद्ध के काम के लिए निकम्मा साबित न होगा? हमारे भीतर पहले से ही जो धारणायें घुस गई है उन्हीके कारण हमें इस प्रकार हताश और विफल होना पडता है। पश्चिम की इस शिक्षा ने कि इस जीवन-सघर्ष मे जो अधिक बलशाली होता है वही जीवित रहता है और दुर्बल का विनाश अनिवार्य है, हमपर इतना गहरा प्रभाव डाला है कि इसके कारण हमारी कुत्सित वासनाये उत्तेजित हो उठी है और हममें गर्व और उसके सगी-साथी वे दुर्गुण उत्पन्न हो गये है जिनसे कायरता और हिंसा की उत्पत्ति होती है।

भारतीय समाज सत्याग्रह की उस भित्ति पर खडा है, जो हमसे ससार त्यागने को तो नही कहती पर साथ ही हममें आत्म-त्याग की प्रवृत्ति जागृत करती है। जहा हमने एकबार सत्य का पीछा पकडा और वासनाओ को कुचला और आत्म-शुद्धि की, कि सेवा-भाव और विनम्रता की भावना अवश्यमेव उत्पन्न होगी। जहा हमने क्रोध पर विजय पाई और क्षमाशीलता से काम लिया, कि मानवी सम्बन्धो के निर्णायक का आसन अहिंसा स्वय ही ग्रहण कर लेगी।

सब-कुछ कह चुकने के बाद भी अहिंसा के सम्बन्ध में यह सशय बाकी रह जाता है कि राजनैतिक झगडो का फैसला करने में इसकी कितनी उपयुक्तता या कितनी शक्ति है? इस प्रकार का सदेह करनेवालो के विरुद्ध एक तर्क यह है कि जैसी हमारी परिस्थिति है उसको देखते हुए जहा अहिंसा जीवन के सिद्धान्त-रूप से अकाट्य है तहा नीति-रूप मे भी अजेय और असदिग्ध है। यदि अहिंसा के सिद्धान्त का पालन करने की शपथ न ली जाय और उसका यथावत् पालन न किया जाय तो भारतवासियो-जैसे विशाल विजित जन-समूह में जीवन उत्पन्न करना असम्भव हो जाय। ऐसे लोग मौजूद है जो यह कहेंगे कि अहिंसात्मक असहयोग असफल हुआ, पर एक ही छलाग में सफलता प्राप्त करने का, विशेषकर उस अवस्था में जब इस नवीन आन्दोलन को अपनाने में जन-समूह ने विलम्ब दिखाया है, किसीने बीडा भी तो नही उठाया। अहिंसा ही एकमात्र ऐसी स्थायी शक्ति है जो दोनो प्रतिद्वद्वियो को शान्ति और सन्तोष प्रदान करती है, क्योकि जहा हमने हिंसा को एकबार निर्णायक के आसन पर बैठा दिया, कि फिर इस अस्त्र का उपयोग, जैसा कि कहा जा चुका है, विजित और विजेता दोनो के द्वारा

किया जा सकता है। बस, इसके बाद हिंसा और प्रतिहिंसा का नाशक चक्र चलता ही रहता है।

३

राष्ट्र का पुरुषत्व

लाखों पुरुषों, स्त्रियों और बालकों पर गांधीजी के इस स्थायी प्रभाव का क्या कारण है? उनका जन्म ऐसे युग में हुआ जिसमें राजनैतिक हलचल का ही नहीं, राजनैतिक अव्यवस्था और गोलमाल का दौरदौरा है। जैसा कि लॉवेल ने कहा है—"ऐसा प्रतीत होता है मानो ईश्वर की यही इच्छा हो कि समय-समय पर व्यक्तियों के पुरुषत्व की भांति ही राष्ट्रों के पुरुषत्व की भी परीक्षा भारी संकटों या भारी अवसरों द्वारा होती रहे। यदि पुरुषत्व मौजूद हो तो वह भारी संकट को भारी अवसर बना लेता है, और यदि पुरुषत्व मौजूद न हुआ तो भारी अवसर भारी संकट में परिवर्तित हो जाता है।" गांधीजी ने भी भारी संकट को भारी अवसर बना डाला और ऐसी नई क्रांति का श्रीगणेश कर दिया जो रक्तरंजित नहीं है, जो दूसरों को पीड़ा देने के बजाय स्वयं पीड़ा का आवाहन करती है, जो शत्रु पर विजय प्राप्त करने के स्थान पर उसका मत-परिवर्तन करने की इच्छा रखती है। गांधीजी ने बुलन्द आवाज में घोषित कर दिया है कि जनता को सविनय विद्रोह करने का अधिकार ही नहीं, यह उसका कर्तव्य भी है, पर साथ ही उन्होंने यह भी कह दिया है कि सरकार को भी इस विद्रोहाचरण के लिए लोगों को फांसी पर चढ़ाने का अधिकार है। उन्होंने केवल भारत के दासत्व को मिटा देने का बीड़ा उठाया हो, सो बात नहीं है, वास्तव में उन्होंने सारे संसार से उन सारी व्यवस्थाओं को मिटा देने का बीड़ा उठाया है, जो दासत्व का प्रतिपादन किसी भी रूप में—चाहे वह भौतिक हो, चाहे राजनैतिक या आर्थिक—करनेवाली हो। उन्होंने यह दिखा दिया है कि दूसरों को अपनी प्रजा और दास बनाना नैतिक अन्याय है, राजनैतिक भूल है, और व्यावहारिक दुर्भाग्य है। इसी लक्ष्य को सामने रखकर उन्होंने हमेशा जनता की शुद्ध बुद्धि को उद्बोधित किया, न कि उसके राग-द्वेषों को, उसके सद्‌असद् विवेक को उद्बोधित किया, न कि उसकी स्वार्थपरता या अज्ञान को। उनकी दृष्टि में किसी भी नैतिक बुराई का प्रभाव स्थानिक नहीं रह सकता। उनके अनुसार सत्य और अहिंसा के विरोधी सिद्धान्त देश में शान्ति और समृद्धि उत्पन्न नहीं कर सकते।

अब हमे यह देखना है कि यहा पर जिन लम्बे-चौडे सिद्धान्तो का वर्णन किया गया है उनका प्रयोग हमारी दैनिक राजनीति में कैसा रहा ? इन सिद्धान्तो का प्रयोग पहली वार १९१९ मे अमृतसर-कांग्रेस में हुआ, जवकि गाधीजी ने आग्रह-पूर्वक प्रतिपादन किया कि जनता ने चार अग्रेजो की हत्या करके और नैशनल वैंक की इमारत को और अन्य इमारतो को जलाकर जिस हिंसात्मक मनोवृत्ति का परिचय दिया उसकी अवश्य निन्दा होनी चाहिए। कांग्रेस की विषय-समिति ने इस प्रस्ताव को रात के समय रद कर दिया और गाधीजीने घोषणा की कि मुझे कांग्रेस छोडने के लिए वाध्य होना पडेगा। साधारणत धमकी जिस भाव में समझी जाती है उस भाव में यह धमकी न थी, वल्कि गाधीजी के उस रुख का परिचय देती थी जो उनके सिद्धान्तो के अनुसार अनिवार्य था। दूसरे दिन विषय-समिति ने प्रस्ताव स्वीकार कर तो लिया, पर सकोच-पूर्वक। वस, उसी दिन से गाधीजी ने जनता के कानो में यह डालना शुरू किया कि वास्तव में अहिंसा क्या है। कांग्रेस के नजदीक स्वराज्य का अर्थ यह था कि अग्रेजो को देश से निकाल वाहर कर दिया जाय, पर गाधीजी ने उसे वताया कि नागरिक की हैसियत से अग्रेज भारत में शौक से आ सकते है, और रह सकते है, और विदेशियो का वाल भी वाका न होना चाहिए। अव राष्ट्र को कसौटी पर कसा गया, और चौरी-चौरा में राष्ट्र पूरा न उतरा। पर तो भी कांग्रेस हताश न हुई। जव आन्दोलन वद किया गया तो प्रभावशाली व्यक्तियो ने उच्च स्वर से विरोध किया। पर गाधीजी अचल थे। सत्याग्रही को न शत्रु का भय है, न मित्र का, न सहयोगी का ही भय है। उसे तो केवल सत्य का भय है। फलत गाधीजी ने मानो आन्दोलन को लगभग छ वर्ष के लिए स्थगित कर दिया। वाद को जो घटनायें हुई वे जानी-वूझी है और उनसे सत्याग्रह की शक्ति अच्छी तरह प्रकट होती है। वैसे वे घटानायें पुराने कथानक की भाति या दिन के स्वप्न के जल्दी-जल्दी वदलते हुए दृष्यो की भाति प्रतीत होगी, पर वास्तव में है वे सत्याग्रह की दिव्य शिक्षाओ का प्रकृत रूप मात्र।

पिछले पचास वर्षो में हमारी जो प्रगति हुई है उसका नकशा अपने उतार-चढाव को स्वय प्रकट करता है। इस प्रगति को चक्करदार रास्ते की प्रगति कहना ठीक होगा। हम घूम-फिरकर वरावर उसी कार्यक्रम पर आजाते है—अर्थात् १९०६ का स्वदेशी, वहिष्कार, राष्ट्रीय-शिक्षा और स्वराज्य का कार्यक्रम। इस कार्यक्रम को १९१७ में दुहराया गया, किन्तु ऊँचे अर्थात् निष्क्रिय-प्रतिरोध के दर्जे पर। १९१९-२१ में इसे फिर दुहराया गया। इस वार यह और भी ऊँचे दर्जे पर—सविनय-अवज्ञा के दर्जे पर—जा पहुँचा था। इसके वाद १९३०-३४ का आन्दोलन आया। इस वार

यह और भी ऊँचे—सत्याग्रह के—दर्जे पर आ पहुँचा। हमारी चढाई एक ऐसी पहाडी रेल की चढाई की तरह है जो तोड़-मरोड को तय करती हुई, कभी नीचे जाती और कभी ऊँची उठती हुई, अन्त में पूरी ऊँचाई पर जा पहुँचती है। इस चढाई में कभी प्रयत्न-पूर्वक ऊपर चढना पडता है, और कभी आसानी के साथ नीचे को जाना पडता है। इसी प्रकार सत्याग्रह आन्दोलन के दौरान में कभी जोर-शोर से युद्ध हुआ, और बीच-बीच में कौंसिल का काम भी हाथ में लिया गया—कौंसिल का काम भी एक युद्ध ही है, पर उतना कठोर नही। अभी हमें अपनी चढाई के अन्तिम शिखर 'स्वराज्य' तक पहुँचना है।

पर यदि लॉर्ड अर्विन की भाषा को, जो उन्होने १९३१ में सन्धि से पहले इस्तेमाल की थी, व्यवहार में लाकर कहा जाय कि स्वराज्य परिणाम नही उपाय-मात्र है, फल नही प्रयत्न-मात्र है, गन्तव्य स्थान नही दिशा मात्र है, तो उस कारीगर से, जो अभी नीव ही को ठोक-पीटकर ठीक कर रहा है, यह पूछने का किसी को अधिकार नही है कि प्रासाद बनकर अभीतक तैयार क्यो नही हुआ? मामूली ईंट-चूने की नीव को भी बनाकर तैयार, पक्का और ठोस होने के लिए एक या दो वर्षों के लिए छोड दिया जाता है, फिर स्वराज्य की नीव को तो पोख्ता होने के लिए न जाने कितने दिनो तक छोड देना होगा, जिससे वह अपने ऊपर बननेवाली इमारत के बोझ को सहन कर सके।

इन अनेक वर्षों में जिस प्रकार सघर्ष जारी रहा उसका वर्णन हमने कर दिया है। पर हमारा मार्ग सामने स्पष्ट है। हमें घर को हुनर और कारीगरी का केन्द्र, और ग्राम को भारत की राष्ट्रीयता का केन्द्र बना देना होगा, और इन दोनो को यथासभव आत्म-सन्तुष्ट और आत्म-परिपूर्ण बनाना होगा। हमें अपने राष्ट्र के निर्माण में समानता को नीव बनाना होगा, स्वतन्त्रता को शिखर बनाना होगा और भ्रातृभाव को पारस्परिक सामजस्य स्थापित करनेवाले सीमेंट का रूप देना होगा। यह समानता न वह समानता होगी जिसमें भेद-भाव और फूट दिखाई पडती हो, और न वह समानता होगी जिसमें चारो ओर लम्बी-लम्बी घास-फूस उगी हुई होगी और छोटे-छोटे शाहबलूद के दरख्त दिखाई देते होगे, जिसमें एक-दूसरे को दुर्बल करनेवाला द्वेष दिखाई देता होगा। पर वह समानता ऐसी होगी जिसमें नागरिकता की दृष्टि से सारी रुचियो को विकास का एकसमान अवसर दिया जायगा, जिसमें राजनैतिक दृष्टि से सारी रायो का समान-मूल्य होगा, जिसमें धार्मिक दृष्टि से सारे धार्मिक विश्वासो को समान अधिकार मिलेगा। इस प्रकार सार्वजनिक कार्यों के लिए बहुत बडा क्षेत्र मौजूद

है और 'चाहिए' और 'है' में सामजस्य स्थापित करने के लिए सामूहिक शक्ति लगी हुई है, जिससे प्रयत्न और आनन्द में और आवश्यकता और पूर्ति में समानता स्थापित की जा सके। सक्षेप में, हमें इस पुरातन सामाजिक ढाचे में से, उन लोगो के लाभ के लिए जो कष्ट पा रहे है और उनके लिए जो अज्ञानी है, अपने घरो के लिए अधिक प्रकाश और उन घरो में रहनेवालो के लिए अधिक आराम प्राप्त करना होगा। काग्रेस ने सारे मानवी कर्तव्यो में से इसे प्रमुख स्थान दिया है और सारी राजनैतिक आवश्यकताओ में इसे सबसे अधिक आवश्यक माना है। इसलिए काग्रेस ने सब उपयोग के हेतु इन दो सम्पत्तियो की गारण्टी दी है, जिनका उत्तराधिकार प्रत्येक युवक को अपने जीवन में प्राप्त होता है—अर्थात् वह परिश्रम जो उसे स्वतन्त्र बनाता है, और वह विचार जो उसे चरित्रवान् बनाता है।

इस प्रकार काग्रेस-स्रोत, जिसका साधारण आरम्भ १८८५ में बम्बई में हुआ था, आधी शताब्दी से बहता आ रहा है। कभी यह सकीर्ण-स्रोत का रूप धारण कर लेता है, कभी विशाल नदी का। यह स्रोत कही जगलो को पार करता है, कही पहाडियो और घाटियो में से होकर गुजरता है। कही यह एक स्थान पर एकत्र होकर शान्त और निश्चल रूप धारण कर लेता है, और कभी जोर-शोर से प्रबल वेग के साथ वह निकलता है। पर इसका आकार बढता जा रहा है, और प्रतिवर्ष नित्य नये विचारो और नये आदेशो के द्वारा इसके जल में बराबर वृद्धि होती जा रही है। इस प्रकार यह स्रोत पूर्ण आस्था के साथ अपने उस अन्तिम लक्ष्य की प्रतीक्षा कर रहा है जब इसकी पवित्र राष्ट्रीय सस्कृति अन्त में अन्तर्राष्ट्रीयता और विश्व-बन्धुत्व की विस्तृत और विशाल सस्कृति में जा मिलेगी।

परिशिष्ट १

'१९' का आवेदन-पत्र

[महायुद्ध के बाद के सुधारो के सम्बन्ध मे शाही कौंसिल के १९ अतिरिक्त सदस्यो ने वाइसराय को जो आवेदनपत्र दिया था उसे हम नीचे देते हैं। उक्त कौंसिल के २७ गैर-सरकारी सदस्यो में से २ अधगोरो की रायें नही ली गई थी, जिसके कारण सबको मालूम हैं; ३ मौजूद नही थे, और ३ हिन्दुस्तानियो ने उसपर हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया था। उनके नाम नवाब सैयद नवाबअली चौधरी, मि० अब्दुर्रहीम और सरदार ब० सुन्दरसिंह मजीठिया हैं।]

इसमें कोई सन्देह नही है कि महायुद्ध के अन्त में सारे सभ्य ससार में, मुख्यत ब्रिटिश-साम्राज्य में, जो दुनिया के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो में न्याय और मनुष्यता की रक्षा के लिए कमजोर और छोटे राष्ट्रो के बचाव के इस सघर्ष में पडा है और अपना कीमती धन-जन लगा रहा है, शासन-सम्बन्धी आदर्श बहुत आगे बढ जायँगे। भारतवर्ष ने भी इस सघर्ष में भाग लिया है, इसलिए वह भी स्थितियो के सुधार के लिए जो परिवर्तन की नई भावना जागृत होगी उससे प्रभावित हुए बिना न रहेगा। इस देश में यह आशा की जा रही है कि युद्ध के बाद भारतीय शासन की समस्या को नये दृष्टिकोण से देखा जायगा। हिन्दुस्तान के लोग इंग्लैण्ड के इसलिए कृतज्ञ हैं कि हिन्दुस्तान ने अंग्रेजी शासन-काल में भौतिक साधनो में बडी उन्नति की है और अपने बौद्धिक और राजनैतिक दृष्टिकोण को विस्तृत किया है। उसने अपने राष्ट्रीय जीवन में, जिसकी शुरुआत १८३३ के भारतीय-चार्टर-एक्ट से होती है, लगातार (हालांकि वह धीमा है) विकास किया है। १९०९ तक भारतवर्ष का शासन एक नौकरशाही-वर्ग-द्वारा चलाया जाता था जिसमें करीब-करीब सभी गैर-हिन्दुस्तानी थे और जन-साधारण के प्रति जवाबदेह न थे। १९०९ के सुधारो से प्रथम बार भारतवर्ष के राजकाजी मामलो में भारतवासियो को कुछ स्थान मिला, किन्तु उनकी सख्या बहुत थोडी थी। तब भी भारतवासियो ने, उन्हें सरकार की भारतवासियो को भारतीय साम्राज्य के अन्दरूनी सलाहकारो में प्रविष्ट करने की इच्छा का सूचक समझकर, स्वीकार कर लिया था। कौंसिलो में बहस और सवाल-जवाब की अधिक सुविधायें

देकर गैर-सरकारी सदस्यो की सख्या-भर बढा दी गई थी। बडी कौंसिल में पूर्णत सरकारी बहुमत रहा और प्रान्तीय कौंसिलो में, जिनमें गैर-सरकारी सदस्यो का बहुमत होने दिया गया था, बहुमत में सरकार-द्वारा नामजद सदस्य और यूरोपियन सदस्य भी शामिल थे। जिन कार्रवाइयो का अधिकतर लोगो पर असर होता, चाहे वे कानून बनाने के सम्बन्ध में होती चाहे कर लगाने के सम्बन्ध में, यूरोपियनो पर उनका सीधा कोई असर न होने से, उनमें यूरोपियन सदस्य स्वभावत सरकार का ही समर्थन करते और नामजद-सदस्य भी सरकार-द्वारा नियुक्त किये जाने के कारण वही पक्ष लेने की ओर झुकते थे। पिछला अनुभव बतलाता है कि भिन्न-भिन्न अवसरो पर वास्तव में यही घटित हुआ है। इसलिए प्रान्तीय-कौंसिलो के गैर-सरकारी बहुमत बहुत ही धोखे-भरे साबित हुए हैं। उनसे जन-पक्ष के प्रतिनिधियो के हाथ में कोई वास्तविक शक्ति नही आई है। वर्तमान समय में बडी कौंसिल और प्रान्तीय-कौंसिलें केवल सलाह देनेवाले मण्डलो के सिवा और कुछ नही हैं। उन्हें ऐसा कोई हक हासिल नही है जिससे केन्द्रीय और प्रान्तीय-शासन पर उनका कोई वास्तविक नियत्रण हो। जनता और जनता के प्रतिनिधि व्यावहारिक रूप में देश के शासन से इतने कम सम्बन्धित हैं जितने वे सुधारो से पहले थे। केवल कार्य-कारिणी में कुछ हिन्दुस्तानी सदस्य रक्खे जाते हैं, किन्तु वे भी पूर्णत सरकार-द्वारा ही नामजद किये जाते है। जनता का उनके चुनाव में कोई मत नही होता।

१९०९ के सुधारो को देने में सरकार की दृष्टि में जो उद्देश था वह (१-४-१९०९ के) 'इण्डियन कौंसिल्स बिल' के दूसरे वाचन के समय कामन-सभा में प्रधान-मन्त्री द्वारा दी हुई वक्तृता से व्यक्त होता है। उन्होने कहा था कि वर्तमान स्थितियो में हिन्दुस्तानियो को यह महसूस होने देना अत्यन्त वाञ्छनीय है कि ये कौंसिलें महज ऐसे यन्त्र नही है जिनके तार अप्रकट रूप से सरकारी शासको-द्वारा खींचे जाते हो। परन्तु हम विनम्र भाव मे कहते हैं कि यह उद्देश पूरा नही हुआ है। कौंसिलो और कार्य-कारिणी की रचना के इस प्रश्न के अलावा भी लोगो को खास-खास भारी कानूनी बाधायें भुगतनी पड रही है जो उनकी शक्तियो को सार्थक बनाने के बजाय व्यर्थ कर देती हैं और उनके राष्ट्रीय स्वाभिमान को निश्चत रूप से आघात पहुँचाती हैं। शस्त्र-कानून जो यूरोपियनो और अधगोरो पर लागू नही होता, केवल इस देश के निवासियों पर ही लागू होता है। वे स्वयंसेवक-दलो का सगठन नही कर सकते, स्वयसेवक-दलों में शामिल नही हो सकते, और वे फौज के कमीशन-प्राप्त पदो पर भी नही जा सकते। ये कानूनी बाधायें हिन्दुस्तानियो के लिए हैं जो दु खदाई और भेदभाव-पूर्ण हैं। यदि

वे केवल रुकावट ही होती तो भी कम बुराई न थी। शस्त्र रखने और उन्हें प्रयोग में लाने की इन रुकावटो और मनाइयो ने तो हिन्दुस्तान के लोगो को नामर्द बना दिया है। उनपर कभी भी भारी खतरा आ सकता है। हिन्दुस्तान में हिन्दुस्तानियो की स्थिति वास्तव में यह है कि देश के शासन में उनका कोई असली भाग नही है। उन्हें ऐसी भारी-भारी और दुखदायी कानूनी-बाधाओ के नीचे रक्खा गया है जिनसे साम्राज्य के दूसरे सदस्य बरी है। उन्होने हमे बिलकुल बेबसी की हालत में ला खडा किया है। इसके सिवा शर्तबन्दी-कुली-प्रथा से दूसरे अग्रेजी उपनिवेशो और बाहरी देशो का यह खयाल होता है कि सारे भारतवासी शर्त-बन्द-कुलियो जैसे ही है। वे गुलामो की तरह हिकारत की नजर से देखे जाते है। मौजूदा हालते हिन्दुस्तानियो को अनुभव कराती है कि यद्यपि वे कहने भर को बादशाह की समान-प्रजा हैं, किन्तु वास्तव में साम्राज्य में उनका रुतबा बहुत छोटा है। दूसरी एशियाई जातिया भी अधिक बुरा नही तो ऐसा ही खयाल भारतवर्ष के और साम्राज्य में उसके दर्जे के सम्बन्ध में रखती हैं। भारतवासियो की यह हीन स्थिति यो भी उनको जलील करनेवाली है, परन्तु यह भारतीय युवको को तो असह्य है जिनकी दृष्टि शिक्षा और विदेश-भ्रमण से जहा, वे स्वतन्त्र जाति से मिले है, विशाल हो गई है। इन कष्टो और बाधाओ के होते हुए लोगो को जिस चीज ने अबतक सम्हाल रक्खा है वह है वह आशा और वह विश्वास, जिसका सचार हमारे सम्राटो और ऊँचे दर्जे के अग्रेज राजनीतिज्ञो-द्वारा समय-समय पर दिये गये न्यायपूर्ण और समान-व्यवहार के वादो और आश्वासनो से हुआ है। इस नाजुक हालत में, जिसमें हम अब गुजर रहे हैं, हिन्दुस्तानी लोगो ने अपने और सरकार के बीच के घरेलू मतभेदो को भुला दिया है और वफादारी के साथ साम्राज्य का साथ दिया। हिन्दुस्तानी सिपाही यूरोप के रण-क्षेत्रो में जाने को उत्सुक थे—किराये की फौजो की तरह से नही बल्कि अग्रेजी साम्राज्य के, जिसे उनकी सेवाओ की आवश्यकता थी, स्वतन्त्र-नागरिको की हैसियत से। भारतीयो का शिक्षित-समुदाय भी चाहता था कि इस जरूरत के वक्त मे इगलैण्ड का साथ दिया जाय। हिन्दुस्तान में, अग्रेजी और हिन्दुस्तानी फौजो के करीब-करीब खाली हो जाने की हालत में भी शान्ति बनी रही। इगलैण्ड के प्रधानमन्त्री ने, हिन्दुस्तानियो ने महायुद्ध मे जो भाग लिया उसके सम्बन्ध में इगलैण्ड-वासियो के विचार प्रकट करते हुए, कहा था कि 'हिन्दुस्तानी एक सयुक्त स्वार्थ और भविष्य के सयुक्त और समान रक्षक हैं।' हिन्दुस्तान अपनी वफादारी के लिए कोई पुरस्कार नही मागता, किन्तु यह आशा करने का हक रखता है कि सरकार मे हमारे प्रति जो विश्वास

की कमी है, जिसके कारण हम वर्तमान स्थिति में है, वह भूतकाल की चीज हो जाय और हिन्दुस्तान की स्थिति एक मातहत की-सी न रहे बल्कि मित्र की-सी हो जाय। इससे हिन्दुस्तानी लोगो को विश्वास हो जायगा कि इग्लैण्ड ब्रिटिश-छत्र-छाया मे स्वराज्य प्राप्त करने में हमारा सहायक होने के लिए तैयार और इच्छुक है। वह इस प्रकार अपने उस उदार-कार्य को पूरा करना चाहता है, जिसका जिम्मा उसने अपने ऊपर ले लिया है और जिसका इजहार वह अपने शासको और राजनीतिज्ञो-द्वारा इतनी बार कर चुका है। हम जो-कुछ चाहते है वह केवल अच्छा शासन, योग्यतापूर्ण प्रबन्ध ही नहीं है; हम तो ऐसी सरकार चाहते है जो लोगो के प्रति उत्तरदायी होने के कारण उन्हें स्वीकार भी हो सके। इतना होने पर ही हिन्दुस्तान समझ सकता है कि अंग्रेजो का दृष्टिकोण बदला है।

यदि युद्ध के बाद भी हिन्दुस्तान की स्थिति वास्तव में वही रहे जो पहले थी, उसमें ठोस परिवर्तन कुछ भी न हो, तो उससे देश में निस्सन्देह बडी निराशा और बेइतमिनानी पैदा होगी, और दोनो के इस सम्मिलित सकट में भाग लेने से जो लाभ-दायक असर हुआ है वह तुरन्त गायब हो जायगा। उसके पीछे निराशा में परिणत आशाओ की दु खद स्मृति-भर रह जायगी। हमें विश्वास है कि सरकार भी इस स्थिति को अनुभव कर रही है और देश के शासन में सुधार करने के उपाय सोच रही है। हम अनुभव करते है कि हम इस अवसर पर आदर-पूर्वक सरकार को यह सुझावें कि ये सुधार किन दिशाओ मे हो। हमारी राय में उन्हें इस विषय की तह तक जाना चाहिए और उनसे देश के शासन में लोगो को सच्चा और वास्तविक हिस्सा मिलना चाहिए। शस्त्र रखने और फौज में कमीशन मिलने के सम्बन्ध में उनके सामने जो सन्तापदायी कानूनी बाधायें है वे भी हटा लेनी चाहिएँ, क्योकि उनसे तो लोगो में अविश्वास प्रकट होता है और वे उन्हें हीन और असहाय अवस्था में भी बना रखती है। इस खयाल से हम नीचे लिखी तजवीजो को गौर करने और मजूर करने के लिए पेश करते है —

१ प्रान्तीय और केन्द्रीय सभी कार्यकारिणियो में आधे सदस्य हिन्दुस्तानी हो, कार्यकारिणी में जो यूरोपियन हो वे जहातक हो वहातक इग्लैण्ड के सार्वजनिक जीवन की शिक्षा पाये हुए लोगो में से नामजद किये जायें, ताकि हिंदुस्तान को बाहरी दुनिया के विशाल दृष्टिकोण और अनुभव का लाभ मिल सके। यह बिलकुल आवश्यक नहीं है कि कार्य-कारिणी के सदस्य, चाहे वे हिन्दुस्तानी हो या अग्रेज, अमली शासन का अनुभव रक्खें, क्योकि, जैसा कि इग्लैण्ड के मन्त्रियो के सम्बन्ध में होता है, उन्हें

सभी विभागो के स्थायी अफसरो की सहायता सदा प्राप्त हो सकेगी। हिन्दुस्तानियो के विषय में तो हम साहस-पूर्वक कह सकते है कि उनमें से ऐसे योग्य आदमी काफी सख्या में और हर वक्त मिल सकते है जोकि कार्यकारिणी के सदस्यो के पद बडी अच्छी तरह ले सकते हैं। इस दिशा में हमने देखा है कि सर सत्येन्द्रप्रसन्न सिंह, सर अलीइमाम, स्व० कुवर कृष्णस्वामी ऐयर, सर शम्सुल्हुदा और सर शकरन् नायर जैसे लोगो ने अपने कार्यों का सम्पादन करने मे अपनी शासन-सम्बन्धी उच्च योग्यता का परिचय दिया है। इसके अतिरिक्त सभी लोग यह भी अच्छी तरह जानते हैं कि भिन्न-भिन्न देशी राज्यो के वर्तमान शासको के अतिरिक्त भी, देशी राज्यो ने, जिनमें हिन्दुस्तानियो को अवसर मिला है, सर सालार जग, सर टी० माधवराव, सर शेषाद्रि ऐयर और दी० व० रघुनाथराव जैसे प्रख्यात शासक उत्पन्न किये हैं। उच्च कार्यकारिणी के ३ सदस्यो के सरकारी नौकरो में से चुने जाने के वर्तमान नियम को, तथा प्रान्तीय कौंसिल-सम्बन्धी ऐसे दूसरे नियमो को तोड देना चाहिए। कार्यकारिणी के हिन्दुस्तानी सदस्यो के चुनाव मे जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियो के मत भी लेने चाहिएँ और उसके लिए निर्वाचन का कोई सिद्धान्त स्वीकार कर लेना चाहिए।

२ सभी भारतीय कौंसिलो में निर्वाचित प्रतिनिधियो का सच्चा बहुमत होना चाहिए। हमें विश्वास है कि ये प्रतिनिधि भारतीय जन-साधारण और किसानो के हितो की रक्षा करेंगे, क्योकि वे किसी भी यूरोपियन अफसर की अपेक्षा, जो उनसे कितनी ही सहानुभूति रखता हो, उनके अधिक सम्पर्क में आते हैं। भिन्न-भिन्न कौंसिलो, भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस और मुस्लिम-लीग की कार्रवाइया इस बात का काफी सबूत देती हैं कि हिन्दुस्तान का शिक्षित-वर्ग हिन्दुस्तानी जन-साधारण की भलाई का इच्छुक है और वही उनकी आवश्यकताओ और इच्छाओ से परिचित है। मत देने का अधिकार सीधा लोगो को मिल जाना चाहिए। मुसलमान या हिन्दू जहा अल्पसख्यक हो वहा उन्हें उनकी सख्या-शक्ति और स्थिति का खयाल करके उचित और पर्याप्त प्रतिनिधित्व देना चाहिए।

३ बडी कौंसिल के सदस्यो की पूर्ण सख्या १५० से कम, प्रान्तीय कौंसिलो में बडे प्रान्तो की कौंसिलो के सदस्यो की सख्या १०० से कम और छोटे प्रान्तो की कौंसिलो के सदस्यो की ६० से ७५ तक से कम न होनी चाहिए।

४ भारतवर्ष को आर्थिक स्वतत्रता दी जानी चाहिए और बजट कानून के रूप में पास होना चाहिए।

५ शाही कौंसिल को भारतीय-शासन-सम्बन्धी सभी मामलो में कानून बनाने,

विचार करने और प्रस्ताव पास करने का अधिकार होना चाहिए। प्रान्तीय-शासन के लिए प्रान्तीय-कौंसिलो को भी वैसे ही अधिकार होने चाहिएँ। केवल सेना-सम्बन्धी मामलो, वैदेशिक सम्बन्धो के, युद्ध की घोषणा करने के, समझौता करने के और व्यापारिक सन्धियो के सिवा अन्य सन्धिया करने के अधिकार भारतीय सरकार को न दिये जायँ। सरक्षण के तौर पर कौंसिल-सहित गवर्नर-जनरल को और कौंसिल-सहित गवर्नरो को 'वीटो' करने का अधिकार हो, किन्तु उसका उपयोग निश्चित शर्तों और हदो के भीतर ही किया जाय।

६ भारत-मन्त्री की कौंसिल तोड दी जाय। भारत-मन्त्री की स्थिति भारत-सरकार से सम्बन्ध रखने मे, जहातक हो, वैसी ही हो जैसी उपनिवेशो के सम्बन्ध में उपनिवेशो के मन्त्री की होती है। भारत-मन्त्री के सहायक दो स्थायी उपमन्त्री हो, जिनमे से एक हिन्दुस्तानी हो। मन्त्री और दोनो उप-मन्त्रियो के वेतन इग्लैण्ड के खजाने से दिये जायँ।

७ साम्राज्य-सघ की जो भी कोई योजना बनाई जाय, उसमें भारतवर्ष को वही स्थान प्राप्त हो जो अपना शासन स्वय करनेवाले दूसरे उपनिवेशो को प्राप्त है, और वह उसके लिए अपने प्रतिनिधि भी स्वय चुन सके।

८ प्रान्तीय सरकारो को, जैसी २५ अगस्त १९११ के भारत-सरकार के खरीते मे वर्णित है वैसी स्वतन्त्रता प्रान्तीय प्रबन्ध में दे दी जाय।

९ सयुक्त-प्रान्त तथा इतने बडे-बडे अन्य प्रान्तो के गवर्नर ब्रिटेन से लाये जायँ और उनकी कार्यकारिणी कौंसिलें हो।

१०. स्थानीय स्वराज्य तो पूरा अभी दे देना चाहिए।

११ शस्त्र रखने का अधिकार हिन्दुस्तानियो को उन्ही शर्तो पर दे देना चाहिए जिन शर्तों पर यूरोपियनो को दिया हुआ है।

१२ हिन्दुस्तान में जो सगठित प्रादेशिक सेना (Territorial Army) है उसमे स्वयसेवको और सिपाहियो के रूप में भर्ती होने की हिन्दुस्तानियो को छूट होनी चाहिए।

१३. जिन शर्तो पर फौज में यूरोपियनो को कमीशन (ऊँची अफसरी) मिलती है उन्ही पर हिन्दुस्तानी नौजवानो को भी मिलनी चाहिए।

मणिचन्द्र नन्दी, कासिमबाजार	इब्राहीम रहीमतुल्ला
डी० ई० वाचा	वी० नरसिंहेश्वर शर्म्मा
भूपेन्द्रनाथ वसु	मीर असदअली

विष्णुदत्त शुक्ल
मदनमोहन मालवीय
के० वी० रंगस्वामी आयंगर
मजहरुल हक
वी० एस० श्रीनिवासन्
तेजबहादुर सप्रू
कामिनीकुमारी चन्दा
कृष्णसहाय
आर० एन० भंजदेव, कनिक्का
एम० बी० दादाभाई
सीतानाथ राय
मुहम्मद अली मुहम्मद
एम० ए० जिन्नाह

परिशिष्ट २

कांग्रेस-लीग-योजना

प्रस्ताव

"(क) इस बात का ध्यान रखते हुए कि भारतवर्ष की बडी-बडी जातियां प्राचीन सभ्यता की उत्तराधिकारिणी हैं, वे शासन के काम में बडी योग्यता प्रकट कर चुकी हैं, और अंग्रेजी शासन की एक शताब्दी के भीतर उन्होंने शिक्षा में उन्नति और सार्वजनिक कामों में रुचि प्रकट की है, और साथ ही इस बात का ध्यान रखते हुए कि वर्तमान शासन-पद्धति प्रजा की उचित आकांक्षाओं को सन्तुष्ट नही करती और वर्तमान अवस्था और आवश्यकताओं के लिए उपयुक्त नही है, कांग्रेस की राय है कि अब वह समय आ गया है जबकि श्रीमान् सम्राट् इस प्रकार का घोषणा-पत्र निकालने की कृपा करें कि अंग्रेजी-शासन-नीति का यह उद्देश और लक्ष्य है कि वह शीघ्र ही हिन्दुस्तान को स्वराज्य प्रदान करे।

(ख) यह कांग्रेस (सरकार से) मतालबा करती है कि महासमिति ने भारतीय मुस्लिम-लीग-द्वारा नियुक्त सुधार-समिति की सहयोगिता से शासन-सुधार की जो योजना तैयार की है (जोकि नीचे दी जाती है) उसको मंजूर कर स्वराज्य की ओर एक दृढ कदम बढाया जाय।

(ग) साम्राज्य के पुनस्सगठन में भारतवर्ष पराधीनता की अवस्था से ऊपर उठाया जाकर आत्म-शासित उपनिवेशो की भाति साम्राज्य के कामो में बराबर का हिस्सेदार बनाया जाय।"

सुधार-योजना

१—प्रान्तीय कौंसिलें

१. प्रान्तीय कौंसिलो में चार-पचमाश निर्वाचित और एक-पचमाश नामजद-सदस्य रहेंगे।

२ उनके सदस्यो की सख्या बडे प्रान्तो में १२५ और छोटे प्रान्तो में ५० से ५७ तक से कम न होगी।

३ कौंसिलो के सदस्य प्रत्यक्ष रूप से लोगो के द्वारा ही चुने जावें और मताधिकार जहातक हो सके विस्तृत हो।

४ महत्त्वपूर्ण अल्पसख्यक जातियो के प्रतिनिधित्व का, निर्वाचन के द्वारा, यथेष्ट प्रबन्ध होना चाहिए और प्रान्तीय कौंसिलो के लिए मुसलमानो का प्रतिनिधित्व विशेष निर्वाचन-क्षेत्रो के द्वारा नीचे लिखे अनुपात में होना चाहिए —

पजाब	निर्वाचित	भारतीय	सदस्यो के	५०	प्रतिशत
सयुक्तप्रान्त	"	"	"	३०	"
बगाल	"	"	"	४०	"
बिहार	"	"	"	२५	"
मध्यप्रदेश	"	"	"	१५	"
मदरास	"	"	"	१५	"
बम्बई	"	"	"	एक-तृतीयाश	

किन्तु शर्त यह है कि सिवा उन निर्वाचन-क्षेत्रो के जो विशेष स्वार्थों के प्रतिनिधित्व के लिए बनाये गये हो, कोई भी मुसलमान, भारतीय या प्रान्तीय कौंसिल के लिए, किसी अन्य निर्वाचन में शरीक न हो सकेगा।

यह भी शर्त है कि किसी गैर-सरकारी सदस्य के द्वारा पेश किये गये किसी ऐसे बिल या उसकी किसी धारा या प्रस्ताव के सम्बन्ध में, जिसका एक या दूसरी जाति से सम्बन्ध हो, कोई कार्रवाई न की जायगी, यदि उस जाति के उस विशेष भारतीय या प्रान्तीय कौंसिल के तीन-चतुर्थांश सदस्य उस बिल या उसकी धारा या प्रस्ताव का विरोध करते हो। वह बिल या उसकी धारा, या (वह) प्रस्ताव किसी विशेष जाति

से सम्बन्ध रखता है या नहीं—इसका निर्णय उस कौसिल के उसी जाति वाले सदस्य करेंगे।

५ प्रान्त का मुख्य शासक प्रान्तीय कौसिल का सभापति न हुआ करे, किन्तु कौसिल को ही अपना सभापति चुनने का अधिकार होना चाहिए।

६ अतिरिक्त प्रश्न (किसी मूल प्रश्न के उत्तर से उत्पन्न होनेवाले तात्कालिक प्रश्न) पूछने का अधिकार केवल मूल प्रश्न पूछनेवाले सदस्य को ही न होना चाहिए। किसी भी सदस्य को यह (अतिरिक्त प्रश्न पूछने का) अधिकार होना चाहिए।

७ (क) तटकर, डाक, तार, टकसाल, नमक, अफीम, रेल, स्थल और जल-सेना तथा देशी रियासतो से सरकार को मिलनेवाले करके अतिरिक्त अन्य सब करो की आय प्रान्त की होनी चाहिए।

(ख) (भारतीय और प्रान्तीय सरकारो के बीच) कर की मदो का बटवारा न होना चाहिए। प्रान्तीय-सरकारो से भारत-सरकार को एक निश्चित रकम मिलनी चाहिए। हा, विशेष और अनपेक्षित परिस्थितियो के उत्पन्न होने पर, यदि आवश्यकता हो तो इस रकम में कमी-बेशी की जा सकेगी।

(ग) प्रान्त की भीतरी व्यवस्था के सम्बन्ध में—जिसमे ऋण लेना, कर लगाना या उसमे कमी-बेशी करना और आय-व्यय के चिट्ठे (बजट) पर मत देना शामिल है—कार्रवाई करने का पूरा अधिकार प्रान्तीय कौंसिल को होना चाहिए। खर्च की सब मदो का ब्योरा और कर उगाने के लिए सोचे गये उपाय बिलो में लिख दिये जाने चाहिएँ और इन बिलो को स्वीकृति के लिए प्रान्तीय कौसिल में पेश करना चाहिए।

(घ) प्रान्तीय-सरकारो के अधिकार-क्षेत्र से सम्बन्ध रखनेवाली सभी बातो के सम्बन्ध में जो प्रस्ताव आवे उनपर इस सम्बन्ध मे प्रान्तीय कौसिल ने ही जो नियम बनाये हो उनके अनुसार बहस होने की इजाजत होनी चाहिए।

(ङ) प्रान्तीय-कौंसिल द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव, यदि कौंसिल-सहित गवर्नर-द्वारा रद कर दिया गया हो तो, सरकार पर बाध्य न होगा। लेकिन (कौसिल-सहित गवर्नर-द्वारा) रद किया गया

प्रस्ताव भी यदि कम-से-कम एक वर्ष के बाद फिर (प्रान्तीय) कौंसिल में स्वीकृत हो जाय तो उसे (सरकार के लिए) कार्य-रूप में परिणत करना आवश्यक होगा।

(च) कौंसिल के उपस्थित सदस्यो का कम-से-कम आठवा हिस्सा यदि किसी निश्चित महत्त्वपूर्ण सार्वजनिक विषय पर विचार करने के लिए कौंसिल की बैठक को स्थगित करने के प्रस्ताव का समर्थन करे तो वह प्रस्ताव उपस्थित किया जा सकेगा।

८ कौंसिल के कुल सदस्यो के कम-से-कम आठवें भाग के प्रार्थना करने पर कौंसिल का विशेष अधिवेशन बुलाया जा सकेगा।

९ धन-सम्बन्धी बिल को छोडकर अन्य बिल कौंसिल के द्वारा ही बनाये गये नियमो के अनुसार उसमें पेश हो सकें। उनके पेश किये जाने के लिए सरकार की स्वीकृति की आवश्यकता न हो।

१० प्रान्तीय कौंसिल-द्वारा स्वीकृत बिलो के कानून होने के लिए गवर्नर की स्वीकृति आवश्यक होगी, पर गवर्नर-जनरल (उन्हे) रद कर सकेगा।

११ सदस्यो का कार्य-काल पाच वर्षो का होगा।

२—प्रान्तीय सरकार

१ प्रत्येक प्रान्त का मुख्य शासक एक गवर्नर होगा और वह साधारण तथा इडियन सिविल सर्विस या अन्य स्थायी नौकरियो में से न लिया जायगा।

२. प्रत्येक प्रात में एक कार्य-कारिणी होगी जो गवर्नर के साथ, उस प्रान्त का शासक-मण्डल होगी।

३ साधारण तथा 'सिविल सर्विस' के लोग कार्यकारिणी में नियुक्त न किये जायेंगे।

४. कार्यकारिणी के कम-से-कम आधे सदस्य हिन्दुस्तानी होगे और उनका निर्वाचन प्रान्तीय-कौंसिल के निर्वाचित सदस्यो द्वारा होगा।

५ सदस्यो का कार्यकाल पाच वर्षो का होगा।

३—भारतीय (बड़ी) कौंसिल

१. भारतीय कौंसिल के सदस्यो की सख्या १५० होगी।

२ उसके चार-पचमाश सदस्य निर्वाचित होगे।

३ प्रान्तीय कौंसिलो के लिए मुसलमानो के निर्वाचन-सघ जिस क्रम से बने है उसीके अनुसार भारतीय कौंसिल के लिए मताधिकार का क्षेत्र जहातक हो विस्तृत कर दिया जाय, और भारतीय कौंसिल के लिए सदस्य चुनने का अधिकार प्रान्तीय कौंसिलो के निर्वाचित सदस्यो को भी होना चाहिए।

४ निर्वाचित भारतीय सदस्यो में से एक-तृतीयाश मुसलमान हो और उनका निर्वाचन भिन्न-भिन्न प्रान्तो में अलग मुस्लिम निर्वाचन-क्षेत्रो द्वारा हो। उनकी सख्या का अनुपात (यथासभव) वही हो जो प्रान्तीय कौंसिलो में अलग मुस्लिम-निर्वाचन-क्षेत्रो के द्वारा रक्खा गया है (भाग १ धारा ४ की व्यवस्था देखिए)।

५ कौंसिल का सभापति कौंसिल-द्वारा ही चुना जायगा।

६ अतिरिक्त प्रश्न पूछने का अधिकार केवल मूल प्रश्न पूछनेवाले सदस्यो को ही नही रहेगा, बल्कि किसी भी सदस्य को उसे पूछने का अधिकार होगा।

७ सदस्यो के कम-से-कम आठवें हिस्से के कहने से कौंसिल का विशेष अधिवेशन बुलाया जा सकेगा।

८ धन-सम्बन्धी बिलो को छोड कर अन्य बिल कौंसिल-द्वारा ही बनाये गये नियमो के अनुसार उसमें पेश हो सकें। उनके पेश किये जाने के लिए सरकार की स्वीकृति की आवश्यकता न हो।

९ (भारतीय) कौंसिल द्वारा स्वीकृत बिलो के कानून बनने के लिए गवर्नर जनरल की स्वीकृति आवश्यक होगी।

१० आमदनी के जरिये और खर्च की मदो से सम्बन्ध रखनेवाले समस्त आर्थिक प्रस्तावो का समावेश बिलो के भीतर हो जाना चाहिए और इस प्रकार का प्रत्येक बिल और सारा बजट भारतीय कौंसिल की मजूरी के लिए उसके सामने पेश किया जाना चाहिए।

११ सदस्यों का कार्य-काल पाच वर्षों का होगा।

१२ नीचे लिखे विषयो पर एकमात्र भारतीय कौंसिल का अधिकार होगा —

(क) जिन विषयो के सम्बन्ध में समूचे भारतवर्ष के लिए एक ही प्रकार का कानून बनाना आवश्यक हो।

(ख) ऐसे प्रान्तीय कानून जिनका सम्बन्ध प्रान्तो के पारस्परिक आर्थिक व्यवहार से हो।

(ग) देशी-राज्यों से मिलनेवाले कर को छोड़कर वे सब विषय जो केवल (अखिल) भारतीय कर से सम्बन्ध रखते हैं।

(घ) वे प्रश्न जो केवल समस्त देश-सम्बन्धी व्यय से सम्बन्ध रखते हैं। किन्तु देश के लिए सैनिक व्यय के सम्बन्ध में कौंसिल-द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव कौंसिल-सहित गवर्नर-जनरल पर बाध्य न होंगे।

(ङ) 'टैरिफ' और तटकर में परिवर्तन करने, किसी भी प्रकार का 'सेस' लगाने, उसमें परिवर्तन करने या उसे उठा देने, चलन और बैंकों की प्रचलित प्रणाली में परिवर्तन करने और देश के किसी या सब सहायता पाने योग्य और नये उद्योग धन्धों को (राजकीय) सहायता अथवा 'बाउण्टी' देने का अधिकार।

(च) देश-भर के शासन से सम्बन्ध रखनेवाले सब विषयों पर प्रस्ताव।

१३ (भारतीय) कौंसिल-द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव, यदि कौंसिल-सहित गवर्नर-जनरल-द्वारा रद न कर दिया गया हो तो, सरकार पर बाध्य होगा, लेकिन यदि वह (कौंसिल-सहित गवर्नर-जनरल-द्वारा रद किया हुआ) प्रस्ताव कम-से-कम एक वर्ष के बाद फिर कौंसिल-द्वारा स्वीकृत हो जाय तो (सरकार के लिए) उसे कार्य-रूप में परिणत करना आवश्यक होगा।

१४ उपस्थित सदस्यों का कम-से-कम आठवां हिस्सा यदि किसी निश्चित महत्त्वपूर्ण सार्वजनिक विषय पर विचार करने के लिए (भारतीय कौंसिल की) बैठक को स्थगित करने के प्रस्ताव का समर्थन करे तो वह प्रस्ताव उपस्थित किया जा सकेगा।

१५ यदि सम्राट्, प्रान्तीय अथवा भारतीय कौंसिल-द्वारा स्वीकृत बिल को रद करने के सम्बन्ध में अपने अधिकार का प्रयोग करना चाहें तो (उन्हें) उस बिल के पास होने की तारीख से बारह महीनों के भीतर ही उस (अधिकार) का प्रयोग करना चाहिए, और जिस दिन उक्त बिल के इस प्रकार रद किये जाने की सूचना उससे सम्बन्ध रखनेवाली कौंसिल को दी जायगी उस दिन से वह बिल रद हो जायगा।

१६ भारतीय कौंसिल को भारत-सरकार के सेना-सम्बन्धी विषयों और भारतवर्ष के वैदेशिक और राजनैतिक विषयों के सम्बन्ध में—जिसमें युद्ध छेड़ना, संधि करना और (किसी देश के साथ) सुलह करना शामिल है—हस्तक्षेप करने का अधिकार न रहेगा।

४—भारत सरकार

१. भारतीय शासन का मुख्याधिष्ठाता भारतवर्ष का गवर्नर-जनरल होगा।

२ उसकी एक कार्य-कारिणी होगी, जिसके आधे सदस्य भारतीय होंगे।

३ (कार्यकारिणी के) भारतीय सदस्य भारतीय कौंसिल के निर्वाचित सदस्यो द्वारा चुन जायेंगे।

४ 'इण्डियन सिविल सर्विस' के लोग आम तौर पर गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी के सदस्य नहीं बनाये जायेंगे।

५ 'इम्पीरियल सिविल सर्विस' में कर्मचारियो को नियुक्त करने का अधिकार इस (नई) व्यवस्था के अनुसार बनी हुई भारत-सरकार को होगा। इसमें वर्तमान कर्मचारियो के हित का यथेष्ट ध्यान रक्खा जायगा और भारतीय कौंसिलो-द्वारा बनाये गये नियमों की पूरी पाबन्दी की जायगी।

६ भारत-सरकार साधारणतया किसी प्रान्त के स्थानीय मामलो मे हस्तक्षेप न करेगी, और जो अधिकार स्पष्ट रूप से प्रान्तीय-सरकार को न दिये गये होंगे वे भारत सरकार के समझे जायेंगे। प्रान्तीय-सरकारो पर भारत-सरकार का अधिकार साधारणतया निरीक्षण आदि के कार्यों तक सीमित रहेगा।

७ कानून और शासन-सम्बन्धी विषयों में इस (नई) योजना के अनुसार बनी हुई भारत-सरकार, भारत-मंत्री से, यथा-सम्भव स्वतन्त्र रहेगी।

८ भारत-सरकार के हिसाब की स्वतंत्र जाँच की प्रणाली चलाई जानी चाहिए।

५—कौंसिल-सहित भारत-मंत्री

१ भारत-मंत्री की कौंसिल तोड दी जानी चाहिए।

२. भारत-मंत्री का वेतन ब्रिटिश-कोष से दिया जाना चाहिए।

३ भारतीय-शासन के सम्बन्ध में भारत-मंत्री की स्थिति यथासम्भव वही होनी चाहिए जो स्वराज्यप्राप्त उपनिवेशो के शासन के सम्बन्ध में उपनिवेश-मंत्री की है।

४. भारत-मंत्री की सहायता के लिए दो स्थायी 'अण्डर-सेक्रेटरी' होने चाहिएँ, जिनमें से एक हमेशा हिन्दुस्तानी ही होना चाहिए।

६—भारतवर्ष और साम्राज्य

१ साम्राज्य-सम्बन्धी मामलो का फैसला करने या उनपर नियन्त्रण रखने के

लिए जो कौंसिल या दूसरी संस्था बनाई या संयोजित की जाय उसमें उपनिवेशो के ही समान भारतवर्ष के भी पर्याप्त प्रतिनिधि होने चाहिएँ और इन (भारतीय प्रतिनिधियो) के अधिकार भी उपनिवेशो के प्रतिनिधियो के बराबर ही होने चाहिएँ।

२ नागरिकता के पद और अधिकारो के सम्बन्ध में समस्त साम्राज्य में भारतीयो का दर्जा सम्राट् की अन्य प्रजा की बराबरी का होना चाहिए।

७—सेना-सम्बन्धी तथा अन्य विषय

१ स्थल और जल-सेना की 'कमीशण्ड' और 'नॉन-कमीशण्ड' दोनो ही प्रकार की नौकरियां भारतवासियो के लिए खुली रहनी चाहिएँ और उनके लिए चुनाव करने व शिक्षा देने का यथेष्ट प्रबन्ध भारतवर्ष में कर दिया जाना चाहिए।

२ भारतवासियो को (सैनिक) स्वयंसेवक बनाने का अधिकार मिलना चाहिए।

३ भारतवर्ष में शासन-सम्बन्धी कार्यों में लगे हुए कर्मचारियो को न्याय-सम्बन्धी अधिकार नही दिये जायँगे, और प्रत्येक प्रान्त के समस्त न्यायालय उस प्रान्त के सबसे बडे न्यायालय के अधीन रक्खे जायँगे।

परिशिष्ट ३

फरीदपुर के प्रस्ताव

१. भारत के भावी शासन-विधान में प्रतिनिधित्व का आधार बालिग-मताधिकार के साथ संयुक्त-निर्वाचन होना चाहिए।

२. (अ) बालिग-मताधिकार के साथ, संघीय (बडी) तथा प्रान्तीय कौंसिलो में उन्हीं अल्प-संख्यक जातियो के लिए स्थान सुरक्षित होने चाहिएँ जिनकी संख्या २५% से कम हो। ये स्थान जन-संख्या के आधार पर निश्चित होने चाहिए और (अल्पसंख्यक जाति-वालो को अपनी निश्चित जगहो के) अतिरिक्त जगहो के लिए खडे होने का अधिकार भी रहे।

(ब) जिन प्रान्तो में मुसलमानो की संख्या २५% से कम हो वहां उनके लिए

जन-सख्या के आधार पर स्थान रक्षित किये जायँगे और उनसे अतिरिक्त स्थानो के लिए उम्मीदवार होने का भी उन्हें हक रहेगा, लेकिन अगर अन्य जातियो को उनकी सख्या के अनुपात से अधिक स्थान दिये गये तो मुसलमानो के साथ भी वैसा ही व्यवहार किया जायगा और, उस हालत मे, जो रिआयत उन्हें इस समय मिली हुई है वह कायम रहेगी।

(स) अगर बालिग-मताधिकार न हुआ, या मताधिकार को ऐसा विस्तृत न किया गया जिससे जन-सख्या के अनुपात का चुनाव पर असर पड सके, तो पजाब व बगाल में मुसलमानो के लिए स्थान रक्षित किये जायँगे। और यह क्रम उस वक्त तक जारी रहेगा जबतक कि बालिग-मताधिकार न हो, या मताधिकार को ऐसा विस्तृत न किया जाय कि उससे चुनाव में जन-सख्या के अनुपात का असर पडने लगे, बशर्ते कि किसी भी दशा में बहुमत अल्पमत या समान-मत मे परिवर्तित न हो जाय।

३ सघीय धारा-सभा की छोटी-बडी हरेक कौंसिल मे मुसलमानो का प्रतिनिधित्व उन सभाओ के सदस्यो की कुल-सख्या का एक-तिहाई रहेगा।

४. सरकारी नौकरियो पर नियुक्ति सरकारी नौकरी-कमीशन के द्वारा होगी, जो उपयुक्तता की कम-से-कम माप की कसौटी पर चुनाव करेगा, लेकिन साथ ही इस बात का भी खयाल रक्खा जायगा कि नौकरियो में हरेक जाति को पर्याप्त हिस्सा मिले, और छोटे-ओहदो पर किसीका एकाधिकार नहीं रहेगा।

५ सघीय तथा प्रान्तीय मन्त्रि-मण्डलो में मुसलमानो के हितो को काफी प्रतिनिधित्व मिले, इसके लिए भिन्न-भिन्न कौंसिलो में सब दल-वालो के सहयोग से कोई ऐसा क्रम निश्चत किया जायगा जो फिर प्रथा का रूप धारण कर ले।

६ सिन्ध को एक स्वतन्त्र प्रान्त बनाया जायगा।

७ सीमा-प्रान्त और बलूचिस्तान में भी ठीक उसी तरह का शासन-प्रबन्ध रहेगा जैसा कि ब्रिटिश-भारत के अन्य प्रान्तो में है या होगा।

८ भारत का भावी शासन-विधान सघात्मक होगा, जिसमे अवशिष्ट अधिकार सघ में शामिल होनेवाले प्रान्तो को रहेंगे।

९ (अ) विधान में मौलिक अधिकारो की भी एक धारा रहेगी, जिनके अनुसार समस्त नागरिको को उनकी सस्कृति, भाषा, लिपि, शिक्षा, धर्म-विश्वास, धर्माचार तथा आर्थिक हितो के सरक्षण का आश्वासन रहेगा।

(ब) विधान में एक स्पष्ट धारा का समावेश करके (नागरिको के) मौलिक अधिकारो और वैयक्तिक कानूनो का वास्तविक रूप से सरक्षण किया जायगा।

(स) जहातक मौलिक अधिकारो से सम्बन्ध है, जबतक सघीय धारा-सभा की हरेक कौंसिल मे तीन-चौथाई सदस्यो के बहुमत की स्वीकृति न मिल जाय, विधान में कोई परिवर्त्तन नही किया जायगा।

वैकल्पिक प्रस्ताव और हल (बिलकुल गुप्त)

भोपाल का हल

१—सर्व-दल-सम्मेलन का हल

(अ) दस वर्ष की समाप्ति पर बालिग-मताधिकार के साथ सयुक्त-निर्वाचन जारी हो, लेकिन इन दस वर्षो मे पहले ही किसी समय यदि किसी सघीय या प्रान्तीय कौंसिल के मुसलमान-सदस्यो का बहुमत सयुक्त-निर्वाचन स्वीकार करने को रजामन्द हो जाय तो उस कौंसिल के लिए पृथक् निर्वाचन की पद्धति रद कर दी जायगी। या

(ब) नये विधान का पहला चुनाव पृथक् निर्वाचन के आधार पर हो और प्रथम धारा-सभाओ के पाचवें साल की शुरुआत में सयुक्त बनाम पृथक् निर्वाचन के प्रश्न पर जन-मत-सग्रह (रेफरेण्डम) किया जाय।

२—राष्ट्रीय-दल की वैकल्पिक योजना

(अ) प्रथम दस वर्ष सयुक्त निर्वाचन रहे और इन वर्षो की समाप्ति पर निर्वाचन के प्रश्न पर जन-मत-सग्रह किया जाय। या

(ब) कौंसिलो में पहली बार मुसलमान-सदस्यो में से आधे सयुक्त-निर्वाचन-द्वारा चुने जायं और आधे पृथक् निर्वाचन-द्वारा। दूसरी बार दो-तिहाई सयुक्त-निर्वाचन-द्वारा चुने जायें, और एक-तिहाई पृथक्-निर्वाचन द्वारा। इसके बाद सयुक्त-निर्वाचन और बालिग-मताधिकार हो।

३—उपर्युक्त प्रस्ताव में कुछ मित्रो के सशोधन

कौंसिलो में पहली बार दो-तिहाई सदस्य (मुसलमान) पृथक् निर्वाचन-द्वारा चुने जायें और एक-तिहाई सयुक्त-निर्वाचन-द्वारा। दूसरी बार आधे-आधे। इसके बाद, सयुक्त-निर्वाचन हो और बालिग-मताधिकार। या

प्रथम पाच वर्ष पृथक् निर्वाचन रहे, पश्चात् पाच वर्ष सयुक्त-निर्वाचन, इसके वाद, नवें वर्ष, दोनो तरह के निर्वाचनो के बारे में देश का निर्णय जानने के लिए जन-मत-सग्रह किया जाय। या

दो-तिहाई प्रतिनिधि पृथक्-निर्वाचन-द्वारा चुने जायँ और एक-तिहाई सयुक्त-निर्वाचन-द्वारा। इसके बाद, पाचवें वर्ष की शुरुआत में, जन-मत सग्रह किया जाय।

४—मौ० शौकतअली का प्रस्ताव

जव सयुक्त-निर्वाचन प्रारम्भ हो, चाहे वह सम्पूर्ण रूप में हो या आशिक रूप में, तो पहले वीस साल के लिए मौ० मुहम्मदअली का हल स्वीकार किया जाय।

५—भोपाल की दूसरी बैठक का प्रस्ताव

प्रथम पाच वर्ष पृथक् निर्वाचन रहे, उसके वाद मौ० मुहम्मदअली के हल के साथ सयुक्त-निर्वाचन हो। मगर किसी भी कौंसिल के मुसलमान सदस्य चाहें तो अपने ६० फीसदी वहुमत से उसे रद कर सकेंगे।

६—शिमला का आखिरी हल

प्रथम दस वर्ष पृथक् निर्वाचन रहे और उसके वाद सयुक्त-निर्वाचन, बशर्ते कि किसी कौंसिल के मुसलमान-सदस्यो का दो-तिहाई वहुमत उसकी शुरुआत का विरोध न करे।

परिशिष्ट ४

कैदियों के वर्गीकरण पर सरकारी आज्ञा-पत्र

जेल-नियमो के सम्वन्ध में भारत-सरकार ने कुछ महत्त्वपूर्ण निर्णय किये है, जो निम्नलिखित वक्तव्य के रूप में प्रकट किये गये है —

"कुछ समय से कुछ वातो में जेल-नियमो में सुधार करने का मामला भारत-सरकार के विचाराधीन रहा है। इस मामले पर प्रान्तीय सरकारो से भी राय ली गई थी। उन्होंने वहुतसे गैर-सरकारी लोगो से परामर्श करके अपने विचार बनाये है।

कुछ महत्त्वपूर्ण बातो पर सरकार ने जो निर्णय किये हैं उनसे सिद्धान्तत भारतवर्ष-भर में लगभग एक-सी स्थिति हो जायगी। वे निर्णय ये है —

सजा पाए हुए कैदियो के तीन वर्ग होगे—ए, बी, सी। 'ए' वर्ग में वे कैदी लिये जायँगे जो (१) पहली बार ही जेल में आये हो और जिनका चाल-चलन अच्छा हो, (२) जो सामाजिक हैसियत, शिक्षा और जीवन-क्रम के कारण ऊँचे दरजे के रहन-सहन के अभ्यस्त हो और (३) जिनको (क) निर्दयता, अनैतिकता या व्यक्तिगत लोभ के किसी अपराध पर, (ख) राजद्रोहात्मक अथवा पूर्व-निश्चित हिंसा में, (ग) सम्पत्ति-सम्बन्धी राजद्रोहात्मक अपराधो पर, (घ) किसी अपराध करने या उसमें सहायता देने की गरज से विस्फोटक पदार्थ, हथियार अथवा अन्य भयकर अस्त्र रखने के अपराध में अथवा (ङ) इन उपधाराओ में समावेश होनेवाले अपराधो को उत्तेजन या सहायता देने मे सजा न मिली हो।

'बी' वर्ग उन कैदियो को दिया जायगा जो सामाजिक हैसियत, शिक्षा या जीवन-क्रम के कारण उच्च रहन-सहन के अभ्यस्त हो। बार-बार जेल में आनेवाले लोग इससे अपने-आप वचित नही रक्खे जायँगे। वर्गीकरण करनेवाले अधिकारियों को ऐसे लोगो को भी इस वर्ग मे रखने का अधिकार होगा। वे उनके चरित्र और पूर्व-इतिहास का खयाल करके निर्णय करेंगे। यह निर्णय प्रान्तीय-सरकार से मान्य कराना होगा, जो उसे बदल भी सकती है।

जो लोग 'ए' और 'बी' वर्गो में नही रक्खे जायँगे उन्हें 'सी' वर्ग मिलेगा।

हाईकोर्ट, दौरा-जज, जिला-मजिस्ट्रेट, वेतन-भोगी प्रेसीडेन्सी मजिस्ट्रेट, सब-डिवीजनल मजिस्ट्रेट और प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट जिन मुकदमो का फैसला करेंगे उनमे उन्हें वर्गीकरण करने का अधिकार होगा। सब-डिवीजनल मजिस्ट्रेटो और प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेटो का किया हुआ वर्गीकरण जिला-मजिस्ट्रेट के मार्फत होगा। 'ए' और 'बी' वर्ग के लिए जिला-मजिस्ट्रेट प्रान्तीय-सरकार से प्रारम्भिक सिफारिश करेगा और प्रान्तीय-सरकार उसका समर्थन या सशोधन करेगी।

भारत-सरकार ने किस प्रकार ये तीन वर्ग मुकर्रर किये हैं और इनका कैदियो के वर्तमान वर्गों पर क्या असर होगा, इसके विषय में कई अन्दाज लगाये है और तरह-तरह की आशकायें प्रकट की गई है। यह साफ तौर से समझ लेना चाहिए कि 'ए' वर्ग के तमाम कैदियो को उस वर्ग की सारी रिआयतें मिलेंगी। जाति के लिहाज से किसी वर्ग के कैदियो को कोई अधिक रिआयत नही दी जायगी। विशेष वर्ग के कैदियो को जो रिआयतें इस समय दी जा रही है वे सब 'ए' वर्ग के कैदियो को दी जाती रहेंगी।

अर्थात् उनके लिए अलग स्थान, आवश्यक फर्नीचर, मिलने-जुलने और व्यायाम की आवश्यक सुविधाये और सफाई, स्नान आदि की अनुकूल व्यवस्था रहेगी।

दूसरी वातो पर नीचे लिखे निश्चय किये गये है —

'ए' और 'वी' वर्ग के लिए 'सी' वर्ग के कैदियो को मिलनेवाली साधारण खूराक से वढिया खूराक दी जायगी। इसका प्रति कैदी मूल्य मुकर्रर कर दिया जायगा और उस मूल्य की सीमा के भीतर खूराक वदलती रह सकेगी। 'ए' और 'वी' वर्ग की इस वढिया खूराक का मूल्य सरकार देगी। वर्तमान नियमो के अनुसार विशेप वर्ग के कैदियो को अपने खर्च से जेल की खूराक के अलावा भी और मगा लेने की इजाजत दी जाती है। यह रिआयत 'ए' वर्ग के कैदियो के लिए भी कायम रहेगी।

विशेष वर्ग के कैदियो को अपने कपडे पहनने की जो रिआयतें मौजूदा नियमो में है वे जारी रहेंगी। यदि 'ए' वर्ग के कैदी सरकार के खर्च से कपडा लेना चाहेंगे तो उन्हे 'वी' वर्ग के कैदियो के लिए नियत कपडे दिये जायँगे। 'वी' वर्ग के कैदी जेल के कपडे पहनेंगे, परन्तु वह कपडा कुछ वातो मे 'सी' वर्ग के कैदियो से अधिक और अच्छा होगा।

'ए' और 'वी' वर्ग के लिए प्रत्येक प्रान्त में अलग जेल का होना वाञ्छनीय है।

यह सिद्धान्त तो पहले से ही व्यवहार में लाया जा रहा है और उसका महत्व अव फिर दोहरा दिया जाता है कि 'ए' और 'वी' वर्ग के कैदियो का काम मुकर्रर करने से पहले उनके स्वास्थ्य, शक्ति, चरित्र, पूर्व-जीवन और इतिहास पर सावधानी से विचार कर लिया जाय।

भारत-सरकार को यह सिद्धान्त स्वीकार है कि शिक्षित और साक्षर कैदियो की वौद्धिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए आवश्यक प्रतिवन्धो के साथ उचित सुविधायें दी जानी चाहिएँ। प्रान्तीय-सरकारो से अनुरोध किया जायगा कि जेल के पुस्तकालयो की हालत की जाच करे और जहा पुस्तकालय नही है अथवा अच्छे नही हैं वहा शीघ्र स्थापित करे या उन्नत करें। जेल-सुपरिण्टेण्डेण्ट की मजूरी से पढे-लिखे कैदी पुस्तकें और मासिक-पत्र वाहर से मँगाकर पढ सकेंगे

अखवार 'ए' वर्ग के कैदियो को उन्ही शर्तों पर दिये जायगे जिनपर वर्तमान विपयो के अनुसार विशेप वर्ग के कैदियो को दिये जाते हैं। अर्थात् विशेप परिस्थिति मे और प्रान्तीय-सरकार की मजूरी से दिये जायगे। साधारणत सभी साक्षर कैदियों को प्रान्तीय-सरकार-द्वारा प्रकाशित जेल-अखवार प्रति सप्ताह मिला करेगा। जहा प्रान्तीय सरकार साप्ताहिक पत्र प्रकाशित नही कर सकेगी वहाके लिए भारत-सरकार

ने यह निश्चय किया है कि 'ए' और 'बी' श्रेणी के कैदियो को प्रान्तीय-सरकार की पसन्द के किसी साप्ताहिक पत्र की कुछ प्रतिया सरकार के खर्च से दी जायें।

'ए' श्रेणी के कैदियो को अबकी भाति एक महीने के बजाय पन्द्रह दिन में एक चिट्ठी लिखने, एक पाने और एक मुलाकात करने की इजाजत होगी। 'बी' वर्ग के कैदियो के लिए भिन्न-भिन्न जेलो के नियमानुसार अभी तो बडी लम्बी-लम्बी अवधिया मुकर्रर है, परन्तु अब उन्हें प्रति मास एक चिट्ठी लिखने, एक पाने और एक मुलाकात करने दी जायगी। यदि कैदियो की मुलाकातो और चिट्ठियो के हालात अखबारो में छपेंगे तो यह रिआयत छीनी भी जा सकेगी या कम की जा सकेगी।

परिशिष्ट ५

हिन्दुस्तानी मिलों के घोषणा-पत्रक

हम घोषणा करते है कि —

१ हम जनता की राष्ट्रीय भावनाओ से पूर्ण सहानुभूति रखते है।

२ कम्पनी की पूजी के कम-से-कम ७५ प्रतिशत हिस्से हिन्दुस्तानियो के है। (इसकी बाबत काग्रेस के अध्यक्ष-द्वारा नामजद की हुई विशेष कमिटी घोषणा-पत्रक के इस अंश के विषय में विशेष-रूप से छूट दे सकती है।)

३ पुराने पदेन (ex-officio) डाइरेक्टरो के सिवा कम-से-कम ६६ प्रतिशत डाइरेक्टर हिन्दुस्तानी है और रहेंगे। (पुराने पदेन डाइरेक्टर अहिन्दुस्तानी होने की दशा में बोर्ड में हिन्दुस्तानी डाइरेक्टरो का बहुमत होना चाहिए।)

४ प्रबन्धक एजेण्टो (मैनेजिंग-एजेण्ट्स) की फर्म में कोई विदेशी स्वार्थ नही है।

५ एजेण्टो की फर्म के हिस्सेदार या फर्म किसी विदेशी बीमा-कम्पनी की मदद नहीं करते और न विदेशी सूत या थान मँगाते है।

६ हम खादी से मिल के कपडे की होड न करके और आन्दोलन से उत्पन्न

स्थिति से, कपडे की कीमत बढाकर या उसे घटिया बनाकर, अपने स्वार्थ के लिए अनुचित लाभ न उठाकर स्वदेशी की उन्नति में सहायक होगे।

७ मिलो के मालिक और प्रबन्धक हिन्दुस्तानी है और प्रबन्ध-विभाग के कर्मचारियो की दृष्टि और 'स्पिरिट' हिन्दुस्तानी है। वे हिन्दुस्तानी हितो की रक्षा के लिए बधे हुए हैं।

उक्त घोषणा-पत्रक के पालन के लिए हम यह करने का जिम्मा लेते है —

१ मिलो के प्रबन्ध से सम्बन्धित कोई भी व्यक्ति राष्ट्रीय आन्दोलन के विरुद्ध किसी भी प्रकार के प्रचार में नही लगेगा और न स्वेच्छा से, ब्रिटिश-सरकार के कहने से या ब्रिटिश-सरकार की ओर से सगठित ऐसे किसी आन्दोलन में भाग ही लेगा।

२ विशेष कारणो के अतिरिक्त कर्मचारियो की भर्ती केवल हिन्दुस्तानियो मे से की जायगी।

३ हम अपनी कम्पनी का बीमे का काम जितना सम्भव होगा उतना हिन्दुस्तानी बीमा-कम्पनियो को देंगे।

४ हम अपना बैंको का काम तथा जहाजो से माल लाने या ले जाने का काम भी जितना सम्भव होगा उतना हिन्दुस्तानी जहाजी-कम्पनियो को देंगे।

५ अबसे हम जहातक सम्भव होगा वहातक आडिटर, वकील, जहाजो पर माल चढवाने तथा जहाजो से माल उतरवानेवाले कारिन्दे, खरीदने और बेचनेवाले दलाल, ठेकेदार और अपनी मिलो के लिए आवश्यक सामान देनेवाले हिन्दुस्तानी ही रक्खेंगे।

६ हम जहातक सम्भव होगा वहातक स्टोर की चीजें देशी खरीदेंगे। केवल वही चीजें विदेशी खरीदेंगे जिनके बिना काम नही चल सकता और जिनके बजाय देशी नही काम आ सकती या मिल सकती। (ऐसी विदेशी चीजो की सूची, जो अनिवार्य है, साथ है।)

७ हम किसी भी प्रकार का विदेशी सूत या विदेशी रेशम, या नकली रेशम या ऐसा सूत जो बहिष्कृत मिलो में काता जाता है, काम में नही लायेंगे।

८ हम उस सूत या कपडे को न धोयेंगे और रगेगे जो विदेशी होगा, या बहिष्कृत मिलो में तैयार किया गया होगा।

९ हम अपनी मिलो में तैयार किये हुए हरेक थान के दोनो सिरो पर अपनी छाप साफ-साफ लगायेंगे और बिना उचित छाप के कोई कपडा बाहर न भेजेंगे।

१० हम अपने किसी भी कपडे को खादी न कहेंगे, न उसपर खादी छापेंगे और न उसे खादी-जैसा बनायेंगे।

११ हम नीचे लिखे प्रकारो के कपडे न बनायेंगे —

कोई कपडा जो बिना धुला हो या धुला हो, ताने और बाने में एक इच में जिसमें एक ऊपर और एक नीचे, इकहरे या दुहरे, सादा बुनावट के १८ से अधिक तार हो। बाने मे चेको की सादा बुनावट भी है। जो बून्ददार या गोल बक्स पर बने हो और दरिया। (१८ तारो में इकहरे या दुहरे सूत शामिल है। उनका नम्बर १८ या कम होता है।)

• किन्तु मिलें, ड्रिल, साटनें, टसरें, जैक्वार्ड मशीन पर बनी टूलें, डौबी नमूनें, रंगीन रुई से बना कपडा, कम्बल और मलीदा बनाने के लिए स्वतन्त्र हैं।

१२ हम अबसे यथाशक्ति अपना खरीद-फरोख्त का काम हिन्दुस्तानी दूकानदारो के साथ करेंगे और उन्ही के द्वारा करायेंगे।

१३ हमारी मिलो के प्रवन्ध से सम्बन्ध रखनेवाले लोग स्वदेशी कपडा पहनेंगे।

कम्पनी का नाम . .

पता .

एजेण्टो या मालिको के नाम.

गैर हिन्दुस्तानी मिलो का घोषणापत्र भी इसी आशय का था। सिर्फ घोषणा का चतुर्थ अश उसमें सम्मिलित न था।

बम्बई-काग्रेस-कमिटी ने भी इसी आशय का घोषणा-पत्र प्रचलित किया था। इसमें बिना बम्बई-काग्रेस-कमिटी से सलाह लिये १० नम्बर से नीचे का कपडा न बुनने, ३१ दिसम्बर १९३० के बाद विदेशी सूत, नकली रेशम या रेशमनुमा सूत का प्रयोग न करने की शर्तो के अलावा निम्नलिखित शर्तें भी थी —

मिलें राष्ट्रीय-आन्दोलन से प्रोत्साहन पाई हुई स्वदेशी की भावना से अपना अनुचित स्वार्थ-साधन न करेंगी और अधिक मुनाफा उठानेवाले दलालो से भी इसकी रक्षा करेंगी। वे स्वदेशी माल खरीदनेवाली जनता को उचित दामो में बेचेंगी।

वे ३१ दिसम्बर १९३० से पहले तक मिलो में जो चीजें इस समय बन रही है उन्हें वर्तमान दामो पर या १२ मार्च १९३० को जो दाम थे उनपर—इनमें से जो भी कम हो उनपर—बेचेंगी।

वे खरीदारो को सूचना देने के लिए प्रचलित किस्मो की बिक्री के दाम, जो समय-समय पर होगे, छपवाकर बँटवाती रहेंगी।

वे समय-समय पर बम्बई प्रान्तीय-काग्रेस-कमिटी के प्रतिनिधियो से मिलेंगी और ऐसे तरीके इस्तेमाल करेंगी जिनपर अधिक मुनाफा खानेवालो को रोकने के लिए और खरीदारो को वाजिब दामो पर लगातार स्वदेशी कपडा दिलाने के लिए दोनो पक्ष राजी होगें।

परिशिष्ट ६

जुलाई-अगस्त १९३० के सन्धि-प्रस्ताव

पत्र-व्यवहार

डेली हैरल्ड के सवाददाता स्लोकोम्ब ने प० मोतीलाल नेहरू से मिलकर सरकार व काग्रेस में सधि कराने की चर्चा की थी। इस बातचीत के परिणामस्वरूप सर सप्रू व मि० जयकर ने जुलाई १९३० मे वाइसराय से परामर्श किया और बातचीत आगे बढाने के लिए गाधीजी, प० मोतीलाल नेहरू व प० जवाहरलाल नेहरू आदि से जेल में मिलने की आज्ञा मागी। वायसराय ने १६ जुलाई के पत्र मे उन्हें उक्त व्यक्तियो से जेल में मिलने की आज्ञा दे दी। इसके बाद सर सप्रू व मि० जयकर म० गाधी से जेल मे मिले और उन्हें अबतक की सारी बातचीत से परिचित किया। महात्माजी ने सधि-चर्चा और गोलमेज कान्फ्रेंस में काग्रेस के भाग ले सकने का आधार क्या होना चाहिये, इस सबध में अपने विचार प्रकट किये और प० मोतीलाल नेहरू व प० जवाहरलाल को पत्र लिखा। गाधीजी की शर्तों से दोनो नेहरूओ ने अपना थोडा बहुत मतभेद तो प्रकट किया, लेकिन उसपर बहुत बल नही दिया। प० जवाहरलाल नेहरू ने तो सरकार की उदासीनता देखकर यह भी लिखा कि सरकार सधि-चर्चा के लिए बिलकुल उत्सुक नही दीखती। कही ऐसा न हो कि हम धोखा खावें। श्री जयकर ३१ जुलाई को फिर गाधीजी से मिले। सब नेता परस्पर विचार कर सकें, इसलिए यरवडा जेल में १४-१५ अगस्त को निम्न व्यक्ति इकट्ठे हुए—म० गाधी, प० मोतीलाल नेहरू,

प० जवाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभभाई पटेल, श्री जयरामदास दौलतराम और श्रीमती नायडू। सर सप्रू व मि० जयकर भी उपस्थित थे। बातचीत के बाद नेताओ ने उक्त दोनों सज्जनो को निम्न पत्र लिखा —

यरवडा सेण्ट्रल जेल
१५—८—३०

प्रिय मित्रगण,

आप लोगो ने ब्रिटिश-सरकार और कांग्रेस में शान्तिपूर्ण समझौता कराने का जो भार अपने ऊपर लिया है, उसके लिए हम लोग आपके बहुत अधिक कृतज्ञ है। आपका वाइसराय के साथ जो पत्र-व्यवहार हुआ है, और आपके साथ हम लोगो की जो बहुत अधिक बातें हुई है, तथा हम लोगो में आपस में जो कुछ परामर्श हुआ है, उस सबका ध्यान रखते हुए हम इस परिणाम पर पहुँचे है कि अभी ऐसे समझौते का समय नही आया है जो हमारे देश के लिए सम्मानपूर्ण हो। पिछले पाच महीनो में देश में जो अद्भुत जागृति हुई है और भिन्न-भिन्न सिद्धान्त तथा मत रखनेवाले लोगो में से छोटे-बडे सभी प्रकार और वर्ग के लोगो ने जो बहुत अधिक कष्ट-सहन किया है, उसे देखते हुए हम लोग यह अनुभव करते है कि न तो वह कष्ट-सहन पर्याप्त ही हुआ है और न वह इतना बडा ही हुआ है कि उससे तुरन्त ही हमारा उद्देश्य सिद्ध हो जाय।

कदाचित् यहा यह बतलाने की कोई आवश्यकता न होगी कि हम आपके अथवा वाइसराय के इस मत से सहमत नही हैं कि सत्याग्रह-आन्दोलन से देश को हानि पहुँची है, अथवा वह आन्दोलन कुसमय में खडा किया गया है, अथवा अवैध है। अंग्रेजो का इतिहास ऐसी-ऐसी रक्तपूर्ण क्रान्तियो के उदाहरणो से भरा पडा है जिनकी प्रशसा के राग गाते हुए अंग्रेज लोग कभी नही थकते, और उन्होंने हम लोगो को भी ऐसा ही करने की शिक्षा दी है। इसलिए जो क्रान्ति विचार की दृष्टि से बिलकुल शान्तिपूर्ण है और जो कार्य-रूप में भी बहुत अधिक मान में और अद्भुत रूप से शान्तिपूर्ण ही है, उनकी निन्दा करना वाइसराय अथवा किसी और समझदार अंग्रेज को शोभा नही देता।

परन्तु जो सरकारी या गैर-सरकारी आदमी वर्तमान सत्याग्रह-आन्दोलन की निन्दा करते है, उनके साथ झगड़ा करने की हमारी कोई इच्छा नही है। हम लोगो का तो यही मत है कि सर्व-साधारण जिस आश्चर्य-जनक रूप से इस आन्दोलन में सम्मिलित हुए है, वही इस बात का यथेष्ट प्रमाण है कि यह उचित और न्यायपूर्ण है। यहा

कहने की बात यही है कि हम लोग भी प्रसन्नता-पूर्वक आपके साथ मिलकर इस बात की कामना करते है कि यदि किसी प्रकार सम्भव हो तो यह सत्याग्रह-आन्दोलन बन्द -कर दिया जाय अथवा स्थगित कर दिया जाय। अपने देश के पुरुषो, स्त्रियो और बच्चो तक को अनावश्यक रूप से ऐसी परिस्थिति में रखना कि उन्हे जेल जाना पडे, लाठिया खानी पडे और इनसे भी बढ-बढकर दुर्दशायें भोगनी पडें, हम लोगो के लिए कभी आनन्ददायक नही हो सकता। इसलिए जब हम आपको और आप के द्वारा वाइसराय को यह विश्वास दिलाते है कि सम्मानपूर्ण शान्ति और समझौते के लिए जितने मार्ग हो सकते हैं उन सबको ढूढकर उनका अवलम्बन करने के लिए हम अपनी ओर से कोई बात न उठा रखेंगे, तो आशा है कि आप हम लोगो की इस बात पर विश्वास करेंगे।

परन्तु फिर भी हम यह मानते हैं कि अभीतक हमें क्षितिज पर ऐसी शान्ति का कोई चिह्न नही दिखाई देता। हमें अभीतक इस बात का कोई लक्षण नही दिखाई पडता कि अंग्रेज सरकारी जगत् का अब यह विचार हो गया है कि स्वय भारतवर्ष के स्त्री-पुरुष ही इस बात का निर्णय कर सकते है कि भारत के लिए सबसे अच्छा काम या मार्ग कौन-सा है? सरकारी कर्मचारियो ने अपने शुभ विचारो की जो निष्ठापूर्ण घोषणायें की है और जिनमे से बहुत-सी घोषणायें प्राय अच्छे उद्देश से की गई है, उनपर हम विश्वास नही करते। इधर मुद्दतो से अंग्रेज इस प्राचीन देश के निवासियो की धन-सम्पत्ति का जो बराबर अपहरण करते आये हैं, उसके कारण उन अंग्रेजो मे अब इतनी शक्ति और योग्यता ही नही रह गई है कि वे यह बात देख सकें कि उनके इस अपहरण के कारण हमारे देश का कितना अधिक नैतिक, आर्थिक और राजनैतिक ह्रास हुआ है। वे अपने-आपको यह देखने के लिए उद्यत ही नहीं कर सकते कि उनके करने का इस समय सबसे बडा एक काम यही है कि वे जो हमारी पीठ पर चढे बैठे हैं, उसपर से वे उतर जायें, और प्राय सौ वर्षों तक भारत पर राज्य रहने के कारण सब प्रकार से हम लोगो का नाश और ह्रास करनेवाली जो प्रणाली चल रही है, उससे वे बाहर निकलकर विकसित होने में हमारी सहायता करें, और अबतक उन्होंने हमारे साथ जो अन्याय किये है, उनका इस रूप मे प्रायश्चित्त कर डालें।

परन्तु हम यह बात जानते है कि आपके तथा हमारे देश के कुछ और विज्ञ लोगो के विचार हमारे इन विचारो से भिन्न है। आप यह विश्वास करते हैं कि शासको के भावो में परिवर्तन हो गया है, और अधिक नही तो कम-से-कम इतना परिवर्तन अवश्य हो गया है कि जिससे हम लोगो को प्रस्तावित परिषद् में जाकर सम्मिलित

होना चाहिए। इसलिए यद्यपि हम इस समय एक विशेष प्रकार के बन्धन में पड़े हुए है, तो भी जहातक हमारे अन्दर शक्ति है वहातक हम इस काम में प्रसन्नतापूर्वक आप लोगो का साथ देगे। हम जिस परिस्थिति में पड़े हुए है, उसे देखते हुए, आपके मित्रता-पूर्ण प्रयत्न में हम अधिक-से-अधिक जिस रूप मे और जिस सीमा तक सहायता दे सकते है, वह इस प्रकार है—

हम यह समझते है कि वाइसराय ने आपके पत्र का जो उत्तर दिया है, उसमें प्रस्तावित परिषद् के सम्बन्ध में जिस भाषा का प्रयोग किया गया है, वह भाषा ऐसी अनिश्चित है कि गत वर्ष लाहौर में जो राष्ट्रीय माग प्रस्तुत की गई थी, उसका ध्यान रखते हुए हम वाइसराय के उस कथन का कोई मूल्य या महत्त्व ही निर्धारित नही कर सकते, और न हमारी स्थिति ही ऐसी है कि कांग्रेस की कार्य-समिति, और आवश्यकता हो तो महासमिति के नियमित रूप से अधिवेशन में बिना विचार किये हम लोग अधिकारपूर्ण-रूप से कोई बात कह सकें। परन्तु हम इतना अवश्य कह सकते है कि व्यक्तिश हम लोगो के लिए इस समस्या का कोई ऐसा निराकरण तबतक सतोष-जनक न होगा जबतक (१) (क) पूरे और स्पष्ट शब्दो में यह बात न मान ली जाय कि भारत को इस बात का अधिकार प्राप्त होगा कि वह जब चाहे तब ब्रिटिश-साम्राज्य से अलग हो जाय। (ख) उसमे भारत में ऐसी पूर्ण राष्ट्रीय सरकार स्थापित हो जो उसके निवासियो के प्रति उत्तरदायी हो। उसे देश की रक्षक शक्तियो (सेना आदि) पर तथा समस्त आर्थिक विषयो पर पूर्ण अधिकार और नियन्त्रण प्राप्त हो और जिसमें उन ११ बातो का भी समावेश हो जाय जो गाधीजी ने वाइसराय को अपने पत्र में लिखकर भेजी थीं। (ग) उससे भारतवर्ष को इस बात का अधिकार प्राप्त हो जाय कि यदि आवश्यकता हो तो वह एक ऐसी स्वतन्त्र पचायत बैठाकर इस बात का निर्णय करा सके कि अग्रेजो को जो विशेष पावने और रिआयतें आदि प्राप्त है, जिसमें भारत का सार्वजनिक ऋण भी सम्मिलित होगा, और जिनके सम्बन्ध में राष्ट्रीय सरकार का यह मत होगा कि ये न्याय-पूर्ण नही है अथवा भारत की जनता के लिए हितकर नही है, वे सब अधिकार, रिआयतें और ऋण आदि उचित, न्यायपूर्ण और मान्य है या नहीं।

सूचना—अधिकार हस्तान्तरित होने के समय में भारत के हित के विचार से इस प्रकार के जिन लेने-देने आदि की आवश्यकता होगी, उसका निर्णय भारत के चुने हुए प्रतिनिधि करेगे।

(२) यदि ऊपर बतलाई हुई बातें ब्रिटिश-सरकार को ठीक जंचे और वह

इस सम्बन्ध में सन्तोषजनक घोषणा कर दे तो हम कांग्रेस की कार्य-समिति से इस बात की सिफारिश करेंगे कि सत्याग्रह-आन्दोलन या सविनय-अवज्ञा का आन्दोलन बन्द कर दिया जाय, अर्थात् केवल आज्ञा-भंग करने के लिए ही कुछ विशिष्ट कानूनो का भंग न किया जाय। परन्तु विलायती कपड़े और शराब, ताड़ी आदि की दुकानो पर बराबर शान्तिपूर्ण पिकेटिंग जारी रहेगी, जबतक सरकार स्वयं कानून बनाकर शराब, ताड़ी आदि और विलायती कपड़े की बिक्री बन्द न कर देगी। सब लोग अपने घरों में बराबर नमक बनाते रहेंगे और नमक-कानून की दंड-सम्बन्धी धारायें काम में नहीं लाई जायेंगी। नमक के सरकारी या लोगों के निजी गोदामो पर धावा नही किया जायगा।

(३) (क) ज्योंही सत्याग्रह-आन्दोलन रोक दिया जायगा, त्योंही उसके साथ ये सब सत्याग्रही कैदी और राजनैतिक कैदी, जो सजा पा चुके हैं परन्तु जो हिंसा के अपराधी नहीं हैं या जिन्होंने लोगों को हिंसा करने के लिए उत्तेजित नहीं किया है, सरकार-द्वारा छोड़ दिये जायेंगे। (ख) नमक-कानून, प्रेस-कानून, लगान-कानून तथा इसी प्रकार के और कानूनों के अनुसार जो सम्पत्तिया जब्त की गई है, वे सब लोगों को वापस कर दी जायेंगी। (ग) दण्डित सत्याग्रहियों से जो जुर्माने वसूल किये गये हैं या जो जमानतें ली गई हैं, उन सबकी रकमें लौटा दी जायेंगी। (घ) वे सब राज-कर्मचारी, जिनमें गांवों के कर्मचारी भी सम्मिलित हैं, जिन्होंने अपने पद से इस्तीफा दे दिया है अथवा जो आन्दोलन के समय नौकरी से छुड़ा दिये गये हैं, यदि फिर से सरकारी नौकरी करना चाहें तो अपने पद पर नियुक्त कर दिये जायेंगे।

सूचना—ऊपर जो उप-धारायें दी गई है, उनका व्यवहार असहयोग-काल के दण्डित लोगों के लिए भी होगा।

(४) वाइसराय ने अबतक जितने आर्डिनेन्स प्रचलित किये हैं, वे सब रद कर दिये जायेंगे।

(५) प्रस्तावित परिषद् में कौन-कौन लोग सम्मिलित किये जायेंगे और उसमें कांग्रेस का प्रतिनिधित्व किस प्रकार का होगा, इसका निर्णय उसी समय होगा जब पहले ऊपर बतलाई हुई प्रारम्भिक बातों का सन्तोषजनक निपटारा हो जायगा।

भवदीय—

मो० क० गांधी	जयरामदास दौलतराम
मोतीलाल नेहरू	सैयद महमूद
वल्लभभाई पटेल	जवाहरलाल नेहरू

कांग्रेस के नेताओं के नाम मध्यस्थों का पत्र

सर सप्रू व श्री जयकर ने १६ अगस्त को विन्टर-रोड (मलाबार-हिल, बम्बई) से इस आशय का पत्र काग्रेस-नेताओ को भेजा—

प्रिय मित्रगण,

जिन अनेक अवसरो पर हमने पूना या प्रयाग में आपसे मिलकर बातें की है, उन अवसरो पर आप लोगो ने हमारी बातो को जिस सुजनता और धैर्य के साथ सुना है, उसके लिए हम आप सबको धन्यवाद देना चाहते हैं। हमें इस बात का दु ख है कि हमने बहुत अधिक समय तक बातें करके आपको कष्ट दिया है, और विशेषत इस बात का हमें और भी अधिक दु ख है कि प० मोतीलाल नेहरू को ऐसे समय में पूना तक आने का कष्ट उठाना पडा है जबकि उनका स्वास्थ्य इतना खराब है। हम नियमित-रूप से उस पत्र की प्राप्ति स्वीकार करते है जो आप लोगो ने हमें दिया था और जिसमें आप लोगो ने वे शर्तें लिखी हैं, जिनके अनुसार आप काग्रेस से इस बात की सिफारिश करने के लिए तैयार है कि वह सत्याग्रह-आन्दोलन बन्द कर दे और गोलमेज-परिषद् में सम्मिलित हो।

जैसा कि आप लोगो को हम सूचित कर चुके है, हमने यह मध्यस्थता का काम इन आधारो पर अपने ऊपर लिया था—(१) २० जून १९३० को बम्बई मे काग्रेस के तत्कालीन कार्यवाहक-सभापति प० मोतीलाल नेहरू ने मि० स्लोकोम्ब के साथ बातचीत करके उन्हें जो शर्तें बतलाई थी, एक तो उनके आधार पर, और विशेषत (२) २५ जून १९३० को बम्बई मे प० मोतीलाल नेहरू ने मि० स्लोकोम्ब को अपने वक्तव्य में लिखकर जो शर्तें दी थीं और जिनके सम्बन्ध में उन्होंने (प० मोतीलाल ने) यह मजूर किया था कि इनके आधार पर हम लोग निजी और गैर-सरकारी तौर पर वाइसराय से मिलकर समझौते की बातचीत कर सकते है। मि० स्लोकोम्ब ने वे दोनो लेख हम लोगो के पास भेज दिये थे और तब हम लोगो ने वाइसराय से मिलकर यह प्रार्थना की थी कि हम लोगो को यह इजाजत दी जाय कि हम गाधीजी और पडित मोतीलाल तथा पडित जवाहरलाल से बातचीत करें और यह समझ लें कि किस प्रकार समझौता होना सम्भव है। ऊपर जिस दूसरे पत्र का हमने उल्लेख किया है, उसकी एक प्रतिलिपि आपने हमसे ले ली है। अब हम यह देखते हैं कि १४ ता० को आप लोगो ने जो पत्र हमें दिया है, उसमें ऐसी शर्तें दी हैं जो हम लोगो की पारस्परिक स्वीकृति और निश्चय के अनुसार वाइसराय के पास विचारार्थ भेजी जानी चाहिएँ, और तब हम लोगो को उनके निर्णय की प्रतीक्षा करनी

पडेगी। आपने यह इच्छा प्रकट की थी कि समझौते की बातचीत के सम्बन्ध के जितने मुख्य-पत्र और लेख आदि है, और जिनमे आप लोगो का वह पत्र भी सम्मिलित है जो आपने हमें दिया है, वे सब प्रकाशित कर दिये जायँ। आपकी यह इच्छा हमारे ध्यान में है और ज्योही वाइसराय महोदय आपके पत्र पर विचार कर चुकेंगे त्योही हम सारा पत्र-व्यवहार प्रकाशित कर देंगे।

यह पत्र समाप्त करने से पहले हम यह कहने की आज्ञा मागते है कि, जैसा कि हमने आप से कहा था, हमारे पास यह विश्वास करने का कारण था कि ज्योही सत्याग्रह-आन्दोलन बन्द कर दिया जायगा त्योही परिस्थिति बहुत-कुछ सुधर जायगी अहिंसात्मक राजनैतिक कैदी छोड दिये जायँगे, उन आर्डिनेन्सो को छोडकर जिनका सम्बन्ध चटगाव और लाहौर-षड्यन्त्र के मुकदमो से है, बाकी सब आर्डिनेन्स रद कर दिये जायँगे, और गोलमेज-परिषद् में किसी एक राजनैतिक दल के जितने प्रतिनिधि होंगे, उनकी अपेक्षा काग्रेस के प्रतिनिधियो की सख्या अधिक होगी। यहा कदाचित् हमें फिर से यह कहने की आवश्यकता न होगी कि हम लोगो ने इस बात पर भी जोर दिया था कि हमारी सम्मति मे प० मोतीलाल नेहरू ने अपनी मि० स्लोकोम्बवाली भेंट में जो दृष्टिकोण प्रकट किया था और प० मोतीलालजी की स्वीकृति से मि० स्लोकोम्ब ने जो वक्तव्य हम लोगो के पास भेजा था, उसमे और उस पत्र मे तत्वत कोई अन्तर नही है जो वाइसराय महोदय ने हम लोगो के नाम भेजा है।

भवदीय—
मुकुन्दराव जयकर
तेजबहादुर सप्रू

वाइसराय का पत्र

इसके उपरान्त काग्रेस के नेताओ का पत्र लेकर २१ अगस्त को श्री जयकर अकेले शिमला गये और वहा उन्होने वाइसराय से बातें की। २५ ता० को सर तेज-बहादुर सप्रू भी जाकर उनके साथ सम्मिलित हो गये। उस समय २५ और २७ अगस्त के बीच मे इन लोगो ने कई बार वाइसराय और उनकी कौंसिल के कुछ सदस्यो के साथ मिलाकर बातें की। उसके परिणाम-स्वरूप वाइसराय ने यह पत्र लिखकर काग्रेस के नेताओ को प्रयाग और पूना मे दिखलाने के लिए दिया —

वाइसराय-भवन, शिमला
२८ अगस्त, १६३०

प्रिय सर तेजबहादुर,

कांग्रेस के जो नेता इस समय जेल में है, उनके साथ श्री जयकर और आपने मिलकर जो बाते की, उनके परिणाम की जो सूचना आपने मुझे दी है, उसके लिए मै आपको धन्यवाद देता हूँ। साथ ही उन लोगो ने मिलकर १५ तारीख को आप लोगो को जो पत्र भेजा था और आप लोगो ने उनको जो उत्तर भेजा था, उनकी जो प्रतिलिपिया आपने मुझे भेजी है, उनके लिए भी मै आपको धन्यवाद देता हूँ। मै आपको और श्री जयकर को बतला देना चहता हूँ कि आप लोगो ने सार्वजनिक हित और भारत में फिर से शान्ति स्थापित करने की दृष्टि से अपने ऊपर जो यह काम लिया है, उसकी मै बहुत प्रशंसा करता हूँ। यहा मै आपको उन परिस्थितियो का भी स्मरण करा देना चाहता हूँ, जिनके कारण आपने अपने ऊपर यह काम लिया था।

अपने १६ जुलाईवाले पत्र में मैंने आपको यह विश्वास दिलाया था कि मेरी तथा मेरी सरकार की यह हार्दिक इच्छा है, और मुझे इस बात में कोई सन्देह नही कि श्रीमान् सम्राट् की सरकार की भी यही इच्छा है, कि जहा तक हो सके, हम लोग इस बात का प्रयत्न करें कि भारतवासी जितनी अधिक मात्रा में अपने देश का प्रबन्ध अपने हाथ मे ले सकें उतनी अधिक मात्रा में ले लें। हा, वे विषय अभी उनके हाथ में नहीं दिये जायँगे जिनके सम्बन्ध में वे अभी अपने ऊपर उत्तरदायित्व नही ले सकते। जितनी सामग्री प्राप्त होगी, उसको देखते हुए परिषद् इस बात का विचार करेगी कि वे सब विषय कौन-कौन-से है और उनके लिए सबसे अच्छी व्यवस्था कौनसी की जा सकती है।

असेम्बली में ६ जुलाईवाले अपने भाषण में मैंने दो बातें भी स्पष्ट कर दी थी। एक तो यह कि जो लोग परिषद् में जायँगे, वे बिलकुल स्वतत्र रूप से विधान-सम्बन्धी सब विषयो पर, उनका ऊँच-नीच देखते हुए, विचार कर सकेंगे, और दूसरी यह कि परिषद् जो-कुछ निर्णय कर सकेगी उसीके आधार पर श्रीमान् सम्राट् की सरकार अपने प्रस्ताव तैयार करके पार्लमेण्ट के सामने उपस्थित करेगी।

मैं समझता हूँ और मुझे इस बात में कोई सन्देह नही है कि आप भी यह मानते होंगे कि आप लोगो ने स्वेच्छा से अपने ऊपर जो काम लिया है, उसमें उस पत्र से कोई सहायता नहीं मिली है जो आप लोगो को कांग्रेस के नेताओं से मिला है। वह पत्र जिस ढग मे लिखा गया है और उसमें जो-जो बातें है, उन दोनो को देखते हुए, और साथ ही साथ उसमें इस बात से जो साफ़ इन्कार किया गया है कि कांग्रेस की नीति

से आर्थिक क्षेत्र मे भी तथा और-और क्षेत्रो मे भी देश को भारी हानि पहुँची है, उसका ध्यान रखते हुए, मै नही समझता कि उसमे जो सूचनाये उपस्थित की गई है उनपर ब्योरेवार विचार करने से कोई लाभ हो सकता है, और मै स्पष्ट रूप से कह देना चाहता हूँ कि उन प्रस्तावो के आधार पर कोई बात-चीत करना असम्भव है। मै आशा करता हूँ कि यदि आप काग्रेस के नेताओ से फिर मिलेंगे, तो यह बात स्पष्टरूप से उन्हें बतला देगे।

१६ अगस्त को आपने उन लोगो को जो उत्तर भेजा था, उसके अतिम अश के सम्बन्ध में भी मै एक बात कह देना चाहता हूँ। जब मैने और आप लोगो ने इस विषय पर विचार किया था, तब मैने कहा था कि जब सत्याग्रह-आन्दोलन बन्द कर दिया जायगा, तब वर्तमान परिस्थिति के कारण जो आर्डिनेन्स बनाये गये है (उन आर्डिनेन्सो को छोडकर जो लाहौर और चटगाव के षड्यत्र वाले मुकदमो के लिए बनाये गये है), उनकी कोई आवश्यकता न रह जायगी और मै उन्हें रद कर दूगा। पर मैने यह बात भी स्पष्ट कर दी थी कि मै इस बात का कोई वचन नही दे सकता कि जब सत्याग्रह-आन्दोलन बन्द कर दिया जायगा तब प्रान्तीय सरकारो के लिए यह समव होगा कि वे उन सब लोगो को छोड दे जो इस आन्दोलन के सम्बन्ध में हिंसा को छोड-कर और अपराधो मे जेल भेजे गये है या जिनपर मुकदमे चल रहे है। पर हा, मैं इस बात का प्रयत्न करूँगा कि इस सम्बन्ध में उदार नीति का अमल किया जाय, और अधिक-से-अधिक मै यही वचन दे सकता हूँ कि मै प्रान्तीय-सरकारो से कहूँगा कि वे प्रत्येक अभियुक्त के सम्बन्ध मे उसके अपराध और परिस्थिति आदि का विचार करते हुए सहानुभूतिपूर्वक विचार करें।

एक बात यह भी विचारणीय थी कि जब सत्याग्रह-आन्दोलन बन्द हो जायगा और काग्रेस के नेता परिषद् मे सम्मिलित होना चाहेंगे, तब उनके कितने प्रतिनिधि उसमे लिए जायँगे। मुझे स्मरण है कि आपने इस सम्बन्ध में कहा था कि काग्रेस यह नही चाहती कि हमारी ही पूर्ण प्रधानता या बहुमत रहे, और मैने यह विचार प्रकट किया था कि श्रीमान् सम्राट् की सरकार से यह सिफारिश करने में कोई कठिनाई न होगी कि परिषद् में काग्रेस के यथेष्ट प्रतिनिधि रहें। मै यह भी बतला देना चाहता हूँ कि यदि काग्रेस उसमे सम्मिलित होना चाहे, तो वह अपने नेताओ की एक ऐसी सूची मेरे पास भेज सकती है जिन्हे वह अपना उपयुक्त प्रतिनिधि समझती हो, और उस सूची मे से मै उसके प्रतिनिधि चुन लूगा।

यह उचित जान पडता है कि यह सारा पत्र-व्यवहार शीघ्र ही सर्व-साधारण में प्रकाशित कर दिया जाय, जिसमे सब लोगो को यह मालूम हो जाय कि किन परि-

स्थितियो में आप लोगो को अपने प्रयत्न मे विफलता हुई है, और जिन परिणामो की आप लोग आशा करते थे, वे क्यो नही प्राप्त हुए। इसलिए मै आपको तथा श्री जयकर को स्पष्ट बतला देना चाहता हूँ कि इस सम्बन्ध में मेरी तथा मेरी सरकार की क्या स्थिति है (अर्थात् हम लोग अधिक से अधिक क्या कर सकते है)।

भवदीय—
अर्विन

वाइसराय को बातचीत

मध्यस्थो ने उसे किस रूप में उपस्थित किया

काग्रेस के नेताओ के पत्र मे जिन विशेष विचारणीय विषयो का उल्लेख था, उनके सम्बन्ध में वाइसराय के साथ सर सप्रू व जयकर की जो बातें हुई थी, उनके बारे में उन्होने यह वक्तव्य दिया —हम शिमला से २८ अगस्त को चले और ३० तथा ३१ अगस्त को प्रयाग के नैनी-जेल में प० मोतीलाल नेहरू, प० जवाहरलाल नेहरू और डॉ० महमूद से मिले। हमने उन्हें वाइसराय का उक्त पत्र दिखलाया और हम लोगो में जो बातचीत हुई थी उसका परिणाम भी उनके सामने उपस्थित किया। उन लोगो के १५ अगस्तवाले पत्र में जिन कई विचारणीय बातो का उल्लेख था और जिनका उल्लेख वाइसराय के २८ अगस्त वाले पत्र में नही था, उनके सम्बन्ध में हम लोगो ने उनसे यह कहा कि वाइसराय के साथ हमारी जो बातें हुई है उन्हें देखते हुए हमारा यह विश्वास है कि इन शर्तो पर समझौता हो सकता है—

(क) शासन-विधान के सम्बन्ध में वही स्थिति रहेगी जिसका उल्लेख उस पत्र में है जो वाइसराय ने २८ अगस्त को हम लोगो को भेजा था। इस सम्बन्ध की बातो का उल्लेख उसके दूसरे पैराग्राफ मे है, जहा इस विषय की चार मुख्य बातें कही गई है।

(ख) एक प्रश्न यह भी है कि गोलमेज-परिषद् मे गाधीजी यह प्रश्न उठा सकेगें या नही कि भारत जब चाहे तब साम्राज्य से अलग हो जाय। इस सम्बन्ध में वाइसराय का यह कहना है कि परिषद् सब बातो में बिलकुल स्वतन्त्र होगी, और यही बात उन्होने उस पत्र में लिखी थी जो हम लोगो को भेजा था। इसलिए वहा प्रत्येक व्यक्ति जो विषय चाहे विचारार्थ उपस्थित कर सकता है। परन्तु वाइसराय का यह विचार है कि इस अवसर पर गाधीजी का यह प्रश्न उठाना बहुत ही नासमझी का काम होगा। परन्तु यदि गाधीजी यह विषय भारत-सरकार के सामने उपस्थित करेंगे, तो

वाइसराय का यह कहना है कि सरकार इस प्रश्न को विचारणीय मानने के लिए तैयार नहीं है। यदि इतने पर भी गांधीजी यह प्रश्न उठाना चाहेंगे, तो सरकार भारत-मंत्री को यह सूचित कर देगी कि गोलमेज-परिषद् में गांधीजी का यह प्रश्न उठाने का विचार है।

(ग) यह प्रश्न यह है कि गोलमेज-परिषद् में यह विषय विचारार्थ उपस्थित किया जा सकता है या नहीं कि भारत पर जो कई आर्थिक भार हैं, उनकी जांच एक स्वतंत्र पंचायत से कराई जाय। इस सम्बन्ध में वाइसराय का यह कहना है कि वह किसी ऐसे प्रस्ताव पर विचार करने के लिए बिल्कुल तैयार नहीं जिससे कि भारत पर जितने ऋण हैं वे सब रद समझे जायें और उनके चुकाने से इन्कार किया जाय। पर हां, जो चाहे वह परिषद् में यह कह सकता है कि भारत का अमुक आर्थिक ऋण या देना ठीक नहीं है और उसकी जांच की जाय।

(घ) नमक-कानून की दंड-सम्बन्धी धाराओं को काम में न लाने के सम्बन्ध में वाइसराय का कहना है कि (१) यदि नमक-कानून के सम्बन्ध में साइमन-कमीशन की सिफारिश मान ली गई, तो यह विषय प्रान्तीय सरकारों के हाथ में चला जायगा, और (२) सरकार की आय में बहुत बड़ी कमी हो चुकी है, इसलिए सरकार यह नहीं चाहेगी कि उसकी आय का यह मार्ग बन्द हो जाय। परन्तु यदि कौंसिलों से नमक-कानून रद करा लिया जायगा और सरकारी आय का घाटा पूरा करने के लिए कोई और नया मार्ग बतलाया जायगा, तो वाइसराय और उनकी सरकार इस प्रश्न के ऊंच-नीच पर विचार करेगी। परन्तु जबतक नमक-कानून एक कानून के रूप में बना रहेगा, तबतक यदि लोग उसे खुले-आम तोड़ेंगे तो सरकार उसे सहन नहीं कर सकेगी। जब सद्भाव और शान्ति स्थापित हो जायगी, तब यदि भारतीय नेता वाइसराय और उनकी सरकार से बातचीत करेंगे कि इस सम्बन्ध में गरीबों का आर्थिक कष्ट किस प्रकार दूर किया जा सकता है, तो वाइसराय प्रसन्नता से इसके लिए भारतीय नेताओं की एक छोटी परिषद् कर सकेंगे।

(ङ) पिकेटिंग के सम्बन्ध में उनका यह कहना है कि यदि पिकेटिंग से किसी वर्ग को कष्ट होगा या उसमें लोगों को तंग किया जायगा, धमकाया जायगा या बल-प्रयोग किया जायगा, तो सरकार को इस बात का अधिकार प्राप्त रहेगा कि वह आवश्यकता पड़ने पर इसके विरुद्ध कानूनी कार्रवाई कर सकेगी। इसके सिवा जब शान्ति स्थापित हो जायगी, तब पिकेटिंग-सम्बन्धी आर्डिनेन्स उठा लिया जायगा।

(च) जिन कर्मचारियों ने सत्याग्रह-आन्दोलन के समय इस्तीफा दिया है

या जो अपने पद से हटा दिये गये हैं, उन्हें फिर से नियुक्त करने के सम्बन्ध में उनका यह कहना है कि यह विषय मुख्यत प्रान्तीय सरकारो की इच्छा से सम्बन्ध रखता है। तो भी यदि उनके स्थान खाली होंगे और उनकी जगह ऐसे नये आदमी न नियुक्त कर लिये गये होंगे जो राजनिष्ठ प्रमाणित हो चुके हो, तो प्रान्तीय सरकारो से यह आशा की जा सकती है कि वे उन लोगो को फिर से उनके स्थान पर नियुक्त कर देंगी जिन्होंने आवेश मे आकर अपना पद त्याग दिया होगा अथवा लोगो ने विवश करके जिनसे इस्तीफे दिलवाये होंगे।

(छ) प्रेस-आर्डिनेन्स के अनुसार जो छापेखाने जब्त कर लिये गये होंगे, उन्हें लौटा देने में कोई कठिनाई न होगी।

(ज) लगान-कानून के सम्वन्ध मे जो जुर्माने हुए है या जो सम्पत्तिया जब्त हुई हैं, उन्हें लौटाने के सम्बन्ध में अधिक सूक्ष्म विचार करने की आवश्यकता है। ऐसे कानून के अनुसार जो सम्पत्तिया जब्त हुई है, और वेची गई है, वे तीसरे आदमी के हाथ में चली गई है। जुर्माने लौटाने के सम्वन्ध मे भी कठिनाइया होंगी। इस सम्वन्ध मे वाइसराय केवल यही कह सकते है कि प्रान्तीय-सरकारें इसपर न्यायपूर्वक विचार करेंगी और सव परिस्थितियो का ध्यान रक्खेंगी; और जहातक हो सकेगा, जुर्माने लौटाने का प्रयत्न करेंगी।

(झ) कैदियो को छोडने के सम्वन्ध में वाइसराय अपने विचार उस पत्र में प्रकट कर ही चुके है जो उन्होंने २८ जुलाई को हमें भेजा था।

गांधीजी के नाम नेहरुओं का आखिरी सूचना-पत्र

प० मोतीलाल नेहरू, प० जवाहरलाल नेहरू और डॉ० महमूद को पहली दोनो मुलाकातो में सर सप्रू व मि० जयकर ने यह स्पष्ट वतला दिया था कि यद्यपि समय वहुत कम है, तो भी ऊपर वतलाये हुए ढग से आगे समझौते की और वात-चीत हो सकती है, परन्तु वे लोग इस आधार पर समझौता करने के लिए तैयार नहीं हुए और उन्होंने गाधीजी को देने के लिए एक सूचनापत्र लिखकर दिया, जो इस प्रकार है—

नैनी सेण्ट्रल जेल
३१-८-३०

"कल और आज फिर श्रीयुत जयकर तथा डॉ०सप्रू के साथ हम लोगो की भेंट हुई और वहुत देर तक वातें होती रहीं। उन्होंने उस पत्र की एक नकल हमें

दी है जो लॉर्ड अर्विन ने उन्हे २३ अगस्त को दिया था। उस पत्र मे स्पष्ट रूप से यह कहा गया है कि लॉर्ड अर्विन उन शर्तो पर समझौते की बात करना असम्भव समझते है जो शर्तें हम सब लोगो ने अपने १५ अगस्तवाले उस पत्र में लिखी थी जो सर तेजबहादुर सप्रू और श्रीयुत जयकर के नाम लिखा था, और ऐसी स्थिति में लॉर्ड अर्विन का यह कहना ठीक है कि सर सप्रू और श्रीयुत जयकर के प्रयत्न विफल हुए हैं। जैसा कि आप जानते है, हम सब लोगो ने यह पत्र सब बातो का बहुत अच्छी तरह विचार करके लिखा था, और हम अपनी व्यक्तिगत स्थिति को देखते हुए जहा तक दब सकते थे, वहा तक दबे थे। उस पत्र में हमने यह बतला दिया था कि जबतक कई परम आवश्यक शर्तें पूरी नही की जायँगी और उनके सम्बन्ध में ब्रिटिश-सरकार सन्तोष-जनक घोषणा न कर देगी, तब-तक कोई निराकरण मान्य नही होगा। यदि ऐसी घोषणा कर दी जाती तो हम कार्य-समिति से इस बात की सिफारिश कर सकते थे कि उस दशा मे सत्याग्रह-आन्दोलन बन्द कर दिया जाय, जबकि सरकार उसके साथ ही वे कई काम करे जिनका उल्लेख हम लोगो ने अपने पत्र में किया था। इन प्रारम्भिक बातो का सन्तोषजनक निर्णय हो जाने पर ही यह निश्चय किया जा सकता था कि लन्दनवाली प्रस्तावित परिषद् मे कौन-कौन से लोग सम्मिलित होगे और उसमें कांग्रेस के कितने और कैसे प्रतिनिधि होगे। अपने पत्र मे लॉर्ड अर्विन यहा तक कहते है कि इन प्रस्तावो के आधार पर समझौते की बातचीत करना ही असम्भव है। ऐसी परि-स्थितियो में हम लोगो में न तो समझौता होने की कोई गुजाइश है और न हो सकती है।

वाइसराय ने अपने पत्र में जो बातें लिखी है और जिस ढग से लिखी है, उसे छोड़कर यदि देखा जाय तो भी इधर हाल में भारत मे ब्रिटिश-सरकार ने जो-कुछ कार्य किये है, उनसे यह सूचित होता है कि सरकार शान्ति स्थापित करना नही चाहती। ज्योही इस बात की सूचना प्रकाशित की गई कि दिल्ली मे कांग्रेस की कार्य-समिति की बैठक होगी, त्योही तुरन्त सरकार ने उसे गैर-कानूनी घोषित कर दिया और उसके उपरान्त उसके अधिकाश सदस्यो को गिरफ्तार कर लिया। इस घटना का केवल यही अर्थ हो सकता है कि वह शान्ति नही चाहती। इन या और दूसरी गिरफ्तारियो के लिए, अथवा सरकार की इसी प्रकार की और दूसरी कार्रवाइयो के लिए—जिन्हें हम लोग असभ्यता और बर्बरता-पूर्ण समझते है—हम लोग सरकार की कोई शिकायत नही करते। हम उन सब का स्वागत करते है। परन्तु हम लोग यह बतला देना उचित और न्यायपूर्ण समझते है कि एक ओर तो शान्ति स्थापित करने की इच्छा रखना

और दूसरी ओर स्वय उस सस्था पर आक्रमण करना जो शान्ति प्रदान कर सकती है और जिसके साथ सरकार बातचीत करना चाहती है, इन दोनो बातो का ठीक मेल नही बैठता। प्राय सारे भारत में कार्य-समिति गैर-कानूनी ठहरा दी गई है और उसके अधिवेशनो को रोकने का प्रयत्न किया जा रहा है। इसका आवश्यक रूप मे यही अर्थ होता है कि चाहे कुछ भी क्यो न हो, यह राष्ट्रीय युद्ध बराबर जारी रहना चाहिए और तब शान्ति की कोई सम्भावना न रह जायगी, क्योंकि जो लोग भारत-वासियो का प्रतिनिधित्व कर सकते है, वे सारे भारत मे अग्रेजी जेलखानो में भर और फैल जायेंगे।

लॉर्ड अर्विन ने जो पत्र भेजा है और ब्रिटिश-सरकार ने जो-कुछ काम किया है, उससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि डॉ० सप्रू और श्रीयुत् जयकर का यह प्रयत्न व्यर्थ है। वास्तव में जो पत्र हमें दिया गया है और जो कैफियतें हमें दी गई है, उनसे तो कुछ बातो में हम लोग उस स्थिति से और भी पीछे हट जाते है जो पहले ग्रहण की गई थी। हमारी स्थिति या बातो और लॉर्ड अर्विन की स्थिति या बातो में जो बहुत बडा अन्तर है, उसे देखते हुए कदाचित् ब्योरे की बातो पर विचार करने की कोई आवश्यकता नही रह जाती ।

इस प्रकार हम लोगो ने जितने प्रमुख प्रस्ताव किये थे, उनसे लॉर्ड अर्विन सहमत नही हो रहे है, और न उन छोटे प्रस्तावो को ही वह मानते है, जिनका हम लोगो ने अपने सम्मिलित पत्र मे उल्लेख किया था। उनके और हम लोगो के दृष्टिकोण में बहुत बडा अन्तर है और वास्तव मे तत्त्व या सिद्धान्त का अन्तर है। हम लोग आशा करते है कि आप यह सूचना-पत्र श्रीमती सरोजिनी नायडू, सरदार वल्लभभाई पटेल और श्रीयुत् जयरामदास दौलतराम को दिखला देंगे और उन लोगो मे परामर्श करके श्रीयुत जयकर और सर तेजबहादुर सप्रू को अपना उत्तर दे देंगे।

मोतीलाल
सैयद महमूद
जवाहरलाल

नेताओं का सम्मिलित उत्तर

इसके अनुसार ३, ४ और ५ सितम्बर को सर सप्रू व मि० जयकर ने पूना के यरवडा-जेल में महात्मा गाधी तथा काग्रेस के दूसरे नेताओ के साथ भेंट की, उन्हें उक्त पत्र दिया और सहमत प्रश्नो पर उनके साथ मिलकर विचार और वाद-विवाद

किया। इस वातचीत के अन्त में उन लोगो ने इन्हे जो वक्तव्य दिया, वह यहा
जाता है—

यरवडा सेण्ट्रल
५—६—३०

प्रिय मित्रगण,

श्रीमान् वाइसराय ने २८—८—३० को आप लोगो को जो पत्र लिखा था, हम लोगो ने ध्यान-पूर्वक पढा है। उस पत्र की वातो के सम्बन्ध मे वाइसराय से लोगो की जो वाते हुई है, उन्हे भी आपने कृपाकर उस पत्र में परिशिष्ट-रूप में सम्मि कर दिया है। हम लोगो ने उतने ही ध्यान से वे सूचनायें भी पढी है, जिनपर प मोतीलाल नेहरू, डॉ० सैयद महमूद और प० जवाहरलाल नेहरू के हस्ताक्षर है जो उन लोगो ने आपके द्वारा भेजी है। उक्त पत्र तथा वातचीत पर उस सूचना में उनकी विचारपूर्ण सम्मति भी सम्मिलित है। इन पत्रो पर हम लोगो ने वरा दो रातो तक विचार किया है और इन कागजो के सम्वन्ध में जितनी विचार वातें है उन सवपर आपके साथ पूरा और स्वतत्र विचार भी हो चुका है। और जैसा हमने आप लोगो से कहा था, हम निश्चित रूप से इसी परिणाम पर पहुँचे हैं कि सरक और काग्रेस के वीच हमें मेल की कोई गुजाइश दिखाई नही पडती। हमारा इस सम वाहरी ससार के साथ कोई सम्वन्ध नही है, इसलिए काग्रेस की ओर से हम ल अधिक-से-अधिक जो-कुछ कह सकते है, वह यही है।

नैनी सेण्ट्रल जेल से हमारे माननीय मित्रो ने अपने सूचना-पत्र में जो सम्म भेजी है, उससे हम लोग पूर्ण रूप से सहमत है, परन्तु हमारे उन मित्रो की इच्छा है इधर दो महीनो से आप लोग देश-हित के उद्देश्य से अपने समय का वहुत-कुछ व्य करके और बहुत सी कठिनाइया उठाकर शान्ति स्थापित करने के लिए जो प्रय कर रहे है, उसके सम्वन्ध मे हम अपने शव्दो मे यह वतला दें कि हम लोगो की स्थि और वक्तव्य क्या है। इसलिए जहातक सक्षेप मे हो सकता है, हम यह वतलाने प्रयत्न करेंगे कि शान्ति स्थापित होने में कौन-सी मुख्य-मुख्य कठिनाइया है।

वाइसराय का १६—७—३० वाला जो पत्र है, उसके सम्वन्ध मे हमारा यह म है कि उसमें उन शर्तो को पूरा करने का विचार किया गया है जो प० मोतीलाल गत २० जून को मि० स्लोकोम्व को वतलाई थी और २५ जून को अपनी स्वीकृ से उन्होने मि० स्लोकोम्व को अपना जो वक्तव्य दिया था, उसमें जो शर्ते कही ग

थी। परन्तु वाइसराय के १६ जुलाई वाले पत्र की भाषा में हमें कोई ऐसी बात नही दिखलाई पडती जिससे यह समझा जाय कि प० मोतीलालजी के उक्त वार्तालाप या वक्तव्य में बतलाई हुई शर्तें पूरी होती है। उक्त वार्तालाप और वक्तव्य में जो मूल्य और काम के अश है, वे इस प्रकार है —

वार्त्तालाप में—"यदि यह निश्चय नही किया जायगा कि गोलमेज-परिषद् में किन-किन बातो पर विचार किया जायगा और हम लोगो से यह आशा की जायगी कि हम लोग लन्दन मे जाकर बहस करके लोगो को इस विषय का सन्तोष करायेंगे कि हमें औपनिवेशिक स्वराज्य चाहिए, तो मै इसे मजूर नही कर सकता। परन्तु यदि यह बात स्पष्ट कर दी जायगी कि भारत की विशेष आवश्यकताओ और परिस्थितियो तथा अग्रेजो के साथ के पुराने सम्बन्ध का ध्यान रखते हुए पारस्परिक सम्बन्ध ठीक करने के लिए जिन बातो को बचाने की आवश्यकता होगी, उन्हे छोड कर बाकी और बातो में परिषद् के अधिवेशन में यह निश्चय किया जायगा कि स्वतन्त्र भारत का विधान किस प्रकार बनाया जाय, तो कम-से-कम मै कांग्रेस से इस बात की सिफारिश करूँगा कि वह परिषद् में सम्मिलित होने का निमन्त्रण स्वीकृत कर ले। हम लोग अपने घर के आप मालिक बनना चाहते है; परन्तु हम इस बात के लिए तैयार हैं कि जितने समय में अग्रेजो के हाथ से निकाल कर एक उत्तरदायी भारतीय सरकार के हाथ में भारत का शासनाधिकार आयगा, उतने समय तक के लिए कुछ खास शर्तें हो जायँ। इन शर्तों पर अंग्रेजो के साथ विचार करने के लिए समानता के नाते हम उसी प्रकार मिल सकते है, जिस प्रकार एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के साथ मिलकर बातचीत करता है।"

वक्तव्य में—"सरकार निजी रूप से इस बात का वचन देने के लिए तैयार हो जाय कि भारतवर्ष की विशिष्ट आवश्यकताओ और परिस्थितियो का विचार करते हुए और ग्रेट ब्रिटेन के साथ पुराने सम्बन्ध का ध्यान रखते हुए आपस में जैसी व्यवस्था करना निश्चित कर लिया जायगा और अधिकार हस्तान्तरित होने तक के समय के लिए जो शर्तें तय हो जायँगी, और जिनका निर्णय गोलमेज-परिषद् में हो जायगा, उन बातो को छोडकर भारत की पूर्ण उत्तरदायी शासन-प्रणाली की माँग का वह समर्थन करेगी।"

इस सम्बन्ध में वाइसराय के उत्तर मे जो कुछ कहा गया है, वह इस प्रकार है—

"मेरी और मेरी सरकार की यह हार्दिक कामना है, और मुझे इस बात में कोई सन्देह नही है कि श्रीमान् सम्राट् की सरकार की भी यही कामना है कि जहा तक

हो, हम सब अपने-अपने क्षेत्रो मे इस बात का पूरा प्रयत्न करें कि जिन बातो में भारतवासी इस समय अपने ऊपर उत्तरदायित्व लेने के योग्य नही है, उन बातो को छोडकर बाकी और सब बातो में अपने देश के और कामो का जितना अधिक प्रबन्ध वे स्वय कर सकते हो उतना अधिक प्रबन्ध करने में उन्हे सहायता दी जाय। भारतवासी किन-किन विषयो में अभी अपने ऊपर उत्तरदायित्व नही ले सकते है और उनके सम्बन्ध मे क्या-क्या शर्तें और व्यवस्थायें की जानी चाहिएँ, इसपर परिषद् में विचार होगा। परन्तु मेरा कभी यह विश्वास नही रहा है कि यदि आपस में एक-दूसरे पर विश्वास रक्खा जाय तो समझौता करना असम्भव होगा।"

हम लोग समझते हैं कि इन दोनो बातो में बहुत बडा अन्तर है। प० मोतीलालजी तो भारत को एक ऐसे स्वतन्त्र रूप में देखना चाहते है जिसमें प्रस्तावित गोलमेज-परिषद् के विचारो के परिणाम-स्वरूप उसकी स्थिति वर्तमान स्थिति से बिलकुल बदल जाय (वह एक स्वतन्त्र राष्ट्र हो जाय), पर वाइसराय अपने पत्र में केवल यही कहते हैं कि मेरी, हमारी सरकार की और ब्रिटिश सरकार की यह हार्दिक कामना है कि जिन बातो मे भारतवासी इस समय अपने ऊपर उत्तरदायित्व लेने के योग्य नही है, उन्हें छोडकर बाकी और बातो में वे अपने देश के और कामो का जितना अधिक प्रबन्ध स्वय कर सकते हो उतना अधिक प्रबन्ध करने में उन्हे सहायता दी जाय। दूसरे शब्दो में वाइसराय के पत्र में केवल यही आशा दिलाई जाती है कि हमें उसी ढग के कुछ और सुधार मिल जायँगे जिस ढग के सुधारो का आरम्भ लैन्सडाउन-सुधारो से हुआ था। हम लोग यह समझते थे कि इसका हमने जो यह अर्थ लगाया है, वही ठीक है, इसलिए अपने १५-८-३० वाले पत्र में, जिसपर प० मोतीलाल नेहरू, डॉ० सैयद महमूद और प० जवाहरलाल नेहरू ने हस्ताक्षर किये थे, हम लोगो ने अपना कथन नकारात्मक रक्खा था और कहा था कि हमारी सम्मति मे काग्रेस इससे सन्तुष्ट नही होगी। अब आप लोग वाइसराय का जो पत्र लाये है, उसमें भी वही पहले पत्रवाली बात दुहराई गई है, और हमे दु खपूर्वक कहना पडता है कि हमारे पत्र का अनादर करके उसके सम्बन्ध में यह निश्चय किया गया है कि वह विचार करने के योग्य ही नही है, और हम लोगो ने उसमें जो प्रस्ताव किए थे, उनके आधार पर बातचीत चलना असम्भव है। आप लोगो ने यह कहकर इस विषय पर और भी प्रकाश डाल दिया है कि यदि गाधीजी भारत-सरकार के सामने निश्चित रूप से इस प्रकार का कोई प्रश्न उपस्थित करेंगे (अर्थात् भारत जब चाहे तब साम्राज्य से पृथक् हो सकता है), तो वाइसराय यही कहेंगे कि यह प्रश्न विचारार्थ उठ ही नही सकता। इसके विप-

रीत हम लोग यह समझते हैं कि भारत में चाहे जिस प्रकार की स्वतन्त्र शासन-प्रणाली स्थापित हो, परन्तु यह सब दशा में सर्व-प्रधान प्रश्न है और इसके सम्बन्ध में किसी बहस-मुबाहसे की आवश्यकता ही नहीं होनी चाहिए। यदि भारत को पूर्ण उत्तरदायी शासन-प्रणाली या पूर्ण-स्वराज्य अथवा इसी प्रकार की और कोई शासन-प्रणाली प्राप्त होने को हो, तो उसका आधार शुद्ध स्वेच्छा पर होना चाहिए और प्रत्येक दल को इस बात का अधिकार प्राप्त होना चाहिए कि वह जब चाहे तब आपस की हिस्सेदारी का साथ छोड़ सकता है। यदि भारत को साम्राज्य का अंग बनाकर न रखना हो, बल्कि उसे ब्रिटिश राष्ट्र-समूह का एक बराबरी का और स्वतन्त्र हिस्सेदार बनना हो, तो इसके लिए यह आवश्यक है कि उस संगति तथा सहयोग के लिए भारत अपनी आवश्यकता समझे, और उसके साथ ऐसा अच्छा व्यवहार होना चाहिए कि वह उसमें मिला रहने के लिए सदा तैयार रहे। इसके सिवा और किसी दशा में यह बात नहीं हो सकती। आप लोग देखेंगे कि जिस वार्त्तालाप का हम लोगों ने अभी उल्लेख किया है, उसमें यह बात स्पष्ट रूप से कह दी गई है। इसलिए जबतक ब्रिटिश-सरकार या ब्रिटिश जनता यह समझती हो कि भारत के लिए यह स्थिति प्राप्त होना असम्भव है या ऐसी स्थिति नहीं चल सकती, तब तक हम लोगों की सम्मति में कांग्रेस को स्वतन्त्रता का युद्ध बराबर जारी रखना चाहिए।

नमक-कर के सम्बन्ध में हम लोगों का जो एक छोटा और साधारण प्रस्ताव था, उसके विषय में वाइसराय का जो रुख है, उससे सरकार के मनोभावों का एक बहुत ही दुःखद स्वरूप प्रकट होता है। हम लोगों को यह बात दिन के प्रकाश के समान स्पष्ट जान पड़ती है कि शिमला की ऊँचाई पर से भारत के शासक यह समझने में असमर्थ हैं कि नीचे मैदानों में रहनेवाले जिन लाखों-करोड़ों आदमियों के परिश्रम से सरकार या इतनी ऊँचाई पर जाकर रहना सम्भव होता है, उनकी आर्थिक कठिनाइयाँ क्या हैं। नमक एक ऐसी प्राकृतिक देन है जो गरीब आदमियों के लिए हवा और जल को छोड़ कर बाकी और चीजों से बढ़ कर महत्त्व की है। उस नमक पर सरकार ने अपना जो एकाधिकार कर रक्खा है, उसके विरुद्ध गत पाँच महीनों में निर्दोष आदमियों ने अपना जो खून बहाया है, उससे यदि सरकार की समझ में यह बात नहीं आई कि इसमें उसकी कितनी अनीति है, तो फिर वाइसराय कि बनाई हुई बातचीत करनेवालों की कोई परिषद् कुछ भी नहीं कर सकती। वाइसराय ने यह भी कहा है कि जो लोग यह कानून रद कराना चाहते हों, उन्हें एक ऐसा साधन भी बतलाना चाहिए जिससे सरकार की उतनी ही आय हो जाय जितनी उसे नमक से होती है। यह कह कर उन्होंने

मानो हानि पहुँचाने के उपरान्त ऊपर से देश का अपमान भी किया है। उनके इस रुख से यही सूचित होता है कि यदि सरकार का वश चलेगा, तो वह भारत में अनन्त काल तक अपनी वह परम व्यय-साध्य शासन-प्रणाली प्रचलित रक्खेगी जिससे भारत अब तक बराबर कुचला जाता रहा है। हम लोग यह भी बतला देना चाहते हैं कि केवल यहीं की सरकार नहीं, बल्कि समस्त ससार की सरकारें जनता-द्वारा उन कानूनों के भग किये जाने को खुले-आम उपेक्षा की दृष्टि से देखती है, जिन कानूनों को जनता अच्छा नहीं समझती परन्तु जो कानूनी हेर-फेर के कारण अथवा और कारणों से तुरन्त ही रद नहीं किये जा सकते।

इसके अतिरिक्त और भी कई ऐसी महत्व की बातें हैं जिनके सम्बन्ध में हमने जनता के विचार और माँगें उपस्थित की थी, पर उनके सम्बन्ध में भी वाइसराय कुछ भी अग्रसर नहीं हुए हैं। परन्तु यहाँ हम उन बातों पर विचार नहीं करना चाहते। हम लोग आशा करते है कि हमने ऐसी महत्त्वपूर्ण यथेष्ट बातें बतला दी है जिनके सम्बन्ध में कम-से-कम इस समय ब्रिटिश-सरकार और काग्रेस के बीच बहुत बडा अन्तर है, जो जल्दी दूर नहीं किया जा सकता। तो भी शान्ति के उद्योग में इस समय जो विफलता होती हुई दिखाई देती है, उसके लिए निराश होने की कोई आवश्यकता नहीं है। काग्रेस इस समय स्वतन्त्रता के लिए विकट युद्ध में लगी हुई है। इसमें राष्ट्र ने जो अस्त्र ग्रहण किया है, हमारे शासक उसके अभ्यस्त नहीं हैं, इसलिए उन्हें उस अस्त्र का भाव और महत्त्व समझने में विलम्ब होगा। इधर कई महीनों में भारतवासियों ने जो विपत्तियाँ सही हैं, उनसे यदि शासकों के मन का भाव नहीं बदला है, तो इससे हम लोगों को कोई आश्चर्य नहीं हुआ है। किसी ने उचित रूप से जो स्वार्थ इस देश में स्थापित किए हो अथवा जो अधिकार प्राप्त किये हो, उनमें से एक को भी काग्रेस हानि नहीं पहुँचाना चाहती। अग्रेजों के साथ उसका कोई झगडा नहीं है। परन्तु देश पर ब्रिटिश-जाति का जो असह्य प्रभुत्व है, उसका वह अपने पूर्ण नैतिक बल से विरोध करती है और उसपर अपना असन्तोष प्रकट करती है और बराबर ऐसा करती रहेगी। हम लोगों का अन्त तक अहिंसात्मक रहना निश्चित है, इसलिए यह भी निश्चित ही है कि राष्ट्र की कामनायें भी शीघ्र ही पूरी होगी। यद्यपि अधिकारी लोग सत्याग्रह-आन्दोलन के सम्बन्ध में बहुत ही कटु और प्राय अपमानकारी भाषा का व्यवहार करते है, तो भी हमारा यही कथन है।

अन्त में हम लोग फिर एक बार आप लोगों को उस कष्ट के लिए धन्यवाद देते हैं जो आपने शान्ति स्थापित करने के लिए उठाया है, परन्तु हम यह सूचित कर

देना चाहते है कि अभी ऐसा उपयुक्त समय नही आया है जबकि समझौते की बात-चीत और आगे चल सके। काग्रेस-सगठन के प्रधान अधिकारी और कार्यकर्त्ता इस समय जेलो में बन्द है, इसलिए स्पष्टत हम लोग बहुत विवश है। हम लोग दूसरो से सुनी हुई बातो के आधार पर ही सब मार्गे उपस्थित करते रहे है और अपने विचार बतलाते रहे है, इसलिए सम्भव है कि उनमें कुछ दोष या त्रुटियाँ हो। इसलिए इस समय जिन लोगो के हाथ में सगठन का काम है, वे स्वभावत हम लोगो मे से किसी के साथ भेंट करना चाहेंगे। उस दशा मे, और जब कि स्वय सरकार भी शान्ति स्थापित करने के लिए उतनी ही उत्सुक होगी, उन्हें हम लोगो के पास तक पहुँचने में कोई कठिनाई न होगी।

मो० क० गाधी, सरोजिनी नायडू, वल्लभभाई पटेल, जयरामदास दौलतराम।"

परिशिष्ट ७

साम्प्रदायिक 'निर्णय'

साम्प्रदायिक निर्णय का सम्राट् की सरकार ने जो ऐलान किया था वह, अविकल रूप में, नीचे लिखे अनुसार है :—

१ सम्राट-सरकार की ओर से, गोलमेज-परिषद् के दूसरे अधिवेशन के अन्त में, १ दिसम्बर को, प्रधानमन्त्री ने जो घोषणा की थी, और जिसकी ताईद उसके बाद ही पार्लमेण्ट के दोनो हाउसो ने भी कर दी थी, उसमें यह स्पष्ट कर दिया था कि यदि भारतवर्ष में रहने वाली विविध जातियाँ साम्प्रदायिक प्रश्नो पर किसी ऐसे समझौते पर न पहुँच सकी जो सब दलो को मान्य हो, जिसे कि हल करने में परिषद् असफल रही है, तो सम्राट्-सरकार का यह दृढ निश्चय है कि इस वजह से भारत की वैधानिक प्रगति नही रुकनी चाहिए और इस बाधा को दूर करने के लिए वह स्वय एक आरजी योजना तैयार करके उसे लागू करेगी।

२ गत १९ मार्च को, यह सूचना मिलने पर कि किसी समझौते पर पहुँचने में विविध जातियाँ लगातार असफल हो रही है, जिससे नया शासन-विधान

बनने की योजना आगे नही बढ सकती, सम्राट्-सरकार ने कहा था कि इस सम्बन्ध में उठने वाली कठिनाइयो और विवादास्पद बातो पर वह फिर से सावधानी के साथ विचार करेगी। अब उसे इस बात का यकीन हो गया है कि जब तक नये शासन-विधान के अन्तर्गत अल्प-सख्यक जातियो की स्थिति-सम्बन्धी समस्याओ के कम-से-कम कुछ पहलुओ का निर्णय न हो जायगा तब तक विधान बनाने की दिशा मे आगे कोई प्रगति नही हो सकती।

३ इसलिए सम्राट्-सरकार ने यह निश्चय किया है कि भारतीय शासन-विधान-सम्बन्धी प्रस्तावो में, जोकि यथासमय पार्लमेण्ट के सामने पेश किये जायगे, वह ऐसी धारायें रक्खेगी, जिससे नीचे लिखी योजना पर अमल हो सके। इस योजना का कार्य-क्षेत्र जान-बूझकर प्रान्तीय-कौन्सिलो में ब्रिटिश-भारत की विभिन्न जातियो के प्रतिनिधित्व तक ही सीमित रक्खा गया है, केन्द्रीय धारा-सभा में प्रतिनिधित्व का विचार फिलहाल नीचे दिये हुए २०वें पैराग्राफ में उल्लिखित कारणो से नही किया गया है। लेकिन योजना के कार्य-क्षेत्र को सीमित रखने के निश्चय का आशय इस बात को महसूस न कर सकना नही है, कि विधान बनाने में ऐसी अनेक अन्य समस्याओ का भी निर्णय करना होगा जिनका अल्प-सख्यक जातियो के हक में बडा महत्त्व है, बल्कि इस आशा से यह निश्चय किया गया है कि प्रतिनिधित्व के तरीके और अनुपात के मूल प्रश्न पर जब एक बार घोषणा कर दी गई तो फिर उन दूसरे साम्प्रदायिक प्रश्नो पर, कि जिनके बारे मे अभी आवश्यक विचार नही किया जा सका है, सम्भवत जातिया स्वय ही कोई मार्ग ढूढ निकालेंगी।

४ सम्राट्-सरकार चाहती है कि इस बात को बिलकुल स्पष्ट-रूप से समझ लिया जाय कि इस निर्णय मे रद्दोबदल करने के लिए जो भी कोई बात-चीत होगी उसमें वह भाग नही लेगी और न इसमें सशोधन कराने के ऐसे किसी आवेदन-पत्र पर विचार करने को ही वह तैयार होगी, जो इसमे सम्बन्धित सभी दलो-द्वारा समर्थित न हो। लेकिन सद्भाग्य से अगर कोई सर्व-सम्मत समझौता हो जाय, तो वह उसके लिए दरवाजा बन्द नही करना चाहती। इसलिए, नया भारत-शासन-विधान कानून बनने से पहले, अगर उसे इस बात का सन्तोष हो जाय कि इससे सम्बन्धित जातिया किसी दूसरी व्यावहारिक योजना पर, किसी एक या अधिक प्रान्तो या समस्त ब्रिटिश-भारत के लिए, परस्पर एक-मत है, तो वह पार्लमेंट से इस बात की सिफारिश करने को तैयार रहेगी कि प्रस्तुत योजना की जगह उस योजना को रख दिया जाय।

५ गवर्नर-वाले प्रान्तो की कौन्सिलो या लोअर हाउस में, बशर्ते कि वहाँ

अपर चेम्बर हो, सदस्यो के स्थान नीचे २४वे पैराग्राफ में बतलाये हुए हिसाब के अनुसार रहेगे।

६ मुसलमान, यूरोपियन और सिक्ख सदस्यो का चुनाव पृथक् साम्प्रदायिक निर्वाचनो के द्वारा होगा, जिन्हे (सिवा उन भागो के कि जिन्हे खास-खास सूरतो मे 'पिछडा हुआ' होने के कारण निर्वाचन-क्षेत्र से बाहर रक्खा जाय) तमाम प्रान्त मे अलग रखने की व्यवस्था की जायगी।

पृथक् निर्वाचन

इस बात की स्वय विधान में गुजाइश रक्खी जायगी कि जिससे दस वर्ष के बाद निर्वाचन-व्यवस्था का (और ऐसी ही दूसरी व्यवस्थाओ का, जो नीचे दी हुई है) इससे सम्बन्धित जातियो की स्वीकृति से, जिसे जानने के लिए उपयुक्त तरीके सोचे जायँगे, पुनरावलोकन कर दिया जायगा।

७ वे सब जायज मतदाता, जो किसी मुसलमान, सिक्ख, ईसाई (पैराग्राफ १० देखिए), एंग्लो-इडियन (पैराग्राफ ११ देखिए) या यूरोपियन निर्वाचन-क्षेत्र के मतदाता नही है, आम निर्वाचन-क्षेत्र मे मत दे सकेंगे।

८ बम्बई में कुछ चुने हुए बहुसख्यक सदस्यो के आम निर्वाचन-क्षेत्रो में ७ स्थान मराठो के लिए सुरक्षित रहेगे।

दलित-जातियाँ

९ 'दलित-जातियो' में जिन्हे मत देने का अधिकार होगा, वे आम निर्वाचन-क्षेत्र में मत देगे। इस बात को मद्देनजर रखते हुए कि अकेले इस उपाय से इन जातियो के लिए किसी कौन्सिल में अपना काफी प्रतिनिधित्व प्राप्त करना फिलहाल बहुत समय तक सम्भव नही है, उनके लिए कुछ विशेष स्थान रक्खे जायँगे, जैसा कि २४वे पैराग्राफ में बताया है। इन जगहो का चुनाव विशेष निर्वाचन-क्षेत्रो के द्वारा होगा, जिनमे दलित-वर्ग वाले वही लोग मत देंगे जिन्हें मत देने का अधिकार प्राप्त होगा। ऐसे खास निर्वाचन-क्षेत्र में मत देने वाला कोई भी व्यक्ति, जैसा कि ऊपर कहा गया है, किसी आम निर्वाचन-क्षेत्र में भी मत दे सकेगा। ऐसे निर्वाचन-क्षेत्र उन खास-खास इलाको में बनाने की मशा है जहाँ दलित-वर्गवालो की काफी आबादी है, और मदरास अहाते के अलावा और कही ऐसा न होना चाहिए कि प्रान्त का सारा इलाका उन्ही से घिर जाय।

बगाल में, ऐसा मालूम पडता है कि, कुछ आम निर्वाचन-क्षेत्रो में अधिकाश मतदाता दलित-वर्गों के व्यक्ति होंगे। इसलिए, जब तक इस बारे मे और अधिक पूछताछ न हो जाय, तब तक, उस प्रान्त में दलित-जातियो के विशेष निर्वाचन-क्षेत्रो से चुने जाने वाले सदस्यो की सख्या अभी निश्चित नही की गई है। सरकार चाहती यह है कि बगाल-कौन्सिल में दलित-जातियो के कम-से-कम १० सदस्य तो पहुँच ही जायँ।

जो लोग (अगर उन्हे मत देने का अधिकार है) दलित-जातियो के विशेष निर्वाचन-क्षेत्रो से मत दे सकेंगे उनकी हरेक प्रान्त में क्या व्यवस्था की जायगी, यह अभी अन्तिम रूप से तय नही हुआ है। सामान्यत इसका आधार वे साधारण सिद्धान्त होंगे, जिनका कि मताधिकार-समिति की रिपोर्ट मे प्रतिपादन किया गया है। मगर उत्तर-भारत के कुछ प्रान्तो मे, जहाँ अस्पृश्यता की आम कसौटी को लागू करना सम्भवत कुछ बातो में वहाँ की विशेष परिस्थिति के अनुपयुक्त होगा, इस सम्बन्ध में थोडा रद्दोबदल करना आवश्यक होगा।

सम्राट्-सरकार का खयाल है कि दलित-जातियो के विशेष निर्वाचन-क्षेत्रो की आवश्यकता एक सीमित समय के लिए ही होगी। इसलिए विधान में वह ऐसी बात रखना चाहती है कि बीस साल के आखिर में, अगर उससे पहले ही छठे पैराग्राफ में उल्लिखित निर्वाचन का सशोधन करने के आम अधिकार के द्वारा यह रद न हो गया होगा तो, ये नही रहेंगे।

भारतीय ईसाई

(१०) भारतीय ईसाइयो के लिए रक्खी जाने वाली जगहो का चुनाव पृथक् साम्प्रदायिक निर्वाचन-क्षेत्रो के द्वारा होगा। यह करीब-करीब निश्चित सा मालूम पडता है कि किसी प्रान्त के पूरे इलाके में भारतीय ईसाइयो के निर्वाचन-क्षेत्र बनाना अव्यावहारिक होगा, इसलिए प्रान्त के किसी एक या दो चुने हुए इलाको में ही भारतीय ईसाइयो के विशेष निर्वाचन-क्षेत्र रक्खे जायँगे। इन निर्वाचन-क्षेत्रो के भारतीय ईसाई मतदाता आम निर्वाचन-क्षेत्रो मे मत नही देंगे, लेकिन इन इलाको से बाहर के भारतीय ईसाई मतदाता आम निर्वाचन-क्षेत्रो में ही अपने मत देंगे। बिहार और उडीसा मे विशेष व्यवस्था करनी पडेगी, क्योकि वहाँ भारतीय ईसाइयो का काफी बडा भाग आदिम जातियो के अन्दर शुमार होता है।

एग्लो-इडियन

(११) एग्लो-इडियन सदस्यो का निर्वाचन पृथक्-साम्प्रदायिक निर्वाचन-क्षेत्रो के द्वारा होगा। फिलहाल, मगर कोई व्यावहारिक कठिनाइया उत्पन्न हो तो उनकी तहकीकात करने की गुजाइश रखते हुए, यह सोचा गया है कि एग्लो-इडियन-निर्वाचन-क्षेत्र हरेक प्रान्त के सारे इलाके के लिए होगे, जिनमें मत-गणना डाक से भेजी जाने वाली पर्चियो के द्वारा होगी, लेकिन इस बारे में अभी कोई अन्तिम फैसला नही हुआ है।

(१२) पिछडे हुए इलाको के प्रतिनिधियो के लिए जो स्थान रक्खे गये है उनकी पूर्त्ति का उपाय अभी विचाराधीन है, और ऐसे सदस्यो की जो सख्या रक्खी गई है उसे अभी, जब तक कि ऐसे इलाको के बारे में की जानेवाली वैधानिक व्यवस्था का कोई अन्तिम निश्चय न हो जाय, आरजी समझना चाहिए।

स्त्रियां

(१३) सम्राट् की सरकार इस बात को बहुत महत्त्व देती है कि नई कौन्सिलो मे स्त्री-सदस्याये भी रहे, चाहे उन की सख्या थोडी ही हो। उसका ख्याल है कि प्रारम्भ मे, यह ध्येय तब तक सफल नही हो सकता जब तक कि कुछ स्थान खास तौर पर स्त्रियो के लिए सुरक्षित न कर दिये जायें। साथ ही उसका यह भी खयाल है कि स्त्री-सदस्याये किसी एक ही जाति की नही होनी चाहिएँ और सो भी बिना किसी अनुपात के। इसलिए खास तौर पर स्त्रियो के लिए रक्खी जाने वाली हरेक 'सीट' का चुनाव एक ही जाति के मत-दाताओ तक मर्यादित करने के सिवा, जिसमें कि नीचे २४वे पैराग्राफ में स्पष्ट किया हुआ अपवाद रहेगा, और कोई ऐसी पद्धति ढूढ निकालने में वह असमर्थ रही है, जिससे कि यह खतरा रोका जा सके और जो प्रतिनिधित्व की उस शेष योजना के अनुरूप हो कि जिसे ग्रहण करना आवश्यक समझा गया है। अतएव, इसके अनुसार, जैसा कि नीचे २४वें पैराग्राफ में स्पष्ट किया गया है, विभिन्न जातियो मे स्त्रियो की विशेष जगहो को खास तौर पर विभाजित कर दिया गया है। इन विशेष निर्वाचन-क्षेत्रो में किस खास ढग से निर्वाचन होगा, यह अभी विचाराधीन है।

विशेष वर्ग

(१४) 'मजदूरों' के लिए रक्खी गई सीटो का चुनाव अ-साम्प्रदायिक निर्वाचन-क्षेत्रो के द्वारा होगा। निर्वाचन-व्यवस्था का अभी निश्चय करना है, लेकिन

बहुत सम्भव है कि अधिकांश प्रान्तों में, जैसा कि मताधिकार-समिति ने सिफारिश की है, मजदूर-निर्वाचन-क्षेत्र कुछ तो मजदूर-संघ होंगे और कुछ विशेष निर्वाचन-क्षेत्र।

(१५) उद्योग-व्यवसाय, खानों और खेतिहरों के सदस्यों का चुनाव व्यवसाय-संघ (चेम्बर आफ़ कामर्स) और दूसरे विविध-संघों के द्वारा होगा। इन स्थानों की निर्वाचन-व्यवस्था की तफ़सील के लिए अभी और छान-बीन होना आवश्यक है।

(१६) जमींदारों के लिए रक्खे गये विशेष स्थानों का चुनाव जमींदारों के विशेष निर्वाचन-क्षेत्रों के द्वारा होगा।

(१७) विश्व-विद्यालय के लिए रक्खे गये स्थानों का चुनाव किस तरह किया जाय, यह अभी विचाराधीन है।

(१८) प्रान्तीय कौन्सिलों में प्रतिनिधित्व के इन प्रश्नों का निर्णय करने में सम्राट्-सरकार को काफी तफ़सील में जाना पड़ा है, इतने पर भी निर्वाचन-क्षेत्रों की नई हदबन्दी तो अभी बाकी ही रह गई है। सरकार का इरादा है, कि जितनी जल्दी हो सके हिन्दुस्तान में इस दिशा में प्रयत्न शुरू कर दिया जाय।

कुछ जगह तो, सदस्यों की जो संख्या इस समय रक्खी गई है सम्भवत उसमें थोड़ा फ़र्क कर देने से, निर्वाचन-क्षेत्रों की नई हदबन्दी मुकम्मिल तौर पर ठीक हो जायगी। अतएव सम्राट्-सरकार इस प्रयोजन के लिए मामूली हेर-फेर करने का अधिकार अपने लिए रक्षित रखती है, बशर्ते कि उस हेर-फेर से विभिन्न जातियों के अनुपात में कोई असली अन्तर न पड़े। लेकिन बंगाल और पंजाब के मामले में ऐसा कोई हेर-फेर नहीं किया जायगा।

द्वितीय चेम्बर

(१९) विधान-सम्बन्धी विचार-विनिमय में अभी तक तुलनात्मक रूप में, प्रान्तों में द्वितीय चेम्बर रखने के प्रश्न पर कम ध्यान दिया गया है, अत इस सम्बन्ध की कोई योजना बनाने या इस बात का निर्णय करने से पहले कि किन-किन प्रान्तों में द्वितीय चेम्बर रखने चाहिएँ, और विचार होने की आवश्यकता है।

सम्राट्-सरकार का विचार है कि प्रान्तों में द्वितीय चेम्बर का निर्माण इस तरह होना चाहिए जिससे, छोटी कौन्सिल बनाने के परिणाम-स्वरूप, भिन्न-भिन्न जातियों के बीच रक्खे गये अनुपात में कोई खास फर्क न पड़े।

(२०) केन्द्रीय धारासभा (बड़ी कौंसिल) के आकार और निर्माण के

प्रश्न मे फिलहाल सम्राट्-सरकार नही पडना चाहती, क्योकि इसमें अन्य प्रश्नो के साथ देशी-राज्यो के प्रतिनिधित्व का प्रश्न भी उपस्थित होता है, जिस पर अभी और विचार होना है। उसके सम्बन्ध में विचार करते समय, तमाम जातियो के उसमें पर्याप्त प्रतिनिधित्व के दावो पर वह निस्सन्देह पूरा ध्यान देगी।

सिन्ध का पृथक्करण

(२१) सम्राट्-सरकार ने इस सिफारिश को मजूर कर लिया है, कि सिन्ध एक पृथक् प्रान्त बना दिया जाय, यदि उसका व्यवस्था-खर्च निकलने-लायक सन्तोष-जनक उपाय निकल आयें। क्योकि सघीय-राजस्व की अन्य समस्याओ के सम्बन्ध में उठने वाली आर्थिक समस्याओ पर अभी और विचार होना है, सम्राट्-सरकार ने यह ठीक समझा है कि बम्बई-प्रान्त और सिन्ध की पृथक् कौंसिलो की सख्यायें तो दी ही जायें पर उस के साथ ही मौजूदा बम्बई-प्रान्त की दृष्टि से भी (अर्थात्, सिन्ध-सहित बम्बई-प्रान्त की) कौन्सिल की सख्यायें भी दे दी जायें।

(२२) बिहार-उडीसा के जो अक दिये गये है वे मौजूदा प्रान्त के लिहाज से है, क्योकि उडीसा को पृथक् प्रान्त बनाने के बारे में अभी भी तहकीकात हो रही है।

(२३) नीचे दिये हुए २४वें पैराग्राफ में बरार-सहित मध्यप्रान्त की कौंसिल के सदस्यो की जो सख्यायें दी है उससे यह न समझना चाहिए कि बरार की भावी वैधानिक स्थिति के बारे में कोई निर्णय किया जा चुका है। अभी तक ऐसा कोई निर्णय नही हुआ है।

(२४) विभिन्न प्रान्तो की कौंसिलो (सिर्फ छोटी कौंसिलो) में सदस्यो की सख्यायें नीचे लिखे अनुसार रहेगी —

१. मद्रास

आम (६ स्त्रिया)	१३४
दलित-जाति वाले	१८
पिछडे हुए इलाको का प्रतिनिधि	१
मुसलमान (१ स्त्री)	२९
भारतीय ईसाई (१ स्त्री)	९
एंग्लो-इडियन	२
यूरोपियन	३
उद्योग-व्यवसाय, खान और खेतिहर	६
जमीदार	१
विश्व-विद्यालय	१
मजदूर	६
कुल	२१०

२. बम्बई
(सिन्ध-सहित)

आम (५ स्त्रिया)	९७
दलित जाति वाले	१०

पिछड़े हुए इलाको का प्रतिनिधि	१
मुसलमान (१ स्त्री)	६३
भारतीय ईसाई	३
एंग्लो-इण्डियन	२
यूरोपियन	४
उद्योग-व्यवसाय आदि	८
जमीदार	३
विश्व-विद्यालय	१
मजदूर	८
कुल	२००

३. बंगाल

आम (२ स्त्रिया)	८०
दलित-जाति वाले	०
मुसलमान (२ स्त्रिया)	११९
भारतीय ईसाई	२
एंग्लो-इण्डियन (१ स्त्री)	४
यूरोपियन	११
उद्योग-व्यवसाय आदि	१९
जमीदार	५
विश्व-विद्यालय	२
मजदूर	८
कुल	२५०

४. संयुक्तप्रान्त

आम (४ स्त्रिया)	१३२
दलित-जाति वाले	१२
मुसलमान (२ स्त्रिया)	६६
भारतीय ईसाई	२
एंग्लो-इण्डियन	१
यूरोपियन	२
उद्योग-व्यवसाय आदि	३
जमीदार	६
विश्व-विद्यालय	१
मजदूर	३
कुल	२२८

५. पंजाब

आम (१ स्त्री)	४३
सिक्ख (१ स्त्री)	३२
मुसलमान (२ स्त्रिया)	८६
भारतीय ईसाई	२
एंग्लो-इण्डियन	१
यूरोपियन	१
उद्योग-व्यवसाय आदि	१
जमीदार	५
विश्व-विद्यालय	१
मजदूर	३
कुल	१७५

६. बिहार-उड़ीसा

आम (३ स्त्रिया)	९९
दलित-जाति वाले	७
पिछड़े हुए इलाको के प्रतिनिधि	८
मुसलमान (१ स्त्री)	४२
भारतीय ईसाई	२
एंग्लो-इण्डियन	१
यूरोपियन	२
उद्योग-व्यवसाय आदि	४
जमीदार	५

विश्व-विद्यालय	१
मजदूर	४
कुल	१७५

७. मध्यप्रान्त
(बरार-सहित)

आम (३ स्त्रिया)	७७
दलित-जातिवाले	१०
पिछड़े हुए इलाको का प्रतिनिधि	१
मुसलमान	१४
एग्लो-इण्डियन	१
यूरोपियन	१
उद्योग-व्यवसाय आदि	२
जमीदार	३
विश्व-विद्यालय	१
मजदूर	२
कुल	११२

८. आसाम

आम (१ स्त्री)	४४
दलित-जातिवाले	४
पिछड़े हुए इलाको के प्रतिनिधि	६
मुसलमान	३४
भारतीय ईसाई	१
यूरोपियन	१
उद्योग-व्यवसाय आदि	११
मजदूर	४
कुल	१०८

९. पश्चिमोत्तर-सीमा-प्रान्त

आम	९
सिक्ख	३
मुसलमान	३६
जमीदार	२
कुल	५०

सिन्ध-रहित बम्बई और सिन्ध के स्वतन्त्र प्रान्त के लिए भी सदस्यो का सख्या-विभाग किया गया है, जो इस प्रकार है—

१०. बम्बई (सिन्ध निकल जाने पर)

आम (५ स्त्रिया)	१०९
दलित-जातिवाले	१०
पिछड़े हुए इलाको का प्रतिनिधि	१
मुसलमान (१ स्त्री)	३०
भारतीय ईसाई	३
एग्लो-इण्डियन	२
यूरोपियन	३
उद्योग-व्यवसाय आदि	७
जमीदार	२
विश्व-विद्यालय	१
मजदूर	७
कुल	१७५

११. सिन्ध

आम (१ स्त्री)	१९
मुसलमान (१ स्त्री)	३४
यूरोपियन	२
उद्योग-व्यवसाय आदि	२
जमीदार	२
मजदूर	१
कुल	६०

विशेष निर्वाचन-क्षेत्र

उद्योग-व्यवसाय, खान और खेतिहरो के प्रतिनिधियो का चुनाव जिन सस्थाओ के द्वारा होगा वे कुछ प्रान्तो में मुख्यत यूरोपियनो की होगी और कुछ प्रान्तो में मुख्यत हिन्दुस्तानियो की, लेकिन उनकी रचना विधान-द्वारा नियन्त्रित नही की जायगी। अतएव निश्चित रूप से यह बताना सम्भव नही है कि हरेक प्रान्त में ऐसे कितने सदस्य यूरोपियन होगे और कितने हिन्दुस्तानी होगे। मगर सम्भावना यह है कि प्रारम्भ में उनकी सख्यायें लगभग इस प्रकार होगी —

मदरास—४ यूरोपियन और २ हिन्दुस्तानी।

बम्बई (सिन्ध-सहित)—५ यूरोपियन और ३ हिन्दुस्तानी।

बगाल—१४ यूरोपियन और ५ हिन्दुस्तानी।

सयुक्तप्रान्त—२ यूरोपियन और १ हिन्दुस्तानी।

पजाब—१ हिन्दुस्तानी।

बिहार-उडीसा—२ यूरोपियन और २ हिन्दुस्तानी।

मध्यप्रान्त (बरार-सहित)—१ यूरोपियन और १ हिन्दुस्तानी।

आसाम—८ यूरोपियन और ३ हिन्दुस्तानी।

बम्बई (सिन्ध को अलग करके)—४ यूरोपियन और ३ हिन्दुस्तानी।

सिन्ध—१ यूरोपियन और १ हिन्दुस्तानी।

बम्बई में, चाहे सिन्ध उसमे शामिल रहे या नही, आम सीटो में से ७ मराठो के लिए सुरक्षित रहेगी।

बगाल में दलित-जाति के सदस्यो की सख्या का अभी निश्चय नही हुआ, पर वह १० से अधिक नही होगी। आम निर्वाचन-क्षेत्र से चुने जानेवालो की सख्या ३० होगी, जिसमे दलित-जातिवालो के लिए जो सख्या निश्चित हो वह भी शामिल है।

पजाब में जमीदार-सदस्यो मे एक 'जमीदार' रहेगा। चार ऐसे स्थानो का चुनाव सयुक्त-निर्वाचन-द्वारा विशेष निर्वाचन-क्षेत्रो से होगा। निर्वाचनो का विभाजन इस प्रकार रक्खा जायगा जिससे चुने जानेवाले सदस्यो में सभवत १ हिन्दू, १ सिक्ख और २ मुसलमान होगे।

आसाम के आम निर्वाचन-क्षेत्र से चुने जानेवाले सदस्यो मे एक स्त्री के चुने जाने का जो विधान रक्खा गया है उसकी पूर्ति शिलाग के एक असाम्प्रदायिक निर्वाचन-क्षेत्र से की जायगी।

प्रधान-मन्त्री का स्पष्टीकरण

नवीन भारतीय शासन-विधान के निर्माण से सम्बन्धित कुछ साम्प्रदायिक समस्याओ के बारे में सम्राट्-सरकार ने जो निश्चय किया है, उसका मसविदा अब हिन्दुस्तान में पहुँच गया है और दोनो देशो मे एक ही साथ प्रकाशित किया जा रहा है।

उसके प्रकाशित होने पर, प्रधान-मन्त्री ने निम्न-लिखित वक्तव्य निकाला है —

"न केवल प्रधान-मन्त्री के रूप में, बल्कि भारत के एक ऐसे मित्र की हैसियत से जिसने पिछले दो साल से अल्प-सख्यक जातियो के प्रश्न मे दिलचस्पी ली है, मुझे लगता है कि साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व पर सरकार आज जिस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण निर्णय की घोषणा कर रही है उसे समझाने के लिए एक-दो शब्द मुझे भी जोडने चाहिएँ।

भारत के साम्प्रदायिक विवादास्पद मामलो में हस्तक्षेप करने का हमने कभी इरादा नही किया। गोलमेज-परिषद् के दोनो अधिवेशनो में हमने इस बात को बिलकुल स्पष्ट कर दिया था, जबकि हमने इस बात की बहुत कोशिश की कि हिन्दुस्तानी लोग खुद ही इस मामले को तय कर लें। क्योकि शुरू से ही हम यह महसूस करते आए हैं कि हम जो भी निश्चय करे वह कैसा ही क्यो न हो, सम्भवत हरेक जाति अपनी महत्त्वपूर्ण मागो के आधार पर उसकी टीका-टिप्पणी करेगी, लेकिन हमें विश्वास है कि अन्त में जाकर भारतीय आवश्यकताओ पर ध्यान रखने की भावना पैदा होगी और सब जातिया देखेंगी कि नये शासन-विधान को अमल में लाने मे, जोकि हिन्दुस्तान को ब्रिटिश-राष्ट्र-समूह में एक नया पद देनेवाला है, सहयोग करना ही उनका फर्ज है।

आपसी राजीनामे से निर्णय में संशोधन हो सकता है

हमारा कर्त्तव्य स्पष्ट था। चूंकि विभिन्न जातियो के आपस में किसी बात पर सहमत न हो सकने के कारण किसी भी तरह की वैधानिक प्रगति के रास्ते में ऐसी बाधा उपस्थित हो रही थी जिसका दूर होना प्राय असम्भव था, अत सरकार के लिए यह लाजिमी हो गया कि वह इस सम्बन्ध में कुछ करे। अतएव, भारतीय प्रतिनिधियो की लगातार प्रार्थनाओ के जवाब मे सरकार की ओर से गोलमेज-परिषद् में मैंने जो वादे किये थे उनके अनुसार, और उस वक्तव्य के अनुसार जो मैंने ब्रिटिश-पार्लमेंट मे दिया था और जिसपर उसने अपनी सहमति दरसाई थी, सरकार आज प्रान्तीय-

कौंसिलो के प्रतिनिधित्व की एक योजना प्रकाशित कर रही है। यह योजना यथासमय पार्लमेण्ट में पेश की जायगी, यदि उस समय तक विभिन्न जातियाँ अपने-आप इससे अच्छी और किसी योजना पर सहमत न हो जायँ।

शासन-सुधारो का प्रस्तावित बिल कानून बने उससे पहले, किसी भी समय, यदि विभिन्न जातिया अपने-आप किसी निर्णय पर पहुँच सके, तो हमें बडी प्रसन्नता होगी। लेकिन पुराने अनुभव के आधार पर सरकार को यह विश्वास हो गया है कि इस सम्बन्ध मे अब और बातचीत चलाना व्यर्थ है, इसलिए वह उसमें शामिल नही हो सकती। फिर भी अगर किसी प्रान्त या प्रान्तो अथवा सारे ब्रिटिश-भारत के लिए कोई ऐसी योजना तैयार हो जो सामान्यत उससे सम्बन्धित सब दलो के लिए सन्तोष-प्रद और स्वीकार्य हो, तो सरकार अपनी योजना की जगह उसे रखने के लिए रजामन्द और तैयार रहेगी।

पृथक् निर्वाचन का मामला

सरकार के निर्णय की दाद देने के लिए उन वास्तविक परिस्थितियो पर ध्यान रखना आवश्यक है जिनमें कि वह किया गया है। गत अनेक वर्षो से अल्पसख्यक जातिया पृथक् निर्वाचन को, अर्थात् एक खास तरह के मत-दाताओ का अपने तई प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्रो मे बँट जाना, अपने अधिकारो का बडा भारी सरक्षण समझती आ रही है। पिछले दिनो हुई वैधानिक प्रगति की प्रत्येक अवस्था में पृथक्-निर्वाचन को स्थान मिला है। सरकार चाहे जितना सयुक्त-निर्वाचन की किसी एक-सी प्रथा को अधिक पसन्द करती हो, जिन सरक्षणो को अल्प-सख्यक जातिया अभी भी बहुत महत्त्वपूर्ण समझती है उन्हे खतम करना उसे सम्भव नही जान पडा। भूतकाल में ऐसा किस प्रकार हुआ, इसकी छान-बीन में पडना व्यर्थ है। मै तो किसी कदर भविष्य का ही विचार कर रहा हूँ। मै तो यह चाहता हूँ कि बडी और छोटी सब जातियाँ मेल-जोल और शान्ति के साथ सयुक्त-रूप से काम करें, ताकि सरक्षण के विशेष प्रकार की आगे कोई जरूरत न पडे। मगर जबतक ऐसा न हो, तबतक सरकार को तो वस्तु-स्थिति का ध्यान रख कर प्रतिनिधित्व का यह असाधारण रूप कायम रखना ही पडेगा।

दलित-जातियों की स्थिति

इस निर्णय की दो विशेषतायें है, जिनका उल्लेख करना मेरे लिए आवश्यक है। इनमें से एक का सम्बन्ध तो दलित-जातियो से है और दूसरी का स्त्रियो के प्रति-

निधित्व से। सरकार ऐसी किसी योजना का समर्थन नही कर सकती, जिसमें इनमें से किसी एक की भी अनिवार्यता का खयाल न किया गया हो।

दलित-जातियो के मामले में हमारा उद्देश्य यह रहा है कि प्रान्तो में जहा उनकी सख्या अधिक है, प्रान्तीय कौंसिलो में उनकी पसन्द के प्रतिनिधि जाने की व्यवस्था हो, लेकिन उसके साथ पृथक् निर्वाचन की व्यवस्था न रहे, जिससे कि उनका अलगपन स्थायी हो जायगा। अतएव, दलित-वर्गो के मत-दाता आम हिन्दू-निर्वाचन-क्षेत्रो में ही अपने मत देंगे और ऐसे निर्वाचन-क्षेत्र में चुना हुआ सदस्य इस वर्ग के प्रति जो उत्तर-दायित्व है उससे प्रभावित होगा, लेकिन अगले २० साल तक कुछ ऐसे विशेष स्थान भी रहेंगे, जिनका चुनाव ऐसे इलाको में, जहा कि खास तौर पर ऐसे दलित मतदाता होंगे, विशेष निर्वाचन-मण्डलो द्वारा होगा। इस प्रकार दलित-वर्गो के कुछ व्यक्तियो को मत देने का अधिकार मिल जाता है, पर इस विधि-विरोध की न्याय्यता का समर्थन इस बात से होता है कि उनकी मागो के प्रभाव-कारक रूप से प्रकट किये जाने और उनकी वास्तविक स्थिति में सुधार होने का अवसर प्रदान करने के लिए इसकी ज्यादा जरूरत है।

स्त्रियों के अधिकार

स्त्री-मतदाताओ के बारे में, हाल के वर्षो मे यह अच्छी तरह जाना जा चुका है कि उन्नति की एक कुजी भारत के महिला-आन्दोलन के ही हाथ में है। यह कहना अत्युक्ति नही है कि जबतक भारत की स्त्रिया शिक्षित और प्रभावशाली नागरिको के रूप में उपयुक्त भाग न लें तबतक भारत उस स्थिति को नहीं पहुँच सकता जो वह ससार में प्राप्त करना चाहता है। इसमें सन्देह नही कि स्त्रियों के प्रतिनिधित्व को साम्प्रदायिक ढग देने मे बहुत बडी आपत्तिया है, लेकिन अगर स्त्रियो के ही लिए सदस्य-स्थान सुरक्षित रखना है और विभिन्न जातियो में स्त्री-सदस्यो की सख्या का उपयुक्त विभाजन करना है तो, मौजूदा परिस्थिति में, इसके सिवा दूसरा कोई उपाय नही है।

इस स्पष्टीकरण के साथ, हिन्दुस्तान की विभिन्न जातियो के सम्मुख मैं यह योजना पेश करता हूँ, जो भारत की मौजूदा परिस्थिति में परस्पर-विरोधी दावो के बीच समतौलता बनाये रखने का एक उपयुक्त और ईमानदारी के साथ किया हुआ प्रयत्न है। उन्हे चाहिए कि वे इसे ग्रहण कर लें, हालाकि सहसा किसी भी जाति को यह सन्तोष नही होगा कि भारत की वैधानिक प्रगति की अगली किस्त में प्रतिनिधित्व

[illegible] जिसमें उनकी सब मांगों की पूर्ति हो जाती हो। [illegible] यह बात याद रखनी चाहिए कि ऐसी कोई [illegible] सन्तोष हो जाय, बार-बार जोर दिये जाने पर भी [illegible]।

साम्प्रदायिक सहयोग, उन्नति की शर्त

इसके, [illegible] एक ऐसा मामला है जिसका फैसला खुद हिन्दुस्तानी ही कर सकते हैं। सरकार [illegible] जो आशा कर सकती है वह यही है कि [illegible] जो विधान-सम्बन्धी प्रगति में बाधक हो [illegible], और हिन्दुस्तानी उन [illegible] करने में अपना ध्यान लगा सकेंगे [illegible] अभी भी हल होना बाकी है। हिन्दुस्तान [illegible] कि भारतीय वैधानिक प्रगति के इस नाजुक [illegible] साम्प्रदायिक सहयोग उनकी प्रगति की शर्त है और [illegible] नये शासन-विधान को अमली रूप देने की जिम्मे-दारी [illegible]।

२

गोलमेज-परिषद् का अल्पसंख्यक समझौता और साम्प्रदायिक निर्णय

(तुलनात्मक अध्ययन)

नीचे हम गोलमेज-परिषद् के अल्पसंख्यक समझौते और ब्रिटिश-सरकार के तत्सम्बन्धी निर्णय की सिफारिशें साथ-साथ देते है, जिससे यह पता चल जाय कि लन्दन में भिन्न-भिन्न अल्प-संख्यक जातियो की ओर से जो मांगें रक्खी गई थी उनसे सरकार का निर्णय कितना भिन्न है।

अल्प-संख्यक-समझौते में विभिन्न वर्गों को प्राप्त होनेवाली सीटो को मद्देनजर रखते हुए प्रत्येक जाति के कुल सदस्यो की संख्यायें निश्चित कर दी गई है।

सरकारी निर्णय में विशेष वर्गों को अलग किया गया है, जिससे विशेष वर्गों के द्वारा विभिन्न जातियो की तुलनात्मक रूप में मिली हुई संख्या में और वृद्धि भी हो सकती है।

लेकिन ऐसे विशेष वर्गों के द्वारा विभिन्न जातियो की सदस्य-संख्या न भी

वढे तो भी सरकारी निर्णय में दी गई और अल्पसख्यक समझौते में मागी गई सख्याओ पर एक तुलनात्मक नजर डालना अरोचक न होगा।

प्रान्त		कौंसिल के सदस्यो की सख्या	हिन्दू			मुसलमान	ईसाई	एग्लोइण्डियन	यूरोपियन	सरहदी	सिक्ख
			सवर्ण	दलित	कुल						
आसाम	अ० स०	१००	३८	१३	५१	३५	३	१	१०	०	
	सा० नि०	१०८	४४	४	४८	३४	१	०	७	९	
वगाल	अ० स०	२००	३८	३५	७३	१०२	२	३	२०	०	
	सा० नि०	२५०	७०	१०	८०	११९	२	४	११	०	
विहार-उडीसा	अ० स०	१००	५१	१४	६५	२५	१	१	५	३	
	सा० नि०	१७५	९९	७	१०६	४२	२	१	२	८	
वम्वई	अ० स०	२००	८८	२८	११६	६६	२	३	१३	०	
	सा० नि०	२००	८७	१०	९७	६३	३	२	४	०	
मदरास	अ० स०	२००	१०२	४०	१४२	३०	१४	४	८	२	
	सा० नि०	२१५	१३४	१८	१५२	२९	९	२	३	१	
पजाव	अ० स०	१००	१४	१०	२४	५१	१५	१५	२	०	२०
	सा० नि०	१७५	०	०	४३	८६	२	१	१	०	३२
सयुक्तप्रान्त	अ० स०	१००	४४	२०	६४	३०	१	२	३	०	
	सा० नि०	२२८	१३२	१२	१४४	६६	२	१	२	०	
मध्यप्रान्त	अ० स०	१००	५८	२०	७८	१५	१	२	२	२	
	सा० नि०	११२	७७	१०	८७	१४	१	१	१	२	

परिशिष्ट ८

गांधीजी के अनशन-सम्बन्धी पत्र-व्यवहार तथा पूना-पैक्ट

१

पत्र-व्यवहार का आधार

गोलमेज-परिषद् की अल्प-सख्यक समिति की अन्तिम बैठक में (१३-११-३१) गांधीजी ने जो भाषण दिया, उसमें उन्होंने कहा :—

"अन्य अल्प-सख्यक जातियो के दावे को तो मै समझ सकता हूँ, किन्तु अछूतो की ओर से पेश किया गया दावा तो मेरे लिए सबसे अधिक निर्दय घाव है। इसका अर्थ यह हुआ कि अस्पृश्यता का कलक सदैव के लिए कायम रहे।

"भारत की स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए मै अछूतो के वास्तविक हित को न बेचूगा। मै स्वय अछूतो के विशाल समुदाय का प्रतिनिधि होने का दावा करता हूँ। यहा मै केवल काग्रेस की ओर से ही नही बोलता, प्रत्युत् स्वय अपनी ओर से भी बोलता हूँ और दावे के साथ कहता हूँ, कि यदि सब अछूतो का मत लिया जाय तो मुझे उनके मत मिलेंगे और मेरा नम्बर सबके ऊपर होगा। और मै भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक दौरा करके अछूतो से कहूँगा कि अस्पृश्यता दूर करने का उपाय पृथक् निर्वाचक-मण्डल अथवा कौंसिलो में विशेष रक्षित स्थान नही है।

"इस समिति को और समस्त ससार को यह जान लेना चाहिए कि आज हिन्दू-समाज में सुधारको का ऐसा समूह मौजूद है जो अस्पृश्यता के इस [illegible], जो उनका नही प्रत्युत् कट्टर एव रूढिवादी हिन्दुओ का कलक है, धोने के लिए [illegible]-बद्ध है। हम नही चाहते कि हमारे रजिस्टरो में और हमारी मर्दुमशुमारी मे [illegible] नाम की जुदा जाति लिखी जाय। सिक्ख सदैव के लिए सिक्ख, मुसलमान हमेशा के लिए मुसलमान और अग्रेज सदा के लिए अग्रेज रह सकते है, किन्तु क्या अछूत भी, सदैव के लिए अछूत रहेगे? अस्पृश्यता जीवित रहे, इसकी अपेक्षा मै यह [illegible] समझूगा कि हिन्दू-धर्म डूब जाय।

"इसलिए डॉ० अम्बेडकर के अछूतो को ऊँचा उठा देने की [illegible] तथा उनकी योग्यता के प्रति अपना पूरा सम्मान प्रगट करते हुए भी मै [illegible]-पूर्वक कहूँगा, कि उन्होने जो-कुछ किया है वह अत्यन्त भूल [illegible]

किया है, और कदाचित् उन्हे जो कटु अनुभव हुए होगे उनके कारण उनकी विवेक-शक्ति पर परदा पड गया है। मुझे यह कहना पडता है, इसका मुझे दु ख है, किन्तु यदि मै यह न कहूँ तो अछूतो के हित के प्रति, जो मेरे लिए प्राणो के समान है, मै सच्चा न होऊँगा। सारे ससार के राज्य के बदले भी मै उनके अधिकारो को न छोड़ूगा। मै अपने उत्तरदायित्व का पूरा ध्यान रखता हूँ, जब मै कहता हूँ कि डॉ० अम्बेडकर जब सारे भारत के अछूतो के नाम पर बोलना चाहते है, तब उनका यह दावा उचित नही है, इससे हिन्दू-धर्म मे जो विभाग हो जायँगे वह मैं जरा भी सन्तोप के साथ देख नही सकता।

"अछूत यदि मुसलमान अथवा ईसाई हो जायँ तो मुझे उसकी कुछ परवा नही, मै वह सह लूगा, किन्तु प्रत्येक गाव में यदि हिन्दुओ के दो भाग हो जायँ, तो हिन्दू-समाज की जो दशा होगी, वह मुझसे सही न जा सकेगी। जो लोग अछूतो के राजनैतिक अधिकारो की बात करते है, वे भारत को नही पहचानते, और हिन्दू-समाज आज किस प्रकार बना हुआ है यह नही जानते। इसलिए मै अपनी पूरी शक्ति से यह कहूँगा कि इस बात का विरोध करनेवाला यदि मै अकेला होऊँ तो भी मै अपने प्राणो की बाजी लगाकर भी इसका विरोध करूँगा।"

२

पत्र-व्यवहार

१. गाधीजी ने ११ मार्च १९३२ को यरवडा-जेल से निम्नलिखित पत्र सर सेम्युअल होर के पास भेजा :—

प्रिय सर सेम्युअल होर,

आपको कदाचित् स्मरण होगा कि गोलमेज-परिषद् में अल्प-सख्यको का दावा उपस्थित होने पर मैंने अपने भाषण के अन्त में कहा था कि मै दलित-जातियो को पृथक्-निर्वाचन का अधिकार दिये जाने का प्राण देकर भी विरोध करूँगा। यह बात जोश मे आकर या अलकार के लिए नही कही गई थी। वह एक गम्भीर वक्तव्य था। उस वक्तव्य के अनुसार मैंने भारत लौटने पर पृथक्-निर्वाचन के, कम-से-कम दलित वर्गों के लिए, विरुद्ध लोकमत तैयार करने की आशा की थी। पर यह होनहार न था।

दलित-वर्गों को पृथक् निर्वाचनाधिकार देने के सम्बन्ध में मुझे कौन-सी

आपत्तिया है, उन्हें दुहराने की आवश्यकता नही। मै अनुभव करता हूँ कि मै उन्हींमे से एक हूँ। उनका मामला दूसरो से बिलकुल भिन्न है। कौंसिलो मे उन्हे प्रतिनिधित्व मिलने के विरुद्ध मै नही हूँ। मैं तो इसे पसन्द करूँगा कि उनमे से प्रत्येक बालिग—स्त्री-पुरुष दोनो—को शिक्षा या सम्पत्ति किसीका भी विचार न कर मतदाता बनाया जाय, यद्यपि दूसरो के लिए मताधिकार की योग्यता इससे अधिक हो। पर मेरा मत है कि पृथक्-निर्वाचन उनके लिए और हिन्दू-धर्म के लिए हानिकर है, चाहे केवल राज-नैतिक दृष्टि से यह कैसा ही क्यो न हो। पृथक्-निर्वाचन से उन्हे जो हानि होगी उसे समझने के लिए यह जानने की जरूरत है कि वे किस प्रकार उच्च वर्ग के हिन्दुओ के बीच बसे हुए हैं और उनके आश्रित हैं। जहातक हिन्दू-धर्म का सम्बन्ध है वह तो पृथक्-निर्वाचन से छिन्न-भिन्न हो जायगा।

मेरे लिए इन वर्गो का प्रश्न मुख्यत नैतिक और धार्मिक है। राजनैतिक दृष्टि, यद्यपि वह महत्त्वपूर्ण है, नैतिक और धार्मिक दृष्टि के सामने नगण्य हो जाती है।

इस सम्बन्ध में मेरे भाव आपको यह स्मरण करके समझने होगे कि इन वर्गो की स्थिति के सम्बन्ध में मुझे बचपन से दिलचस्पी है, और इनके लिए मै अनेक बार अपना सब-कुछ खोने के लिए तैयार हो चुका हूँ, मैं यह आत्म-प्रशसा के लिए नही कह रहा हूँ, क्योकि मै अनुभव करता हूँ कि उच्च श्रेणी के हिन्दुओ का कोई भी प्रायश्चित्त उस क्षति की किसी भी अश मे पूर्ति नही कर सकता जो उन्होंने दलित-वर्गों को सदियो से जान-बूझकर गिरा रखकर की है। पर मैं जानता हूँ कि पृथक्-निर्वाचन न प्रायश्चित्त है और न उस गहरे पतन की औषधि, जिससे दलित-वर्ग कष्ट पा रहे है। इसलिए मैं सम्राट्-सरकार को सविनय सूचित करता हूँ कि यदि आपके निश्चय से दलित-वर्गों को पृथक्-निर्वाचनाधिकार मिलेगा तो मुझे आमरण अनशन करना होगा।

मैं जानता हूँ—और मुझे दुख है—कि कैदी की दशा मे मेरे ऐसा करने से सम्राट्-सरकार को बडी परेशानी होगी और बहुत-से लोग इसे बहुत अनुचित समझेंगे कि मेरे दर्जे का मनुष्य राजनैतिक क्षेत्र में ऐसी-कार्यप्रणाली प्रचलित करे जिसे वे अधिक नही तो पागलपन कहेंगे। अपने पक्ष-समर्थन के लिए मै केवल इतना ही कह सकता हूँ कि मेरे लिए वह कार्य, जिसे करने का मैंने विचार किया है, उद्देश्य-साधन की कोई प्रणाली नही वरन् मेरे अस्तित्व का एक अग है। यह मेरी आत्मा की पुकार है जिसकी मै अवज्ञा नही कर सकता चाहे, इससे मेरे समझदार होने की ख्याति नष्ट ही क्यो न हो जाय। इस समय जहातक मैं देखता हूँ, मेरा जेल से छूट जाना भी मेरे

अनशन के कर्तव्य को किसी प्रकार कम आवश्यक न बना सकेगा। इतने पर भी मैं आशा कर रहा हूँ कि मेरी सारी आशंका बिलकुल निराधार होगी और ब्रिटिश-सरकार दलित-वर्गों के लिए पृथक्-निर्वाचन की व्यवस्था करने का बिलकुल विचार नहीं कर रही है।

शायद मेरे लिए उस दूसरे विषय का भी उल्लेख कर देना अच्छा होगा, जो मुझे व्याकुल कर रहा है और मुझे इसी प्रकार अनशन करने के लिए बाध्य कर सकता है। वह है दमन का प्रकार। मैं नहीं कह सकता कि कब मुझे ऐसा धक्का लगे जो इस त्याग के लिए मुझे बाध्य कर दे। दमन कानून की उचित सीमा को भी पार करता हुआ दिखाई दे रहा है। देश में सरकारी आतंक फैल रहा है। अंग्रेज और भारतीय अधिकारी पाशविक बनाये जा रहे हैं। छोटे-बड़े भारतीय अधिकारियों का नैतिक पतन हो रहा है, क्योंकि जनता के प्रति विश्वास-घात और अपने ही भाइयो के साथ अमानुष व्यवहार को प्रशंसनीय कहकर सरकार उसके लिए उन्हें पुरस्कृत करती है। देशवासी भयभीत किये जा रहे हैं। भाषण-स्वातंत्र्य नष्ट कर दिया गया है। अमन-कानून के नाम पर गुण्डाशाही चल रही है। सार्वजनिक सेवा के लिए घर से निकली हुई महिलाओ की आबरू जाने का भय है।

मेरी राय में यह सब इसलिए किया जा रहा है, कि कांग्रेस स्वतन्त्रता के जिस भाव का समर्थन कर रही है वह कुचल डाला जाय। साधारण कानून की सविनय-अवज्ञा करनेवालो को दण्ड देकर ही दमन का अन्त नहीं हो रहा है। अनियंत्रित शासन के नये हुक्मो को, जिनका मुख्य उद्देश लोगो को नीचा दिखाना है, तोडने के लिए यह दमन लोगो को उत्तेजित और बाध्य कर रहा है।

इन कार्यों में मुझे तो लोकतंत्र का भाव बिल्कुल नहीं दिखाई दे रहा है। सच तो यह है कि हाल में मैंने इंग्लैण्ड में जो-कुछ देखा उससे मेरी यह राय कायम हो गई कि आपका लोकतंत्र सिर्फ ऊपरी और दिखाऊ है। अधिक-से-अधिक महत्त्व की बातो में व्यक्तियो और समूहों ने पार्लमेण्ट की राय लिये बिना ही निर्णय कर डाले है और इन निर्णयो का समर्थन ऐसे सदस्यो ने किया है जो शायद ही जानते हों कि हम क्या कर रहे हैं। मिस्र देश के सम्बन्ध में यही हुआ, १९१४ के युद्ध के सम्बन्ध में यही हुआ, और भारत के सम्बन्ध में यही हो रहा है। लोकतंत्र नामक पद्धति में एक आदमी को इतना बड़ा और अनियंत्रित अधिकार हो कि ३० करोड से भी अधिक लोगो के एक प्राचीन राष्ट्र के सम्बन्ध में वह चाहे जैसी आज्ञा दे, तथा उन आज्ञा को काम में लाने के लिए विनाश के सबसे भयंकर शस्त्र को मैदान में ले आवे, इन

कल्पना के ही विरुद्ध मेरी आत्मा विद्रोह करती है। मुझे तो यह लोकतन्त्र का अभाव मालूम होता है।

यह दमन उन दो जातियो के सम्बन्ध को, जो पहले ही खराब हो चुका है, और खराब किये बिना नही रह सकता। मै इस प्रवाह को कैसे रोक सकता हूँ? सविनय-अवज्ञा को मै इसके लिए रोक नही सकता। मेरा उसपर धर्म के जैसा विश्वास है। मैं अपने-आपको स्वभावत लोकतन्त्रवादी समझता हूँ। मेरे लोकतन्त्र में, बल-प्रयोग-द्वारा अपनी इच्छा को औरो पर लादना सम्भव नही है। अत जहा-जहा बल-प्रयोग आवश्यक या उचित समझा जाता है वैसे अवसरो पर उपयोग करने के लिए ही सविनय-अवज्ञा की कल्पना की गई है। यह कष्ट उठाने की क्रिया है, और यदि आवश्यक हो तो सविनय-अवज्ञा करनेवाले को मृत्यु तक अनशन करना चाहिए। वह समय मेरे लिए अभी नही आया है। मेरी अन्तरात्मा मुझे इसके लिए स्पष्ट शब्दो में आदेश नहीं दे रही है। पर बाहर की घटनाओ से मेरा हृदय भी काप रहा है। अत जब मैं आपको यह लिख रहा हूँ कि दलित-जातियो के सम्बन्ध में मेरा अनशन करना सम्भव है तब यदि साथ ही यह भी न बता दू कि इसके सिवा भी अनशन की एक और सम्भावना है, तो मै आपसे सच्चा व्यवहार न करूँगा।

कहने की आवश्यकता नहीं कि आपके साथ जो पत्र-व्यवहार हो रहा है उसे मैंने अपनी ओर से बहुत ही गुप्त रक्खा है। अवश्य ही सरदार वल्लभभाई पटेल और श्री महादेव देसाई, जो अभी हमारे साथ रहने को भेजे गये है, इस सम्बन्ध मे सब-कुछ जानते है। पर आप इस पत्र का चाहे-जैसा उपयोग अवश्य ही करेंगे।

हृदय से आपका—

मो० क० गाधी

२ सर सेम्युअल होर ने १३ अप्रैल १९३२ को गाधीजी को निम्न उत्तर भेजा :—

इडिया आफिस, ह्वाइट हॉल,

१३ अप्रैल, १९३२

प्रिय गाधीजी,

आपकी ११ मार्च की चिट्ठी के उत्तर मे मैं यह लिख रहा हूँ, और मैं पहले ही कह देता हूँ कि दलित-श्रेणियो के लिए पृथक-निर्वाचन के प्रश्न पर आपके भावावेग को मैं पूरी तरह समझता हूँ। मैं यही कह सकता हूँ कि इस प्रश्न के केवल गुणावगुणो पर जो भी निर्णय आवश्यक हो उसे हम करना चाहते है। आप जानते ही है कि लॉर्ड

लोथियन की कमिटी ने अपना दौरा समाप्त नहीं किया है और वह जिस किसी निश्चय पर पहुँचेगी उसे प्राप्त होने में कुछ हफ्ते अवश्य लग जायेंगे। जब हमें यह रिपोर्ट प्राप्त हो जायगी तब उसकी सिफारिशों पर बहुत ही ध्यानपूर्वक विचार करना होगा, और हम तबतक कोई निर्णय न करेंगे जबतक हम कमिटी के विचारों के सिवा उन विचारों पर भी गौर न कर लेंगे जिन्हें आपने और आपके समान विचार रखनेवालों ने इतने जोर के साथ प्रकट किये हैं। मुझे विश्वास है कि यदि आप हमारे स्थान में होते तो आप भी ठीक वैसा ही कार्य करते जैसा हम करना चाहते हैं। कमिटी की रिपोर्ट प्रकाशित होने तक राह देखिए, फिर उसपर पूरी तरह विचार कीजिए और किसी अन्तिम निश्चय पर पहुँचने के पहले उन मतों पर ध्यान दीजिए जिन्हें दोनों पक्षों ने इस विवादग्रस्त प्रश्न पर प्रकट किये हैं। इससे अधिक मैं नहीं कह सकता। मैं नहीं समझता कि आप मुझसे अधिक कुछ कहने की आशा रखते होंगे।

आर्डिनेन्सों के सम्बन्ध में मैं वही बातें दुहरा सकता हूँ जो मैं सार्वजनिक और व्यक्तिगत रूप से कह चुका हूँ। मुझे विश्वास है कि व्यवस्थित सरकार की नींव पर ही जान-बूझकर आक्रमण होते देख उन्हें जारी करना आवश्यक था। मुझे यह भी विश्वास है कि भारत-सरकार और प्रान्तीय-सरकार दोनों अपने व्यापक अधिकारों का दुरुपयोग नहीं कर रही हैं और इस बात की भरसक कोशिश कर रही हैं कि उनका बेजा और बदले की भावना से उपयोग न किया जाय। आतंककारी कार्यों से अपने अफसरों और जाति के अन्य वर्गों की रक्षा करने तथा कानून और व्यवस्था के तत्त्वों को बनाये रखने के लिए जितने समय तक असाधारण उपायों से काम लेने को हम बाध्य हैं उतने अधिक समय तक हम उन्हें जारी न रक्खेंगे।

आपका—

सेम्युअल होर

३. गांधीजी ने यरवडा जेल से १८ अगस्त १९३२ को प्रधान-मन्त्री को निम्न पत्र भेजा —

प्रिय मित्र,

दलित-वर्गों के प्रतिनिधित्व के प्रश्न पर ११ मार्च को मैंने सर सेम्युअल होर को जो चिट्ठी लिखी वह उन्होंने आपको तथा मन्त्रि-मण्डल को दिखा दी होगी। यह चिट्ठी इस चिट्ठी का अंग समझी जाय और इसीके साथ पढ़ी जाय।

मैंने अल्पमत वर्गों के प्रतिनिधित्व पर ब्रिटिश-सरकार का निश्चय पढ़ा है और

पढकर उदासीन-भाव से अलग रख दिया है। मैंने सर सेम्युअल होर को जो चिट्ठी लिखी और सेंट जेम्स पैलेस मे १३ नवम्बर १९३१ को गोलमेज-परिषद् की अल्पसंख्यक-समिति मे जो घोषणा की थी उसके अनुसार आपके निर्णय का विरोध मैं अपने प्राणो की बाजी लगाकर करूँगा। ऐसा करने का उपाय यही है कि मै प्राण त्यागने तक लगातार अनशन करने की घोषणा कर दू और नमक और सोडा के साथ या उसके बिना पानी के सिवा और किसी प्रकार का अन्न ग्रहण न करूँ। यह अनशन तभी समाप्त होगा जब इस व्रत के रहते ब्रिटिश-सरकार अपनी इच्छा से या सार्वजनिक मत के दबाव से अपने निश्चय पर फिर विचार करे और साम्प्रदायिक-निर्वाचन की अपनी योजना, दलित-वर्गों के सम्बन्ध में, वापस ले ले, जिनके प्रतिनिधियो का चुनाव साधारण निर्वाचन-क्षेत्रो से हो और सबका समान-मताधिकार रहे, फिर यह कितना ही व्यापक क्यो न हो जाय।

यदि बीच में इस रीति से उक्त निर्णय पर फिर से विचार न हुआ तो यह अनशन साधारण अवस्था मे अगले २० सितम्बर के दोपहर से आरम्भ होगा।

मेरी यह भी इच्छा है कि मेरी यह चिट्ठी और सर सेम्युअल होर की लिखी हुई चिट्ठी शीघ्र-से-शीघ्र प्रकाशित की जाय। मैंने अपनी ओर से पूरी ईमानदारी के साथ जेल के नियमो का पालन किया है और अपनी इच्छा या इन दो चिट्ठियो का मजमून सरदार वल्लभभाई पटेल और महादेव देसाई इन दो साथियो को छोड और किसीको नही बताया है। पर यदि आप इसे सम्भव बना दे तो मै चाहता हूँ कि मेरी चिट्ठियो का प्रभाव जनता पर पडे। इसलिए उन्हें शीघ्र प्रकाशित करने का मै अनुरोध करता हूँ।

खेद है कि मुझे यह निश्चय करना पडा। पर मै अपनेको धार्मिक पुरुष समझता हूँ और इस नाते मेरे सामने कोई दूसरा मार्ग नही रह गया है। सर सेम्युअल होर को मैंने जो चिट्ठी लिखी उसमें मै कह चुका हूँ कि परेशानी से बचने के लिए ब्रिटिश-सरकार मुझे छोड देने का निश्चय भले ही करे, पर मेरा अनशन बराबर जारी ही रहेगा क्योंकि अब मैं अन्य किसी उपाय से इस निर्णय का विरोध करने की आशा नही कर सकता। और सम्मानयुक्त उपाय को छोड किसी दूसरे उपाय से अपनी रिहाई करा लेने की मेरी बिलकुल इच्छा नही है।

सम्भव है, मेरा निर्णय दूषित हो और मेरा यह विचार बिलकुल गलत हो कि दलित-वर्गों के लिए पृथक्-निर्वाचन रहना उनके या हिन्दुत्व के लिए हानिकर है। यदि ऐसा हो तो अपने जीवन-सिद्धान्त के अन्य अगो के सम्बन्ध में मेरे सही रहने की

सम्भावना नही। उस दशा में अनशन करके मर जाना मेरी भूल के लिए प्रायश्चित्त होगा और उन असख्य स्त्री-पुरुषो के सिर से एक बोझ दूर हो जायगा जो मेरी समझदारी पर बालको-जैसा विश्वास रखते है। पर यदि मेरा निर्णय ठीक हो, और मुझे सन्देह नहीं कि यह ठीक है, तो इस निश्चय से मेरे जीवन का कार्यक्रम उचित रूप से पूर्ण होगा, जिसके लिए मैंने २५ साल से भी अधिक समय मे यत्न किया है और जिसमें काफी सफलता मिली है।

आपका विश्वसनीय मित्र—
मो० क० गांधी

४. प्रधान-मन्त्री श्री रैमजे मैकडानल्ड ने ८ सितम्बर को निम्न पत्र गांधीजी के पास भेजा :—

प्रिय गांधीजी,

आपका पत्र मिला। पढकर आश्चर्य, और कहना चाहता हूँ कि, बहुत ही हार्दिक दुःख भी हुआ। इसके सिवा मै यह कहने के लिए भी बाध्य हूँ कि दलित-वर्ग के सम्बन्ध में सम्राट्-सरकार के निर्णय का वास्तविक अर्थ क्या है, इसे समझने मे आपको भ्रम हो रहा है। हम इस बात को सदा समझते रहे है कि आप दलित-वर्ग के सदा के लिए हिन्दू-जाति से अलग कर दिये जाने के अटल विरोधी है। गोलमेज-परिषद् की अल्पसख्यक-समिति में आपने अपनी स्थिति बिलकुल साफ तौर से बताई थी और अपने ११ मार्चवाले पत्र में सर सेम्युअल होर को फिर से भी आपने अपना मत बता दिया था। हम यह भी जानते हैं कि हिन्दू जनता के एक बहुत बड़े भाग का भी इस विषय में वही मत है जो आपका है। अत दलित वर्ग के प्रतिनिधित्व के प्रश्न पर विचार करते समय हमने उसपर बहुत ही सावधानी से विचार किया।

अछूतो की समस्याओ से मिली हुई बहु-सख्यक अपीलो तथा उनकी सामाजिक बाधाओ के विचार से, जिन्हें आम तौर से सभी स्वीकार करते है और खुद आप भी अनेक बार स्वीकार कर चुके है, कौंसिलो के प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में उनके न्याययुक्त अधिकार की रक्षा करना हमने अपना कर्तव्य समझा। साथ ही हमें इस बात का भी उतना ही ध्यान रहा है कि हमारे हाथ से कोई ऐसी बात न होनी चाहिए जो अछूतो को सदा के लिए हिन्दू-जाति से अलग कर दे। अपने ११ मार्चवाले पत्र मे आपने खुद ही कहा है कि आप अछूतो को कौंसिलो में प्रतिनिधित्व दिये जाने के खिलाफ नही हैं।

सरकारी योजना के अनुसार अछूत हिन्दू-जाति के अग बने रहेंगे और उनके साथ बराबरी की हैसियत मे शामिल होकर वोट दे सकेंगे। पर २० साल तक निर्वाचन में, हिन्दुओ के साथ शामिल रहते हुए भी, थोड़े-से खास हलको के जरिये अपने स्वार्थों की रक्षा का उपाय करते रहेंगे, जो हमारा निश्चय है कि वर्तमान स्थिति मे आवश्यक है।

जहा-जहा ऐसे हलके बनाये जायेंगे, अछूत-वर्ग साधारण हिन्दू-निर्वाचन-क्षेत्र के वोट से वचित न होगे, बल्कि उन्हें दो-दो वोट देने का अधिकार दे दिया जायगा, जिसमें हिन्दू-जाति के साथ उनका सम्बन्ध अविकल बना रहे।

आप जिसे साम्प्रदायिक निर्वाचन-क्षेत्र कहते है, अछूतो के लिए वैसे हलके हमने जान-बूझकर नही बनाये है और सम्पूर्ण अछूत-वोटरो को साधारण अर्थात् हिन्दू-निर्वाचन-क्षेत्रो मे शामिल कर दिया है, जिसमें उच्च-जाति के हिन्दू उम्मीदवारो को अछूत-वोटरो के पास जाकर वोट मागना पडे अथवा अछूत उम्मीदवारो को ऊँची जाति-वाले हिन्दू वोटरो के पास वोट मागने जाना पडे। इस प्रकार हिन्दू-जाति की एकता की सब प्रकार से रक्षा की गई है।

तथापि हमने सोचा कि उत्तरदायी शासन के आरम्भिक काल में जब प्रान्तो में शासनाधिकार उसी वर्ग के हाथ में रहेगा जिसका कौसिल मे बहुमत होगा अलबत्ता यह आवश्यक होगा कि दलित वर्ग, जिसके विषय में आप खुद भी स्वीकार करते है कि उच्च जाति के हिन्दुओ ने शताब्दियो से उन्हें नीची अवस्था में डाल रक्खा है, ९ में से ७ प्रान्तो की कौसिलो मे अपने कुछ ऐसे प्रतिनिधि भी भेज सके जो उनके दु ख-दर्दो और आदर्शो को प्रकट कर सकें और उनके विरुद्ध निर्णय होने से रोक सके, अर्थात् जिनके द्वारा इस वर्ग का मत प्रकट हो सके। प्रत्येक न्यायशील व्यक्ति को इस व्यवस्था की आवश्यकता स्वीकार करनी होगी। हमारे विचार से वर्तमान परिस्थिति मे सरक्षित-स्थान-सहित सयुक्त-निर्वाचन की व्यवस्था मे दलित-वर्ग के लिए अपने ऐसे सदस्य कौसिलो में भेजना सभव होगा जो उनके वास्तविक प्रतिनिधि और उनके सामने जिम्मेदार हो, चाहे मताधिकार की जितनी भी व्यवस्थाये इस समय सभव है उनमें से कोई भी क्यो न की जाय। कारण यह कि इस व्यवस्था में उनके प्राय सभी सदस्य उच्च जातियो के हिन्दुओ द्वारा ही चुने जायँगे।

हमारी योजना में अछूतो को साधारण निर्वाचन-क्षेत्रो में मताधिकार देते हुए उनके लिए थोडे से अलग हलके बना दिये गये है। मुसलमान आदि अल्प-सख्यको के लिए की गई साम्प्रदायिक निर्वाचन की व्यवस्था से यह रूप और प्रभाव मे सर्वथा भिन्न

है। एक मुसलमान साधारण हलके मे वोट न दे सकता है और न उम्मीदवार हो सकता है। मुसलमानो को जिस स्थान में जितनी जगहे दी गई है उससे वे एक भी अधिक नही प्राप्त कर सकते। अधिकतर प्रान्तो में उन्हें अपनी जन-सख्या के अनुपात से अधिक जगहें दी गई है। पर दलित-वर्ग को खास हलको के द्वारा जो जगहें दी गई है वे बहुत अल्प है और उनकी जन-सख्या के अनुपात के विचार से नही नियत की गई है। इस व्यवस्था का एकमात्र उद्देश यही है कि वे कौंसिलो मे अपने कुछ ऐसे प्रतिनिधि अवश्य भेज सकें जो केवल उन्हीके चुने हो। हर जगह उनके इन विशेष स्थानो की सख्या उनकी आबादी के अनुपात से बहुत कम है।

मैं समझता हूँ कि आप जो अनशन के द्वारा प्राण-त्याग का विचार कर रहे हैं, उसका उद्देश न तो यह है कि दलित-वर्ग दूसरे हिन्दुओ के साथ सयुक्त-निर्वाचन-क्षेत्र में शामिल हो, क्योकि यह अधिकार तो उन्हें मिल ही चुका है, और न यही है कि हिन्दुओ की एकता बनी रहे, क्योकि इसका भी उपाय किया जा चुका है, किन्तु केवल यह है कि अछूत लोग, जिनके लिए आज भीषण बाधायें उपस्थित होने की बात सभी स्वीकार करते है, अपने थोडे-से भी प्रतिनिधि ऐसे न भेज सकें, जो उनके अपने चुने हुए हो और जो उनके भाग्य की निर्णायक कौंसिलो में उनके प्रतिनिधि की हैसियत से बोल सकें।

सरकारी योजना के इन अति न्याय-युक्त तथा बहुत सोच-विचार कर किये हुए प्रस्तावो को देखते हुए मेरे लिये आपके निश्चय का कोई समुचित कारण देख सकना सर्वथा असम्भव हो गया है और मैं केवल यही सोच सकता हूँ कि वस्तुस्थिति को समझने में भ्रम हो जाने के कारण आपने ऐसा निश्चय किया है।

जब आपस में समझौता न कर सकने पर भारतीयो ने आमतौर से अपील की तब कही उसने अपनी इच्छा के विरुद्ध अल्पसख्यको के प्रश्न पर अपना फैसला सुनाना स्वीकार किया। अब वह उसे सुना चुकी है और अब जो शर्तें उसमें रक्खी गई है उनके सिवा और किसी तरह वह बदला नही जा सकता। अत मुझे खेद के साथ आपसे यही कहना पड रहा है कि सरकार का निश्चय कायम है और केवल विभिन्न सम्प्रदायो का आपस का समझौता ही उस निर्वाचन-व्यवस्था के बदले स्वीकार किया जा सकता है कि जिसे सरकार ने परस्पर-विरोधी दावो का सामञ्जस्य करने की सच्ची नीयत से तजवीज किया है।

आपका—

जे० रैमजे मैकडानल्ड

४. गांधीजी ने यरवदा सेन्ट्रल जेल से ६ सितम्बर १९३२ को प्रधानमंत्री को निम्न पत्र भेजा —

प्रिय मित्र,

आज तार द्वारा भेजे गए और प्राप्त हुए आपके स्पष्ट और पूर्ण उत्तर के लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। तथापि मुझे खेद है कि आपने मेरे निश्चय का ऐसा अर्थ किया जिसका मुझे कभी ख्याल ही न हुआ था। मैं उसी वर्ग की ओर से बोलने का दावा करता हूँ जिसके स्वार्थों की रक्षा करने के लिए, आप कहते हैं, मैं अनशन करके मर जाना चाहता हूँ। मुझे आशा थी कि इस आखिरी उपाय के कारण का कोई ऐसा स्वार्थपूर्ण अर्थ न करेगा। इसलिए बिना हिचक मैं फिर कहता हूँ कि मेरे लिए यह विषय शुद्ध धार्मिक विषय है। केवल यही बात कि 'दलित' वर्गों को द्विविध मत मिले हैं, उन्हें या सामान्यतः हिन्दू समाज को छिन्न-भिन्न होने से नहीं रोकती। 'दलित' वर्गों के लिए पृथक्-निर्वाचन की व्यवस्था मात्र से मुझे उस विष के इन्जेक्शन की गंध मिलती है जिससे हिन्दुत्व नष्ट हो जाता है और 'दलित' वर्गों को कुछ लाभ नहीं मिल सकता। कृपाकर मुझे यह कहने दीजिए कि आप कितनी ही सहानुभूति क्यों न रखते हों, आप ऐसे विषय में ठीक-ठीक निश्चय पर नहीं पहुँच सकते जो हिन्दू और अछूत दोनों के लिए जीवन-मरण का प्रश्न है और धार्मिक दृष्टि से बहुत महत्त्व रखता है।

मैं 'दलित' वर्गों के आवश्यकता से भी अधिक प्रतिनिधित्व का विरोध न करूँगा। मैं इसी बात के विरुद्ध हूँ कि वे कानून बनाकर हिन्दू-समाज से पृथक् कर दिये जायें (फिर वह पार्थक्य कितना ही सीमित क्यों न हो) जबतक वे इस समाज के अन्दर रहना चाहते हैं। क्या आप जानते हैं कि यदि आपका निश्चय बना रहा और शासन-विधान काम में आ जाय तो आप हिन्दू सुधारकों के, जिन्होंने अपने-आपको जीवन की हर दिशा में अपने दलित भाइयों का उद्धार करने के लिए समर्पण कर दिया है, कार्य की आश्चर्यजनक उन्नति को रोक देंगे ?

इसलिए मुझे खेदपूर्वक अपने पूर्व-निश्चय पर कायम रहने को लाचार होना पड़ता है।

आपकी चिट्ठी से भ्रम उत्पन्न हो सकता है, इसलिए मैं कह देना चाहता हूँ कि आपके निर्णय के अन्य अंगों से मैंने 'दलित' वर्गों के प्रश्न को अलग कर उसपर खास तौर से जो विचार किया है उसका यह अर्थ नहीं होता कि मैं आपके निर्णय के अन्य अंशों से सहमत हूँ। मेरी राय में अन्य कई अंश बहुत ही आपत्तिजनक हैं। पर मैं उन्हें ऐसा

नहीं समझता जो मुझे इतना आत्म-बलिदान करने की प्रेरणा करे जितना मेरी अन्तरात्मा ने 'दलित' वर्गों के सम्बन्ध में करने की मुझे प्रेरणा की है।

आपका विश्वसनीय मित्र—
मो० क० गांधी

६ गांधीजी ने १५ सितम्बर को अनशन के निश्चय के सम्बन्ध में बम्बई-सरकार को अपना जो वक्तव्य भेजा था और जो २१ सितम्बर को प्रकाशित किया गया था, वह इस प्रकार है :—

"मेरे अनशन का निश्चय ईश्वर के नाम पर, और जैसा कि मैं नम्रता के साथ विश्वास करता हूँ, उसके आदेश पर किया गया है। मित्रो का आग्रह है कि मै उसे कुछ दिनो के लिए टाल दू, जिससे जनता को अपना सगठन कर लेने का समय मिल जाय। मुझे खेद से कहना पड़ता है कि अब उसके दिन को कौन कहे, घण्टे को बदलना भी मेरे बस की बात नहीं है। प्रधान-मत्री के पत्र में जो बातें लिख चुका हूँ उनके अतिरिक्त और किसी भी कारण से मेरा उपवास टल नहीं सकता।

"मेरा भावी अनशन उन लोगो के विरुद्ध है जो मुझमें विश्वास रखते है, चाहे वे भारतीय हो या यूरोपियन, और उनके वास्ते नही है जो मुझमें विश्वास नहीं रखते। इसलिए वह अंग्रेज अधिकारी-वर्ग के विरुद्ध नहीं है, पर उन अग्रेज स्त्री-पुरुषो के विरुद्ध है जो अधिकारी-वर्ग के विरुद्ध उपदेशो को अनसुना करके भी मुझमें विश्वास करते है और मेरे पक्ष को न्याय-सगत मानते है। वह मेरे उन देशवासियो के विरुद्ध भी नहीं है जो मुझमें विश्वास नही रखते, चाहे वे हिन्दू हो या और कोई, किन्तु वह उन अगणित देशवासियो के विरुद्ध है—चाहे वे किसी भी दल और विचार के क्यो न हो—जिनका विश्वास है कि मेरा पक्ष न्याय का पक्ष है। सर्वोपरि, हिन्दू-समाज की अन्तरात्मा को सच्चा धर्म पालने के लिए प्रेरित करना उसका उद्देश है।

"केवल भावोद्दीपन मेरे सकल्पित उपवास का उद्देश न होगा। मैं अपना सारा वजन—जो-कुछ भी वह है—न्याय, शुद्ध न्याय के पलड़े पर धर देना चाहता हूँ। अत मेरी प्राण-रक्षा के लिए अनुचित उतावली और परेशानी न होनी चाहिए। इस वचन में मेरा अटल विश्वास है कि उसकी (भगवान् की) मरजी के बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। उसे इस देह से कुछ काम लेना होगा तो वह इसे बचावेगा। उसकी इच्छा के विरुद्ध कोई भी इसे बचा नहीं सकता। मनुष्य की दृष्टि से मैं कह सकता हूँ कि मेरा विश्वास है कुछ दिन तक वह बिना अन्न के जी सकता है।"

दलितो के पृथक्-निर्वाचन के साथ-साथ अस्पृश्यता की सरक्षा की तीव्र आलोचना करने के उपरान्त इस पत्र मे कहा गया था —

"यदि यह भ्रान्ति है, तो मुझे अवश्य चुपचाप उसका प्रायश्चित्त करने देना चाहिए, और ईश्वरीय प्रेरणा है, तो यह हिन्दू-धर्म की छाती पर से एक भारी चट्टान को हटा देगा। ईश्वर करे, मेरी यत्रणा हिन्दू-धर्म के अन्त करण को शुद्ध कर दे और उनके हृदयो को द्रवित भी कर सके जिनकी प्रवृत्ति तत्काल मुझे कष्ट पहुँचाने की हो रही है।

"मेरे उपवास के मुख्य हेतु के विषय में कुछ भ्रम मालूम होता हो, इसलिए मै फिर यह बता देना चाहता हूँ कि उसका उद्देश दलितवर्ग के लिए पृथक्-निर्वाचन की व्यवस्था का—चाहे वह किसी भी प्रकार की क्यो न हो—विरोध करना है। ज्योही वह वापस ले लिया गया कि मेरा अनशन समाप्त हो जायगा। स्थान-सरक्षण के सम्बन्ध में इस समस्या को हल करने का सर्वोत्तम प्रकार क्या होगा, इस विषय में भी मेरे निश्चित विचार है। पर एक कैदी की हैसियत से मै अपने प्रस्ताव उपस्थित करने के लिए अपने-आपको अधिकारी नही समझता। तथापि सयुक्त-निर्वाचन के आधार पर सवर्ण हिन्दुओ और दलित-वर्ग के जिम्मेदार नेताओ के बीच कोई समझौता हो, और वह सब प्रकार के हिन्दुओ की बडी-बडी सार्वजनिक सभाओ में स्वीकृत हो जाय, तो मैं उसे मान लूंगा।

"एक बात मै स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। यदि दलितवर्ग के प्रश्न का सन्तोष-जनक निपटारा हो जाय, तो इसका यह मतलब नही लगाना चाहिए कि साम्प्रदायिक प्रश्न के अन्य भागो के सम्बन्ध मे सरकार ने जो निश्चय किया है उसे मानने के लिए मै बाध्य हूँ। मै स्वय उसके और भी अनेक अशो का विरोधी हूँ, जिनके कारण मेरी समझ में कोई भी स्वतत्र एव लोकतन्त्र शासन-प्रणाली के अनुसार कार्य करना प्राय असम्भव है। इस प्रश्न का निर्णय सन्तोष-जनक रूप से हो जाने का यह मतलब भी न निकालना चाहिए कि जो शासन-विधान तैयार होगा, उसे मान लेना ही मेरे लिए लाजिमी होगा। ये ऐसे राजनैतिक सवाल हैं जिनपर विचार करना और जिनके सम्बन्ध में अपना निर्णय देना भारतीय कांग्रेस का ही काम है। ये व्यक्तिगत रूप से मेरे विचार-क्षेत्र से बिलकुल बाहर हैं। फिर इन प्रश्नो के सम्बन्ध में तो मैं अपनी निजी राय भी प्रकट नही कर सकता, क्योकि मै तो इस समय सरकार का कैदी हूँ।

"मेरे अनशन का सम्बन्ध एक निर्दिष्ट, एक सकुचित क्षेत्र से ही है। दलितवर्गों का प्रश्न प्रधानतया एक धार्मिक प्रश्न है, और उसके साथ मै अपने को विशेष रूप से सम्बद्ध समझता हूँ, क्योकि मै अपने जीवन में हमेशा ही उसपर विचार करता

रही हूँ। मै उसे अपने लिए एक ऐसी पवित्र धरोहर समझता हूँ, जिसकी जिम्मेवारी को मै छोड नही सकता।

"प्रकाश और तपस्या के लिए उपवास एक बहुत पुरानी प्रथा है। मैंने ईसाई-धर्म तथा इसलाम मे भी इसका उल्लेख देखा है। हिन्दू-धर्म में तो आत्म-शुद्धि एव तपस्या के उद्देश से किये गये उपवास के उदाहरण भरे पडे है। किन्तु यह एक विशेष एव उच्च उद्देश के साथ-साथ धर्म समझकर ही किया जाना चाहिए। फिर मैंने तो अपने लिए यथाशक्ति इसे वैज्ञानिक रूप दे डाला है। अत इस विषय का विशेषज्ञ होने के नाते मै अपने मित्रो और सहानूभूति प्रदर्शित करनेवालो को सचेत कर देना चाहता हूँ कि आप लोग बिना सोचे-समझे अथवा सहानुभूति की क्षणिक व्याकुलता में पडकर मेरा अनुकरण न करें। जो लोग ऐसा करने के लिए इच्छुक हो, उन्हें कठिन परिश्रम और अछूतो की नि स्वार्थ सेवा-द्वारा अपने को उसके योग्य बना लेना चाहिए, तब यदि उनके उपवास का समय आ गया होगा तो उनके हृदय मे भी स्वतन्त्र रूप से उसका प्रकाश पड जायगा।

अन्त में मै यह भी कह देना चाहता हूँ कि यह उपवास मैं पवित्र-से-पवित्र उद्देशों से प्रेरित होकर ही कर रहा हूँ, किसी भी व्यक्ति के प्रति क्रोध या द्वेष की भावना से प्रेरित होकर नही। मेरे लिए तो यह अहिंसा का ही एक रूप और उसकी अन्तिम मुहर है। अत यह स्पष्ट है कि जो लोग उन लोगो के प्रति वाद-विवाद में किसी तरह का द्वेष-भाव या हिंसा प्रदर्शित करेंगे, जिन्हे वे मेरे प्रतिकूल या मै जिस उद्देश की सिद्धि के लिए यत्न करता हूँ उसके विरुद्ध समझते हो, तो इस कार्य-द्वारा वे मेरी मृत्यु का आवाहन और भी शीघ्रतापूर्वक करेगे। उद्देशो की नही तो कम-से-कम इस उद्देश की सिद्धि के लिए तो यह परमावश्यक है कि अपने विरोधियो के साथ पूर्ण सौजन्य का व्यवहार किया जाय और उनके भावो के प्रति आदर दिखाया जाय।"

मो० क० गाधी

३

पूना का समझौता

कौंसिलो में दलित-वर्ग के प्रतिनिधित्व तथा उनके हित मे सम्बन्ध रखनेवाले कुछ दूसरे मामलो मे दलित-वर्ग और शेष हिन्दू सम्प्रदाय के नेताओ के बीच नीचे लिखी शर्तों पर पूना का समझौता हुआ —

१ प्रान्तीय कौंसिलो मे साधारण जगह में से नीचे लिखे अनुसार जगहे दलित-वर्गों के लिए सुरक्षित रहेंगी —

मदरास	३०	बम्बई और सिन्ध	१५
पजाब	८	बिहार-उड़ीसा	१८
मध्यप्रान्त	२०	आसाम	७
बगाल	३०	युक्तप्रान्त	२०
		कुल	१४८

प्रधान-मत्री के निश्चय में प्रान्तीय कौसिलो के लिए निर्धारित सदस्य-सख्याओ के आधार पर ये सख्यायें रक्खी गई हैं।

२ इन स्थानो के लिए निर्वाचन सयुक्त होगा, पर निर्वाचन-प्रणाली नीचे लिखे अनुसार होगी—

निर्वाचन-क्षेत्र की साधारण निर्वाचन-सूची मे दलित-वर्ग के जितने निर्वाचक रहेंगे उनका एक निर्वाचक-सघ होगा, जो दलित-वर्ग के सुरक्षित प्रत्येक स्थान के लिए दलित-वर्ग मे से ४ प्रतिनिधि चुनेगा। सघ के प्रत्येक सदस्य को एक ही वोट देने का अधिकार होगा और जिन चार उम्मीदवारो को सबसे अधिक मत मिलेंगे वे ही दलित-वर्ग के प्रतिनिधि होगे। और इस प्रारम्भिक चुनाव के चार प्रतिनिधि साधारण चुनाव के चार उम्मीदवार होगे, जिनमे से एक सयुक्त-निर्वाचन-द्वारा दलित-वर्ग का प्रतिनिधि चुना जायगा।

३ केन्द्रीय धारा-सभा में भी दलित-वर्ग का प्रतिनिधित्व सयुक्त-निर्वाचन के सिद्धान्त पर स्थित होगा। यहाँ भी इस वर्ग को सुरक्षित स्थान मिलेंगे और निर्वाचन-प्रणाली वैसी ही होगी जैसी प्रान्तीय कौसिलो के लिए।

४ केन्द्रीय धारा-सभा मे ब्रिटिश-भारत के लिए निर्धारित साधारण स्थानो में से १८ प्रतिशत स्थान दलित-वर्ग के लिए सुरक्षित रहेंगे।

५ केन्द्रीय तथा प्रान्तीय कौसिलो के लिए ४ उम्मीदवार चुनने की पूर्व-कथित निर्वाचन-प्रणाली दस वर्ष बाद उठ जायगी, यदि वह नीचे लिखी शर्त (६) के अनुसार आपस के समझौते से इसके पहले ही न उठ गई हो।

६ प्रान्तीय और केन्द्रीय कौसिलो में सुरक्षित स्थानो-द्वारा दलित-वर्ग के प्रतिनिधित्व की प्रथा तबतक जारी रहेगी जबतक इस समझौते से सम्बन्ध रखनेवाले सम्प्रदायो के आपस के समझौते से और कोई दूसरा निश्चय न हो।

७ दलित-वर्ग के लिए केन्द्रीय तथा प्रान्तीय कौसिलो के मताधिकार की योग्यता लोथियन-कमिटी की सिफारिश के अनुसार होगी।

८ किसी स्थानीय सस्था के निर्वाचन या सरकारी नौकरी पर नियुक्त होने

के लिए कोई केवल इसी कारण अयोग्य न समझा जायगा कि वह दलित-वर्ग का सदस्य है। इसकी पूरी कोशिश की जायगी कि इस सम्बन्ध में दलित-वर्ग को पर्याप्त प्रतिनिधित्व मिले, बशर्ते कि सरकारी नौकरी के लिए निर्धारित योग्यता दलित-वर्ग के सदस्य में हो।

९ प्रत्येक प्रान्त को शिक्षा के लिए दी जानेवाली आर्थिक सहायता में से यथेष्ट धन दलित-वर्ग के सदस्यो को शिक्षा-सम्बन्धी सुविधाये देने के लिए अलग कर दिया जायगा।

(हस्ताक्षर)

मदनमोहन मालवीय	डाक्टर अम्बेडकर	च० राजगोपालाचार्य
श्रीनिवासन्	तेजबहादुर सप्रू	एम० आर०जयकर
घनश्यामदास बिड़ला	एम० सी० राजा	एम० पिल्ले
सी० वी० मेहता	गवई	देवघर
स० बालू	वी० एस० कामत	राजभोज
ए० वी० ठक्कर	राजेन्द्रप्रसाद तथा अन्य नेतागण	

परिशिष्ट ९

१९३५ की भारत और ब्रिटेन का व्यापारिक सन्धि

ब्रिटिश-सरकार की ओर से सर वाल्टर रुन्सिमैन ने और भारत-सरकार की ओर से सर भूपेन्द्रनाथ मित्र ने लन्दन में जिस सधि-पत्र पर हस्ताक्षर किये है उसमें अन्य बातो के साथ-साथ यह भी लिखा है कि जिस समय भारतीय उद्योग को काफी सरक्षण दिया जाने का प्रश्न जाच के लिए टैरिफ-बोर्ड के सम्मुख पेश होगा उस समय भारत-सरकार ब्रिटेन के सम्बन्धित उद्योग को भी अपनी बात कहने और अन्य सम्बन्धित दलो की कही हुई बातो का उत्तर देने का पूरा अवसर देगी।

भारत-सरकार यह भी अगीकार करती है कि यदि सरक्षण-काल के बीच में ही रक्षित उद्योगो सम्बन्धी शर्तो में आमूल परिवर्तन किये जायंगे तो ब्रिटिश-सरकार की प्रार्थना पर या अपनी ही ओर से भारत-सरकार यह जाच करावेगी कि तीसरी कलम में दिये हुए सिद्धान्तो की दृष्टि से मौजूदा कर ठीक है या नही, और इस जाच मे ब्रिटेन के सम्बन्धित उद्योगो के आवेदन-पत्रो पर पूरा विचार किया जायगा।

मूल सन्धि-पत्र

नई दिल्ली, १० जनवरी

ओटावा के व्यापारिक समझौते की पुष्टि के रूप में ब्रिटिश-सरकार की ओर से सर वाल्टर रन्सिमैन ने और भारत-सरकार की ओर से सर भूपेन्द्रनाथ मित्र ने जिस सन्धि-पत्र पर आज लन्दन में हस्ताक्षर किये है वह इस प्रकार है —

ब्रिटिश-सरकार और भारत-सरकार इस पत्र-द्वारा स्वीकार करती है कि ओटावा की व्यापारिक-सन्धि के दौरान में ब्रिटिश-सरकार और भारत-सरकार की ओर से नीचे लिखी शर्तें उस सन्धि की पुष्टि के रूप में समझी जायेंगी—

१—ब्रिटिश-सरकार और भारत-सरकार मानती है कि जहा भारत की आर्थिक बहबूदी के लिए किसी भी विदेश से आनेवाले माल के प्रति भारतीय उद्योग को सरक्षण मिलना आवश्यक हो सकता है, वहा भारतीय, ब्रिटिश या अन्य देशो के उद्योगो की ऐसी स्थिति भी हो सकती है कि भारतीय उद्योग को ब्रिटिश-आयात की अपेक्षा अन्य देशो के आयात से अधिक सरक्षण की जरूरत हो।

२—ब्रिटिश-सरकार यह स्वीकार करती है कि वर्तमान स्थिति में भारत-सरकार की आय के लिहाज से आयात-करो की अनिवार्य आवश्यकता है और आयात-करो की मात्रा स्थिर करते समय आय का समुचित खयाल रखना ही चाहिए।

३—(१) भारत-सरकार वचन देती है कि सरक्षण ऐसे ही उद्योगो को दिया जायगा जो टैरिफ-बोर्ड की समुचित जाच के बाद भारत-सरकार की राय में सरक्षण के पात्र सिद्ध हो। परन्तु यह सरक्षण असेम्बली के १६ फरवरी १६२३ के प्रस्ताव में वर्णित विवेकपूर्ण सरक्षण की नीति के अनुसार दिया जायगा। यह वचन १६३३ के सरक्षण-कानून-द्वारा सरक्षित उद्योगो पर लागू न होगा।

(२) भारत-सरकार यह भी वचन देती है कि सरक्षण की मात्रा इतनी ही होगी, अधिक न होगी, कि आयात माल के मुकाबले में भारतीय माल ठीक-ठीक भावो पर बिक सके। और यह भी कि यथा-सभव इस कलम की शर्तों का खयाल रखकर ब्रिटिश माल पर अन्य विदेशो के माल की अपेक्षा कम कर लगाया जायगा।

(३) इस धारा की पिछली उपधाराओ के अनुसार ब्रिटिश माल पर और अन्य विदेशी माल पर लगनेवाले कर की मात्रा में जो अन्तर

रक्खा जायगा वह इस प्रकार नही बदला जायगा कि ब्रिटिश माल को हानि पहुँचे।

(४) इस धारा मे दिये गये वचनो से भारत-सरकार के इस अधिकार में बाधा नही आयगी कि यदि आमदनी के खयाल से जरूरत महसूस हुई तो वह आवश्यक सरक्षण-कर से भी अधिक आयात-कर और लगा दे।

४—जब भारतीय उद्योग को काफी सरक्षण देने के प्रश्न की टैरिफ-बोर्ड जाच करेगा, तो भारत-सरकार ब्रिटेन के सम्बन्धित उद्योग को भी अपनी बात कहन और अन्य सम्बन्धित दलो की कही हुई बातो का उत्तर देने का पूरा अवसर देगी। भारत-सरकार यह भी वचन देती है कि यदि सरक्षण-काल के बीच में ही रक्षित उद्योगो-सम्बन्धी शर्तो मे आमूल परिवर्तन किये जायँगे तो ब्रिटिश-सरकार की प्रार्थना पर या अपनी ओर ही से भारत-सरकार यह जाच करावेगी कि तीसरी धारा में दिये हुए सिद्धान्तो की दृष्टि से मौजूदा कर ठीक है या नही, और यह कि इस जाच में ब्रिटेन के सबधित उद्योगो के आवेदन-पत्रो पर पूरा विचार किया जायगा।

५—जिस माल की आयात पर विवेकपूर्ण सरक्षण-कर लगाया जायगा उसकी तैयारी के लिए उपयोगी कच्ची या अध-पक्की सामग्री का भारतीय निर्यात बढाने की दृष्टि से समस्त व्यावसायिक हितो के सहयोग से जो उपाय किये जायगे उनका लिहाज ब्रिटिश-सरकार रक्खेगी, विशेषत वह भारत-सरकार का ध्यान उन उपायो की ओर दिलाती है जो ब्रिटेन ने ओटावा की सधि की नवी धारा के अनुसार भारतीय रुई की खपत बढाने के लिए किये है। ब्रिटिश-सरकार वचन देती है कि वैज्ञानिक अनुसन्धान, व्यावसायिक जाच, बाजार के सहयोग और औद्योगिक प्रचार आदि सभी प्रकार से और व्यवसायियो के सहयोग से भारतीय रुई की खपत बढाने का प्रयत्न किया जायगा।

६—ब्रिटिश-सरकार वचन देती है कि पिछली धारा के सिद्धान्तो के अनुसार भारत के गले हुए लोहे के साथ कर-मुक्त प्रवेश की रिआयत तबतक जारी रहेगी जबतक १९३४ के लोह-सरक्षण-कानून के अनुसार भारत में आनेवाले लोहे और इस्पात पर लगनेवाला कर ब्रिटेन के हक में कम लाभदायक नही कर दिया जाय। परन्तु इसका १९३४ के लोहे और इस्पात-कर-सम्बन्धी कानून की दूसरी धारा-द्वारा सशोधित १८९४ के भारतीय टैरिफ कानून की उपधारा ३ (४) और ३ (५) पर कोई प्रतिकूल असर नही होगा।

७—ब्रिटिश-सरकार और भारत-सरकार वचन देती है कि इस सधि के विषय में ब्रिटिश और भारतीय उद्योगो के अधिकार-प्राप्त प्रतिनिधि मिल-जुलकर जब कभी और जो भी निर्णय, समझौते या विवरण पेश करेंगे उनपर ध्यान दिया जायगा।

मोदी-लीस-सन्धि

ओटावा की व्यापारिक सधि की पुष्टि के बाद इग्लैण्ड के व्यापार-सघ के अध्यक्ष सर वाल्टर रुन्सिमैन और लन्दन-स्थित भारतीय हाई-कमिश्नर सर भूपेन्द्रनाथ मित्र के बीच जो पत्र-व्यवहार हुआ था, वह प्रकाशित किया जाता है।

सर वाल्टर रुन्सिमैन का पहला पत्र यह था —

"मुझे ब्रिटिश-सरकार की ओर से यह वचन देने का अधिकार मिला है कि यदि किसी समय उपनिवेशो और रक्षित देशो को विदेशो के मुकाबले में ब्रिटेन के सूत और सूती कपडे की खपत अपने यहा बढाने के अधिक या विशेष उपाय करने पडे तो उस समय ब्रिटिश-सरकार उपनिवेशो और रक्षित देशो की सरकारो से यह अनुरोध करेगी कि जो रिआयत वे ब्रिटेन के रुई के माल के लिए करे वही रिआयत वैसे ही भारतीय माल के लिए भी की जाय। यह वचन उस समय तक लागू रहेगा जबतक लकाशायर और बम्बई के मिल-मालिको की २८ अक्तूबर १६३३ की सधि कायम रहेगी, अथवा जबतक दोनो देशो के सूती कपडे के उद्योगो के बीच में कोई और सधि बनकर कायम रहेगी।"

सर वाल्टर रुन्सिमैन के पत्र का उत्तर देते हुए सर भूपेन्द्रनाथ मित्र ने लिखा —

"आपका आजकी तारीख का प्रथम पत्र मिला। मुझे भारत-सरकार की ओर से यह वचन देने का अधिकार मिला है कि ज्योही दूसरा सरचार्ज (अतिरिक्त कर) व्यापक हो जाय त्योही ब्रिटिश कपडे पर आयात-कर घटाकर २० फीसदी या सफेद कपडे पर ≡)॥ पौण्ड कर दिया जायगा। अलबत्ता, २८ अक्तूबर १६३३ की लकाशायर और बम्बई के मिल-मालिको की सधि की अवधि पूरी हो जाने पर अवशिष्ट सरक्षण-काल के लिए ब्रिटिश माल पर कर लगाने मे तत्कालीन स्थिति और पिछले अनुभव का लिहाज रक्खा जायगा और सबपर न सही, परन्तु जिन चीजो पर दूसरा सरचार्ज (अतिरिक्त कर) लागू होता है उनमें से अधिकाश पर विचार किया जायगा।"

सर भूपेन्द्रनाथ मित्र के पत्र की पहुँच स्वीकारते हुए सर वाल्टर रुन्सिमैन ने लिखा —

"आपके आज की तारीख के कृपापत्र स० २ की पहुँच स्वीकार करता हूँ।"

कांग्रेस के सभापतियों, प्रतिनिधियों,

संख्या	तारीख	स्थान	प्रतिनिधियों की संख्या	सभापति
१	२८-१२-८५	बम्बई	७२	श्री उमेशचन्द्र बनर्जी
२	२८-१२-८६	कलकत्ता	४३२	,, दादाभाई नौरोजी
३	२८-१२-८७	मदरास	६०७	,, बदरुद्दीन तैयबजी
४	२६-१२-८८	इलाहाबाद	१,२४८	,, जार्ज यूल
५	२६-१२-८६	बम्बई	१,८८६	सर विलियम वेडरबर्न
६	२६-१२-६०	कलकत्ता	६७७	,, फीरोजशाह मेहता
७	२८-१२-६१	नागपुर	८१२	श्री पी० आनन्द चार्लू
८	२८-१२-६२	इलाहाबाद	६२५	,, उमेशचन्द्र बनर्जी
६	२७-१२-६३	लाहौर	८६७	,, दादाभाई नौरोजी,एम०पी०
१०	२६-१२-६४	मदरास	१,१६३	,, अलफ्रेड वेब, एम० पी०
११	२७-१२-६५	पूना	१,५८४	,, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी
१२	२८-१२-६६	कलकत्ता	७८४	माननीय मुहम्मद रहीमतुल्ला सयानी
१३	२७-१२-६७	अमरावती	६६२	,, सी० शकरन् नायर
१४	२६-१२-६८	मदरास	६१४	,, आनन्दमोहन बसु
१५	२७-१२-६६	लखनऊ	७४०	,, रमेशचन्द्र दत्त
१६	२७-१२-१६००	लाहौर	५६७	,, नारायण गणेश चन्दावरकर
१७	२३-१२-०१	कलकत्ता	८६६	,, दीनशा ईदलजी वाचा
१८	२३-१२-०२	अहमदाबाद	४७१	,, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी
१६	२६-१२-०३	मदरास	५३८	,, लालमोहन घोष
२०	२६-१२-०४	बम्बई	१,०००	सर हेनरी काटन
२१	२७-१२-०५	काशी	७५८	माननीय गोपालकृष्ण गोखले
२२	२६-१२-०६	कलकत्ता	१,६६३	श्री दादाभाई नौरोजी
२३	२६-१२-०७	सूरत	१,६००	डॉ० रासबिहारी घोष

मन्त्रियों इत्यादि की सूची नं० १

स्वागताध्यक्ष	प्रधान-मन्त्री
—	—
डॉ० राजेन्द्रलाल मित्र	मि० ए० ओ० ह्यूम
राजा सर टी० माधवराव	,,
प० अयोध्यानाथ	,,
सर फीरोजशाह मेहता	,,
श्री मनमोहन घोष	,,
,, सी० नारायणस्वामी नायडू	,, प० अयोध्यानाथ
प० विश्वम्भरनाथ	,, ,,
सरदार दयालसिंह मजीठिया	,, श्री आनन्द चार्लू
पी० रगय्या नायडू	,,
रावबहादुर एस० एम० भिडे	,,
सर रमेशचन्द्र मित्र	,, श्री दीनशा ईदलजी वाचा
श्री जी० एस० खापर्डे	,,
,, एन० सुब्बाराव पन्तुलु।	,,
,, बंशीलालसिंह	,,
रायबहादुर कालीप्रसन्न राय	,,
महाराजाबहादुर जगदीन्द्रनाथ	,, श्री दीनशा वाचा (उसी साल सभापति हुए)
दीवानबहादुर अम्बालाल देसाई	,,
नवाब सय्यद मुहम्मद बहादुर	,,
सर फीरोजशाह मेहता	,, श्री दीनशा वाचा, गोपालकृष्ण गोखले
मुशी माधवलाल	,,
डॉ० रासबिहारी घोष	,,
श्री त्रिभुवनदास मलावी	— —

कांग्रेस के सभापतियों, प्रतिनिधियों,

संख्या	तारीख	स्थान	प्रतिनिधियों की संख्या	सभापति
२३	२८–१२–०८	मदरास	६२६	डॉ० रासविहारी घोष
२४	२७–१२–०९	लाहौर	२४३	प० मदनमोहन मालवीय
२५	२६–१२–१०	इलाहाबाद	६३६	सर विलियम वेडरवर्न
२६	२६–१२–११	कलकत्ता	४४६	प० विशननारायण दर
२७	२६–१२–१२	बाकीपुर	——	रावबहादुर रगनाथ नृसिंह मुधोलकर
२८	२८–१२–१३	करांची	५५०	नवाब सय्यद मुहम्मद बहादुर
२९	२८–१२–१४	मदरास	८६६	श्री भूपेन्द्रनाथ वसु
३०	२७–१२–१५	बम्बई	२,२५९	,, सर सत्येन्द्रप्रसन्न सिंह
३१	२६–१२–१६	लखनऊ	२,३०१	माननीय अम्बिकाचरण मुजुमदार
३२	२६–१२–१७	कलकत्ता	४,९६७	श्रीमती एनी वेसेण्ट
विशेष	सितबर–१८	बम्बई	३,५००	सय्यद हसन इमाम
३३	२६–१२–१८	दिल्ली	४,८६६	प० मदनमोहन मालवीय
३४	२६–१२–१९	अमृतसर	७,०३१	प० मोतीलाल नेहरू
विशेष	सितबर–२०	कलकत्ता	——	लाला, लाजपतराय
३५	२६–१२–२०	नागपुर	१४,५०३	चक्रवर्ती विजयराघवाचार्य
३६	२७–१२–२१	अहमदाबाद	४,७२६	हकीम अजमलखा
३७	२६–१२–२२	गया	३,२४८	देशबन्धु चित्तरजन दास
विशेष	—२३	दिल्ली	——	मौलाना अबुलकलाम आजाद

मन्त्रियों इत्यादि की सूची नं० २

स्वागताध्यक्ष	प्रधानमंत्री
दीवानबहादुर के० कृष्णस्वामी राव	— —
लाला हरकिशनलाल	श्री दीनशा वाचा श्री दाजी आवाजी खरे
माननीय प० सुन्दरलाल	,,
श्री भूपेन्द्रनाथ वसु	,,
,, मजहरुल हक	,,
,, हरचन्दराय विशनदास	,,
सर एस० सुब्रह्मण्य ऐयर	सय्यद मुहम्मद, एन० सुब्बाराव पन्तुलु
श्री दीनशा ईदलजी वाचा	,, ,,
प० जगतनारायण	सय्यद मुहम्मद, एन० सुब्बाराव पन्तुलु
रायबहादुर वैकुण्ठनाथ सेन	श्री सी० पी० रामस्वामी अय्यर, भुरगरी, पी० केशव पिल्ले
श्री विट्ठलभाई पटेल	,, ,,
हकीम अजमलखा	श्री० विट्ठलभाई पटेल, फजुलहक, प० गोकर्णनाथ मि
स्वामी श्रद्धानन्द	,, डॉ० मुख्तारअहमद अन्सारी ,,
श्री व्योमकेश चक्रवर्ती	,, ,, ,,
सेठ जमनालाल बजाज	प० मोतीलाल नेहरू, डॉ० एम० ए० अन्सारी सी० राजगोपालाचार्य
श्री वल्लभभाई झवेरभाई पटेल	,, सी० राजगोपालाचार्य, विट्ठलभाई पटेल, रगास्वामी आयगर
श्री व्रिजकिशोर प्रसाद	मौ० मुअज्जमअली, वल्लभभाई पटेल, बाबू राजेन्द्रप्रसाद
डॉ० मुख्तारअहमद अन्सारी	,, ,, ,,

कांग्रेस के सभापतियों, प्रतिनिधियों,

संख्या	तारीख	स्थान	प्रतिनिधियो की संख्या	सभापति
३८	२८–१२–२३	कोकनाडा	६,१८८	मौलाना मुहम्मदअली
३९	२६–१२–२४	वेलगाव	१,८४४	महात्मा गाधी
४०	२६–१२–२५	कानपुर	२,६८८	श्रीमती सरोजिनी नायडू
४१	२६–१२–२६	गोहाटी	३,०००	श्री श्रीनिवास आयगर
४२	२६–१२–२७	मदरास	२,६९४	डॉ० मुख्तारअहमद अन्सारी
४३	२९–१२–२८	कलकत्ता	५,२२१	प० मोतीलाल नेहरू
४४	२५–१२–२९	लाहौर	—	प० जवाहरलाल नेहरू
४५	मार्च–३१	कराची	—	सरदार वल्लभभाई पटेल
४६	अप्रैल–३२	दिल्ली	—	सेठ रणछोडलाल अमृतलाल
४७	मार्च–३३	कलकत्ता	—	श्रीमती जे० एम० सेनगुप्त
४८	अक्तूबर–३४	बम्बई	—	बाबू राजेन्द्रप्रसाद
४९	अप्रैल–३६	लखनऊ	—	प० जवाहरलाल नेहरू
५०	दिसबर–३७	फैजपुर (महाराष्ट्र)	—	प० जवाहरलाल नेहरू
५१	दिसबर–३८	हरिपुरा (गुजरात)	—	श्री सुभाषचन्द्र बसु

मन्त्रियों इत्यादि की सूची नं० २

स्वागताध्यक्ष	प्रधान मन्त्री
देशभक्त कोण्डा वेंकटपय्या	प० जवाहरलाल नेहरू, डॉ० सैफुद्दीन किचलू, गगाधरराव देशपाडे तथा डी० गोपाल कृष्णैया
श्री गगाधरराव देशपाण्डे	श्री श्वेव कुरेशी, वी० एफ० भरुचा तथा प० जवाहरलाल नेहरू
डॉ० मुरारीलाल	डॉ० अन्सारी, रगास्वामी आयगर तथा प० सन्तानम्
श्री तरुणराम फूकन	,, ,, तथा विट्ठलभाई पटेल
श्री सी० एन० मुथुरग मुदालियर	श्री श्वेव कुरेशी, प० जवाहरलाल नेहरू तथा सुभाषचन्द्र वसु
श्री जतीन्द्रमोहन सेनगुप्त	डॉ० एम० ए० अन्सारी, प० जवाहरलाल नेहरू
डॉ० सैफुद्दीन किचलू	श्री श्रीप्रकाश, डॉ० सय्यदमहमूद, श्री जयरामदास दौलतराम
डॉ० चौइथराम गिडवानी	प० जवाहरलाल नेहरू ,, ,,
——	—— —— ——
डॉ० प्रफुल्ल घोष	—— —— ——
श्री के० एफ० नरीमान	श्री जयरामदास दौलतराम, आचार्य कृपलानी, डॉ० सय्यदमहमूद
बाबू श्रीप्रकाश	आचार्य कृपलानी
श्री शकरराव देव	,,
दरबार गोपालदास	,,